प्रकाशक
अवध साहित्य मन्दिर
बलरामपुर

प्रथम संस्करण
सं० २०१६
मूल्य-
मूल्य—१५ रु०

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्डरोड, वाराणसी



महाराज पाटेश्वरी प्रसाद सिंह

राष्ट्रभारती के उन्नायक

साधु स्वभाव

महाराज पाटेश्वरी प्रसाद सिंह

को

उनके प्रतापी पितामह

कविकुल-कल्पतरु

महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

का यह कीर्तिध्वज

सादर समर्पित

विषय-सूची

प्राक्कथन

हिन्दीके प्राचीन काव्य संग्रहों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हुये भी 'दिग्विजय-भूषण' अब तक एक अत्यन्त अल्प प्रसिद्ध ग्रंथ रहा है। पहली बार यह ग्रंथ कविवर गोकुल और उनके आश्रयदाता महाराज दिग्विजय सिंह के जीवन काल में जंग-बहादुरी यन्त्रालय (लीथो प्रेस) बलरामपुर (गोंडा) से सं० १९२५ में प्रकाशित हुआ था। इसकी मुद्रित प्रतियों का वितरण बलरामपुर राज्य तथा उससे सम्बद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित रहा। फिर भी तत्कालीन साहित्य प्रेमियों में इसने इतनी शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्त कर ली कि मुद्रित होनेके दस ही वर्षों के भीतर लिखे गये 'शिवसिंह सरोज' के सन्दर्भ ग्रन्थों में इसे विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया। शिवसिंह जी ने 'सरोज' की भूमिका में निर्दिष्ट संदर्भ ग्रंथों की सूची में इसे द्वितीय स्थान दिया है। इस ग्रंथका परिचय देते हुये वे लिखते हैं—

"२. लाला गोकुलप्रसाद कवि बलिरामपुरी कृत दिग्विजय-भूषण नाम संग्रह, जो सं० १९२५ में बनाया गया और जिसमें १९२ कवियों के कवित्त हैं।"[1]

सेंगर जी ने ग्रंथके मुद्रणकाल सं० १९२५ को, जो आवरण पृष्ठ पर अंकित था, उसका निर्माणकाल माना है। वास्तव में इसकी रचना छः वर्ष पूर्व सं० १९१९ में ही प्रारम्भ हो गई थी।

सरोज में दिये गये कवि परिचय में सात कवियों के विषयमें सेंगरजी ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि उनकी रचनायें दिग्विजय-भूषण में उदाहृत हैं। ये हैं—अनीस[2], कविदत्त[3], खान[4], धुरंधर[5], नायक[6], परशुराम[7], और सदानन्द[8]।

---

१. शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, १९२६ ई०)—भूमिका, पृ० २
२. शिवसिंह सरोज—पृ० ३८१ ३. वही—पृ० ३६१ ४. वही—पृ० ४०१ ५. वही—पृ० ४२७ ६. वही—पृ० ४३६ ७. वही—पृ० ४४८, ८. वही—पृ० ५०१।

इनके अतिरिक्त सरोजकार ने निम्नांकित ६३ कवियों की भी रचनायें संग्रहीत करते समय दिग्विजय-भूषण से सहायता ली है। 'सरोज' और 'भूषण' में इनके उद्धृत अधिकांश छन्दों की एकता से इसकी पुष्टि हो जाती है।

१. अकबर २. अनुनैन ३. अभिमन्यु ४. अमरेश ५. अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध' ६. अहमद ७. इन्दु ८. उदयनाथ 'कविन्द' ९. काशीराम १०. किशोर ११. केहरी १२. कृष्णकवि १३. कृष्णसिंह १४. गंगापति १५. गुलाल १६. गोकुलनाथ १७. चतुर १८. चतुरविहारी १९. चतुर्भुज २०. चैनराय २१. जैनमुहम्मद २२. ताराकृवि २३. तारापति २४. दयादेव २५. दयानिधि २६. दिनेश २७. देवीदास २८. नबी २९. नरोत्तम ३०. नागरीदास 'नागर' ३१. नृपशंभु ३२. नेवाज ३३. पुरान ३४. प्रहलाद ३५. बीठल ३६. बेनी ३७. ब्रजचंद ३८. भगवंत ३९. भूधर ४०. मदनगोपाल ४१. मननिधि ४२. मनिकंठ ४३. मन्य ४४. ममारख ४५. महाकवि ४६. माखन ४७. मीरन ४८. मुकुन्द ४९. मुरली ५०. मोतीलाल ५१. रघुराय ५२. रतन ५३. रामकृष्ण ५४. रूपकवि ५५. रूपनारायण ५६. शशिनाथ ५७. शिरोमणि ५८. सबलश्याम ५९. सोमनाथ ६०. हरजीवन ६१. हरदेव ६२. हरिजन ६३. हिरदेस।

सरोज के कवि-परिचय खंडमें सेंगर जी ने गोकुल कवि का भी उल्लेख किया है। किन्तु तद्विषयक सामग्री इतनी संक्षिप्त तथा अपूर्ण है कि उससे इनके व्यक्तित्व का कोई स्वरूप नहीं बन पाता। सरोजकार ने इनके निवास स्थान तथा चार ग्रंथोंका नाम देकर संतोष कर लिया है—

"३७ ब्रज, लाला गोकुल प्रसाद कायस्थ बलरामपुर वाले वि०।

इनके बनाये हुये दिग्विजय भूषण, अष्टयाम, चित्रकलाधर, दूतीदर्पण इत्यादि ग्रन्थ मनोहर हैं।"[1]

यह उल्लेखनीय है कि सेंगर जी ने इन पंक्तियोंमें उन्हें 'वि० = विद्यमान' अथवा अपना समकालीन कवि कहा है। यदि वे चाहते तो इनके विषय में अधिक विस्तृत एवं उपयोगी सामग्री प्रस्तुत कर सकते थे। समसामयिक उल्लेख होने से उसका महत्व भी अधिक होता।

शिवसिंह जी के पश्चात् सर जार्ज ग्रियर्सन ने "द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान" में दिग्विजय-भूषण के रचयिता गोकुल का अपेक्षाकृत विशद परिचय प्रस्तुत किया—

१—शिवसिंह सरोज—पृ० ४५६।

"लाला गोकुलप्रसाद, बलरामपुर जिला गोंडाके कायस्थ, १८८३ ई० में जीवित।

"इन्होंने १८६८ ई० में स्वर्गीय राजा दिग्विजै सिंह (सिंहासनारोहण काल १८३६ ई०) के सम्मान में दिग्विजय-भूषण नामक काव्य संग्रह, जिसमें १६२ कवियों की रचनाओं के चयन हैं, संकलित किया। यह अष्टजाम (राग-कल्पद्रुम), चित्रकलाधर, दूतीदर्पण और अन्य ग्रंथों के भी रचयिता हैं। यह ब्रज नाम से लिखते थे।"[1]

मूल ग्रंथ का अनुशीलन न करके ग्रियर्सन साहब ने दिग्विजय-भूषण के रचनाकाल विषयक शिवसिंह जी की उक्ति दुहरा दी। इसी प्रकार रचनाओं की नामावली और संख्यानिर्देश में भी इन्होंने सरोज को ही प्रमाण माना। इतना होते हुये भी गोकुल कवि और उनके आश्रयदाता के उपस्थिति काल का उल्लेख करके ग्रियर्सन साहबने भविष्य में इस सम्बन्ध में होनेवाली भ्रांतियाँ सदा के लिए समाप्त कर दीं।

इसके पश्चात् नागरी प्रचारिणी सभा काशीके खोज विवरणों में गोकुल कवि की जीवनी तथा चार कृतियों का परिचय निकला। जून १६२८ की माधुरी में श्री रामनारायण मिश्र का गोकुल कवि के जीवन और कृतियों के विवरण सहित एक सचित्र लेख भी प्रकाशित हुआ। इस प्रकार अन्तिम रचना 'गद्दीप्रकाश' को छोड़कर सभी ग्रन्थों की सामान्य जानकारी शोधकर्ताओं के लिये सुलभ हो गई। यह खेद का विषय है कि विविध विषयों पर प्रचुरमात्रामें लिखे गये ग्रंथों से साहित्य-भांडार को अलंकृत करने वाले इस आचार्य कवि को हिन्दी साहित्य के आधुनिक इतिहास ग्रंथों में स्थान न मिल सका।

दिग्विजय-भूषण के आरम्भ में दी हुई सूची में कवियों की संख्या १६२ बताई गई है। किन्तु जाँच करने पर वह ठीक नहीं उतरती। इसका कारण है कवियों की नामावली प्रस्तुत करने में संकलनकर्त्ता द्वारा अज्ञात रूप में की गई कतिपय भूलें, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

---

१. द माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान (हिन्दी अनु० डा० कि० ला० गुप्त)—पृ० २८६। ग्रियर्सन साहब ने जानकारी न होने के कारण गोकुल कवि के अष्टयाम को 'राग कल्पद्रुम' में उल्लिखित बताया है। वस्तु-स्थिति यह है कि राग-कल्पद्रुम सं० १६०० में प्रकाशित हो गया था और गोकुल कवि का 'अष्टयाम प्रकाश' सं० १६१६ में लिखा गया। अतः पूर्वोक्त अष्टयाम किसी अन्य कवि की रचना है।

१—कुछ कवियों के व्यावहारिक नाम तथा छाप सहित विभिन्न छंदों को देखकर भ्रांतिवश उन्हें दो पृथक् कवियों की रचना मान लिया गया और उसके आधारपर दो कवियों की कल्पना कर ली गई। उदाहरणार्थ—उदयनाथ "कविन्द", सुखदेव मिश्र "कविराज" और गुरुदत्तसिंह "भूपति"—इन तीन कवियों के वास्तविक नाम और छाप को जोड़कर विषय सूची में छः कवि हो गये हैं।

२—एक ही कवि के दो छंदों में दी गई छापों में किंचित् परिवर्तन देखकर उन्हें दो पृथक् कवियों की रचना मान लिया गया है। उदाहरणार्थ दत्त कवि और कविदत्त, शोभ और शोभनाथ।

३—कहीं-कहीं एक ही कवि की दो रचनाओं में समान छाप मिलनेपर भी दो पृथक् कवि समझने की भूल हुई है—जैसे सुखदेव मिश्र और सुखदेव दोसर (द्वितीय।)

४—एक स्थान पर कवि के मूल नाम और उसके पर्याय को दो पृथक् छंदों में छाप रूप में प्रयोग करने की परिपाटी से अनभिज्ञ होने के कारण गोकुल ने उनके आधार पर दो भिन्न कवियों के अस्तित्व का अनुमान कर लिया है, उदाहरणार्थ—सोमनाथ और शशिनाथ।

५—चार कवियों—कुमार[1], परबत, शोभनाथ और श्रीधर—का नाम सूची में आने से रह गया है।

इस प्रकार सूची में निर्दिष्ट १९२ कवियों में से ७ कवियों की पुनरावृत्ति हो जाने से उनकी वास्तविक संख्या १८५ ही ठहरती है। इसमें चार छूटे हुए कवियों को यदि सम्मिलित कर दिया जाय तो दिग्विजय भूषण की संपूर्ण कवि संख्या १८९ हो जाती है। प्रस्तुत ग्रंथ में दिग्विजय-भूषण की कवि सूची ही अकारादि क्रम से प्रस्तुत कर दी गई है। उसमें यथास्थान कुमार के अतिरिक्त अन्य तीन छूटे हुए कवियों का नाम समाविष्ट है जिससे संख्या १९५ हो गई है। इनके ७९२ छंद दिग्विजय-भूषण में संकलित हैं।

१—इनका वृत्त 'कवि परिचय' में नहीं आ सका है। मेरा अनुमान है कि ये कुमार मणिभट्ट हैं, जो गोकुल (व्रज) के निवासी और सं० १८०३ में विद्यमान थे। इनकी 'रसिक रसाल' नामक एक रचना का उल्लेख शिवसिंहजी ने किया है। दिग्विजय भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं।

कवि संख्या की भाँति ही दो व्यक्तियों—अमरसिंह और पखाने—का नाम संकलन कर्ता ने कवियों की श्रेणी में अनजाने ही रख दिया है। इनमें से अमर-सिंह के नाम से उदाहृत छंद उनके दरबारी कवि रघुनाथराय का है और पखाने के नाम से संग्रहीत छंद जयपुर के राय शिवसहायदास की रचना 'लोकोक्तिरस-कौमुदी' से लिये गये हैं।

एक अन्य प्रकार की भूल गोस्वामी हितहरिवंश के विषय में हुई है। संग्रह-कर्त्ता ने इनका नाम सूची में रखा है किन्तु मूलग्रंथ के भीतर जिस पृष्ठ पर (पृ० सं० १०६) उनकी रचना उदाहृत बताई गई है, वहाँ किसी अज्ञात नाम कवि के कवित्त संकलित हैं—एक का विषय है नीति दूसरे का शृंगार। शैली रीतिका-लीन है। गो० हितहरिवंश की इस प्रकार की किसी रचना का अब तक पता नहीं चला है। जो छंद उद्धृत है, उसमें दो स्थलों पर हित शब्द प्रयुक्त हुआ है; संभवतः इस शब्द ने ही गोकुल को भ्रम में डाल दिया है।

इसी के साथ गोकुल द्वारा 'अन्य कवि' नाम से निर्दिष्ट आठ अज्ञात कवियों की स्थिति पर भी विचार कर लेना चाहिये। दिग्विजय-भूषण के प्रस्तुत संस्करण के कवि-परिचय खंड के दूसरे पृष्ठ पर ये सभी अन्य कवि के नाम से उल्लिखित हैं। इनके जो छंद उक्त ग्रंथ में उदाहृत हैं उनके आधार पर इनकी पहचान संभव न हो सकी। अन्य स्रोतों से भी ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई जो इस समस्या को हल करने में सहायक होती। ऐसी दशा में पाठकों की सुविधा के लिए ग्रंथांत में दी गई नामानुक्रमणिका में 'अन्य कवि' नामक आठ कवियों के उदाहृत छंदों के पृष्ठांक पृथक्-पृथक् दिये गये हैं। संग्रहकर्त्ता को इन अज्ञात कवियों के छन्द विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध हुए होंगे। जिससे उसने इनमें से प्रत्येक के स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना कर ली। अन्य साक्ष्यों के अभाव में इस विषय में हमें गोकुल कवि की स्मृति और सूझ को ही प्रमाण मानना पड़ा है और उसी के आधार पर इनका उल्लेख 'अज्ञात कवि' नाम से कर दिया गया है।

इनके अतिरिक्त दिग्विजय-भूषण के शेष १८१ कवियों में केवल ४० के लग-भग ही हिन्दी साहित्य के प्रचलित इतिहासों में स्थान पा सके हैं। शेष में से कुछ की संक्षिप्त जीवनी एवं रचनाओं का उल्लेख प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के अन्वेषण में संलग्न विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित खोज विवरणों में मिलता है और कुछ के वृत्त काव्यरसिक जनता की स्मृतियों में अवशिष्ट रह गये हैं। प्रस्तुत ग्रंथ के कवि-

दिग्विजय-भूषण (मूल)—कवि सूची का पृष्ठांक ४

परिचय खंड की सामग्री इन सभी स्रोतों से एकत्र करने का प्रयास किया गया है। जिन कवीश्वरों की जीवन गाथायें एवं कृतियाँ काल प्रवाह के साथ अनंत में विलीन हो गईं उनके लिए कहीं अनुमान और कहीं असमर्थता प्रकाशन मात्र से संतोष करना पड़ा है।

इसी से सम्बद्ध एक दूसरी समस्या समान छापसे काव्य-रचना करने वाले अनेक कवियों में से दिग्विजय-भूषण में संकलित छन्दों के रचयिताओं की पहचान थी। जहाँ किसी कवि के एक ही दो छंद प्राप्त हों, उसी विषय पर नामाराशी कवियों द्वारा लिखित छंदों से उस कवि विशेष की प्रवृत्तियों एवं शैलियों का पृथक्करण साधारणतया संभव न था—उदाहरणार्थ शिवनाथ नाम के तीन, गोपाल नाम के चार और बलदेव नाम के सात कवियों में से दिग्विजय-भूषण के शिवनाथ गोपाल और बलदेव की पहचान करने में अनुमान ही हमारा एक मात्र सहायक रहा है। ऐसे अवसरों पर 'शिवसिंह सरोज' से हमें विशेष पथ-निर्देश प्राप्त हुआ है। 'सरोज' का मुख्य संदर्भग्रंथ होने से 'दिग्विजय-भूषण' के बहुत से छंद उसमें उद्धृत मिलते हैं। शिवसिंहजी ने प्रायः उनके निर्माताओं का सामान्य परिचय भी दे दिया है। इस सामग्री का विवेक पूर्वक ग्रहण उपयोगी सिद्ध हुआ है। डा० किशोरी लाल गुप्त के लेखों तथा 'सरोज सर्वेक्षण' शीर्षक अप्रकाशित प्रबंध द्वारा प्राप्त महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के बिना इस ग्रंथ के कतिपय कविवृत्त अधूरे ही रह जाते। आभार प्रदर्शन उसका महत्त्व कम कर देगा।

प्रस्तुत ग्रंथ में संग्रहीत एवं गोकुल कवि के स्वरचित छन्दों का प्रतिपाद्य विषय अलंकार, नायिकाभेद, षड्ऋतु तथा कवि प्रौढोक्ति वर्णन है। इन विषयों पर लिखे गये छंदों में सामन्त वर्ग के आश्रित अनेक कवियों ने समसामयिक ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियोंका यत्र-तत्र उल्लेख किया है, जिनसे मध्य कालीन राजनीतिक जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है:—

१—चन्दकवि—महाराज पृथ्वीराज (सं० १२२०-१२४६) का मुहम्मदगोरी पर शब्दबेधी बाण संधान।

२—केहरी—ओरछा नरेश मधुकर शाहके पुत्र रतनसिंह[1] और अकबर की सेना का युद्ध (सं० १६४८)।

३—गंग—मिर्जा राजा भावसिंह (सं० १६५६-१६७८) का शौर्यवर्णन। महाराज बीरबल और खानखाना अब्दुल रहीम की दानशीलता की प्रशंसा।

---

१. महाकवि केशवदास ने 'रतनबावनी' की रचना इन्हीं के लिए की थी।

४—प्रवीणराय—ओरछा के राजकुमार इन्द्रजीतसिंह से मधुर सम्बन्ध, सम्राट् अकबर के आमंत्रण से उत्पन्न परिस्थिति तथा अपनी वाग्विदग्धता द्वारा राजकोप से रक्षा का वर्णन।

५—रघुनाथराय—अमरसिंह राठौर का शाहजहाँ पर सरेदरबार आक्रमण सं १७०१ (२५ जुलाई, १६४४ ई०)।

६—मुकुन्द—धरमत के युद्ध (सं० १७१५) में सहायकों द्वारा प्रवंचित दारा के सहायक शत्रुसाल (छत्रसाल) अथवा मुकुन्द सिंह हाड़ा का औरंगज़ेब की सेना से घमासान युद्ध।

७—काशीराम—निजामत खाँ की वीरता का वर्णन।

८—मतिराम—बूँदी के महाराज भावसिंह का यश वर्णन।

९—घनश्याम—बाँधवगढ़ (रीवाँ) के बघेल राजा (संभवतः अनिरुद्ध सिंह अथवा अवधूत सिंह) का शौर्य वर्णन।

१०–नीलकंठ—औरंगजेब के सेनाध्यक्ष दलेल खाँ (दिलेर खाँ सं० १७२३) का आतंक वर्णन।

११–सुखदेव मिश्र—राजा अनूप सिंह (सं० १७२४ बीकानेर ?) की दानशीलता की प्रशंसा।

१२–कृष्ण—महाराज जयसिंह कछवाह (सं० १६७८–१७२४) का कीर्ति-वर्णन।

दिग्विजय-भूषण की कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त न होने से विवश होकर मुझे जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर की लीथों में छपी सं० १९२५ की प्रति को ही आधार बनाना पड़ा।[1] इस प्रति के मूल तथा टीका भाग में लिपिकार के प्रमाद से अगणित त्रुटियाँ मिलीं—विशेष रूप से ब्रजभाषा में लिखी गई टीका अशुद्धियों से भरी थी। पर्याप्त सावधानी बरतते हुये भी अनेक त्रुटिपूर्ण पाठ छूट ही गये। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत ग्रंथ के 'वैज्ञानिक' सम्पादन का दावा करना धृष्टता मात्र होगी। विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ और शब्दार्थ पृष्ठान्त में दे दिये गये हैं। मेरा उद्देश्य कवि-परिचय सहित 'दिग्विजय-भूषण' को हिन्दी प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करना मात्र था, जिससे

---

१. ना० प्र० सभा के खोज विवरण (१९२६।१४३ बी) में 'दिग्विजय-भूषण' की जिस प्रति को आधार बनाया गया है वह यही लीथो प्रति है, हस्तलिखित नहीं। अन्वेषक ने भ्रांतिवश उसे हस्तलेख मान लिया है।

राष्ट्रभाषा के अनेक विस्मृत रत्न प्रकाश में आ जायँ। वह किसी प्रकार पूरा हुआ। अपने लिए यही सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है।

इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने की सर्वप्रथम प्रेरणा देने वाले सुहृद्वर श्री यज्ञमणि दीक्षिताचार्य, एम० ए०, आत्मसचिव श्रीमती महारानी साहिबा बलरामपुर, का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन एवं सक्रिय सहयोग के अभाव में यह ग्रंथ इस रूप में कदाचित् ही प्रस्तुत हो पाता।

अन्त में प्रस्तुत ग्रन्थ के संपादन में श्री जनार्दन शास्त्री पांडेय तथा मुद्रण में श्री बाबूलालजी फागुल्ल द्वारा प्राप्त सहयोग के लिये मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

प्राध्यापक निवास (मुंशी नगर)
गोरखपुर विश्वविद्यालय
विजया दशमी, सं० १६१६

भगवती प्रसाद सिंह



महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय'

जीवन-परिचय

उत्तरप्रदेशमें सबसे बड़े जमींदारी राज्य के संस्थापक महाराज दिग्विजयसिंह जनवार क्षत्रिय थे। इनके पूर्वजों की मूलभूमि पावागढ़ (चम्पानेर-गुजरात) का जानवार प्रदेश था, जो नीमच छावनी के निकट स्थित है। राजा नयसुखदेव[1] इसी भूखंड के शासक थे। उनके छः पुत्रों में बरियारशाह[2] बड़े शूरवीर थे। दिल्ली के सुलतान की प्रेरणा से वे सं० १३२५[3] में अवध आये और यहाँ

---

१. गोंडा जिले के गज़ेटियर में इनका नाम मनसुखिदेव और 'तारीख़ राजबलरामपुर' में तनसुखदेव लिखा है किंतु 'दिग्वजय-भूषण' में इन्हें नयसुख नामसे अभिहित किया गया है। गोकुल कवि के उल्लेख को अधिक प्रामाणिक मानकर यहाँ 'नयसुख' नाम ही रखा गया है।

नमच छावनी पास है, पावागढ़ गुजरात।
राजा नयसुखदेव तहँ, बल प्रताप अवदात॥
—दिग्विजय-भूषण पृ० २७

२. पावागढ़ गुजरात ते, आये नृप जनवार।
सुभट बीर बरिबंड बहु, संग मैं सैन अपार॥
सूबा अवध को जेर करि, छीनि मुल्क सब लीन।
ता महँ यह बलिरामपुर, सुभग थली निज कीन॥
केतक भजि तजि राज गे, केतक भे जिमि दीन।
केतक दंड दै सरन परि, भये भूप आधीन॥
एक छत्र यहि औध मैं, भयो भूप जनवार।
सर कीन्हौं यहि मुल्क को, नाम धरे सरवार॥
—दिग्विजय चंपू (ले० गदाधर शर्मा) पत्र ३

३. गोंडा गज़ेटियर के अनुसार बरियारशाह का सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक के साथ अवध आगमन १३७४ ई० (सं० १४३१) में हुआ। दिग्विजय-भूषण में दी हुई तिथि (सं० १३२५) से इसमें १०६ वर्ष का अंतर पड़ता है। यहाँ भी हमने राजकीय कागज-पत्रों पर आधारित राजकवि गोकुल के एतद्विषयक उल्लेख को ही अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय माना है।

संवत् विक्रम भूप के, तेरह सै पचीस।
राज अकौना को लह्यो, बड़ बरियार महीस॥
—दिग्विजय-भूषण पृ० २८

अकौना राज्य (जिला बहरायच) पर अधिकार कर के स्थायी रूप से बस गये। अपने बाहुबल से उन्होंने इस प्रदेश में फैली हुई अराजकता और विरोधी तत्वों का मूलोच्छेद करके एक सुदृढ़ राज्य स्थापित किया। इसी वंश में आगे चलकर सं० १४६६ में राजा माधवसिंह अकौना की गद्दी पर बैठे। इन्होंने रामगढ़ गौरी के तत्कालीन सामन्त खेमू चौधरी और उसके सहायक बादल बढ़ई को पराजित करके उनका राज्य अपने अधीन कर लिया।[1] कुछ ही दिनों बाद इस नवविजित प्रदेश में शासन-व्यवस्था दृढ़ करने के उद्देश्य से छोटे भाई गणेशसिंह को अकौना राज्य का प्रबन्ध सौंपकर वे रामगढ़ गौरी में आ बसे। इन्हीं माधवसिंह के द्वितीय पुत्र बलरामशाह के नाम पर वर्तमान बलरामपुर नगर की स्थापना हुई। तब से रामगढ़ गौरी के स्थान पर बलरामपुर ही जनवार वंशके इस दूसरे राज्य का केन्द्र बन गया।[2] कालान्तर में अकौना वाली शाखा में पयागपुर, गंगवल, चर्दा और भिनगा के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुये। उनमें कोई ऐसा असाधारण शक्ति सम्पन्न एवं प्रतिभाशाली शासक नहीं हुआ जिसका अपने समकालीन राजनीतिक जीवन में कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान रहा हो। किंतु इसी राजवंश की बलरामपुर वाली शाखा में छत्रसिंह, नवलसिंह तथा बहादुरसिंह जैसे पराक्रमी एवं नीतिकुशल नर-रत्नोंका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने अवधके नवाबों द्वारा नियुक्त चकलेदारों और नाज़िमों की सेनाओंको अनेक बार परास्त और केन्द्रीय शक्ति की निरन्तर अवज्ञा कर अपना साका स्थापित किया। इन उदार शासकों की छाया में उनके वंशधर जनवार धीरे-धीरे बलरामपुर के चतुर्दिक् फैल गये। जेवनार, शाहडीह, समगरा, महादेव, किठूरा, दुलहापुर, सिसई, बेनीजोत आदि गाँवों में वे अब तक बसे हुये हैं।

महाराज दिग्विजयसिंह का जन्म अवध के इसी लोकविश्रुत राजवंश में बेला के किले में आश्विन कृष्ण १२, बुधवार सं० १८७६ को हुआ। बालक दिग्विजय को आरंभ से ही आपत्तियों का सामना करना पड़ा। माता सूतिकागृह में ही रोगग्रस्त हो गईं। अतः इनके पिता महाराज अर्जुन सिंह ने दाई द्वारा दूध पिलाने की व्यवस्था करके पुत्र की प्राण-रक्षा की। चार वर्ष की अवस्था में आँगन में खेलते समय आग पर रखे हुये गर्म दूध से इनका सारा शरीर बुरी तरह

१. खेमू चौधरी के नाम पर ही वर्तमान खँभौवा ग्राम की प्रसिद्धि हुई। यहाँ उसकी गढ़ी के ध्वंसावशेष अब तक वर्तमान हैं।

२. तारीख़राज बलरामपुर (ले० राजेन्द्र बहादुरसिंह), पृ० ६।

जल गया। इसके प्रभाव स्वरूप स्वस्थ हो जाने पर भी इनका बायाँ अंग चलने पर कुछ झुक जाया करता था।[1]

सात वर्ष की आयु में इनका विद्यारंभ संस्कार हुआ। उन दिनों नवाबी शासन के प्रभाव से अवध के संभ्रान्त कुलों में फ़ारसी अरबी का बड़ा प्रचार था। दिग्विजय सिंह की शिक्षा पहले इसी परिपाटी पर हुई, पीछे धर्म शास्त्र, दर्शन, काव्य, ज्योतिष और राजनीति विषयक संस्कृत ग्रंथों के पढ़ाने की भी व्यवस्था की गई।

पढ़े फारसी आरबी ग्रंथ रूरे। पढ़े वेद भेदै सबै अंग पूरे।
पढ़े मंत्र तंत्रादि यंत्राधिकारी। पढ़े काव्य के अंग जेते विचारी॥
पढ़े राजनीतै अनीतै बिहाई। पढ़े जोतिसै जो षटो अंग भाई।
पढ़े वेद वेदांत के अंग भारी। पढ़े न्याय के पंथ नीके विचारी॥

इन्होंने अरबी-फ़ारसी मिर्ज़ा ज़ुल्फ़क़ार बेग से पढ़ी थी और संस्कृत का अध्ययन बाबा केशवदास तथा रघुनाथदास से किया था। महाराज अर्जुन सिंह ने मानसिक विकास के साथ ही पुत्र की शारीरिक उन्नति पर भी ध्यान रखा। बाना-पट्टा सिखाने के लिये मुहम्मद खाँ, बादल खाँ और सरदार सिंह तथा तैरने की शिक्षा के लिये मीरन जान नियुक्त हुए। मनोरंजन के लिये संगीत कला का व्यावहारिक ज्ञान इन्होंने उस्ताद मुहब्बत खाँ से प्राप्त किया। घुड़सवारी और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा में पिता तथा बड़े भाई जैनरायन सिंह ने व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी ली। प्रातः सायं स्वयं समय देकर उन्होंने दिग्विजय सिंह को युद्धविद्या में पटुता प्रदान की।

इनका यज्ञोपवीत संस्कार ११ वर्ष की अवस्था में फागुन कृष्ण २, सं० १८८७ को हुआ। संयोग वश इस समारोह के ७ ही दिन बाद महाराज अर्जुन सिंह का परलोकवास हो गया। पिता की प्रेत क्रिया समाप्त होनेपर चैत्र शुक्ल १, सं० १८८८ को बड़े राजकुमार जैनरायन सिंह गद्दी पर बैठे। अभी उन्हें राज्य करते छः वर्ष भी पूरे न हुए थे कि अचानक कार्तिक पूर्णिमा सं० १८९३ को वे दिवंगत हो गये।[2] इन पारिवारिक आपत्तियों ने १८ वर्ष की छोटी आयु में दिग्विजय सिंह को राजदंड धारण के लिए विवश किया।

---

१. दि० प्र०, पृ० ३१

२. 'दिग्विजय चंपू' के लेखक गदाधर शर्मा ने जैनरायन सिंह की आकस्मिक मृत्यु का कारण विरोधियों का षड्यंत्र माना है। दिग्विजय सिंह को सम्बोधित करते हुए वे लिखते हैं—

महाराज के अल्प वयस्क होने से राज्य का सारा प्रबंध नायब नल सिंह के हाथ में चला गया। उन्होंने अपना एकाधिकार स्थिर रखने के उद्देश्य से राज्य के हितैषी कई पुराने कर्मचारियों को पृथक् करके उनके स्थान पर महाराज जी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही अपने समर्थक लोगों को नियुक्त कर दिया। इतना ही नहीं महाराज की व्यक्तिगत सेवा के लिए तैनात पाँच स्वामिभक्त अंगरक्षक भी निकाल दिये गये। दिग्विजय सिंह इस अवज्ञापूर्ण आचरण से तमतमा उठे। उन्होंने उसी क्षण अपने शक्ति-शाली किंतु स्वामिद्रोही नायब को दंड देने का निश्चय कर लिया। सेना के उच्च अधिकारियों तथा सिपाहियों को नलसिंह का समर्थक जानकर उन्होंने अपने दो विश्वासपात्र सिपाहियों—रामआसरे तिवारी तथा ऊधोगिरि गोसाईं[1]—को लेकर नलसिंह के घर पर रात में धावा किया और उन्हें बंदी बना लिया। प्रातः काल नायब तथा उनके कुटुम्बियों के बहुत अनुनय विनय करने पर ३० हजार रुपये जुर्माना वसूल करके उन्हें मुक्त कर दिया। नलसिंह ने स्वामिभक्ति की शपथ ली। इसके बाद उन्हें पुनः पूर्व पद दे दिया गया। किन्तु मनोमालिन्य चलता रहा। नलसिंह को भय लगा रहता था कि राजा पुनः कोई न कोई बहाना निकाल कर उन्हें दंडित करेंगे। अतः एक रात को अपने कुटुम्ब समेत वे भाग खड़े हुए। उनके स्थान पर गजाधर सिंह नायब बने।

दो०—जैनारायन भूप तब, भये आपके भ्रात।
रामचंद सम सील निधि, सोइ रूप सोइ गात॥
चौ०—मातु भक्ति हिरदै निज ठाना। अंवर कछू दूसर नहिं जाना।
नहि जानैं कछु राज को भेवा। निसु दिन करैं मातु की सेवा॥
राजनीति बहु विधि समुझावा। जननी भै बस हृदै न आवा।
भये प्रबल कार्जी दुखदायक। नहिं बूझैं को है केहि लायक॥
इहाँ भूप भे कछू दुखारी। सो बेवरा का कहौं मुरारी।
खल मिलि कियो घात बिस्वासा। सुरपुर गे नृप तजि जग आसा॥
तब परपंचिन्ह हर्ष है, कीन्ह यकावट राज।
निज्जु नैनन आपुहु लखा, जैसो कीन्हो काज॥
—दिग्विजय चंपू (हस्तलिखित)—पत्र १२-१३

१. पीछे देखे आवत सोई। तीनि पुरुष संग अवर न कोई।
जौन तीनि सै किरिया खाये। रहि न गये एकौ तहँ पाये।
एक राम आसरे तिवारी। दूजे ऊधौगिरि भट भारी॥
—दिग्विजय प्रकाश, पृ० २२

नलसिंह ने बलरामपुर से भाग कर उतरौला के राजा मुहम्मद खाँ की शरण ली। उतरौला और बलरामपुर राज्यों में सीमा सम्बन्धी विवाद को लेकर बहुत दिनों से शत्रुता चली आ रही थी। मुहम्मद खाँ ने शत्रु के रहस्यों का पता लगाने के लिये नलसिंह का स्वागत किया और उन्हें अपने यहाँ की नायबत दे दी। नलसिंह भी अपना बैर चुकाने की ताक में थे। उन्होंने महाराज दिग्विजय सिंह की हत्या कराने का दो बार असफल प्रयत्न किया। अंत में चारों ओर से हार कर उन्होंने उतरौला के राजा से बलरामपुर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करा दी। उतरौला की सेना बुरी तरह पराजित हुई। नगर पर दिग्विजय सिंह का अधिकार हो गया। इससे आंतकित होकर तुलसीपुर के राजा दानबहादुर सिंह ने भी अधीनता स्वीकार कर ली और चौथ, चौकीदारी तथा भेंट द्वारा दिग्विजय-सिंह को संतुष्ट किया।

इन्हीं दिनों अवधशासन की ओर से शंकर सहाय पाठक को गोंडा—बहरायच की निज़ामत प्रदान की गई। इनकी नीति अत्यन्त कुटिल थी। प्रत्यक्ष रूप से दिग्विजय सिंह के साथ मैत्रीभाव प्रदर्शित करते हुए भी इन्होंने भीतर ही भीतर बलरामपुर के पुराने शत्रुओं—उतरौला और तुलसीपुर के राजाओं से मिलकर इनका राज्य हड़पने की योजना बनाई। दैवयोग से इस षड्यन्त्र के सफल होने के पूर्व ही उन्होंने बहरायच के काज़ी के पुत्र की हत्या करा दी। इस अभियोग में वे नाज़िम के पद से हटा दिये गये। राजकोप से अपने प्राणों की रक्षा के लिये शंकर सहाय पाठक ने नैपाल के दुर्गम जंगलों की शरण ली और वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

इसके अनन्तर सं० १८६६ में अयोध्या के राजा दर्शन सिंह नाज़िम बनाये गये। महाराज दिग्विजय सिंह के प्रभाव से वे भली भाँति परिचित थे। वे यह जानते थे कि बलरामपुर की शक्ति को समाप्त करके ही घाघरा के उत्तर-पूर्वी प्रदेश में उनकी धाक जम सकती है। अतः बिना किसी कारण अथवा पूर्व सूचना के उन्होंने बलरामपुर पर चढ़ाई कर दी। उनकी विशाल वाहिनी के समक्ष बलरामपुर की छोटी सेना अधिक दिनों तक ठहर न सकी। घमासान युद्ध के पश्चात् बलरामपुर और पटोहाँ के कोट तोड़ दिये गये। सारे बलरामपुर राज्य पर दर्शन सिंह का अधिकार हो गया। दिग्विजय सिंह को विवश होकर अज्ञातवास में जाना पड़ा।

अवध की सीमा त्याग कर वे अंग्रेजी राज्य में चले गये। गोरखपुर उनका प्रधान केन्द्र बन गया। यहीं से वे अपने सहायक एवं समर्थक श्रीदत्त सिंह को गोरिल्लायुद्ध के लिये प्रोत्साहित करते रहे और अंत में बलरामपुर स्थित नाज़िम

की सेना को पराजित किया। दर्शनसिंह ने परेशान होकर मुअज्जम खाँ मेवाती को दिग्विजयसिंह के पास सुलह का प्रस्ताव लेकर भेजा। किंतु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इससे चिढ़कर उन्होंने दिग्विजयसिंह के आवास औरहवा छावनी (महराजगंज तराई—गोंडा) पर सं० १९०६ में आक्रमण कर दिया। राजा दर्शनसिंह के भतीजे बोधीसिंह के गिरते ही सेना में भगदड़ मच गई। बुरी तरह पराजित होकर अवशिष्ट सेना के साथ वे बलरामपुर चले आये। यह युद्ध नैपाल की सीमा में हुआ था। अतएव दिग्विजयसिंह की शिकायत पर अवध तथा नैपाल के बीच पुरानी संधि की अवहेलना करने के अपराध में नवाब वाजिद अलीशाह ने दर्शनसिंह को लखनऊ बुलाकर जेलखाने में डाल दिया।

परिस्थिति से लाभ उठाकर दिग्विजयसिंह ने पिपरा में एक सेना एकत्र की और बलरामपुर पर धावा बोल दिया। नाज़िम की सेना शत्रु के इस अचानक आक्रमण से घबड़ा गई। साधारण युद्ध के बाद दिग्विजय सिंह ने अपने खोये हुये राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया।

लखनऊ में बंदीजीवन व्यतीत करते हुये दर्शन सिंह ने दिग्विजयसिंह से अपने अपमान का बदला लेने के लिए एक युक्ति सोची। उन्होंने अंग्रेजी राज्य के कुछ निवासियों से रेजीडेण्ट के पास दिग्विजयसिंह पर हत्या के आरोप विषयक एक आवेदन पत्र दिलाया और नवाब के कर्मचारियों को घूस देकर उन्हें कैद करने का फरमान निकलवा दिया। रेजीडेण्ट को भी इस आरोप की सत्यता पर विश्वास हो गया। इससे अंग्रेजी तथा नैपाल सरकारों ने भी दिग्विजयसिंह पर वारण्ट जारी कर दिये। इस भीषण आपत्ति से अपनी रक्षा के लिए उन्हें पुनः जन्मभूमि छोड़नी पड़ी। कुछ विश्वस्त सेवकों के साथ वेष बदलकर वे बाँसी, गोरखपुर और आजमगढ़ होते हुये बनारस पहुँचे। वहाँ पूर्व परिचित फूला नाम की एक मालिनि के मकान में ठहरे। बाद को भेद खुल जाने की आशंका से उन्होंने सारनाथ के पास पं० शिवलाल दुबे के बगीचे का मकान किराये पर ले लिया। बनारस के अंग्रेज कलक्टर को गुप्तचरों द्वारा एक दिन इनका पता चल गया। मकान सन्ध्या होते ही घेर लिया गया। दिग्विजय सिंह बड़ी कठिनाई से पुलिस का घेरा तोड़कर निकले गये।

काशी से फूलपुर, जौनपुर, शाहगंज तथा अयोध्या के मार्ग से वे किसी प्रकार अपने पुराने किले पटोहाँ कोट में आ गये। गोंडा के राजा देवीबख्शसिंह ने इस आपत्तिकाल में उनकी रक्षा के लिए दो सिपाही नियुक्त कर दिये थे। वे इन्हें गोंडा से पटोहाँ कोट सकुशल पहुँचा कर लौट गये।

दिग्विजयसिंह का पटोहाँ कोट में अधिक दिन तक ठहरना निरापद नहीं था। अतः वहाँ से वे बुटवल (नैपाल) चले गये और छिपे तौर से राना बमबहादुर के मेहमान होकर कई महीने रहे। जलवायु अनुकूल न होने से वे बुटवल से महाराजगंज (गोंडा) चले आये। यहाँ से अपना वकील गोरखपुर के कलक्टर रीड साहब[1] के पास वारण्ट रद्द कराने की पैरवी के लिए भेजा। सौभाग्य से उस समय वहाँ कर्नल स्लीमन भी उपस्थित थे। कंपनी शासन ने इनकी नियुक्ति ठगों और डाकुओं का दमन करने के लिए की थी। बलरामपुर के वकील की बातें सुनकर कलक्टर रीड ने स्लीमन के सामने यह प्रस्ताव रखा कि यदि दिग्विजयसिंह उस प्रदेश के प्रसिद्ध डाकू रामसिंह को कैद करा दें तो वे उनके विरुद्ध कंपनी द्वारा जारी किया गया वारण्ट वापस ले लेंगे। स्लीमन ने यह स्वीकार कर लिया। वकील ने इसकी सूचना दिग्विजयसिंह को दी। इसके कुछ ही दिनों बाद दिग्विजयसिंह ने रामसिंह को कैद करके गोरखपुर भेज दिया। पूर्व निश्चित वार्ता के अनुसार कंपनी शासन ने उनके ऊपर लगाया गया आरोप खारिज करके वारण्ट वापस ले लिया।

दर्शन सिंह के उत्तराधिकारी नाजिम मुहम्मद अली खाँ और वाजिद अली-खाँ ने दिग्विजय सिंह से मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखा। किंतु वे इस पद पर अधिक समय तक न ठहर सके। एक ही वर्ष बाद सं० १६०३ में उन्हें हटा कर नवाब ने दर्शनसिंह के पुत्र रघुबरदयालसिंह को निज़ामत दे दी। वे अपने पिता के प्रबल शत्रु दिग्विजय सिंह को नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ़ ही रहे थे कि अत्याचार और कुशासन के अभियोग में वर्ष भर के अन्दर ही हटा दिये गये। उनके उत्तराधिकारी हुए दर्शन सिंह के भाई इच्छा सिंह। सरकारी कोष का धन हड़पने के जुर्म में उन्हें भी एक ही वर्ष निजामत नसीब रही। सं० १६०५ में मीरमुहम्मद हसन नाज़िम हुए। गोंडा के राजा पांडेय रामदत्त राम और महाराज दिग्विजय सिंह इस पद की प्राप्ति में उनके मुख्य सहायक थे। नये नाज़िम और पांडेय रामदत्त के बीच रुपये के लेन-देन में कुछ मन-मुटाव हो गया। एक दिन भेंट करने के लिये आये हुए रामदत्त को उसने अपने खेमे में ही मरवा डाला। महाराज दिग्विजय सिंह इस घटना के कुछ क्षण पूर्व वहाँ से उठ कर अपने डेरे पर चले आये थे। जब इस हत्या की खबर नवाब के पास पहुँची, मुहम्मद हसन पदच्युत कर दिये गये।

---

१. गोरखपुर में रीड साहब की धर्मशाला इनकी स्मृति को अब तक सुरक्षित किये है।

इन्हीं दिनों तुलसीपुर के राजा द्रिगराज सिंह को उनके पुत्र द्रिगनरायन सिंह ने बलपूर्वक गद्दी से उतार दिया और राज्य पर अधिकार कर लिया। सब ओर से निराश होकर द्रिगराज सिंह ने दिग्विजय सिंह से सहायता माँगी। उधर द्रिग-नारायन सिंह ने नवाब के दरबारियों की जेब गर्म करके तुलसीपुर का इलाका अपने नाम लिखा लिया। दिग्विजय सिंह के सामने यह एक वैधानिक अड़चन थी, जिससे चाहते हुए भी वे द्रिगराज सिंह की सहायता करने में असमर्थ थे। अतः पहले उन्होंने इसे ही दूर करने का प्रयत्न किया। उन्हें एक अच्छा अवसर हाथ लगा। इसी समय कर्नल स्लीमन ने रेजीडेण्ट के रूप में पूर्वी अवध का दौरा किया। १४ दिसम्बर १८४६ को उनका पड़ाव गोंडा में था। दिग्विजय सिंह के इशारे से द्रिगराज सिंह ने उनके समक्ष अपने अधिकार-च्युत होने का वाद प्रस्तुत किया। रेजीडेण्ट ने उन्हें लखनऊ आकर भेंट करने-का आदेश दिया। द्रिगराज सिंह बलरामपुर के वकील के साथ यथासमय स्लीमन साहब के समक्ष उपस्थित हुये। रेजीडेण्ट के हस्तक्षेप से द्रिगराजसिंह को पुनः तुलसीपुर का राज्य शाहीफरमान द्वारा प्रदान किया गया। महाराज दिग्विजय सिंह पर इस फरमान को कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया। उन्होंने एक विशाल सेना लेकर कगदा कोट घेर लिया। कई दिनों तक युद्ध करने के बाद किले के भीतर एकत्रित खाद्य-सामग्री के समाप्त हो जाने से तुलसीपुर की सेना पराजित हुई। बूढ़े राजा द्रिगराज सिंह को पुनः तुलसीपुर की गद्दी पर बिठाया गया।

सं० १६०८ में दर्शन सिंह के वंशधर मानसिंह (द्विजदेव) नाज़िम हुये। पैतृक शत्रुता का बदला चुकाने के उद्देश्य से उन्होंने लखनऊ जाते समय दिग्विजय सिंह को मार्ग में ही कैद कर लेने की योजना बनाई। किंतु उसका भंडाफोड़ समय से पूर्व ही हो गया। दिग्विजय सिंह ने वह रास्ता छोड़ कर गँगवल (बहरायच) के मार्ग से घाघरा पार किया और बाराबंकी होते हुए सीधे लखनऊ चले गये। वहाँ रेज़ीडेण्ट स्लीमन और नवाब सय्यद अली नक़ी खाँ से मिलकर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। इसी यात्रा में उन्हें नवाब ने 'राजा बहादुर' का ख़िताब दिया।

तुलसीपुर के राजा द्रिगराज सिंह सं० १६०६ में अपने पुत्र द्वारा पुनः सिंहासन से हटा दिये गये। नवाब की सम्मति लेकर दिग्विजय सिंह ने द्रिगराज सिंह का स्वत्त्व स्थापित करने के लिये तुलसीपुर पर आक्रमण किया। इस युद्ध में नाज़िम के विश्वासघात करने पर भी जनरल बेनीमाधव पांडे के सेनापतित्व में बलरामपुर की फ़ौज विजयी हुई। द्रिगराज सिंह की छूटी हुई गद्दी मिल गई

किन्तु उसका निष्कण्टक भोग वे अधिक दिनों तक नहीं कर सके। बलरामपुर की सेनाओं के लौटते ही उनके पुत्र ने तुलसीपुर पर चढ़ाई की। बूढ़े द्रिगराज सिंह को उसने बन्दी बना कर जेल में डाल दिया। महाराज दिग्विजयसिंह यह समाचार पाकर व्यग्र हुये किन्तु इसके पूर्व कि वे पदच्युत राजा की सहायता कर सकें, पुत्र द्वारा दी गई असह्य यातनाओं ने द्रिगराज सिंह की ऐहिक-लीला जेलखाने में ही समाप्त कर दी।

गोंडा के राजा देवी बख्श सिंह और दिग्विजय सिंह में आरम्भसे ही मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध था किन्तु एक प्रश्न को लेकर उनमें गहरा मतभेद हो गया। वह था दिग्विजय सिंह का गोंडा के बिसेन राजवंश की कन्या इन्द्रकुँवरि से विवाह। परम्परा से बलरामपुर के जनवारों की कन्यायें बिसेनों के यहाँ ब्याही जाती रही हैं। राजा देवी बख्श सिंह स्वयं बलरामपुर के सगोत्री पयागपुरके राजा के यहाँ ब्याहे थे। दिग्विजय सिंह के उक्त विवाह से इस सामाजिक मर्यादा की स्पष्ट अवहेलना हुई थी। इस घटना ने अवध के इन दो शक्तिशाली राज्यों में स्थायी बैर का बीजारोपण किया, जिसका परिणाम आगे चल कर समूचे राष्ट्र के लिये अहितकर हुआ। १८५७ ई० (सं० १९१४) के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में जिस समय देवीबख्श सिंह ने नवाब का पक्ष लेकर अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्तिकारियों का नेतृत्व किया, दिग्विजय सिंह ने पुरानी शत्रुता की प्रतिक्रिया में फिरंगियों की सहायता करने में ही अपनी आन की रक्षा समझी।

अवधकी राजनीतिक स्थितिमें इसी समय एक युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। अंग्रेज़ रेज़ीडेण्टके निरन्तर हस्तक्षेप, कर्मचारियोंकी भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति तथा सामन्तों एवं चकलेदारोंकी प्रवंचनासे तंग आकर ७ फरवरी १८५६ (सं० १९१३) को एक फ़रमान द्वारा नवाबने अवधका शासन ईस्ट इंडिया कंपनीको सौंप दिया। इसके फलस्वरूप वह अंग्रेजी राज्यका एक अंग हो गया। सर चार्ल्स विंगफील्ड गोंडा और बहरायचके प्रथम कमिश्नर नियुक्त हुये। रेजीडेन्टने इनसे पहले ही दिग्विजयसिंहकी प्रशंसा कर रखी थी। अतः घाघरा पार करते ही उसने इन्हें बुलानेके लिये दूत भेजे। दिग्विजय सिंहकी विंगफील्ड से प्रथम भेंट सिकरौरा छावनी (कर्नैलगंज—गोंडा) में हुई। इसी भेंटमें विंगफील्ड द्वारा दिये गये निमंत्रणपर दिग्विजय सिंहने बादको पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा मसूरीकी यात्रायें की थीं।

महाराज दिग्विजय सिंह भ्रमणसे लौटे ही थे कि १८५७का स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया। उत्तर प्रदेशमें इसका सूत्रपात १० मईको मेरठकी छावनीसे हुआ। एक मासके भीतर ही गोंडा और बहरायचमें इसकी लपटें फैल गईं। दिगंत-

व्यापी क्रान्तिसे त्रस्त हो कमिश्नर विंगफील्डने दिग्विजयसिंहसे गोंडा तथा सिकरौरामें रहनेवाले अंग्रेज परिवारोंको शरण देनेकी याचना की। महाराजने उनकी प्रार्थनानुसार शरण दे दी। पूर्वी अवध अब तक क्रान्तिका मुख्य केन्द्र बन चुका था। गोंडाके राजा देवीबख्श सिंह, बौंड़ी (जिला बहरायच) के राजा हरदत्त सिंह, तुलसीपुर की रानी और चरदाके राजा खुले रूपसे क्रान्तिकारियोंका नेतृत्व कर रहे थे। ऐसी दशा में बलरामपुरमें शरणागत अंग्रेज परिवारोंकी सुरक्षा संदिग्ध समझकर दिग्विजय सिंहने उन्हें अपने सैनिकोंकी देखरेखमें १२ जून १८५७ (सं० १९१४) को सकुशल गोरखपुर पहुँचा दिया। वहाँ से वे सब कलकत्ता चले गये।

स्वातंत्र्य संग्रामके नेताओंको जब दिग्विजय सिंहके इस कृत्यका पता लगा तो प्रतिशोधकी भावनासे उन्होंने शाहज़ादा बिरजिसक़दरसे एक फरमान निकलवा-कर बलरामपुर राज्यकी ज़ब्तीकी घोषणा करा दी। प्रान्तके अधिकांशपरसे अंग्रेजी शासन समाप्त हो चुका था। अतः दिग्विजय सिंह अपने परिवार तथा विश्वास-पात्र सैनिकों सहित बलरामपुर छोड़कर पटोहाँकोट चले गये और वहाँ आठ महीने रहे। इस बीच क्रांतिकारियोंने उसपर चार बार आक्रमण किया किन्तु क़ब्ज़ा न कर सके। निरन्तर होनेवाले इन युद्धोंसे उद्विग्न होकर उन्होंने अपने परिवारको नेपाल भेज देनेका निश्चय किया। इस सम्बन्धमें नैपालके प्रधान मंत्री राणा जंगबहादुरसे पत्र व्यवहार करके उन्होंने बुटवलमें निवास स्थानका प्रबंध भी कर लिया।

अंग्रेजोंके सौभाग्यसे भारतीयोंकी अनुभवहीनता, पारस्परिक द्वेष तथा राष्ट्रीय चेतनाके अभावके कारण क्रान्ति अधिक दिनों तक ठहर न सकी। सिख और गोरखा पल्टनोंकी सहायतासे अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष सर कालिन कैम्पबेल और उसकी गोरी पलटनने अवधकी क्रान्ति बुरी तरह कुचल दी। नवाब वाजिदअली-शाहकी बेगम साहिबा अपने पुत्र बिरजिसक़दर सहित पराजित हुईं। मीर मुहम्मदहसन और राजा देवीबख्श सिंह, अयोध्याके राजा मानसिंहके फूट जानेसे, फैजाबादकी ओरसे होनेवाले अंग्रेजी सेनाके आक्रमणको रोक न सके।

पश्चिमी उत्तर प्रदेशमें अपने पैर उखड़ते देखकर नानासाहब और बालाराव अवधकी ओर बढ़े। घाघरा पार करके वे गोंडा होते हुये बलरामपुर आये। यहाँ उन्हें दिग्विजय सिंहके पटोहाँ कोटमें रहनेका समाचार मिला। उसी दिन राप्ती पारकर उन्होंने पटोहाँकोटको घेर लिया। दिग्विजयसिंहने मराठोंकी प्रशिक्षित सेनाका मुकाबला करनेमें अपनेको असमर्थ पाया अतः उन्हें ३० हजार रुपया दंड देकर अपना पिंड छुड़ाया। क्रांतिकारी पटोहाँ कोटसे तुलसीपुर चले गये।

उधर अंग्रेजोंकी विजयिनी सेना लखनऊको क्रांतिकारियोंके शासनसे मुक्तकर गोंडाकी ओर बढ़ी। सर कालिन कैम्पबेल और सर होपग्रान्टकी सेनाएँ सम्मिलित रूपसे क्रान्तिकारियोंका पीछा करते हुये घाघरा उतर आईं। यह सुनकर तुलसीपुरमें एकत्रित क्रान्तिकारी नेता धीरे धीरे नैपालकी ओर बढ़ने लगे। बालाराव और नाना साहबकी सेनासे मेजर ब्रूस और सर होप ग्रान्ट द्वारा संचालित अंग्रेजी सेनाका जरवाके समीप घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेजोंको विजयके साथ ही प्रतिपक्षियोंकी २२ तोपें और बहुत सा लड़ाईका सामान लूटमें मिला। अवधकी पूर्वी सीमापर स्वतंत्रता संग्रामका यह अन्तिम एवं निर्णायक युद्ध था। इसके पश्चात् इस प्रदेशके विशिष्ट क्रान्ति संचालक हताश हो नैपालकी पहाड़ियोंमें चले गये।

शान्ति स्थापित होनेपर क्रान्तिके महान् आपत्तिकालमें अंग्रेजोंके प्रति किये गये सौहार्द पूर्ण व्यवहारके उपलक्षमें महाराज दिग्विजय सिंहको तुलसीपुर तथा बाँकीका इलाका उपहारमें दिया गया। १४ मई १८५६ (सं० १६१६) को उन्हें 'महाराज बहादुर' की उपाधिसे विभूषितकर अंग्रेजी सरकारने कृतज्ञताज्ञापन किया। २२ सित० १८५६ (सं० १६१६) को लार्ड कैनिंगने लखनऊमें अवधके तालुकेदारोंका एक दरबार किया। उसमें महाराज दिग्विजय सिंहको प्रथम स्थान दिया गया। १८६६ ई० (सं० १६२३) के आगरा दरबारमें उन्हें के० सी० यस० आई० की पदवी प्रदानकी गई और १८७७ई० (सं० १६३४) के दिल्ली दरबारमें १३ तोपोंकी सलामी देकर तत्कालीन राजसमाजमें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई।

अंग्रेजी शासनकी स्थापनाके पश्चात् वास्तवमें महाराज दिग्विजय सिंहके कर्मठ राजनीतिक जीवनका अंत हो गया। इनकी आयुके शेष वर्ष राज्यकी सुव्यवस्था, आमोद-प्रमोद, जनहितसाधना, शिकार, तीर्थयात्रा और काव्यचर्चामें व्यतीत हुये।

सं० १६१७ में राज्यके सेनाध्यक्ष और नायब जेनरल बेनीमाधव पाण्डेयकी मृत्यु हो गई। उनके स्थानपर लाला रामशंकर की नियुक्ति हुई। सं० १६२२ (१८६५ ई०)में वे पृथक् कर दिये गये। इसके पश्चात् महाराजके अनौरस पुत्र जंगबहादुर सिंह और उनके सहायक औतार सिंह ने आठ महीने तक किसी प्रकार काम चलाया। अंत में क्षमायाचना करनेपर जेनरल रामशंकर पुनः अपने पूर्व पदपर प्रतिष्ठित किये गये। इन्होंने जीवन पर्यन्त अपना कर्तव्य बड़ी तत्परता एवं स्वामिभक्तिके साथ पालन किया।

माघ कृष्ण १, सं० १६३७ को दिग्विजय सिंह शिकार के लिए बनकटवा

गये। वहाँ तीन महीने ठहर कर उन्होंने समीपवर्ती जंगलों में कई शेर मारे। इसी सिलसिले में चैत्र शुक्ला दशमी को जंगली लताओं में हौदे के फँस जाने से शेर के भय से भागते हुये हाथी की पीठ से गिर कर वे बुरी तरह घायल हो गये। ढलती हुई आयु में लगे भीषण आघात ने उनका शरीर जर्जर कर दिया। इस घटना के बाद महाराज दो वर्ष और जीवित रहे। सं० १९३८ में वे जलोदर से पीड़ित हुए। बलरामपुर और गोंडा के प्रसिद्ध डाक्टरों की चिकित्सा से कोई लाभ होता न देख कर वे लखनऊ गये। वहाँ भी कोई फ़ायदा न हुआ। अपना अंतिम समय निकट जानकर उन्होंने प्रयाग जाने की इच्छा प्रकट की। यहाँ भी कुछ दिनों तक उपचार चलता रहा, किन्तु स्थिति दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती गई। यहीं त्रिवेणी की लोकपावनी धारा में ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १९३९ को दिग्विजय सिंह ने परमगति प्राप्त की।[१]

---

१. रीवाँ निवासी संत कवि ने आश्रयदाता की मृत्यु पर दो छंद लिखे थे, वे नीचे दिये जाते हैं—

निद्धि[९] गुन[३] नन्द[९] चन्द[१] विक्रम के संवत में,
जेठ सुदी दसमी को सनिवार आइगो।
बलरामपुर के महीप दिग्विजै सिंह,
साहिबी समेत 'सन्त' प्रागराज आइगो॥
हेम हय हाथी दान दीन्हें द्विज लोगन को
हेरे न मिलत आपु बेनी में हेराइगो।
बिधि लोक गयो कैधौं सिव लोक गयो कैधौं,
विष्णुलोक जाइ ब्रह्मरूप में समाइगो॥

भूप दिग्विजै सिंह जाइके त्रिवेनी बीच,
पाँच तत्व पाँचो में मिलायो है विनोद मैं।
'संत' कहै आई धाइ भारती कलिन्दी लिए,
हंस और गरुड़ जान परम प्रमोद मैं॥
दौरी जन्हुकन्यका लै बैल को विसाल धुजा
फैलि फैलि फहरानी दिग चहुँ कोद मैं।
बीचिनि उलीचिनि ते छीनि सिवलोक गई,
गंगा गरबीली लै महीपति कौं गोद मैं॥

आश्रयदाता और कवि

अवध के साहित्य प्रेमी राजाओं में महाराज दिग्विजय सिंह का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी सेवा इन्हें अपने पूर्वजों से रिक्थ में मिली थी। इनके पितामह महाराज नवलसिंह और उनके दोनों पुत्र—राजा बहादुर सिंह तथा राजा अर्जुन सिंह बड़े ही काव्य मर्मज्ञ थे। उनके आश्रित कवियों में असनी के बन्दीजन शिवनाथ और फतूहाबाद (लखनऊ) के मदन गोपाल शुक्ल विशेष उल्लेखनीय हैं। शिवनाथ कवि महाराज नवल सिंह की मृत्यु के बाद भी बलरामपुर दरबार की सेवा करते रहे।[1] इधर खोज में इनकी दो कृतियाँ 'रयसा भैया बहादुर सिंह' और 'अर्जुन प्रकास' उपलब्ध हुई हैं। प्रथम ग्रन्थ की रचना सं० १८५३ में युद्ध के अनन्तर हुई थी और उस अवसर पर महाराज ने रचयिता को पुरस्कार रूप में पर्याप्त धन एवं भूमि देकर संतुष्ट किया था।[2]

---

१. शिवनाथ कवि ने अपना तथा आश्रयदाता का परिचय इन शब्दों में दिया है:—

"है ऐसो बलरामपुर, दाता ज्ञाता लोग।
पूरब दिसि बिजुलेस्वरी, दूरि करैं तन सोग॥
नदी राप्ती कोस भर, उत्तर दिसा सोहात।
देखे ते पातक कटै, पुन्य अधिक सरसात॥
सात कोस पटनेस्वरी, राजै दिसा इसान।
अवध पचीसो कोस है, दच्छिन को परमान॥
तवन सहर में भूप हैं, नवल सिंह जनवार।
तिनके द्वै सुत दानिया, कवि लोगन पर प्यार॥
भाषा कीन्ही जानिकर, अर्जुन सिंह के हेत।
बानी संस्कृत में रही, सुच्छ कथा सिर नेत॥
महापात्र सिवनाथ कवि, असनी बसै हमेस।
सभा सिंह को सुत सही, सेवक चरन महेस॥

२. जागा औ जागीर सब, दीन भूप को सोइ।
नाथ कवीस्वर कहत हैं, अचल राज यह होइ॥
संवत गुन[3] सर[5] वसु[8] ससी[1], भादवँ चौथि विसेषि।
सुकुल पच्छ सुकवार के, फते लराई लेखि॥

—"रायसा महाराज कुमार बहादुरसिंह" की पुष्पिका से

इस ग्रन्थ में नाजिम मुहम्मद अलीखाँ और बलरामपुर के राजकुमार बहादुर सिंह के बीच होने वाले उस प्रसिद्ध युद्ध का विशद वर्णन किया गया है जिसमें बहादुर सिंह ने शत्रु को बुरी तरह हराकर उसकी तोपें छीन ली थीं।

दिग्विजय सिंह ने बलरामपुर दरबार की परम्परागत काव्यचर्चा को निभाया ही नहीं वरन् व्यक्तिगत रूप से सक्रिय सहयोग देकर उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचाया। उनकी गुणग्राहकता से आकृष्ट होकर सुदूर प्रदेशों से कवि आने लगे। कुछ ही दिनों में उनका दरबार अनेक प्रतिभा सम्पन्न कविरत्नों से अलंकृत हो गया। उनमें प्रमुख थे—गदाधर शर्मा, संत कवि (रीवाँ—मध्य प्रदेश), रघुनाथ कवि, ललित कवि, रसदेव, रामदास, रामस्वरूप और गोकुल प्रसाद 'बृज'। इनके अतिरिक्त राज्य के पुराने कागजात में ऐसे अनेक कवियों के छंद सुरक्षित हैं जो समय समय पर महाराज के द्वारा पुरस्कृत होते रहे हैं। ये वाग्वैदग्ध्य पूर्ण रचनाओं से उन्हें सन्तुष्ट कर विदाई लेकर चले जाते थे। इनका वृत्त अब जन-श्रुतियों में ही शेष रह गया है। इस वर्ग के कवियों की प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए एक स्थान पर दिग्विजय सिंह ने लिखा है:—

हारे कवि कोविद सबै छोड़ि लाज के चार।
खड़े रहत प्रतिहार सों धन दातन के द्वार॥
धन दातन के द्वार करैं पर्वत सो राई।
राई मेरु समान बरनि तेहि बात बड़ाई॥
बात बड़ाई त्यागि तुरँग त्रिस्ना असवारे।
ढीले लोभ लगाम जगत मैं फिरत न हारे॥

ऐसे स्वभाव के कवियों को वे साधारण रीति से पुरस्कृत कर चलता कर देते थे। किन्तु विदग्ध-कवीश्वरों के लिए तो वे कल्पवृक्ष ही थे। उनका सिद्धान्त था—

गुन सोई सुनि रीझिए, रीझि सोइ कछु देय।
देब सोई जो पाइकै, स्वामि न दूजो सेय॥

इनमें से कुछ कवियों के सम्बन्ध की किंवदन्तियों का उल्लेख आगे किया जाता है।

बलरामपुर दरबारके विख्यात कवि रीवाँ निवासी संत बंदीजन के विषय में जनश्रुति है कि महाराज दिग्विजय सिंह की गुण ग्राहकता की ख्याति सुनकर जब वे रीवाँ से पहली बार बलरामपुर आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज शिकारके सम्बन्धमें नैपाल पर्वतश्रेणी के निकटस्थ जंगलों में डेरा डाले हुये हैं। राजकर्मचारियों से पता लगाकर वे सीधे बनकटवा गये, जहाँ दिग्विजयसिंह का मुख्य आखेट शिविर था। संयोगवश संत कवि को वहाँ भी महाराज के दर्शन न हुये। नौकरों ने बताया कि थोड़ी दूरपर शेर का शिकार करनेके लिये उन्होंने मचान

बँधवाया है और उस समय वहीं गये हैं। संत कविने उनके आनेकी प्रतीक्षा नहीं की। तत्काल ही एक चौकीदारको साथ ले निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये। उस समय हँकवा आरंभ हो गया था। महाराज मचानपर बैठ चुके थे। सिपाहियोंके मना करनेपर भी कविराज उनके सम्मुख जा उपस्थित हुये और उन्हें संबोधित करते हुए यह कवित्त पढ़ा—

उतरि दुनी गिरि ते हठ सठ लाग्यो साथ,
हाँक्यौ है बिसासी मेरी गैयन जनाली कौं।
टारे टर्यौ आजु लौं न भूपन अहेरिन के,
जिनके अखेट चोट आयो नहीं खाली कौं॥
बिचरत बन देस आयौं चलि आपु ओर,
आपऊ मरम ताकि कीजिए उताली कौं।
दारिद दराज मृगराज के ललाट बीच,
दागौ दिग्विजै सिंह दानिका दुनाली कौं॥

कवित्त समाप्त होने पर महाराजने संत कविको पासके एक अन्य मचानपर बैठा दिया। थोड़ी देरके बाद गरजते हुये शेरोंका गोल सामने आता हुआ दिखाई पड़ा। दिग्विजय सिंहकी गोलियोंने उनमेंसे एककी जीवन लीला किस प्रकार समाप्तकी, इसका वर्णन प्रत्यक्षदर्शी संत कविके ही शब्दोंमें सुनिए—

गैया छोर नाहर की गरजति आवै गोल,
तरजति भीर है हँकैयन जनाली की।
घोर दृग घूरत और तूरत जम्हात अंग,
टपकत लार भूमि रसना कराली की॥
देख्यौ तिन्हैं आवत अहेरी दिग्विजै सिंह,
कीन्ही 'संत' अद्भुत लाघव उताली की।
चार घरी सेरन के सिरन निसानन मैं,
लागीं चोट तड़ तड़ तड़पै दुनाली की॥

इस सामयिक एवं ओजपूर्ण रचनाको सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुये। शिकारसे लौटकर उन्होंने संत कविको यथोचित पुरस्कार दिया और उन्हें स्थायी रूपमें अपना दरबारी कवि बना लिया। इनका 'देवीजीका नखशिख' नामक ग्रंथ यहीं लिखा गया था।

दिग्विजयसिंहका यह काव्यप्रेम दूर दूर तक विख्यात हो गया। गुजरातके प्रसिद्ध कवि दलपतराय डाह्याभाई नागर—(गुजराती) के पास उन्होंने राजकवि गोकुल कृत 'सुतोपदेश' ग्रंथ भेजा। इससे सम्मानित अनुभव करके

दलपतराय ने अपनी 'श्रवणाख्यान' नामक कृति इन्हें समर्पित की। उक्त ग्रंथमें इसकी चर्चा करते हुये उन्होंने लिखा है—

महाराज दिग्विजय जू, मो प्रति पठये ग्रंथ।
तिनमें पेख्या पितर का, प्रत्युपकारक पंथ॥
पिता भक्त यहि पुहुमिपर, परमधर्म धुरधीर।
सुन्यौ दिग्विजय सिंह नृप, विश्वविदित वर बीर॥
यों मैं पठयों यह ग्रंथ सुभ, रचि निजमति अनुमान मैं।
महाराज दिग्विजै सिंह के, शारद संग्रह स्थान मैं॥

दलपतराय सौराष्ट्र (गुजरात) के मध्यमें स्थित झाला जिलेके बढवान (वर्द्धमान) नामक नगरके निवासी थे—

सोरठ गुर्जर संधि में, जिल झाला राजान।
जन्मभूमि मेरी जहाँ, बसत शहर बढ़वान॥

दिग्विजय सिंहका साहित्य प्रेम मनोविनोदका साधन मात्र न था। उनका राजनीतिक जीवन भी इससे सराबोर था। उनके राज्यका सारा काम हिन्दीमें होता था। प्रार्थना पत्र तो प्रायः पद्यबद्ध हिन्दीमें ही लिये जाते थे और उनपर महाराजका निर्णय भी छंदोंमें होता था। याचिकाओंकी एक बही राज्यके पुराने कागजोंमें इन पंक्तियोंके लेखकको प्राप्त हुई है जिसकी आरंभिक पंक्तियोंमें लिखा है—

सिद्धि सदन गनपति बदन, करिवर रदन प्रकास।
विघन सघन बन दलमलै, गति बरदायक दास॥
अरजी गरजी लोग के, लखि कै श्रीमहराज।
छंदन में दसखत किए, हेतु जथारथ काज॥

इससे कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) अर्जी मुंशी छबिलाल की

पाँच पेड़ फल खान को, मिलो हुकुम के साथ।
सो रोकत यह साल मों, कारन कौन सो नाथ॥
कहत सिपाही बाग मों, पेड़ तरे ना जाव।
हुकुम लेव सरकार को, तब याको फल खाव॥

दसखत महाराज बहादुर कै

बाबू अमृत लाल, रखवारे को डाँटिये।
अमल करै छबिलाल, अउर हमेसा खाय फल॥

(२) अर्जी बंधूराय भाँट

भूप दिग्विजै सिंह के, सरन रहौं सिरनाय।
द्विरद दीह अरि रंकता, तहौं सतावत आय॥
कल्पवृक्ष कलिकाल में, नृप से और न कोय।
अन्नदान रुचिराज में, जैसी मरजी होय॥
करहु कृपा महराज, दूरि होय दुख दीन को।
दीजै हुकुम प्रदाज, विद्या अरु भोजन लहौं॥
पाँच मनुज को खर्च है, और न दूजो आस।
चित चिंता में भ्रमित नित, बुधि नहिं करत प्रकास॥
यक सीधा यक मुद्रिका, हुकुम आपु करि दीन।
कछुक दिवस से बंद है, तासों अरजी कीन॥
नृप अनुसासन पाइकै, लिखौं पढ़ौं मन लाय।
कवि गोकुल परसाद के, सिष्य जू बंधूराय॥

दसखत महाराज बहादुर कै

पोढ़े होइ पढ़ते रहौ, मन में धीरज राखि।
याही में सब बात है, बुधजन की दिढ़ साखि॥

(३) अर्जी गुमनामा

एक समै अनुराग चले बनिता सब बाग को कीन तयारी।
चोरि कियौ नहिं आम लियौ नहकै पट खोलिकै कीन उघारी॥
इज्जति लेत अनीति करैं कर जोरि कहैं सब ग्राम कुमारी।
जौ गुपतार किहौ रखवार तौ धन्य अहै दरबार तुम्हारी॥

दसखत महराज बहादुर कै

है न समै बनितान के जोग जो आम के बागन जाइकै डोलैं।
हैं परकी तिय यार के हेत सनेह ते लाज बिना पट खोलैं॥
इज्जति लाज सों हैं अति हीन मलीन सदा अति बातहिं बोलैं।
हे कुटना! जिहि अर्जि लिखी दरबार को काह जु याहि को तोलैं॥

(४) अर्जी गनेस कवि डौंड़ियाखेर (उन्नाव) कै ग्रंथ औ बिदाई पाइबे के हेत

सुभ चित्रकलाधर अष्टजाम। रत्नाकर नीति जु अति ललाम।
प्रति तीन मिलै मोको नरेस। जस बिमल प्रकासौं देस देस॥

दसखत महाराज बहादुर कै

सत्र ग्रंथन जुत मुद्रा जु तीनि। जेहि जाचक लहि मति होय पीन।
कैलासनाथ सो देहु याहि। मुद सहित आपने घरहि जाहि॥

इन्हीं आवेदन पत्रों के साथ एक पद्यबद्ध प्रार्थना पत्र लछिराम का भी मिला है। ये अमोढ़ा (जिला बस्ती) के निवासी ब्रह्म भट्ट थे। अयोध्यानरेश मानसिंह 'द्विजदेव' बस्ती के राजा शीतला बख्श सिंह, दरभंगा के महाराज'''''' तथा गिद्धौर के राजा''''''से इन्हें काफी प्रतिष्ठा एवं धन मिला था। उनके नाम पर इन्होंने अनेक ग्रंथोंकी रचना की थी। इनकी गणना अपने समय के सिद्धहस्त कवियों में होती थी। 'बही' में उपलब्ध सामग्री से विदित होता है कि बलरामपुर दरबार में इनके किसी अशिष्ट व्यवहार से महाराज दिग्विजय सिंह रुष्ट हो गये थे। ऐसी दशा में समुचित विदाई की कौन कहे, महाराज ने इनसे मिलना भी अस्वीकार कर दिया था—

(५) अर्जी लछिराम की

दीजै वर पाखर सहित पील मतंग नरेस।
पटभूषन जुत पाइकै नाम होइ सब देस॥

दसखत महाराज बहादुर कै

प्रकृति पीछे एक मुद्रा पाइकै घर जाहु।
देस आटन करहु आछी भाँति जामे लाहु॥
पंडितन सो काव्य की विधि जानि लीजै सोधि।
वृथा बकिबो जो निरर्थक ताहि को अवरोधि॥
है जु विद्या को विनय भूषन महा सुभ वेस।
ताहि मन वच करम ते धारन करौ अकलेस॥

फेरि दर्सन के अर्थ विनती लछिराम की

अब सुनि श्री महराज, अरज बेगि लछिराम की।
करिय बिदा कर साज, अवध जाहुँ आनंद जुत॥
गुरु नृपतिन की रीत छमाकरत आरत बचन।
गनत न मन अनरीति, पालत फिरि आनंद करि॥

तापै महाराज को दसखत

अब नहिं दरसन जोग, अवध जाइ सीखौ विनय।
तजि कठोरता रोग, फिर आवहु तब मिलहिंगे॥

(६) अर्जी रघुनाथ पंडित तेवारी कै हेत जड़ावरि

भानु रूप भूपति को भाव।
पद दीजै अब सीत सताव ॥

दसखत महाराज बहादुर कै

ब्राह्मन अगिनि बंस कहवावैं। ताके ढिग हिम कबहुँ न आवै।
पर जाचन ते मिलै जड़ावर। सोभा हेतु वस्त्र सुंदर वर ॥
सुकुल गिरिवर नाथ ते पैहौ जड़ावरि जाहि।
जाइ वापै जाँचिये अब देर कीजै नाहिं ॥

काव्य रचना

महाराज दिग्विजय सिंह कवियों के आश्रयदाता होने के साथ स्वयं भी कविता करते थे। उनकी लिखी हुई कुछ फुटकर रचनायें 'नीति रत्नाकर' में गोकुल कवि ने संकलित की हैं। उनका पूरा नाम 'दिग्विजय सिंह' छन्दों में सरलता से नहीं बैठता था अतः वे अपनी कृतियों में 'भूपविजै' अथवा 'विजै-भूप' छाप रखते थे—

नाम दिग्विजै सिंह प्रगट, विजै भूप धरि नाम।
पद कोमलता कवित हित, आरोपित अभिराम ॥

जन श्रुतियों में उनके आशुकवित्व और प्रत्युत्पन्नमतित्व के भी प्रमाण सुरक्षित हैं। कहते हैं कि एक बार महाराज राजसी वेष-भूषा में अंगरक्षकों के साथ घोड़े पर किसी उत्सव में सम्मिलित होने जा रहे थे। रास्ते में किसी साधु ने उन्हें सुनाकर कहा—

'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'

महाराज ने तत्काल ही इसके उत्तर में निम्नांकित अर्द्धाली बनाकर सुनाई—

"जो प्रभुता जानत परछाहीं। प्रभुता पाइ ताहि मद नाहीं ॥

दिग्विजय सिंह की कविताओं का मुख्य विषय नीति है। एक शासक के रूप में उन्होंने इस प्रकार की रचनाओं में अपनी अनुभूतियाँ बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त की हैं। इससे उनका तत्कालीन सामन्तीय जीवन का गहरा व्यावहारिक ज्ञान अभिव्यक्त होता है। इनकी काव्य-शैली की सबसे बड़ी विशेषता है अवध में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का छंदों में सटीक प्रयोग। इसी से इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा की प्रांजलता एवं प्रवाहात्मकता का

अनुमान लगाया जा सकता है। जीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध इनकी कुछ सूक्तियाँ बहुत ही हृदयग्राही हैं। ऐसी रचनाओं में यद्यपि काव्यात्मकता की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रहती है फिर भी रहीम, गिरिधर और वृन्द की तरह ये अनुभव-सिक्त एवं ज्ञान-वर्द्धक हैं। इस सन्दर्भ के अन्त में दिग्विजय सिंह की रचनाओं का एक संक्षिप्त संकलन दे दिया गया है, जिससे पाठक स्वयं उनकी प्रतिभा का मूल्यांकन कर सकें।

सभासद एवं कृपापात्र

महाराज दिग्विजय सिंह के सभासदों एवं परिचितों का विवरण गदाधर के 'दिग्विजयचंपू', मदनगोपाल शुक्ल के 'अर्जुन विलास' और गोकुल के 'दिग्विजय प्रकास' में मिलता है। इनके अतिरिक्त महाराज भगवती प्रसाद सिंह के आत्म सचिव स्व० ठा० बलदेवसिंह बी० ए० द्वारा लिखित महाराज दिग्विजय सिंह के जीवन वृत्त से भी इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सुविधा के लिये ये तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं—

पंडित एवं कवि वर्ग—

क—पंडित विश्राम सरवरिया (महाराज के मंत्र गुरु) २—पं० राजेश्वरी दत्त तांत्रिक ३—पं० रामानंद (पं० गदाधर शर्मा, गोकुलके काव्यगुरु,के पुत्र) ४—पं० लक्ष्मीनारायण पौराणिक।

ख—कवि १. गदाधर शर्मा २. मदनगोपाल शुक्ल ३. रामदास ४. गोकुल-प्रसाद 'बृज' ५. संतन कवि ६. रामकवि ५. लालूराम पांडे ८. रामस्वरूप ९. पं० देवी प्रसाद (परमहंस दीनदयालगिरि गोसाईके शिष्य और गोकुलके गुरुभाई)

प्रतिष्ठित नागरिक एवं मित्र वर्ग—

१. जेनरल मातिवर सिंह (प्रधान मंत्री नैपाल) २. राणा जंगबहादुर (प्रधान मंत्री नैपाल) ३. पांडे रामदत्तराम (गोंडा) ४. राजा उदित नारायण मल्ल (मझौली) ५. राजा हुब्बदार सिंह (खपराडीह) ६. दीपसिंह (निजामाबाद) ७. सर विलियम स्लीमन (रेजीडेन्ट—अवध) ८. सर चार्ल्स विंगफील्ड (चीफ़ कमिश्नर बहरायच, अवध) ९. छाँगुर मिश्र (बलरामपुर) १०. गुरु बख्श गोसाईं (बलरामपुर)

सभासद एवं मुख्य राज्य कर्मचारी—

१. नलसिंह (नायब) २. बेनी माधव पांडे (नायब) ३. जंगबहादुर सिंह तथा औतार सिंह गौरहा (नायब) ४. लाला रामशंकर (नायब) ५. किसुन-

दत्त सिंह (सेनाध्यक्ष) ६. केशरीदत्त सिंह गौरहा ७. जगत पाल सिंह बनवार ८. सुरजू सिंह बिसेन ६. दौलतराम (दीवान) १०. मुंशी दयाशंकर (वकील) ११. जगतमणि त्रिपाठी (मुसाहेब) १२. सिवलाल पांडे (मुसाहेब) १३. मुंशी माधव दयाल (मीरमुंशी) १४. शिवचरन लाल १५. महादेव सिंह (आत्म सचिव) १६. मिर्जा अलीहसन (अनुवादक) १७. मुंशी जवाहिर सिंह (मुसाहेब) १८. देवी प्रसाद (बख्शी) १६. बिजुलेश्वर' पांडे २०. मुंशी प्रियालाल (प्रेस मैनेजर) २१. रामलाल चक्रवर्ती (चिकित्सक) २२. विश्वनाथ (प्रधानाध्यापक) २३. सैयद आक़ाहसन रिज़वी (मुवर्रिख़ तथा बख्शीगीरी अफसर) २४. बा० दुर्गाप्रसाद (इंजीनियर) २५. सैयद मेहदी हसन (वीणा शिक्षक) २६. मुंशी अब्दुल हकीम (शतरंज शिक्षक) २७. जगतसिंह (अखबार नवीस) २८. मुंशी दयाशंकर काश्मीरी (अंग्रेजी कानून के विशेषज्ञ) २६. बहादुर लाल (राजदूत) ३०. दौलत राय (दीवान) ३१. मुंशी साहेबराय (अरबी-फारसी लेखक) ३२. मेवालाल (मुसाहेब) ३३. दूलम अहिर (सेवक)

महाराज दिग्विजय सिंह की स्फुट रचनाओं का संग्रह

राजा—देस दल कंज सो विकासै कर मंजु फेरि,
चोर बटपार जोर जामिनि हीं सो हरै।
भ्रमर सों भ्रम दुख दीन के मिदारै देखि,
द्वेषी बदकार को अलोक कोक सो भरै।
किरिनि सों ठौर ठौर दूत को पसार कीजै,
भनै 'विजय भूप' मान दान सीत सों भरै।
राजा सो अजीत जग अविचल राजै राज,
भानु कैसी रीति सदा राजनीति जो करै॥

राजनीति—पतित बिना क्यहि तारि हरि, बिनु हरि पतित को तार।
रीझि बिना गुन को गहै, बिनु गुन को रिझवार॥
बिनु गुन को रिझवार, बिना विद्या के बूझै।
बिना बूझि बुधि मन्द, बाल विद्या नहिं सूझै॥
नहिं सूझै खल खीझि, भनै यह 'विजय महीपति'।
प्रजा छीन नृप बिना, प्रजा बिन दीन प्रजापति॥

मंत्रिनसों बूझि मंत्र आपहूँ विचारै मंजु
तामें नेक जानि हानि लाभ हेत राखै सो।
करै न रहम न्याय समै भनै 'विजय भूप'
दान किरवान बलवान सत्य भाखै सो॥
कोटि करि कान सुनिबे को फिर आदि दीन
देस दल मानै काढ़ै बदकार आँखैं सो।
हाथी हथियार घोड़े भूषन औ भूमि जोड़े
राखै भूप लीन्हो रुचि लाखै अभिलाखै सो॥

आप सम जानै सद सौंपै सो सयानो काम,
सदा सावधान परतीति ताहि राखै जो।
भाषा देस देसन के बूझिबे की राखै बूझि,
भूषन बसन नयौ नित अभिलाखै जो॥
फिरि आवै एक बार बरस समै देश निज,
भनै 'विजय भूप' रीझि देइ मौज लाखै जो।
जोरि के समाज साज बैठे देखै राजकाज,
लच्छन ये स्वच्छ कवि राजन के भाखै जो॥

सभा समुद्र समान, गुन ऐगुन पय पानि है।
भूप हंस अनुमान, खीझ रीझ बद नेक लखि॥
राजनीति औषध अमल, दान मान जल धोइ।
दृग अंजन रंजन करै, तौ मद अंध न होइ॥

राजनीति राजन को दिन प्रति 'विजयभूप'
चारि घरी राति रहे इतनो बिचारिबो।
छोटे छोटे फूलन को भीने सो फौवार करै,
पातरे जो पौधा पानी पोषि करि पारिबो॥
फलै जो अधिक फल चुनि गुनि लीजै ताहि,
घने दरखत एक ठौर ते उपारिबो।
नै नै परै पायन ते टेक दै दै ऊँचो करै,
ऊँचो बढ़ि गए सो जरूर काटि डारिबो॥

चाकर— चाकर चारि प्रकार के, करि तन मन सों एक।
एक दरमहा बढ़न हित, काज देखाय अनेक॥
काज देखाय अनेक, एक जस लाभ करैं तस।
'विजय भूप' भनि नीति, रीति यह एक करै अस॥
करै एक कछु नहीं काहली लेन में आकर।
उत्तम मध्यम अधम चौथ अधमाधम चाकर॥

उत्तम मंत्री—देस और विदेस ही की खबरि को राखै खोज,
आमद खरच रोज देखै भोर साम को।
भनै 'विजय भूप' राजी राखे रहै देस दल,
डिगै न डिगाए नेकु पाये कोटि काम को॥

न्याय समै एक दीठि गनी औ गरीब देखि,
पीठि दै अनीति ईठि राखै नेक नाम को।
मंत्री मतिवंत आदि अंतको बिचारै मंत्र,
आपनो बिगारि जो सँवारै स्वामि काम को॥

मध्यम मंत्री—आदि अंत हेत हानि लाभ को बिचारि लेत,
देस काल देखि मंजु मंत्र ठहरावै जो।
बात न बिचल भाखै अविचल राखै चित,
लखि बद नीति भाखै नीति बल भावै जो॥
निरालसी जसी बुद्धि उर मैं उदार बसी,
भनै 'विजय भूप' देस दल को बनावै जो।
सदा सावधान स्वामि काम की बनाय पाछे,
समै पाय पाछे कछु आपनो बनावै जो॥

अधम मंत्री—कौड़ी पै कनौबे द्वार दौबे फिरैं कूकुर सों,
खोवैं जो पचास आस पाये पाँच दाम जो।
जासों लघु लाभ देखैं ताहि की न पूछैं बात,
पाये बिन काहू के न करै भलो काम जो॥
भनै 'विजय भूप' नीति रीति की न राखैं खयाति,
लीबो अनरूप परजा को धनधाम जो।
स्वामी को बिगारि काम आपनो सँवारि धाम,
वोई बदकार मंत्री होत बदनाम जो॥

अधमाधम मंत्री—
आमद खर्च न खोजै कभौं नट औ विट कौतुकी लोग पियारै।
पाहन रेख सो बैर निबाहनो नीर के रेख सी नीति बिचारै॥
'भूप विजय' भनि मूत मिठाई सी कौल संचाई सों मंत्र बगारै।
स्वामि को धाम बिगारि सबै फिरि आपनो काम तमाम बिगारै॥

सेनापति—निरालसी बसी बुद्धि उर मैं उदार ऐसी,
जंग मैं सयान बाहु बीर मै बखान है।
परधन परदार केहूँ न बिचार करै,
भनै 'विजय भूप' शस्त्र विद्या में विधान है॥

कादरै निरादरै जो आदरै सिपाह स्वच्छ,
सेना के सँवारिबे में दच्छता सयान है।
गनी औ गरीब देखे चाव करै चमूपति,
दान किरवान सों न छाँड़ै मयदान है॥

वकील—मामिला की चोज हेरि लेत गहि गाढ़े ऐसे,
संपति ज्यौं गहि राखै बुद्धि जो बखील की।
भनै 'विजय भूप' अंग इंगित सों जानि लेत,
बातपर ही की बोलै बानी सुभ सील की॥
देस परदेस ही की खबरि की राखै खोज,
आपनो न भेद भाखै काहू सो न ढील की।
राखत रुआब बड़ो समुझै सिताब बात,
हाजिर जवाब देवै अकिल वकील की॥

कवि— अनुभव बुद्धि नवीन जुक्ति धरि, उत्तम कवि सो होय।
पर आखर को त्यागि अर्थ गहि, कवि मध्यम कहि सोय॥
पद धरि वहै अर्थ नहिं दूजो, कहौ अधम कवि भाव।
पर कवित्त में नाम धरै निज, अधमाधम कवि गाव॥

कोविद— प्रतिभा मति वितपत्ति परम, शास्त्र सकल अभ्यास।
अर्थ विचारै सत असत, कोविद बुद्धि प्रकास॥

उत्तम पंच—बार बार करिबो विचार भनै 'विजयभूप'
बूझि अनबूझिबे की सीमा सावधान सों।
हंस अवतंस मति नीर छीर को विवेक,
नेक बद जानि लेत बुद्धि अनुमान सों॥
न्याय समै राजा रंक करै सनमान सम,
भाषत निदान धर्म बेद के बिधान सों।
बात पच्छपात की न रंच प्रतिपालै जोई,
सोई पंच पाँच परमेश्वर समान सों॥

मध्यम पंच—चाव चापलूसी चोज चुपरी चलावै बात,
मुख देखि कहै रहै दोषी देखि राजी सों।
आदरै गनी को औ निरादरै गरीब हूँ को,
बाघ औ दिखाय साँप लिखै हारि बाजी सों।

भनै 'विजय भूप' करै वादी प्रति पच्छपात,
देखि दबि जात दरबारी कामकाजी सों।
कौड़ी पै कनौड़े न्याय छोड़ैं भाखैं भोंड़े भाय,
रंच परपंच किये पंच होयँ पाजी सों।

लोकनीति—गुनी लोग हैं बड़े, खड़े पै धनी द्वार पर।
धनी न कहिये ताहि, नाहिं कहि लखो दीन नर ॥
नाहिं नीक प्रिय बहै, कहै जग नहैं नारि मुख।
नारि सलोनी सोय, स्वामि को सेय परै दुःख ॥
दुःख ह्वै सुखद समान है, जो पै थोरे दिन रहै।
पहिचान रूप हित अहित को, 'विजय भूप' कोविद कहै ॥
पीजै विष आदर निरादर की अमी त्यागि,
करिबे को आजु तौन काल्हि मत कीजिये।
कीजिए तौ पहिले ही हानि लाभ सोच करि,
करि पछिताइ पाछे कूर मानि लीजिये ॥
लीजिए न साथ दास उत्तर जो देनहारो,
भनै 'विजय भूप' दान दारिदी को दीजिये।
दीजिए न अंत उर अंतर की बात काहू,
गुर कीजै जानि पानी छानि तब पीजिये ॥

थल मानस मै सतसंगति बीज जमाइयो दै जलरीति महान की।
सुभ साख बढ़ाइयो धर्मन्ह की छिति छाँह बराबरि न्याय निदान की ॥
नवनीति को पात सभै सो करै परसून प्रकास विवेक विधान की।
भनि 'भूप विजय' फल नेक लहै परवृद्धि सदा सुख बुद्धि लतान की ॥

बे बिचारी आलसी न कीजिये रसोइँदार,
दारिदी न पाँति मै परोसै पनवारे को।
भनै 'विजय भूय' हेम हरम खजाने पास,
राखिये न दास जो रहत डर डारे को ॥
देसकाल चाल को सिखाए करै स्वाल ज्वाब,
ऐसे न वकील जावै मामिले किनारे को।
जीते हँसी हारे लाज ताहि सों बचावै आप,
मुलकी न काम दे अँकोर लेन वारे को ॥

चिंता के बढ़त चित घटै बल बुद्धि काम,
काम जो बढ़त उपहास जग ठानि है।
क्रोध के बढ़त ज्ञान बोध को न रहै सोध,
लोभ के बढ़त जात मान ग्रानग्लानि है ॥
भनै 'विजय भूप' पाप बढ़े बेस बंस नासै,
बाढ़त अनीति प्रजा नसि नृप पानि है।
दया धर्म दान कर्म चारि बढ़े चारि फल,
रारि रिपु रिनि रोग बाढ़े बड़ी हानि है ॥
ऊँचे आसमान के उड़न हारे जे विहंग,
बाझि जात जाल में समेत निज गोत जो।
गहन गंभीर मैं मतंग माते बाँधे जात,
मारे जात मीन पानी पारावार सोत जो ॥
भनै 'विजय भूप' राज समै बन गए राम,
सीय को कलंक लागो महिमा उदोत जो।
हानि लाभ नेक बद कौन के अधीन जग,
होन अन होनहार होनहार होत जो ॥

होनी जैसी जाहि की, तैसी मति है जात।
है कराल गति काल की, को जानै यह बात॥
को जानै यह बात, लाभ अरु हानि अजस जस।
'विजय भूप' भनि दोष और मति देइ रोष बस॥
मति देइ रोष बस दान तोष धरि बिच्चरै छोनी।
अनहोनी नहि होइ होइ जो होबै होनी॥

वह नाहि संपति जो सूम ही के लागै हाथ,
वह नाहिं मीत समै परे मुख मोरे ते।
भनै 'विजय भूप' न्याय बिना राज रहै नाहिं,
वह नाहीं दया बिना दीन दुख छोरे ते॥
वह नाहिं बुध विद्या पढ़त मैं करै तोष,
वह नाहिं संत बिना लोभ ताग तोरे ते।
कादर न होय सूर बाँधे हथियार भूरि,
कूर कब होय कवि चारि तुक जोरे ते॥

गुर से कपट त्याग संत सँग चोरी त्याग,
बड़े सँग बैर त्याग स्वाद त्याग रोग मैं।
पंच त्यागै पच्छ परपंच परबीन त्यागै,
मान त्यागै मंगन औ प्रान प्री बियोग मैं ॥
भनै 'विजय भूप' पर स्वारथ में सत्य त्याग,
आरत में कर्म सुभ लोभ त्याग भोग मैं।
त्यागिये कुसंग लाभ छोह छाया बैरी संग,
चोर संग दाया माया मोह त्याग जोग मैं ॥
साधु मन लोभ व्याधि कवि हठताई व्याधि,
मित्र मन छोभ व्याधि बैर व्याधि भाई को।
भोगिहिं अरुचि व्याधि रोगिहिं सुरुचि व्याधि,
राजहिं अनीति व्याधि दीह दुखदाई को ॥
भनै 'विजय भूप' मंजु मंत्री को अँकोर व्याधि,
सेवक के व्याधि स्वामि सेवा अरसाई को।
दान कृपिनाई मैदान कदराई व्याधि,
सकल उपाधि व्याधि व्याह बिरधाई को ॥
जब लाख दिये कछु लेखे नहीं अब लील लिये किन सोचिए माकुर।
अब प्रीति पुरातम तोरिए ना मन मोरिए ना मति हूजे न आतुर ॥
भनि 'भूप विजय' इती बातन में न बिगार करैं जग में चित चातुर।
सब आपने हाथ है आपनपौ तजै पाँचोई मीत पचासोई ठाकुर ॥
आगि मैं जरत कल कांति कलधौत पावै,
सूर रन लड़े लहै जीति जस मूल है।
घिसे मनि सान दुति दीह को प्रकास करै,
हीरा घन चोट सहे कीमति अतूल है ॥
भनै 'विजयभूप' देखौ रूख पतझार होत,
फेरि फूलै फरै उनै परते समूल है।
सिर को कटाइ फूल फूलत हजार दल,
बिना सहे दुख सुख सबै प्रतिकूल है ॥
आप गुर पंडित गुनी, दिज हरिजन हित नात।
सनोमान को को कहै, एक न पूँछै बात ॥
एक न पूँछै बात, बराबरि कौन हमारे।
सूझि परै नहिं बूझि, रहत हैं ज्यों मतवारे ॥

मतवारे सो होहिं एक आये एक पाए।
अंध बधिर मति मंद होत मानस मद आए॥

राजा हरिचंद परहेत बिके डोम घर,
सहे दुख फेरि लहे गति हरि धाम को।
दान दिए बलि बाँधे बामन जू नापे पीठि,
दुर्लभ दरस फेरि पाए द्वार राम को॥
भनै 'विजय भूप' अनुरूप कै विलोको लोक,
करै जो निकाई तौ भलाई परिनाम को।
नेकी किए जो पै दुख सहै रहै थोरे दिन,
रहि जैहै सदै जग नेकी नेक नाम को॥

समै साँकरी जाहि सिर, परै आय दुख भीर।
'भूप विजय' भनि भाव यह, सो जानै पर पीर॥
गुन सोई सुनि रीझिए, रीझि सोई कछु देय।
देव सोई जो पाइकै, स्वामि न दूजो सेय।
बैरीगन मंगन निरखि, करि विनोद सुभ सोभ॥
तब तन मन धन देन को, कीजै लोभ न छोभ॥
सबै दिवस बसि नींद के, रैन भूख दिन मानि।
कहाँ कुसल त्यहि देस की, जो नरेस यहि बानि॥
गुनह गुनाही लोग जो, गुनी गूढ़ गुन भाखि।
एक निकारै आँखि सो, एक लाख दै राखि॥
सुख संपति परबीन की, ता दिन परिहै जानि॥
जा दिन कायर कूर की, बात सुनै दुख दानि॥
बक्ता बकि कै का करै, श्रोता कान न देइ।
नेह नपुंसक नारि को, बिरल होत तेहि सेइ॥
है नेरे पै दूरि बहु, जहँ दुराव मन कीन।
बसै दूरि सो ढिग अहै, जा मन मन मैं लीन॥

गोपीविरह—

हरि हार हूँ को न बिहार मैं अंतर चीठिहू को लिखिबो उचटोई।
सँग भोग बिलास बिहार किए सुधि जोग सिखावन आये भलोई॥
भनि 'भूप विजय' हित हेत लिये चित चेत किये इतनो दिन खोई।
सखि साँझ भुलान जो भोरहि आवत ताहि भुलान कहै नहिं कोई॥

कोमल गुलाब दल सेज सोए दूखे देह,
कंबल कमण्डलै दै तिन्हैं कियो चाहौ लोप।
घने घनसार तन घिसे न घटत ताप
ताहि को तपायो चहौ पाँचऊ अगिनि चोप॥
भनै 'विजय भूप' भोग कुबरी कुरूप संग,
ब्रजबाला जोग जागैं सखा स्याम के अनोप।
भोख मति दीजै रोष काह करि कीजै ऊधौ,
आपनो जो माल खोटो कौन परखैयै दोष॥



आचार्य कवि गोकुलप्रसाद 'बृज'

जन्मतिथि—चैत्र कृष्ण १, सं० १८७७

जन्मस्थान—बलरामपुर (जिला गोंडा—उत्तर प्रदेश)

प्रधान आश्रयदाता—महाराज दिग्विजय सिंह, बलरामपुर

काव्यगुरु—पं० गदाधर शर्मा

परमहंस दीन दयाल गिरि गोसाईं, काशी

देहावसान—वैशाख शुक्ल ६, सं० १९६२

गोकुल कवि का जीवनवृत्त

गोकुल श्रीवास्तव कायस्थ थे।[1] इनका जन्म चैत्र कृष्ण १, सं० १८७७ को[2] बलरामपुर नगर (जिला गोंडा) के बलुहा मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता का नाम भाई लाल और पितामह का रंगीलाल था। अपनी कुल परम्परानुसार घर पर हिन्दी और फारसी का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के बाद इनकी इच्छा संस्कृत पढ़ने की हुई। कुछ काल तक अभ्यास करके इन्होंने उसमें अच्छी गति प्राप्त कर ली। इनके अतिरिक्त नैपाली, द्रविड़, पंजाबी, भोजपुरी आदि भाषायें भी इन्होंने सीखी थीं और उनमें सरलता पूर्वक काव्य रचना कर लेते थे।[3] इन दिनों बलरामपुर के निकट राप्ती नदी के उत्तरी तट से एक मील दूरी

---

१. श्रीवास्तव कायस्थ कुल, गोकुल हरिजन दास।
नृप सेवा करि मति लह्यो, कोविद बुद्धि प्रकाश॥
(अष्टयाम-प्रकाश)

२. संवत रिषि मुनि नाग ससि, संवत सोहत स्वच्छ।
नखत रेवती लगन झष, गोकुल जन्म प्रतच्छ॥
(शक्ति प्रभाकर)

३. फारसी—
हमा हिदायत हसब बार जमशेद सुलेमाँ।
रुस्तम बाशद खिजल शाम सोहराब नरीमाँ॥
वार गीर शमशेर बुमैदाँ जंग बुमायद।
सर गनीम अफगनद बुपादर खस्म बु आयद॥
'ब्रज' आफताब अकलाब चूँ, जहाँ ताब हर दर पगह।
राजाधिराज दिग्विजै सिंह, कुनद कार बाहर निगह॥
(अष्टयाम प्रकाश पृ० १०४)

पहाड़ी भाषा—
कहा जान छो अकले माँझी भनछन कूडा जौन।
माथी फाटा मग ठग फालै बड़े सिपैल्ठ तौन॥
रहो रामडे भोली जाउला देउला सीसा पानि।
हम पनी पोइले येक न गोटा केटी केटा मानि॥

पर स्थित समगरा ग्राम में पं० गदाधर शर्मा नाम के एक विद्वान् रहते थे। काव्यशास्त्र के अध्ययन अध्यापन में उनकी बड़ी ख्याति थी। गोकुल उनके शिष्य हो गये। गुरुकृपा और अपनी असाधारण प्रतिभा से ये शीघ्र ही काव्यांगों के निष्णात पंडित हो गये।[1] कविता करने का अभ्यास भी साथ-साथ चलता

पूरब देस (भोजपुरी) भाषा—

चमकल बाय मोर मथवा पलल धैले,
　　ओढा एक गाँव के गदेलवा लै आइल।
हरलिसि मोर परदनिया बोकर बहो,
　　पवरल कीन्हें हाय हथवा कँपाइल॥
कहली मै फुर काह देखली तिरीवा 'ब्रज'
　　मैभा औ गोसैयाँ भैया किरिया मैं खाइल।
भोरवा के भैल मै घैलवा लै गैला बाटी,
　　बाट पनिघटवा छयलवा भेटाइल॥

दच्छिन देस भाषा—

कन्नू तुफ चिन्बी न हूबी पूकालू सोहै।
मोरू पड़ु पेचि पेदि वानू जुरगोलु जोहै॥
गुड़्या च यई गोलु गोलुंका तोवलू दंडू मोहै।
भंगार मवेडी के भूषन बड्डा अंग बिमोहै॥

पछाँह देस (पंजाबी) भाषा—

वड्डे की वड्डिआइया सुणी सब्बे ठाँव।
रहला तुंडा पंगुला देणी अक्खै पाँव॥
देणी अक्खै पाँव लख्य नै कुलल उधारे।
धन्य जनेगी माय कूड़ तजि नाम पुकारे॥
जित्थै तित्थै लक्खिया किन 'बृज' चंगे मनमुखी।
ना लइआने करणिय तुड्डे होणी गुरमुखी॥

—अष्टयाम प्रकाश पृ० २०—२१

१. सुबुध गदाधर शर्म को, विद्या गदा प्रहार।
नहिं कोइ कवि कोविद भयो, सहनशील संभार।
तासु निकट विद्या पढ़े, भूरि शिष्य मतिमंत।
तिनमें एक गोकुल भयो, रचना में बलवंत॥

रहा। छन्दों में ये अपनी छाप 'ब्रज' रखते थे।[1] काव्य रचना में रुचि देख कर इनके चचा अपने साथ इन्हें महाराज दिग्विजयसिंह के दरबार में ले जाया करते थे। महाराज की गुण ग्राहकता से आकृष्ट होकर दूर-दूर से आने वाले कवियों का वहाँ नित्य जमघट लगा रहता था। इस साहित्यिक वातावरण में गोकुल की काव्य प्रतिभा के विकास का अच्छा अवसर मिला। धीरे-धीरे अपनी रचनायें ये महाराज को सुनाने लगे। छोटी आयु में ही लिखे गये इनके उक्ति वैचित्र्य पूर्ण छन्दों को सुन कर दरबार में उपस्थित लोग आश्चर्य चकित हो जाते थे।

परमहंस दीनदयाल गिरि की ख्याति सुन कर ये अध्ययन के लिए काशी गये और उनकी छत्रछाया में रीतिशास्त्र का विधिवत् अनुशीलन किया[2]। काव्य-शिक्षा समाप्त होने पर काशी से गोकुल पुनः अपनी जन्मभूमि बलराम पुर को लौट आये और राज्य में नौकरी कर ली। इनकी प्रथम नियुक्ति कटरा और पहाड़ापुर के कोतवाल पद पर हुई। सिंहा चंदा (जिला गोंडा) के ताल्लुकेदार कृष्णदत्त राम पांडे से इनका परिचय इसी समय हुआ। उनके प्रीत्यर्थ इन्होंने 'कृष्णदत्तभूषण' नामक अलंकार ग्रंथ की रचना की। इस पद पर कुछ ही वर्ष कार्य करने के पश्चात् त्यागपत्र देकर ये तुलसीपुर (गोंडा) के राजा द्रिगराज

सुगुरु कृपा पीयूष पिय, प्रतिदिन करि अभ्यास।
साहित्यागम सिंधु मथि, रतन लह्यो अनयास॥

—दिग्विजयभूषण की भूमिका, पृ० १

पं० गदाधर शर्मा महाराज दिग्विजयसिंह की बाल्यावस्था में मुख्य संरक्षक और राज्य के प्रबन्धक रह चुके थे। इनका एक हस्तलिखित ग्रन्थ 'दिग्विजय चम्पू' प्रस्तुत लेखक के संग्रह में है।

१. श्रीवास्तव कायस्थ कुल, गोकुल नाम प्रतच्छ।
कहूँ कवित में 'बृज' धरे, छंद बनै जेहि स्वच्छ॥

२. श्री गुरु दीन दयाल गिरि, परमहंस अवतंस:
पाये जा पदप्रीति सों, कवित रीति सारंस॥

परमहंस अवतंस जासु जस जग अस राजै।
विलसै विजै विभूति, विरति विज्ञान विराजै॥

राजै विजै विभूति जाहि के दरसन पाये।
काव्य कलानिधि रूप भूप कवि पार को जाये॥

—चित्र कलाधर, पृ० ४—५

सिंह के आश्रय में चले गये। वहाँ इन्हें बांकेपुर के इलाके में मालगुजारी वसूल करने का काम मिला। उन दिनों बलरामपुर और तुलसी पुर राज्यों के बीच काफ़ी तनातनी चल रही थी। द्रिगराज सिंह के व्यवहार से भी ये असंतुष्ट थे। अतः महाराज दिग्विजय सिंह के आमंत्रण पर तुलसी पुर राज्य की नौकरी त्याग कर सं० १६०५ से गोकुल बलरामपुर नरेश की सेवा में लग गये।[1] महाराज ने पहले इन्हें फूलपुर (जिला बस्ती) में भवन निर्माण के निरीक्षक पद पर नियुक्त किया। उस कार्य के समाप्त होने पर ये सीर के अफसर बनाये गये। दिग्विजय सिंह ने इनकी काव्य शक्ति पर मुग्ध होकर थोड़े ही दिनों बाद माल विभाग से स्थानान्तरित कर इन्हें अपने दरबार के कर्मचारी वर्ग में स्थान दे दिया। महाराज का निजी पत्र व्यवहार और तोशक खाना की देख-भाल—इनके जिम्मे यही दो कार्य सौंपे गये। इस प्रबन्ध के फलस्वरूप गोकुल को अपनी रुचि के अनुकूल काव्यसाधना में अधिक समय मिलने लगा। इनकी नौकरी के शेष वर्ष इसी पद पर कार्य करते व्यतीत हुए। महाराजने इनकी साहित्यिक सेवाओं से प्रसन्न होकर दो गाँव पुरस्कार में दिये, जो बहुत दिनों तक इनके वंशजों के अधिकार में रहे।

इन दो आश्रयदाताओं के अतिरिक्त गोकुल कवि मेहनौन (गोंडा) के राजा अचल सिंह और पयागपुर (बहरायच) के ठाकुर विजयराज सिंह के भी कृपापात्र रहे हैं। उनके लिये इन्होंने क्रमशः 'अचल प्रकाश' और 'महावीर प्रकाश' की रचना की थी। किन्तु ये उनके यहाँ किस समय और कितने दिनों तक रहे, यह ज्ञात नहीं।

गोकुल के पारिवारिक जीवन विषयक जो तथ्य प्रकाश में आये हैं उनसे ज्ञात होता है कि इनके पिता का देहावसान पहले ही हो चुका था, किन्तु माता सं० १६०५ तक जीवित रहीं। बलरामपुर राज्य के पुराने कागजों में इनका एक आवेदन पत्र और उस पर महाराज दिग्विजय सिंह का पद्यबद्ध आदेश प्राप्त हुआ है, जिसमें माता की मरणासन्न स्थिति में सेवा के लिये छुट्टी की प्रार्थना की गई है। उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

"दरख्वास्त गोकुल प्रसाद की। माता, उनकी मृत्यु सन्निकट है याते सेवा करै के घर रहिबे के लिये।"

---

१. बुधि विधा दुइ चन्द्रमा, सोहै भादौं मास।
महाराज दिग्विजै सिंह, बोलि पठै निज पास॥

दसखत महराज बहादुर कै—

> मातु पिता तीरथन सों, अधिक कहत सब लोग ।
> ताते मन बच कर्म ते, इनको सेइब जोग ॥
> आपद काल विशेष है, औषधि जतन बनाइ ।
> याते तुम घर में रहो, पुत्र धर्म को पाइ ॥

गोकुलके तीन विवाह हुये थे । इनकी प्रथम पत्नी फुलवरिया गोपालपुर (जिला बहरायच) के निवासी मुंशी पहलवान लाल की पुत्री थीं ।[1] दूसरा और तीसरा विवाह बलरामपुर के निकटवर्ती शाहडीह गाँव के लाला कबीरदयाल के यहाँ हुआ था । इन पत्नियों से इनके चार पुत्र हुये—लाल साहब, सुन्दर लाल, दूधनाथ और प्राणनाथ । दैवयोग से इन चारों में से किसी का भी वंश नहीं चला । किन्तु गोकुल के भ्रातृकुल के लोग अब भी बलरामपुर में बसे हुये हैं ।

कविवर गोकुल वाणीके एकान्त साधक नहीं थे । वे दरबारी कवि थे और अपने जीवनकाल में इसी रूपमें उन्होंने प्रसिद्धि पाईथी ।[2] महाराज दिग्विजय सिंह के दरबारमें प्रायः आगन्तुक कवियों के प्रातिभ ज्ञान की परीक्षा के लिए काव्य शास्त्रीय विषयों पर शास्त्रार्थ अथवा समस्या पूर्ति सम्मेलनों की आयोजना हुआ करती थी । गोकुल के जौहर इन्हीं अवसरों पर प्रकट होते थे । इस सम्बन्ध में प्रचलित जन-श्रुतियों में से कुछ नीचे दी जाती हैं ।

प्रसिद्ध है कि बलरामपुर दरबार में बाहर से आये हुए किसी कवि ने कविता और बनिता का सादृश्य विधान करते हुये नायिकाभेद पर लिखे गये अपने

---

१. प्रथम पत्नी के देहावसान पर शोकाकुल हो गोकुल कविने यह छंद लिखा था—

> अरविंद विलोचन कुंदकली दसनावलि चंदकला मुख भावै ।
> मुसकानि सुधा अधरानि मयूष मनोहर बैन सुने बनि आवै ॥
> जेहि अंग में सोभ सुगंध सने 'बृज' मेद जवादि सुगंध लगावै ।
> तिहि देह पै काठ कठोर दबावत आगि लगावत आह न आवै ॥

(अष्टयाम प्रकाश, पृ० १६६)

२. "राजपूताना और दीगर मुकामात की देशी रियासतों में जहाँ कविताई की कदर है इनका नाम मशहूर है और इनकी तसानीफ़ फैली हुई हैं ।" —तारीख़ अखावरी श्रीवास्तव कायस्थ (ले० रामरतनलाल), पृ० ४०

ग्रंथ की भूमिका के लिये उपस्थित कवियों से छंद रचना का प्रस्ताव किया। गोकुल कवि ने उसी समय यह छंद बनाकर सुनाया—

सब्द देह पाणि पगु छंद मुख व्यंजना सो,
व्यंग्य जीव मंजुध्वनि वाणी निकसतु है।
लक्षणैद्विविधि अक्ष हाव भाव है कटाक्ष,
श्रौन है विभाव गुण गुणै सरसतु है॥
नासिका विसद वृत्ति रीति कुलकानि बानि,
भूषणनि भूषण बसन बिलसतु है।
कविता दसांग बर बनिता को कवि पति,
'ब्रज' पुन्य पुंज ही सों दूनौ दरसतु है॥

कहा जाता है कि एक बार कोई 'प्रसाद' नाम के कवि महाराज के काव्य-प्रेम की चर्चा सुनकर बलरामपुर आये। दरबार लगने पर उन्होंने कुछ स्वरचित छंद सुनाये। महाराज ने प्रसन्न होकर उन्हें दो सौ रुपया और एक सुसज्जित घोड़ा बिदाई देने की आज्ञा दी। अस्तबल के दारोगा ने कविराज को जो घोड़ा दिया, वह देखने में बड़ा सुन्दर था, चाल भी बहुत अच्छी थी, किंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष यह था कि पानी देखते ही लोटने लगता था। कविजी को इसका पता न चल सका। वे महाराज को आशीर्वाद देकर प्रसन्न मन विदा हुए। बलरामपुर नगर से लगी हुई सुआँव नदी में उस समय घुटनों के ऊपर पानी था। प्रसाद कवि घोड़े पर चढ़े हुए ही उसे पार करने लगे। पानी में थोड़ी दूर चलकर घोड़ा अपने स्वभावानुसार बैठ गया और तंग कसे हुये ही उसमें लोटने लगा। कवि महोदय का सारा कपड़ा कीचड़ में लथपथ हो गया। बड़ी मुश्किल से उन्होंने घोड़े को पानी के बाहर निकाला। अपने कपड़ों में लगा हुआ कीचड़ धोकर वे उल्टे पाँव दरबार में पहुँचे और महाराज के समक्ष पुरस्कार में प्राप्त घोड़े की शिकायत करते हुये यह सवैया पढ़ा—

सदा सुन्दर चाल चलै मग मैं कतहूँ ठिठकै बिगरै न अरै।
पर बाजि बिलोकत ही निकसै अरु पौन के गौन ते बेगि लरै॥
दियो भूपति दिग्बिजै सिंह जो बाजि 'प्रसाद' सु केतिक लोग डरैं।
तेहि औगुन एक कहा कहिये जल देखै जहीं तहीं लोटि परै॥

शिकायत सरे दरबार की गई थी। महाराज के इशारे पर गोकुल कवि ने तत्काल घोड़े की प्रशंसा में निम्नांकित छंद लिख कर उसके पानी में बैठ जाने का दूसरा ही कारण बताया।

कमर कलाई कान कल्ला छवि छोटि छाइ,
सीना सुम चकले हैं सिगरे बखानी मैं।
बेगि पावै मन आसमान को करै पयान,
सीखे सीघ्रताई हरियान गति जानी मैं ॥
'गोकुल' तुरंग ऐसो कहैं मति मंद लोग,
पानी में प्रवेस यहि हेतु अनुमानी मैं।
असुचि सवार को विसुचि करिबे के हेतु,
याते बाजी पैठि गयो बैठि गयो पानी मैं ॥

गोकुल की इस हाजिरजवाबी से प्रसाद कवि पानी पानी हो गये। महाराज ने रिसाले से उनकी पसंद का एक दूसरा घोड़ा दिलाकर उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया।

शिकार यात्राओंमें भी महाराज दिग्विजय सिंह गोकुल को साथ रखते थे। इन्हें स्वयं शिकार खेलने का शौक न था किन्तु देखनेमें बड़ी दिलचस्पी लेते थे। महाराज इन्हें प्रायः अपने समीप वाले हाथी या मचान पर बैठाते थे। नैपाल के जंगलों में दिग्विजयसिंह के एक शिकार का प्रत्यक्षदर्शी के रूप में वर्णन करते हुये ये लिखते हैं—

दपटि डहारि डौंकि चौंकि उठे जो मतंग,
निकसो प्रचंड बाघ गाढ़े गिरि झाली के।
घोर घहराइ धाइ आयो है चलाक चंड,
आवन समीप हेत किये चल चाली के ॥
त्योंहीं महाराज दिग्विजै सिंह दीठि जोरि,
साधे दीदबान सों सिकार परनाली के।
घायल घुमड़ि बाघ भागो अहदंक संक,
गाज लौं गँभीर गोली लागी है दुनाली के ॥

दगी दुनाली गाज ज्यों, बाघ लंक लगि जाय।
भागो घायल बिपिन में, झाली माहिं लुकाइ ॥
महाराज हरषाइ, चढ़ि गज पर हेरन चले।
आगे निरखे जाइ, झाली में वह सेर है ॥
तीनि बौरि मोटी त्वचा, एक विटप ते आइ।
लपटी दूजे वृक्ष में, जनु विधि जाल बँधाइ ॥
एक बौरि मुख पर परी, एक गरे में आइ।
एक लंक में लपटि गै, यहि विधि बाघ लखाइ ॥

लागे लंक घाव बाघ झपटि डहारि ढौकि,
चलो गज चौंकि फेरि हारो पीलवान है।
खसे हैं खवास पाछे हौदा में जकरि जोर,
गिरे सेर आगे तीनि गज जो प्रमान है॥
उठि बैठे मारे गोली परो बाघ भूमि सिर,
स्रोनित स्रवत यह कीन्हे उपमान है।
तीरथ अरन्य पुन्य काल है अखेट दिन,
भारती के नीर मानो भूप को नहान है॥
लगो सीस छत स्रवत है, स्रोनित व्यथा प्रवाह।
ऐसे दुख में नहिं कढ़े, भूपति के मुख आह॥
महाराज दिग्विजै सिंह, खेलैं सदै सिकार।
कबहूँ ऐसो नहिं भयो, होनहार बरियार॥
जबै गज चौंकि चलो गिरे महराज महि,
तीनि गज पर परो बाघ जेहि ठाम है।
पंजा लपकावै नहिं पावै कटि मुख बाभि,
बौरिन के ब्याज सकि बाँधे निज दाम है॥
गोकुल बिलोकि तबै हिम्मत अचल मति,
स्रोनित स्रवत सिर सिखा वेध छाम है।
सूरताई सैनन ते नैनन ते धीरताई,
बीरताई बैनन ते बिलसै बिराम है[1]॥

यह घटना सं० १९३७ की है[2]। इस घातक चोट के बाद महाराज का

१—मृगयामयङ्क, पृ० १८

२—गोकुल कविके निम्नांकित छंदसे यह सिद्ध होता है कि वे महाराज दिग्विजयसिंहके साथ हाथियोंके हँकवेमें भी एक दो बार गये थे। विलास हावके उदाहरणार्थ इसमें जो चित्र अंकित किया गया है उससे हाथी फँसानेकी सम्पूर्ण प्रक्रियाका सूक्ष्म निरीक्षण व्यंजित होता है।

हेरि हरे हरुवे हँसि आवत मेलै फँदैत फँदाय ज्यों फंदै।
सैनहि सीकर मंजु महालहि बाँधि कियो पति कै मति मंदै॥
भावत मोहन भाव भले 'ब्रज' अंकुस लै बस कै छल छंदै।
जोबन जाल बगारि बभावत मैन महाउत नैन गइंदै॥
(नीति रत्नाकर पृ० १८)

स्वास्थ्य नहीं सुधरा। दो वर्ष बाद सं० १६३९ में उनका परलोकवास हो गया। उनके साथ ही बलरामपुर दरबार से साहित्य चर्चा भी उठ गई। आश्रयदाता के दिवंगत होने पर गोकुल कवि ने राजसेवा से विश्राम ग्रहण कर लिया। किन्तु उनकी लेखनी चलती रही। इसके पश्चात् उन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की। उनमें से एक है महारानी धर्म चन्द्रिका, जो मनुस्मृति का पद्यानुवाद है। इसका निर्माण सं० १६५४ में महाराज दिग्विजय सिंहकी द्वितीय पत्नी महारानी जयपाल कुंवरि की आज्ञा से हुआ था। सं० १९६१ में यह ग्रंथ खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) से प्रकाशित हुआ था। उनकी दूसरी कृति है—गद्दी प्रकाश, जो महाराज दिग्विजयसिंह के उत्तराधिकारी दत्तकपुत्र महाराज भगवती प्रसाद सिंह की राजगद्दीके अवसर पर, सं० १६५७ में लिखा गया था। यह गोकुल की अन्तिम कृति थी। इसके पश्चात् वे पाँच वर्ष और जीवित रहे।

अपने जीवन के अन्तिम दिन गोकुल ने भगवच्चिंतन और नामजप में बिताये। उनका जो चित्र इस ग्रंथ में दिया गया है वह इसी वार्द्धक्य जर्जर अवस्था का है जिसमें वे माला फेरते दिखाये गये हैं। वैशाख शुक्ल ६, शनिवार सं० १६६२ की रात्रि को ढाई बजे, ८५ वर्ष की आयु भोगकर वे परलोक-वासी हुये।

रचनायें

अब तक गोकुल कवि की कुल २२ कृतियों का पता चला है। उनमें से १९ की रचना बलरामपुर दरबार की छत्रछाया में हुई, शेष गोंडा तथा बहरायच के तीन अन्य सामन्तों के लिए लिखी गई थीं। इनकी सूची नीचे दी जाती है—

क. बलरामपुर दरबार के आश्रय में विरचित ग्रन्थ—

१. अर्जुन विलास (मदन गोपाल कवि कृत) की पद्यबद्ध भूमिका–सं० १९१६, २. अष्टयाम प्रकाश–सं० १९१६, ३. दूतीदर्पण–सं० १९१९, ४. दिग्विजय भूषण–सं० १९१९–१९२५, ५. नीतिरत्नाकर (महाराज दिग्विजयसिंह के साथ)–सं० १९२१, ६. चित्र कलाधर–सं० १९२१, ७. पंचदेव पंचक–सं० १९२४, ८. नीतिमार्त्तंड–सं० १९२६, ९. सुतोपदेश–सं० १९२८, १०. वाम-विनोद–सं० १९२९, ११. चौबीस अवतार–सं० १९२६–१९३२, १२. शोक-विनास–सं० १९३२, १३. शक्ति प्रभाकर (अद्भुतरामायण)–सं० १९३३, १४. सुहृदोपदेश (टिट्टिभि आख्यान) सं० १९३५, १५. मृगया मयङ्क–सं० १९३७, १६. दिग्विजय प्रकाश–सं० १९३९, १६. एकादशी महात्म्य–सं० १९३९, १८. महारानीधर्मचन्द्रिका–सं० १९५४, १९. गद्दी प्रकाश–सं० १९५७।

ख. अन्य सामन्तों के लिए निर्मित ग्रंथ—

२०. कृष्णदत्तभूषण २१. अचल प्रकाश २२. महावीर प्रकाश।

शिवसिंह सेंगर ने इनमें से केवल चार ग्रन्थों (दिग्विजय भूषण, अष्टयाम, चित्र कलाधर और दूतीदर्पण) का नाम दिया है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने, संभवतः इसी आधार पर 'लाला गोकुल परसाद बलिरामपुरी' का परिचय देते हुए उनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की संख्या चार ही बताई है, जिनकी नामावली सरोज से अभिन्न है। उक्त दोनों महानुभावों ने गोकुल कवि की अन्य रचनाओं की संभावना व्यक्त की है किन्तु उनकी नामावली नहीं दी है, संभव है इसका कारण उनकी अनुपलब्धि रही हो।

हिन्दी साहित्य के प्रचलित इतिहासों में प्रस्तुत कवि का कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। इधर डा० किशोरी लाल गुप्त ने शिवसिंह सरोज में निर्दिष्ट कवियों की जीवनी तथा कृतियों का एक विद्वत्तापूर्ण सर्वेक्षण किया है। उनके अप्रकाशित शोध प्रबन्ध 'सरोज सर्वेक्षण' में दी गई गोकुल कवि की रचनाओं की सूची इस प्रकार है—

१. दिग्विजय भूषण–सं० १६१६, २. अष्टयाम–सं० १९१६, ३. दूती-दर्पण–१९१६ ४. नीतिरत्नाकर–सं० १९२१, ५. चित्रकलाधर–सं० १९२३, ६. पंचदेव पंचक–सं० १६२४, ७. नीतिमार्त्तंड–सं० १६२६, ८. वामविनोद–सं० १६२६, ९. सुतोपदेश–सं० १६३०, १०. चौबीस अवतार–सं० १६३१ ११. शोकविनास–सं० १६३३, १२. शक्तिप्रभाकर–सं० १६३६, १३. टिट्टिभि आख्यान–सं० १९३७, १४. सुहृदोपदेश–सं० १६३७ १५. मृगयामयङ्क–सं० १६३७, १६. दिग्विजय प्रकाश–सं० १६३६, १७. महारानी धर्मचन्द्रिका–सं० १६३६ के पश्चात्, १८. एकादशी महात्म्य–सं० १६३६–१६. कृष्णदत्तभूषण २०. अचल प्रकाश, २१. महावीर प्रकाश।

गोकुल कवि की रचनाओं के सम्बन्ध में डा० गुप्त की सूचना के स्रोत नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित खोज-विवरण तथा माधुरी (जून १६२८ ई०) में प्रकाशित श्री रामनारायण मिश्र का लेख रहा है[1]। अतः कतिपय ग्रन्थों के रचना काल तथा वर्ण्यविषय सम्बन्धी जो भ्रान्तियाँ उक्त स्रोतों, विशेषकर 'माधुरी' वाले लेख में विद्यमान थीं, वे यहाँ भी चली आईं। ऐसी भूलें तीन वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—ग्रंथसंख्या, रचना-काल और वर्ण्य विषय सम्बन्धी। नीचे इनकी क्रम से विवेचना की जाती है।

गुप्तजी ने इनकी रचनाओं की संपूर्ण संख्या, 'अर्जुन विलास' की पद्यबद्ध भूमिका को छोड़कर, २१ बताई है। इनमेंसे टिट्टिभि आख्यान और सुहृदोपदेश वस्तुतः एक ही ग्रन्थ है। सुहृदोपदेश के ही अन्तर्गत टिट्टिभि आख्यान का पद्यानुवाद दिया गया है। इस प्रकार कुल २० कृतियाँ ही रह जाती हैं। कवि की अन्तिम रचना 'गद्दी प्रकाश' का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है।

ग्रंथों के रचनाकाल निर्देश में प्रायः १ से लेकर ४ वर्षों तक का अन्तर मिलता है। इसका कारण है उनके प्रकाशन काल को निर्माण काल समझ लेने की भ्रांति। इसी से निम्नांकित ग्रंथों का समय अशुद्ध दिया गया है—

ग्रंथ	निर्दिष्ट संवत	शुद्ध
(१) चित्र कलाधर	१९२३	१९२१
(२) सुतोपदेश	१९३०	१६२८

१. अष्टयाम—१६२३।१२६, १६२६।१४३ ए
वाम विनोद—१६०६।६५ बी
चौबीस अवतार—१६०६।६५ ए
दिग्विजय भूषण—१६२६।१४३ बी

(३)	चौबीस अवतार	१६३१	१६२६-१६३२
(४)	शोक विनाश	१६३३	१६३२
(५)	शक्ति प्रभाकर	१६३६	१६३३
(६)	सुहृदोपदेश (टिट्टिभ आख्यान)	१६३७	१६३५

इसी प्रकार महारानी धर्म चंद्रिका को १६३९ के पश्चात् की रचना कहा गया है। इसकी निश्चित तिथि नहीं दी गई है। वास्तव में इसका रचना काल सं० १६५४ है।

जहाँ तक वर्ण्य विषय का सम्बन्ध है डा० गुप्त द्वारा दिये गये सभी विवरण, एक को छोड़कर, ठीक हैं। शक्ति प्रभाकर को अध्यात्म रामायण का अनुवाद कहा गया है किन्तु वह अद्भुत रामायण पर आधारित है।

गोकुल प्रसाद की ये रचनायें सं० १६१८ से लेकर सं० १६५७ तक अर्थात् चालीस वर्ष के विस्तृत कविता काल में निर्मित हुई हैं। उनके जीवन के अंतिम पाँच वर्षों में लिखी गई कोई कृति नहीं मिलती। बहुत सम्भव है इस बीच वृद्धावस्था के कारण उनकी लेखनी और मस्तिष्क काव्य रचना से विरत हो गये हों।

ग्रन्थ परिचय

१. अर्जुन विलास की पद्यबद्ध भूमिका

अर्जुन विलास की रचना महाराज अर्जुन सिंह (महाराज दिग्विजयसिंह के पिता) के आश्रित कवि मदन गोपाल शुक्ल ने सं० १८७६ में की थी, (इसी वर्ष महाराज दिग्विजय सिंह का जन्म हुआ था)। कुछ कारणों से यह ग्रंथ ४० वर्षों तक अप्रकाशित पड़ा रहा। महाराज दिग्विजय सिंह ने ग्रन्थकर्ता के पुत्र पं० नन्दकिशोर शुक्ल से उसकी पांडुलिपि प्राप्त की और गोकुल कवि से सं० १६१८ में इसकी पद्यबद्ध भूमिका लिखाकर सं० १६२० में प्रकाशित कराया। उक्त ग्रंथ की भूमिका में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

वसु[८] ससि[१] निधि[९] विधु[१] संवतै, विक्रम भूप विलास।
प्रगट भयो बलिरामपुर, ग्रंथ जु सावन मास॥
नृप अनुसासन पाइकै, हेतु ग्रंथ परकास।
कवित रीति गोकुल रच्यो, जा मैं सभा विलास॥

'अर्जुन विलास' की यह भूमिका ही गोकुल कवि की प्रथम छंदबद्ध रचना है।

२. अष्टयाम प्रकाश

यह गोकुल कवि की प्रथम उपलब्ध स्वतंत्र एवं संपूर्ण कृति है। इसकी रचना रीतिकालीन अष्टयाम-शैली पर हुई है। रचयिता के ही शब्दों में इसका प्रतिपाद्य है महाराज दिग्विजय सिंह के अष्ट प्रहर कृत्य का विवरण।

भूप दिग्विजै सिंह बहादुर, गुनगाहक गुनधाम।
आठ जाम बत्तीस घरी में, करत मंजु रुचि काम ॥
अष्टजाम परकास ग्रंथ करि, पंथ पुंज अभिराम।
सूचीपत्र बिचित्र चात 'वृज', विरचित ललित ललाम ॥
साठि दंड बत्तिस घरी, आठ जाम दिन एक।
भूत दिग्विजै सिंह नित, करतब करत अनेक ॥
दंड दंड प्रति प्रति घरी, बरनौं नृप मन मौज।
करत काम अभिराम जो, करि प्रबंध यक रोज ॥

इसकी रचना श्रावण शुक्ल ५, बुधवार सं० १६१८ को हुई—

वसु[८] शशि[१] लहि ग्रह[९] कला निधि[१] सम्बत सावन मास।
बुधवासर सित पंचमी, अष्टजाम परकास ॥

१८६३ ई० (सं० १९२०) में यह बलरामपुर के जंगबहादुरी यंत्रालय (लीथो प्रेस) से प्रकाशित हुआ।

ग्रंथ के आरम्भ में दिये गये सूचीपत्र के अनुसार इसकी प्रसंग योजना का विवरण निम्नांकित है—

प्रथमजाम—राजवंस बरनन, गंगाष्टक, चौंसठि तंत्र ग्रंथ नाम, बावनपीठि बावन भैरों नाम, नवो नाथ नाम, षटोचक्रनाम, दानविधि, घोड़े बरनन, हाथी बरनन, तोप बरनन, फौजबरनन, चारिदेस की भाषा बरनन, धर्मशास्त्र, राजनीति, पुरान के दस लच्छन बरनन, चारि जुग दस अवतार बरनन, चौबिस मत सात ईति, सात दीप, नौ षंड, कोस (कोष) नाम, सात पुरी, बानी भेद, श्रोता, नौधा भक्ति, आश्रम दस दिसा के, देव ब्राह्मण के षट्कर्म, छइउ सास्त्र बरनन, जोतिस, वेदांत मोह विवेक, सुभाउ, ब्याकर्ण, रोजनामचा के हाल जंगी पलटन आदि दै।

अथ जाम दूसर—मुलकी काम बरनन, तिलसमात, अथ छत्तीस बिंजन बरनन, असन विचार बरनन।

अथ तीसर जाम—इसरस्टंटी कचेहरी, फौजदारी।

अथ चौथ जाम—गंजीफा सतरंज, चौपरि, मेवा बरनन, नवोरत्न, नवो

देवता बरनन, सवारी बरनन, घोड़े बरनन, रंग बरनन, घोड़े के चाल, बाना वाकपटा, तीर कमान, सिकार बरनन।

अथ पंचम जाम—उपधान बरनन, फारसी के कवित्त, दस अंग काव्य बरनन, लच्छना, बिंजना, धुनि रस बरनन, नायिका, चित्रकाव्य, अंतर्लापिका, वहिर्लापिका, अनुप्रास, रीति।

अथ छठवाँ जाम—संगीत बरनन, ज्योनार श्लेष मै बरनन।

अथ सात जाम—धाम छवि बरनन।

अथ आठ जाम—भूप सैन बरनन।

कवि का कथन है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में उसने केवल अपनी आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है, सुनी-सुनाई और अतिरंजित बातों को इसमें स्थान नहीं दिया गया है—

भूप दिग्विजै सिंह के, अष्ट जाम परकास।
बरनन कीन्हे गुन सहित, करि मति मंजु विलास॥
सुनी बात हौं एक नहिं, नहि कछु झूठ मिलाइ।
समै समै अवलोकि 'बृज', बरने कवि मति पाइ॥
भूप दिग्विजै सिंह की, करि सेवा मन लाइ।
गोकुल यह रचना किये, गुरु गननाथ मनाइ॥

३. दूतीदर्पण

इस ग्रंथ की मूल प्रति अप्राप्य है किन्तु दिग्विजय भूषण के निम्नांकित छन्द से यह विदित होता है कि गोकुल कवि ने 'दूतीदर्पण' नामक एक रचना लिखी थी। बाद को उसी के कुछ चुने हुए प्रसङ्ग 'दिग्विजय भूषण' में संकलित कर लिए गये—

रस राजा सिंगार रस, प्रजा चाहिये ताहि।
सर्व जानि ताते लिखे, दूती दूत सराहि॥
जग में कोम छतीस हैं, तामें भेद अपार।
दूती दरपन में लिखे, सबके मैं व्यवहार॥
तामें सो मैं काढ़ि कछु, लिखे इहाँ अनुमानि।
रचना रुचिर निहारि करि, छमहु ढिठाई जानि॥[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'दूती दर्पण' की रचना 'दिग्विजय भूषण' के पहले हुई थी। दिग्विजय भूषण में उसका जो अंश उद्धृत है उसमें ३६ जाति की दूतियों के सन्देश श्लेष एवं मुद्रालंकार में वर्णित हैं।

---

१. दि० भू०—पृ० ४४३।

४. दिग्विजय भूषण

गोकुल कवि की यह अति महत्वपूर्ण कृति है। इसकी मूल प्रति अप्राप्य है। आजकल जो 'दिग्विजयभूषण' मिलता है वह 'रामस्वरूप' द्वारा ब्रजभाषा गद्य में लिखी गई टीका सहित जंगबहादुरी यंत्रालय (लीथो प्रेस) बलरामपुर से सं० १६२५ में प्रकाशित हुआ था।[1] किन्तु इसकी रचना उक्त सटीक संस्करण के छः वर्ष पूर्व, सं० १६१९ से ही आरंभ हो गई थी।[2] उस समय उनका उद्देश्य केवल अलंकारों के लक्षण एवं उदाहरण मात्र प्रस्तुत करने का था। 'दिग्विजय भूषण' नाम की सार्थकता के लिए इतना ही पर्याप्त था। अतः सं० १९१९ तक उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के चौदह प्रकाशों को लिख डाला। जान पड़ता है टीका आरंभ होने के पश्चात् रीति कालीन परिपाटी के अनुसार उन्हें अपनी इस रचना को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की इच्छा हुई। अतः पूर्वकृति में क्रमशः नखशिख, षडऋतु, नायिका भेद और कवि प्रौढोक्ति सम्बन्धी प्रकाश जोड़ दिये गये। ग्रन्थ के अंत में दिये गये एक छंद की निम्नांकित पंक्तियों से स्थिति स्पष्ट हो जाती है—

संवत बरन बिधि खंड इंदु पूस पूर
भयो भट भैरो जोर जुद्ध करि कांध्यौ है।
भूप दिग्विजय सिंह सिंह के समान गाँसि
गज पै गजब फाँसि डारि गर बांध्यो है॥

---

१. खोज विवरण (१६२६–२८) में इसी मुद्रित (लीथो) प्रति का विवरण अंकित है। अन्वेषकों ने इस लीथो में छपी प्रति को भ्रांति वश हस्तलिखित प्रति मानकर विवरण ले लिया और उसके मुद्रण काल (सं० १६२५) को ही रचना काल घोषित कर दिया। इसके रचना काल और लिपिकाल की एकता, पृष्ठ संख्या, आकार तथा प्रति पृष्ठ में लिखी पंक्तियों की संख्या का खोज-विवरण से साम्य, उक्त धारणा की पुष्टि करता है। (विशेष विवरण के लिये देखिये 'हरिऔध' के जनवरी १६५८ के अंक में 'लाला गोकुलप्रसाद 'बृज' और उनका दिग्विजयभूषण' शीर्षक डा० किशोरीलाल गुप्त का लेख।)

२. खंड इन्दु नव चंद प्रकास। विक्रम संवत सित मधुमास।
ग्रन्थ दिग्विजै भूषन नाम। अलंकार 'बृज' बिरचि ललाम॥

दि० भू०, पृ० ३२

यहाँ सं० १९२४ में दिग्विजय सिंह के जीवन की उस महत्त्वपूर्ण घटना की ओर संकेत किया गया है जिसमें बघेलखंड में जंगली हाथी फँसाने का विशाल आयोजन किया गया था। इससे यह विदित होता है कि दिग्विजयभूषण में ग्रंथ के मुद्रण काल तक की घटनायें समाविष्ट हैं। अतः आरंभ में दिये गये सं० १६१६ को इसकी रचना का उपक्रम काल मानना ही अधिक युक्ति-संगत होगा।

रामस्वरूप ने इस टीकाग्रन्थ के आरंभ में एक स्वरचित भूमिका दी है। इसमें इन्होंने अपना जो परिचय दिया है उससे वे गोकुल कवि के काव्य गुरु गदाधर शर्मा के भतीजे ठहरते हैं। उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर ही गोकुल कवि ने उनसे 'दिग्विजयभूषण' की टीका करने के लिये अनुरोध किया था। महाराज दिग्विजयसिंह की भी यह इच्छा थी कि उक्त ग्रंथ के गूढ़ स्थल व्याख्या द्वारा स्पष्ट कर दिये जायँ। ऐसी दशा में रामस्वरूपने अपनी टीका में सभी प्रकार से काव्यात्मक विशेषताओं के समावेश का प्रयत्न किया। उनका कथन है—

राज्य सभा नित काव्य की, चर्चा होवे बेस।
तहँ मम उक्ति नवीन लखि, कवि यों कियो निदेस॥
भाषा ग्रंथन को तिलक, कीन्हे भाषा माँहि।
तुम मम बिसद प्रबंध को, अधिक नृपति चित चाहि॥
संस्कृत सम्मत जाहि लखि, कवि कोविद मुद होय।
काव्य कोश बहु ग्रंथ मत, कीजे रचना सोय॥
कवि निदेश अरु भूप रुचि, समुझि महोदय बात।
ताके विसद प्रबंध को, करों तिलक बिख्यात॥
सब्द अर्थ ध्वनि व्यंग्य रस, अलंकार सु अनूप।
गुन अरु रीति विलास मय, कीन्हें राम सरूप[1]॥

यह ग्रंथ १८ प्रकाशों में विभक्त है[2], जिनके नाम हैं—(१) मंगलाचरण देश, नगर आदि (२) सृष्टि विधान (३) सूर्य वंश (४) चन्द्र वंश (५) नृप वंश, ग्रंथ रचना काल, बारह प्रकाश वर्णन (६) एक छंद में एक अलंकार, अंतिम

---

१. दिग्विजय भूषण की भूमिका

२. प्रतिलिपिकार ने प्रकाशों की गणना में भूमि से आठवें प्रकाश के स्थान पर नवाँ प्रकाश लिख दिया है जिससे अन्त में १८ के स्थान पर १९ प्रकाश हो गये हैं।

चरण में, (७) चारों चरणों में एक अलंकार (८) संकर अलंकार, एक छंद में दो अलंकार (६) अक्रम संसृष्टि—एक छंद में कई अलंकार (१०) सक्रम संसृष्टि—एक छंद में कई अलंकार (११) एक अलंकार वर्णन दोहों में परिभाषा समेत (१२) चित्रालंकार (१३) अनुप्रास और यमक (१४) वीप्सा श्लेष वक्रोक्ति (१५) नखशिख (१६) षड ऋतु वर्णन (१७) नायक नायिका भेद (१८) प्रौढ़ोक्ति।

इस ग्रंथ के १२ प्रकाशों (६ से ६, ११ से १८) में गोकुल ने प्राचीन कवियों की ७४२ रचनायें उदाहृत की हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

क्रम संख्या	प्रकाश का शीर्षक	छंद संख्या	छंद विवरण	विषय
१	६	१३६	कवित्त, सवैया	एक पद में अलंकार
२	७	६१	,, ,,	चारों पदों में अलंकार
३	८	३५	,, ,,	संकर अलंकार
४	६	७५	,, ,,	संसृष्टि ,,
५	११	१३६	दोहा	एक ,,
६	१२	१३	कवित्त, सवैया	चित्र ,,
७	१३	२६	,, ,,	अनुप्रास, यमक
८	१४	२	,, ,,	वक्रोक्ति
६	१५	१५८	,, ,,	नखशिख
१०	१६	५७	,, ,,	षड्ऋतु वर्णन
११	१७	६१	,, ,,	नायिका भेद
१२	१८	२६	,, ,,	प्रौढ़ोक्ति

गोकुल कवि ने ग्रंथके आरम्भमें दी गई सूचीमें १६२ कवियों के नाम लिखे हैं। जाँच करनेपर उनकी संख्या १८६ ठहरती है।

'भूषण' नाम से यह अलंकार का ग्रन्थ मालूम होता है। अतः इसके तद्विषयक महत्त्व विचारकर पर लेना अप्रासंगिक न होगा। इसकी रचना रीतिकाल के अन्तिम चरण में हुई। तब तक हिन्दी काव्य शास्त्र पर्याप्त प्रौढ़ता प्राप्त कर चुका था। उसके सभी अंगों पर प्रचुर मात्रा में ग्रन्थ रचना हो चुकी थी जिसके फलस्वरूप जिज्ञासुओं को संस्कृत के ग्रन्थों का सहारा लिये बिना ही केवल हिन्दी अलंकार साहित्य द्वारा काव्यांगों का परिचय प्राप्त हो सकता था। केशव, देव, मतिराम, यशवंत

सिंह, भिखारीदास ऐसे आचार्य कवियों की कृतियाँ विशेष ख्याति लाभ कर चुकी थीं।

संस्कृत अलंकार शास्त्र ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से दो शैलियों में विभक्त था—प्राचीन और नवीन। प्रथम की परम्परा भामह और द्वितीय की जयदेव के अनुसरण पर चली। गोकुल ने अपनी रचनाओं में उक्त दोनों परम्पराओं का सामंजस्य उपस्थित किया। प्राचीन पद्धतिपर उन्होंने व्यंजना को काव्य की आत्मा और रस को मन माना किंतु अलंकार वर्णन में द्वितीय शैली के आचार्य जयदेव को ही अपना पथप्रदर्शक स्वीकार किया।

अलंकार बरने सुकवि, शब्दा अर्था दोइ।
चन्द्रा लोक विलोकियत, ग्रन्थ अवर लहि सोइ॥[1]

अथवा

कहे एक सै आठ लिखि चन्द्रालोक ललाम।[2]

से उनका मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है। इतना होने पर भी उन्होंने ऐसे अनेक अलंकारोंका वर्णन 'दिग्विजयभूषण' में किया है जो 'चन्द्रालोक' में उपलब्ध नहीं होते, जैसे—रसनोपमा, समस्तवस्तु विषयी रूपक, गम्योत्प्रेक्षा, गर्भोत्प्रेक्षा, अनुमान अन्योक्ति आदि। जयदेव ने 'इत्यर्थशतमलङ्कारा' कहकर १०० अर्थालंकारोंका वर्णन किया है, इसके बाद रसवत्, प्रेय आदि १५ अलंकारोंका निदर्शन विभिन्न आचार्यों के मत से किया है। शब्दालंकार (अनुप्रास के पाँच भेद मानकर) इसी में गिने गये हैं किन्तु 'दिग्विजयभूषण' में शब्दालंकारों का वर्णन पृथक् 'प्रकाश' में हुआ है। 'रसवत्' आदि को स्थान ही नहीं दिया गया है। अनुमान को प्रमाणालंकार न मानकर स्वतंत्र माना है। इस प्रकार इसके अंतर्गत अलंकारों की संख्या शब्दालंकारोंको छोड़कर ११५ है।

काव्यशास्त्र के प्रायः सभी ग्रंथों में लक्षणसाम्य के आधार पर अलंकारों का क्रम निश्चित किया गया है किन्तु उनका वैज्ञानिक विश्लेषण आज तक संभव न हो सका। आचार्य भिखारीदास ने इस दिशा में स्तुत्य प्रयत्न किये थे किन्तु वे भी पूर्णतया सफल न हो सके। दिग्विजयभूषण के दशम प्रकाश में गोकुल ने इस प्रकार के वर्गीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने केवल ३४ छंदों में १०० अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। कहीं-कहीं छः सात अलंकारों का एक ही छंद में समावेश करते हुये भी उन्होंने उनमें परस्पर

१. दिग्विजय भूषण, पृ०–३६।
२. वही पृ०–२५३।

सांकर्य नहीं होने दिया है। यहाँ अलंकारों के प्राचीन क्रम पर जोर न देकर उनके पारस्परिक लक्षण साम्य को ही ध्यान में रखा गया है। इससे उनका आचार्यत्व भलीभाँति प्रतिष्ठित हो जाता है।

ग्यारहवें प्रकाश में ग्रंथकार ने रीतिकालीन शैलीपर अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसके १८४ छंदों में १०१ अलंकारों का निर्देश हुआ है। गोकुल का अलंकारों पर इतना अनुराग है कि इस प्रकाश में १८ स्वरचित और १२६ अन्य निर्मित दोहों में विभिन्न अलंकारों के उदाहरण पुनः रखे गये हैं। ग्रंथ नाम की सार्थकता के विचार से इस 'प्रकाश' का विशेष महत्त्व है।

गोकुल कवि की मौलिक उद्भावना एवं स्वतंत्र कल्पना का परिचय एक पद अलंकार, भिन्नपद अलंकार, क्रम संसृष्टि, अक्रम संसृष्टि, संकर तथा ३६ प्रकार की दूतियों के स्वभाव एवं उनकी व्यवसायगत पारिभाषिक शब्दावली के श्लिष्ट प्रयोग द्वारा उद्देश्य कथन में मिलता है। संपूर्ण रीति साहित्य में ऐसे चमत्कार-पूर्ण वर्णन शायद ही अन्यत्र ढूढ़ने से मिल सकें।

५. नीति रत्नाकर

इस ग्रन्थ के मंगलाचरण तथा भूमिका में उल्लिखित निम्नांकित छंदों से यह विदित होता है कि इसके रचयिता स्वयं महाराज दिग्विजयसिंह हैं—

भूप दिग्विजयसिंह अरु, बंदि गुरुहि के पाय।
ग्रन्थ नीति रतनाकरै, आखर अर्थ बनाय॥
जुक्ति जथामति आपनी, अरु मत शास्त्र विचारि।
बनो अनबनो जो कछू, लीजै सुकवि सुधारि॥
दूषन हेरैं कूर कवि, भूषन सुकवि सँवारि।
अनबूझे खल खीझिहैं, रीझैं बूझि बिचारि॥
नाम दिग्विजय सिंह प्रगट, विजयभूप धरि नाम।
पद कोमलता कवित हित, आरोपित अभिराम॥

इसकी रचना का उद्देश्य है बलरामपुर तथा उनके समीपवर्ती राज्यों के निवासी विद्वानों, कर्मचारियों तथा प्रजावर्ग का पथ प्रदर्शन—

तुलसीपुर बलिरामपुर, भिनगा चरदह माँह।
अरु गिधरैयाँ आदि दै, जिते अमल नरनाह॥
कवि कोविद अमला प्रजा, अरु जे बुद्धि निकेत।
और प्रयोजन नहिं कछू, विरचे तिनके हेत॥

अध्यायों के अंत में दी गई पुष्पिका भी इसे महाराज दिग्विजयसिंह की ही रचना सिद्ध करती है—

"इति श्री जनवार वंशावतंस श्री महाराज अर्जुनसिंहात्मज श्री महाराज दिग्विजय सिंह बहादुर विरचिते नीति रत्नाकरे रसवर्णनं नाम सप्तदशः प्रकाशः समाप्तम् शुभमस्तु।"

परन्तु ग्रन्थान्त में दिये गये निम्नांकित छंद स्थिति का एक दूसरा ही स्वरूप सामने लाते हैं। उनसे यह गोकुल कवि की कृति प्रमाणित होती है। आश्रय दाता की आज्ञा से गोकुल कवि ने विविध लोकोपयोगी विषयों पर काव्य रचना कर नीति रत्नाकर का निर्माण किया। बीच-बीच में महाराज दिग्विजय सिंह के बनाये छंद भी यथास्थान रख दिये गये—

महाराज दिग्विजय सिंह, सब विद्या में प्रीति।
देखे ग्रंथ किताब बहु, सबै विलायत नीति॥
धर्म शास्त्र शुभ काव्य के, राजनीति सद्ग्रन्थ।
पढ़े गुने समुझे सुने, महाजनन के पन्थ॥
तिनको मत लै मंजु मति, शब्द सुअर्थ बखानि।
गोकुल सों आज्ञा दई, निज सेवक जिय जानि॥
कीजै छंद प्रबंध मैं, आखर अर्थ बनाय।
जाते समुझैं लोग सब, नीति चातुरी पाय॥
सो आज्ञा को पाय कै, गति मति निज ठहराय।
छंद रीति गोकुल रचे, गुरु गननाथ मनाय॥

इन तथ्यों के आधार पर 'नीतिरत्नाकर' असंदिग्ध रूप से गोकुल की रचना मानी जा सकती है। आश्रयदाता के प्रीत्यर्थ उन्होंने प्रसंगान्त में दी गई पुष्पिकाओं में रचयिता के स्थान पर महाराज दिग्विजय सिंह का ही नाम लिख दिया क्यों कि वह उन्हीं की प्रेरणा से लिखा गया था और उसके अन्तर्गत उनके छन्द भी संकलित थे। यह एक प्रकार से समर्पण की प्राचीन परिपाटी कही जा सकती है।

'नीति रत्नाकर' का निर्माण आश्विन शुक्ल १०, बुधवार सं० १९२० को आरंभ हुआ और फाल्गुन कृष्ण ११, बुधवार, सं० ११२१ को इसकी समाप्ति हुई—

सित दसमी कुवार बुधवासर, नभ॰ दृग॰ ग्रह॰ शशि॰ सम्मत आखर।
ग्रन्थ 'नीति रत्नाकर' कीन्हे, कवि कोविद मुनि जन मत लीन्हे॥

सम्वत शशि[1] हग[2] ग्रह[9] ससी[1], बुध हरिवासर वेस।
पच्छ असित फागुन भलो, कीन्हे पूर्ण नरेस॥

नाम से यह शुद्ध नीति सम्बन्धी रचना जान पड़ती है किंतु इसके अंतर्गत रस और नायिका भेद भी अंगोपांग सहित वर्णित हैं। सम्पूर्णग्रन्थ १६ प्रकाशों में विभक्त है, जिनके नाम हैं—राजवंश वर्णन, राजवर्णन, नीति वर्णन, विद्या वर्णन, गुणदोष वर्णन, प्रीति वर्णन, दान वर्णन, धन प्रकरण वर्णन, धैर्य वर्णन, कीर्ति वर्णन, लोभ वर्णन, झूँठ वर्णन, मद वर्णन, शब्द वर्णन, नरस्वभाव वर्णन और रस वर्णन।

इसका भी प्रकाशन जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से हुआ था।

६. चित्र कलाधर

चित्र कलाधर चित्र काव्य है। इसकी रचना गोकुल कवि ने आश्रयदाता के आदेशानुसार विजयादशमी, सोमवार सं० १६२१ में की थी।

चन्द्र[1] उभय[2] निधि[2] कलानिधि, सम्वत आश्विन मास।
शशि वासर दसमी विजय, ता दिन ग्रंथ प्रकास॥

इसका प्रकाशन जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से सं० १६२३ में हुआ।

आरंभ में महाराज दिग्विजय सिंह की वंशपरंपरा तथा राज्यश्री का विशद परिचय दिया गया है। उसके पश्चात् ४५ चित्रकाव्यों में आश्रयदाता का ऐश्वर्य अंकित है। इसकी रचना का प्रधान उद्देश्य काव्य प्रेमियों की चमत्कार वृत्ति को तृप्त करना है—

रचना चित्र कवित्त कौं, बरनत हौं कछु रीति।
मन रोचक सहृदयन के, पाय करै रुचि प्रीति॥
जो है आखर चित्र को, सोई लच्छन जानि।
चमत्कार अवलोकि कै, मन अनंद को मानि॥
भूप दिग्विजै सिंह के, प्रभुता पुंज प्रकास।
बरनौं चित्र कवित्त मैं, कीरति ललित विलास॥

चित्रकाव्यों की विषय सूची कवि के ही शब्दों में इस प्रकार है—

मध्याच्छर असि सिपर कटारी। धनु मुदगर तिरसूल बिचारी॥
चक्र दोय अंकुश मूसल कहि। चौकि पताका चन्द्रोदय लहि॥
गिरि सुमेरु डमरू है कमलय। बाग अरन्य तडाग जंत्र द्वय॥
छत्र दोय द्रुग नाग मुकुट लहि। हार सितार मृदंग वृच्छ कहि॥
चौपरि गज हैं हय गति जानौ। गोमुखिका कपाट पहिचानौ॥

मंत्री मति अरु मंत्रि अश्व गति। कामधेनु पद आदि बरन जति ॥
सुभग सर्वतो भद्र बखानौ। रचि पैंतालिस चित्र निदानौ ॥
यामें भेद अनेकन कीन्हे। मति अनुसार सुकवि मत लीन्हे ॥
संपूर्ण ग्रंथ लीथो में छपे हुए सुन्दर काव्यबद्ध चित्रों से सुसज्जित है।

७. पंचदेव पंचक

इसकी रचना सं० १६१४ में हुई। मूलग्रन्थ अप्राप्त होने से इसका विस्तृत परिचय देना संभव नहीं। नाम से स्पष्ट है कि यह पंचदेव (गणेश, शिव, दुर्गा, सूर्य और विष्णु) की स्तुति के रूप में लिखा गया था। बलरामपुर दरबार के आश्रित एक दूसरे कवि दलपतिराय डाह्या भाई नागर गुजराती के श्रवणाख्यान की भूमिका में गोकुल कवि के इस विषय पर कतिपय छंद संकलित हैं। इसका भी रचना काल सं० १६२४ ही है। सम्भव है यहीं से पाँच छंद लेकर एक स्वतंत्र ग्रंथ का निर्माण किया गया हो।

८. नीति मार्त्तंड

नीति विषय पर लिखी गई गोकुल कवि की यह दूसरी कृति है। इसका निर्माण काल है सं० १६२६। मिश्रबन्धु विनोद में उल्लिखित (संख्या २०६६) नीति प्रकाश इससे अभिन्न हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

९. सुतोपदेश

सुतोपदेश की रचना आषाढ़ कृष्ण ६, सं० १६२८ में हुई—

लहि कृष्ण रुद्र अषाढ़ जानो, महो इन्द्री भौन है।
अब याहि सत करि मानि लीजै, लौं प्रकृति चौ पौन है ॥

इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय है—पुत्र के कर्त्तव्यों और उसकी जीवन यात्रा में सहायक तत्त्वों का पिता के द्वारा उपदेश। इसके अन्तर्गत पितृभक्त पुत्रों—परशुराम, भीष्म, राम और नासिकेत; पितृ विरोधी पुत्रों—कंस, दुर्योधन और रुक्म, के पौराणिक आख्यान, सपूत-कपूत लक्षण और पुत्रशिक्षा के विभिन्न अंगों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। शैली इतिवृत्तात्मक है।

१०. वाम विनोद

यह स्त्री शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसकी रचना आश्विन शुक्ल १०, सं० १६२६ को हुई—

खंड[९] इभै[२] ग्रह[९] चन्द्रमा[१], संवत आश्विन मास।
तिथि दसमी सित सुभ धरी, वाम विनोद प्रकास ॥

वाम विनोद में स्त्रीशिक्षा का महत्व और बलरामपुर राज्य में १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध से महाराज दिग्विजय सिंह द्वारा की गई उसकी प्रचार व्यवस्था वर्णित है। गोकुल ने देशी शासन में भारत की दुर्व्यवस्था का वर्णन करते हुये लिखा है—

देख्यौ भारतवासी भूपति। आपुस में बिपरीत महा अति ॥
पृथु भूपति की तनया पिरथी। प्रतिपालक बिन भई निरथी ॥
जब सों पूरब नृप गत भयऊ। विक्रम जीत भोज तक रहेऊ ॥
तेहि पाछे अस भयो न कोऊ। विद्या महि पालन में सोऊ ॥
नगर ग्राम बहु लखो उजारी। ठौर ठौर बहु जंगल भारी ॥
मग बटपार चोर बहु लागैं। सौदागर तिनके भय भागैं ॥
पंथ चलत में डाकू लूटे। तीरथ पथ पथिकन को छूटे ॥

युग की इस पतनोन्मुख स्थिति में शिक्षा का भी ह्रास हुआ। पुरुष वर्ग में तो साक्षर लोग ढूँढ़ने से मिल जाते थे किन्तु स्त्रियों में उसका सर्वथा अभाव हो गया था—

मनुकुल में जे लखि नर नारी। तीनिउ जुग में पढ़ैं बिचारी ॥
धरम करम जाते रहि जाई। नर नारी वह पढ़ैं सदाई ॥
जब ते कलिजुग भूपति आयो। पुरुष लोग कछु पढ़त सधायौ ॥
तरुनी जन पढ़िबो तजि दीनी। तौ किमि कन्या पढ़ैं नवीनी ॥
पढ़े नहीं कन्या की माता। कौन पढ़ावै उत्तम बाता ॥

ऐसी स्थिति में स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से महाराज दिग्विजय सिंह ने बलरामपुर नगर तथा राज्य के विभिन्न भागों में कन्या पाठशालाओं की स्थापना की और गोकुल कवि को स्त्री धर्म शिक्षा विषयक एक ग्रन्थ लिखने का आदेश दिया। 'वाम विनोद' का निर्माण इसी परिस्थिति में हुआ—

कुल बनितन के धरम को, पतिब्रत जग व्यौहार।
लोक उक्ति रस युक्ति युत, विरच्यौ ग्रन्थ विचार ॥
नृप शासन रवि अद्रि उर, कीन्हें पुंज प्रकास।
बुद्धि विमल वारिज सदृश, विलसी भ्रमनिसि नास ॥
कन्यन के सुधरन के हेतू। विद्या पढ़ैं होय चित चेतू।
ताते एक रचत इतिहासा। नीति धरम बहु भाँति प्रकासा ॥
नारिधरम सिसु यह कथन, सम्मत ग्रन्थ अनेक।
पढ़े सुने ते बुद्धि वर, उपजै नीति विवेक ॥

कवि ने प्राचीन भारतीय साहित्य से अनेक पतिप्राणा एवं विदुषी स्त्रियों के उपाख्यान लेकर विषय को शिक्षा प्रद होने के साथ ही रोचक बनाया है। विषय सूची निम्नांकित है—

भूमिका, चारिनीति, विद्यागुण, पतिव्रता वर्णन, अनुसूया-सुशीला संवाद, शकुन्तला इतिहास, विवाह विधि वर्णन, पंचपुत्र वर्णन, नल दमयन्ती इतिहास, कौशिकमुनि-पतिव्रता-संवाद-वर्णन, धर्मव्याध इतिहास, सावित्री इतिहास, दुर्मति इतिहास, अज्ञात पतिते ब्याह, अन्धेरनगर नृप के न्याय वर्णन, सुपति इतिहास, ज्ञात पतिते ब्याह वर्णन, नीति धर्म वर्णन, गृहचरित्र ब्यौहार, कृषि ब्यौहार, सेवावृत्ति वर्णन, गुणवृत्ति वर्णन, वेदपुराण नाम, उपपुराण नाम, धर्मशास्त्रकर्ता नाम, विपत्ति निवारण कर्तव्य वर्णन, सूर्य और नृपकन्याहार के इतिहास, कुठौर सुठौर के लाभ तथा शुभ शिक्षा वर्णन।

११. चौबीस अवतार

यह बृहत्काय ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है—प्रथम खंड में बीस अवतारों—सनकादिक, वाराह, यज्ञपुरुष, हयग्रीव, नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, ऋषभ, पृथु, मीन, नरसिंह, कच्छप, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, मन्वन्तर, हंस, हरि, परशुराम और राम, के तथा दूसरे खंड में व्यास, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के चरित्र पुराणों के आधार पर लिखे गये हैं। अवतारचरित्र का कोश होने से ग्रंथकर्ताने इसे अवतारार्णव की संज्ञा दी है—

हरि चौबिस अवतार कथा अवतार आरनव।
भारी होवे हेत खंड बिधि कीन्हें संभव॥
प्रथम खंड में किये बीस सनकादिक गाये।
खंड दूसरे माहिं चारि अवतार बताये॥
कहि गोकुल कोविद कविन सों, चारि भाँति यहि जानिये।
लहि व्यास कृस्न फिरि बौध करि, कलि ते कलंकी मानिये॥

इसकी रचना महाराज दिग्विजय सिंह की इच्छानुसार गोकुल कवि ने ६ वर्षों के कठिन परिश्रम से की थी। विजयादशमी सं० १९२६ से इसका लिखना आरम्भ हुआ और समाप्ति सं० १९३२ के चैत्र मास में पड़ने वाली महावारुणी द्वादशी को हुई—

मास कुवार विजय दसमी वर। शास्त्र[६] उभय[२] ग्रह[९] ससि[१] संवत्सर।
श्रवन नक्षत्र सुभग गुरुवारा। ता दिन रचना रुचिर बिचारा॥

उभय[२] शंभु द्रिग[३] ग्रह[९] ससी[१], सनिवासर मधुमास।
महावारुनी द्वादसी, संपूरन परकास ॥

चैत्र शुक्ल ६, सं० १९३२ को यह जंगबहादुरी यंत्रालय, बलरामपुर से प्रकाशित हुआ। ग्रंथ को शास्त्रसम्मत रखने के लिए महाराज ने राजपंडित राजेश्वरी दत्त को संशोधक नियुक्त किया। आश्रयदाता के अनुरोध से इस पौराणिक काव्य को गोकुल ने यथाशक्ति समस्त काव्य गुणों से अलंकृत करने का प्रयत्न किया—

एक समय यह रुचि नृप कीन्हें। गोकुल सों आज्ञा इमि दीन्हें ॥
भाँति अनेकन छंद बनावहु। आदि जोति हरि के गुन गावहु ॥
वाचक लक्षक व्यंजक शब्दा। वाच्य लक्ष्य व्यंग्यादि अर्थदा।
वृत्ति रीति गुन भाव विभावा। हाव सहित बरनहु अनुभावा ॥
रस रसांग अपरांग बखानहु। रसवत् प्रेय उर्जस्वी ठानहु।
सहित समाहित बरनहु चारी। रसधुनि अरु धुनिभाव विचारी।
भाव शबल भावोदय भाषहु। भाव सांति अरुसंधि बखानहु ॥
शब्दा अर्थ अलंकृत नामा। व्यंग अलंकृत करहु बखाना ॥

इससे यह विदित होता है कि कवि का उद्देश्य अवतार कथाओं का भक्तिपूर्वक वर्णन करना नहीं, काव्यांगों की छटा दिखाकर चमत्कार उत्पन्न करना है। इससे रचना अत्यन्त साधारण कोटि की एवं आकर्षण हीन हो गई है।

१२. सोक विनास

सोक विनास शांत रस की रचना है। कहते हैं इसके निर्माण के कुछ ही दिनों पूर्व गोकुल कवि को पुत्रशोक सहना पड़ा था। उनका निम्नांकित छंद इसी घटना की ओर संकेत करता जान पड़ता है—

सब सोकन ते सोक सुत, प्रबल प्रान हर लेत।
पंचाली के बसन लौं, बाढ़त करत अचेत ॥
देही जब लौं देह मैं, जीवै नर यहि लोक।
पुन्यपुराकृत त्यहि उदै, लहै न सुत को सोक ॥
असनि असय पाखान ते, कठिन कठोरक कीय।
पुत्र मरे फाटै नहीं, सुत सोगी को हीय ॥

इसका निर्माण अगहन द्वितीया, सं० १९३२ को हुआ—

उभय[२] राम[३] ग्रह[९] चन्द्रमा[१], संवत अगहन मास।
तिथि दुतिया 'बृज' पूर करि, तादिन सोक विनास ॥

इसके एक वर्ष बाद सं० १९३३ में यह ग्रन्थ जंगबहादुरी यंत्रालय से छप कर प्रकाशित हुआ।

इसमें महाभारत, रामायण, गीता तथा भागवत आदि ग्रन्थों से तत्त्वज्ञान विषयक ऐसे आख्यान संकलित किये गये हैं जिनसे सांसारिक विषयों से विरक्त होकर जीव ईश्वरोन्मुख होता है।

१३. शक्ति प्रभाकर

यह अद्भुत रामायण का ब्रजभाषा में किया गया पद्यानुवाद है। इसकी भी रचना महाराज दिग्विजय सिंह की ही प्रेरणा से हुई—

अद्भुत रामायन कियौ, बाल्मीकि मुनि अच्छ।
अद्भुत चरित विचित्र अति, विजै जानकी स्वच्छ॥
कहत भयो नरनाह, वचन सुधारस घोलि वर।
ब्रजभाषा के मांह, गोकुल यह भाषा करो॥

इसकी समाप्ति सं० १९३३ के आश्विन महीने में हुई और चैत्र शुक्ल १५, सं० १९३६ को जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से यह छप कर प्रकाशित हुआ।

परंपरा से अद्भुत रामायण बाल्मीकि विरचित माना जाता रहा है किंतु है यह परवर्ती रचना। इसके कथानक में आदि से लेकर अन्त तक व्याप्त शाक्त प्रभाव के कारण ही इसे 'शक्तिप्रभाकर' अथवा 'जानकीविजय रामायण' की संज्ञा दी गई है।

जग जननी के पद अभिराम, मंजुल उतपल छवि सब जाम।
शक्ति प्रभाकर कीरति ग्रन्थ, विजय जानकी स्तुति सद पंथ॥

इसकी भूमिका में सम्पूर्ण राम कथा संक्षेप में दे दी गई है किंतु उसमें भी प्रधानता जानकी चरित की ही है—

प्रथमै राम जन्म हम भाषा। पुनि मुनि श्राप बरनि रुचि राखा॥
दंडक वन ते महातमन के। श्रोनित लीन्हे किये जतन के॥
नारद श्राप रमा को दीन्हा। कीन्ह पराजै जो कछु कीन्हा॥
मंदोदरी गर्भ से संभव। वैदेही के जन्म कहे भव॥
रामचन्द्र के विस्व स्वरूपा। भार्गौ के दरसन अनरूपा॥
रिष्यमूक परबत पर गयऊ। बात जात तहँ आवत भयऊ॥
रूप चतुरभुज राम देखाये। पवन तनय को ज्ञान लखाये॥
साथ सुकंठ मयत्री कीन्हा। बालि मारि नृप पद तेहि दीन्हा॥

तेहि दीन नृप पद रामचन्द्र समुद्र के तट पर गये।
तब लखन तन के ताप ते बारीस को सोखत भये॥
पुनि मरो मारो रावनहि निज नगर को आयो जबै।
अभिषेक समय मुनीस लोगन किये बहु अस्तुति तबै॥
मुसकाइ सीता हेत बरनी सहस मुख रावन कथा।
जहँ सैलमानस सुभग उत्तर बसै रजनीचर जथा॥
रघुनाथ पुहुकर दीप को चलि गए सोदर जुत तहाँ।
विकराल काली रूप सीता किये धारन छबि महा॥
बध किये रावन सहस मुख को गवन निजपुर को किये।
पुरजन सपरिजन मुनिन जन को मेटि श्रम सब सुख दिये॥

१४. सुहृदोपदेश

सुहृदोपदेश 'टिट्टिभि-उपाख्यान' का ब्रजभाषा में किया गया छंद बद्ध रूपान्तर है। गोकुल कवि ने इसे 'आत्मपुराण' नामक संस्कृत ग्रंथ से संकलित बताया है। ग्रंथ के अंत में दी गई पुष्पिका में इसका स्पष्ठ उल्लेख मिलता है:—

"इति श्री गुरुशिष्य संवाद जतन भाग्य निरूपन टिट्टिभि उपाख्याने आत्मपुराणे सुहृद उपदेश ग्रंथ गोकुल कायस्थ विरचिते तृतीयो प्रकाशः।"

इसकी रचना गोकुल ने आश्रय दाता के आदेश से सं० १९३५ के भादौं महीने में की थी—

महाराज दिग्विजै सिंह, राजन के महराज।
गोकुल को सासन दिये, भाषा भाषन काज॥
ताते बरनन करत हौं, यक टिट्टिभि पाखान।
सोखन हेत समुद्र के, जोरे जतन विधान॥
कीने बरवै छंद में, सर[५] गुन[३] ग्रह[९] ससि वार।
भाद्र मास प्रद भद्र सुभ, रचना किये विचार॥

आश्विन कृष्ण १३, सं० १९३५ में ग्रंथ यह जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से प्रकाशित हुआ।

इसकी रचना का उद्देश्य है भाग्य तथा उद्योग—तकदीर और तदबीर के आपेक्षिक महत्व का प्रतिपादन। गोकुल कवि का मत है कि जो कार्य बल और धन से साध्य नहीं समझा जाता, वह प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है—

विक्रम वित ते होत नहिं, कठिन काज जग जौन।
लहै कामना वृत्ति कौ, जोर जतन करि तौन ॥

संपूर्ण कथा गुरु-शिष्य-संवाद रूप में कही गई है। शिष्य भाग्यवादी है, और गुरु उपायवादी। दोनों अपने अपने मतका समर्थन प्रबल तर्कों से करते हैं। अंत में गुरु दोनों विचार धाराओं में बीज वृक्ष का सम्बन्ध बताते हुये समन्वय स्थापित करते हैं—

सत्य कहत हौं बात यह, दोऊ समता भाव।
जतन भागि को साथ है, बीज वृक्ष को न्याव ॥

कुछ विद्वानों ने एक ही ग्रन्थ में दो नाम देख कर भ्रमवश 'टिट्टिभ उपाख्यान' और 'सुहृदोपदेश' को दो पृथक् ग्रन्थ मान लिया है।

१५. मृगया मयंक

आखेट पर लिखी गई गोकुल कवि की यह एक महत्त्व पूर्ण कृति है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में इस विषय पर इनी गिनी रचनाएँ ही मिलती हैं। मंगलाचरण में परब्रह्म के शिकारी रूप की बंदना की गई है जो ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल ही है—

ऐसो पुरुष पुरान जो, प्रनमित वेद पुरान।
जाके आदि न अंत है, सबते बिलग समान ॥
विघ्न बाघ को करि भिंजन, गो सज्जन प्रतिपाल।
जग अटवी में करि अटन, अस वह खेल सिकार ॥

मृगया मयंक के आरंभ में शिकार के प्रति शास्त्रीय मत, शिकार करने योग्य जीवों का विवरण, शिकार करने के अधिकारी व्यक्ति, शिकारी की परिभाषा, शिकार के लाभ, उसके चौबीसगुणों तथा शिकार के निषिद्ध तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् महाराज दिग्विजय सिंह द्वारा बनकटवा (नैपाल तराई) में आयोजित शेर के शिकार का विशद वर्णन किया गया है। हिमालय की पर्वत श्रेणी से लगा हुआ यह प्रदेश आखेट के लिए कितना उपयुक्त है, इसका वर्णन गोकुल के ही शब्दों में सुनिये—

गिरिवर समीप अटवी अपार। यक योजन उत्तर है पहार ॥
बानर बराह गैंड़ा गँभीर। पंचानन अरना बाघ भीर ॥
दंती दराज बन सघन स्वच्छ। बहु बरन बिटप बिस्तार लच्छ ॥

इसी शिकार में घायल शेर के दहाड़ने से महाराज दिग्विजय सिंह का हाथी चौंककर भागा, दो पेड़ों के बीच फैली हुई लताओं में फँसकर वे हौदा समेत

पृथ्वीपर गिर पड़े। संयोग वश महाराज जिस स्थान पर गिरे उससे तीन गज की ही दूरी पर घायल बाघ लताओं में फँसा एक झाड़ी में तड़प रहा था। दिग्विजय सिंह को गहरी चोट आई। उस समय तो लखनऊ के एक बंगाली डाक्टर रामलाल चक्रवर्ती के उपचार से वे अच्छे हो गये किन्तु ढलती हुई आयु मे लगे हुए भीषण आघात से उनका शरीर जर्जर हो गया और इस घटना के दो ही वर्ष बाद उनका देहावसान हो गया। मृगया मयंक में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

इसकी रचना शिकारियों के मनोरंजनार्थ आश्विन शुक्ल १०, सं० १९३७ हुई—

संवत मुनि गुन ग्रह ससी, आस्विन दसमी सेत।
पूर किये यहि ग्रंथ को, भेद सिकारिन हेत॥

और मार्गशीर्ष शुक्ल १५, सं० १९३७ को, इसका प्रकाशन जंगबहादुरी यंत्रालय बलरामपुर से हुआ।

१६. दिग्विजय प्रकाश

'दिग्विजय प्रकाश' में गोकुल कवि ने आश्रयदाता का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त तिथिक्रमसे छन्द बद्ध किया है। इसकी रचना महारानी इंद्रकुँवरि के आदेश से हुई। एक वर्ष के निरन्तर प्रयास से आषाढ़ पूर्णिमा सं० १९४० को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ—

संवत नभ[0] श्रुति[4] नंद[9] ससि[1], सित असाढ़ ससि पूर।
श्री दिग्विजय प्रकास को, तब कीन्हें परि पूर॥
गनपति गौरी गौरि पति, दिनपति श्रीपति ध्यान।
श्री महारानी कामना, करि पूरन अनुमान॥

इसके अन्तर्गत महाराज दिग्विजय सिंह की जीवनी के साथ ही नवाबी शासन में अवध की अवस्था, चकलेदारों और नाजिमों के अत्याचार, छोटे छोटे राज्यों में निरन्तर होने वाले पारस्परिक युद्धों और नवाबी शासन के अन्तिम दिनों में अंग्रेज रेजीडेण्ट के प्रभाव का बड़ा ही रोचक एवं तथ्यपूर्ण वर्णन मिलता है। एक समकालीन विवरण होने से इसका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

सं० १९१४ (१८५७ ई०) के स्वतन्त्रता संग्राम के समय उत्तर भारत की विस्फोट पूर्ण स्थिति का चित्रण प्रत्यक्ष दर्शी कवि ने इन शब्दों में किया है—

कलकत्ता के तीर मुदाम । नगर दमदमा बसा ललाम ॥
तहाँ चमार कहे दिज बोलि अनरथ की गठरी उन खोलि ॥
लोटा देहु पियैं हम नीर । यह सुनि कह्यो विप्र गंभीर ॥
पानी तुमको देहुँ पियाइ । लोटा दीने धर्म नसाइ ॥
कारतूस जो बनो निहारि । गाय सुअर की चरबी डारि ॥
दाँतन ते तुमसे कटवाइ । साहेब लोग करहिं अस आइ ॥
तब तुमार कहँ रहै बिचार । सुनी तिलंगन बात बिकार ॥
वह चमार फिरिगो निज ग्राम । विप्र गये चलि अपने धाम ॥
जब साहेब पलटन के आइ । लोग कवाइद करैं तहाँइ ॥
कारतूस कहि काटहु दाँत । सुनतै किए तिलंगन घात ॥

दो०—सुने तिलंगा लोग सब, जो चमार कहि बात ।
ताते काटत नहिं तहाँ, कारतूस धरि दाँत ॥

तब साहेब अस कह्यो रिसाय । काटहु नहिं गोली को लाय ॥
बात न जानो साहेब सोइ । जो चमार कहि अनमिल जोइ ॥
तब पलटन वाले अनुमान । किये मंत्र मत धर्म प्रधान ॥
साँच चमार कहो वह बात । कीन्ह प्रतीत धर्म अब जात ॥
फिरि साहेब काटन कहि दाँत । सुनतै किये तिलंगन घात ॥
मारो एक बारही दागि । गोली साहेब के नहिं लागि ॥
साहेब गए जबै दुरि दूरि । तबै तिलंगन कलह बिसूरि ॥

दो०—लिखे तिलंगन हाल यह, सब पलटन के पास ।
धर्म हानि चाहत कियो, होउ सहाय सहास ॥

यहि प्रकार लिखि पत्र पठाये । गंगा गौरि क सौंह देवाये
यह हवाल सुनि पलटन लोगा । बदलि गए अँगरेज अजोगा ॥
जहाँ कहूँ अँगरेजन पावैं । लूटि लेहिं मारहिं धरि धावैं ॥
बाल बृद्ध नहिं करहिं विचारा । डारहिं मारि बाल बर दारा ॥

इसकी लपट अवध में भी फैली । सारा प्रान्त विद्रोह की अग्नि से धधकने लगा—

सूबे अवध माहिं भो सोरा । जितनी रही सैन चहुँ ओरा ॥
बदलि गए सब देस सिपाही । साहेब सासन मानत नाही ॥
मेरठ अंबाला दिल्ली में फिरी फौज तिलँगान ।
अँगरेजन के बालक बनिता तिनके बचे न प्रान ॥

आइ लखनऊ बेली गारद गारद करिबे काज।
जितक लखनऊ माँहि रहे थे इंगिलिस्तान समाज ॥
सो सब बेली गारद माहीं कियो घोर घमसान।
तोप तुपक तलवार लड़ाई कीन्हें कठिन बखान ॥
बिरजिसकदर तनय बेगम को बादसाह करि ताहि।
मम्मूँ खाँ नवाब आदिक को करि उजीर रुचि जाहि ॥

इस युद्ध में हिंदू मुसलमान एक होकर अँग्रेजी शासन के विरुद्ध लड़े थे। गोकुल कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ इसकी साक्षी हैं—

मिले तिलंगे मुसलमान को कहो दीन की हानि।
आपुस माहिं कसम को खाए गंग कुरान बखानि ॥
झंडा महा महमदी लीने देबे को निज प्रान।
जहाँ मिलैं अँग्रेजी चाकर अरु अँग्रेज प्रधान ॥
मारि जीव से लूटि लेहिं धन कियो उपद्रव आइ।
पुर बलिराम माहिं चलि आए दंगा दीन्ह मचाइ ॥

यह उल्लेखनीय है कि इस युद्ध में महाराज दिग्विजय सिंह ने विद्रोहियों का प्रत्यक्ष विरोध न करते हुये भी अँग्रेजों को शरण दी थी। अतः गोकुल कवि का दृष्टिकोण अपने आश्रयदाता की नीति के अनुकूल ही था। उक्त वर्णन में इसका क्षीण आभास मिलता है।

'दिग्विजय प्रकाश' एक प्रशंसात्मक जीवनी होते हुए भी अनेक उपयोगी तथ्यों तथा तिथियों से सुसज्जित है। गोकुल कवि का दावा है कि इसमें महाराज दिग्विजय सिंह के जीवन का ६३ वर्ष पर्यंत वृत्त केवल प्रत्यक्ष अनुभव तथा विश्वसनीय तथ्यों पर आधारित है। संदिग्ध एवं अनर्गल बातों को इसमें स्थान नहीं दिया गया है—

जनम बरष ते गनि लिखे, बासठि बरष प्रमान।
लागत तिरसठि बरष के, नृपकर प्रान पयान ॥
बरष बरष के कहि सबै, सुख दुख प्रभुता पाइ।
लिखत सत्य हम जानि सब, नहिं कछु झूठ मिलाइ ॥

१७. एकादशी महात्म्य

इसकी मूल प्रति उपलब्ध न हो सकी। श्री रामनारायण मिश्र के अनुसार इसका निर्माण काल सं० १९३९ है। संभवतः इसकी रचना महाराज दिग्विजय-सिंह के देहावसान् के पश्चात् महारानी इन्द्रकुँवरि के लिये हुई थी।

१८. महारानी धर्म चन्द्रिका

यह मनुस्मृति का पद्यानुवाद है। गोकुल कवि ने महाराज दिग्विजयसिंह की छोटी रानी, जयपाल कुँवरि, की इच्छानुसार सं० १६५४ के चैत्र महीने में इसे लिखकर पूरा किया था—

धरम सास्त्र में चित सदा, रहत अमल आचार।
मनुस्मृत्ति सब लोक के, निरनै जग ब्यौहार॥
निज सेवक महराज के, मन अनुगामी जानि।
गोकुल से सासन दिये, धर्म हेतु अनुमानि॥
स्वायंभू मनु जो किये, धर्म शास्त्र सुचि ग्रंथ॥
जामे चारिहु वेद के, सार अंस सुचि पंथ॥
भाषा छंद प्रबंध में, भाषा कीजे सोइ।
अल्प बुद्धि जो पुरुष हैं, देखि प्रेम जेहि होइ।
बेद बान ग्रह चन्द्रमा, सम्बत मास वसंत।
परिपूरन ता दिन किये, सुमिरि गुरू पद संत॥

इसका प्रकाशन उक्त रानी साहिबा के निजी व्यय से खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना (बिहार) से सं० १६६१ में हुआ।

१६. गद्दी प्रकाश

गोकुल कवि की यह अंतिम रचना महाराज दिग्विजय सिंह के उत्तराधिकारी (दत्तकपुत्र) महाराज भगवती प्रसाद सिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर आषाढ़ कृष्ण ८, सं० १६५७ (१६ जुलाई, सं १६०० में) लिखी गई थी। इसमें मुख्य रूप से उक्त उत्सव की धूमधाम, नाच तमाशा, दरबार, विशाल भोज, दानादि का विस्तार से वर्णन किया गया है। गद्दीनशीनी के पहले महाराज भगवती प्रसाद सिंह की नाबालिगी में बलरामपुर राज्य कई वर्षों तक शासकीय प्रबंध (कोर्ट आफ वार्ड्स) में रहा था। उस समय अंग्रेज प्रबंधकों के अत्याचारपूर्ण शासन से त्रस्त प्रजा ने जिस उत्साह के साथ महाराज के अभिषेक में अपना हार्दिक उल्लास व्यक्त किया था, उसकी झलक गोकुल कवि के इन छंदों में मिलती है—

उत्पल ऐसे फूलि उठे हैं प्रजा के नैन;
बैरी अवनीसन के बल गुन टूटे हैं।
चक्र चंचरीक से अनन्द अमला के बृंद,
बार अंध अहित के मद पात्र फूटे हैं॥

दुरे दुष्ट चोर चंड उडगन चंद मंद,
भानु भूप के प्रकास राजसिरी जूटे हैं।
ब्यौम॰ विधि॰ ग्रह९ चंद्र१ जौलाई ग्रह९ चंद्र१
आजु महाराज राज कोरट से छूटे हैं॥
छूटे भय भीति ते रियासत के काम काजी,
जनपद जन के सँकोच सोच छूटे हैं।
छूटे हैं वियोग के विषाद ते कलत्र मित्र,
महाराज धाम रहे विवश ते छूटे हैं॥
छूटे दुःख दारिद सुजन कवि कोविद के,
गोकुल के मन के मलाल मैल छूटे हैं।
छूटे हैं तमासे तोम अमला जो वोरट के
आज महाराज राज कोरट से छूटे हैं॥

ग्रंथके अंत में बलराम पुर राज्य के पुराने कर्मचारियों, ठेकेदारों और प्रजा में वितरित खिलअत तथा पुरस्कार का ब्यौरा दिया गया है।

इसका प्रकाशन बलरामपुर के राजकीय यंत्रालय (प्राचीन जंगबहादुरी लीथो प्रेस) से पौष कृष्ण ५, सं० १६५८ को हुआ।

अब तक गोकुल कवि की जिन १६ पुस्तकों का विवरण दिया गया है वे सभी बलरामपुर दरबार की छत्रछाया में निर्मित हुई थीं। इनके अतिरिक्त उनकी ऐसी तीन अन्य रचनाओं का पता चला है जो दूसरे सामन्तों के लिए लिखी गई थीं। वे हैं—कृष्णदत्त भूषण, अचल प्रकाश और महावीर प्रकाश। प्रस्तुत लेखक को ये उपलब्ध न हो सकीं। अतः नीचे दिये गये उनके संक्षिप्त विवरण से ही संतोष करना चाहिये। इनमें से किसी का भी रचनाकाल ज्ञात नहीं है। मेरा अनुमान है कि उनकी रचना गोकुल कवि ने बलरामपुर दरबार में स्थायी आश्रय ग्रहण करने के पूर्व की थी।

२०. कृष्णदत्त भूषण

यह सिंहाचन्दा (गोंडा) के राजा कृष्णदत्तराम पाण्डे के लिए लिखा गया।

२१. अचल प्रकाश

इसकी रचना मेहनौन (गोंडा) के राजा अचल सिंह के नाम पर हुई थी।

२२. महावीर प्रकाश

पयागपुर (बहरायच) के ठाकुर विजयराज सिंह के आश्रय में भी गोकुल कुछ समय तक रहे थे। 'महावीर प्रकाश' की रचना उसी समय हुई।

गोकुल कवि की इस विशाल ग्रन्थ सूची से ही उनकी असाधारण काव्य प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। काव्यशास्त्र, नीति-दर्शन, जीवनी, आखेट आदि विभिन्न विषयों से साहित्य भंडार को समृद्ध करने के साथ ही अनेक अज्ञात एवं अल्पख्यात कवियों को प्रकाश में लाकर उन्होंने राष्ट्रभाषा की जो सेवा की है वह अद्भुत एवं स्पृहणीय है।

कवि-परिचय

१. अकबर

मध्यकालीन मुसलमान शासकों में हिन्दी-साहित्य का सर्वाधिक विकास अकबर के ही राजत्वकाल (सं १६१३–१६६२) में हुआ। नरहरि तथा गंग ऐसे कवीश्वरों और तानसेन ऐसे अप्रतिम संगीताचार्य को प्रश्रय देकर उसने राजनीतिक उथल-पुथल से निराश्रित दरबारी कवियों की परंपरा को ही पुनरुजीवित नहीं किया, प्रकारान्तर से तुलसी, सूर और रहीम ऐसी विभूतियों की साहित्यिक प्रतिभा के विकास का भी मार्ग प्रशस्त कर दिया। इतना ही नहीं, ब्रजभाषा में स्वयं काव्य रचना कर इस उदार एवं दीर्घदर्शी शासक ने हिन्दी भाषा को विशेष गौरव प्रदान किया। हिन्दी एवं हिन्दू संस्कृति के प्रति अकबर का अगाध प्रेम, उनकी 'रामसीय भाँति' की स्वर्ण मुद्राओंसे व्यक्त होता है,[१] जो मृत्यु के कुछ ही महीने पूर्व सं० १६६२ में प्रचारित की गई थी।

'दिग्विजय भूषण' में इनके तीन शृंगारी छंद उदाहृत हैं। उनमें से दो में 'साह अकब्बर' की छाप है, एक में केवल 'अकबर' की। ग्रियर्सन साहब ने 'अकबर राय' छापसे लिखे गये कतिपय छंदों का उल्लेख किया है किन्तु उन्हें तानसेन विरचित बताया है[२]। इधर श्री मयाशंकर याज्ञिक ने अकबर बादशाह की स्फुट रचनाओं का एक संकलन 'अकबर-संग्रह' नाम से प्रकाशित किया है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि अकबर की हिन्दी रचना में बड़ी रुचि एवं गति थी[3]। ऐसी स्थिति में ग्रियर्सन साहब की यह धारणा कि अकबर की छाप से प्राप्त सभी रचनायें तानसेन विरचित हैं, ठीक नहीं जँचती। इस प्रकार की संभावना केवल उन्हीं छन्दों के विषय में स्वीकार की जा सकती है जिनमें आश्रयदाता को सम्बोधित करने के प्रसंग में 'अकबर' का नाम रखा गया है। उनके रचयिता तानसेन भी हो सकते हैं और अन्य दरबारी कवि भी। शिवसिंह जी

---

१. विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' पृष्ठ ११० (भगवती प्रसाद सिंह)।

२. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास, पृष्ठ ११४।

1. Akbar composed distichs in Brijbhakha and if any Indo Aryan language could be labled as a Badshahi Boli it was certainly Brijbhakha.

—Indo Aryan and Hindi, P. 180—Dr. S. K. Chatterjee

ने 'सरोज' में अकबर के जो छन्द संकलित किये हैं उनका आधार 'दिग्विजय-भूषण' ही है।

२. अन्य कवि—प्रथम

३. अन्य कवि—दूसरे

४. अन्य कवि—तीसरे

५. अन्य कवि—चौथे

६. अन्य कवि—पाँचवें

७. अन्य कवि—छठवें

८. अन्य कवि—सातवें

९. अन्य कवि—आठवें

१०. अनीस

हिन्दी संसार को इस कवि का केवल एक छन्द ज्ञात है और उसीके आधार पर इसे जितनी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है उतनी पचासों ग्रन्थों से साहित्य भांडार को भरने वाले कवियों को भी नसीब न हो सकी। कहना न होगा कि उस छंद (सुनिए विटप हम पुहुप तिहारे······) को काव्य रसिकों तक पहुँचाने का मुख्य श्रेय 'दिग्विजय भूषण' को ही है। शिवसिंह जी ने उसे सरोज में वहीं से लेकर संकलित किया। इसके बाद ही उसका व्यापक प्रचार हुआ।

मिश्रबन्धुओंने दलपतराय वंशीधर के 'अलंकार-रत्नाकर' में भी अनीस के छन्द संग्रहीत बताये हैं। इस ग्रंथ की रचना सं० १७९८ में हुई अतः अनीस निश्चित रूप से इसके पूर्ववर्ती कवि माने जा सकते हैं, किन्तु सरोजकार के अनुसार इनका उपस्थिति काल सं० १९११ है। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि अनीस का आविर्भाव कब हुआ। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि १८ वीं शतीके अंतिमचरण तक ये पर्याप्त ख्याति लाभ कर चुके थे। अलंकार-रत्नाकरमें इनके छन्दों का संकलन इसी तथ्य का द्योतक है।

११. अनुनैन

शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १८९६ बताया है और नख-शिख पर लिखी गयी इनकी एक रचना की प्रशंसा की है। परवर्ती इतिहास लेखकों— ग्रियर्सन तथा मिश्रबन्धुओं, ने इस सम्बन्ध में सरोजकार का ही अनुसरण किया है। अनुनैन की जीवनी तथा कृतियों पर अन्य स्रोतों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। दिग्विजय भूषण में इनके तीन छन्द आये हैं, जिनमें से दो नखशिख के हैं एक षड्ऋतु वर्णन का।

१२. अभिमन्यु

ये खानखाना अब्दुर्रहीम के आश्रित कवि थे। मिश्रबन्धुओं ने आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखे गये इनके कुछ छन्दों का उल्लेख किया है। रहीम का देहावसान सं० १६८३ में हुआ। शिवसिंहजी ने अभिमन्यु का उपस्थिति काल सं० १६८० माना है। अतः अभिमन्यु निर्भ्रान्त रूपसे रहीम के समकालीन ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण में इनका एक छन्द उदाहृत है। इनकी कोई सम्पूर्ण कृति नहीं मिलती।

१३. अमर

भूषणकार ने 'अमर कवि' के नाम से दो छन्द उदाहृत किये हैं। उक्त दोनों कवित्तों में उस इतिहास प्रसिद्ध घटना का चित्रण किया गया है जिसमें जोधपुर के महाराज अमरसिंह ने अपमानजनक व्यवहार से उत्तेजित होकर भरे दरबार सलावतखाँ का वध किया था और शाहजहाँ पर आक्रमण कर दिया था। उन दोनों छन्दों में अमरसिंह का नाम आया देखकर गोकुल कवि ने भ्रान्तिवश उन्हें ही उनका रचयिता मान लिया। वास्तव में दोनों छन्द अमरसिंह के दरबारी कवि रघुनाथराय के हैं। संयोगवश उनमें से एक में रघुनाथराय की छाप भी दी हुई है। अतः अमर कवि अथवा अमरसिंहका नाम भूषणकार ने कवियों की श्रेणी में भूलकर ही रख दिया है। अमर सिंह की ख्याति रघुनाथराय और बनवारी ऐसे सुकवियोंके आश्रयदाता रूप में ही है, कवि रूप में नहीं।

१४. अमरेश

ये गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन शृंगारी कवि थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं०१६३५ माना है और इनकी कवितायें कालिदास कवि के हजारा में संकलित बताई हैं। इससे भी ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती कवि ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं, जिनमें से एक सरोज में संग्रहीत है।

१५. अयोध्या प्रसाद बाजपेयी 'औध'

औध कवि भूषणकार के समकालीन एवं सुपरिचित थे। ये सातन पुरवा, जिला रायबरेली के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका आविर्भाव सं० १८६० में हुआ। इनके पिता पं० नन्दकिशोर बाजपेयी पंडिताई तथा लेनदेन की आय से घर का खर्च चलाते थे। औध कवि ने आरम्भमें अपनी जन्मभूमि के निकटस्थ हसनपुरवा नामक गाँव के निवासी गजाधर प्रसाद से व्याकरण, ज्योतिष एवं काव्य शास्त्र का अध्ययन किया और उन्हीं से काव्य रचना भी सीखी। इनके कवि जीवन का अधिकांश राजदरबारों में बीता। इनके आश्रयदाताओं में महाराज दिग्विजय सिंह (बलरामपुर-गोंडा), राजा सुदर्शन सिंह (चन्दापुर-बहरायच), राजा हरिदत्त सिंह (बौंड़ी-बहरायच), राजा मुनीश्वर बख्शसिंह (मल्लापुर-सीतापुर) और पाण्डे कृष्णादत्तराम (गोंडा) विशेष उल्लेखनीय हैं। राजा हरिदत्तसिंह द्वारा प्रदत्त 'बाजपेयी का पुरवा' (जिला बहरायच) में औध कवि के वंशज अब तक बसे हुए हैं। १८५७ की क्रान्ति के पश्चात्

बौंड़ी राज्य के साथ ही बाजपेयी जी की माफी भी जब्त हो गई। अतः औध कवि अपनी जन्मभूमि को लौट आये।

प्रसिद्ध है कि एक बार अपनी ससुराल, कन्नौज, की यात्रा में इनकी भेंट पद्माकर से हुई थी और वे इनकी रचनायें सुनकर बहुत प्रभावित हुए थे। उन्हीं की प्रेरणा से इन्होंने नरकाव्य रचना से विरत होकर भक्ति-काव्य लिखना आरंभ किया था। अयोध्या के प्रसिद्ध महात्मा पं० उमापति, बाबा रघुनाथ दास और महात्मा युगलानन्यशरण इन पर बड़ी कृपा रखते थे। बलरामपुर नरेश दिग्विजय सिंह ने 'रघुनाथ शिकार' पर इनके छन्द महात्मा युगलानन्य शरण के यहाँ, लक्ष्मण किला (अयोध्या) पर, सुना था। उससे प्रभावित होकर वे इन्हें अपने साथ बलरामपुर ले आये थे और नौ मास तक बड़े सम्मान के साथ रखकर विदा किया था।

अपने जीवन का अन्तिम समय इन्होंने अयोध्या में ही बिताया और वहीं कार्तिक शुक्ला २, सं० १९४२ में, ८२ वर्ष की आयु में इनका साकेत-वास हुआ।

गोकुल कवि से इनकी भेंट बलरामपुर दरबार में हुई थी। उन्होंने निम्नांकित कवित्तमें वाजपेयीजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व का अच्छा चित्र खींचा है—

वर भाल पै भावै विभूति भली
सुभ चंदन चंद प्रभा ससि सेखर।
वच्छ पै माल लसै रुद्राछ
सुआसन योग के अन्य जुगेस्वर॥
पतिवर्तनि मैं गिरिजा सी तिया
गननायक पुत्र सों पुत्र सुरेस्वर।
'बृज' औध प्रसाद को रूप विसाल,
बिना विष व्यालके दूजो महेस्वर॥

इसीलिये समकालीन कवि होते हुये भी इनकी रचनायें दिग्विजय भूषण में संकलित की गईं। अब तक इनकी निम्नांकित कृतियाँ खोज में उपलब्ध हो चुकी हैं—अवध सिकार, राग रत्नावली, साहित्य सुधा सागर, राम कवितावली, छन्दानन्द, शंकर-शतक, ब्रजब्रज्या, चित्रकाव्य और रास सर्वस्व।

१६. अहमद

इनका असली नाम ताहिर अहमद था। ये आगरा के निवासी और मुगल बादशाह जहाँगीरके समकालीन थे। 'कोकसार' नामक अपनी एक रचना में आत्म परिचय देते हुये ये लिखते हैं—

संवत सोरह सै बरस, अठहत्तरि अधिकाय।
बदि असाढ़ तिथि पंचमी, कहि कीन्ही समुझाय॥
चारि चक्र सब बिधि रचे, जैसे समुद गंभीर।
छत्र धरे अविचल सदा, राज साहि जहँगीर॥

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँगीर के शासन काल (सं० १६६२-१६८४) में ये विद्यमान थे। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इन्हें कहीं सूफी और कहीं वैष्णव मतावलम्बी बताया गया है। जो भी हो, इनकी रचनाओं में श्रृङ्गारिकता का गहरा पुट मिलता है। उनकी नामावली ही इसे स्पष्ट कर देती है—अहमद बारहमासी, कोकसार, रतिविनोद, रसविनोद और सामुद्रिक।

दिग्विजय भूषण में इनके दो कवित्त उद्धृत हैं। साहित्य क्षेत्र में इनकी प्रसिद्धि के मुख्य आधार ऐसे ही कतिपय भावपूर्ण छन्द हैं। कुछ नमूने देखिये—

काह करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
अहमद ढाक सुहावनो, जो पीतम गलबाँह॥
मन बिहंग तौ लौं उड़ै, नेम सघन बन माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आवै नाहिं॥
पलटि परत ताकी दसा, जो सनेह रंग रात।
और अंग मिटि कै सबै, नैना ही ह्वै जात॥
नैना लगे कुठाउँ, बिन देखे नहिं चैन चित।
अहमद कैसे जाउँ, गाढ़ी चौकी लाज की॥

१७. आलम

इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। उस समय इनका क्या नाम रखा गया था—पता नहीं। काव्य रचना में आरम्भ ही से इनकी रुचि थी। एक दिन इन्होंने अपनी पगड़ी किसी रंगरेज को रंगने के लिये दी। उसकी स्त्री ने रंगने के उद्देश्य से जब पगड़ी पानी में भिगोना आरंभ किया तो खूँट में कागज का एक टुकड़ा बँधा मिला। उसमें लिखा था—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

उसने तत्काल ही दोहे का उत्तरार्ध इस प्रकार पूरा कर उसी कागज पर लिख दिया—

कटि को कंचन काटि बिधि, कुचन मध्य धरि दीन ॥

रँगाई के बाद पंडितजी को जब पगड़ी वापस मिली तो उसके खूँट में बँधे हुए कागज को खोलने पर दोहे की दूसरी पंक्ति पढ़कर वे विस्मय विमुग्ध हो गये। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह रचना रंगरेज की स्त्री 'शेख' की है। पंडित जी उस विदग्धा रंगरेज़िन को हर कीमत पर अपनाने का प्रयत्न करने लगे। अंत में जब वह किसी भाँति अपना धर्म परिवर्तन करने पर राजी न हुई तो पंडितजी ने स्वयं ही पैतृक संस्कारों को तिलांजलि देकर उससे निकाह कर लिया। आलम नाम उनके इसी यवनी अनुरक्त चोले का पड़ा। पुराने धर्म के साथ पुराना नाम भी मिट गया। प्रसिद्धि आलम की ही हुई।

कहते हैं शेख से उत्पन्न आलम के जहान नामक एक पुत्र था। आलम के आश्रयदाता ने एक बार शेख को दरबार में बुलाकर मज़ाक में पूछा 'क्या आलम की औरत तुम्हीं हो?' शेख ने तत्काल उत्तर दिया 'हाँ जहाँपनाह! जहान की माँ मैं ही हूँ?' शेख की इस हाज़िरजवाबी से सभी आश्चर्यचकित हो गये। इश्क़ की नई लहर ने व्यक्तित्व को सीमित करने वाले सभी लौकिक बंधन तोड़कर उनके हृदय को आलम (विश्व) की विशालता प्रदान कर दी।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ग्रियर्सन तथा मिश्र-बन्धुओं के आधार पर इन्हें औरंगजेब के दूसरे लड़के शाहज़ादा मुअज्ज़म (बहादुर शाह) का आश्रित माना है और इनका कविता काल सं० १७४० से सं० १७६० तक निश्चित किया है। परन्तु इधर श्री मयाशंकर याज्ञिक ने आलम के आविर्भाव सम्बन्धी जो तथ्य उपस्थित किये हैं उनसे ये अकबर के समकालीन ठहरते हैं। इनका कविताकाल इस नई खोज के अनुसार सं० १६४० से सं० १६८० तक ठहरता है।

अब तक आलम की केवल दो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—आलमकेलि और माधवानल-काम-कंदला। इनके अतिरिक्त विभिन्न काव्यसंग्रहों में इनकी स्फुट कवितायें पाई जाती हैं। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद के पास आलम और शेख के ५०० के लगभग छंद संग्रहीत थे।

दिग्विजय भूषण में इनके चार छंद उदाहृत हैं।

१८. इन्दुकवि

सरोजकार ने इनका उपस्थिति काल सं० १७७३ निश्चित किया है। किस आधार पर ? इसका उल्लेख नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इनकी जीवनी विषयक कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। गोकुल कवि ने इन्दुकवि के दो कवित्त उदाहृत किये हैं, जिनमें से एक भूषण के प्रसिद्ध छन्द 'नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं' का ही कुछ परिवर्तित रूप है। संयोगवश शिवसिंह जी ने भी इन्दुकवि की रचनाशैली के नमूने में यही छन्द उद्धृत किया है। इससे दिग्विजय भूषण और 'शिवसिंह सरोज' के इन्दु कवि की अभिन्नता असंदिग्ध हो जाती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इन्दु भूषण के परवर्ती हैं। शिवसिंह जी द्वारा पूर्व निर्दिष्ट उदयकाल भी इसकी पुष्टि करता है।

१९. उदयनाथ कविन्द

ये 'हजारा' के रचयिता प्रसिद्ध कवि कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। असल नाम उदयनाथ था। कविन्द अथवा 'कवीन्द्र' की उपाधि इन्हें अपने गुण-ग्राही आश्रयदाता अमेठी (जिला सुलतानपुर) के राजा गुरुदत्त सिंह से मिली थी।

कालिदास कवि के सुवन, उदयनाथ सरनाम।
भूप अमेठी के दियो, रीझि कविन्द सुनाम॥

इनका जन्म सं० १७३६ में बनपुरा (अंतर्वेद) में हुआ था। अठारहवीं शती के प्रसिद्ध युद्ध वीर राजाओं की छत्रछाया प्राप्त कर इनकी वाणी जैसी ओजपूर्ण कृतियों की रचना में समर्थ हुई और उससे इन्हें जितनी प्रतिष्ठा मिली उतनी भूषण को छोड़कर अन्य किसी वीरकाव्यप्रणेता को प्राप्त न हो सकी। अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह, असोथर के राजा भगवन्त राय खीची, आमेर (जयपुर) के महाराज गजसिंह और बूंदी नरेश राव बुद्ध सिंह हाड़ाकी प्रशस्ति में लिखी गई इनकी रचनायें हिन्दी वीरकाव्य की अमूल्य निधियाँ हैं। रीतिकालीन कवि होने से श्रृंगार-निरूपण भी इनकी काव्य रचना का प्रमुख विषय रहा। रसचन्द्रोदय (सं० १८०४), विनोदचन्द्रिका और योगलीला इस शैली में लिखी गयी इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

गोकुल कवि ने इनके दो छन्द उदाहृत किये हैं—एक बूँदी के राजा गजसिंह की प्रशंसा में है और दूसरा नायिका भेद सम्बन्धी। ये दोनों छँन्द सरोज में उद्धृत हैं किन्तु वहाँ उनमें से एक उदयनाथ बंदीजन बनारसी के नाम लिखा

गया है। ऐसी गलती ग्रन्थकार ने भ्रान्तिवश की है। वस्तुतः ये दोनों रचनायें प्रसिद्ध उदयनाथ कविन्द की ही हैं।

२०. ऋषिनाथ

ये असनी (जिला फतेहपुर) के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। काशिराज बरिबंड (बलवन्त) सिंह के दीवान, रघुबर दयाल के पिता, इनके आश्रयदाता थे। उसी सम्बन्ध से ये कुछ दिन काशिराज के भाई देवकीनन्दन सिंह के भी पास रहे थे। इनके पुत्र ठाकुर, पौत्र धनीराम और प्रपौत्र सेवक, सभी अपने समय में काशी के प्रतिष्ठित कवि माने जाते थे। इनमें अन्तिम, सेवक कवि, भारतेन्दु जी के समसामयिक थे।

ऋषिनाथ की एक मात्र प्राप्त रचना 'अलंकारमणिमंजरी' है, जो वसंत पंचमी, सोमवार, सं० १८३० को लिखकर पूरी हुई थी। दिग्विजय भूषणमें इनका एक छंद नायिका भेद पर दिया गया है।

२१. कविदत्त

दिग्विजय भूषण में कविदत्त और दत्तकवि नामक दो कवियों का पृथक् निर्देश करते हुए गोकुल कवि ने उनमें से प्रत्येक की रचनाओं से अलग अलग छन्द उद्धृत किए हैं और इस प्रकार उन्हें दो भिन्न व्यक्ति माना है। कविदत्त के दो और दत्तकवि का एक कवित्त उदाहृत है। किन्तु उक्त दोनों कवियों की उद्धृत रचनाओं में छाप 'कविदत्त' की ही है। इससे यह विदित होता है कि वास्तव में उनके रचयिता एक ही हैं। शिवसिंह जी का भी यही मत है।

कविदत्त अन्तर्वेद में गंगातट पर स्थित जाजमऊ के निवासी थे। अपना परिचय देते हुए ये लिखते हैं:—

अन्तर्वेद पवित्र महा असनी औ कनौज के बीच बिलास है।
भागीरथी भवतारनि के तट देखत होत सो पातक नास है॥
देव सरूप सबै नरनारी दिनौ दिन देखिये पुन्य प्रकास है।
जज्ञ निनानबे कीने जजाति सो जाजमऊ कविदत्त को वास है॥

इनके मुख्य आश्रयदाता चरखारी नरेश खुमानसिंह (शासन काल सं० १८१२-३६) थे। ये कुछ दिन टिकारी (बिहार) के राजकुमार फतेसिंह के यहाँ भी रहे थे। इनकी तीन रचनायें मिलती हैं—लालित्यलता, सज्जनविलास और स्वरोदय।

२२. कविन्द

भूषणकार ने एक ही कवि, उदयनाथ 'कविन्द' को उसकी कृतियों में उल्लिखित वास्तविक नाम (उदयनाथ) तथा उपनाम (कविन्द) की पृथक् पृथक् छापों के आधार पर, भ्रान्तिवश, दो भिन्न कवि मान लिया है। ये कालिदास त्रिवेदी के पुत्र उदयनाथ ही हैं जिन्हें अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह ने 'कविन्द' अथवा 'कवीन्द्र' की उपाधि दी थी।

२३. कविराज

ये कंपिला (जिला फर्रुखाबाद) निवासी प्रसिद्ध कवि सुखदेव मिश्र हैं, जो कविराज छाप से काव्य रचना करते थे। 'कविराज' की उपाधि इन्हें राजा राजसिंह गौड़ से प्राप्त हुई थी। इनका जन्म सं० १६६० के लगभग हुआ था। काशी के विख्यात विद्वान् कवीन्द्राचार्य सरस्वती इनके काव्य गुरु थे। असोथर के राजा भगवन्त राय खीची, डौंड़िया खेरा (बैसवाड़ा) के राव मर्दन सिंह, औरंगजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मतिसिंह आदि अनेक काव्य प्रेमी राजाओं का आश्रय प्राप्त कर इन्होंने पर्याप्त यश एवं सम्पत्ति अर्जित किया। इनका अन्तिम समय मुरारमऊ (जिला रायबरेली) के राजा देवीसिंह के यहाँ बीता, जिनसे इन्हें दौलतपुर नामक गाँव वृत्तिरूप में मिला था। सुखदेव मिश्र के वंशज अब तक यहाँ बसे हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इसी गाँव के रहनेवाले थे। मिश्र जी की निम्नांकित ९ कृतियाँ मिलती हैं—अध्यात्म प्रकास (सं० १७५५), फाजिल अली प्रकास (सं० १७३३), नखसिख, मरदान-रसार्णव (सं० १७३६), ज्ञान प्रकाश (सं० १७५५), रसरत्नाकर, पिंगलछन्दविचार, पिंगल वृत्तविचार (सं० १७२८) और छन्द निवाससार। इनके अतिरिक्त दशरथराय और शृङ्गारलता भी इन्हीं की रचनायें कही जाती हैं।

इनका काव्यकाल सं० १७२० से लेकर सं० १७६० तक माना जाता है।

गोकुल कवि ने 'कविराज' तथा 'सुखदेव' को दो भिन्न कवि माना है और उनकी रचनायें पृथक्रूपेण उदाहृत की हैं। भूषणकार की यह भ्रान्ति उपाधि को नाम मान लेने से हुई है। यही नहीं सुखदेव नामक दो कवियों— सुखदेव मिश्र और सुखदेव दोसर (द्वितीय) की रचनाओंका दो पृथक् नामोंसे उल्लेख करने में भी इसी प्रकार की भूल हुई है। मेरी राय में वे एक ही सुखदेव की लिखी हैं जिनका वृत्त ऊपर वर्णित है। सुखदेव (प्रथम) के दिग्विजय

भूषण में उदाहृत एक छन्द से विदित होता है कि वे किसी अनूपसिंह नामक राजा के भी दरबार में गये थे। वहाँ यथोचित रूप से पुरस्कृत न होने पर उन्होंने यह छन्द लिखा था—

तेरे चलाये चल्यौं घर ते डर्प्यौं नहिं नीर समीर औ धूपैं।
पाल्यौं मैं तोहि हिये हित कै हठ तेरो सी मांग्यौ हहा करि भू पै॥
ऐसे सखा 'सुखदेव' सुलोभ है तोर सनेह ते सोरि सरूपैं।
मेरी बिदाई के बार फटीक ह्वै जाइ मिल्यौ नृप सिंह अनूपैं॥

अन्यत्र इसी ग्रन्थ में 'सुखदेव दोसर' के नाम से उदाहृत एक छन्द में 'अनूप' की दानशीलता की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है—

मंदर महिंद गन्धमादन हिमालै मेरु,
जिन्हैं चले जाने ए अचल अनुमाने ते।
भारे कजरारे तैसे दीरघ दँतारे मेघ
मंडल विहंडै जे वै सुंडा दंड ताने ते॥
कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे
दान जो अमान कापै बनत बखाने ते।
इतै कवि मुख जस आखर कढ़त उतै
पाखर समेत खुलैं पील पीलखाने ते॥

इससे प्रकट होता है कि सुखदेव राजा अनूपसिंह के भी दरबार में कुछ दिन रहे थे, यद्यपि उनके प्रसिद्ध आश्रयदाताओं की सूची में इनका नाम नहीं मिलता। प्रसंग प्राप्त अनूपसिंह सम्भवतः बीकानेर के महाराज अनूपसिंह से अभिन्न हैं। ये अत्यन्त विद्यानुरागी और काव्यरसिक थे। इन्होंने अपार धन व्यय करके सहस्रों हस्तलिखित अलभ्य ग्रन्थों का संकलन अपने राजकीय पुस्तकालयमें किया था और इस प्रकार भारत की दुर्लभ साहित्यिक सम्पत्ति को नष्ट होने से बचाया था। सतसईकार वृन्द कवि इनके समकालीन थे। प्रतीत होता है अनूपसिंह के आश्रय में सुखदेव थोड़े ही दिन रहे; अन्यथा अपने अन्य आश्रयदाताओं की भाँति इनके लिए भी किसी ग्रन्थ की रचना वे अवश्य करते।

२४. कान्ह

'कान्ह' छाप से कविता लिखनेवाले चार कवि हुये हैं—

(१) कन्हैया लाल भट्ट—सं० १७६१
(२) कान्ह कवि—सं० १८५२
(३) कन्हैया बख्श बैस—सं० १९००
(४) कन्हईलाल—सं० १९१४।

इनमें से प्रथम, तृतीय और चतुर्थ का 'कान्ह' उपनाम अथवा असली नाम का संक्षेप था किन्तु दूसरे का वही वास्तविक नाम था। सरोजकार ने इनका उल्लेख कान्ह कवि प्राचीन के नाम से किया है, और इन्हें नायिकाभेद विषयक एक ग्रन्थ का रचयिता कहा है। दिग्विजय भूषण के 'कान्ह' कवि यही हैं। गोकुल कवि ने इनके तीन छन्द उदाहृत किये हैं जिनमें से दो का विषय नायिकाभेद है, एक का बसन्तवर्णन। ये छन्द कान्ह कवि की एकमात्र रचना रसरंग नायिका (सं० १८०४) से लिये गये हैं। इस ग्रन्थ के विषय में स्वयं कवि का कथन है—

जाकी रचना देखि कै, बाढ़ै प्रेम तरंग।
मन में अति सुख पाइकै, कियो कान्ह रसरंग॥
संमत छिति सत जुग बरष, कान्ह सुकवि परसंग।
क्वार सुदी तेरसि ससी, रच्यो ग्रन्थ रसरंग॥

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने स्पष्ट रूप से इसका प्रतिपाद्य विषय नायिकाभेद बतलाया है—

"इति श्री कान्ह कवि विरचितायां रसरंग नायिकाभेद संपूरण समाप्त।"

ये वृन्दावन में रहते थे और सं० १८०४ के लगभग विद्यमान थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १८५२ दिया है, जो 'रसरंग नायिका' के निर्माणकाल को देखते हुए अशुद्ध ठहरता है।

२६. कालिदास

कालिदास त्रिवेदी बनपुरा (जिला कानपुर-अंतर्वेद) के निवासी थे। रीति-काल के पिछले खेवे के प्रसिद्ध कवि उदयनाथ 'कविन्द' इनके पुत्र और दूलह पौत्र थे। शिवसिंह जी द्वारा उद्धृत इनके निम्नांकित कवित्त से ज्ञात होता है कि ये औरंगजेब के दरबारी कवि थे और आश्रयदाता के साथ गोलकुंडा के भीषण युद्ध में उपस्थित थे—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि,
बीजापुर ओप्यो दलमलि उजराई में।
कालिदास कोप्यो बीर औलिया अलमगीर,
तीर तरवारि गह्यो पुहमी पराई में॥

बूँद ते निकसि महिमंडल घमंड मची,
लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में।
गाड़ि कै सुझंडा आड़ कीन्हीं पादसाह ताते,
डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई में॥

गोलकुण्डा का यह युद्ध सं० १७४५ में हुआ था। इसके पश्चात् किन्हीं कारणों से कालिदास मुगल दरबार छोड़कर 'जंबू' (बैसवाड़ा) के राजा जोगाजीत सिंह के यहाँ चले गये। इनके लिये 'बधू विनोद' की रचना सं० १७४९ में हुई।

संवत सत्रह सै उनचास। कालिदास किय ग्रंथ विलास।
वृत्तिसिंह नंदन उद्दाम। जोगाजीत नृपति के नाम॥

इसके अतिरिक्त 'राधा-माधव मिलन' और 'जंजीरा बंद' नामक इनकी दो अन्य कृतियाँ भी मिली हैं। किन्तु साहित्य संसार में कालिदास की ख्याति का मुख्य आधार उनका 'हजारा' नामक संग्रह ग्रंथ है जिसमें, शिवसिंहजी के अनुसार सं० १४८१ से सं० १७७६ तक के २१२ कवियों के १००० छन्द संकलित हैं। खेद है कि यह अपूर्व संदर्भ ग्रन्थ अब तक अप्राप्त है।

२६. काशीराम

काशीराम का जन्म सक्सेना कायस्थ-कुलमें हुआ था। ये औरंगजेब के सूबेदार निजामत खाँ के आश्रित कवि थे। सरोजकार ने इनका उदयकाल सं० १७१५ माना है, जो संगत प्रतीत होता है। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनका निम्नांकित कवित्त निजामत खाँ के ही शौर्य वर्णन विषयक है। इससे ये निस्सन्देह औरंगजेब कालीन काशीराम माने जा सकते हैं—

गाढ़े गढ़ ढाहत रहत नहिं ठाढ़े नेकु;
दिग्गज दुरित मद ढारत सुकाइ कै।
कराचोली कसि झुकि निकसि निजामति खाँ,
दाबत रकाब जब बराजोरी पाइ कै॥
धरनि के चहूँ कोन कासिराम भौन भौन,
भाजौ भाजौ ह्वै होत राना राजा राइ कै।
लंक ते लंकेस के पताल हूँ ते सेस के,
सुमेर ते सुरेस के मिलैं वकील आइ कै॥

खोज में इनके तीन ग्रंथ प्राप्त हुये हैं—कनक मंजरी, परशुराम संवाद और कवित्त कासीराम। इनमें से तीसरा काशीराम की स्फुट रचनाओं का संकलन प्रतीत होता है, जो संभवतः उनके मरणोपरान्त किसी काव्यरसिक द्वारा किया गया है।

२७. किशोर

इनका पूरा नाम जुगल किशोर था, 'किशोर' उपनाम। ये कैथल (जिला करनाल-पंजाब) के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता बालकृष्ण और पितामह निहचल राम थे—

जुगल किसोर सु नाम है, बालकृष्ण सो तात।
दादो निहचल राम है, छह बल सुत अवदात॥
कैथल जन्म अस्थान है, दिल्ली है सुखवास।
जामें विविधि प्रकार है, रस को अधिक विलास॥

जुगल किशोर वृत्ति की खोज में घूमते फिरते दिल्ली आये और वहाँ मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (शासन काल सं० १७६६–१८०५) के दरबारी कवि हो गये। शाही दरबार में इन्हें इतना सम्मान मिला कि कुछ ही दिनों में ये कवि से राजा बना दिये गये, जिससे ये स्वयं चार कवियोंके आश्रयदाता बन गये। 'अलंकार निधि' में आत्म-परिचय देते हुए एक स्थान पर इन्होंने उक्त स्थिति का उल्लेख इन शब्दों में किया है—

ब्रह्मभट्ट हौं जाति को, निपट अधीन निदान।
राजा पद मोंको दियो, महमद साह सुजान॥
चारि हमारी सभा में, कवि कोविद मति चारु।
सदा रहत आनँद बढ़े, रस को करत विचारु॥
मिश्र रुद्रमनि विप्रवर, औ सुखलाल रसाल।
संतजीव सु गुमान है, सोभित गुनन विसाल॥

किशोर की एकमात्र स्वतंत्र कृति 'अलंकारनिधि' है, जिसकी रचना सं० १८०५ में हुई। शिवसिंह जी ने 'किशोर संग्रह' नामसे प्रसिद्ध इनकी एक अन्य कृति का उल्लेख किया है। 'कवित्त संग्रह' तथा 'फुटकर कवित्त' नामक किशोर के दो और संग्रहग्रन्थ मिले हैं जिनमें कतिपय अन्य रीतिकालीन कवियों के भी छन्द संकलित हैं।

२८. कुलपति

ये आगरा निवासी माथुर चौबे परशुराम मिश्र के पुत्र थे। 'रस-रहस्य' में इनका आत्मोल्लेख है—

बसत आगरे नगर में, गुन तपसील विलास।
विप्र मथुरिया मिश्र हैं, हरि चरनन को दास॥
प्रभू मिश्र तिन बंस में, परसराम जिन राम।
तिनके सुत कुलपति कियो, रस रहस्य सुखधाम॥

ये महाकवि बिहारी के भानजे थे। इसी सिलसिले से इनका प्रवेश जयपुर दरबार में हुआ। मिर्जा राजा जयसिंहके पुत्र महाराज रामसिंह का आश्रय प्राप्त कर इन्होंने पर्याप्त धन तथा यश अर्जित किया। खोज रिपोटों से ज्ञात होता है कि जयपुर नरेश के आश्रय में आने से पूर्व ये विष्णुसिंह नामक किसी सामन्त के यहाँ रहे थे।

कुलपति की सर्वोत्कृष्ट रचना 'रस रहस्य' है। आचार्य मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' का छायानुवाद होते हुए भी यह एक प्रौढ़ लक्षणग्रन्थ है जिसमें पद्य के साथ ही, विषय प्रतिपादन में, ब्रजभाषा गद्य का भी प्रयोग हुआ है। इसके अलंकार प्रकरण में रामसिंह की प्रशस्ति रूप में लिखी गई अपनी कुछ स्वतंत्र रचनायें भी उदाहरण के रूप में इन्होंने दी हैं। जिनसे व्यावहारिक ब्रजभाषा पर इनके असाधारण अधिकार का पता चलता है। इनकी अन्य रचनायें हैं—दुर्गा-भक्ति चन्द्रिका, द्रोणपर्व, संग्रामसार, नखशिख और युक्ति-तरंगिणी। ये अठारहवीं शताब्दी विक्रमी के मध्यतक विद्यमान थे।

२९. केशव दास

कविवर केशवदास भाषा काव्य के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण वंश में सं० १६१२ में ओरछा राज्य के टेहरी नामक ग्राम में हुआ था। पिता पं० काशीनाथ और पितामह पं० कृष्णदत्त थे। परम्परा से इनके कुल की मातृभाषा संस्कृत थी। हिन्दी कविता के प्रति अपने वंश में सर्वप्रथम अनुराग इन्हीं के हृदय में जगा।

इनके प्रथम आश्रयदाता जोधपुर नरेश मालदेव के पुत्र महाराज चन्द्रसेन (राज्यकाल सं० १६२५–१६४२) थे। 'कविप्रिया' से यह पता चलता है कि कुछ समय तक ये अमरसिंह नामक किसी भूमिपति की भी छत्रछाया में रहे थे। ये अमरसिंह, मेवाड़ के राना अमरसिंह—महाराणा प्रताप के पुत्र एवं उत्तराधिकारी—से अभिन्न माने जाते हैं।

राजस्थान में अपनी जन्मभूमि के राजा मधुकर शाह की गुणग्राहकता की कथायें सुनकर केशवदास ओरछा चले आये और फिर आजन्म वहीं रहे। दिग्विजय भूषण में उदाहृत केशव के निम्नांकित छप्पय में 'मधुकर शाह' से उनके सम्बन्ध का बोध होता है—

चौक चारु करु कूप डारु, घरियार बाँधु घर।
मुक्त मोल करु पड्ग खोल, सींचहु निचोल वर॥
हय कुदाउ दै सुरत दाउ, गुन गाउ रंक को।
जासु भाव सुर धाम धाउ, धनु लाउ लंक को॥
यह कहत मधुकर साहि नृप, रह्यौ सकल दीवान दबि।
तब उत्तर केसवदास दिय, धरी न पानी जानु कबि॥

मधुकर शाह के दिवंगत होने पर केशवदास उनके आठ पुत्रों में से क्रमशः तीन—रतन सिंह, वीरसिंह और इन्द्रजीत सिंह, के आश्रय में रहे। इनमें से इन्द्रजीत सिंह से केशवदास को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने काव्यगुरु के रूप में इनकी पूजा ही नहीं की, राजगुरु की प्रतिष्ठानुकूल जीवन-यापन के लिए ३१ गाँवों की वृत्ति भी दी। इसका बखान केशव के ही मुख से सुनिए—

गुरु करि मान्यो इन्द्रजित, तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दियो इकतीस तब, ताके पाँय पखारि॥

× × ×

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग-जुग,
जाके राज केसौदास राज सो करत हैं।

केशव ने आश्रयदाता द्वारा किये गये इन उपकारों का भार सम्राट् अकबर के सम्मुख स्वयं उपस्थित होकर इन्द्रजीत सिंह पर किये गये जुरमाने को माफ़ करवा कर हल्का किया। भाव जगत के प्राणी कविवर केशव का यह सफल दौत्य उनकी व्यवहार कुशलता का परिचायक है।

केशव के मित्र और परिचितों में अकबरी दरबार के प्रसिद्ध सभासद—बीरबल और टोडरमल, मुख्य थे। बीरबल के दान की प्रशंसा कविप्रिया में और टोडरमल के लोभी स्वभाव का उल्लेख 'वीरसिंह देव चरित' में मिलता है। कहा जाता है कि बीरबल की मृत्यु पर केशव ने अकबर को एक दोहा सुनाया था, जो इस प्रकार है—

जाचक सब भूपति भये, रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु की इच्छा भई, गयो बीरबल देन॥

काव्य रचना में 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जानेवाले केशव व्यावहारिक जीवन में कितने रसिक थे इसका आभास वार्द्धक्य के झरोखों से झाँकते हुये उनके आकुल युवक हृदय के इस उद्गार में मिलता है—

केशव केसन अस करी, जस अरि हूँ न कराहिं ।
चन्द्र बदनि मृग लोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं ॥

केशवदास जी का देहावसान सं० १६७४ में हुआ। इनकी प्राप्त रचनायें हैं—रतन बावनी (सं० १६४५) रसिक प्रिया (सं० १६४८), कविप्रिया (सं० १६५८), रामचन्द्रिका (सं० १६६७), जहाँगीरजसचन्द्रिका (सं० १६६९) और नखशिख। इस प्रकार इनका कविता काल सं० १६४५ से लेकर सं० १६६९ तक ठहरता है।

३०. केहरी

केहरी आचार्य केशवदास के समकालीन और उन्हीं की भाँति ओरछा नरेश के दरबारी कवि थे। महाराज मधुकरशाह के पुत्र रामशाह तथा रतनसिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे। इनका निवास स्थान ओरछा ही था। 'बुंदेल-वैभव' के अनुसार इनका आविर्भाव सं० १६२० में हुआ था। इस प्रकार आयु में ये केशव दास जी से आठ वर्ष छोटे थे। दिग्विजय भूषण में इनका एक कवित्त उदाहृत है जो 'सरोज' में भी आया है। भेद केवल इतना है कि उक्त कवित्त की जिस पंक्ति में दिग्विजय भूषणकार ने 'रतन' नामक किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का नाम दिया है वहाँ सरोजकार ने 'समर' पाठ रखा है। छन्द यह है—

इतै साहिजादे जू बनाये सार मूरचनि,
उतै कोट भीतर दबाये दल ह्वै रह्यो ।
'केहरी' सुकवि कहै सूर मारे से हथीन,
तहाँ अवलरनि तमासे आनि वै रह्यो ॥
औचक गलीन में गनीम दल गाजि उठो,
तुङ्ग गजराजनि के मद आगे च्वै रह्यो ।
रतन सँघारे भट भेदैं रविमंडल कौं,
मंडल घरीक नट कुण्डल सों ह्वै रह्यो ॥

ये 'रतन' महाराज मधुकर शाह के पुत्र रतन सिंह हैं जो १६ वर्ष की अल्पायु में ही, मुराद के सेनापतित्व में अकबर द्वारा भेजी गई सेना से ओरछा के किले की रक्षा करते हुए, सं० १६४८ में वीरगति को प्राप्त हुए थे। कविवर

केशवदास ने इन्हीं के नामपर 'रतन बावनी' की रचना की थी। उपर्युक्त छन्द में इसी घटना का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी केहरी कवि ने किया है। 'साहिजादे' से उनका तात्पर्य राजकुमार रतनसिंह से है और 'कोट' से ओरछा के इतिहास प्रसिद्ध दुर्ग का।

केहरी कवि की कोई स्वतंत्र रचना उपलब्ध नहीं है। इनके फुटकर छन्द प्राचीन काव्य संग्रहों में संकलित पाये जाते हैं।

३१. कृष्ण कवि

इस नाम के तीन कवि हुए हैं—

(१) कृष्ण कवि—जयपुर के सवाई जयसिंह के आश्रित, सं० १६७५ के लगभग वर्त्तमान।

(२) कृष्ण कवि—औरंगजेब के दरबारी कवि, सं० १७४० में वर्तमान।

(३) कृष्ण कवि—नीतिकाव्य के रचयिता, सं० १८८८ में वर्तमान।

इनमें से प्रथम का परिचय देते हुए शिवसिंह जी ने उन्हें कविवर बिहारी का शिष्य बताया है। दिग्विजय भूषणमें उदाहृत छन्द महाराज जयसिंह के शौर्य वर्णन विषयक है—

कूरम कलश महाराज जयसिंह फैलो,
रावरो सुजस सुरलोक में अपार है।
'कृष्णकवि' ताके कन सुन्दर जलज जानि,
सुरन की सुन्दरीन लीन्हों भरि थार है॥
तिनही के संग को सरस तेरो गुन लैकै,
हार पौहिबे को उन करती विचार है।
मोती को निहारैं कहूं रंध्र को न लवलेस,
गुन को निहारैं कहूं पावती न पार हैं॥

ये भांडेर (ओरछा राज्य) के निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके प्रथम आश्रयदाता आयामल्ल थे। बिहारी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् इनका प्रवेश उन्हीं के माध्यम से जयपुर दरबार में हुआ।

कृष्ण कवि की तीन रचनायें प्राप्त हुई हैं—बिहारी सतसई की टीका (सं० १७१९), धर्मसंवाद कथा तथा विदुर प्रजागर। इनमें अंतिम दो के विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे इन्हीं कृष्ण कवि की हैं।

३२. कृष्णलाल

ये काशी के रहने वाले थे। ठाकुर मनियार सिंह ने 'भावार्थ चन्द्रिका' में, जिसकी रचना सं० १८४३ में हुई थी, उन्हें अपना काव्य गुरु बताया है—

चाकर अखंडित आरामचन्द्र पंडित को,
मुख्य शिष्य कवि कृष्णलालके चरन को।

इनकी जीवन-यात्रा के कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १८१४ के लगभग विद्यमान माना है। दिग्विजय-भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं, जिनसे ये श्रृंगारी परम्परा के कवि सिद्ध होते हैं।

३३. कृष्ण सिंह

बहरायच जिले का भिनगा राज्य परम्परा से साहित्य-सेवा के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ के विसेन राजवंश में अनेक उच्चकोटि के कवि एवं गुणग्राहक राजा हुये हैं। शिवसिंह जी का कहना है कि "जैसा बुन्देलखण्ड और बघेलखंड के रईस अपना काल काव्यविनोद में व्यतीत करते हैं, वैसे ही इस रियासत के भाई बंद हैं।" कृष्णदत्त सिंह यहीं के राजा थे। अपने पिता सर्वजीत सिंह के देहावसान के पश्चात् ये भिनगा की गद्दी पर बैठे थे। कवि होने के साथ ही ये कवियों के बड़े ही उदार आश्रय दाता भी थे। इनके दरबारी कवियों में शिवदीन कवि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कृष्णदत्त सिंह के नाम पर 'कृष्णदत्त भूषण' तथा 'कृष्णदत्तरासा' नामक दो ग्रन्थ लिखे थे। दिग्विजयभूषण के रचयिता गोकुल कवि भी कुछ दिनों इनके यहाँ रहे थे। क्षत्रिय कालेज बनारस के संस्थापक राजा उदयप्रतापसिंह कृष्णदत्तसिंह के पुत्र थे। इनकी कोई स्वतंत्र रचना अब तक नहीं मिली है। शिवसिंह जी के अनुसार ये सं० १९०९ में विद्यमान थे। अतः इसीके आस-पास इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता है।

३४. कोविद कविन्द

'दिग्विजय भूषण' की कवि सूची में 'कोविद कविन्द' नाम से जिस कवि का उल्लेख हुआ है, उसकी रचना का उदाहरण देते हुए गोकुल कवि ने उसी ग्रंथ में 'महाराज पं० उमापति' का नाम दिया है। उदाहृत छंद में कवि ने अपनी छाप 'कविन्द' विशेषण सहित, 'कोविद' रखी है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि उक्त छन्द १९ वीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त और संस्कृत के उद्भट् विद्वान् पं० उमापति त्रिपाठी का है।

पं० उमापति त्रिपाठी का जन्म देवरिया जिले के पिण्डी नामक गाँव में

आश्विन कृष्ण ६, बुधवार, सं० १८५१ को हुआ था। इनके पिता का नाम शंकरपति त्रिपाठी था। आरंभ में घर पर थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर ये विद्याध्ययन के लिए काशी गए। वहाँ श्रीकृष्णरामशेष से व्याकरण, श्री धन्वन्तरि भट्ट से मीमांसा और पं० भैरवदत्त मिश्र से न्याय का अध्ययन किया। इसके पश्चात् घर लौट आए, विवाह हुआ और कुछ काल तक गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। २५ वर्ष की आयु में ये शास्त्रार्थ में दिग्विजय करने के लिए निकले। मध्यप्रदेश, मिथिला, नदिया शान्तिपुर (बंगाल), राजस्थान, काश्मीर तथा नैपाल के प्रसिद्ध राजदरबारों और विद्याकेन्द्रों में अपने विलक्षण पांडित्य का परिचय देकर इन्होंने सौ विजयपत्र प्राप्त किये और 'श्रीमच्छतकजयप्रवर्तक' की उपाधि धारण की। अन्त में काशी के पं० महादेव मिश्र से ब्रह्मविद्या प्राप्त कर ये सं० १८८४ में अयोध्या चले गये और फिर आजन्म क्षेत्र संन्यास लेकर वहीं रहे। अवध के नवाब ने नयाघाट पर स्थित 'हयात बाग' इनके निवास के लिये दिया। वहाँ बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह ने इनके रहने के लिए सुन्दर भवन और भिनगा की महारानी ने एक विशाल ठाकुरद्वारा निर्मित कराया। ४६ वर्ष तक अखंड अवधवास करनेके पश्चात् त्रिपाठी जी ने सं० १९३० में दिव्यलोक की यात्रा की।

पं० उमापति जी की ४२ रचनायें मिलती हैं उनमें केवल पाँच हिन्दी में हैं—हनुमन्त कुण्डलिया, विचित्ररामायण, राम संगीत, रम्यपदावली और रत्नावली-दोहावली।

'दिग्विजय भूषण' में इनका एक कवित्त उदाहृत है, जिसमें महाराज दिग्विजयसिंह के प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है।

३५. ख्यान

इनका केवल एक छन्द 'दिग्विजय भूषण' में दिया गया है, जिसमें किसी 'राना जू' की प्रशस्ति गाई गई है। ये राना कौन थे? इसका कुछ पता नहीं। शिवसिंह जी ने इनकी रचनाशैली के उदाहरणस्वरूप सरोज में एक छन्द उद्धृत किया है वह दिग्विजय भूषण का ही है। संकलनकर्ताने इनके जीवन अथवा आविर्भाव काल पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। दिग्विजय भूषण में रचना संकलित होने से ये सं० १९१९ के पूर्ववर्ती कवि ठहरते हैं।

३६. गंग

इनका पूरा नाम गंगा प्रसाद था किन्तु प्रसिद्ध ये 'गंग' नाम से ही हुये। इनका जन्म सं० १५९५ में हुआ था। ये इकनौर (जिला इटावा) के निवासी

ब्रह्मभट्ट थे। बंदीजनों की प्रशंसा में लिखे गए निम्नांकित कवित्त तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से यह सिद्ध होता है कि गंग सम्राट् अकबर के आश्रित कवि थे—

प्रथम विधाता ते प्रगट भये बंदीजन,
पुनि पृथु जज्ञ ते प्रकास सरसात है।
मानौ सूत सौनकन सुनत पुरान रहे,
जसको बखाने महा सुख बरसात है॥
चंद चउहान के केदार गोरी साहिजू के,
गंग अकबर के बखाने गुनगात है।
काग कैसो माँस अजनास धन भाँटन को,
लूटि धरै ताको खुरा खोज मिटि जात है॥

अकबरी दरबार के सम्मानित सभासदों—महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, टोडरमल और खानखाना अब्दुल रहीम की गंग पर विशेष कृपा रहती थी। उनके एक छंद से विदित होता है कि बीरबल से उनकी मित्रता बाल्यावस्था से ही थी—

आगे सुदामा कृष्ण हैं, गंग बीरबल फेर।
ता दिन में तंदुल हते, येहि दिननमें बेर॥

जान पड़ता है मुगल दरबार से प्राप्त उनका यह वैभव स्थायी न रहा। जहाँगीर के शासनारूढ़ होते ही स्थिति बदली। वे दाने-दाने को मुहताज हो गये—

नटवा लौं नटैं न टरैं रहैं मोदी सु ब्याढिन में बहु भाव भरैं।
सजि गाजे बजाज अवाज मृदंग लौं बाँकिये तान गिलौरी लरैं॥
पट धोबी धरैं अरु नाई नरैं सु तमोलिन बोलिन बोल धरैं।
कवि गंग के अंगन मंगनहार दिना दसते नित नृत्य करैं॥

कहा जाता है गंग पर आकस्मिक राजकोपका कारण नूरजहाँ के भाई जैन खाँ का उनसे किसी बात पर रुष्ट हो जाना था। गंग की निर्भीक प्रकृति और स्पष्टवादिता उस सामन्ती युग में घातक सिद्ध हुई। इसका मूल्य उन्हें आत्म-बलिदान से चुकाना पड़ा। वे हाथी से चिरवा डाले गए। काव्य की भाषा में वह घटना इस प्रकार वर्णित है—

सब देवन को दरबार जुर्‍यो तहँ पिंगल छन्द बनाइकै गायो।
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो॥

मृतु लोक में है कवि एक गुनी कवि गंग को नाम सभामें बतायो।
सुनि चाह भई परमेसर की तब गंग को लेन गनेस पठायो॥

गंग की निम्नांकित पंक्ति इसी मर्मस्पर्शी घटना की ओर संकेत करती बताई जाती है—

संगदिल शाह जहाँगीर से उमंग आज,
देत है मतंग मद सोई गंग छाती में।

गंग कवीश्वर के जीवन का इस प्रकार दुःखद अन्त सं० १६८२ के लगभग हुआ।

दिग्विजय भूषण में इनके ६ छंद उदाहृत हैं। इनमें से तीन छन्द ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं—दो में बीरबल और रहीम की दानशीलता का बखान है, एक में मिर्जा भावसिंह के किसी पठान सामन्त से युद्ध का वर्णन है।

तारापुर प्रबल पठान भूमि भारी भीर,
भीम सम भिरो रन भावसिंह मिरजा।
भभकि भभकि धाय कूप सों भरत घट,
भारी भारी वीर मारे रन पाय सिरजा॥
लोहू की नदीन गंग हाथी धारा कोथ बहैं,
जोगिनी से जोगिनी पुकारैं पार तिरजा।
हीरन के हार वर वारतीं बरंगना लै,
मुण्डमाल हर गजमोती लै लै गिरजा॥

ये मिरजा भावसिंह जयपुर के महाराज मानसिंह के पुत्र थे। जहाँगीर ने इन्हें सं० १६५६ में आम्बेर का शासक बनाकर 'मिर्जा राजा' की उपाधि दी थी। भावसिंह का यह युद्ध संभवतः जालोर के शासक राज़नीखाँ के उत्तराधिकारियों से हुआ था। इनकी मृत्यु सं० १६७८ में हुई। बिहारी के आश्रयदाता मिर्जा राजा जयसिंह इन्हीं के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे।

३७. गंगापति

इनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में कोई सूचना सुलभ नहीं। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १७४४ माना है। मिश्रबन्धु-विनोद और हिन्दुस्तान का आधुनिक भाषा साहित्य (ग्रियर्सनकृत) में इनके द्वारा विरचित 'विज्ञान विलास' का उल्लेख मिलता है। इसका रचना काल सं० १७७५ है। ऐसी दशा में शिवसिंह जी द्वारा निर्दिष्ट सं० १७४१ को इनका आविर्भाव काल मानना ही

अधिक युक्तिसंगत होगा। सरोज में इनके नाम से उद्धृत छन्द दिग्विजयभूषण से ही लिया गया है।

३८. गिरधारी

इस नाम के दो कवियों का पता चला है। एक गिरधारी ब्राह्मण बैसवाड़ा (उन्नाव-रायबरेली) के और दूसरे गिरधारी भाँट मऊरानीपुर के निवासी थे। प्रथम का समय सं० १६०४ और द्वितीय का सं० १६४० के आस-पास माना जाता है। सरोजकार ने दोनों की जो रचनायें उद्धृत की हैं उनसे प्रथम शृङ्गारी और दूसरे शुद्ध शांतरस के कवि जान पड़ते हैं। दिग्विजयभूषण में उदाहृत छन्द नखशिख वर्णन विषयक है। इसके रचयिता प्रथम गिरधारी हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

इन गिरधारी का पूरा नाम गिरधारीलाल त्रिपाठी था। ये सातनपुरवा (जिला रायबरेली) के निवासी थे। अयोध्या प्रसाद वाजपेयी 'औधकवि' भी यहीं के रहने वाले थे, जो गोकुल कवि के परिचितों में थे। संभवतः उनके द्वारा ही भूषणकार को गिरधारी की रचनाओं का पता लगा होगा। इनके तीन ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं—भागवत दसमस्कंध भाषा, रहस्यमंडल और सुदामाचरित। ये गोकुल के समकालीन थे। अतः दोनों की भेंट होना भी असम्भव नहीं।

३९. गुरुदत्त

ये मकरन्दपुर (जिला फर्रुखाबाद) के निवासी शिवनाथ शुक्ल के पुत्र थे। इनके भाई देवकीनन्दन भी अच्छे कवि थे। गुरुदत्त ने अपना परिचय देते हुए एक स्थान पर लिखा है—

प्रगट भये शिवनाथ कवि, सुकुल वंश में हंस।
ताको सुत गुरुदत्त कवि, कविता में अवतंस॥

इनका बनाया हुआ 'पक्षीविलास' एक प्रौढ़ ग्रंथ है। दिग्विजयभूषण में इसी से तीन छंद उदाहृत हैं, जो अन्योक्ति की शैली में शुक, गृद्ध और सिंह को सम्बोधित करके कहे गये हैं। ये सं० १८६४ में विद्यमान थे।

४०. गुरुदत्तसिंह

गुरुदत्त सिंह अमेठी (जिला सुलतानपुर) के राजा थे। ये भूपति छाप से कविता करते थे—

आठौं दिसा खुनीन सम, करि राखो अवरुध्य ।
नगर अमेठी रामपुर, सोभित ज्यों मनि मध्य ॥
पुन्य फलन से अति फली, नगरी मोद प्रकास ।
भूपति तहँ गुरुदत्त अब, नित प्रति करत निवास ॥

उदयनाथ कवीन्द्र और उनके पुत्र दूलह इनके दरबारी कवि थे । अवध के प्रथम नवाब वज़ीर सादत खाँ बुर्हानउलमुल्क से इनके युद्ध का जो आँखों देखा वर्णन 'कविन्द' ने किया है उससे गुरुदत्त सिंह के अद्भुत शौर्य का पता चलता है—

समर अमेठी के सरोष गुरुदत्तसिंह,
सादति की सेना समसेरन सों भानी है ।
भनत 'कबिन्द' काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है ॥
तहां एक जोगिनी सुभट खोपड़ी लै उड़ी,
सोनित पियति ताकी उपमा बखानी है ।
प्यालो लै चिनी को नीको जोबन तरंग मानो,
रंग हेत पीवति मँजीठ मुगलानी है ॥

अब तक इनकी तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं—रस रत्न (सं० १७८८), भूपति सतसई (सं० १७९१) और रस दीपक (सं० १७९९) । इस प्रकार इनका काव्यकाल सं० १७८८ से सं० १७९९ तक स्थिर किया जा सकता है ।

४१. गुलाल

इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी ऐतिहासिक स्रोत मौन हैं । शिवसिंह सरोज से केवल इतना ज्ञात होता है कि ये सं० १८७५ के लगभग विद्यमान थे । इनकी 'शालिहोत्र' नामक एक रचना बताई जाती है । उसके अतिरिक्त षड्ऋतु तथा नायिका भेद पर इनके कुछ फुटकर छन्द मिलते हैं । सरोज में उद्धृत छन्द दिग्विजय-भूषण से ही लिया गया है ।

४२. गोकुलनाथ

ये काशिराज बरिवंड सिंह (बलवन्त सिंह, शासनकाल सं० १८२७ से सं० १८३८ तक) और उदितनारायण सिंह (शासनकाल सं० १८५२–१८९२) के दरबारी कवि थे । इनके पिता रघुनाथ बन्दीजन भी अपने समय में काशी के गण्यमान्य कवीश्वर थे । गोकुलनाथ का सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य महाभारत का

भाषानुवाद है, जो 'महाभारत दर्पण' के नाम से विख्यात है। यह ग्रन्थ इन्होंने अपने पुत्र गोपीनाथ और शिष्य मणिदेव की सहायता से ५४ वर्षों के निरन्तर प्रयत्न से पूरा किया। इसके अतिरिक्त इनकी सात रचनायें और मिली हैं—चेतचन्द्रिका, राधाकृष्ण विलास, राधानखशिख, नामरत्नमाला, सीताराम गुणार्णव, कविमुख-मंडन और गोविन्दसुखदविहार। सरोजकार ने इनकी रचनाशैली के उदाहरण में एक छन्द उद्धृत किया है। वह दिग्विजयभूषण का ही है। ऐसी स्थिति में दोनों की एकता स्वतः सिद्ध है।

४३. गोपाल

अनुसन्धान से गोपाल नामक चार कवियों का पता चला है—

१. गोपाल प्राचीन—ये सं० १७१५ के लगभग विद्यमान थे। ये मित्रजीत सिंह नामक किसी राजा के पुत्र कल्याण सिंह के आश्रय में रहते थे।

२. गोपाल बन्दीजन बुन्देलखण्डी—ये श्यामदास बन्दीजनके पुत्र और असोथर (जिला फतेहपुर) के महाराज भगवन्तराय खीची के आश्रित कवि थे। कुछ दिन ये चरखारीनरेश रतन सिंह के भी साथ रहे थे। 'सुकवि' की उपाधि इन्हें इन दूसरे आश्रयदाता ने ही दी थी। इनका उपस्थिति काल सं० १८५७–१८६१ तक निश्चित किया जा सकता है। इनकी चार रचनायें मिलती हैं—भगवन्तराय की विरुदावली, पुरुष स्त्री संवाद, बदभद्र-व्याकरण और नखशिख दर्पण।

३. गोपाल कायस्थ बघेलखंडी—ये रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह (शासनकाल सं० १८७०–१८६१) के मंत्री थे।

४. गोपाल भाट—इनके पिता का नाम खड्गराय था। ये चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी वृन्दावनवासी रामबख्श भट्ट के शिष्य थे। पटियाला के महाराज कर्मसिंह के छोटे भाई अजीतसिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे। इन्होंने १२ ग्रन्थ लिखे—दम्पतिकाव्यविलास, दूषण विलास, ध्वनि विलास, भाव विलास, भूषण विलास, मान पचीसी, रससागर, रासपञ्चाध्यायी सटीक, वंशीलीला, वर्षोत्सव, वृन्दावनधामानुरागावली और वृंदावनमाहात्म्य।

अपेक्षित प्रमाणों के अभाव में यह निश्चय करना कठिन है कि इनमें से किस गोपाल कवि की रचना दिग्विजय-भूषण में उदाहृत है।

४४. गोविन्द

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में गोविन्द नामक दो कवियों का उल्लेख हुआ है। एक हैं 'करणाभरण' के रचयिता 'गोविन्द कवि' जिनका उदय शिव-

सिंह सरोज के अनुसार, सं० १७९१ में हुआ। दूसरे हैं 'गोविन्दजी कवि' जो सरोजकार के अनुसार सं० १७५७ में विद्यमान थे। शिवसिंहजी ने इनकी रचनायें कालिदास के हजारे में संग्रहीत बताई हैं। सरोज में प्रथम गोविन्द के 'करणाभरण' से कुछ दोहे उद्धृत किए गए हैं किन्तु दिग्विजय भूषण में गोविन्द कवि के उदाहृत छन्द, कवित्त हैं। मेरा अनुमान है कि दिग्विजय-भूषण में निर्दिष्ट गोविन्द उपर्युक्त दूसरे गोविन्दजी कवि हैं।

ये जयपुर निवासी निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव श्री सर्वेश्वर शरणजी के शिष्य थे। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी ९ कृतियों की नामावली दी है। जो इस प्रकार है—रामायण सूचनिका, रसिकगोविन्दानन्दघन, लछिमन चन्द्रिका, अष्टदेश भाषा, पिंगल, समय प्रबन्ध, कलिजुग रासो, रसिक गोविन्द और युगलरसमाधुरी। इनके अतिरिक्त इधर इनकी 'श्रीराधामुखषोड़शी' नामक एक और कृति उपलब्ध हुई है। इनका रचनाकाल सं० १८५० से सं० १८९० तक माना जाता है।

४९. ग्वाल

ग्वाल कवि मथुरा निवासी सेवाराम वंदीजन के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८४८ में हुआ। इनकी गणना रीति काल के सिद्धहस्त कवियों में की जाती है। इनके उपास्यदेव शंकर थे। मथुरा में इनके द्वारा सं० १८७९ में निर्मित शिवमंदिर अब तक वर्तमान है। शैव होते हुए भी युगधारा के अनु-कूल इनकी वाणी राधामाधव की विहारलीला के चित्रण में ही मुख्य-रूपेण प्रवृत्त रही। इनका कविताकाल सं० १८७९ से लेकर सं० १९१९ तक विस्तृत था। इस प्रकार गोकुल कवि के समय में ये विद्यमान ठहरते हैं।

उत्तर भारत पर अंग्रेजी शासन की स्थापना इनके सामने हुई थी। पावस वर्णन में एक स्थान पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विजय अभियान का रूपक प्रस्तुत करते हुए ये लिखते हैं—

तरल तिलंगन की तुंग देह तेजदार,
कानन कदंब को कदंब सरसायो है।
सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार,
बग जमादार और तंबूर पिक भायो है।
'ग्वाल' कवि बाढ़ै गरराट घन घट्टन की,
कंपनी को कंपू भला होइ छवि छायो है।
भूपति उमंगी कामदेव जोर जंगी जान,
मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है।

ग्वाल कवि उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में काफी घूमे थे। इससे गुजराती पंजाबी और पूर्वी भाषाओं की इन्हें पर्याप्त जानकारी हो गई थी। इनमें रचे हुए छंद इनके बहुभाषा ज्ञान की पुष्टि करते हैं। कहते हैं इन्हीं यात्राओं के सम्बन्ध में ये पंजाब केशरी महाराज रणजीत सिंह के भी दरबार में गए थे और वहाँ से इन्हें कुछ स्थायी वृत्ति भी मिली थी।

इनका देहावसान सं० १६२८ में हुआ।

ग्वाल कवि विरचित ग्रंथों की संख्या पचास से ऊपर बताई जाती है, जिनमें मुख्य हैं—यमुना लहरी (सं० १८७६), रसिकानन्द, हम्मीरहठ (सं० १८८१), नखशिख बृजराज श्रीकृष्णजू के (सं० १८८४), दूषण दर्पण (सं० १८६१), गोपी पचीसी, राधा-माधव-मिलन, राधाष्टक, कविहृदय विनोद, रसरंग (सं० १६०४), अलंकारभ्रमभंजन, कवित्त वसंत, कविदर्पण, वंशीबीसा, ग्वाल पहेली तथा भक्तभावन (सं० १६१६)। दिग्विजय भूषण में इनकी उपर्युक्त रचनाओं से पाँच छंद उदाहृत हैं।

४६. घनश्याम

घनश्याम शुक्ल असनी (जिला फतेहपुर) के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १७३७ में और देहावसान सं० १८३५ के लगभग हुआ। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनके निम्नांकित छन्द से विदित होता है कि ये बाँधवगढ़ (रीवाँ) के बघेल राजा के दरबारी कवि थे—

अटै औनि अम्बर छुटै सुमेर मंदर से,
घटै मरजादा बीर बारिधि की बेला के।
कहै 'घनस्याम' घनघोर से घुमंडै घन,
मंडल उमंडै गज रज रवि रेला के॥
धारै बरछान को बिदारै देव ताके तन
मंद-सी कुठार कढ़ै संकर के चेला के।
दब्बै दिगपाल बल फब्बै न दिगीसन के
जा दिन जुनब्बै कढ़ै बाँधवी बघेला के॥

घनश्याम शुक्ल के समय में रीवाँ की गद्दी पर महाराज अनिरुद्ध सिंह (शासन काल सं० १७४७–१७५७) तथा महाराज अवधूत सिंह थे। उन्हीं की छत्रछाया में घनश्याम के जीवन का अधिकांश व्यतीत हुआ।

शिवसिंह सरोज में इनके संग्रहीत छन्दों में से एक काशिराज की प्रशंसा में लिखा गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ दिनों तक इन्होंने दरबारी कवि के रूप में उनकी भी सेवा की थी।

घनश्याम की कोई संपूर्ण कृति अब तक प्रकाश में नहीं आई है। शिवसिंह जी ने कालिदास के हजारे में इनके कतिपय छन्द संकलित बताये हैं। उन्होंने स्वयं भी इनके २०० छन्द संग्रहीत किये थे। जहाँ तक हजारे में प्रस्तुत घन-श्याम के छन्दों के संग्रहीत होने का प्रश्न है, सरोजकार का मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। 'हजारा' का निर्माण काल सं० १७५० है। उस समय घनश्याम शुक्ल केवल १३ वर्ष के रहे होंगे। इतनी कम उम्र में इन्होंने ऐसी कविता कर ली हो जिसकी कीर्ति, यातायात तथा प्रचार-प्रसार के सुगम साधनों के अभाव में भी, इतनी शीघ्रता से फैल जाय कि तत्कालीन काव्य-संग्रहों में उसे स्थान मिल जाय—युक्ति संगत नहीं जान पड़ता। अतः हजारा के घनश्याम इनसे भिन्न सत्ता रखते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

४७. घनसिंह

इनका केवल एक छन्द दिग्विजयभूषण में उदाहृत है जिसका विषय नायिका भेद है। इसके अतिरिक्त इनकी किसी फुटकर रचना अथवा सम्पूर्ण कृति का पता नहीं चलता। इनके जीवन सम्बन्धी तथ्य भी अज्ञात हैं।

४८. घनानंद

आरम्भ में नाम सादृश्य के कारण घनानन्द और आनन्दघन अभिन्न मान लिए गये थे। दिग्विजयभूषण में इसीलिए घनानन्द के कवित्त आनन्दघन के नाम से उदाहृत हैं। किन्तु इधर की खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि ये दोनों महानुभाव प्रायः समकालीन होते हुए भी पृथक् अस्तित्व रखते थे। एक प्रेम-योगी वैष्णव भक्त थे दूसरे जैन महात्मा। प्रथम घनानन्द और द्वितीय आनन्दघन के नामसे विख्यात थे। आनन्दघन की दो रचनायें हैं—बहत्तरीस्तवावली और चौबीसी। इनका प्रतिपाद्य विषय है जैन तीर्थंकरों एवं महात्माओं की स्तुति। 'घनानन्द' अथवा 'घनआनँद' प्रसिद्ध सुजानप्रेमी कृष्ण भक्त हैं। गोकुल कवि के आनन्दघन कवि यही हैं।

घनानन्द का जन्म कायस्थ वंश में सं० १७४६ में हुआ था। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' (शासनकाल सं० १७७६ से सं० १८०५ तक) के मीरमुंशी थे। कुछ शाही कृपापात्र और कुछ दरबार की नर्तकी सुजान के

प्रेमी होने के कारण ये दरबारियों की आँखों पर चढ़ गये। वे इन्हें नीचा दिखाने की फ़िक्रमें रहने लगे। एक दिन उन्हें एक अच्छी युक्ति सूझ गई। उन्होंने घनानन्द की अनुपस्थिति में बादशाह से इनकी संगीतपटुता की बड़ी तारीफ़ की। उनकी प्रेरणासे मुहम्मदशाह ने इनसे गाना सुनाने का अनुरोध किया। घनानन्द ने दरबार के अदब को ध्यान में रखते हुए स्पष्टतया इन्कार तो नहीं किया किन्तु कुछ बहाना करके अपनी असमर्थता प्रकट की। विद्वेषी दरबारियोंने दाँव खाली जाते देख दूसरा पाँसा फेंका। उन्होंने बादशाह से कहा कि आप की आज्ञा ये टाल सकते हैं किन्तु सुजान का अनुरोध नहीं टाल सकेंगे। यदि आपको इनके स्वरमाधुर्य का रस लेना है तो उसी से कहलाइये। निदान सुजान बुलवाई गई उसके कहने पर घनानन्द ने इतनी तन्मयता से गाया कि सभी आनन्द विभोर हो गये। एक बेअदबी इस बार भी अनजाने ही उनसे हो गई। गाते समय उनका मुँह सुजान की ओर था, पीठ बादशाह की ओर। इस अशिष्ट व्यवहार से मुहम्मदशाह रुष्ट हो गये। घनानन्द को नगरसे निकल जाने का हुक्म हुआ। दिल्ली छोड़ते समय उन्होंने सुजान से साथ चलने के लिए कहा किन्तु वह वार-विलासिनी दुर्दिन में इनका साथ देने को राज़ी न हुई। उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार से घनानन्द का अन्तःस्थ सत्त्व ज्योतित हो उठा। ये सीधे वृन्दावन गये। वहाँ इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय के महात्मा वृन्दावनदेव से दीक्षा ले ली। इनका साम्प्रदायिक नाम 'बहुगुनी' रखा गया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद सं० १८१७ में अहमदशाह अब्दाली का दिल्ली पर आक्रमण हुआ। मुहम्मदशाह के कुछ दरबारियों को निष्कासन के बाद भी घनानन्द का अस्तित्व खटक रहा था। कहते हैं उन्हीं की प्रेरणा से मथुरा पहुँचने पर अब्दाली के सैनिकों ने घनानन्द को ढूँढ़ निकाला और इनसे 'ज़र' माँगा। इस अकिंचन ब्रजभूमि सेवी ने 'ज़र' के बदले उनके ऊपर तीन मुट्ठी ब्रजरज फेंक दी। इस अपराध में इनके हाथ कलम कर लिए गये। यही घटना इनके प्राणान्त का कारण बनी। घनानन्द जी के अन्तिम शब्द थे—

बहुत दिनान की अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जानको।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखत ही दै दै सनमान को॥

झूठी बतियानि के पत्यानि तें उदास ह्वै कै ,
अब ना घिरत 'घन आनँद' निदान को ।
अधर धरे हैं आनि करिकै पयान प्रान ,
चाहत चलन ये संदेसो लै सुजान को ॥

घनानन्द जी का सारा भक्त जीवन कृष्णलीला गान में बीता । उनकी प्रेमानुभूति में विरह का स्वर प्रधान था । अनुरक्त जीवन की प्रेयसी सुजान विरक्त जीवन में उनकी आराध्या बनकर कृष्ण से अभिन्न हो गई । उसे लक्ष्यकर इनकी मर्मभेदी 'प्रेम की पीर' जिस सशक्त भाषा में अभिव्यक्त हुई है वह व्रजभाषा काव्य की एक अमूल्य निधि है ।

घनानन्दजी की निम्नांकित कृतियाँ प्राप्त हुई हैं—सुजान सागर, विरहलीला, रसकेलिवल्ली और कृपाकन्द । आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कोकसार को भी इन्हीं की रचना माना है किन्तु वह एक दूसरे 'आनन्द' नामक कवि की कृति है ।

४९. घासीराम

ये मल्लावाँ (जिला हरदोई) के निवासी ब्राह्मण थे । इनका जन्म सं० १६२३ में हुआ और सं० १६८२ तक ये जीवित रहे । शिवसिंह जी ने इनके छन्द कालिदास कवि के हजारे में संकलित बताये हैं, जो इनके आविर्भाव काल को देखते हुए असंगत नहीं कहा जा सकता । सरोज में इनके नाम से उद्धृत एक छन्द थोड़े पाठभेद के साथ दिग्विजयभूषण में भी उदाहृत मिलता है । इनका सम्पूर्ण ग्रन्थ केवल 'पक्षी विलास' है, जिसकी रचना सं० १६८० में हुई । नखशिख एवं नायिका भेद पर इनके लिखे हुये कतिपय छन्द यत्र तत्र प्राचीन काव्यसंग्रहोंमें मिलते हैं ।

५०. चन्द कवि

कविवर चन्दबरदाई दिल्लीके अन्तिम हिन्दू शासक, महाराज पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, सामन्त और सखा थे । इनका लोकविश्रुत ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है । ये ब्रह्मभट्ट जाति की जगात नामक शाखा में उत्पन्न हुये थे । आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका समय सं० १२२५ से सं० १२४९ तक माना है किन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की प्राप्त प्रतियों में भाषा का जो रूप मिलता है वह अत्यन्त अव्यवस्थित और अर्वाचीन है ।

डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसीलिए उसे सं० १६०० के आसपास लिखा गया माना है। उसकी सर्वाधिक प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १६४२ की है।

दिग्विजय भूषण में चंद कवि के जो छंद उदाहृत हैं उनकी भाषा डिंगल न होकर रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त पिंगल अथवा ब्रजभाषा से पूरी तरह मिलती है। उसमें एक छंद पृथ्वीराज को सम्बोधित करके लिखा गया है। इसके आधार पर केवल इतना निश्चित किया जा सकता है कि गोकुल कवि ने जिस चंद कवि की रचनायें संकलित की हैं वह प्रसिद्ध चंदवरदाई से अभिन्न है। दिग्विजय भूषण के निम्नांकित दोहों से भी इसकी पुष्टि होती है—

सींकबान पृथुराज को, तीनि बांस गज चारि।
लगत चोट चौहान की, उड़त तीस मन गारि॥
धर पलट्यो पलटी धरा, पलट्यो हाथ कमान।
चंद कहै पृथुराज सों, दिन पलटै चौहान॥
फेरि न जननी जनमिहै, फेरि न खैंचि कमान।
सात बार तुम चूकियो, अब न चूकु चौहान॥
बारह बाँस बतीस गज, अंगुल चारि प्रमान।
यतने पर पतसाह है, मति चूको चौहान॥

६१. चंदन

ये नाहिल-पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर) के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता का नाम धर्मदास और पितामह का फकीरे राम था। इनके दो पुत्र हुए— प्रेम राम और जीवन। 'प्राग्य विलास' में अपना परिचय देते हुए ये लिखते हैं—

विधि सो विधि छितितल रची, विहदर पुरी पुनीत।
तहां बसे भूपन भये, भीषम उत्तम गीत॥
तासु तनय गुण-गण-सदन, भये फकीरे राम।
सदा भजन भगवन्त को, करो मनो बच काम॥
धर्मदास तिनके भये, धर्मदास बिन आस।
विश्वंभर को भजन जिन, करत धरे बिस्वास॥
तिनके सुत चंदन भगत, भयो देव दुज दास।
करि बंदन दुजको कह्यो, प्राग्य विलास प्रकास॥

चंदन कवि के आश्रयदाता केशरीसिंह गौड़ थे। इनका कविताकाल सं० १८१० से सं० १८६५ तक माना जाता है। ५५ वर्ष के इस विस्तृत काल में इन्होंने ५२ ग्रन्थों की रचना की। उनमें से अब केवल ८ का ही पता चलता है। वे हैं—कृष्णकाव्य (सं० १८१०), केशरी प्रकाश (सं० १८१७), नखशिख राधा जी को (सं० १८२५), प्राग्य विलास (सं० १८२५), काव्याभरण (सं० १८४५), रसकल्लोल (सं० १८४६) तत्त्व संज्ञा और पीतम वीर विलास (सं० १८६५)। शिवसिंह जी सेंगर तथा आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके अतिरिक्त चन्दन कवि की निम्नलिखित छः अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया है—चन्दन सतसई, पथिक बोध, शृंगार सार, नाममाला कोश, तत्त्व संग्रह तथा सीत बसंत। इनमें से चंदन सतसई, पथिक बोध, नाममाला कोश, और सीतबसंत को छोड़कर शेष दोनों रचनायें परिवर्तित नामों से उपर्युक्त सूची में पाई जाती हैं।

५२. चतुर

ये रीतिकालीन शृङ्गारी कवि थे। दिग्विजय भूषण में इनका एक कवित्त आया है, जिसे सरोजकार ने उसी रूप में ले लिया है। इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं।

५३. चतुर विहारी

इस नाम के दो कवि हुए हैं—एक कृष्णभक्त थे दूसरे रीतिकालीन शृङ्गारी परंपरा के। प्रथम चतुर विहारी ब्रज के निवासी थे। इनका उदयकाल शिवसिंह जी ने सं० १६०५ माना है और 'राग कल्पद्रुम' में इनके पद संग्रहीत बताये हैं। दूसरे चतुर विहारी का कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

इन दोनों में से दिग्विजय भूषण के चतुर विहारी अनुमानतः दूसरे हैं। सरोज में इनके नाम से उद्धृत छन्द दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है।

५४. चतुर्भुज

गोकुल कवि ने चतुर्भुज का एक नायिका भेद विषयक छंद उदाहृत किया है। सरोजकार ने उसे संग्रहीत कर लिया है, जिससे ये शृंगारी कवि ठहरते हैं। अष्टछापी चतुर्भुज दास और मैथिल चतुर्भुज कवि से ये सर्वथा भिन्न हैं।

रीति कालीन शृंगारी परंपरा में इस नामके दो कवि हुए हैं। और वे दोनों प्रायः समकालीन हैं। प्रथम चतुर्भुज, अयोध्या प्रसाद बाजपेयी 'औधकवि'

के भाई थे। इनकी जन्मभूमि सातनपुरवा (जिला रायबरेली) थी। इनका उपस्थिति काल सं० १८६० है। दूसरे चतुर्भुज गौतम गौत्र के मिश्र थे। इनके पिता का नाम रामकृष्ण मिश्र था। इनका आविर्भाव कुलपति मिश्र के वंश में हुआ था। ये भरतपुर नरेश महाराज बलवंत सिंहके दरबारी कवि थे। इनका उदय सं० १८६६ के लगभग हुआ।

मेरा अनुमान है कि इन दोनों चतुर्भुज नामाराशी कवियों में से दिग्विजय भूषण में प्रथम की रचना संग्रहीत है। इसका आधार है गोकुल कवि और चतुर्भुजके बड़े भाई अयोध्या प्रसाद वाजपेयी का घनिष्ट-परिचय और सौहार्द्र। संभव है औध कवि द्वारा ही गोकुल को चतुर्भुज की रचना उपलब्ध हुई हो।

५५. चिंतामणि

चिंतामणि रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि माने जाते हैं। वास्तवमें रीतियुग की श्रृंखलाबद्ध परंपरा का प्रवर्तन इन्हीं के द्वारा हुआ। ये कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। इनका आविर्भाव सं० १६६६ में हुआ। प्रसिद्ध कवि भूषण, मतिराम और नीलकंठ इनके छोटे भाई थे। इन्होंने औरंगजेब, अकबर शाह (हैदराबाद), रुद्रशाह सोलंकी, जैनुद्दीन अहमद तथा मकरन्द शाह भोसला के आश्रय में रहकर अनेक श्रृंगारी ग्रंथों की रचना की। काव्यांगों पर लिखी गयी इनकी कृतियाँ सर्वाधिक समादृत हुईं। अपनी रचनाओं में इन्होंने कहीं कहीं मणिलाल छाप भी रखी है। अब तक इनके निम्नांकित ग्रन्थों का पता चला है—कविकुलकल्पतरु, काव्य विवेक, काव्य प्रभाकर, पिंगल, छन्द विचार तथा रामायण। दिग्विजय भूषण में नखशिख तथा नायिकाभेद पर इनके छंद उदाहृत हैं।

५६. चैनराय

इस नाम के दो कवि हुये हैं। प्रथम चैनराय भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी के शिष्य थे। ये सं० १७६६ के लगभग वर्तमान थे। इनकी 'भक्ति सुमरिनी' नामक एक रचना खोज में मिली है। दूसरे चैनराय जयपुर राज्य के अन्तर्गत दुनी नामक गाँव के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। ये जोगावत क्षत्रिय चाँदसिंह के आश्रित कवि थे। इनका उपस्थिति काल सं० १८८५ है। प्रथम चैनराय भक्त कवि थे और दूसरे श्रृंगारी।

दिग्विजय-भूषण में चैनराय के उदाहृत छन्द का विषय नायिका भेद है।

वह दूसरे चैनराय की रचना प्रतीत होती है। सरोजकारने भी वही छन्द उद्धृत किया है किन्तु कवि के वृत्त के सम्बन्ध में वे मौन रहे हैं।

५७. जगजीवन

खोज में जगजीवन नाम के तीन कवि मिले हैं। एक जगजीवन आगरा निवासी जैन थे। इन्होंने 'जैनसत्यसार' की टीका लिखी। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें ही 'हजारे' वाला जगजीवन माना है। किस आधार पर, इसकी विवेचना नहीं की गई है। दूसरे जगजीवन 'हनुमान नाटक' के रचयिता कहे जाते हैं। तीसरे जगजीवन रीतिकालीन शृंगारी कवि थे। शिवसिंहजी ने इन्हीं तीसरे जगजीवन के कुछ शृंगारी छन्द संकलित किये हैं। दिग्विजय-भूषण में उदाहृत छन्द नीति विषयक हैं। वे उपर्युक्त जगजीवन नामराशी तीनों कवियों में से तीसरे द्वारा विरचित प्रतीत होते हैं। प्रथम की रचनायें जैनधर्म के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों पर हैं और दूसरे की भक्तिपरक। शृंगारके साथ नीति इस काल के कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि निर्गुण सन्त कवि जगजीवन साहब (कोटवा, जिला बाराबङ्की) और राधावल्लभीय जगजीवनदास से प्रसङ्ग प्राप्त जगजीवन का कोई सम्बन्ध नहीं।

५८. जगत सिंह

आचार्य कवि जगत सिंह का जन्म गोंडा के बिसेन राजवंश की भिनगा (बहरायच) वाली शाखा में हुआ था। इनके पिता दिग्विजय सिंह, देवतहा के तालुकेदार थे। यह स्थान बलरामपुर से पाँच मील दक्षिण गोंडा जाने वाली सड़क पर स्थित है। 'भारती कण्ठाभरण' में इन्होंने अपना परिचय इन शब्दों में दिया है—

दत्तसिंह को बन्धु लघु, नाम भवानी सिंह।
हाटक कस्यप रिपु भये, उदै आय नर सिंह॥
महायुद्ध कीने अमित, जानत सब संसार।
बसि लीन्हे भिनगा सकल, भाजे सब जनवार॥
भरतखंड मंडन भयो, ताको सुत बरिबंड।
जिन उजीर सों रन रचे, अपने ही भुज दंड॥
शिवपुरान भाषा कियो, जानत सब संसार।
सकल शास्त्र को देखियत, सुने पुरान अपार॥

ता सुत भो दिग्विजय-सिंह, सकल गुनन को खानि।
सबै महीपति भूमिके, राखत जाकी आनि ॥
जगत सिंह ताको तनै, बन्दि पिता के पाय।
पिंगल मत भाषा करत, छमियो सब कवि राय ॥

इनके काव्यगुरु शिवकवि अरसेला बन्दीजन थे। गुरुके साहचर्य, स्वाध्याय एवं प्रातिभज्ञान से विरचित जगत सिंह की अधिकांश रचनायें काव्य-शास्त्र सम्बन्धी हैं। प्राचीन आचार्यों—मम्मट, विश्वनाथ, क्षपणक और जयदेव के सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या में इनकी वृत्ति विशेष रूप से रमी है। भाषाकाव्य के एतद्विषयक इनके पथप्रदर्शक आचार्य केशवदास थे। उनकी कविप्रिया और रसिक-प्रिया पर टीकायें लिखकर जगतसिंह ने अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ता का परिचय दिया है।

इस प्रकार शास्त्रचिंतन में अहर्निश मग्न रहते हुये भी इनकी पैनी दृष्टिसे तत्कालीन सामाजिक जीवन ओझल न रह सका। अवध की नवाबी सभ्यता से प्रभावित किसी क्षत्रिय रईस के वेश-विन्यास, चाल-ढाल एवं स्वभाव का शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हुए ये लिखते हैं—

हालि हालि हुलसि-हुलसि हँसि-हँसि देखै,
बदन बतीसी मीसो दीसी दिन राति है।
जामा पायजामा सब सामा को चलावै कौन,
'जगत' जनानन की सीखी सब घात है।
लोक को न लाज परलोक को करै न काज,
ठाकुर कहाइ कहा चोरी उतपात है।
गनिका ज्यों डोली पर बैठत खटोली पर,
चाल पर चोली पर बोली पर मात है ॥

अबतक इनकी बारह कृतियों का पता चल सका है—रत्नमञ्जरी कोष (सं० १८६३), रसमृगांक (सं० १८६३), अलंकारसाठिदर्पण (सं० १८६४), उत्तममंजरी, चित्रमीमांसा, जगतविलास, नखशिख, भारती कंठाभरण (लिपिकाल सं० १८६४) जगत प्रकाश (सं० १८६५) और नायिकादर्शन (सं० १८७७)।

८९. जीवन

इस नाम के दो कवि हुए हैं। एक भक्तिकाव्य के रचयिता जीवन कवि सं० १६०८ के आस पास उपस्थित थे, दूसरे जीवन लखनऊ के नवाब मुहम्मद

अली (शासन काल सं० १८६४–६६) के आश्रित शृंगारी कवि थे। दिग्विजय भूषण में संभवतः दूसरे जीवन कविके छंद उदाहृत हैं।

ये पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर) के निवासी चंदन कवि के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १८०३ में हुआ था। इन्होंने नेरी गरगाँव (जिला सीतापुर) के ताल्लुकेदार बरिवंड सिंह के आश्रय में रहकर 'बरिवंड विनोद' नामक ग्रंथ की रचना सं० १८७३ में की थी।

६०. जैन मुहम्मद

इनका असली नाम जैनुद्दीन अहमद था। कवियों के आश्रयदाता होने के साथ ही ये स्वयं भी अच्छे कवि थे। शिवसिंहजी ने इनका उदयकाल सं० १७३६ माना है। महाकवि भूषण के बड़े भाई चिंतामणि कुछ दिनों तक इनके आश्रय में रहे थे। दिग्विजय भूषण के निम्नांकित छंद में किसी आश्रित कवि ने इनका शौर्यवर्णन इन शब्दों में किया है—

खैर खरी सरदार हजार में जूझ में आपनी फौज ते फूटि कै।
दौरि के जैन महम्मद वीर दई सिर में तरवारि ज्यौं ऊटि कै॥
आधो रह्यो धर घोरै घरीक लौं आधो गिरो धरनी पर टूटि कै।
मानहु मान गिरीश ते कै रही गौरि गिरी अरधंग ते छूटि कै॥

इनका नायिका भेद विषयक केवल एक छंद दिग्विजय भूषण में संकलित है। थोड़े पाठ-भेद के साथ वही सरोज में भी उद्धृत है। इनकी किसी संपूर्ण कृति का पता नहीं चलता।

६१. जसवंतसिंह

जसवंत सिंह नाम के दो कवि हुये हैं—एक मारवाड़ के प्रसिद्ध महाराज जसवंत सिंह और दूसरे तिरवा (जिला फर्रुखाबाद) के बघेल राजा जसवंत-सिंह। दिग्विजय भूषण में उपर्युक्त दोनों जसवंत सिंह नामधारी कवियों के छंद उदाहृत हैं, किंतु कवि सूची में नाम एक ही जसवंत सिंह का आया है। ग्रंथ के भीतर दो स्थलों पर 'राजा जसिवंत सिंह' का नाम दिया गया है। एक स्थान पर 'भाषा भूषण' से एक दोहा उदाहृत है, वह प्रथम जसवंत सिंह की एक विख्यात रचना है। अन्यत्र संभवतः बघेल राजा जसवंतसिंह के शृंगार शिरोमणि से लेकर एक कवित्त उद्धृत किया गया है।

प्रथम महाराज जसवंतसिंह जोधपुर नरेश गजसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८२ में हुआ था। पिता की मृत्यु के बाद सं० १६९५ में ये गद्दी पर

बैठे थे। सं० १७११ में शाहजहाँ ने इन्हें छः हजारी मनसबदार बनाकर महाराज की उपाधि प्रदान की। शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब के विरोधी होते हुए भी कालान्तर में ये उसके विश्वस्त सेना नायक एवं सहायक बन गये। शिवाजी के विरुद्ध अभियान में शाइस्ता खाँ के साथ ये दक्षिण भेजे गये। सं० १७३५ में मुगल शासन की ओर से अफगानों से युद्ध करते हुये जमुर्रद नदी के किनारे ये वीरगति को प्राप्त हुये।

आचार्य रूप में लिखा गया इनका 'भाषा भूषण' नामक अलंकार ग्रंथ रीतिकालीन कवियों का प्रधान संबल रहा है। इसके अतिरिक्त इनकी छः अन्य रचनायें अध्यात्म विषयक हैं। इनके नाम हैं—अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभवप्रकाश, आनंदविलास (सं० १७२४), सिद्धान्त बोध, इच्छा विवेक, सिद्धान्त सार और प्रबोध चन्द्रोदय नाटक।

दूसरे राजा जसवंतसिंह तिरवा नरेश हम्मीर सिंह के पुत्र थे। ये बड़े ही साहित्य रसिक और सिद्धहस्त कवि थे। इनका निजी पुस्तकालय संस्कृत एवं हिन्दी के अलभ्य ग्रंथों का बृहद् भांडार था। ग्वाल कवि बहुत दिनों तक उनके आश्रय में रहे थे। इनकी दो रचनायें मिलती हैं शालिहोत्र और श्रृंगार शिरोमणि। दिग्विजय भूषण में उद्धृत छन्द 'श्रृंगार शिरोमणि' से लिया गया प्रतीत होता है। इनका उपस्थिति काल सं० १८५६ के आस पास माना जाता है।

६२. ठाकुर

अब तक ठाकुर नामधारी तीन कवि ज्ञात हैं। पहले प्राचीन ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सं० १७०० के लगभग वर्तमान थे। कालिदास के हजारा में जिनके छंद संग्रहीत बताये गये हैं, वे यही ठाकुर हैं। दूसरे ठाकुर बंदीजन असनी (जिला फतेहपुर) के निवासी थे। इनके पिता ऋषिनाथ, पुत्र धनीराम और पौत्र सेवक, सभी कवि थे। ये काशिराज के भाई बाबू देवकीनन्दन सिंह के पास रहते थे। इन्होंने सं० १८६१ में बिहारी सतसई की टीका लिखी थी। तीसरे ठाकुर बुंदेलखंडी कायस्थ थे। इनके पिता का नाम गुलाब राय था। इनका जन्म सं० १८२३ में ओरछा में हुआ था और सं० १८८० में ये परलोक वासी हुये। बुंदेलखण्ड के तत्कालीन राजाओं में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। जैतपुर के राजा केसरीसिंह, बिजावर नरेश और बाँदा के हिम्मत बहादुर गोसाईं इनके प्रमुख आश्रयदाता थे। राज्याश्रय में जीवन यापन करते हुए भी ठाकुर कवि ने अपने आत्मसम्मान में कभी बट्टा नहीं लगने दिया। हिम्मत बहादुर के

समक्ष पढ़ा गया निम्नांकित छंद उनकी स्वभावगत निर्भीकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है—

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान किरपान कबहूँ न मन मुरके।
नीत देनवारे हैं मही मैं महिपालन के,
होकर विसुद्ध हैं कहैया बात फुरके॥
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदेनिया ससुर के।
चोजन के चोज रसमौजिन के पातसाह,
ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के॥

इनके पुत्र दरियाव सिंह 'चातुर' और पौत्र शंकर प्रसाद भी अच्छे कवि थे।

ठाकुर कवि की कोई स्वतंत्र रूप से लिखी गई संपूर्ण रचना नहीं मिलती। लाला भगवानदीन जी ने इनकी कविताओं का एक संग्रह 'ठाकुर-ठसक' नाम से निकाला था किंतु उसमें अन्य दो ठाकुर कवियों की भी रचनाएँ मिल गई थी। इनके फुटकर छंद बड़ी संख्या में यत्र तत्र काव्यसंग्रहों में बिखरे हुये मिलते हैं।

६३. तारा कवि

गोकुल कवि ने इनका एक छुन्द दिग्विजय भूषण में दिया है। सरोजकार ने उसे ही उद्‌धृत किया है। शिवसिंहजी के अनुसार ये सं० १८३६ के आस-पास वर्तमान थे। ग्रियर्सन साहब ने इन तारापति की एकता ताराकवि से स्थापित की है। किन्तु उनकी इस उपपत्ति के आधारभूत तथ्य इतने सबल नहीं हैं कि वे निर्भ्रान्त रूप में स्वीकार किये जा सकें।

६४. तारा पति

ये आगरा निवासी अभयराम चतुर्वेदी के पुत्र थे। कविवर बिहारी के भानजे, कुलपति मिश्र, का आविर्भाव इन्हीं के वंश में चौथी पीढ़ी में हुआ था। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उपस्थितिकाल सं० १७६० है, किन्तु कुलपति के काव्यकाल (सं० १७२४–१७४३) को देखते हुये यह नितान्त अशुद्ध ठहरता है। संभवतः १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ये विद्यमान थे। इनके काव्यगुरु कोकसार के रचयिता ताहिर अहमद (सं० १६१८–१६७८) थे। सरोजकार ने नखशिख पर लिखे गये इनके एक ग्रन्थ की प्रशंसा की है।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत छन्द का विषय नखशिख वर्णन ही है। शिवसिंह जी ने उसे ही संकलित किया है। इससे सरोज तथा भूषण के तारापति एक ही हैं, यह मान लेने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

६९. तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का जन्मस्थान परंपरा से बाँदा जिले का राजापुर नामक ग्राम माना जाता रहा है। यद्यपि इस गौरव की प्राप्ति के लिए इधर कुछ विद्वान् सोरों (जिला एटा), हाजीपुर तथा अयोध्या को भी अधिकारी मानने लगे हैं किन्तु उनके तर्क इतने दृढ़ नहीं हैं कि एतद्विषयक उपर्युक्त मान्यता को निराधार प्रमाणित कर सकें। जन्मभूमि की भाँति तुलसी का जन्म संवत् भी विवादास्पद है। मानस मयंक के रचयिता बन्दनपाठक उसे सं० १५५४, शिवसिंह सेंगर सं० १५८३ तथा पं० रामगुलाम द्विवेदी सं० १५८९ मानते हैं। इस सम्बन्ध में केवल उनकी जन्म तिथि 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' निर्विवाद है।

तुलसी के निम्नांकित उल्लेखों से इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि उनका आविर्भाव ब्राह्मण कुल में हुआ था——

"दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को"

"जायो कुल मंगन बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।"

किसी समकालीन जीवनी लेखक द्वारा समर्थित न होते हुए भी उनके पिता के चार नाम प्रचारित हैं——आत्माराम दूबे, परशुराम मिश्र, अम्बादत्त और अनूप। माता हुलसी के नाम की पुष्टि के लिए रहीम का यह दोहा प्रस्तुत किया जाता है——

सुरतिय नरतिय नाग तिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

रामचरित मानस के मंगलाचरण में आये हुये निम्नांकित सोरठे से दीक्षा गुरु का नाम 'नरहरि' स्पष्ट है——

बन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥

इन्हीं महानुभाव से इन्होंने सरयू-घाघरा संगम पर, गोंडा जिले के सूकर खेत नामक तीर्थ में रामकथा सुनी थी, जिसका उल्लेख रामचरित मानस में इस प्रकार हुआ है——

सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकर खेत ।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।

गोस्वामी जी की स्त्री में परमासक्ति की कथा लोक प्रसिद्ध है । इनकी जीवन-धारा को एक नया मोड़ पत्नी की प्रेमपूर्ण फटकारने दिया था । इधर सोरों सामग्री में उसके 'रत्नावली' नाम की सुधि भी कर ली है । अतः तुलसी की जीवनी का यह अन्धकारमय पक्ष भी इस नये प्रकाश से आलोकित हो उठा है ।

तुलसी का समस्त विरक्त जीवन सत्संग, काव्यरचना और तीर्थाटन में बीता । अयोध्या, चित्रकूट और काशी उनके मुख्य निवास स्थान रहे । अयोध्या में ही सं० १६३१ में 'मानस' की रचना प्रारम्भ हुई, जिसकी समाप्ति काशी में हुई । इसी नगर में अस्सी संगम पर श्रावण कृष्णा तृतीया सं० १६८० को उन्होंने अपनी ऐहिक लीला संवरण की ।

गोस्वामी जी की कृतियों में सर्वाधिक प्रचार 'मानस' का हुआ । उत्तरी भारत में, समाज की सभी श्रेणियों में, उसे जितनी स्थायी लोकप्रियता प्राप्त हुई उतनी कदाचित् ही किसी देश में कोई रचना समादृत हुई हो । उसके अतिरिक्त तुलसी की ग्यारह अन्य रचनायें भी न्यूनाधिक मात्रा में शताब्दियों से राम-भक्तों तथा सहृदयों के गले का हार रही हैं । वे हैं—राम लला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपनी, श्री कृष्णगीतावली, बरवै रामायण, गीतावली, दोहावली, विनयपत्रिका और कवितावली ।

गोकुल कवि ने इनमें से केवल दोहावली के कुछ छन्द अलंकारों के उदाहरण स्वरूप, उद्धृत किये हैं ।

६६. तोष

इनका असली नाम तोषमणि था । ये शृङ्गवेरपुर (सिंगरौर, जिला इलाहाबाद) के निवासी चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे । 'सुधानिधि' में अपना परिचय देते हुये इन्होंने लिखा है—

शुक्ल चतुर्भुज को सुत तोष बसै सिंगरौर जहाँ रिषि थानो ।
दच्छिन देवनदी निकटै दस कोस प्रयागहि पूरब मानो ।।

शिवसिंह जी ने इनका उपस्थिति-काल सं० १७०५ बताया है । 'सुधानिधि' की रचना सं० १६९१ में हुई । अतः सरोजकार का उपर्युक्त निर्णय बहुत अंश तक ठीक है ।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भ्रान्तिवश इन्हें तोषनिधि से अभिन्न मान लिया है ।

६७. तोषनिधि

तोषनिधि कंपिला (जिला फर्रुखाबाद) के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम ताराचन्द अवस्थी था। मिश्रबन्धुओं के अनुसार इनके गिरधरलाल नामक एक पुत्र था। इनके वंशज शिवनन्दन अवस्थी कुछ दिनों पूर्व तक कंपिला में वर्तमान थे।

तोषनिधि की निम्नांकित कृतियाँ मिली हैं—व्यंग्य शतक, रतिमंजरी और नखशिख। इनमें रतिमंजरी का रचनाकाल सं० १७६४ दिया गया है अतः इसी के लगभग इनका कविताकाल निश्चित किया जा सकता है।

६८. दत्त कवि

इसी ग्रन्थ के २१ संख्यक 'कविदत्त' का ही भूषणकार ने, संभवतः भ्रमवश 'दत्तकवि' के नाम से उल्लेख किया है। यद्यपि इनके अतिरिक्त मऊरानीपुर के जनगोपाल तथा गुलजार ग्राम के दत्तलाल कवि भी 'दत्त' छाप से कविता करते थे, किन्तु दिग्विजयभूषण में 'दत्त कवि' और 'कविदत्त' के नाम से उदाहृत छन्दों में 'कविदत्त' की ही छाप मिलने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके रचयिता एक ही थे। (देखिये कविदत्त का परिचय)

६९. दयादेव

इनकी जीवनी तथा कृतियोंके सम्बन्ध में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। खोज में इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'कवित्त दयादेव के' नाम से मिला है। संभव है वह इनके किसी प्रशंसक अथवा वंशज द्वारा किया गया इनकी फुटकर रचनाओं का संकलन हो। इनके आविर्भावकाल पर एक क्षीण प्रकाश सूदन रचित प्रणम्य कवियों की सूची द्वारा पड़ता है, जिसमें इनका भी नाम सम्मिलित है। इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि ये सं० १८१० के पूर्ववर्ती कवि हैं। सरोज में इनके नाम से एक छंद उद्धृत है, वह दिग्विजयभूषण से ही लिया गया है।

७०. दयानिधि

इस नाम के तीन कवि हुए हैं। प्रथम दयानिधि डौंड़िया खेरा (बैसवाड़ा) के निवासी थे। ये सं० १८११ में विद्यमान थे। दूसरे दयानिधि का आविर्भाव सं० १८६१ के पूर्व हुआ था। तीसरे दयानिधि ब्राह्मण पटना के रहने वाले थे। शिवसिंह जी ने इन तीसरे दयानिधि का एक छन्द उद्धृत किया है। वह दिग्विजय

भूषण में भी उदाहृत है। इससे उक्त दोनों कवियों की एकता स्वतः सिद्ध है। इसके आधार पर ये सं० १९१६ के पूर्व वर्तमान माने जा सकते हैं।

७१. दयाराम

दयाराम नाम के दो कवि खोज में मिले हैं। प्रथम दयाराम वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी नागर ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान नर्मदा तट पर स्थित चरणोद (चंडीग्राम) नामक गाँव था। ये सं० १८२४ से लेकर, सं० १९०९ तक जीवित रहे। इनकी पाँच रचनाओं का पता चला है—कृष्णनाम-चन्द्रिका, दयाराम सतसई (सं० १८७२), श्रीमद्भागवतानुक्रमणिका, अनन्य चन्द्रिका और वस्तुवृन्दनाम अथवा अनेकार्थ माला।

दूसरे हैं प्रयाग-निवासी दयाराम त्रिपाठी। इनके पिता का नाम लक्ष्मीराम था। 'सभा' के खोज विवरण में इन्हें बदन कवि का पितामह और बेनीराम कवि का गुरु बताया गया है। ये मुगल बादशाह मुहम्मदशाह (शासन काल सं० १७७६–१८०५) के समकालीन और चतुरसेन नामक किसी रईस के आश्रित कवि थे। शिवसिंह जी ने इन्हें शान्तरस परक रचनाओं का सिद्धहस्त कवि कहा है। इनकी दो कृतियाँ मिली हैं—दयाविलास और योगचन्द्रिका।

संयोग वश दयाराम नामधारी उपर्युक्त दोनों कवियोंके दो छन्द सरोज में संकलित हैं, वे दिग्विजय भूषण में नहीं मिलते। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि गोकुल कवि ने किस दयाराम की रचना उदाहृत की है। दिग्विजय भूषण में दी गई रचना शृंगारी है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वह प्रथम रामभक्त दयाराम की न होकर दूसरे दरबारी कवि दयाराम कृत है।

७२. दिनेश

ये टिकारी (जिला गया—बिहार) के निवासी और अपने समय के विख्यात कवि थे। इनके पुत्र बैजनाथ भी अच्छी कविता करते थे। दिनेश कवि के दो ग्रन्थ खोज में मिले हैं—रस-रहस्य (सं० १८८३) और काव्य कदम्ब। ग्रियर्सन साहब ने रस-रहस्य का प्रतिपाद्य विषय नखशिख बताया है। शिवसिंह जी ने भी इनके नखशिख विषयक ग्रन्थ की चर्चा की है। दिग्विजय-भूषण में उदाहृत इनके सभी छन्द नखशिख पर ही हैं। अतः सरोजकार और ग्रियर्सन द्वारा निर्दिष्ट दिनेश कवि और दिग्विजय भूषण के उस नाम के कवि एक ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

७३. द्विजदेव

अयोध्या नरेश मानसिंह अपने उपनाम 'द्विजदेव' से ही साहित्य क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध हैं। गोकुल कवि ने इनके उपर्युक्त दोनों नामों का उल्लेख किया है। इससे इनकी पहचान विषयक भ्रान्ति की गुंजाइश नहीं रह जाती।

महाराज मानसिंह शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। अयोध्या नरेश प्रतापनारायण सिंह 'ददुआ साहब' इनके दौहित्र थे। द्विजदेव जी की रचनाओं का एक संस्करण महारानी अयोध्या ने 'शृंगारलतिका' के नामसे प्रकाशित कराया था। इनकी एक अन्य कृति 'शृङ्गार बत्तीसी' खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना (बिहार) से निकली थी। अब ये दोनों ग्रन्थ दुष्प्राप्य हैं।

द्विजदेव जी रीति मुक्त शृंगारी परंपरा के अन्तिम सर्वश्रेष्ठ कवि थे। अपने जीवन काल में इन्होंने पूर्ववर्ती काव्य प्रेमी सामन्तों द्वारा स्थापित परंपरा का सम्यक् निर्वाह किया था। इनके दरबारी कवियों में लछिराम, जगन्नाथ, चंडीदत्त, बलदेव, ठाकुर प्रसाद और रामदीन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके उत्तराधिकारी महाराज प्रताप नारायण सिंह ने भी 'शृंगार-लतिका' की टीका कर अपनी काव्य मर्मज्ञताका परिचय दिया था। उनके देहावसान के अनन्तर श्री जगन्नाथदास रत्नाकर की भी काव्य-प्रतिभा के विकास में अयोध्या दरबार का मुख्य हाथ रहा। इस प्रकार द्विजदेव द्वारा स्थापित व्रजभाषा काव्य परंपरा ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में विशेष योग दिया।

७४. दीनदयाल गिरि

परमहंस दीनदयालगिरि गोसाईं का जन्म काशी के गऊ घाट मुहल्ले में वसंतपंचमी शुक्रवार, सं० १८५६ में हुआ था। इनके पिता पाँच वर्ष की आयु में इन्हें असहाय छोड़कर दिवंगत हो गये। उसी मुहल्ले के मठधारी महन्त कुशागिरि ने अपना शिष्य बना कर इनका पालन-पोषण किया। गुरु के देहावसान के पश्चात् इनकी जायदाद नीलाम हो गई। अतः काशी छोड़कर देहली विनायक के पास मौठली गाँव के मठ में चले गये और फिर आजीवन वहीं रहे। भारतेन्दुजी के पिता बाबू गोपालचन्द्र (गिरिधर दास) इनके घनिष्ठ मित्रों में से थे। परमहंस जी का परलोकवास सं० १९२२ में हुआ।

बाबा जी काव्य शास्त्र के जैसे मर्मज्ञ थे वैसे ही अद्भुत प्रतिभासम्पन्न कवि भी थे। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषाशैली की सरलता तथा पद-विन्यास की मनोहरता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और इनके 'अन्योक्ति

कल्पद्रुम' को हिन्दी साहित्य का अनमोल रत्न माना है। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की संख्या १२ है—दृष्टान्ततरंगिणी (सं० १८७६) अनुराग बाग (सं० १८८८) वैराग्य दिनेश (सं० १९०६), अन्योक्तिकल्पद्रुम (सं० १९१२) चित्रकाव्य (उदधिबन्ध), विश्वनाथ नवरत्न, अन्तर्लापिका, काशीपञ्चरत्न, कुण्डलिया, चकोरपञ्चक, अन्योक्तिमाला और दीपक पंचक। इनका कविताकाल सं० १८७६ से सं० १९१२ तक है।

दिग्विजय-भूषण के रचयिता गोकुल कवि ने काशी जाकर इनसे काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। ग्रन्थारम्भ में उन्होंने परमहंस जी को अपना काव्यगुरु घोषित किया है।

७८. दूलह

दूलह का जन्म ऐसें कुलमें हुआ था, काव्यरचना जिसकी परम्परागत सम्पत्ति थी। इनके पिता उदयनाथ 'कविन्द' और पितामह कविवर कालिदास त्रिवेदी थे। 'कविन्द' जी के साथ ये बहुत दिनों तक अमेठी (जिला सुलतानपुर) के गुणग्राही राजा गुरुदत्तसिंह 'भूपति' के दरबार में रहे। पिता की मृत्यु के बाद भी इनका अमेठी दरबार में काफी सम्मान रहा। इनकी प्रसिद्ध रचना 'कविकुलकंठाभरण' यहीं लिखी गई है। गुरुदत्तसिंह के 'रसरत्न' नामक ग्रन्थ में दूलह की उपर्युक्त कृति का उल्लेख होना यह सिद्ध करता है कि 'कविकुलकंठाभरण' दूलह के प्रथम आश्रय दाता गुरुदत्त सिंह के जीवन में ही प्रसिद्ध हो चुका था—

अलंकार औरौ विषे, विविध भाँति सरसाइ।
कविकुल कंठाभरण में, सबै लिखी ठहराइ॥

इनके दूसरे आश्रयदाता बूँदी के रावराजा बुध सिंह थे। औरंगजेब के मरने पर दिल्ली के सिंहासन के लिये उसके पुत्रों में जो उत्तराधिकार युद्ध हुआ उसमें बुध सिंह ने बहादुरशाह का पक्ष लिया था। अन्त में विजयश्री भी उसी के हाथ लगी। उत्तराधिकार प्रश्न के निर्णायक जाजव के युद्ध में राव राजा बुध सिंह के शौर्य का चित्रण दूलह ने इन शब्दों में किया है—

युद्ध माहिं जाजव के बुद्ध कै सक्रुद्ध युद्ध,
आजम के महाबीर काटि डारे भूजा से।
कहै कवि 'दूलह' समुद्र बढ़े सोणित के,
जोगिनि परेत फिरैं जम्बुक अजूजा से॥

एक लीन्हे सीस खाँय बैस ईस एकन को,
एकन को उपमा निहारी मन ऊजा से।
अधफटे फैलि फैलि करमैं विराजैं मानो,
माथे मुगलन के तरासैं खरबूजा से॥

जाजव का यह युद्ध सं० १७६४ में हुआ था, अतः 'मिश्रबन्धु विनोद' में निर्दिष्ट दूलह का जन्मकाल सं० १७७७ नितान्त अशुद्ध है। यह कवि की प्रौढ़ावस्था में लिखी गई रचना है अतः दूलह का जन्मकाल सं० १७४० के लगभग मानना अधिक युक्तिसंगत होगा।

इनकी एक अन्य रचना 'दूलह विनोद' है। उसकी भूमिका में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह (शासनकाल सं० १७७६–१८०५) की प्रशस्ति वर्णित है। इससे यह विदित होता है कि इन्होंने कुछ समय मुगल दरबार में भी बिताया था। दूलह के ये तीसरे आश्रयदाता वही मुहम्मदशाह हैं जिनका दरबार, मीर मुंशी के रूप में घनानन्द ने अलंकृत किया था।

अपने जीवनकाल में ही दूलह इतने विख्यात हो गये थे कि उनके सम्बन्ध में यह लोकोक्ति चल पड़ी थी—

"और बराती सकल कवि दूलह दूलहराय।"

७६. देव

इनका असली नाम देवदत्त था। ये इटावा नगर के निवासी द्योसरिहा कान्यकुब्ज ब्राह्मण बिहारीलाल के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७३० में हुआ था। अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रथम ग्रन्थ 'भावविलास' की रचना इन्होंने १६ वर्ष की आयु में सं० १७४६ में की थी। सं० १७५६ में ये इटावा छोड़कर मैनपुरी चले गये और कुसमड़ा गाँव में बस गये। वहाँ इनके वंशज अब तक विद्यमान हैं।

देव स्वतंत्र विचार और अक्खड़ स्वभाव के कवि थे। दुर्भाग्यवश इन्हें ऐसे गुणग्राही आश्रयदाता न मिले जो कड़े मिज़ाज के बावजूद इनकी असाधारण कवित्वशक्ति की कद्र कर सकते। ऐसी दशा में इन्हें निरन्तर एक के बाद दूसरे दरबार का आश्रय लेते हुए जीवन बिताना पड़ा।

इनके प्रथम आश्रयदाता औरंगजेब के पुत्र आजमशाह थे। इन्हें देव ने 'भाव विलास' और 'अष्टयाम' सुनाया। एक छन्द में आजमशाह की रसिकता का चित्रण करते हुये वे लिखते हैं—

बनि साहब आजम साह के साथ छकी बनिता छबि छावति है।
अँगिरावति उठी रति मंदिर ते मुसक्याइ जम्हाइ रिझावति है॥
चलि जोरि कै 'देव' मरोरि चहै उपमा हिय मैं उमगावति है।
रसरंग अनंग अथाह भरो सु मनो सुख सिंधु थहावति है॥

इसके पश्चात् भवानीदत्त वैश्य के नाम पर 'भवानी विलास' और फफूँद (इटावा) के राजा कुशलसिंह के लिये 'कुशल विलास' की रचना हुई। वहाँ से ये उदोत सिंह बैस के दरबार में पहुँचे। 'प्रेम चन्द्रिका' यहीं पूरी हुई। अन्त में राजा भोगीलाल की छत्र छाया में 'रस विलास' लिखा गया। इनकी मृत्यु सं० १८२५ में हुई।

संख्या की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों में देव ने सबसे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी रचनायें ७२ बताई हैं। इधर डा० नगेन्द्र ने इनकी जीवनी तथा कृतियों पर एक विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनकी प्राप्त २७ रचनाओं की नामावली इस प्रकार है---भावविलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेमतरंग, रागरत्नाकर, कुशल विलास, देवचरित्र, प्रेम चन्द्रिका, जातिविलास, रस विलास, काव्य रसायन, सुखसागर तरंग, वृक्ष विलास, पावस विलास, ब्रह्म दर्शन पचीसी, तत्व दर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगद्दर्शन पचीसी, रसानंद-लहरी, प्रेम दीपिका, सुमिल विनोद, राधिका विलास, नीति शतक, नखशिख, प्रेम दर्शन, सुन्दरी सिंदूर, और देवमाया प्रपंच नाटक।

७७. देवकीनन्दन

देवकीनंदन शुक्ल मकरन्दनगर (जिला फर्रुखाबाद) के निवासी थे। इनके पिता शिवनाथ और भाई गुरुदत्त दोनों अच्छे कवि थे। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनके पिता का नाम सबली शुक्ल बताया है, जो वास्तव में पितामह थे। सर्वप्रथम देवकीनंदन उमराव गिरि गोसाई के पुत्र सरफराज गिरि के आश्रय में रहे और उनके लिये 'सरफराज चन्द्रिका' (सं० १८४३) की रचना की। इसके अनन्तर ये रूदामऊ (तहसील मल्लावाँ जिला हरदोई) के राजा अवधूत सिंह के दरबारी कवि हो गये। उनके नामपर 'अवधूत भूषण' (सं० १८५६) लिखा गया। इनके अतिरिक्त इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—शृंगार चरित्र (सं० १८४०) और ससुरारि पचीसी। प्राप्त रचनाओं के कालक्रम को देखते हुए इनका काव्यकाल सं० १८४० से १८५६ तक माना जा सकता है।

७८. देवीदास

इस नाम के दो प्रसिद्ध कवि हुये हैं। एक देवीदास बुंदेलखंडी और दूसरे देवीदास बंदीजन के नाम से जाने जाते हैं। प्रथम देवीदास बुंदेलखंडी करौली नरेश रतनपाल सिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी दो रचनायें मिली हैं— प्रेम रत्नाकर और राजनीति के कवित्त। शिवसिंहजी ने इनके नीति विषयक कवित्तों की प्रशंसा की है और सं० १७१२ में इन्हें उपस्थित कहा है। इनके वंशज अब छतरपुर (मध्यप्रदेश) में रहते हैं।

दूसरे देवीदास बन्दीजन का उदय, सरोज के अनुसार सं० १७५० के लगभग हुआ। इनका एक ग्रन्थ 'सूमसागर' मिला है जिसकी रचना सं० १७६४ में हुई। इस दृष्टि से शिवसिंह जी द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त संवत् इनका आविर्भाव काल रहा होगा।

शिवसिंह जी ने प्रथम देवीदास की रचनाशैली के उदाहरण स्वरूप जो छन्द उद्धृत किये हैं वे दिग्विजयभूषण में ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। इतना ही नहीं सरोजकार द्वारा निर्दिष्ट इनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य विषय भी भूषण में दिये गये छन्दों से मिल जाता है। इन तथ्यों के आधार पर प्रथम देवीदास से दिग्विजयभूषण के देवीदास की एकता निस्सन्देह स्थापित की जा सकती है।

७९. धुरंधर

इनके सम्बन्ध में कोई सूचना सुलभ नहीं है। गोकुल के पूर्ववर्ती सरदार कवि के 'शृंगार संग्रह' में इनके छन्द संकलित हैं। इससे यह निश्चित हो जाता है कि इनका आविर्भाव सं० १९०५ के पूर्व हुआ था। मिश्रबन्धुओं ने इनके द्वारा विरचित 'शब्द प्रकाश' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है।

८०. नन्दन

इनकी जीवनी तथा कृतियों पर साहित्यिक सूत्रों से कोई महत्वपूर्ण प्रकाश नहीं पड़ता। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १६२५ में विद्यमान बताया है और कालिदास के हजारा में इनके छन्दों के संकलित होने का उल्लेख किया है। मिश्रबन्धु और ग्रियर्सन इसकी पुष्टि करते हैं। दिग्विजयभूषण में संग्रहीत इनके छन्दों की रचना शैली अत्यन्त प्रौढ़ एवं सरस है।

८१. नबी

हिन्दी साहित्य के इतिहासों से इनके विषय में ज्ञातव्य तथ्यों पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। शिवसिंह जी ने इनके एक ग्रन्थ 'नखशिख' का

उल्लेख किया है। दिग्विजयभूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं। एक का विषय नायिका भेद है दूसरे का नखशिख वर्णन। सम्भवतः दूसरा छन्द इनके नखशिख नामक ग्रन्थ से लिया गया है। यही छन्द सरोज में भी उदाहृत है। प्रसंग प्राप्त नबी 'ज्ञानदीप' नामक प्रेमाख्यानक काव्य के रचयिता, जौनपुर वासी शेखनबी (आविर्भावकाल सं० १६७६) से सर्वथा भिन्न हैं।

८२. नरहरि

महापात्र नरहरि बंदीजन अकबरी दरबार के कवि थे। इनका जन्म पखौली गाँव (जिला रायबरेली) में सं० १५६२ में हुआ था। आरम्भ में ये रीवाँ नरेश रामचन्द्र के आश्रय में रहे। इसके पश्चात् पुरी के राजा मुकुन्द गजपति के दरबारी कवि हुए। मुगलसम्राट् अकबर से इनका सम्पर्क बाद को स्थापित हुआ और तब से ये आजन्म उन्हीं के आश्रय में साहित्य सेवा करते रहे।

अकबर ने इन्हें महापात्र की उपाधि से सम्मानित किया और फतेहपुर जिले में असनी नामक गाँव वृत्ति के लिए दिया। यहाँ पर इनके वंशज अब तक बसे हुए हैं। मुगल दरबार से नरहरि को कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी, इसकी झलक उनके इस कवित्त में मिलती है—

नाम नरहरि है प्रसंसा सब लोग करैं,
हंस हू से उज्वल सकल जग व्यापे हैं।
गंगा के तीर ग्राम असनी गोपालपुर,
मंदिर गोपाल जी को करत मंत्र जापे हैं॥
कवि बादसाही मौज पावैं बादसाही ओज,
गावैं बादसाही जासे अरिगन काँपे हैं।
जब्बर गनीमन के तोरिबे को गब्बर,
हुमायूँ के बब्बर अकब्बर के थापे हैं॥

प्रसिद्ध है कि एक दिन नरहरि ने एक गाय के गले में स्वरचित निम्नांकित छप्पय कागज पर लिखकर लटका दिया और उसे साम्राट् के सम्मुख फरियादी के रूप में प्रस्तुत किया। अकबर ने उसी दिन से अपने साम्राज्य में गोवध बन्द करा दिया।

अरिहु दंत तृन धरैं, ताहि नहिं मारि सकत कोइ।
हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महिथंभन जावहिं।
हिंदुहि मधुर न देहिं, कटुक तुरकहि न पियावहिं॥

कह कवि नरहरि अकबर सुनौ, बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत, मुएहु चाम सेवत चरन ॥

इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिन गोपाल का भजन करते हुए असनी में बिताये। यहीं सं० १६६७ में इनका गोलोकवास हुआ। इनकी तीन रचनायें उपलब्ध हुई हैं---रुक्मिणीमंगल, छप्पैनीति और कवित्त संग्रह। गोकुल कवि ने 'छप्पैनीति' के दो छन्द उदाहृत किये हैं।

८३. नरोत्तम

ये बुन्देलखंड के निवासी थे। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उदय सं० १८९६ के आस पास हुआ। सरोज में इनके नाम से उद्धृत छन्द दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है। सुदामा चरित के रचयिता नरोत्तमदास से भिन्न, ये शृंगारी परंपरा के कवि थे। इनके फुटकर छन्द ही मिलते हैं, कोई स्वतंत्र ग्रन्थ अब तक प्रकाश में नहीं आया है।

८४. नवल

इस नाम के कई कवि हुए हैं और उनमें से अधिकांश रीतिकालीन हैं। दिग्विजय भूषण में संग्रहीत नवल कवि की रचना शृंगारी है। इससे यह निश्चित करना कठिन है कि वह किस नवल कवि की कृति है।

८५. नागर

भूषणकार ने नागर कवि का छन्द उदाहृत करते समय 'नागर कवि नाम नागरीदास राजा कै' लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि नागर कवि से उनका तात्पर्य प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि नागरीदास से ही है। वल्लभ संप्रदाय में प्रविष्ट होने के पूर्व ये कृष्णगढ़ के राजा थे और महाराज सावन्तसिंह के नाम से अभिहित किये जाते थे।

इनका जन्म कृष्णगढ़ (राजस्थान) की राजधानी रूपनगर में, पौषकृष्ण १२, सं० १७५८ में हुआ था। अपने पिता महाराज राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् ये गद्दी पर बैठे किन्तु इनके भाई बहादुरसिंह ने जोधपुर के महाराज की सहायता से इन्हें अपदस्थ कर कृष्णगढ़ पर अधिकार कर लिया। सावन्तसिंह ने मरहठों के सहयोग से बहादुरसिंह को पराजित कर उक्त राज्य पर अपना स्वत्व पुनः स्थापित कर लिया। इस गृहकलह का सावन्तसिंह के सात्विक अन्तःकरण पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि राज्यप्राप्ति के पश्चात् शीघ्र ही आश्विन शुक्ल १०, सं० १८१४ को अपने पुत्र सरदारसिंह को राजकाज का सारा भार सौंप कर वे वृन्दावन चले

गये। साथ में उनकी उपपत्नी बणीठणी जी भी गईं। वृन्दावन के कृष्ण भक्तों ने उनका साम्प्रदायिक नाम 'नागरीदास' सुनकर स्वजन की भाँति अपूर्व स्वागत किया—

सुन व्यवहारिक नाम को, ठाढ़े दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम नागरीदास॥

इसके बाद कृष्णलीला वर्णन करते हुये ये आजन्म धाम सेवन करते रहे। वृन्दावन की पवित्र भूमि में ही सं० १८२१ में इन्होंने पार्थिव शरीर त्याग कर नित्य लीला में प्रवेश किया।

नागरीदास जी का कविता काल सं० १७८० से सं० १८१६ तक विस्तृत था। इनकी रचनाओं की संख्या ७५ कही जाती है, जिनमें ७० 'नागर समुच्चय में प्राप्य हैं। इनमें प्रमुख हैं—मनोरथमंजरी (सं० १७८०), रसिकरत्नावली (सं० १७८२), बिहार चन्द्रिका (सं० १७८८), निकुंज विलास (सं० १७९४), कलि वैराग्य वल्लरी (सं० १७९५), ब्रजसार (सं० १७९९) भक्तिसार (सं० १७९९), गोपीप्रेम प्रकाश (सं० १८००) भक्तिमगदीपिका (सं० १८०२), फाग विहार (सं० १८०८), जुगलभक्तिविनोद (सं० १८०८), वनविनोद (सं० १८०९) और सुजनानन्द (सं० १८१०)।

दिग्विजयभूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं जिनमें से एक सरोज में भी उद्धृत है।

८६. नाथ

इस नाम के कई कवि हुये हैं। सरोजकार ने नाथ नामराशी चार कवियों का उल्लेख किया है। किन्तु इनमें से जिस नाथ का कवित्त दिग्विजय भूषण से लिया गया है सरोज में उनका न तो उदयकाल दिया गया है और न उनके किसी ग्रन्थ का उल्लेख ही हुआ है। अन्य सूत्रों से भी स्पष्टतया उनके जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

दिग्विजयभूषण में नाथ के नखशिख विषयक जो छन्द उदाहृत हैं, वे हरिनाथ ब्राह्मण गुजराती (काशीवासी) के 'अलंकार दर्पण' से सरोज में उद्धृत कवित्त से भाषाशैली में मिलते हैं। इनका उपस्थितिकाल सं० १८२६ है, क्योंकि यही उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल है। सरोजकार ने इन्हें सं० १८२६ में वर्तमान बताया है। सम्भवतः यही दिग्विजय भूषण के नाथ कवि हैं।

८७. नायक

इनके सम्बन्ध में कोई सूचना उपलब्ध नहीं हैं। शिवसिंह जी ने दिग्विजय भूषण से ही लेकर इनका एक छन्द सरोज में उद्धृत किया है। सूदन कवि ने इस नाम के एक कवि का उल्लेख वन्दनीय कवियों की सूची में किया है। यदि ये वही नायक हैं तो निश्चय ही सं० १८१० के पूर्ववर्ती हैं।

खोज रिपोर्टों में नायक कवि तीन ग्रन्थों के रचयिता कहे गये हैं—दत्तात्रय सत्संग, उपदेस सागर तथा सर्वसिद्धान्त श्री राममोद्म परिचय। सम्भवतः वे रामभक्त बालकृष्ण नायक हैं जो 'बालअली' के नाम से विख्यात हैं। दिग्विजयभूषण के श्रृंगारी 'नायक' से इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

८८. नारायण

इस नाम के चार कवि हुये हैं। प्रथम नारायणदास कवि ने 'हितोपदेश भाषा' की रचना की थी। ये सं० १६१५ के लगभग विद्यमान थे। दूसरे नारायण राय भट्ट, गोकुल के निवासी कृष्णभक्त थे। इनका समय सं० १६२० के आसपास था। नाभादास जी के भक्तमाल में इनका परिचय दिया गया है। तीसरे नारायणराय बन्दीजन काशी के सोनारपुरा मुहल्ले में रहते थे। ये सरदार कवि के शिष्य थे। इन्होंने केशवदास की रसिक प्रिया की टीका सं० १६०३ में की थी। चौथे नारायणदास वैष्णव चित्रकूट में रहते थे। इनकी तीन रचनायें मिलती है—छन्दसार पिंगल, पिंगल मात्रा और महाराज जसवन्तसिंह के भाषाभूषण की टीका। इनका उपस्थित काल सं० १८२६ के लगभग था।

इनमें से किस नारायण कवि के छन्द गोकुल कवि ने दिग्विजयभूषण में रखे हैं, यह निश्चय करना कठिन है। मेरा अनुमान है कि वे उपर्युक्त चौथे नारायणदास वैष्णव हैं। दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनकी रचना सरोज में छन्दसार पिंगल से उद्धृत छन्द से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

८९. निधि

इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं। सरोजकार ने इन्हें सं० १७५१ में वर्तमान बताया है किन्तु ग्रियर्सन ने इनका आविर्भावकाल सं० १६५७ माना है। उनके अनुसार गोसाईं चरित तथा रागकल्पद्रुम में इनका नाम आया है। दिग्विजयभूषण में नखशिख पर इनका एक छन्द उदाहृत है, जिससे ये ग्रियर्सन द्वारा निर्दिष्ट, तुलसी के समकालीन (सम्भवतः भक्त कवि) निधि से पृथक् कोई श्रृंगारी कवि सिद्ध होते हैं।

९०. निपट

गोकुल कवि ने दिग्विजय-भूषण की कविसूची में तो केवल 'निपट' नाम दिया है किन्तु इनके जो छन्द उदाहृत किये हैं उनमें 'निपट-निरञ्जन' छाप दी हुई है। इससे यह असन्दिग्ध है कि ये प्रसिद्ध भक्त कवि निपटनिरञ्जन ही हैं।

इनका जन्म बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत चन्देरी नगर में हुआ था। बाल्यावस्था में ही पिता का निधन हो जाने से इनके पालन-पोषण का भार माता पर पड़ा। संयोगवश इसी समय इन्हें साधुओंका सत्सङ्ग प्राप्त हो गया। उन्हीं के साथ ये दक्षिण चले गये और औरङ्गाबाद के समीप एकनाथ जी के मन्दिर में रहने लगे। कुछ दिनों बाद वहीं इन्होंने अपनी एक अलग कुटी बना ली। यहाँ से ये देवगिरि गये। इसी बीच युद्धों के सम्बन्ध में औरङ्गजेब दक्षिण गया और सं० १७४० के लगभग औरङ्गाबाद नगर बसाया। अकस्मात् उससे निपटनिरञ्जन स्वामी की भेंट हो गई और वह इनकी आध्यात्मिक शक्ति से अत्यन्त प्रभावित हुआ। आलमगीर को सम्बोधित करके लिखे गये स्वामी जी के निम्नाङ्कित छन्द से उनके पारस्परिक सम्बन्ध की घनिष्ठता अभिव्यक्त होती है—

हम तो फकीर खुद मस्त हैं खुदा पै फिदा,
रहैं जग से जुदा कछु लेना है न देना है।
शाहों के शाह नहीं हमें कुछ परवाह,
चेला चाटी की न चाह ताना है न बाना है॥
मन ही नहाना धोना पवन का खाना पीना,
आसमान ओढ़ना औ प्रिथी का बिछौना है।
कहै 'निपटनिरंजन' सुनो आलम गीर!
सुन्न हरि महल बीच सोना ही तो सोना है॥

औरंगजेब का शासनकाल सं० १७१५–१७६४ तक रहा। अतः इसी के आस-पास इनका कविता काल मानना चाहिये।

स्वामी जी की तीन रचनायें मिली हैं—कवित्त निपट जी के, शान्तरस वेदान्त और एक अज्ञातनाम ग्रंथ। प्रथम दोनों सम्पूर्ण हैं और तीसरी आदि अन्त पृष्ठ रहित खण्डित। शिवसिंह जीने 'निरञ्जन संग्रह' और 'शांतसरसी' नामक इनके दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जो सम्भवतः ऊपर दी हुई सूची के प्रथम और द्वितीय ग्रन्थों के ही दूसरे नाम हैं।

दिग्विजय-भूषण में इनके शान्तरस के दो कवित्त संग्रहीत हैं।

९१. नीलकंठ

ये तिकवाँपुर (जिला कानपुर) निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र और कविवर भूषण के अनुज थे। सरोजकार ने इनका असली नाम जटाशंकर और उपस्थिति काल सं० १७३० बताया है। खोज में इनका एक ग्रंथ 'अमरेस-विलास' मिला है, जो 'अमरु-शतक' का पद्यानुवाद है। इसका रचना काल सं० १६९८ है। इसके अतिरिक्त इनकी लिखी हुई नायिका भेद विषयक एक खंडित रचना भी प्राप्त हुई है।

दिग्विजय-भूषण में नीलकंठ के तीन छन्द उदाहृत हैं, जिनमें से एक में दलेल खाँ के किसी आक्रमण से पराजित एवं त्रस्त शत्रु-बन्धुओं की स्थिति का चित्रण है। यह छन्द भूषण के 'तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं' के वज़न पर लिखा गया है—

तन पर भारतीन तन पर भार तीन,
 तन पर भार तीन तन पर भार हैं।
पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन,
 पूजे देवदार तीन पूजे देवदार हैं॥
'नीलकंठ' दारुन दलेल खां तिहारी धाक,
 नाँघती न द्वार ते वै नाँघती पहार हैं।
आँधरन कर गहि बहिरन संग रहि,
 बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं॥

ये दलेल खाँ वास्तव में औरंगजेब के रुहेला सेनापति दिलेर खाँ हैं, जो मराठों के प्रबल शत्रु थे और शिवाजी के विरुद्ध कई बार मुगलवाहिनी के अध्यक्ष बनाकर भेजे गये थे।

९२. नृपशंभु

ये सितारागढ़ के राजा थे। इनका असली नाम शम्भुनाथ सिंह था। शिवसिंह जी ने इन्हें सोलंकी क्षत्रिय लिखा है किन्तु वास्तव में ये मराठा थे। मतिराम त्रिपाठी से इनकी बड़ी घनिष्ठता थी। रत्नाकर जी ने इनकी एक 'नखशिख' नामक रचना सम्पादित करके भारतजीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित की थी। सरोज में उद्धृत इनके छन्दों में दो दिग्विजय-भूषण में भी पाये जाते हैं।

९३. नेवाज

इस नाम के तीन कवि हुये हैं—प्रथम नेवाज जुलाहा बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी थे। दूसरे नेवाज त्रिपाठी की जन्मभूमि अन्तर्वेद था। ये औरङ्गजेब के पुत्र आज़मशाह और महाराज छत्रसाल के आश्रित कवि थे। इनकी दो रचनायें—छत्रसाल विरुदावली और शकुन्तला नाटक—मिली हैं। कहते हैं छत्रसाल के दरबार में इनकी नियुक्ति किसी भगवत नामक कवि के स्थान पर हुई थी। उसने कुढ़ कर इस नये प्रबन्ध पर निम्नांकित व्यंग्य पूर्ण दोहा महाराज छत्रसाल के पास लिख भेजा था—

भली आजु कलि करत हौ, छत्रसाल महराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

इनका उपस्थितिकाल सं० १७३७ के लगभग था।

तीसरे नेवाज बुन्देलखंडी असोथर (जिला फ़तेहपुर) के महाराज भगवन्त राय खीची के दरबारी कवि थे।

शिवसिंह सरोज में इनमें से प्रथम नेवाज के नाम से संकलित एक छंद दिग्विजय-भूषण में भी उदाहृत है। अतः गोकुल कवि के 'नेवाज' कवि बिलग्रामी नेवाज ही हैं इसमें सन्देह नहीं। शिवसिंहजी के अनुसार ये सं० १८०४ में उपस्थित थे।

९४. पखाने

गोकुल कवि ने लोकोक्ति अलंकार के उदाहरण में कुछ प्रसिद्ध 'उपाख्यान' अथवा 'पखान' उद्धृत किये हैं। उनके रचयिता का नाम ज्ञात न होने से उन्होंने प्रत्येक छन्द में 'पखानों' शब्द की आवृत्ति देख कर उसे ही भ्रांतिवश कवि का वास्तविक नाम अथवा छाप मान लिया और दिग्विजय भूषण की कवि सूची में इस 'पखाने' नाम को स्थान दे दिया। वास्तव में दिग्विजयभूषण में 'पखाने' कवि के नाम से दिये गये छन्द जयपुर निवासी राय शिवसहाय-दास की रचना 'लोकोक्तिरसकौमुदी' से लिये गये हैं। इस में 'पखानों' (उपाख्यानों–कहावतों) के आधार पर नायिकाभेद का निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ को महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने सं० १९४७ में सम्पादित कर के भारत जीवन प्रेस (काशी) से प्रकाशित कराया था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बलरामपुर राज्य पुस्तकालय में है। शिवसिंह जी ने 'पखाने' कवि की रचना शैली के उदाहरण दिग्विजय भूषण से ही लेकर उद्धृत किये हैं। इसीलिये गोकुल कवि की भ्रान्ति सरोज में भी दुहराई गई है।

९५. पजनेस

ये पन्ना (बुन्देलखण्ड) के निवासी थे। अब तक इनकी 'मधुप्रिया' नामक केवल एक रचना उपलब्ध हुई है। सरोज के आधार पर शुक्ल जी ने इनके एक अन्य ग्रन्थ 'नखशिख' का भी उल्लेख किया है, किंतु वह 'मधु प्रिया' का एक अंग मात्र है। पजनेस के फुटकर छन्दों के दो संग्रह 'पजनेस-पचासा' और 'पजनेस-प्रकाश' भारत जीवन प्रेस काशी से प्रकाशित हुए थे। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १८७३ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय भूषण में इनके नखशिख तथा संयोग श्रृङ्गार विषयक छन्द उदाहृत हैं।

९६. पद्माकर

पद्माकर रीतिकाल के लोक प्रसिद्ध कवि हैं। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८१० में सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ था। इनके पिता पं० मोहनलाल भट्ट भी काव्यरचना करते थे। उनसे इनकी काव्य प्रतिभा के विकास में प्रेरणा मिली। अधिकांश रीति-कालीन कवियों की भाँति इन्हें भी अपना कवि जीवन अनेक आश्रय- दाताओं के यहाँ घूम घूमकर बिताना पड़ा। उनमें प्रमुख थे—महाराज रघुनाथ राव (नागपुर), महाराज प्रतापसिंह तथा जगतसिंह (जयपुर), नोने अर्जुनसिंह, गोसाईं अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर—बाँदा) और दौलतराव सिंधिया (ग्वालियर), दिग्विजय भूषण में दिये हुए इनके निम्नांकित छन्द से यह विदित होता है कि भगवन्त सिंह नामक किसी राजा के यहाँ भी ये कुछ दिन रहे थे—

दूनी तेज दाहते हैं तिगुनी त्रिसूल हू तें,
चौगुनी चलाक चक्र पानि चक्र चाली तें।
कहै 'पदुमाकर' महीप भगिवंत सिंह,
ऐसी समसेर सिर सत्रुन पै घाली तें॥
पंचगुनी पवि तें पचीस गुनी पाहन तें,
प्रगट पचास गुनी प्रलै की प्रनाली तें।
सौगुनी है सर्प तें सहस्र गुनी सर्पिनी तें,
लाख गुनी लूक तें करोरि गुना काली तें॥

पद्माकर के काव्य संग्रहोंमें उपर्युक्त छन्द की तीसरी पंक्ति में 'भगिवंत सिंह' के स्थान पर 'रघुनाथ राव' पाठ मिलता है। कहा जाता है यह छन्द इन्होंने नागपुर के राजा रघुनाथ राव की युद्ध वीरता की प्रशति में पढ़ा था। १८ वीं शती के प्रसिद्ध युद्ध वीर, असोथर के राजा भगवंतसिंह, का सं० १७९३ में ही

देहान्त हो चुका था। पद्माकर का आविर्भाव उसके १७ वर्ष बाद हुआ। अन्य किसी 'भगवंत सिंह' के आश्रय में इनका रहना प्रमाणित नहीं होता। ऐसी दशा में 'रघुनाथ राव' का पाठ संगत प्रतीत होता है।

अस्सी वर्ष की आयु भोगकर पद्माकर ने, कानपुर में गंगातट पर सं० १८६० में शरीर छोड़ा।

इनके द्वारा विरचित नौ ग्रन्थ मिलते हैं—हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी, राम रसायन, आलीजाह प्रकाश, हितोपदेश (गद्य-पद्यात्मक अनुवाद) और ईश्वर पचीसी।

९७. परबत

ये जाति के सुनार थे और ओरछा (बुन्देलखंड) के रहने वाले थे। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १६२४ से उपस्थित माना है, किन्तु 'बुंदेल वैभव' के रचयिता ने इनका आविर्भाव काल सं० १६८४ और कविताकाल काल सं० १७१० निश्चित किया है। दिग्विजय भूषण में नखशिख विषय पर इनका एक छन्द उदाहृत है।

९८. परसराम

इस नाम के तीन कवियों का पता चलता है। प्रथम परसराम ब्रजवासी, राधा वल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कवि हरिनाम व्यास के शिष्य थे। शिवसिंह जी जी के अनुसार ये सं० १६६० में उपस्थित थे। दूसरे परसराम को गार्सा द तासी ने 'ऊषा अनिरुद्ध' चरित्र का रचयिता बताया है। तीसरे परसराम कुलपति मिश्र के पिता थे। ये हरिकृष्ण के पुत्र और तारापति के प्रपौत्र थे। इनकी जन्म भूमि आगरा थी। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शती के द्वितीय चरण में हुआ था। इनके फुटकर छन्द प्राचीन काव्य संग्रहों में संकलित पाये जाते हैं, कोई संपूर्ण कृति नहीं मिलती है।

इनमें से प्रथम दो परसराम भक्त कवि हैं, तीसरे शृङ्गारी। दिग्विजय भूषण में परसराम के तीन छन्द उदाहृत हैं और वे सभी नखशिख वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं। मेरा अनुमान है कि वे तीसरे परसराम के हैं। इनकी कुलपरंपरा में अनेक उत्कृष्ट शृङ्गारी कवि हुए हैं।

९९. परसाद

'परसाद' छाप से कविता लिखने वाले दो कवि हुए हैं और संयोगवश उन दोनों का सम्बन्ध उदयपुर दरबार से था। प्रथम परसाद महाराणा कर्ण सिंह के आश्रित थे और सं० १६८० में विद्यमान थे।

दूसरे परसाद महाराणा जगतसिंह (शासन काल सं० १७११–१८०८) के दरबारी कवि थे। इनका पूरा नाम बेनी प्रसाद था। सं० १६६५ में इन्होंने 'श्रृङ्गार समुद्र' की रचना की थी। इस ग्रंथ की पुष्पिका में ये लिखते हैं—

सत्रह सै पंचानवे, सावन सुदि दिन रुद्र।
रसिकन के सुखदैन कौं, भो श्रृंगार समुद्र॥

॥ इति श्री महाराजाधिराज जगतराज विनोदार्थ कवि बेनी प्रसाद कृत श्रृङ्गार समुद्र नायक बर्नन नाम द्वितीय प्रकास।

दिग्विजय भूषण वाले यही दूसरे परसाद कवि हैं। शिवसिंह जी ने परसाद कवि का उपस्थिति काल सं० १६०० माना है और उन्हें उदयपुर के महाराणा का आश्रित बताया है। ग्रियर्सन महोदय ने परसाद को सं० १६२३ में वर्तमान कहा है। मेरा अनुमान है कि इन दोनों महानुभावों ने जिन परसाद कवि का निर्देश किया है वे प्रथम परसाद हैं। सरोज और भूषण में इस नाम के कवि के उदाहृत छंद भिन्न भिन्न हैं, इससे भी उक्त धारणा की पुष्टि होती है।

बेनी प्रसाद की एकमात्र रचना 'श्रृङ्गार समुद्र' ही प्रकाश में आई है।

१००. पुरान

गोकुल कवि ने इनका एक छन्द उदाहृत किया है। सरोज में भी वह उसी रूप में उपस्थित है। इनकी जीवनी तथा कृतियों के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चल सका। दिग्विजय भूषण में उद्धृत कवित्त इन्हें श्रृङ्गारी परंपरा का कवि सिद्ध करता है।

१०१. पुहकर

हिन्दू प्रेमाख्यानक कवियों में पुहकर का स्थान अन्यतम है। इनका 'रस-रतन' काव्य सौष्ठव की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। प्रेमाख्यानों में ब्रज की कवित्त-सवैया शैली का जितनी सफलतापूर्वक निर्वाह इन्होंने किया, वह अभूतपूर्व था। इनका जन्म मैनपुरी जिले में सोमतीर्थ के पास प्रतापपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम मोहनदास था। ये जाति के कायस्थ थे। इनके छः भाई और थे—सुन्दर, राघव, मुरलीधर, शंकर, मकरन्दराय और सकतसिंह। ये मुगल सम्राट् जहाँगीर के समकालीन थे। किसी बात पर रुष्ट होकर जहाँगीर ने इन्हें कैद करा लिया। 'रस-रतन' की रचना बन्दीगृह में ही सं० १६७३ में हुई। जहाँगीर को जब इनकी काव्य-प्रतिभा का पता चला तो उसने तत्काल ही इन्हें क्षमाप्रदान कर मुक्त करने का हुक्म दे दिया। इनका 'नखशिख' नामक एक दूसरा ग्रन्थ भी खोज में मिला है। शिवसिंह जी ने

इनके नाम का तत्सम रूप 'पुष्कर' ही रखा है 'पुहकर' नहीं। गोकुल कवि ने इनका एक नायिका भेद विषयक छन्द उदाहृत किया है।

१०२. पूषी

ये मैनपुरी जिले के निवासी ब्राह्मण थे। शिवसिंह जी के अनुसार इनका उपस्थिति काल सं० १८०३ है। गोकुल कवि ने संयोग शृङ्गार, नायिका भेद और षड्ऋतु वर्णन विषयक इनके चार छन्द दिये हैं।

१०३. प्रताप

प्रताप अथवा प्रताप साहि रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवि हैं। ये रतनसेन बन्दीजन के पुत्र थे। इनके प्रधान आश्रयदाता चरखारी (बुन्देलखंड) के महाराज विक्रमसाहि थे। अबतक इनकी जो कृतियाँ मिली हैं उनकी सूची इस प्रकार है—जयसिंह प्रकास, अलंकार चिन्तामणि, व्यंग्यार्थ कौमुदी (सं० १८८२); शृङ्गार मंजरी (सं० १८८९), शृङ्गार शिरोमणि (सं० १८९४), काव्य-विनोद (सं० १८९६), रसराजतिलक (सं० १८९६), रत्नचन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका—सं० १८९६), जुगल (सीताराम) नखशिख और बलभद्र नखशिख की टीका। इस प्रकार इनका काव्यकाल सं० १८८२ से सं० १८९६ तक माना जा सकता है।

दिग्विजयभूषण में प्रताप कवि के संकलित सभी छन्द सीताराम के नखशिख वर्णन विषयक हैं। ये उनके जुगल नखशिख से लिये गये हैं। इससे गोकुल के 'प्रताप' कवि की, प्रसिद्ध प्रतापसाहि (बन्दीजन) से, एकता असंदिग्ध ठहरती है।

१०४. प्रधान

ये रीवाँ (बघेलखण्ड) राज्य के मन्त्री के घराने के थे और वहाँ के महाराज विश्वनाथसिंह के आश्रित कवि थे। इनका असली नाम रामनाथ था किन्तु कविता में ये 'प्रधान' छाप ही रखते थे। इनका जन्म सं० १८५७ में हुआ। सं० १९२५ में ये परलोकवासी हुये। रामकलेवा इनकी एक प्रसिद्ध रचना है। उसके अतिरिक्त इनकी पाँच कृतियाँ और हैं, जिनके नाम हैं—कवित्त राजनीति, चित्रकूट शतक, धनुषयश, रामहोरी रहस्य और प्रधान नीति।

दिग्विजयभूषण में उदाहृत छन्द 'कवित्त राजनीति' से लिया गया है। ये शृङ्गारी रामभक्ति शाखा के कवि थे।

१०५. प्रबीनराय

प्रबीनराय ओरछा दरबार की नर्तकी थी। केशवदास जी के आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह इसके रूपगुण पर मुग्ध थे और यह भी उनपर इतनी आसक्त थी कि अपना वंशगत स्वभाव छोड़कर एकनिष्ठ भाव से आजीवन उनकी सेवा करती रही। इसकी काव्य-प्रतिभा को परिष्कृत करने के उद्देश्य से इन्द्रजीतसिंह ने केशवदास से इसे काव्यशास्त्र की शिक्षा दिलाई जिससे कुछ ही दिनों में यह एक विदग्ध कवयित्री हो गई। केशवदास इसकी प्रशंसा करते हुये लिखते हैं—

रतनाकर लालित सदा, परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रबीन॥
राय प्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि राजत अंग।
बीना पुस्तक धारिनी, राजहंस सुत संग॥

इसके लोक मोहक सौन्दर्य की कथा सम्राट् अकबर तक पहुँची। उन्होंने इसे दरबार में बुला भेजा। प्रबीनराय बड़े असमंजस में पड़ी। शाही हुक्म को टालने से उसके आश्रयदाता इन्द्रजीतसिंह राजकोप के शिकार बनते और पालन करने पर उसका सतीत्व खतरे में पड़ता था। अपनी इस संघर्षपूर्ण मनोदशा की अभिव्यक्ति इन्द्रजीतसिंह के समक्ष उपस्थित होकर उसने इन शब्दों में की थी और उनका निर्णय चाहा था—

आई हौं पूछन मंत्र तुम्हें तुम्ह हो इन साह के मंत्र अगोई।
प्रान तजौं न भजौं सुलतानहिं मैं न लजौं लजिहै पुनि वोई॥
स्वारथ हाथ रहै परमारथ बात विचारि कहौ तुम सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिब्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीतसिंह ने राजाज्ञा की अवहेलना कर उसे दिल्ली जाने से रोक दिया। यह समाचार पाकर अकबर के क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल ही इन्द्रजीतसिंह पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर एक करोड़ रुपया जुर्माना कर दिया और प्रबीनराय को बलपूर्वक दिल्ली लाने का फरमान जारी करा दिया। अब प्रबीनराय को अपने यहाँ रखना इन्द्रजीतसिंह के काबू के बाहर की बात थी। विवश होकर उन्हें उस को दिल्ली भेजना पड़ा।

बादशाह के समक्ष उपस्थित होकर प्रबीनराय ने अपने अद्‌भुत वाक्‌कौशल से उन्हें पानी-पानी कर दिया। अपने सतीत्वरक्षा की भिक्षा माँगते हुये उसने निवेदन किया—

बिनती राय प्रबीन की, सुनिये साहि जहान।
जूठ पतौवा है भखै, कौवा औरौ स्वान॥

'साहि जहान' कौवे और स्वान की श्रेणी में अपनी गणना कराना कैसे मंजूर करता ? उसने प्रवीनराय की चतुरता की सराहना करते हुये उसे सम्मान-पूर्वक ओरछा वापस भेज दिया। पीछे केशवदास के प्रयत्न से बीरबल ने एक करोड़ का जुरमाना भी माफ़ करा दिया।

इसके पश्चात् प्रवीनराय का सारा जीवन इन्द्रजीत सिंह के साथ ओरछा में ही बीता। दिग्विजय-भूषण का निम्नांकित छन्द उनके गहरे मधुर सम्बन्ध की सूचना देता है—

कुरकुट कोट कोट कोठरी निवारि राखौं,
चुन दै चिरैयनि को मूँदि राखौं जलियो।
सारँग में सारँग मिलाऊँ हो 'प्रवीन राय',
सारँग दै सारँग को जोति करौं थलियो॥
तारापति तुमसों कहौं कर जोरि जोरि,
भोर मति कीजियो सरोज मुदि कलियो।
मोहिं मिल्यो इन्द्रजीत धीरज नरिंद राजा,
एहो! आजु चंद नैकु मंदगति चलियो॥

इनकी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। कुछ फ़ुटकर छन्द ही यत्र-तत्र प्राचीन काव्य संग्रहों में संकलित पाये जाते हैं।

१०६. प्रहलाद

इस नाम के दो कवि हुये हैं। शिवसिंह जी ने दोनों का पृथक् परिचय दिया है। प्रथम 'पहलाद कवि' अकबर कालीन थे। इन्होंने सं० १६६१ के आस-पास 'बैताल पचीसी' लिखी थी। दूसरे प्रहलाद बन्दीजन चरखारी के महाराज जगतसिंह के कृपापात्र थे। इनके समय का उल्लेख सरोज में नहीं हुआ है किन्तु ग्रियर्सन ने इन्हें १८१० ई० में वर्तमान माना है। सरोजकार ने इन दोनों में से केवल प्रथम प्रहलाद कवि का एक कवित्त उद्धृत किया है। वह नायिका भेद पर है। दूसरे प्रहलाद भी रीतिकालीन थे। ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन है कि प्रहलाद नामधारी उक्त दोनों में से किसके छन्द गोकुल कवि ने दिग्विजय भूषण में संकलित किये हैं।

१०७. प्रेम सखी

प्रेम सखी रसिक सम्प्रदाय के रामभक्त थे। इनका जन्म शृंगवेरपुर (सिंगरौर) के समीप एक ब्राह्मण परिवार में सं० १७९१ के लगभग हुआ था। बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर ये चित्रकूट गये और वहाँ महात्मा

रामदास गूदर के शिष्य हो गये। चित्रकूट में कुछ दिनों तक साधना करने के पश्चात् ये मिथिला गये। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार, वहाँ जानकी जी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें 'सखी' रूप में अपनाया और 'रहस्यकेलि' का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराया। 'प्रेम सखी' नाम इसी समय पड़ा। इसके पूर्व इनका व्यावहारिक नाम क्या था, इसका पता नहीं। अपनी रचनाओं में इस आत्म-सम्बन्धी नाम को ही इन्होंने छापरूप में रखा है। इनके जीवन का अधिकांश 'दिव्य दम्पत्ति' की विहार लीला का वर्णन और ध्यान करते हुये चित्रकूट में बीता।

अपने समय में ये एक पहुँचे हुये भक्त के रूप में ख्यात थे। कहते हैं अवध के नवाब ने महात्मा रामप्रसाद (सं० १७०३–१८०४) से इनकी संगीतमर्मज्ञता की प्रशंसा सुनकर सवा लाख की भेंट भेजी थी जिसे इन्होंने लौटा दिया था।

महात्मा प्रेमसखी की तीन रचनायें प्राप्त हुई हैं—होली, कवित्तादि प्रबन्ध और श्री सीताराम नखशिख। ब्रजभाषा में काव्य रचना करने वाले तुलसीके परवर्ती रामभक्तोंमें इनकी जैसी प्रांजल पद योजना किसी की भी रचना में नहीं मिलती।

दिग्विजयभूषण में शृङ्गारी रामभक्ति विषयक इनके दो छन्द उदाहृत हैं।

१०८. बंसीधर

इस नाम के कई कवियों का उल्लेख खोज विवरणों में मिलता है। उनमें से तीन विशेष उल्लेखनीय है—प्रथम बंसीधर वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी, और सम्भवतः स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी एक मात्र रचना 'दानलीला' उपलब्ध हुई है। दूसरे बंसीधर मिश्र संडीला (जिला हरदोई) के निवासी थे। ये गोस्वामी तुलसीदासजी के सम-कालीन भक्त कवि थे। 'भाषा-काव्य-संग्रह' के अनुसार इनकी मृत्यु सं० १६७२ में हुई। तीसरे बंसीधर मेदपाट ब्राह्मण अहमदाबाद के निवासी थे। ये शृङ्गारी कवि थे। दलपति राय श्रीमाल के साथ इन्होंने 'अलंकार रत्नाकर' नामक टीका महाराज जसवंत सिंह के 'भाषा-भूषण' पर लिखी थी।

दिग्विजय-भूषण में बंसीधर के दो कवित्त उदाहृत हैं और दोनों कृष्ण-लीला विषयक हैं। एक में द्रौपदी की लाज-रक्षा और दूसरे में कृष्ण के मथुरा गमन की घटना वर्णित है। मेरा अनुमान है कि ये पुष्टिमार्गी कृष्ण भक्त प्रथम बंसीधर द्वारा विरचित हैं। वल्लभाचार्य जी का समय सं० १५३५ से सं० १५८७ तक माना जाता है। अतः इन्हें भी इसीके आसपास विद्यमान समझना चाहिए।

१०९. बलदेव

इस नाम के छः कवियों का उल्लेख साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रंथों में मिलता है—

१. बलदेव प्राचीन—ये सं० १७०४ में उपस्थित थे।

२. बलदेव बघेलखंडी—ये विक्रम साहि बघेला के आश्रित थे और सं० १८०९ में वर्तमान थे।

३. बलदेव चरखारी वाले—इनका उदय सं० १८६६ के लगभग हुआ।

४. बलदेव हाथरस वाले—ये सं० १९०३ के लगभग विद्यमान थे।

५. बलदेव क्षत्रिय—ये अयोध्या नरेश महाराज मानसिंह 'द्विजदेव' के काव्यगुरु थे और सं० १९११ में उपस्थित थे।

६. बलदेव अवस्थी—ये सीतापुर जिले के दासापुर नामक गाँव के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८९७ में हुआ था। इनकी चार रचनायें उपलब्ध हुई हैं—मुक्तमाल, ब्रजराज विहार, प्रताप विनोद और शृङ्गार सुधाकर।

७. बलदेव मिश्र—ये औरंगजेब के समकालीन थे। आजमगढ़ के संस्थापक अजमतखाँ और आजमखाँ—जो पहले गौतम क्षत्रिय थे—के ये पुरोहित थे। 'अजमतिखाँ-यशवर्णन' नामक इनकी एक संपूर्ण रचना और कतिपय फुटकर छंद मिले हैं।

इनमें दिग्विजयभूषण के बलदेव कौन हैं यह निर्णय करना कठिन है। मेरा अनुमान है कि वे उपर्युक्त बलदेव नामाराशी कवियों में से छठवें बलदेव अवस्थी हैं। ये गोकुल कवि के समकालीन थे। एक ही प्रदेश के निवासी एवं समकालीन होने से सम्भवतः भूषणकार इनसे परिचित भी रहे हों। इनकी रचनाओं की भाषा शैली दिग्विजय भूषण वाले बलदेव से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

११०. बलभद्र

बलभद्र नामक तीन कवियों का पता चला है। प्रथम बलभद्र कायस्थ बीरसिंह बुंदेला (ओरछा) के आश्रित कवि थे। इन्होंने 'अबुल फजल विजय' की रचना की थी। दूसरे बलभद्र मिश्र ओरछा निवासी पं० काशीनाथ के पुत्र सनाढ्य ब्राह्मण थे। ये आचार्य केशवदास के बड़े भाई थे और सं० १६४२ में विद्यमान थे। इनका नखशिख विषयक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। तीसरे बलभद्र कायस्थ पन्ना के रहने वाले थे। सरोजकार के अनुसार इनका उदय सं० १९०१ में हुआ।

दिग्विजय भूषण में बलभद्र कवि के उदाहृत छंद नखशिख वर्णन सम्बन्धी हैं। वे दूसरे बलभद्र विरचित प्रतीत होते हैं। इनकी कुल छः कृतियाँ बताई जाती हैं—बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक की टीका, गोबरधन सतसई की टीका, भागवत का अनुवाद, नखशिख, और भाषा काव्यप्रकाश अथवा कवित्त भाषा दूषण विचार। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका आविर्भाव काल सं० १६०० और रचनाकाल सं० १६४० के पूर्व माना है।

१११. बिहारी

सतसई के रचयिता कविवर बिहारी लाल माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १६५२ में ग्वालियर के समीप बसुवा गोविन्दपुर नामक गाँव में हुआ था। कुछ अनिवार्य घरेलू परिस्थितियों से इन्हें बाल्यावस्था पिता के साथ ओरछा (बुंदेलखंड) में बितानी पड़ी। इनका विवाह मथुरा में हुआ, तब से ये वहीं रहने लगे। जयपुर के मिर्जा जयसिंह (शासनकाल सं० १६७८–१७२४) इनके एकमात्र ज्ञात आश्रयदाता हैं। सतसई की रचना उन्हीं की प्रेरणा से हुई। प्रसिद्ध है कि बिहारी का प्रवेश जिस समय उनके दरबार में हुआ, महाराज अपनी नवविवाहिता छोटी रानी के प्रेमपाश में बद्ध हो राज-काज से विमुख हो रहे थे। हितैषी सामन्तों की सलाह से बिहारी ने निम्नांकित दोहा लिखकर जयसिंह के पास अन्तःपुर में पहुँचाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कवन हवाल॥

महाराज के विलासमग्न मानस को इससे एक नई चेतना मिली और वे वासनापूर्ण जीवन से विरत होकर पूर्ववत् शासनकार्य में दत्तचित्त हो गये। यह एक आश्चर्य की बात है कि बिहारी ने अपने उपर्युक्त छन्द से आश्रयदाता को नवचेतना प्रदान करने के पश्चात् उनके प्रीत्यर्थ जिस सतसई की रचना (सं० १७०४ में) की उसके अधिकांश दोहे 'अली' को 'कली' के मोहपाश में बद्ध करने में ही प्रेरक हुए। फिर भी भाषावैभव और भाव-गांभीर्य की दृष्टि से 'सतसई' हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि मानी जाती है। बिहारी सतसई को जो प्रतिष्ठा मिली और उसकी जितनी टीकाएँ हुईं, उतनी 'रामचरित-मानस' को छोड़कर अन्य किसी काव्य-ग्रंथ की देखने में नहीं आईं। बिहारी का देहावसान सं० १७२१ में हुआ।

दिग्विजय-भूषण में सतसई के कतिपय दोहे अलंकारों के उदाहरण-स्वरूप उद्धृत हैं।

११२. बीठल

बीठल शृङ्गारी कवि हैं। दिग्विजय-भूषण में इनका केवल एक छन्द उदाहृत है। सरोजकार ने उसे ही उद्धृत कर दिया है। अन्य सूत्रों से इनके विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती।

११३. बीरबल

महाराज बीरबल अकबरी दरबार के प्रसिद्ध रत्न थे। इनका असली नाम महेशदास था। ये गंगादास ब्रह्मभट्ट के पुत्र थे। इनका जन्म कालपी सरकार के अन्तर्गत तिकवाँपुर नामक गाँव में, (जो अब कानपुर जिले में है) हुआ था। आगे चलकर महाकवि भूषण का आविर्भाव इसी गाँव में हुआ था। बीरबल ने इसके सन्निकट 'अकबर पुर बीरबल' नामक गाँव बसाया था, जो अब तक वर्तमान है।

अकबर का आश्रय प्राप्त करने के पूर्व ये रीवाँ नरेश रामसिंह और आमेर के राजा भगवानदास के दरबार में रह चुके थे। राजा भगवानदास ने ही इनका परिचय अकबर से कराया, जिसके फलस्वरूप ये मुगलदरबार में प्रविष्ट हुए। गुणग्राहक अकबर ने इनकी प्रतिभा की कद्र की। इनकी वाग्पटुता और प्रत्युत्पन्नमतित्व से प्रसन्न होकर उसने 'कविराय' की उपाधि के साथ ही नगरकोट (पंजाब) में एक अच्छी जागीर देकर इन्हें सम्मानित किया। अकबर का इनके प्रति अपार स्नेह और राजकार्य में बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर कुछ दरबारी इनसे जलने लगे। उनके षड्यंत्र से विनोदी बीरबल को, पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पठानों के विरुद्ध शाही सेना का अध्यक्ष बनाकर भेजा गया। इसी संग्राम में काबुल के समीप माघ सुदी १२, शुक्रवार सं० १६४२ को इन्होंने वीरगति प्राप्त की।

बीरबल की मृत्यु का समाचार पाकर अकबर ने अपने हृदय की वेदना व्यक्त करते हुये कहा था—

दीन जानि सब दीन, एक दुरायो दुसह दुख।
सो अब हमको दीन, कछु नहिं राख्यो बीरबर॥
पीथल सूँ मजलिस गई, तानसेन सूँ राग।
हँसबो रमबो बोलबो, गयो बीरबल साथ॥

बीरबल स्वयं कवि तो थे ही कवियों के लिए कल्पवृक्ष भी थे। महाकवि गंग, आचार्य केशवदास और होलराय बन्दीजन ने इनकी दानशीलता की प्रशंसा में

अनेक छन्द लिखे हैं। गंग का निम्नांकित छन्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है—

आवत हुतो शिवसैल ते गिरीश जाँचे,
मिल्यो हुतो मोहिं जहाँ सागर सगर को।
कविन की रसना को पालकी मैं बैठ्यो देख्यो,
साथ सोहे रावरे प्रताप तेजवर को॥
'गंग' हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब,
हमसो सँदेसो उते कह्यो बड़े थर को।
जस मेरो नाम मोहि दसो दिसि काम मेरो,
कहियो प्रनाम हौं गुलाम बीरबर को॥

'ब्रह्म' छाप से लिखी गई बीरबल की फुटकर रचनायें मिलती हैं। संपूर्ण ग्रंथ केवल एक मिला है जिसका नाम है 'सुदामा चरित'।

दिग्विजय भूषण में इनके पाँच छन्द उदाहृत हैं, जिनमें एक नीति और शेष नखशिख वर्णन तथा नायिका भेद सम्बन्धी हैं।

११४. बेनी

बेनी नाम के तीन कवि हुए हैं—बेनी प्राचीन असनी (जिला फतेहपुर) वाले, बेनी बैंती (जिला रायबरेली) वाले और बेनी प्रवीन लखनऊ वाले। दिग्विजय भूषण में संकलित छंद शिवसिंहसरोज में प्रथम बेनी के नाम से उद्धृत हैं। अतः दिग्विजय भूषण के बेनी प्राचीन बेनी ही हैं, यह असंदिग्ध है। ये 'श्रृंगारी बेनी' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

बेनी कवि अपना परिचय देते हुए लिखते हैं—

लसत बंस उपमन्यु वर, बाजिपेय करि जज्ञ।
सुकृती साधु कुलीन वर, नवरस में सरवज्ञ॥
बेनी कवि को बासु है, असनी वर सुभ थान।
बसैं सबै षट्कुल जहाँ, करैं बेद को गान॥

ये निहचल सिंह नामक किसी राजा के आश्रित थे और सं० १७०० के लगभग विद्यमान थे।

प्राचीन काव्य संग्रहों में इनकी फुटकर श्रृङ्गारी रचनायें मिलती हैं। संपूर्ण कृतियाँ केवल दो 'रसमय ग्रन्थ, और 'श्रृङ्गार' उपलब्ध हैं। गोस्वामी तुलसीदास की प्रशंसा में लिखा गया "जो पै रामायन तुलसी न गावतो" वाला प्रसिद्ध छन्द इन्हीं का है।

११५. बोधा

बोधा स्वतन्त्र श्रृंगारी परम्परा के प्रमुख कवि हैं। इनका पूरा नाम बुद्धिसेन था। ये राजापुर ग्राम (जिला बाँदा) के एक सरयूपारी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। पन्ना दरबार (बुन्देल खण्ड) से इनके वंश का पुराना सम्बन्ध था। बड़े होने पर ये वहीं चले गये और तत्कालीन पन्ना नरेश खेत सिंह (शासनकाल सं० १८०९–१८१५) के आश्रय में रहने लगे। 'बुद्धिसेन' से बदल कर बोधा नाम यहीं पड़ा।

बोधा प्रकृत्या रसिक थे। दरबार की सुभान नामक एक रूपवती वेश्या से इनका सम्बन्ध हो गया। इसकी खबर महाराज के कानों तक पहुँची। उन्होंने अप्रसन्न होकर इन्हें छः महीने के लिए राज्य से निकाल दिया। बोधा ने यह निर्वासनकाल सुभान की स्मृति में बड़े कष्ट से बिताया। बिरही बोधा के नेत्रों से प्रवाहित अश्रुधारा से 'विरहवारीश' की सृष्टि हुई। दंड की अवधि समाप्त होने पर ये पन्ना लौट आये और अपनी उपर्युक्त रचना के कुछ छन्द महाराज खेत सिंह को सुनाया। पन्ना नरेश इनकी कृतियों में अभिव्यक्त अनुभूति की सत्यता से अत्यन्त प्रभावित हुये। पुरस्कार में 'सुभान' इन्हें दे दी गई। 'विरह वारीश' के अतिरिक्त इनकी एक अन्य रचना '**इश्कनामा**' का भी पता चला है। प्राचीन काव्य संग्रहों में बोधा के कतिपय फुटकर छन्द संकलित मिलते हैं, जो इनकी गहरी रसानुभूति के परिचायक हैं।

११६. व्रजचंद

इनके सम्बन्ध में कोई सूचना सुलभ नहीं है। दिग्विजय भूषण में इनका केवल एक छन्द उदाहृत है, सरोजकार ने उसे ही संकलित किया है। इनकी जीवनी पर कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। शिव सिंह जी ने केवल इतना लिखा है कि ये सं० १७६० में उपस्थित थे।

११७. भंजन

इनके सम्बन्ध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं। शिव सिंह सरोज से यह ज्ञात होता है कि ये सं० १८३१ में विद्यमान थे। दिग्विजय भूषण में इनका एक छन्द उदाहृत है जो सरोज में संकलित भंजन कवि के दोनों छंदों से मिलता-जुलता है। इस नाम के किसी अन्य कवि का अब तक कहीं उल्लेख नहीं मिला है। ऐसी स्थिति में 'सरोज' तथा 'भूषण' के भंजन नामक कवियों को एक मान लेने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती।

११८. भगवन्त

अबतक के उपलब्ध सूत्रों से इनकी पहचान ठीक ठीक नहीं हो सकी है। ग्रियर्सन महोदय ने असोथर के इतिहास प्रसिद्ध राजा भगवन्त सिंह से इन्हें अभिन्न बताया है। किन्तु उनका यह अनुमान किसी ठोस आधार पर स्थित नहीं दिखाई देता। शिव सिंह जी ने इन्हें भगवन्त सिंह से पृथक् कवि माना है और इसकी रचना शैली के उदाहरण भी अलग से प्रस्तुत किये हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो शृङ्गारी कवित्त उदाहृत हैं। उनमें से एक सरोज में भी संकलित है। इस प्रकार 'सरोज' तथा 'भूषण' के भगवन्त कवि एक ही व्यक्ति ठहरते हैं। दिग्विजय भूषण में इनकी उदाहृत रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि ये शृङ्गारी परम्परा के कवि थे।

११९. भगवन्त सिंह

महाराज भगवन्तसिंह अथवा भगवन्तराय खीची असोथर (जिला फतेहपुर) के निवासी थे। इनका दरबार भूधर, सदानन्द, नाथ, नेवाज शंभुनाथ मिश्र ऐसे कवीश्वरों से अलंकृत था। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इनके अपार शौर्य तथा उदारता का गुणगान तत्कालीन कवियों ने उसी उत्साह और निष्ठा से किया जैसा इसके पूर्व छत्रपति शिवा जी और महाराज छत्रसाल का हुआ था। सं० १७९३ में अवध के प्रथम नवाब वजीर सआदत खाँ बुर्हान-उल-मुल्क से युद्ध करते हुए, ये वीरगति को प्राप्त हुए थे। नाथ कवि के निम्नांकित छंद से तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र में इनका महत्व व्यंजित होता है—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत बीर,
दक्खिन सों दंड लै कै सिंहल दबाइहैं।
जगती जलेसर की जोर लै सुमेर हू लौं,
संपति कुबेर के घराने की कढ़ाइहैं॥
कहैं कवि 'नाथ' लंकापति हू के भौन जाइ,
जमहू सों जंग जुरे लोह को चबाइहैं।
आगि में जरैंगे कूदि कूप में परैंगे,
एक भूप भगवंत की मुहीम को न जाइहैं॥

भगवन्त सिंह की दो रचनायें मिली हैं—रामायण और हनुमत पचीसी। शिव सिंह जी ने इनके 'रामायण' से जो उद्धरण दिये हैं उससे ज्ञात होता है

कि उसकी रचना कवित्तों में हुई थी। हनुमत पचीसी भी इसी छन्द में लिखी गई थी। दिग्विजय भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं—एक का विषय श्रृङ्गार है और दूसरे का नीति। इससे यह पता चलता है कि उपर्युक्त दो भक्ति परक ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने फुटकर छंद भी लिखे थे—जिनमें से कुछ का अस्तित्व अब प्राचीन काव्य संग्रहों में ही अवशिष्ट है।

१२०. भरमी

इनके जीवन तथा कृतियों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। शिवसिंह जी ने इस नाम के कवि का एक नीति-विषयक छप्पय संकलित किया है और उसे सं० १७०८ में वर्तमान बताया है। ग्रियर्सन महोदय इसे उक्त कवि का आविर्भाव काल और मिश्रबन्धुओं ने रचनाकाल माना है। भरमी नामक कवि के छन्द कालिदास के हजारे में भी संग्रहीत थे। ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती थे। गोकुल कवि ने भरमी के 'नखशिख' पर चार छन्द उदाहृत किए हैं। हजारा के अधिकांश कवि श्रृङ्गारी हैं अतः उसके भरमी कवि भी उसी प्रवृत्ति के रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरे विचार में उपर्युक्त समस्त काव्य संग्रहों में निर्दिष्ट भरमी एक ही हैं और वे निश्चित रूप से रीति कालीन हैं। खेद है कि इनके सम्बन्ध में कोई तथ्य अब तक प्रकाश में न आ सका।

१२१. भिखारीदास

ये प्रतापगढ़ (अवध) के ट्योंगा नामक गाँव के निवासी श्रीवास्तव कायस्थ थे। पिता का नाम कृपालदास था। प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजा पृथ्वीपाल सिंह के भाई हिंदूपति सिंह इनके आश्रयदाता थे। 'भाषा काव्य-संग्रह' के रचयिता महेशदत्त के अनुसार इनका जन्म सं० १७४५ और मृत्यु सं० १८२५ में हुई। इनका रचनाकाल सं० १७८५ से सं० १८०७ तक माना जाता है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने काव्यांगों के विवेचन में इनके अगाध पांडित्य की सराहना की है और इन्हें रीतिकाल के प्रमुख आचार्य कवियों में स्थान दिया है। गोकुल कवि ने अलंकारों के उदाहरण तथा उनकी व्याख्या प्रस्तुत करने में सर्वाधिक सहायता इन्हीं की रचनाओं से ली है और उस सम्बन्ध में इन्हें अपना पथ-प्रदर्शक माना है।

दासजी की निम्नांकित कृतियाँ मिली हैं—नाम प्रकाश (सं० १७९५), रस-सारांश (सं० १७९९), छन्दार्णव पिंगल (सं० १७९९), काव्य-निर्णय

(सं० १८०३), श्रृङ्गार निर्णय (सं० १८०७), विष्णुपुराण भाषा, छंदप्रकाश शतरंज प्रकाशिका और अमर प्रकाश ।

१२२. भूधर

भूधर कवि काशी के रहने वाले थे। इनका आविर्भाव सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ। सरोजकार ने इनकी रचना शैली के उदाहरण में जो छंद संकलित किया है वह दिग्विजय भूषण से ही लिया गया है। कालिदास के हजारे में भी इनके छन्द संग्रहीत थे। ये असोथर के महाराज भगवन्त सिंह के आश्रित भूधर कवि से भिन्न हैं।

१२३. भूषण

महाकवि भूषण का जन्म कानपुर जिले के तिकवाँपुर गाँव में सं० १६७० में हुआ था। प्रसिद्ध श्रृङ्गारी कवि चिन्तामणि त्रिपाठी इनके अग्रज और मतिराम तथा जटाशंकर (नीलकंठ) अनुज थे। इनका असली नाम क्या था? अब तक इसका पता नहीं चल सका है। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र सिंह ने इनकी असाधारण काव्य प्रतिभा पर मुग्ध होकर इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी। तब से इनका 'भूषण' नाम ही ख्यात हो गया। अनेक राजाओं का आश्रय लेने के पश्चात् अन्त में ये छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार में पहुँचे। उस महापुरुष में इन्हें राष्ट्रोद्धारक के मूर्तिमान् व्यक्तित्व के दर्शन हुए। अपनी ओजपूर्ण वाणी से ये उन्हीं के प्रशस्तिगान में तल्लीन हो गये। बुन्देल-केशरी महाराज छत्रसाल ने भी इनका काफी सम्मान किया। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने इनकी पालकी में अपना कंधा लगा दिया था, जिससे प्रभावित होकर इनके मुँह से "शिवा को बखानौं कै बखानौं छत्रसाल को' निकल पड़ा था। ऐसे देशभक्त आश्रय दाताओंके पराक्रम वर्णन में भूषण ने वीररस की जो स्रोतस्विनी बहाई राष्ट्रभाषाकी वह आज भी मुख्य संजीवनी शक्ति है। भूषण का परलोकवास सं० १७७२ में हुआ।

इनकी तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—शिवराज भूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक। इनके अतिरिक्त, भूषण उल्लास, दूषण-उल्लास और भूषण हजारा के भी रचयिता भूषण ही कहे जाते हैं। किन्तु ये तीनों संदिग्ध हैं।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत छन्द शिवराज भूषण और शिवा बावनी से लिए गये हैं।

१२४. मंडन

इनका पूरा नाम मणि मंडन मिश्र था। अपनी रचनाओं में ये 'मंडन' छाप रखते थे। ये जैतपुर (बुन्देलखंड) के निवासी और वहाँ के राजा मंगद सिंह के आश्रित कवि थे। सरोजकार ने इनका उदयकाल सं० १७१६ बताया है। परन्तु मिश्रबन्धु इन्हें गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन मानते हैं। रहीम (खानखाना) की प्रशंसा में लिखे गए इनके निम्नांकित छंद से इस धारणा की पुष्टि होती है—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान,
यह तेरे कान गुन अपनो धरत हैं।
तू तो खग्ग खोलि खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तो पै कर नेकु ना डरत हैं॥
मंडन सुकवि तू चढ़त नवखंड पर,
यह भुजदंड तेरे चढ़िये रहत हैं।
ओढ़ती अदल खान साहेब तुरुक मान,
तेरी या कमान तेरो तेहु सो करत हैं॥

रहीमका देहावसान सं० १६८३ में हुआ, जो शिवसिंह जी द्वारा दिये गए मण्डन के उपस्थिति काल से ३३ वर्ष पहले पड़ता है। संभव है मंगद सिंह के आश्रय में आने से पूर्व इनका सम्पर्क उस युग के प्रसिद्ध काव्य-प्रेमी, कवि तथा कवियों के कल्पतरु खानखाना से हुआ हो। दोनों के समय में इतना कम अन्तर है कि कुछ समय तक उनका समकालीन रहना असम्भव नहीं प्रतीत होता।

इनकी आठ कृतियों का पता लगा है—जनक पचीसी, रस रत्नावली, पुरंदर-माया, जानकी जू की ब्याह, शृङ्गार कवित्त, बारामासी, नयन पचासा और रस-विलास।

१२५. मकरंद

इस नाम के दो कवि हुए हैं। प्रथम मकरन्द को शिवसिंहजी ने सं० १८१४ में वर्तमान बताया है और उनकी शृङ्गारी रचनाओं की प्रशंसा की है। दूसरे मकरंद पुवायाँ (जिला शाहजहाँ पुर) के निवासी बंदीजन थे। इनका पूरा नाम मकरंद राय था। ये चंदन कवि के वंशज थे। इनके विरचित दो ग्रन्थ मिले हैं—हंसाभरण तथा जगन्नाथ माहात्म्य। इनमें पहली हास्य और दूसरी शांतरस की रचना है।

दिग्विजय भूषण में मकरंद कवि के नायिका भेद विषयक दो छंद उदाहृत हैं। मेरे विचार में उनके रचयिता प्रथम (शृङ्गारी) मकरंद हैं।

१२६. मतिराम

ये भूषण के छोटे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के आस पास तिकवाँपुर (जिला कानपुर) में हुआ। इनके मुख्य आश्रयदाता बूँदी के महाराज भावसिंह (शासनकाल सं० १७१५–१७४२) थे। उनके लिए इन्होंने 'ललित-ललाम' की रचना की थी। दिग्विजय-भूषण में उदाहृत निम्नांकित दोहा इसी ग्रन्थ का है—

विप्रन के मन्दिरन तजि, और आँच सब ठौर।
भाव सिंह भुवपाल के, तेजभान कछु और॥

मतिराम की अन्य रचनायें हैं—रसराज, लक्षण-शृंगार और मतिराम-सतसई। छन्दसार नामक एक ग्रंथ इनका विरचित कहा जाता है किन्तु वह इन्हीं के नामाराशी बनपुरा (जिला कानपुर) निवासी एक दूसरे मतिराम त्रिपाठी की रचना है जो कार्तिक शुक्ल ३, सं० १७५८ को लिखी गई थी। ये विश्वनाथ त्रिपाठी के पुत्र थे। छन्दसार का उल्लेख कहीं-कहीं 'वृत्त-कौमुदी' नाम से भी हुआ है।

मतिराम एक लम्बी आयु भोगकर सं० १७७३ के आसपास स्वर्गवासी हुए।

१२७. मदन गोपाल

मदन गोपाल शुक्ल फतूहाबाद (जिला लखनऊ) के निवासी थे। ये बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह के पिता महाराज अर्जुन सिंह के प्रधान दरबारी कवि थे। आश्रयदाता के नाम पर इन्होंने सं० १८७६ में 'अर्जुन-विलास' की रचना की थी। इसी ग्रंथ में अपना वंशपरिचय देते हुए ये लिखते हैं—

कान्यकुब्ज श्री नाभि भो, शुक्ल नाभि भव तुल्य।
विद्यापति धनपति विदित, भे तिनके नर कुल्य॥
नाभि बंस पुनि बंस कर, गंगाराम प्रसिद्ध।
बसे फतूहाबाद मैं, विद्या धन जन रिद्ध॥
तिनके गृह सुरसहस सुचि, भये सकल सुग्यान।
छह लौं सतये भे मदन, एक परम अग्यान॥

अर्जुनेस कवि की कृपा, सुकवि भयो करि कावि।
कीन्हों अर्जुन भूप के, विलसन बहुमत गावि॥

इससे स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम पंडित गंगाराम शुक्ल था, जो कहीं बाहर से आकर फतूहाबाद में बस गए थे। उनके सात पुत्र हुये जिनमें मदन गोपाल सबसे छोटे थे।

अर्जुन-विलास की रचना के कुछ ही दिनों बाद पं० मदनगोपाल बलरामपुर से फतूहाबाद गए और वहीं उनका शरीरान्त हो गया। इसी के आसपास महाराज अर्जुन सिंह भी स्वर्गवासी हुए (सं० १८८७)। इसके बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र जयनारायण सिंह बलरामपुर की गद्दी पर बैठे। छः वर्ष राज्य करके सं० १८९३ में वे भी दिवंगत हो गए। उनके पीछे सं० १८९४ में महाराज दिग्विजयसिंह; सिंहासनासीन हुए। वे बड़े ही काव्य प्रेमी थे। पुराने राजकर्मचारियों से 'अर्जुन-विलास' की प्रशंसा सुनकर उन्होंने अपने यहाँ उसकी बड़ी खोज कराई, किन्तु कहीं पता न लगा। इसी बीच सं० १९१४ (१८५७ ई०) का प्रसिद्ध स्वतंत्रता-संग्राम छिड़ गया। उसकी समाप्ति पर विजयोल्लास व्यक्त करने के उद्देश्य से अंग्रेजी शासन की ओर से लखनऊ में एक बहुत बड़ा दरबार आयोजित हुआ। उसमें महाराज दिग्विजय सिंह भी आमंत्रित थे। इस सम्बन्ध में वे एक मास तक लखनऊ में ठहरे रहे। इस बीच उनकी गुणग्राहकता से आकृष्ट कवियों तथा विद्वानों का नित्य जमघट-सा लगा रहता था। पं० मदन गोपाल के पुत्र पं० नन्दकिशोर भी एक दिन उपस्थित हुए। शास्त्रज्ञ होने के साथ वे सुकवि भी थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने अपने पिता द्वारा विरचित 'अर्जुन विलास' ग्रंथ की चर्चा की और उसे अपने पास सुरक्षित बताया। महाराज ने उनके घर से 'अर्जुन-विलास' मँगा लिया। दरबार समाप्त होने पर पं० नन्दकिशोर को भी वे अपने साथ बलरामपुर लेते आये और उन्हें दान-मान से संतुष्ट किया। महाराज के प्रयत्न से वह ग्रंथ सं०१९१८ में बलरामपुर के जंगबहादुरी यंत्रालय (लीथो प्रेस) से गोकुल कवि की भूमिका सहित प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उनकी 'वैद्यकरत्न' नामक एक अन्य रचना का भी उल्लेख मिलता है। निश्चय पूर्वक कहा नहीं जा सकता कि वह 'अर्जुन-विलास' के उत्तरार्ध में दिये गये वैद्यक विषयक अंश का ही दूसरा नाम है अथवा कोई स्वतंत्र ग्रंथ है। उपलब्ध तथ्यों के आधारपर मदनगोपाल का समय सं० १८३० से सं० १८९० तक स्थिर किया जा सकता है।

दिग्विजय-भूषण में इनका नखशिख वर्णन सम्बन्धी एक छन्द उदाहृत है।

१२८. मधुसूदन

इस नामके दो कवि हुये हैं। एक हैं—'रामाश्वमेध-भाषा' के रचयिता मधुसूदन—जो माथुर ब्राह्मण थे। ये इष्टकापुरी (इटावा) के रहने वाले थे और सं०१८३६ में विद्यमान थे। दूसरे मधुसूदन को शिवसिंह जी ने सं० १६८१ में उपस्थित बताया है। इनका जो छन्द सरोज में उद्धृत है, उससे ये शृङ्गारी कवि सिद्ध होते हैं। सरोजकार ने इनके छन्द कालिदास के हजारा में भी संग्रहीत बताये हैं। दिग्विजय भूषण के मधुसूदन शृङ्गारी परम्परा के ही कवि हैं। ऐसी स्थिति में वे सरोजवाले[1] मधुसूदन से अभिन्न हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

१२९. मननिधि

इनके सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के सभी ऐतिहासिक स्रोत मौन हैं। दिग्विजय भूषण में इनका एक छन्द उदाहृत है। वही सरोज में भी संकलित है।

१३०. मनसाराम

ये सुवंशशुक्ल के वंशज और टेढ़ा गाँव (जिला उन्नाव) के निवासी थे। इनकी लिखी कविताओं का एक संग्रह 'मनसा राम के कवित्त' नाम से खोज में मिला है। इसमें कृष्णलीला, नायिका भेद, होली इत्यादि प्रसंगों के छंद संकलित हैं। दिग्विजय भूषण में इनके दो कवित्त उदाहृत हैं। एक का प्रतिपाद्य है नायिकाभेद और दूसरे का गोपी विरह।

१३१. मनिकंठ

ये नगरा (जिला गाजीपुर) के राजा फकीर सिंह और आजमपुर के रईस निरतन लाल अग्रवाल के आश्रित कवि थे। निरतन लाल का परिचय देते हुए ये लिखते हैं—

है आजमपुर विदित ग्राम। सुख-संपति आनन्द धाम॥
भूमि तिलक सम अति उदार। वेद विदित बाढ़ै अचार॥
अगरवार के गोत सुभ, तेहि पुर बसैं अनेक।
गर्ग वंश घर एक है, विदित धर्म को टेक॥

१—डा० किशोरीलाल गुप्त के अनुसार 'सरोज' में मधुसूदन के नाम से उद्धृत छन्द परबत कवि का है। उक्त छन्द में प्रयुक्त 'मधुसूदन' शब्द कृष्ण वाचक है, कवि के नाम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। (द्रष्टव्य-सरोज सर्वेक्षण ६७१।५४६)

धर्म धुरंधर सील जुत, - भये भवानी साहु ।
मुदित जगहि लखि हित सदा, अरि उर उपजत दाहु ॥
तिनके सुत तहँ तीनि भे, लहुरे निरतन लाल ।
रूप काम सम कामतरु, दाता दीन दयाल ॥

खोज रिपोर्ट (१६४४ ई०) में इन्हें 'मिश्र' लिखा गया है किन्तु 'कवीन्द्र-चन्द्रिका' नामक संग्रह में गोपाल त्रिपाठी और सीतापति त्रिपाठी को मनिकंठ का पुत्र बताया गया है । इससे ये त्रिपाठी सिद्ध होते हैं । कवीन्द्राचार्य सरस्वती (सं० १६५७–१७३२) के समकालीन होने से इनका भी समय १७ वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १८ वीं शती के तीसरे दशक तक माना जा सकता है । इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'बैताल पचीसी' है ।

दिग्विजय भूषण में इनके श्रृंगार विषयक सात छन्द उदाहृत हैं ।

१३२. मनीराम

इस नाम के पाँच कवि हुए हैं, किन्तु उनमें नखशिख (जिस विषय का छन्द 'दिग्विजय भूषण' में उदाहृत है) पर काव्य रचना करने वाले दो ही मनीराम मिलते हैं । एक उनियारा के राजा महासिंह तोमर के आश्रित थे । इन्होंने बलभद्र कवि के 'नखशिख' की गद्यबद्ध टीका की थी । दूसरे मनीराम द्विज ने 'नखशिख' नामक एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ लिखा था । मेरा अनुमान है कि दिग्विजय भूषण में इन्हीं दूसरे मनीराम का छन्द संग्रहीत है ।

१३३. मन्य

इनकी जीवनी तथा कृतियों के विषय में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है । दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द संकलित हैं सरोज में उन्हीं में से एक संकलित कर लिया गया है ।

१३४. ममारख

इनका असली नाम मुबारक अली था किन्तु कवि जगत् में इनकी प्रसिद्धि 'ममारख' उपनाम से ही हुई । कहीं कहीं इन्होंने 'मुबारक' छाप भी दी है । ये बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी थे । इनके विरचित दो ग्रन्थ मिले हैं—'अलक शतक' और 'तिलक शतक' । हिन्दी के अतिरिक्त अरबी, फारसी और संस्कृत में भी इनकी अच्छी गति थी । शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १६४० के आस पास माना है ।

'दिग्विजय भूषण' में इनके नौ छन्द उदाहृत हैं। उनमें से एक नीचे दिया जाता है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इसे विदेशी साहित्य से प्रभावित कवियों की अत्युक्तिपूर्ण ऊहात्मक पद्धति के उदाहरण में प्रस्तुत किया है—

कान्ह के बाँकी चितौनि चुभी झुकि काल्हि की ग्वालिनि झाँकि गवाछन।
देखि अनोखी सी चोखी सी कोर अनोखी परी जित ही तित ताछन॥
मारेई जात निहारे 'ममारख' ये सहजै कजरारे मृगाछन।
काजर देरी न एरी सोहागिनि आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन॥

१३५. मल्ल

ये असोथर (जिला फतेहपुर) के राजा भगवन्तराय खीची के दरबारी कवि थे। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १८०३ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय भूषण में इनका एक शृङ्गारी सवैया उदाहृत है और सरोज में दो कवित्त–जिनमें से एक में आश्रयदाता का शौर्य वर्णित है दूसरे में उसकी वीरगतिप्राप्ति से कवि समाज में व्याप्त घोर निराशा का चित्र अंकित है। अंतिम घटना पर मल्ल कवि के ये उद्गार कितने मर्मस्पर्शी हैं—

आज महादीनन को सूखिगो दया को सिंधु,
आजु ही गरीबन को सब गथ लूटिगो।
आज द्विजराजन को सकल अकाज भयो,
आज महराजन को धीरज सो छूटि गो॥
'मल्ल' कहै आज सब मंगन अनाथ भये,
आज ही अनाथन को करम सो फूटिगो।
भूप भगवन्त सुरलोक को पयान कियो,
आज कवितान को कलम तरु टूटिगो॥

महाराज भगवन्तराय खीची लखनऊ के प्रथम नवाब वज़ीर सआदत खाँ बुर्हानउलमुल्क से युद्ध करते हुए सं० १७६३ में मारे गये थे।

मल्लकवि की कोई सम्पूर्ण कृति नहीं मिली है। कुछ फुटकर छंद ही उपलब्ध हुए हैं।

१३६. महाकवि

दिग्विजयभूषण की कवि सूची में 'महाकवि' का उल्लेख हुआ है और संग्रहीत छन्द में 'महाकवि' छाप भी पाई जाती है। इससे कम से कम 'महाकवि' उपनाम मानने में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री कृष्णबिहारी मिश्र

का कहना है कि 'हजारा' के रचयिता कालिदास त्रिवेदी ही 'महाकवि' छाप से कविता करते थे। किन्तु शिवसिंह जी ने महाकवि को, कालिदास त्रिवेदी (बनपुरा निवासी) से, भिन्न व्यक्ति माना है और उन्हें सं० १७८० में वर्तमान बताया है। कालिदास त्रिवेदी का हजारा इसके ३० वर्ष पूर्व ही समाप्त हो चुका था। अन्य किसी सूत्र से इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

१३७. महाराज

गोकुल कवि ने इनके दो कवित्त संकलित किये हैं। शिवसिंह जी ने इनकी रचनायें सुन्दरी तिलक में संग्रहीत बताई हैं। सरदार कवि के श्रृङ्गार संग्रह में भी इनका नाम आया है। अतः यह निश्चित है कि इनका आविर्भाव सं० १६०५ के पूर्व हुआ। इस नाम के एक कवि का 'निघंटु-मदनोदय' नामक वैद्यक ग्रंथ खोज में मिला है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं।

१३८. माखन

इस नाम के पाँच कवि हुए हैं—

१—माखन पाठक—इनकी लिखी 'बसन्त-मंजरी' नामक रचना मिली है।

२—माखन चाणक—ये रतन पुर (जिला बिलासपुर—मध्यप्रदेश) के राजा राज सिंह (शासन काल सं० १७५६–१७७६) के दरबारी कवि थे। इनके पिता का नाम गोपाल था। इन्होंने श्रीनाथ-पिंगल और श्रृङ्गार, कीर्ति, विनोद, पुण्य तथा कर्म-आदि शतकों की रचना की थी।

३—माखन—रामभक्त थे। इनकी भक्ति विषयक फुटकर रचनायें मिलती हैं।

४—माखन लाल चौबे—ये 'गणेश कथा' तथा 'सत्यनारायण-कथा' के रचयिता हैं।

५—माखन लखेरा—ये पन्ना-निवासी थे। शिवसिंह जी ने इनका उदयकाल सं० १६११ बताया है। इनकी एक मात्र कृति 'दान चौंतीसा' का पता चला है।

दिग्विजय भूषण में माखन के दो छन्द उदाहृत हैं। उनमें से एक सरोज में भी संग्रहीत है। शिव सिंह जी ने इन माखन का उपस्थिति काल सं० १८७० माना है। उपर्युक्त माखन नामाराशी पाँच कवियों में सम्भवतः प्रथम (माखन पाठक) ही की रचनायें सरोज और भूषण में संकलित हैं।

१३९. मान

हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक स्रोतों से मान नामके चार कवियों का पता चलता है। इनमेंसे दो शृंगारी कवि थे और दो भक्त। प्रथम भक्त कवि मानदास राजस्थान के निवासी थे। इनके इष्टदेव राम थे। दूसरे ब्रजवासी मान, कृष्ण भक्त थे। मान नामाराशी तीन शृङ्गारी कवियों में एक चरखारी के मान बुन्देलखण्डी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका पूरा नाम खुमान था। ये सं० १८२० के लगभग वर्तमान थे। दूसरे मान की जन्मभूमि बैसवारा (उन्नाव रायबरेली) थी। ये प्रथम (शृङ्गारी) मान के प्रायः समकालीन थे। कंपिला निवासी सुखदेव मिश्र इनके काव्य-गुरु थे। ये हरिहरपुर (जिला बहरायच) के राजा रूप सिंह के आश्रित कवि थे। इनकी 'कृष्ण कल्लोल' नामक एक रचना मिली है। तीसरे मान कवीश्वर राजस्थान के चारण थे। ये सं० १६६० में वर्तमान थे। इनके आश्रय दाता मेवाड़नरेश राजसिंह थे।

दिग्विजय भूषण में मान के वसन्त वर्णन सम्बन्धी दो छन्द उदाहृत हैं। मेरा अनुमान है कि वे 'कृष्णकल्लोल' के रचयिता द्वितीय शृङ्गारी मान कवि के हैं।

१४०. मीरन

इनके जन्म, जाति, माता-पिता आदि का वृत्त अन्धकार में है। दिग्विजय-भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं। शिवसिंह जी ने सरोज में उनमें से एक उद्धृत किया है किन्तु कवि परिचय के सम्बन्ध में वे मौन रहे हैं। ग्रियर्सन ने सरदार कवि के शृङ्गार संग्रह में इनके छन्द संकलित बताये हैं और 'नखशिख' नामक एक रचना का उल्लेख किया है। संयोग वश दिग्विजय भूषण में दिये गये इनके दो छंदों में से एक 'नख शिख' पर ही है। ऐसी स्थिति में ग्रियर्सन और गोकुल कवि के मीरन की एकता असंदिग्ध ठहरती है। इससे इनका आविर्भावकाल भी सं० १९०५ के पूर्व निश्चित किया जा सकता है। नाम से ये मुसलमान कवि प्रतीत होते हैं।

१४१. मुकुन्द

गोकुल कवि ने मुकुन्द नामक कवि की जो रचनायें उदाहृत की हैं वे वीर तथा शृङ्गार रस की हैं। वीर रस का केवल एक कवित्त है जिसमें 'मुकुन्द सिंह' नाम आया है। शिवसिंह ने यही छंद सरोज में संग्रहीत किया है और इसके रचयिता मुकुन्द सिंह को कोटा का राजा बताया है। ये शाहजहाँ के सहायक

और कवियों के कल्पतरु माने जाते थे। ग्रियर्सन ने शिवसिंह जी का समर्थन करते हुए इन्हें हाड़ा क्षत्रिय बताया है और अपने मत की पुष्टि टाडके राजस्थान में उल्लिखित तथ्यों से की है। दिग्विजयभूषण में इनका निम्नांकित छंद दिया गया है—

चले चन्द्रबान घनबान औ कुहुक बान,
　　चलत कमान धूम आसमान ह्वै रह्यो।
चलीं जमडाढ़ैं तरवारैं चलीं चले सेल्ह,
　　लोह आँजे जेठ के तरनि मानौ ख्वै रह्यो॥
ऐसे में मुकुन्दसिंह हाथिन चलाइ दल,
　　रिपु के चलाइ पाइ बीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले
　　एते चला चली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥

यह कवित्त थोड़े पाठ भेद के साथ भूषण के 'छत्रसाल-दशक' में भी आया है। वहाँ पाँचवीं पंक्ति में 'मुकुन्द' के स्थान पर 'छत्रसाल' पाठ दिया गया है। ये छत्रसाल बूँदी के राजा शत्रुसाल (सिंहासनारोहण काल सं० १६८८) थे। छत्रसाल बुन्देला से इनके पृथक् व्यक्तित्व की पुष्टि भूषण के नीचे लिखे दोहों से होती है—

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद महेवा वाल।
सालत नौरंगजेब को, ये दूनौ छतसाल॥
वै देखौ छत्ता पता, यै देखौ छतसाल।
वै दिल्ली के ढाल यै, दिल्ली ढाहन वाल॥

शत्रुसाल (बूँदी नरेश) शाहजहाँ के प्रधान सहायकों में थे। उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब की सेना अधिक शक्तिशाली देख कर भी इन्होंने अपने स्नेही शाहजहाँ के आदेशानुसार दारा का साथ दिया था। सं० १७१५ में धरमत के (फतेहाबाद) युद्ध में, दारा शिकोह के मैदान से भाग खड़े होने पर भी, अपने इने गिने सैनिकों के साथ ये अविचल रूप से डटे रहे और वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। इस अवसर पर इनके साथ कोटा के राव मुकुन्द सिंह हाड़ा भी उपस्थित थे।[1]

मेरा अनुमान है कि दिग्विजय भूषण में उदाहृत उपर्युक्त कवित्त में मुकुन्दसिंह

१. पूर्व आधुनिक राजस्थान (डा० रघुबीर सिंह)—पृ० ११४।

की वीरता का वर्णन उनके किसी आश्रित कवि ने किया है। शिव सिंह जी का उन्हें 'कवि-कोविदों का चाहक'[1] मानना इसकी पुष्टि करता है। यह भी असंभव नहीं कि मुकुन्द सिंह ने स्वयं प्रत्यक्षदर्शी के रूप में महाराज शत्रुसाल (हाड़ा) का शौर्य वर्णन उक्त छंद में किया हो। किन्तु प्रथम अनुमान ही मेरे विचार में अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

दिग्विजय भूषण में आये हुए मुकुन्द कवि के अन्य छन्दों का विषय शृंगार और अलंकार निरूपण है। ये सरोज के प्राचीन मुकुन्द जान पड़ते हैं, जो शिवसिंहजी की सम्मति में सं० १७०५ में विद्यमान थे।[2] इनके कवित्त कालिदास के हजारे में भी संग्रहीत हैं। अबतक इनकी किसी स्वतंत्र रचना का पता नहीं चला है। 'ख्याल टिप्पा' नामक प्राचीन काव्य-संग्रह में इनके कुछ छन्द मिलते हैं।

इधर मुकुन्द कवि का 'नल-चरित्र' नामक प्रेमाख्यान प्रकाश में आया है। कुछ विद्वान् इसे कोटा के राजा मुकुन्द सिंह की रचना मानते हैं।[3]

१४२. मुकुन्दलाल

ये काशी निवासी रघुनाथ कवि के काव्यगुरु थे। सरोजकार ने इन्हें रघुनाथ कवीश्वर का गुरुभाई बताया है, जो ठीक नहीं है। रघुनाथ कवि काशिराज बरिवण्ड (बलवन्त) सिंह (शासनकाल सं० १७९७–१८२७) के दरबारी कवि थे। इनके गुरु मुकुन्दलाल का कविताकाल सं० १८०० के आसपास रहा होगा। शिवसिंह का इन्हें सं० १८०३ में वर्तमान मानना असंगत नहीं जान पड़ता। इनकी कोई सम्पूर्ण रचना प्रकाश में नहीं आई है। दिग्विजय-भूषण में इनका एक नायिका-भेद विषयक छंद उदाहृत है।

१४३. मुरली

इनका पूरा नाम मुरलीधर मिश्र था। ये आगरा के रहनेवाले भरद्वाज गोत्रीय माथुर ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजों का मूल-स्थान गंगा-यमुना के दोआबे में स्थित गँभीरो नामक गाँव था। इनके पूर्व-पुरुष पंडित परमानन्द मिश्र वहीं रहते थे। उनका अकबर के दरबार में बड़ा मान था। सम्राट् ने उन्हें 'शताव-धानी' की उपाधि दी थी और स्थायी वृत्ति की व्यवस्था कर उन्हें आगरे में

---

१. शिवसिंह सरोज—पृ० ४१८।

२. वही, पृ० ४६८।

३. हिन्दी-साहित्य का उद्भव और विकास, खंड २—पृ० २६–२७।

बसा लिया था। परमानन्द के पौत्र पुरुषोत्तम कवि शाहजहाँ के आश्रित थे। इनके वंशज 'दिनमणि' मुहम्मद शाह रँगीले के दरबारी कवि थे। मुरलीधर इन्हीं के पुत्र थे। नादिरशाह के आक्रमण के अवसर पर ये दिल्ली में उपस्थित थे। उस समय का भीषण रक्तपात देखकर इनका मन श्रृंगारीकाव्य से उचट कर रामभक्ति में लीन हो गया। इनकी अन्तिम कृति रामचरित्र इसी के अनन्तर लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त इनके पाँच अन्य ग्रंथ हैं—श्रृंगार-सार, नखशिख, नलोपाख्यान, पिंगल-पीयूष (सं० १८११) और रस-समुद्र (सं० १८१९)।

दिग्विजय-भूषण में 'नखशिख'से इनका एक छन्द उदाहृत है। सरोजकार ने उसे ही संग्रहीत कर लिया है।

१४४. मुरारि

इनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कोई वृत्त ज्ञात नहीं। दिग्विजय-भूषण में इनका एक षड्ऋतु वर्णन विषयक छंद उदाहृत है। इससे ये रीतिकालीन कवि जान पड़ते हैं।

१४५. मोतीराम

इस नाम के तीन कवियों का पता खोज विवरणों से चलता है। एक मोतीराम धीरज सिंह नामक किसी राजा के आश्रित कवि थे। इनका 'धीररस सागर' ग्रन्थ मिला है। ये सं० १८२७ में वर्तमान थे। दूसरे मोतीराम भरतपुर के राजा बलवन्त सिंह के दरबारी कवि थे। इन्हें सं० १८८५ में उपस्थित बताया जाता है। इनकी तीन रचनाओं का पता चला है—कवित्त संकलन, ब्रजेन्द्र-विनोद और रामाष्टक। इनके अतिरिक्त मोतीराम नाम के एक तीसरे कवि के विषय में शिवसिंहजी ने केवल इतना लिखा है कि वे सं० १७४० में उपस्थित थे। उन्होंने कालिदास के हजारे में भी इनके छन्द संकलित बताये हैं। दिग्विजय-भूषण में मोतीराम का एक विप्रलंभ श्रृङ्गार विषयक छन्द उदाहृत है, जो सरोज वाले मोतीराम की भाषाशैली से बहुत साम्य रखता है। मेरे विचार में ये दोनों छन्द एक ही कवि के हैं। सरोज के साक्ष्यपर ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती माने जा सकते हैं।

१४६. मोतीलाल

इनका वृत्त अज्ञात है। दिग्विजय-भूषण में उदाहृत इनका एक छन्द सरोज में भी संकलित है। शिवसिंह इनकी जीवनी तथा कृतियों के विषय में मौन

रहे हैं। प्राप्त रचना के आधार पर इन्हें शृंगारी कवि मान लेने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। ये बाँसी (जिला बस्ती) निवासी मोतीलाल कवि से, जिनका मृत्युकाल पं० महेशदत्त शुक्ल ने सं० १५९८ माना है और जिन्हें सरोजकार ने सं० १५९७ में उपस्थित बताया है, भिन्न अस्तित्व रखते हैं। इन दूसरे मोतीलाल की एकमात्र रचना 'गणेश पुराण भाषा' भक्तिपरक है, किंतु दिग्विजय-भूषण के मोतीलाल शुद्ध शृङ्गारी परंपरा के कवि प्रतीत होते हैं। शिवसिंहजी ने इन दोनों कवियों की भिन्नता स्वीकार की है।

१४७. रघुनाथ

इस नाम के तीन कवि हुए हैं—

१. रघुनाथ प्राचीन—ये जहाँगीर के समकालीन और गंग कवि के शिष्य थे। सरोजकार ने इन्हें सं० १७१० में उपस्थित बताया है। इनकी एकमात्र रचना 'रघुनाथ विलास' मिली है जो 'भानुदत्त' की 'रसमंजरी' का भाषानुवाद है। खोज विवरणों में इन्हें सं० १६६७ में वर्तमान कहा गया है।

२. रघुनाथ—इनकी जन्मभूमि रसूलाबाद थी। मिश्र बन्धुओं के अनुसार ये सं० १८४० में विद्यमान थे। इनकी केवल एक रचना 'भाषा महिम्न' उपलब्ध है।

३. रघुनाथ बंदीजन—ये काशी के समीपस्थ चौरा नामक गाँव के निवासी और काशिराज बरिवंड सिंह (शासन काल सं० १७९७—१८२७) के आश्रित कवि थे। ये काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् और सिद्धहस्त कवि थे। इनके पुत्र गोकुलनाथ और पौत्र गोपीनाथ थे। ये दोनों महानुभाव अपने समय के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। रघुनाथ के बनाये चार ग्रन्थ हैं—रसिक मोहन (स० १७९६), जगमोहन, काव्य कलाधर (सं०१८०२) और इश्क महोत्सव।

मेरी समझ में दिग्विजय भूषण में तीसरे रघुनाथ (बन्दीजन) के छन्द उदाहृत हैं। रघुनाथ नामाराशी कवियों में सर्वाधिक प्रचार इन्हीं की रचनाओं का हुआ है।

१४८. रघुराय

रघुराय नाम के दो कवियों का पता चला है—प्रथम रघुराय नागर ब्राह्मण थे और अहमदाबाद के निवासी थे। इनका उपस्थिति काल सं० १७५७

के लगभग माना जाता है। इनके विरचित दो ग्रन्थ मिले हैं—माधव विलास शतक और सभासार नाटक। दूसरे रघुराय कायस्थ जाति के थे। इनका निवास स्थान ओरछा था। वहाँ के राजा जसवंत सिंह (शासन काल सं० १७३२–१७४१) इनके मुख्य आश्रयदाता था। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों की संख्या तीन है—यमुना शतक, कृष्णमोदिका और सत्यभामा-राधा संवाद।

दिग्विजय भूषण में रघुराय कवि का एक शृङ्गारी छन्द उदाहृत है। सरोज-कार ने उसे ही संकलित कर लिया है और उसके रचयिता को सं० १८३० में विद्यमान बताया है। इनके अतिरिक्त ओरछा के रघुराय का भी उल्लेख शिवसिंह जी ने किया है और उनके 'यमुना शतक' से एक छन्द भी उद्धृत किया है, किन्तु उन्हें भूषण वाले रघुराय से पृथक् कवि माना है। ग्रियर्सन महोदय ने सरोज में निर्दिष्ट दोनों रघुराय नामक कवियों को अभिन्न बताया है। अपेक्षित तथ्यों के अभाव में यह निर्णय करना कठिन है कि उपर्युक्त दोनों मतों में कौन अधिक विश्वसनीय है।

१४९. रतन

ये श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा मेदिनी शाह के पुत्र फतेशाह (शासन-काल सं० १७४१–१७७३) के दरबारी कवि थे। शिवसिंह जी ने फतेशाह को बुन्देलखंड का शासक कहा है, जो अशुद्ध है। रतन कवि के निम्नांकित शब्द स्थिति स्पष्ट कर देते हैं—

गढ़वाल नाह फतेसाह रस गाह तोहिं,
जग माहिं ऐसे जो ज्ञान गुनियतु है।

रतन कवि कहाँ के रहनेवाले थे—यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह जी ने इन्हें बुन्देल खण्डका निवासी बताया है। संभव है उनकी यह धारणा उनके आश्रयदाता 'फतेशाह' को बुन्देलखंड का शासक मानने पर आधारित रही हो। रीतिकाल में कवि लोग जीविका के लिये गुणग्राही आश्रय-दाताओं की खोज में दूर दूर तक जाया करते थे। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक नहीं कि रतन की जन्मभूमि भी श्रीनगर अथवा गढ़वाल ही रही हो, जो उनके आश्रयदाता फतेसिंह के राज्य के अन्तर्गत था। रतन की दो रचनायें मिली हैं—फतेशाह भूषण और फतेप्रकाश। दिग्विजय भूषण में इनके नखशिख वर्णन विषयक तीन छन्द 'फतेशाह भूषण' से उदाहृत हैं।

१५०. रसखानि

इनका वास्तविक नाम क्या था? यह अब तक अनिश्चित है। सरोजकार के अनुसार 'सैयद इब्राहीम' ही रसखानि के नाम से प्रसिद्ध हुए। किन्तु इनकी जीवनी विषयक जो प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है उससे इनका सैयद होना ही सिद्ध नहीं होता, 'इब्राहीम' की पुष्टि तो दूर रही। जो कुछ हो ख्याति 'रसखानि' नाम की ही हुई, जो संभवतः कवि का उपनाम था।

ये दिल्ली के निवासी पठान थे। कुछ लोग इन्हें शेरशाह का वंशज बताते हैं। शेरशाह के देहावसान के अनन्तर उसके निर्बल उत्तराधिकारियों को पराजित कर हुमायूँ ने सं० १६१२ में दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। आये दिन होनेवाले संघर्षों से 'बादशाह-वंशी' रसखान का मन ऊब गया और वे दिल्ली छोड़कर ब्रज चले गये। वहाँ श्रीनाथ जी की शरण में त्यागमय जीवन व्यतीत करने लगे। 'प्रेमबाटिका' की निम्नांकित पंक्तियों में इसका संकेत मिलता है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छोड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहिं, आइ गोवर्धन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल सरूप ललाम॥

कुछ समय बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ ने दीक्षा देकर इन्हें पुष्टिमार्गी सेवा का उपदेश दिया।

रसखानि का आरम्भिक जीवन बड़ा ही आसक्ति पूर्ण था। वे किस प्रकार इश्क मजाज़ी से इश्क हक़ीक़ी की ओर उन्मुख हुये थे, इसके सम्बन्ध में दो जन-श्रुतियाँ प्रचलित हैं।

एक के अनुसार किशोरावस्था में वे किसी बनिये के खूबसूरत लड़के पर आशिक हो गये थे। उनकी आसक्ति इतनी गहरी थी कि उस लड़के को आठों पहर साथ रखते थे और उसकी जूठन खाते थे। एक दिन कुछ वैष्णवोंको उन्होंने यह कहते सुना कि ईश्वर से ऐसा प्रेम करना चाहिये जैसा कि रसखान का उस बनिये के लड़के पर है। यह सुनकर रसखान उनके पास गये और उनके उपास्य के रूपदर्शन की अभिलाषा व्यक्त की। भक्तों के पास श्रीनाथ जी का एक चित्र था, उसे दिखा दिया। उस दिव्यविग्रह का दर्शन करते ही रसखानि का मन बनिये के लड़के से हट गया और वे तत्काल ही मूलविग्रह

के दर्शन के लिये गोवर्धन की ओर चल पड़े। गोस्वामी राधाचरण इस घटना की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—

दिल्ली नगर निवास बादसा बंस बिभाकर।
चित्र देखि मन हरो भरो मनप्रेम सुधाकर॥
श्री गोबर्द्धन आय जबै दरसन नहिं पाये।
टेढ़े मेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाये॥
तब आप आय सुभ नाम करि, सुश्रूषा महिमान की।
कवि कौन मिताई कहि सकै, श्रीनाथसख्य रसखानि की॥

दूसरी किंवदन्ती में वे एक ऐसी सुन्दरी युवती पर आशिक़ बताये गये हैं जो अत्यन्त रूपगर्विता थी और इनकी सदैव उपेक्षा किया करती थी। एक दिन श्रीमद्भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ते हुए इनकी दृष्टि कृष्ण वियोग में व्याकुल गोपियों के विरहवर्णन-प्रसंग पर पड़ी। उनके मन में संकल्प उठा कि जिस अलौकिक रूपलावण्य पर लाखों व्रजांगनायें मुग्ध थीं उसी से क्यों न प्रेम किया जाय। इस विचार से रसखानि वृन्दावन गये और स्वामी विठ्ठलनाथ से दीक्षा लेकर श्रीनाथ जी की सेवा में रहने लगे। 'प्रेम वाटिका' के निम्नांकित दोहे में इसी घटना की ओर इंगित किया गया प्रतीत होता है—

तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मोहिनी मान।
प्रेम देव की छबिहि लखि, भये मियाँ रसखान॥

रसखानि का भक्त जीवन आराध्य की सेवा और लीला वर्णन में व्यतीत हुआ। कुछ इने गिने कृष्ण भक्तों को छोड़कर जितनी तन्मयता, अनन्यता एवं भाव विभोरता रसखानि की रचनाओं में मिलती है उतनी इस शाखा के किसी अन्य भक्त कवि की रचना में नहीं। इनकी दो कृतियाँ मिली हैं—प्रेम-बाटिका (सं १६७१) और सुजान रसखान।

दिग्विजय भूषण में इनके तीन छंद उदाहृत हैं।

१५१. रसलीन

ये बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी मीर बाकर के पुत्र थे। इनका असली नाम गुलाम नबी था, 'रसलीन' उपनाम था। मीर अब्दुल जलील के अनुसार इनका जन्म मुहर्रम २, ११११ हि० (२० जून, १६९९ ई०) में हुआ था। इन्होंने बिलग्राम के ही रहने वाले मीर तुफैल अहमद से काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। उनके पांडित्य के सम्बन्ध में रसलीन का कहना है—

देस विदेसन के सब पण्डित सेवत हैं पद सिष्य कहाई।
आयो है ज्ञान सिखावन को सुर को गुरु मानुस रूप बनाई॥
बालक वृद्ध सुबुद्धि जहाँ लगि बोलत हैं यह बात बनाई।
को मन मैल कहै सुभ फैल तुफैल तुफैल मोहम्मद पाई॥

इनके संपर्क में रहकर रसलीन हिन्दी, अरबी और फारसी के पारंगत विद्वान् हो गये।

ये दिल्ली सम्राट् के प्रधानमन्त्री नवाबवजीर सफदरजंग के अभिन्न मित्र थे। उनके साथ इनका अधिकांश जीवन दिल्ली में ही बीता। इन्हीं दिनों दिल्ली के बादशाह और फर्रुखाबाद के नवाब कायम खाँ में युद्ध छिड़ गया। १७४६ ई० में कायम खाँ रूहेलों द्वारा युद्ध में मारे गये। पिता की मृत्यु पर अहमद खाँ ने एक विशाल सेना एकत्र कर शाही सेना का मुकाबला किया। रामचेतौनी (जिला एटा) में दोनों फौजों के बीच घमासान युद्ध हुआ। शाही फौज के अध्यक्ष सफदरजंग के साथ रसलीन भी इसमें सम्मिलित हुये थे। इसी युद्ध में १३ सितम्बर १७५० को ये वीरगति को प्राप्त हुये।

इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं—अंगदर्पण (सं० १७९४) और रसप्रबोध (सं० १७९८)। प्रथम में नखशिख और द्वितीय में रस का वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त रसलीन के कुछ फुटकर कवित्त सवैये भी प्राप्त हुये हैं। वाग्वैचित्र्य और भावव्यंजना में इनके कतिपय छन्द बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं।

दिग्विजय भूषणकार ने 'अंगदर्पण' से नखशिख वर्णन सम्बन्धी अनेक दोहे उदाहृत किये हैं।

१५२. रहिमन खानखाना

अब्दुर्रहीम खानखाना सम्राट् अकबर के संरक्षक बैरम खाँ के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ। एक कुशल सेनापति तथा शासक होने के साथ ही ये सिद्ध-हस्त कवि भी थे। कवियों के उदार आश्रयदाता के रूप में इनकी सर्वाधिक ख्याति हुई। इनके आश्रित कवियों में आसकरनचारण, मंडन, प्रसिद्ध, सन्त, हरिनाथ, नरहरि, तारा, मुकुन्द, और गंग प्रमुख थे। कहते हैं एक छप्पय पर इन्होंने गंग कविको छत्तीस लाख रुपया पुरस्कार में दिया था। गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेंट हुई थी अथवा नहीं, इसके प्रमाण अवशिष्ट नहीं रहे, किन्तु एक किंवदन्ती के अनुसार इनकी दानवीरता की प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर तुलसी ने एक दीन ब्राह्मण को इनके पास सहायता के लिए दोहे

की पहली कड़ी लिख कर भेजा था। रहीम ने ब्राह्मण को पूर्णतया संतुष्ट कर उसी के हाथों दोहे की दूसरी कड़ी पूरी करके लिख भेजा था। पूरा दोहा इस प्रकार है—

सुरपुर नरपुर नाग पुर, यह चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सों सुत होय॥

जीवन के अन्तिम दिनों में रहीम को आर्थिक कष्ट से संतप्त होना पड़ा। जहाँगीर ने कुछ राजनीतिक कारणों से कुपित होकर उनकी जागीर छीन ली। दानशीलता में सारा धन पहले ही निकल चुका था। इस विपन्न दशा में भी याचकों ने उनका पीछा न छोड़ा। उन्हें विवश हो कर कहना पड़ा—

ये रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, वै रहीम अब नाहिं॥

कहा जाता है इसी स्थिति में वे घूमते घामते चित्रकूट पहुँचे। वहाँ रीवाँ नरेश रामचन्द्र के पूछने पर उन्होंने अपने भाव इन शब्दों में व्यक्त किये—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जा पर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

रहीम का पारिवारिक जीवन अत्यन्त आपत्ति पूर्ण था। पिता की हत्या इनकी बाल्यावस्था में ही हो चुकी थी। छः सन्तानों—तीन पुत्रों और तीन पुत्रियों की असामयिक मृत्यु इनके सामने ही हुई। सं० १६५५ में पत्नी वियोग भी सहना पड़ा। इन विपत्तियों का सामना इन्होंने बड़े धैर्य और दृढ़ता से किया। इनकी रचनाओं में अभिव्यक्त जीवन सम्बन्धी गम्भीर अनुभव इन्हीं परिस्थितियों में परिपक्व हुए थे। सुख दुख में समान मनःस्थिति रहीम के उदार एवं लोकोपकारी जीवन की विशेषता थी। इस प्रकार भाग्य के उत्थान पतन में अपनी कवि प्रकृति की एकरसता की रक्षा करते हुए खानखाना ने सं० १६८३ में अपनी जीवन यात्रा समाप्त की।

रहीम की निम्नांकित रचनायें खोज में मिली हैं—रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पंचाध्यायी, मदनाष्टक, शृङ्गारसोरठा, नगर शोभा, रहीम काव्य और खेट कौतुकम्। इनके कुछ फुटकर कवित्त, सवैया, तथा बरवै, भी प्राप्त हुए हैं—

दिग्विजय भूषण में अलंकारों के उदाहरण स्वरूप इनके कई दोहे उदाहृत हैं।

१५३. राम कवि

इस नाम के चार कवि हुए हैं—प्रथम राम जी कवि, सरोज के अनुसार, सं० १६६२ में वर्तमान थे। ये ओरछा के रहने वाले थे और वहाँ के राजा सुजानसिंह के दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल सं० १७२० के आस पास माना जाता है। ये बिहारी सतसई के अनुक्रमकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। दूसरे हैं राम भट्ट। ये फर्रुखाबाद के निवासी बंदीजन थे। इनके बरवैनायिका भेद और श्रृंगार सौरभ नामक दो ग्रन्थों का पता चला है। तीसरे राम कवि, सिरमौर के राजा के आश्रित रामबख्श हैं। इन्होंने वीररस सागर अथवा रस सागर नामक ग्रन्थ की रचना की थी। चौथे हैं विप्र रामबख्श। इनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं।

दिग्विजय भूषण में राम कवि के नायिकाभेद तथा षड्ऋतु वर्णन विषयक तीन छंद उदाहृत हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता कि वे उपर्युक्त 'राम' छाप से कविता करने वाले चारों कवियों में, किसके द्वारा विरचित हैं। यह भी असंभव नहीं कि 'भूषण' के रामकवि इन चारों से भिन्न कोई दूसरे ही रहे हों।

१५४. रामकृष्ण

इनके जीवन तथा कृतियों के सम्बन्ध में कहीं से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। सरोजकार ने दिग्विजय भूषण से ही लेकर एक कवित्त उद्धृत किया है, जिसमें महाराज दशरथ की हाथियों की शोभा का वर्णन है।

१५५. रामदास

शिवसिंह-सरोज तथा खोज विवरणों में इस नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलता है। एक रामदास मालवा निवासी थे। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—ऊषा-अनिरुद्ध कथा, प्रहलाद लीला और भागवतदशमस्कन्ध भाषा। दूसरे रामदास बरसानियाँ, नन्दिग्राम-बरसाने (ब्रजप्रदेश) के रहने वाले थे और सं० १८२७ के पूर्व विद्यमान थे। ये गोवर्द्धनलीला और राधा-विलास के रचयिता कहे जाते हैं। तीसरे रामदास वल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने 'रुक्मिणी-ब्याह' की रचना की थी। चौथे रामदास किन्हीं सूरदास के पिता थे। कृष्णभक्ति सम्बन्धी कतिपय फुटकर पदों के रचयिता के रूप में ये विख्यात हैं। ये सभी कृष्णभक्त थे।

इनके अतिरिक्त सरोजकार ने इसी नाम के एक रीति कालीन कवि की चर्चा

की है और उन्हें सं० १८३९ में वर्तमान बताया है। इससे अधिक इनका कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं।

दिग्विजय-भूषण में उदाहृत छन्द शृङ्गारी है। उसके रचयिता अन्तिम रामदास जान पड़ते हैं। इनका जो छन्द सरोज में उद्धृत है, उसकी भाषा-शैली भूषणकार द्वारा उदाहृत छन्द से मिलती है।

१८६. रामसखी

दिग्विजय-भूषण में रामसखी का केवल एक कवित्त संकलित है। उसमें जनकपुर की विवाह-लीला का एक दृश्य अंकित है। उक्त छन्द की वर्णन-शैली तथा कविनाम की साम्प्रदायिक छाप से रामसखी रामभक्त प्रतीत होते हैं। मेरा अनुमान है कि यह छंद रामसखे का है, जिन्हें दिग्विजय-भूषण में प्रमादवश रामसखी लिख दिया गया है। अब तक साम्प्रदायिक ग्रन्थों अथवा हिन्दी साहित्य के विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों में, 'रामसखी' नामक कोई कवि मेरे देखने में नहीं आया है। ऐसी स्थिति में जब तक रामसखी का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो जाता और उनकी रचनाओं में प्रस्तुत छन्द की स्थिति सिद्ध नहीं हो जाती, तब तक उसे रामसखे की ही रचना मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

रामसखे का आविर्भाव १८ वीं शती के प्रथम चरण में जयपुर राज्य के अन्तर्गत एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही ये रामभजन में तन्मय रहा करते थे। बड़े होने पर घरबार छोड़ कर ये तीर्थयात्रा के लिए निकले। देशाटन करते हुए दक्षिण में माध्वसम्प्रदाय के प्रसिद्ध केन्द्र उडुपी पहुँचे और वहाँ के तत्कालीन आचार्य वशिष्ठतीर्थ से इन्होंने सख्यभाव की दीक्षा ले ली। उडुपी से ये अयोध्या आये। कुछ दिनों तक वासुदेव घाट पर कुटी बनाकर रसिक भाव से साधना की। अयोध्या से चित्रकूट गए। वहाँ कामद-वन में बारह वर्ष पर्यंत अनुष्ठान पूर्वक नाम जप किया। कहा जाता है कि इन्हीं दिनों प्रिय के विरह में व्याकुल होकर इन्होंने निम्नांकित दोहा कहा था—

अरे सिकारी निरदई, करिया नृपति किसोर।
क्यों तरसावत दरस को, रामसखे चितचोर॥

आराध्य ने अपनी झाँकी दिखाकर इन्हें कृतकृत्य किया—

अवधपुरी ते आइकै, चित्रकूट की खोर।
रामसखे मन हरि लियो, सुन्दर जुगल किसोर॥

चित्रकूट में पन्ना नरेश हिंदू पति इनके दर्शन के लिए आये। यहाँ से ये मैहर चले गए। वहाँ के राजा दुर्जन सिंह इनके शिष्य हो गए। मैहर में ही इन्होंने अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

रामसखेजी रामभक्ति में सख्य-भावना के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। अयोध्या और मैहर दोनों स्थानों पर इनकी गद्दियाँ स्थापित हैं। ये सखी और सखा दोनों भावों से उपास्य की आराधना के समर्थक थे। इनका सिद्धान्त था—

सखी सखा द्वै भाव जु राखै। मधुरे चरित राम के भाखै॥

रामसखेजी की दस रचनायें मिली हैं—द्वैत भूषण, पदावली, रूपरसामृत-सिन्धु, नृत्य राघव मिलन दोहावली, नृत्यराघव मिलन कवितावली, रास्य-पद्धति, दानलीला, बानी, मंगल-शतक और राममाला।

१५७. रामसहाय

रामसहाय चौबेपुर (जिला वाराणसी) के निवासी भवानीदास अस्थाना (कायस्थ) के पुत्र थे। 'वाणी भूषण' में अपना परिचय देते हुए ये लिखते हैं-

बानी भूषन कौ भगत, जस हित राम सहाय।

× × ×

सुवन भवानीदास को, और भवानी दास।
अष्ठाना कायस्थ है, बासी कासी खास॥

ये काशीनरेश उदितनारायण सिंह (शासनकाल सं० १८५३-६२) के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'बिहारी-सतसई' की भाँति 'राम सतसई' अथवा 'शृङ्गार सतसई' की रचना की, जो सतसई शैली में लिखी गई कृतियों में 'बिहारी सतसई' को छोड़ कर, सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। इनका दूसरा ग्रंथ 'वृत्त तरंगिणी' है। 'ककहरा रामसहायदास' तथा 'वाणीभूषण' इनकी अन्य दो रचनायें हैं। कविता में ये अपनी छाप 'भगत' रखते थे और अपने समय में इसी नाम से विख्यात भी थे। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका कविताकाल सं० १८६० से सं० १८८० तक माना है।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत दोहे 'शृङ्गार सतसई' से लिए गये हैं।

१५८. रूप कवि

इनका केवल एक छन्द दिग्विजय भूषण में उदाहृत है। सरोज में भी वही संकलित है। उक्त छंद का विषय है राधिका जी का शोभावर्णन। काव्य

शैली से ये रीतिकालीन कवि प्रतीत होते हैं। इनके सम्बन्ध में अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। ग्रियर्सन महोदय ने अकबरकालीन रूपनारायण कवि से इनकी अभिन्नता की सम्भावना व्यक्त की है किन्तु 'सरोज-सर्वेक्षण' में इन दोनों कवियों का पृथक् अस्तित्व प्रतिपादित है।

१५९. रूपनारायण

रूपनारायण मिश्र ओरछा के निवासी थे। 'बुन्देल वैभव' के अनुसार ये ओरछा के राजा मधुकर शाह और उनके पुत्र इन्द्रजीत सिंह तथा वीरसिंहदेव के आश्रित कवि थे। इस प्रकार ये केशवदास के समकालीन ठहरते हैं और एक ही दरबार में रहने से उनके परिचित भी।

अनेक राज दरबारों की खाक छानते हुए ये ओरछा से दिल्ली पहुँचे और वहाँ बीरबल की छत्रछाया प्राप्त कर निश्चिन्त हो काव्य रचना करने लगे। इनका निम्नांकित छन्द इसी समय लिखा गया था—

पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन संगहि संग फिरयो दिसि चारयो।
काहू महीप के मारे मरयो न रह्यो घर बीच टरयो नहिं टारयो॥
'रूप नरायन' घायल ही चले कोटिक भूप किते पचि हारयौ,
दीन को दावनगीर दरिद्र सु तो बलबीर के बीरहि मारयो॥

बीरबल की मृत्यु सं० १६४२ में हुई, रूपनारायण इसके पूर्व ही उनसे मिले होंगे। इनके फुटकर छन्द प्राचीन काव्यसंग्रहों में पाये जाते हैं। कोई सम्पूर्ण रचना नहीं मिलती।

१६०. लाल कवि

इस नाम के चार कवियों का पता लगा है। एक हैं लाल कवि प्राचीन। इनका पूरा नाम गोरे लाल था। इनका आविर्भाव तैलंग ब्राह्मणवंशमें सं०१७१५ के लगभग हुआ था। ये महाराज छत्रसाल के पुरोहित थे। कविवर पद्माकर इनके दौहित्र थे। इन्होंने सं० १७६४ के लगभग 'छत्रप्रकाश' की रचना की थी। दूसरे लाल कवि 'बिहारी लाल त्रिपाठी' टिकमापुर (जिला कानपुर) के निवासी और महाकवि भूषण के वंशज थे। इनका उपस्थिति काल सं० १८८५ के आस पास माना जाता है। तीसरे लाल कवि 'चाणक्य राजनीति' के उलथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका समय अज्ञात है। चौथे लाल कवि बनारसी, बन्दीजन थे। ये काशी के महाराज चेत सिंह (शासन काल सं० १८२७–३८) तथा महाराज महीप नारायण सिंह (शासनकाल सं० १८३८–१८५२) के दरबार में रहते

थे। इनके दो ग्रन्थ मिले हैं—'कवित्त महाराजा महीप नारायण तथा अन्य काशीराजों के, और 'रसमूल'। इनमें दूसरा ग्रन्थ नायिका भेद का है। इसकी रचना महाराज चेत सिंह के समय में, सं० १८३३ में हुई थी। शिवसिंह जी ने इसी ग्रंथ का उल्लेख 'आनन्द रस' नाम से किया है और इनकी एक तीसरी रचना बिहारी सतसई की टीका 'लाल चन्द्रिका' बताई है। खोज रिपोर्टों में 'लाल ख्याल' नामक ग्रंथ इन्हीं के नाम पर चढ़ा है।

इन चारों में से दिग्विजय भूषण के लाल कवि कौन हैं? यह निर्णय करना सरल नहीं है। गोकुल कवि द्वारा उदाहृत, लाल कवि के सभी छन्दों का विषय नायिका भेद है। उपर्युक्त लाल नामाराशी चारों कवियों में दो की रचनायें इस विषय पर उपलब्ध हुई हैं—प्राचीन लाल कवि, गोरे लाल का 'विष्णु विलास' और लाल कवि बनारसी का 'रसमूल'। इन दोनों कवियों के जो छन्द सरोज में संकलित हैं उनमें प्रथम की शब्दयोजना दिग्विजय भूषण में उदाहृत छन्दों से अधिक साम्य रखती है। अतः मेरी सम्मति में गोकुल कवि द्वारा निर्दिष्ट लाल कवि गोरे लाल ही हैं। इनकी निम्नांकित रचनाओं की सूची प्रकाश में आ चुकी है—छत्रप्रशस्ति, छत्रछाया, छत्रकीर्ति, छत्रछंद, छत्रसाल शतक, छत्रदंड, छत्र प्रकाश, राज विनोद और विष्णु विलास।

१६१. लीलाधर

ये जोधपुर के राजा गजसिंह (शासनकाल सं० १६७७–१६९५) के आश्रित कवि थे। मिश्रबन्धुओं के अनुसार इन्होंने नखशिख विषय पर कोई ग्रंथ लिखा था, जो अब तक अनुपलब्ध है। सूदन और भिखारीदास ने इनका नाम अपनी कवि सूचियों में रखा है। दिग्विजय-भूषण में इनका उद्धवगोपी-संवाद विषयक केवल एक कवित्त उदाहृत है। संभवतः उपर्युक्त 'नखशिख' से भिन्न यह इनकी फुटकर रचना है।

१६२. शंभु

ये असोथर (जिला फतेहपुर) के महाराज भगवंतराय खीची के आश्रित कवि थे और सं० १७९० के लगभग उपस्थित थे। इनकी तीन रचनायें मिलती हैं—रसकल्लोल, रस तरंगिणी और अलंकार दीपक। दिग्विजय-भूषण में इन्हीं ग्रंथों से अलंकार तथा नायिकाभेद विषयक छंद उदाहृत हैं। देवतहा (गोंडा) के शिव कवि इनके शिष्य थे।

ये सितारागढ़ के राजा शंभुनाथ सिंह 'नृप शंभु' से पृथक् अस्तित्व रखते हैं।

१६३. शशिनाथ

गोकुल कवि ने 'शशिनाथ' और 'सोमनाथ' छाप से कविता करने वाले दो विभिन्न कवियों का उल्लेख 'दिग्विजय-भूषण' की कवि-सूची में किया है और उनके छन्द पृथक् रूपेण उदाहृत किये हैं। किन्तु खोज करने पर दो भिन्न-भिन्न छापों से की गई कवितायें एक ही कवि, सोमनाथ की ठहरती हैं। नवीन कवि ने 'सुधासर' में दो छाप वाले कवियों में सोमनाथ की भी गणना की है और इनकी दो पृथक् छापों—सोमनाथ और शशिनाथ का उल्लेख किया है।[1] छंदानुरोध से ये बहुधा कवित्तों में 'सोमनाथ' और सवैयों में 'शशिनाथ' छाप रखते थे। दिग्विजय-भूषण में इनके दिये हुये छंदों में भी यह सिद्धान्त निभाया गया है। सम्भवतः सोम और शशि का एकार्थवाच्यत्व ही छाप भेद का कारण था।

इनका जन्म छिरौरावंशी माथुर ब्राह्मण वंश में, सं० १७६० में हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकण्ठ मिश्र और पितामह का नरोत्तम मिश्र था। नरोत्तमजी जयपुर के महाराज रामसिंह के मन्त्र गुरु थे। सोमनाथ का कवि-जीवन अधिकतर भरतपुर दरबार में बीता। महाराज बदन सिंह के पुत्र सूरजमल और प्रताप सिंह इनके मुख्य आश्रयदाता थे। इनका देहावसान सं० १८२० के आसपास हुआ।

सोमनाथ की कृतियों की सूची इस प्रकार है—रस-पीयूष निधि (सं० १७९४), रामचरित रत्नाकर (सं० १७९९), कृष्ण-लीला पंचाध्यायी (सं० १७९९), राम कलाधर, सुजान विलास (सं० १८०७), माधव विनोद नाटक (सं० १८०९) ध्रुवचरित्र (सं० १८१२), ब्रजेन्द्र विनोद, शशिनाथ विनोद, कमलाधर, प्रेम-पचीसी और दशमस्कन्ध भाषा उत्तरार्ध।

इनका कविताकाल सं० १७९४ से सं० १८१२ तक था।

---

१. 'ध्रुव-चरित' में सोमनाथ ने स्पष्ट रूप से 'शशिनाथ' छाप का प्रयोग किया है। ग्रंथांत में निर्देश है—

माथुर कवि ससिनाथ ने, ध्रुव-चरित्र यह कीन।
जाके गुन बर्नन सुने, रीझै हिये प्रवीन॥
संवत ठारह सै बरस, बारह जेठ सुमास।
कृष्ण त्रोदसी वार भृगु, भयौ ग्रन्थ परकास॥

॥ इति श्री माथुर कवि सोमनाथ विरचिते ध्रुव विनोद पंचमोल्लासः॥

१६४. शिरोमणि

ये गंगा-यमुना के बीच में स्थित गँभीरा नामक गाँव के निवासी थे। यह पुंडीरिन इलाके के अन्तर्गत था। इनके पिता मोहन मिश्र और पितामह परमानन्द मिश्र थे। परमानन्द मिश्र शास्त्रों के निष्णात विद्वान् थे। उनके पांडित्य पर मुग्ध होकर सम्राट् अकबर ने उन्हें 'शतावधानी' की उपाधि दी थी। ये माथुर तिवारी थे। इन्हीं के वंशज मुरलीधर कवि थे। इन्होंने परमानन्द को अकबर द्वारा 'मिश्र' की उपाधि दिये जाने का उल्लेख किया है। यही कारण है जिससे 'तिवारी' होते हुए भी परमानन्द और उनके वंशज अपने को मिश्र लिखते रहे हैं। शिरोमणि का कहना है—

गंगा यमुना बीच इक, पुंडीरिन का गाँव।
तहाँ मथुरिया बसत हैं, ताहि गँभीरा नाँव॥
माथुर भेद अनेक विधि, एक तिवारी भेद।
परमानन्द तहाँ उपजि, पढ़े पुरानरु बेद॥
ते सत अवधानी किये, समुझि चित्त की चाहि।
अकबर साहि खिताब दै, प्रगट करे जग माहिं॥

इनके पिता मोहन मिश्र, जहाँगीर के आश्रित कवि थे। इन्हींके द्वारा शिरोमणि का मुगल दरबार में प्रवेश हुआ और वे शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ रहने लगे।

साहिजहाँ की चाकरी, जहाँगीर को राज।

आगे चलकर जब शाहजहाँ बादशाह (शासनकाल सं० १६८५–१७१५) हुए तब इनको दरबारी कवियों में प्रमुख स्थान मिला। 'दिग्विजय-भूषण'में उदाहृत इनका निम्नाङ्कित श्रृंगारी कवित्त इसी समय लिखा गया प्रतीत होता है—

दादुर चातक मोर करो किन सोर सुहावन कै भरु है।
नाह तेही सोइ पायो सखी मोहिं भाग सोहागहु को बरु है॥
जानि 'सिरोमनि' साहिजहाँ ढिग बैठो महा बिरहा हरु है।
चपला चमको गरजो बरसो घन पास पिया तौ कहा डरु है॥

इस प्रकार निरन्तर तीन पीढ़ियों तक शिरोमणि मिश्र और उनके पूर्वज मुगल शासकों की छत्रछाया में साहित्य सेवा करते रहे।

शिरोमणि की केवल एक सम्पूर्ण रचना नाममाला अथवा नाम उर्वशी उपलब्ध हुई है। यह कोश ग्रंथ है। इसका निर्माणकाल सं० १६८० है। इससे यह विदित होता है कि शिरोमणि कवि कुछ वर्षों तक गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रहे हैं।

गोकुल ने अलंकार और नायिकाभेद विषयक इनके तीन छंद उदाहृत किए हैं। इनमें से एक सरोज में संग्रहीत है।

१६५. शिवकवि

ये देवतहा (जिला गोंडा) के निवासी असेला बंदीजन थे। इन्होंने असोथर (जिला फतेहपुर) के शंभु कवि (सं० १७६० में वर्तमान) से काव्य-शास्त्र का अध्ययन किया था। 'पिंगल छन्दोबन्ध' नामक इनके ग्रन्थ में काव्य गुरु का स्मरण इन शब्दों में किया गया है—

सकल सिद्धि आवैं निकट, ध्यावत श्री गुरु शंभु।
नमो नमो उनयो परै, हिये जुक्ति आरंभ॥

शंभु असोथर के राजा भगवंत राय खीची के दरबारी कवि थे। काव्य शिक्षा समाप्त होनेपर शिव कवि देवतहा लौट आये और वहाँ के साहित्यरसिक तालुकेदार जगतसिंह के काव्य-शिक्षक हो गये। कहते हैं जगत सिंह ने इन्हीं से काव्य रचना सीखकर पिंगल के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीकंठाभरण' का निर्माण सं० १८६४ में किया था।

जगतसिंह के अतिरिक्त शिव कवि के दो आश्रयदाता और थे—बाँदा के जुल्फकार अली खाँ और ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिन्धिया। जुल्फकार अली को सं० १८५६ में, अपने पिता अली बहादुर की मृत्यु के पश्चात्, बाँदा की नवाबी कुछ दिनों के लिए प्राप्त हुई थी। ये स्वयं भी कवि थे। सं० १६०३ में इन्होंने बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ लगाई थीं। शिव कवि ने इनके आश्रय में 'पिंगल छन्दोबन्ध' की रचना की थी। तीसरे आश्रयदाता दौलतराव सिन्धिया की छत्रछाया में इन्होंने 'वाग्विलास' लिखा। इस प्रकार अनेक राजदरबारों का चक्कर लगाते हुए अन्त में ये जन्मभूमि को चले आये और वहीं इनकी मृत्यु हुई। शिवसिंह जी सेंगर के समय तक इनके वंशज 'राम कवि' देवतहा में विद्यमान थे।

अपने कवि जीवन के अनुभव शिवकवि ने एक छन्द में बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किये हैं—

लछमी तिहारी एक कृपा के कटाच्छ बिन,
कूर धूरतन के बदन ध्याइबे परे।
झूँठे महिपालन के झूँठे गुन गाइ गाइ,
बानी जगरानी तासों बैर ठाइबे परे॥

कहै 'सिवकवि' सूम दाता कै बखानियत,
रन ते बिमुख सूर ठहराइबे परे।
काहू के न धंधन के निज पेट धंधन के,
दौलति मदंधन के ढिग जाइबे परे॥

अर्थाभाव से विपन्न रीतिकालीन कवियों की दयनीय स्थिति और तज्जन्य चाटुकारिता पूर्ण साहित्य के प्रणयन का रहस्य, शिव कवि ऐसे भुक्तभोगी स्पष्ट वक्ता एवं स्वच्छ हृदय, साहित्यकारों की बानी से ही खुलता है।

इनका कविता काल सं० १८२० से सं० १८७० तक माना जा सकता है।

दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द दिये गये हैं।

१६६. शिवलाल

शिवलाल नाम के दो कवि हुये हैं। प्रथम शिवलाल दुबे डौंड़िया खेरा (बैसवाड़ा) के निवासी थे। शिवसिंह जी के अनुसार ये सं० १८३९ में वर्तमान थे। इनकी निम्नांकित रचनाओं का पता चलता है—नखशिख, षड्ऋतु, नीति सम्बन्धी कवित्त और हास्यरस विषयक रचनायें। इनमें प्रथम दो संपूर्ण ग्रन्थ है और अन्तिम दो फुटकर छन्दों के संग्रह।

दूसरे शिवलाल पाठक प्रसिद्ध 'मानस' तत्ववेत्ता रामभक्त थे। इनकी दो कृतियाँ 'मानस मयंक' और 'अभिप्राय दीपक' की तुलसी साहित्य प्रेमियों में बड़ी प्रतिष्ठा है।

दिग्विजय भूषण में शिवलाल कवि का अलंकार विषयक एक शृंगारी छन्द उदाहृत है। वह प्रथम शिवलाल दुबे का ही हो सकता है।

१६७. शिवनाथ

इस नाम के तीन कवि हुए हैं। एक शिवनाथ बुन्देलखंडी सं० १७६० के आसपास हुए। ये महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतसिंह बुन्देला के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'रसरंजन' नामक नायिकाभेद ग्रन्थ की रचना की थी। आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखा गया इनका एक कवित्त सरोज में संकलित है।

दूसरे शिवनाथ मकरंदपुर (जिला कानपुर) के निवासी थे। देवकी नंदन कवि इनके पुत्र थे। इनका उपस्थिति काल सं० १८४० के पूर्व है।

तीसरे शिवनाथ अजबेस कवि के पुत्र थे। इन्होंने रीवाँराज्य की वंशावली छन्दबद्ध की थी।

दिग्विजय भूषण में शिवनाथ कवि का नायिकाभेद सम्बन्धी एक छन्द

उदाहृत है। इस विषय पर केवल प्रथम शिवनाथ की रचना 'रसरंजन' उपलब्ध हुई है, अतः वे ही उक्त छन्द के रचयिता जान पड़ते हैं।

१६८. शेख

शेख रँगरेजिन मुसलमान जाति की थी। यह रीतिकाल की स्वच्छन्द शृङ्गारी धारा के प्रसिद्ध कवि आलम की प्रेयसी थी, जिसकी काव्य प्रतिभा और सौन्दर्य पर मोहित होकर आलम ब्राह्मण से मुसलमान हुए थे। इसके जीवन वृत्त का केवल उतना ही अंश प्रकाश में आ सका है जितने का सम्बन्ध आलम की प्रेमलीला से है। इसका वर्णन उनके परिचय के प्रसंग में हो चुका है।

आलम का समय सं० १६४० से सं० १६८० तक कहा जाता है अतः इसी के लगभग शेख की उपस्थिति मानी जा सकती है। इसकी कोई स्वतंत्र रचना उपलब्ध नहीं हुई है, पति के काव्य संग्रह 'आलम केलि' में ही इसके भी छन्द संकलित मिलते हैं।

गोकुल कवि ने नखशिख और षड्ऋतु वर्णन पर शेख के दो छन्द उदाहृत किये हैं।

१६९. शोभा कवि

गोकुल कवि ने दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत किये हैं—एक कवित्त है, दूसरा दंडक। इन दोनों में 'शोभ' अथवा 'सोभ' छाप है। संकलन कर्ता ने दोनों के रचयिता का नाम 'शोभ कवि' बताया है। मेरे विचार में इनका वास्तविक नाम शोभा कवि था, जिसका उल्लेख शिवसिंह जी ने किया है। इनके नाम से एक छन्द और दिया गया है किन्तु उसमें शोभनाथ छाप है। शोभनाथ को भूषणकार ने शोभ कवि से भिन्न माना है और उनकी रचनायें पृथक् रूपेण उदाहृत की हैं। शिवसिंह जी ने भी इन दोनों कवियों का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है और सरोज में उनकी रचनाओं के अलग अलग उदाहरण संकलित किये हैं। किन्तु 'सरोज सर्वेक्षण' में डा० किशोरीलाल गुप्त ने इन दोनों कवियों की एकता प्रतिपादित की है और उन्हें प्रसिद्ध कवि सोमनाथ अथवा शशिनाथ से अभिन्न बताया है[1]। गोकुल कवि और शिवसिंह की उक्त कवि के सम्बन्ध में भ्रान्तिका कारण उन्होंने लेख अथवा

---

१. सरोज सर्वेक्षण—(डा० किशोरी लाल गुप्त)
—शोभ कवि ८१७। ७२४
—शोभनाथ ८१८। ७८४

पाठ विषयक प्रमाद माना है जिससे सोमनाथ का सोभनाथ लिख अथवा पढ़ लिया गया है। इसी भाँति लिपिकार के प्रमाद से सोम का सोभ हो जाना भी स्वाभाविक है। डा० गुप्त की इस उपपत्ति को स्वीकार करने में कई अड़चनें हैं। प्रथम यह कि गोकुल कवि और शिवसिंह जी ने कविसूची में तथा रचना उदाहृत करते हुये, कविनामोल्लेख के अवसर पर स्पष्टतया 'शोभ' 'शोभा' तथा 'शोभनाथ' लिखा है। इससे यह प्रकट होता है कि जिन स्रोतों से इन महानुभावों ने उक्त कवियों की रचनायें संकलित की हैं उनमें उनके नाम उसी रूप में लिखे हुए थे। इसीलिए उन्होंने इन कवियों को 'सोमनाथ' से भिन्न माना। 'शोभ' अथवा 'शोभनाथ' लिखने की भूल कदाचित् ही किसी साहित्यकार से हुई हो। दूसरे यह कि दिग्विजय भूषण तथा शिवसिंह सरोज में इन दोनों कवियों के दो छन्द संकलित हैं, उनमें 'शोभ' अथवा 'शोभनाथ' की छाप भेद का कारण छंदानुरोध मात्र नहीं है। एक ही प्रकार के छन्द में दोनों छापों का प्रयोग स्वयं इसका प्रमाण है कि वे दो विभिन्न कवियों द्वारा विरचित हैं। तीसरे यह कि सोमनाथ कवि सवैयों के लिए 'शशिनाथ' छाप की सृष्टि पहले ही कर चुके थे। 'नाथ' छाप भी उनकी कुछ कृतियों में मिलती है। अतः 'सोम' अथवा 'शोभ' की नई सृष्टि किस उद्देश्य से हुई, यह स्पष्ट नहीं होता। चार छापों से कविता करने वाला कोई कवि अब तक प्रकाश में नहीं आया है। ऐसी दशा में जब तक विपक्ष में दृढ़तर प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जाते शोभा कवि और शोभनाथ को सोमनाथ से भिन्न मानना ही उचित होगा।

शोभा कवि भरतपुर के महाराज नवल सिंह के दरबारी कवि थे। इनका एक ग्रंथ 'नवल रस चन्द्रोदय'[1] याज्ञिक संग्रहालय में सुरक्षित है। उसमें दिए हुए रचना-काल से विदित होता है कि ये सं० १८१८ के लगभग वर्तमान थे। शोभनाथ की कोई रचना प्रकाश में नहीं आई है।

१७०. शोभनाथ

देखिए शोभा कवि का परिचय।

१७१. श्रीपति

ये कालपी के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। शिवसिंह जी और उनके पूर्ववर्ती 'भाषा काव्य संग्रह' के रचयिता पं० महेश दत्त ने जाने किस आधार

१—काव्य शास्त्र का इतिहास (डा० भगीरथ मिश्र)—पृ० ४५

वसु विधि वसु विधु वत्सरहि, श्रावन सुदि गुरुवार।
सरब सुसिद्धि त्रयोदसी, भयो ग्रन्थ अवतार॥

पर इनकी जन्मभूमि पयाग पुर (जिला बहरायच) लिख दिया। श्रीपति के ये शब्द उनकी वासस्थान सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं—

सुकवि कालपी नगर को, द्विज मनि श्रीपति राइ।
जस समस्वाद जहान को, बरनत सुख समुदाय॥

इनकी गणना काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों में की जाती है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'काव्य सरोज' अथवा 'श्रीपति सरोज' है, जिसमें मम्मट के 'काव्य प्रकाश' का आधार लेकर काव्य शास्त्र के विभिन्न अंगों का विद्वत्ता-पूर्ण विवेचन किया गया है। इसकी रचना सं० १७७७ में हुई थी। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—अनुप्रास विनोद, काव्य सुधाकर, विक्रम विलास, कवि कल्पद्रुम, सरोज कलिका, रससार और अलंकार गंगा।

गोकुल कवि ने अलंकार, नायिका भेद तथा षड्ऋतु पर लिखे गये इनके कई छन्द उदाहृत किये हैं।

१७२. श्रीधर

इस नाम के दो कवि हुए हैं—एक हैं श्रीधर प्राचीन, जिन्हें सरोजकार ने सं० १७८६ में उपस्थित बताया है। इनकी किसी रचना का पता अब तक नहीं चला है। कुछ फुटकर शृंगारी छन्द ही उपलब्ध हैं। दूसरे श्रीधर नाम से कविता करने वाले ओयल (जिला खीरी) के राजा सुब्बा सिंह थे। ये सुवंश शुक्ल के शिष्य थे। इन्होंने 'विद्वन्मोद-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें नायक-नायिका भेद, षड्ऋतु तथा रस निरूपण सम्बन्धी इनकी कविताओं के साथ ४४ प्राचीन कवियों की भी रचनायें संग्रहीत हैं। शिवसिंह के अनुसार ये सं० १८७४ में उपस्थित थे।

दिग्विजयभूषण में श्रीधर का एक कवित्त संकलित है, जो 'अन्य सम्भोग दुखिता' नायिका के लक्षण रूप में उदाहृत है। 'विद्वन्मोद तरंगिणी' में इस विषय का विशद विवेचन है। मेरा अनुमान है कि इसके रचयिता राजा सुब्बा सिंह उपनाम 'श्रीधर' ही दिग्विजय भूषण के श्रीधर कवि हैं।

१७३. संगम

इनका वास्तविक नाम संगमलाल था। ये टेढ़ाबिगहपुर गाँव (जिला उन्नाव) के निवासी सुवंश शुक्ल के वंशधर थे। इनके आश्रय दाता महाराज राजसिंह थे। उनकी तलवार की प्रशंसा में इन्होंने निम्नांकित छन्द लिखा था—

कढ़त भुलानी मुख बैरिन कँपानी जब,
जंग थहरानी है भुखानी अरिसाज की।
सोनित सों सानी भई अकह कहानी रन,
मानो पगलानी ठकुरानी जमराज की॥
सब जग जानी खाइ अरिन अघानी विष,
पानी सो बुझानी है जिठानी मनो गाज की।
सभय बखानी शंभुरानी है रिसानी कैधों,
कैधों है कृपानी राजसिंह महराज की॥

इन राजसिंह को ठीक ठीक पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। सरोज में दिये गये संगम के एक छंद में 'सिंहराज' नाम आया है। उसकी अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है—

राज सिरताज सिंहराज महराज सुनो,
ऐसो गजराज कविराज को न दीजियो।

किन्तु खोज विवरण में संगम लाल शुक्ल के उक्त कवित्त में 'सिंहराज' के स्थान पर 'राज सिंह' पाठ दिया गया है। ऐसी दशा में उपर्युक्त दोनों प्रसंगों में संगम कवि के द्वारा निर्दिष्ट आश्रयदाता का नाम राजसिंह ही है, सिंहराज नहीं। इसी नाम भ्रम से शिव सिंह जी ने संगम कवि को सिंहराज का दरबारी कवि बताया है। मेरी सम्मति में ये राजसिंह सीतामऊ के राजा थे जिनके पुत्र, डिंगल और पिंगल के सिद्धहस्त कवि, नटनागर थे। ये सं० १८६५ के लगभग विद्यमान थे। संगम लाल सुवंश शुक्ल के वंशज बताये जाते हैं। शिव सिंह जी ने इन्हें सं० १८३४ में वर्तमान माना है। इनका रचनाकाल, सं० १८६१ से सं० १८८४ तक ठहरता है। सरोज के अनुसार, संगम कवि सं० १८४० में वर्तमान थे। सुवंश शुक्ल के समय को देखते हुए यदि संगम का आविर्भाव काल सरोज में दिये गये उपस्थिति काल को ही मान लें तो भी इनके राजसिंह के दरबारी कवि होने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

संगम की दो रचनायें खोज में मिली हैं—कवित्त और श्रीकृष्ण ग्वालिन को झगरा। दिग्विजय भूषण में इनके दो छंद उदाहृत हैं। एक नायिका भेद और दूसरा षड्ऋतु वर्णन से सम्बन्ध रखता है। ये दोनों ही 'कवित्त'से लिए गये जान पड़ते हैं, क्योंकि उनकी दूसरी रचना का प्रतिपाद्य विषय ही दानलीला है, जिससे भूषण में दिये गये छन्दों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

१७४. संतन

इस नाम के दो कवि हुए हैं और संयोगवश दोनों एक ही समय में उपस्थित थे। शिवसिंहजी ने इनका उदयकाल सं० १८३४ बताया है। एक संतन बिंदकी (जिला फतहपुर) के निवासी उपमन्यु गोत्रीय कान्यकुब्ज दुबे थे। ये अत्यंत ही वैभवसम्पन्न एवं दानशील प्रकृति के व्यक्ति थे।

दूसरे संतन कवि की जन्मभूमि जाजमऊ (जिला कानपुर) थी। ये वनस्थी के पांडे थे। मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्मकाल सं० १७२८ और कविताकाल सं० १७६० के लगभग माना है। इनकी आर्थिक दशा बहुत गिरी हुई थी। प्रायः यजमानों के द्वारा प्राप्त दान से ही ये परिवार का भरण-पोषण करते थे। बिंदकी वाले संतन से अपनी भिन्न स्थिति का चित्रण करते हुए ये एक स्थान पर लिखते हैं—

वै बरु देत लुटाय भिखारिन ये विधि पूरब दान गऊ के।
ह्वै अंखियाँ चितवैं उत वै इत ये चितवैं अँखियाँ थकऊ के॥
वै उपमन्यु दुबे जग जाहिर पांडे बनस्थी के ये मधऊ के।
वै कवि संतन हैं बिंदुकी हम हैं कवि संतन जाजमऊ के॥

अब तक इनकी एक ही रचना 'अध्यात्म-लीला' खोज में प्राप्त हुई है।

इनमें से किस सन्तन के कवित्त गोकुल कवि ने उदाहृत किये हैं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। किंतु शिवसिंह जी ने प्रथम संतन के जो छंद सरोज में संग्रहीत किये हैं उनकी भाषा शैली की, भूषण में उदाहृत छंदों से, साम्य देखकर मेरी धारणा है कि वे प्रथम संतन के ही हैं। दूसरे संतनकी प्राप्त रचना 'अध्यात्म-लीलावती' से गोकुल कवि द्वारा संकलित छंदों की विषय विभिन्नता इस संभावना को बल देती है।

१७५. सदानन्द

गोकुल कवि ने अलंकार और नायिकाभेद विषयक सदानन्द के दो कवित्त उदाहृत किये हैं। दोनों एक ही समस्या पर लिखे गये हैं। इन्हीं में से एक सरोज में संकलित है। शिवसिंहजी ने इनका एक छन्द कालिदास के हजारा में संग्रहीत बताया है और इनका उपस्थिति काल सं० १६८० निश्चित किया है। इन साक्ष्यों के आधार पर ये सं० १७५० के पूर्ववर्ती कवि ठहरते हैं।

सं० १७५० के पूर्व सदानन्द नामक दो कवि हुए हैं। प्रथम सदानन्द जौनपुर के निवासी ब्राह्मण थे। इनके पुत्र हरजू मिश्र ने सं० १७६६ में

अमरकोश की टीका की थी। ये बिहारी सतसई के आजमशाही अनुक्रमकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। दूसरे सदानन्द ब्रह्मभट्ट थे। इनके पिता का नाम कविराज था। शिवराज महापात्र इन्हीं के वंशज थे। इनका उपस्थिति काल सं० १८६६ है।

इनमें से किस सदानन्द के छन्द दिग्विजय-भूषण में उदाहृत हैं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

१७६. सबलश्याम

इनका असली नाम सबलशाह अथवा सबलसिंह था, 'सबल श्याम' उपनाम था। ये अमोढ़ा (जिला बस्ती) के सूर्यवंशी राजा दलसिंह के पुत्र थे। दलसिंह अमोढ़ा राज्य के संस्थापक कंसनारायण (सं० ११६१) की २७ वीं पीढ़ी में हुए थे। सबलश्याम का जन्म सं० १६८८ में अमोढ़ा में ही हुआ था। 'भागवत भाषा' में ये लिखते हैं—

संवत सोरह सै अट्ठासी, जन्म भयो छिति आइ।
सबलश्याम पूर पुण्य ते, नगर अमोढ़ा में परे देखाइ॥

इनकी दो रचनायें मिली हैं—षड्ऋतु बरवै और भागवत भाषा। शिवसिंह जी ने भ्रांतिवश षड्ऋतु बरवै और भाषा ऋतु-संहार को दो पृथक् ग्रन्थ मान लिया है, जो वास्तव में एक ही रचना के दो नाम हैं।

इनका एक कवित्त दिग्विजय-भूषण में उदाहृत है।

१७७. सरदार

ये ललितपुर (जिला झाँसी) के निवासी हरिजन बंदीजन के पुत्र थे। इनके काव्यगुरु चरखारी के प्रसिद्ध कवि प्रताप साहि थे। कुछ दिनों तक कवि-वृत्ति से जीविकोपार्जन करने के पश्चात् ये काशी गये और वहाँ महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के दरबार में रहने लगे। इसके पश्चात् इनका शेष जीवन वहीं बीता। ये काशी के भदैनी मुहल्ले में रहते थे। यहीं सं० १६४२ में इनका देहान्त हुआ।

सरदार कवि दिग्विजय-भूषण के रचयिता गोकुल कवि के समकालीन थे। इन्होंने दिग्विजय-भूषण की ही भाँति 'शृंगार-संग्रह' नामक ग्रन्थ बनाया जिसमें १२५ प्राचीन कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं। इनके शिष्य नारायण राय थे, जिन्होंने गुरु के अनेक साहित्यिक कार्यों की पूर्ति में सहायता की थी।

श्रृंगारी रचनाओं के साथ रामभक्ति विषयक अनेक ग्रन्थों की भी इन्होंने रचना की थी।

सरदार कवि की रचनाओं की तालिका निम्नांकित है—काशिराज प्रकाशिका, सुख-विलासिका, साहित्य लहरी की टीका, बिहारी सतसई की टीका, ऋतु-वर्णन, शृङ्गार संग्रह (सं० १६०५), व्यंग्य-विलास, साहित्य-सुधाकर, रामरण रत्नाकर रामरस वज्र मंत्र, मानस रहस्य, तर्क प्रकास, रामकथाकल्पद्रुम, रामलीला-प्रकास, साहित्य सरसी, हनुमत भूषण, तुलसी भूषण, मानस भूषण और मुक्तावली।

इनका काव्य काल सं० १६०२ से सं० १६४० तक माना जाता है।

१७८. सूरदास

इधर सूरदास छाप से कविता करने वाले अनेक कवि प्रकाश में आये हैं किन्तु दिग्विजय भूषण में इनका जो छन्द संग्रहीत है वह 'सूरसागर' का एक प्रसिद्ध पद है अतः उसके रचयिता सर्वमान्य कृष्णभक्त सूरदास ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इनका आविर्भाव वैशाख शुक्ल ५, सं० १५३५ को दिल्ली के निकटस्थ सीही गाँव के सारस्वत ब्राह्मण वंश में हुआ था। सूर के जीवन सम्बन्धी अन्तः एवं बहि साक्ष्यों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इन्हें भाट, जाट और ढाढी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु ये आपत्तियाँ विश्वसनीय नहीं प्रतीत होतीं। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब सूर के प्रायः समकालीन गोस्वामी यदुनाथ और कवि प्राणनाथ उन्हें स्पष्टरूप से सारस्वत वंशी घोषित करते हैं[1]। चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर लिखी गई हरि राम जी की 'भावप्रकाश टीका' से विदित होता है कि ये जन्मांध थे। बाल्यावस्था में ही विरक्त हो कर ये घर से निकल पड़े। बहुत दिनों तक इधर उधर भटकने के बाद इन्होंने कृष्ण की जन्मभूमि, मथुरा, वास का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से ये घूमते-घामते आगरा मथुरा मार्ग में स्थित गऊ घाट पर पहुँचे और वहाँ यमुना नदी के तट पर स्थायी रूप

---

१. ततोऽर्कलपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः।
ततो ब्रज समागमने सारस्वत सूरदासोऽनुग्रहीतः॥
(वल्लभदिग्विजय-गो० यदुनाथ कृत)
श्री वल्लभ प्रभु लाडिले, सीही सर जलजात।
सारसुती दुज तरु सुफल, सूर भगत विख्यात॥
(अष्टसखामृत—प्राणनाथ कृत)

से रहने लगे। इसी समय कुछ काल इन्होंने गऊघाट के निकटवर्ती रेणुका क्षेत्र (रुनकता गाँव) में भी निवास किया था। इनके संगीत एवं दैन्यपूर्ण पदों की रचना यहीं हुई और महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन का सौभाग्य भी इन्हें इसी पुण्य भूमि में उपलब्ध हुआ। वल्लभाचार्य जी ने सं० १५६७ के लगभग विधि पूर्वक पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित कर इन्हें कृष्णलीलागान का आदेश दिया। वल्लभाचार्य जी इन्हें गऊ घाट से अपने साथ गोकुल ले गये और वहाँ कुछ काल व्यतीत कर गोवर्धन की यात्रा की।

वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से सं० १५५६ में पूरन मल खत्री द्वारा गोवर्धन पर श्रीनाथ जी का मंदिर निर्मित हुआ। गुरु आज्ञा से सूरदास जी इसी में कीर्तन सेवा करने लगे। सूरसागर इसी दिव्यभूमि में विरचित नित्य-लीला सम्बन्धी पदों का संग्रह है।

गोवर्द्धन आने पर, इन्होंने अपना स्थायी निवास स्थान, परासोली नामक समीपवर्ती गाँव में बना लिया। यहीं पर सं० १६४० में सूरदास जी का गोलोक-वास हुआ।

खोज विवरणों में इनके विरचित २५ ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिनमें प्रमुख हैं—सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरसाठी, सूर पचीसी, सेवा फल और सूरदास के विनय के पद। इनमें सूरसागर को छोड़ कर अन्य सभी विवादास्पद हैं।

इनका कविताकाल सं० १५५० से सं० १६४० तक माना जाता है। इन ९० वर्षों की दीर्घ अवधि तक प्रवाहित सूर की भक्ति स्रोतस्विनी ने ही विस्तार एवं गाम्भीर्य में अप्रतिम 'सागर' की सृष्टि की है, जिसकी लहरें सहृदय मात्र को आज भी रस प्लावित करती हैं।

?७९. सिंह कवि

इस नाम के एक कवि का उल्लेख सरोज में हुआ है और उसे सं १८३५ में वर्तमान बताया गया है। ग्रियर्सन महोदय ने इन्हें सिंह नामान्त कोई अन्य कवि माना है। दिग्विजय भूषण में इनका एक और सरोज में दो छन्द संग्रहीत हैं। दोनों में 'सिंह' छाप है। खोज में एक महासिंह नामक कवि मिले हैं जो 'सिंह' उपनाम से कविता करते थे। ये मेड़ता (राजस्थान) के निवासी ब्राह्मण थे। इनकी एक मात्र रचना 'छन्द शृङ्गार' उपलब्ध हुई है जिसका रचनाकाल सं० १८५३ है। सरोज के सिंह कवि और इनका समय एक ही ठहरता है। अतः दोनों अभिन्न हो सकते हैं।

१८०. सुखदेव मिश्र

देखिये 'कविराज' कवि का परिचय।

१८१. सुखदेव द्वितीय

ये सुखदेव मिश्र से अभिन्न हैं।

१८२. सुन्दर

हिन्दी काव्य की शृङ्गारी परंपरा में 'सुन्दर' नाम के दो कवि हुए हैं। पहले सुन्दर, हिन्दू प्रेमाख्यान 'रस रतन' के रचयिता पुहकर के छोटे भाई थे। ये पंजाब निवासी मोहनदास कायस्थ के पुत्र थे। इनके बड़े भाई की रचना 'रस रतन' का निर्माण काल सं० १६७३ है। वे मुगल बादशाह जहाँगीर के समकालीन थे। अतः इनका कविताकाल सं० १६८० के लगभग माना जा सकता है। इनके फुटकर शृंगारी छन्द मिलते हैं।

दूसरे सुन्दर ग्वालियर के रहने वाले ब्राह्मण थे। ये शाहजहाँ के दरबारी कवि थे। बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें पहले 'कविराय' और फिर 'महा-कविराय' की उपाधि प्रदान की थी। 'सुन्दर' शृंगार में अपना परिचय देते हुये ये लिखते हैं—

नगर आगरो बसत है, जमुना तट सुभ थान।
तहाँ बादसाही करैं, बैठे साह जहान॥
साहजहाँ तिन गुनिन को, दीने अनगन दान।
तिनने सुन्दर सुकवि को, कियो बहुत सनमान॥
नगभूषन गन सब दिये, हय हाथी सिरपान।
प्रथम दियो कविराज पद, बहुरि महाकविराय॥
विप्र ग्वालियर नगर को, बासी है कविराज।
जापै साह दया करै, सदा गरीब नेवाज॥

इन्होंने 'सुन्दर शृंगार' की रचना सं० १६८८ में की अतः इसी के कुछ आगे पीछे इनका काव्य काल निश्चित किया जा सकता है।

कहते हैं एक बार कविता लिखते समय छन्द में इनकी असावधानी से यह वाक्छल पड़ गया "सुन्दर कोप नहीं सपने" जिसका प्रतिकूल परिणाम "सुन्दर को पनहीं सपने" के रूप में इन्हें उसी रात को भोगना पड़ा था।

शिवसिंह जी ने इन दोनों में से केवल द्वितीय का संक्षिप्त परिचय और उनकी रचनाओं के उदाहरण दिये हैं, किन्तु वे छन्द 'भूषण' में नहीं मिलते। ऐसी स्थिति में यह निश्चय करना कठिन है कि उनमें से किस 'सुन्दर' की रचनायें गोकुल ने उदाहृत की हैं। अधिक संभावना यही है कि वे शाहजहाँ के कृपापात्र महाकविराय सुन्दर हों और ये छन्द उनके 'सुन्दर श्रृंगार' नामक ग्रन्थ से उद्धृत किये गये हों। ये दोनों सुन्दर दादू दयाल के शिष्य निर्गुण मार्गी संत सुन्दरदास से सर्वथा भिन्न हैं।

१८३. सुमेर

सुमेर कविका कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं। दिग्विजयभूषण में इनके उदाहृत छंद से भी इस विषयपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। सूदन कवि ने वंदनीय कवियोंमें इनका उल्लेख किया है। इससे केवल इतना निश्चित होता है कि ये सं० १८१० के पूर्ववर्ती हैं।

१८४. सूरति

ये आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। अपने सम्बन्ध में **'सूरति मिश्र कनौजिया नगर आगरे बास'** लिखकर इन्होंने स्वयं इसकी पुष्टि कर दी है। इनका जन्म सं० १७४० में हुआ था। पिता का नाम सिंहमनि और काव्यगुरु का 'गंगेस' था। अपने समय के दरबारी कवियों में ये अग्रगण्य माने जाते थे। दिल्ली-पति मुहम्मद शाह, जोधपुर के दीवान अमरसिंह, नसरुल्ला खाँ और बीकानेर के राजा जोरावरसिंह आदि के आश्रय में रहकर काव्य-रचना करते हुये इनका जीवन बीता। इनके शिष्यों में जयपुर निवासी राय शिवदास और अली मुहिब खाँ 'पीतम' (खटमल बाईसी के रचयिता) विशेष उल्लेखनीय हैं। भक्तमाल नामक ग्रंथ से विदित होता है कि ये वल्लभसम्प्रदाय के अनुयायी कृष्णभक्त थे।

सूरति मिश्र काव्य-शास्त्र के प्रधान आचार्यों में गिने जाते हैं। 'काव्य-सिद्धान्त' में कवि-कर्म के सहायक सभी अंगों—रस, गुण, अलंकार आदि का बड़ी कुशलता एवं पांडित्य के साथ निरूपण किया गया है। इन्होंने निम्नांकित ग्रंथ रचे हैं—*अलंकार माला* (सं० १७६६), *कविप्रिया की टीका*, *रसिक प्रिया की टीका* (सं० १७९१), काव्य-सिद्धान्त, छंदसार, राधाजू को नखशिख, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक, भक्तविनोद, रसरत्नमाला, सरस रस, श्रृंगारसार, बैतालपचीसी, रासलीला, दानलीला, अमरचन्द्रिका (सं० १७९४) और जोरावर प्रकाश (सं० १८००)।

इनका कविताकाल सं० १७६६ से सं० १८०० तक था।

दिग्विजय भूषण में इनके अलंकार एवं नायिका भेद विषयक छंद उदाहृत हैं।

१८९. सेनापति

इनका जन्म सं० १६४६ के लगभग अनूप शहर में हुआ था। जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर दीक्षित था। हीरामणि दीक्षित से इन्हें काव्य शिक्षा मिली। शिवसिंहजी के अनुसार बहुत काल तक गृहस्थ जीवन व्यतीत कर इन्होंने क्षेत्र संन्यास ले लिया था। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध और कदाचित् एकमात्र रचना[1] 'कवित्त रत्नाकर' है जिसका निर्माण काल सं० १७०६ है। हिंदी के शृङ्गारी साहित्य में ऋतु-वर्णन सम्बन्धी इनके छन्दों में प्रकृति निरीक्षण की जो सूक्ष्मता और काव्य सुषमा मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कवित्त रत्नाकर में कुछ भक्ति-विषयक छन्द भी संग्रहीत हैं जिनसे ये अनन्य रामोपासक सिद्ध होते हैं। उनकी अपनी उक्ति है—

और न भरोसो जिय परत खरो सो ताहि,
राम पद पंकज को पूरन भरोसो है।

इनके एक छन्द से विदित होता है कि कुछ समय तक ये मुसलमानी दरबार में भी रहे थे और वहाँ आश्रयदाता से इन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी[2]। किन्तु वैराग्य उदय होने पर इन्होंने स्वतः उस वैभवपूर्ण जीवन से ऊब कर संन्यास ग्रहण कर लिया था। इसी स्थिति में इन्होंने कुछ दिन गंगा तट पर स्थित किसी तीर्थ में भी बिताये थे। गंगा महिमा विषयक छंद इसी अवसर पर लिखे गये थे। अपने जीवन के अन्तिम दिन इन्होंने रामभजन करते हुए वृंदावन में व्यतीत किये।

---

१. सेनापति की एक अन्य रचना 'काव्य कल्पद्रुम' बताई जाती है किन्तु कुछ विद्वानों की सम्मति में वह 'कवित्त रत्नाकर' का ही दूसरा नाम है (देखिये—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० १६६)।

२. चिन्ता अनुचित, धरि धीरज उचित,
'सेनापति' ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये।
चारि वरदानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये॥

दिग्विजय-भूषण में 'कवित्त रत्नाकर' में अलंकार नायिका भेद, षड्ऋतु-वर्णन और रामभक्ति सम्बन्धी इनके १२ छंद उदाहृत हैं। गोकुल कवि ने इनके श्लेष वर्णन सम्बन्धी छन्दों की बड़ी विद्वत्तापूर्ण टीका प्रस्तुत की है।

१८६. सोमनाथ

ये पूर्व निर्दिष्ट शशिनाथ कवि से अभिन्न हैं। भूषणकार ने भ्रान्तिवश भरतपुर के राजा सूरजमल के आश्रित कवि सोमनाथ की,'सोमनाथ' और 'शशि-नाथ' दो विभिन्न छापों के आधार पर, दो पृथक् कवियों की सत्ता की कल्पना कर ली और ग्रंथारंभ में दी गई कविसूची में उनका अलग उल्लेख कर दिया। इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए देखिए 'शशिनाथ' कवि का परिचय।

१८७. हरजीवन

इस नाम के दो कवियों का पता चलता है—एक हैं हरजीवन प्राचीन और दूसरे हरजीवन गुजराती। प्राचीन हरजीवन का कोई वृत्त ज्ञात नहीं। इनके छंद राजस्थान में प्राप्त एक प्राचीन काव्य-संग्रह 'ख्यालटिप्पा' में संग्रहीत मिलते हैं। दूसरे हरजीवन पोरबन्दर (काठियावाड़) के रहनेवाले थे[1]। गुजराती होते हुये भी इन्होंने परिष्कृत ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है। इनका उपस्थिति काल, सं० १६३८ के आसपास है। शिवसिंह जी सेंगर इनके समकालीन थे।

दिग्विजय भूषण में हरजीवन का केवल एक छंद उदाहृत है। सरोज में भी वही संग्रहीत है। हरजीवन नामाराशी उपर्युक्त दो कवियों में से दूसरे गोकुल कवि के परवर्ती हैं अतः उनकी रचना के 'भूषण' में उद्धृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में दिग्विजय भूषण में उदाहृत छंद प्राचीन हरजीवन का ही है, इसमें कोई संदेह नहीं।

१८८. हरदेव

ये नागपुर के पेशवा रघुनाथराव (शासन काल सं० १८७३-१८७५) के आश्रित कवि थे। दिग्विजय भूषण में आश्रयदाता की प्रशस्ति में लिखा गया इनका एक छन्द उदाहृत है। सरोजकार ने भी उसी को उद्धृत किया है। खोज में इनका एक ग्रन्थ मिला है। जिसका नाम है, 'नायिका लक्षण'।

---

१. द्रष्टव्य 'माधुरी' जून १६२७ में 'गुजरात का हिन्दी साहित्य' शीर्षक लेख।

१८९. हरिकवि

इनका असली नाम हरिचरण दास त्रिपाठी था। ये शांडिल्य गोत्र के सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके पुरखे नवापार बढ़ैया के निवासी थे किन्तु इनके पिता रामधन त्रिपाठी उस स्थान को छोड़कर गंगासरयू संगम के समीपस्थ सारन जिले (बिहार) के चैनपुर गाँव में आकर बस गये थे। हरिचरणदास का जन्म इसी गाँव में, सं० १७६६ में हुआ था। इनके काव्य गुरु प्राणनाथ थे, जिनसे इन्होंने यमुना तटपर स्थित तुलसीवन अथवा वृन्दावन में बिहारी-सतसई पढ़ा और उसी स्थान पर सं० १८३४ में उसकी 'हरि प्रकाश' टीका लिखी। यहाँ से ये राजस्थान गये और वहाँ कृष्णगढ़ के राजा बहादुर सिंह के दरबारी कवि हो गये।

दिग्विजय भूषण में उदाहृत इनके एक छन्द से विदित होता है कि नबी खाँ नामक किसी सामन्त के आश्रय में भी ये कुछ दिन रहे थे। कवि ने आश्रय-दाता को अब्दुल वाहिद का पुत्र बताया है—

> कैला काल कूट के तचाई तेज बाड़व की,
> सेस फूँक धमक प्रचंड ताव चढ़ी है।
> आई आसमान तें की आसमान सान पाय,
> कलह बुझाय पौन पैनी धार कढ़ी है॥
> हरि हर हरि के त्रिशूल चक्र पास बैठि,
> बैरिन के बधबे को अच्छ सिच्छ पढ़ी है।
> अबदुल वाहिद के नबी खान तेरी तेग,
> बज्र के हथौरा काल कारीगर गढ़ी है॥

खोज में इनकी निम्नांकित कृतियाँ मिली हैं—चमत्कार चन्द्रिका (सं० १८३४) बिहारी सतसई की 'हरि प्रकाश' टीका सं० १८३४, मोहन लीला, कवि प्रियाभरण सं० १८३५, कर्णाभरण-कोश और कवि वल्लभ (सं० १८३६)

१९०. हरिकेश

ये सेहुँड़ा (दतिया राज्य-बुन्देल खंड) के निवासी ब्राह्मण थे। महाराज छत्रसाल (शासनकाल सं० १७२२-१७८८) और उनके दो पुत्रों जगत-राज (शासन काल सं० १७८८-१८१५) तथा हृदय साहि (शासन काल सं० १७८८-१७९६) की छत्रछाया में इन्होंने अपना कवि जीवन सार्थक किया। उनके शौर्य-वर्णन में लिखे गये इनके अनेक छन्दों में महाकवि भूषण की वाणी

के ओज एवं लालित्य के दर्शन होते हैं। वीर सा ही शृंगार रस पर भी इनका असाधारण अधिकार था।

इनकी दो रचनायें मिली हैं—जगतरानदिग्विजय और ब्रजलीला। दिग्विजय-भूषण में ब्रजलीला से ही नखशिख नायिका-भेद और षड्ऋतु वर्णन विषयक तीन छंद उदाहृत हैं।

१९१. हरिजन

इनका कोई वृत्त अब तक प्रकाश में नहीं आ सका है। शिवसिंहजी ने इन्हें सं० १६६० में वर्तमान कहा है और इनके कवित्त कालिदास के हजारे में संकलित बताये हैं। सरोज में इनका केवल एक कवित्त संग्रहीत है जो भूषण से ही लिया गया है। गोकुल कवि ने षड्ऋतु वर्णन और नायिका-भेद पर इनके दो कवित्त उदाहृत किये हैं।

१९२. हरिलाल

इस नाम के चार कवि हुए हैं। पहले हरिलाल गोस्वामी, राधावल्लभी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रूपलाल गोस्वामी के पुत्र थे। इनका उपस्थितिकाल सं० १७३८ के लगभग है। दूसरे हरिलाल व्यास के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये भी राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनकी दो रचनायें खोज में मिली हैं—सेवक बानी सटीक और रसिक भेदिनी। ये सं० १८३७ में विद्यमान थे। तीसरे हरिलाल मिश्र आजमगढ़ के रहने वाले थे। ये मुगल बादशाह शाह आलम के आश्रय में रहते थे। इनकी एक मात्र उपलब्ध कृति 'रामजी की वंशावली' है, जो सं० १८५० के आसपास लिखी गई थी। चौथे हरिलाल मथुरा के निवासी ब्राह्मण थे। इनके तीन ग्रन्थ मिले हैं—दशम स्कन्ध, ब्रजविनोद लीला पंचाध्यायी और ब्रजविहार-लीला।

दिग्विजय-भूषण में हरिलाल कवि का एक छन्द उदाहृत है, जिसका प्रतिपाद्य विषय नखशिख है। उपर्युक्त हरिलाल नामाराशी चारों कवियों में से वह किसकी रचना है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

१९३. हितहरिवंश

स्वामी हितहरिवंश, गौड़ ब्राह्मण केशवदास के पुत्र थे। इनका जन्म मथुरा के निकट बादग्राम में वैशाख शुक्ल ११, चन्द्रवार सं० १५३० को हुआ था। इनकी माता का नाम तारावती था। इनके माता-पिता मूलतः देवबन्द (जिला सहारनपुर) के निवासी थे। इनके दीक्षागुरु गोपालभट्ट, मध्व संप्रदाय

के अनुयायी थे। कुछ काल तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने के पश्चात् इन्होंने स्वयं एक नये मत का प्रवर्तन किया, जो राधावल्लभी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रसिद्ध है कि इस नये भक्ति मार्ग की प्रेरणा हित हरिवंश जी को राधाजी से प्राप्त हुई थी और उन्होंने स्वप्न में इसकी सर्वप्रथम दीक्षा हित-हरिवंश जी को स्वयं दी थी। सम्प्रदाय का 'राधावल्लभी' नाम और उसकी उपासना पद्धति में राधा जी की प्रधानता का यही रहस्य है। सम्प्रदाय में ये वंशी के अवतार माने जाते हैं। इन्होंने वृन्दावन में राधावल्लभ जी की मूर्ति सं० १८५२ में प्रतिष्ठित की और तब से उसी विग्रह की सेवा करते हुये साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का प्रवर्तन एवं प्रचार ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य बनाया। इनका लीला प्रवेश शरत्पूर्णिमा सं० १६०६ को हुआ।

हरिवंश जी विदेहमार्गी गृहस्थ भक्त थे। इनकी दिव्यधाम यात्रा के अनन्तर साम्प्रदायिक परंपरा का प्रसार इनके चार पुत्रों—वनचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गोपीनाथ और मोहनलाल द्वारा हुआ। इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्त कवि हैं–हरिराम व्यास (सं १६२०), ध्रुवदास (सं० १६५०–१७४०) और चाचा हित वृन्दावनदास (सं० १७६५)।

हित हरिवंश जी की निम्नांकित रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं—हितचौरासी, यमुनाष्टक और राधा सुधानिधि।

१९४. हिरदेस

ये झाँसी (बुन्देलखंड) के निवासी बन्दीजन थे। शिवसिंह जी ने इन्हें सं० १६०१ में उपस्थित बताया है। दिग्विजय-भूषण में इनका एक शृङ्गारी छन्द उदाहृत है। सरोज में भी वही उद्धृत किया गया है। इनकी एक रचना 'शृङ्गार नवरस' का पता चला है। उक्त छन्द उसी से लिया गया है।

१९५. हेम

इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं। दिग्विजय भूषण में इनके दो छन्द उदाहृत हैं और सरोज में एक। इनसे ये शृङ्गारी परंपरा के कवि सिद्ध होते हैं।

दिग्विजय-भूषण

दिग्विजय-भूषण

भूमिका

बरवै—गौरिनन्द पद सुमिरौं, हिय धरि ध्यान।
जाकी कृपा बिलोकनि, पूरति ज्ञान ॥१॥

दोहा—ऐरावति के दक्ष तट, महा बिमल अस्थान।
बसै नगर बलिरामपुर, कोबिद सुकबि महान ॥२॥

चौहट हांट बजार वर, बरन चारि जहँ स्वच्छ।
निज निज बिद्या-बिज्ञ सब, धर्म कर्म में दच्छ ॥३॥

नित्य जहाँ कोबिद सभा, सुकबि बिलास उदार।
बितपति[1] प्रतिभा मंजुमय, नव नव युक्ति अपार ॥४॥

महाराज दिग्विजय सिंह, सबको करि सन्मान।
दियो जीबिका हेतु बहु, रतन, ग्राम, गज दान ॥५॥

सुबुध गदाधर शर्म्म को, बिद्या-गदा प्रहार।
नहि क्वउ कबि कोबिद भयो, सहन शील संभार [संसार] ॥६॥

तासु निकट बिद्या पढ़े, भूरि शिष्य मतिमंत।
तिन्ह में यक 'गोकुल' भयो, रचना में बलवंत ॥७॥

सुगुरु कृपा पीयूष पिय, प्रति दिन करि अभ्यास।
साहित्यागम सिन्धु मथि, रतन लहे अन्यास[2] ॥८॥

मम पितृव्य के निकट जब, पढ़िवे बिद्या रीति।
काव्य-कोष उत्कर्ष लखि, भई सुपावन प्रीति ॥९॥

राजसभा नित काव्य की, चर्चा होवै वेश।
तहँ मम युक्ति नवीन लखि, कबि यों कियो निदेश ॥१०॥

भाषा ग्रंथन को तिलक, कीन्हे भाषा माहिं।
तुम सम बिशद प्रबंध को, अधिक नृपति प्रिय चाहि ॥११॥

संस्कृत सम्मत जाहि लखि, कबि कोबिद मुद होय।
काब्य कोष बहु ग्रंथ मत, कीजै रचना सोय ॥१२॥

कबि-निदेश अरू भूप रुचि, समुझि महोदय बात।
ताके बिशद प्रबन्ध को, करौं तिलक बिख्यात ॥१३॥

शब्द, अर्थ, ध्वनि, ब्यंग्य, रस, अलंकार सु अनूप।
गुन अरु रीति बिलासमय, कीन्हे राम स्वरूप ॥१४॥



१—ब्युत्पत्ति। २—अनायास।

श्रीगणेशाय नमः

।। अथ दिग्विजय-भूषणं लिख्यते ।।

प्रथमः प्रकाशः

छप्पै—गनपति, गौरि, गिरीश, गिरा, बिधि, रमा, रमापति।
राजराज[1], सुरराज, सप्त ऋषि, पावन जलपति ।।
राहु, केतु, शनि, भौम, शुक्र, बुध, गुर, रबि, निशिपति।
मच्छ, कोल कहि, कच्छ, सिंहनर, बामन, भृगुपति ।।
सिय रामचंद, बृजचंद प्रिय, बौध कलंकी अघ हरैं।
कहि 'गोकुल' शुभ सब दिन सदै, ए छतीस रच्छा करैं ।।१।।

दोहा—एक[2] रदन करिवर बदन, लम्बोदर यहि हेत।
गुन अनंत लहि बिघुनबन, कर पसारि गहि लेत ।।२।।

टीका—गनपति०-गणेश, पार्वती, शिव, सरस्वती, ब्रह्मा, लक्ष्मी, बिस्नु, कुबेर, इन्द्र, सप्तर्षि, बरुण, राहु, केतु, शनैश्चर, मंगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, सीताराम, राधाकृष्ण, बौद्ध और कल्की पाप को हरते सर्वदा शुभ प्रद हैं ये छतीसौं देवता रच्छा करैं। 'राजराजो धनाधिप' इत्यमरः। सप्तर्षि यथा। मरीचि, अरुंधती सहित वशिष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, इति। यह क्रम जिस प्रकार सप्तर्षि मंडल है तैसो लिख्यो है। इस आशीर्वादात्मक मंगल में कवि का यह तात्पर्य है कि गणेश विघ्न हरैं, पार्वती मंगल [देवैं] शिव कल्याण, सरस्वती और ब्रह्मा बुद्धि, लक्ष्मी निवास, बिस्नु भक्ति, कुबेर संपत्ति, इंद्र राज्य, सप्तर्षि आयुर्बल, वरुण बल, राहु आदि पापग्रह विघ्न परित्याग करि शुभ फल, शुभ ग्रह शुभ फल, सूर्य्य प्रताप, चंद्रमा सकल जनाह्लाद, दश अवतार रच्छा पूर्वक संसार रक्षकता देवैं। इति ।।१।।

१—राजराज = कुबेर।

२—गणेशजी का एक (अनुपम) दाँत, विशाल हाथी का मुँह, लम्बा (विस्तीर्ण—जिसमें सब समा जाय ऐसा) उदर है, ऐसे ही अनन्त गुणों के होने से वे भक्तों के विघ्नरूप वनको कर (सूंड़) फैलाकर अपने में समेट लेते हैं।

गौरी गणेश वन्दना (श्लेष)

दंडक—पावन[1] सुभग गति सेवत परमहंस,

जात न प्रकाश कहि हारी मति शेष की।

आभा करिवर मुख बिघुन बिमुख करै,

देत शुभ सुख हित आली जन बेश की॥

सोहत बिशाल भाल सेंदुर बिलास स्वच्छ,

केसकै बखानि शोभा घालै तम भेस की।

दूषन दलनहारी भूषन करनवारी,

प्रनमित पद-रज गिरिजा गनेश की॥३॥

टीका—गणेशपक्षे। पावन पद० कहै पवित्र गति पावत है परमहंस, जातन प्रकाश० जात नहीं प्रकाश कहि०, आभा कहै शोभा, गजमुख देखि बिघुन भागि जात, देत सुख० आली कहै भौंर जे मद के हेत बिहरत, जन कहै दास जाकी आकृति जन की भाँति है ताकों क्षेम सुख अरु हित कहै पथ्य देत है। 'शुभो क्षेम शुभं क्षेमे वाच्यवत् क्षेमशालिनीति'मेदिनी। 'हितं पथ्ये गते धृते' इति मेदिनी। सोहत बिशाल कहै शोभित है बिशाल कहै पृथुल भाल ललाट 'विशाला त्विन्द्रवारुण्यामुज्जयिन्यां तु योषिति। मृगपक्षिभिदे पुंसि पृथुले त्वभिधेयवदिति'मेदिनी। 'भालं तेजोललाटयोरिति' मेदिनी। तामें सेंदुर अरुन भ्रमतम को मिटाइ देत इति॥

गौरीपक्षे पावन०—पावन कहै दोनों पायमें जो गति है ताको, हंस सेवत हैं। कहै सीखिवो चाहै हैं, जातन० जाके तन के प्रकाश के कहिबे में शेष की मति हारि जाती है। आभा करिवर मुख० शोभा करि कै वर कहै श्रेष्ठ मुख देखि बिघ्न क्लेश बिमुख करै है अर्थात् दूरि करि देय है। शुभ सुख० आली सखी जन कों सुख देत है। सोहत पद० भाल में सेंदुर सोहत, केश पद० केश जो बार ताकी आभा देखि तम अंधकार भागिजात, उपमान के उतकर्षतासों॥३॥

१—"नानार्थसंश्रयः श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रितः" (कुवलयानन्द)। यहाँ 'पावन' आदि प्रत्येक पद अपने भिन्न भिन्न अर्थों द्वारा स्तूयमान (गिरिजा और गणेश) की पदरज का ही बोधक है। अतः प्रकृत श्लेष है। विशेष देखिये अलंकार प्रकरण।

दोहा—राधा-राधानाथ पद, सीता-सीताराम[1]।
गौरी-गौरीनाथ कौं, बंदौं पूरन काम ॥ ४ ॥

राधाकृष्ण वन्दना (श्लेष)

सवैया किरीट छन्द—

मान[2]सुकेशी के हेरि हरे शिर बारन जीतिलिए अहि कायक।
पावन जे हरि स्वच्छ महावर कांति भरी जुलफैं हैं शुभायक ॥
'गोकुल' वै कहि जात न मंजु धरे नगहार हिए घनभायक।
आनँद कंद सदै भजिए पद बंदिए राधिका-राधिकानायक ॥५॥

टीका—राधिकापक्षे। मान सुकेशी पद०—मान कहै गर्व सुकेशी अपसरा को हरी है, "घृताची मेनकारंभा उर्वशी च तिलोत्तमा। सुकेशी मञ्जुघोषाद्याः कथ्यन्तेऽप्सरसो बुधैः॥" इति अमर टीका। शिरवारन पद० वार अहि सर्पन की कायक कहै देह के रंग को जीते, पावन पद० पावन कहै दूनौ पाय में, जे हरि० पैजनी महावर जावक जुत, कांति भरी पद० छवि के भार से जुलफैं उनै जाती हैं। शोभा सें लसतीं, गोकुल वै० कवि उक्ति वै अवस्था जाके तन में मंजु रमणीय नहीं कह्यो जाय है, नगहार हिए पद० नग कहै रतन सों जडित हार हिए घनकहै सघन है।

कृष्णपक्षे। मान सुकेशी०—मान कहै अभिमान, सुकेशी दैत्य कंश के सखा को नाश किए, शिरवारन पद० शिरकहै मस्तक वारन हाथी कुवलयापीड को फारे, 'वारणं प्रतिषेधे स्याद्वारणस्तु मतङ्गजे' इति मेदिनी। अहि कहै काली नाग ताको जीति लिये नाथि लाए, पावन जे हरि पद० पावन पवित्र है जे हरि और सुंदर है कांति शोभा सों भरी जुलफैं कहै काकपक्ष, गोकुल वै गोकुल में वै कहि जात नहीं, नग गोवर्धन पर्वत को नख पर धारे हार मुक्तामाल उर पै धारे 'हारो मुक्तावली युधीति' मेदिनी। जाहि देखि घन जे बृज बोरिवे को आए हेतु हारि गए ॥ ५ ॥

१—"सीता-सीताराम" पद में सीता शब्द की पुनरुक्ति नहीं है। "सीता जिसमें रमण करती है वह" ऐसा अर्थ करके 'सीताराम' पद से कवि का अभिप्राय, राधानाथ और गौरीनाथ की भाँति सीतानायक रामचन्द्र से ही है।

२—पद्य ५-६ में प्रत्येक पद, अपने भिन्न भिन्न अर्थों द्वारा राधिका-कृष्ण तथा जानकी और जानकी नायक के चरणों का ही बोधक है, अतः यह भी प्रकृत श्लेष है।

सीताराम बन्दना (श्लेष)

सवैया—न लहै घन कुंतल कांति सो नील बिराजत बीर बिशाल शुभायक।
शुभ सोहैं भुजा वर अंगद आदि कहाँ लौं कहौं छबि जे हरि पायक ॥
रिच्छराज सों आनन वोप कला सुगिरीव सलक्षन है सुखदायक।
पद बंदिए जानकी जी के सदाँ अरु सैन समेतहि जानकीनायक ॥६॥

टीका—जानकीपक्षे। न लहै घन पद०—नहीं पावते हैं घन मेघ कुंतल बार के कान्ति स्यामता कों, अरु बिराजत पद० बीर कान में सोहै है, शुभ सोहैं० सुंदर सोहत भुजा में। अंगद कहै बिजायट और पाय में जे हरि, रिच्छ राज पद० रिच्छ नक्षत्र ताके राजा चन्द्रमा ऐसो मुख और सुन्दर ग्रीव सहित लक्षन के सर्वांग इति ॥

जानकीनाथपक्षे.। नल है पद० नल कुंतल नीलादिक बौंदर बड़े बीर बिराजत अथवा नहीं पावते हैं घन सजल मेघ अरु कुंतल केश कान्ति शोभा-स्यामता जाकी इति राम को विशेषण। शुभ सोहै पद० सोहत है अंगद और हनुमान जे पायक दूतपन कियो है। रिच्छराज पद० रिच्छराज जाम्बवान और सुग्रीव सहित लच्छिमन के शोभित हैं रामचंद्र। इति ॥६॥

गौरीशंकर बन्दना (श्लेष)

सवैया—केसकै[1] आभा बखानि महादुति पन्नग की परकाश शुभायक।
राजै बिभूति बिभूषन अंग अभूत प्रभा कहि जातन लायक ॥
भालहै लोचन आनन वोप[2] कलाधर की सुषमा बरदायक।
'गोकुल' तो भजु पारबती पद औ पद पारबतीकर नायक ॥७॥

टीका—गौरीपक्षे केस कै पद०—केस कहै बार तिन की आभा पन्नग की दुति कों प्रकाशत है। राजै बिभूति पद० बिभूति कहै ऐश्वर्य जितने हैं तिनके भूषन अंग में राजत हैं। 'भूतिर्विभूतिरैश्वर्य्यमणिमादिकमष्टधा' इत्यमरः। अष्टधेति यदुक्तं तदाह—

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टभूतयः ॥ इति।

जातन० जाके तन लायक है अभूत प्रभा अर्थात् अनुपम प्रभा जाकी उपमा नहीं, भा लहै पद० भा कहै शोभा को लहै है लोचन, आनन चन्द्रमा की सुषमा वर स्वच्छता देवे लायक। शंकर पक्षे—के सकै पद०—के बखानि सकै आभा शोभा महादुति बड़ी शोभा, पन्नग को अर्थात् पन्नग के फणों में

1—यह भी प्रकृत श्लेष है। 2—वोप (ओप) = चमक।

मणि विराजै है तासों प्रकाश के आधिक्य, तासें शोभा नहीं कह्यो जाय है, राजैं बिभूति कहै भस्म ताही को भूषन, भाल है पद०—भाल कहै माथे में लोचन है तीसरो और चन्द्रमा को धारे हैं । इति ॥७॥

दोहा—देश नगर बन बाग सर, सरिता सृष्टि सरूप ।
नृप कुल ग्रंथ अरंभ में, है कवि नेम अनूप ॥८॥

देश-बरनन

दो०—असन बसन बन बाग गढ़, सरिता गुन गन वेश ।
धनी बैद बिद्याबिशद, भाषा भूषन वेश ॥९॥
जाहिर जग बिद्या बिबिध, चारिउ बरन उदार ।
नगर नाम बलिरामपुर, रजधानी जनवार ॥१०॥
राजै बाग तड़ाग बहु, कलित कला चहुँवोर ।
सजल कमल सों कलित कुल, सुमन सुगंध झँकोर ॥११॥
गुंजत मंजु मलिंद गन, कल कोकिलके बैन ।
समै सुहावन शुभ सदै, मनो मनोभव ऐन[1] ॥१२॥

जथा दंडक—बाग बन बावली तड़ाग बहु आस पास,
गंग अमरावती जो रापती बखान है ।
चौहट बजार चारु चारिउ बरन राजै,
बिद्या बहु भाँति जहाँ बेद को बिधान है ॥
द्वार द्वार देबालय कला कलधौतन की,
जोगी जती गुनीजन कोबिद महान है ।
राजै महाराज दिग्विजैसिंह राजधानी,
नाम बलिरामपुर काशी के समान है ॥१३॥

बन-बरनन

दोहा—केहरिनी केहरि करी, हरिनी बहु बन जीव ।
तरुवल्लीतर तापसी, तन तप तापस सीव ॥१४॥
जथा श्लेष में ॥

सवैया—के[2] सकै पन्नग आभा बखानि बिराजित भालु बिशाल अहै ।
स्वच्छ कुरंग है अक्ष कला करिहाँऊ जो केहरि कांति लहै ॥
पुंज प्रभा तरुनीके सबै परकाशत जोबन मंजु रहै ।
'गोकुल' कानन को अवलोकि किते कबि कामिनि रूप कहै ॥१५॥

१—ऐन = (अयन) निवास ।

२—श्लेष, उपमा, भ्रांति और रूपक (व्यस्त) का परस्पर अङ्गाङ्गीभावेन सांकर्य है ।

टीका—वनपक्षे—के सकै पद० के बरनि सकै, पन्नग जो सर्प 'पन्नग-औषधीभेदे पन्नगे पवनाशने' इति मेदिनी। और भालू है, कुरंग कहै मृगा है, करि हाथी, हौंऊ कहै भेड़िया, केहरि कहै सिंह, तरु कहै वृक्ष, जो बन कहै बन सुंदर है। 'वनं नपुंसके नीरे निवासालयकानने' इति मेदिनी। नायिकापक्षे—केस कै पद० केस कहै बार पन्नग की आभा ऐसी है, इहाँ वाचकलुप्ता, भाल कहै माथ, शोभामान, 'शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविरि'त्यमरः, अक्ष कहै नेत्र कुरंग के नेत्र के सदृश हैं। इस पद में वाचकोपमानलुप्ता लङ्कार होवै है। इहाँ कुरंग के नेत्र के सदृश सो नेत्र शब्द उपमान को लोप भयो है। और अक्षि नेत्र उपमेय, कुरंग नेत्र उपमान, इव वाचक, स्वच्छता धर्म, तामें नेत्र उपमान अरु इव वाचक नहीं यातें वाचकोपमानलुप्ता, श्लेष को अङ्ग है। करिहौंऊ पद० करिहौंउ कहै कटि, केहरि कहै सिंह की कटि के सदृश कान्ति शोभा लहै है, इहाँ भी उसी भाँति वाचकोपमानलुप्ता होवै है। पुंज प्रभा तरुनी के पद० पुंज कहै समूह, प्रभा प्रकाश होवै है। जोबन युवा अवस्था मंजु रमणीय रहिकै अर्थात् मदन के प्रादुर्भाव से नायिका की कान्ति कामिजन मनोहर होवै है, तरुनी कहै नायिका की है। यद्यपि इस पद में शोभा पद नहीं है तथापि धात्वर्थ शक्ति सों शोभार्थ को लाभ होय है। 'भा दीप्तौ' इति धातुः। कवि की उक्ति—ऐसे बन को देखि कोई कवि कामिनी नायिका के रूप को कहै है। इति ॥ १५ ॥

बाग—बरनन

दोहा—बलित बिटप बल्ली बिपुल, पुंज प्रसून प्रकाश।
भँवर भीर सौरभ सुभग, खग पिक बोल बिलास ॥१६॥

कवित्त

दंडक—रजत[1] रसाल मौर स्वच्छ मौलसिरी सोहै,
सुंदर सिंगार हार सोभा को बिलास है।
जात न बखानि कला कुंदन की कांति पुंज,
सुमन प्रकास पेखे होत अनुराग है।
रंभा आदि तरुनीकी बरनै बड़ाई कौन,
बोल कोकिला को अलि सेवै भरे भाग है।
'गोकुल' कबित्त कीन्हों ब्रज बनिता को रूप,
कबिता कहत कोऊ राजै भूप बाग है ॥ १७ ॥

1—यह भी श्लेष आदि का संकर है।

टीका—नायिकापक्षे। राजत रसाल पद०—[राजत] कहै सोहत साफ अर्थात् धोय कै तैलादिक लेपन कियो है, तासों अति स्वच्छ और चीकने बार ताको "रसाला रसनादूर्वाविदारीमार्जितासु च। रसालं सिह्लके चोले रसालश्चेक्षुचूतयोः" ॥ इति मेदिनी। मौर नाम जूरा, मौल कहै माथ में ताकी सिरी कहै सोभा सों सोहै अर्थात् बार की जूरा देखने सें जैसे घटा देखि मयूर मोहै है वाही भाँति रसिक जन को मोहि जाय है। सिंगार सोरहौं हार आदि आभूषनों सें सुंदर उत्तम शोभा कांति को बिलास है। जातन बखानि पद० [जातन] कहै जाके तन में बखान के योग्य अथवा जात कहै उत्पन्न नव खानि नवीन खानि सों कुंदन सोना, ताकी कला कहै आभूषन की रचना, ताकी कान्ति पुंज है, जाके कुंदन सोना की कांति है। जाके पेखे अर्थात् देखने ही से सुमन कहै सुन्दर मन प्रफुल्लित होत और अनुराग [होत है]। रंभा आदि पद० जाके आगे रंभा आदि अप्सरा और तरुनी की कौन बड़ाई है। बृज बनितान के ढिग जिनके बोल कोकिला से हैं और अलि कहैं सखी लोग सेइ रही हैं। इति ॥

बागपक्षे राजत पद०—रसाल कहै आम, मौर कहै बौर जुत मौलसिरी और सिंगार हार कुंदन आदि सुमन प्रकास है। रंभा तरुनी पद० रंभा कहै कदली और बृक्ष, जिन पै सहित कोकिला के भौंर बोलि रहे हैं ॥ १७ ॥

अथ ताल बरनन

दो०—कलित कमल कुल कोक जल, परिपूरन सब काल।
मंजुल बिहरत जीव जल, मीन मनोहर ताल ॥१८॥

(श्लेष)

सवैया–सुंदर[1] जोबन बेश बिलासत सारस स्वच्छ प्रकास लहै।
लोयन मीन प्रभा झलकै लखि जात न पानिप मैं उमहै॥
कोक कला के बिहार हैं मंजुल जा परसै तन ताप दहै।
'गोकुल' ताल बिलोकि किलै कबि बालको रूप बखानि कहै ॥१९॥

टीका—तालपक्षे। सुंदर जोबन पद०—सुंदर जोबन कहै जल, सारस कहै कमल जुत प्रकासित है 'सारसं सरसीरुहम्' इत्यमरः। लोयन पद० कहै शोभा मीन कहै मछरी की प्रभा जल में झलकै है। कोक कला पद० [कोक] कहै चकई-चकवा बिचरत हैं। जाके परसे तन ताप मिटि जावै है।

नायिकापक्षे—सुंदर जोबन कहै तरुनाई को बिलास, सारस कहै सहित

१—श्लेष और रूपक का अङ्गाङ्गिभाव है।

रस के लोयन मीन पद० लोयन कहै नेत्र, मीन कैसी सोभा दरसावै है, जा तन कहै जाके तन में पानिप कहै आभा झलकै है। कोककला० कोक कहै कोकशास्त्र की रीति, रति प्रसंग में जिनके परस किए तें काम के ताप मिटि जाय है ॥ १८ ॥

सरिता बरनन

दो०—कमल कलित जलचर ललित, पशु पक्षिन की भीर।
पावन तट तापस बसै, जहँ परि पूरन नीर ॥२०॥

जथा कबित्त

दंडक—सुषमा सेवार भले भावत भँवर ऐसे,
भाल है बिसाल मीन अच्छ उमहत[1] है।
शोभित परम मंजु जोबन तरंग स्वच्छ,
बड़े मुख सो मगर सोभा को लहत है।
नीक है निकर नाक कछु आनै छबि छावै,
पानि पाय कमल प्रकास ते रहत है।
'गोकुल' कबित्त किए सरिता स्वरूप राजै,
बनिता बिराजै कोऊ कबिता कहत है ॥२१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे मंगलाचरण-देशनगरादिवर्णनं नाम
प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

टीका—सरितापक्षे। सुषमा पद०—सुषमा कहै परम शोभा सेवार। भँवर कहै जहाँ जल घूमै है। 'सुषमा परमा शोभा' इत्यमरः। मीन मछरी जो बन कहै जल। मगर कहै घरियार। नाक कछुआ प्रकाश करत है। नायिका पक्षे। सुषमा पद०—सुषमा कहै शोभा सें बार भले लागत हैं भँवर ऐसे। भा लहै भा कहै आभा को लहत। अक्ष कहै नेत्र मीन के शोभित परम जोबन तरुनाई। मुख सोम पद० मुख कहै सोम चन्द्रमा ऐसे, गर कहै ग्रीव छवि को लहत है। नीक है नाक पद० नीक है अच्छे हैं, नाक कछु औरई छवि छावै है। पानि पाय कमल पद० पानि कहै हाथ पाय कहै पद कमल कैसी सोभा प्रकाशत हैं ॥ २१ ॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां मंगलाचरण—नगरादिवर्णनं
नाम प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

१—उमहना = उमंग में आना।

द्वितीयः प्रकाशः

सोरठा—जल थल पवन अकाश, अगिनि अंबु कछु नहिं रहो।
महदो[1] रहो अकाश, महाशून्य प्रथमहि रहो ॥१॥

दोहा—महाशून्य तें प्रगट है, मारुत बेग ललाम।
मारुत सों तब अगिनि भो, अगिनि सों जल परिनाम ॥२॥
महा ज्वाल प्रजुलित भई, जल लागो खौलान।
फेन बुदबुदा प्रगट है, बायु के संग उड़ान ॥३॥
उड़े बुदबुदा पौन सों, तासों भयौ अकास।
रहो फेन जल पर जम्यौ, पृथिवी ताको भास ॥४॥
व्यौम बायु मिलि कै प्रगट, शब्द भयो ततकाल।
श्रुति बेद वह बैन है, बिधि मुख प्रकट बिशाल ॥५॥
पाँच तत्त्व गुन तीनि अस, प्रकृति प्रगट पचीस।
जो अकाश प्रथमहि भयो, तासों कहै मुनीस ॥६॥
पाँच तत्त्व सूक्षम मनहिं, सात्विक अंस उदार।
तातें अंतहकरन भो, मन बुधि चित अहंकार ॥७॥
ताके सात्विक अंस तें, अन्तरिक्ष भो सोय।
श्रोत्रेंद्री तासों भई, कहि भविष्य मत जोय ॥८॥
बायू सात्विक अंस सों, वाक इंद्रि भै स्वच्छ।
अगिनि के सात्विक अंस सों, चछु इंद्री परतच्छ ॥९॥
जल के सात्विक अंस सों, रसइंद्री सुखदाइ।
षटरस के जो स्वाद हैं, भेद भिन्न जेहि पाइ ॥१०॥
पृथी तत्त्व सों हाड़, पल, रुधिर, त्वचा करि पौन।
अगिनि तत्त्व चैतन्यता, जलसों बीजेंहि ठौन ॥११॥
तत्त्व अकाश सों चार भो, मुनि जन कहत बखानि।
देह बिषै सब तत्त्व सों, गुन परकृत पहिचानि ॥१२॥
अन्तरिक्ष में तेहि समै, प्रगट पुरुष यक आनि।
सोइ गयौ वह तुरतहीं, लाख बरष परमानि ॥१३॥

१—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी'''(तैत्ति० उ०)।

लक्ष वर्ष बीते जबै, शब्द भयो ॐकार।
श्रवन द्वार होने लग्यो, उठि चैतन्य बिचार ॥१४॥
को हम को हम कहँ बस्यौ, कौने देहँ करतार।
सोऽहं भो तब शब्द यक, निकस्यौ नासा द्वार ॥१५॥

श्लोक—सकारेण बहिर्याति हकारेण पुनर्विशन्।
हंसो हंसेतिमात्रेण जीवो जपति सर्वदा ॥१॥[1]

दो०—भीतर जात सकार कहि, बाहेर निकरि हकार।
नाक द्वार होने लग्यो, द्वै अक्षर उच्चार ॥१६॥
तहँ द्वै अक्षर को श्रवन, कीन्हे पुरुष महान।
भयो उजेर प्रकाश मन, ज्ञान समर्थ सुजान ॥१७॥
अयुत बर्ष यहि भाँति सों, शब्द सुने श्रुतिस्वच्छ।
जोग भई ईस्वर भयौ, बुधि सर्वज्ञ प्रतच्छ ॥१८॥

श्रुतिः—एकोऽहं बहु स्याम इच्छावृत्तिचतुष्टयम्[2]।

दो०—एको हौं बहु हौउं मैं, इच्छा वृत्ति सो चारि।
हँस्यौ पुरुष मुख लार बह, प्रगट्यौ पुरुष उदार ॥१९॥
बाहु मलन लाग्यो पुरुष, दूजे पुरुष उदार।
उरू मलत यक और भो, चरन से चारि उचार ॥२०॥
मुख सो द्विज छत्री भुजन, उरसों बैस प्रतच्छ।
शूद्र होत भो चरन सों, चारि बरन रचिस्वच्छ ॥२१॥
चाम्यो सों पूरुष कह्यौ, सृष्टि करौ दरसाइ।
प्रति उत्तर दीन्हे सबै, हम पै क्यों रचि जाइ ॥२२॥
पुरुष क्रोधकरि चितै तब, भए भस्म ततकाल।
महा सोच पूरुष हिये, प्रेम सों भयो बेहाल ॥२३॥
सोच कियो सत बर्ष लगि, बहे लार मुख स्वच्छ।
महा सुन्दरी लार सों, भई एक परतच्छ ॥२४॥

१—जीवमात्र का प्रत्येक स्वास 'स' उच्चारण से बाहर निकलता है और 'ह' उच्चारण से भीतर जाता है, अतः प्राणी हर समय 'सोऽहं सोऽहं' (अर्थात् सः = वह परमात्मा ही, अहं = मैं जीव हूँ, यह) जपता रहता है।

२—'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' यह श्रुति वाक्य है। इसमें-एकत्व, अहंत्व, बहुत्व और होना रूप क्रिया, ये चार इच्छा के व्यापार हैं।

श्लोक—कंठे[1] सुलग्ना पुरुषस्य तत्र
पितुर्मुखे सा कुरुते प्रवेशम्।
उवाच वाक्यं च पितः पितेति
ज्वाला हृदि प्रादुरभून्महीयसी ॥ २ ॥

चौ०—पुरुष देखि कन्या कौं जबै। उपजो प्रेम हिये में तबै॥
लिये उठाइ कंठ मैं लायो। मुख फैलाइ वदर[2]महँ नायो॥२५॥

दो०—पिता पिता करने लगी, कन्या उदर मझार।
महाज्वाल प्रज्वलित भई, पूरुष हिये मँझार॥२६॥
करि डारो रद[3] पुरुष ने, कन्या अँग से स्वच्छ।
चतुरभुजी बालक भयो, बिस्नु रूप परतच्छ॥२७॥
वह बालक रोने लग्यौ, नैन से आँसू धार।
येक बाल औरौ भयो, गौर बरन निरधार॥२८॥
दूनों बालक तेजमय, छन में भये कुमार।
प्रथम बाल के नाभिसों, कमल सनाल निकार॥२९॥
सो सनाल जो कमल है, बारि प्रवाह अथाह।
ता पंकजपैं होत भे, ब्रह्मा जग के नाह॥३०॥
कँह तें आयौ कौन हौं, कौन किए करतार।
बहुत काल सोंचन कर्यौ, सो यो ब्रह्म उदार॥३१॥
सोवत में बिधि उदर में, पुरुष बिराट प्रतक्ष।
देखरायौ तब तुरत ही, अपनो रूप अलक्ष॥३२॥

श्लोक—स[4] एव जातश्च विराट् सुपूरुषः,
कायाभिवृच्छोद (द्धोद्धं?)-हितः समन्तात्।

१—अर्थ—तब पुरुष ने उस सुन्दरी कन्या को गले लगाया किन्तु वह हे पिता! हे पिता! कहती हुई (अपने जनक के) मुख में प्रवेश कर गयी। तदनन्तर उस पुरुष के हृदय में अत्यन्त प्रबल ज्वाला सी धधकने लगी अर्थात् महती जलन होने लगी।

२—वदर = उदर, ३—रद = कै (वमन)

४—उस विराट् पुरुष का शरीर चारों ओर से बढ़ने लगा, नभ (स्वर्लोक) उसके शिर, भुव (अन्तरिक्ष लोक) उसके पैर और पर्वत आदि (भूलोक) उसकी संघाए हुई, ये ही तीन लोक कहे जाते हैं।

नभश्च शीर्षाणि भुवश्च पादः,
गिरयोऽस्य (स्थि?) जंघाश्च त्रिलोकसंज्ञाः ॥१॥

दंडक—सीस है अकास जाके पद से पताल तल,
अस्थि से प्रसस्त गिरि रोम वृक्ष जाके हैं।
मन से नखत चंद्र नैन से है मारतंड,
बायु है श्रवन से जगत सब ताके हैं।
जग के प्रपंच जेते सचर अचर स्वच्छ,
'गोकुल' प्रतच्छ ब्रह्मांड अंग वाके हैं।
अलख निरंजन निरामय निरीह प्रभु,
पाँच तत्त्व सृष्टि भये सुख संपदा के हैं ॥३३॥

सोरठा—एक भयो ब्रह्मांड, पाँच तत्त्व के विषय सों।
दूसर जो ब्रह्मांड, काया करे बिराट के ॥३४॥

दोहा—आदि शक्ति कन्या हुती, तासों आज्ञा दीन।
कह बिराट तब पुरुष ने, कीजै सृष्टि नवीन ॥३५॥
तब देवी इच्छा करयौ, दूत प्रगट यक कीन।
त्रै बालक जल मध्य में, लै आयौ परबीन ॥३६॥
जल महँ हेरे दूत बहु, बाल लेष नहि स्वच्छ।
फिरि देवी के पास कहि, मिल्यौ न बाल प्रतच्छ ॥३७॥
तब देवी द्रिग दूत के, दीन्हे लार लगाय।
देख्यौ जल के मध्य में, त्रैबालक बिलगाइ ॥३८॥
सैन कमल पर येक को, येक मंडलाकार।
द्वै बालक तामैं हुते, बोलो दूत उदार ॥३९॥
दूत जगायौ बालकन्ह, नहिं जागे कौ बाल।
दूत क्रोध जुत बैन कहि, बोलो बचन कराल ॥४०॥
यक को चरन प्रहार करि, दीन्हे तुरत सराप।
बिधि अपूज्य जग होउ तुम, जैसे कीन्हो पाप ॥४१॥
रुद्र जगायौ दूत फिरि, नहि जाग्यौ परतच्छ।
दूत चरन मारन चल्यौ, शिव लरिबे कहँ दच्छ ॥४२॥
दूत क्रोध करि श्राप दिय, लिंग भंग जग होइ।
बिष्नु हृदै महँ लात हति, त्राहि त्राहि कहि सोइ ॥४३॥

या बिधि तीनों बाल को, दूत जगायौ जाइ ।
तब ब्रह्मा रोने लगे, कौन कहाँ हम आइ ॥४४॥
नभ बानी तब होत भइ, तप कीजै उत जोग ।
ऊर्द्ध दृष्टि तब बिधि भयो, बहुत काल करि जोग ॥४५॥
हिय अंतर परकाश भै, हरिहर जल लखि स्वच्छ ।
ब्रह्म लगायौ अंक में, तासों भै परतच्छ ॥४६॥
ब्रह्मा के अंग मैल से, दश बालक उतपत्य ।
बिधि उनसे भाषे तबै, कीजै सृष्टि जो सत्य ॥४७॥
दश बालक बोले तबै, हम बिराग मय ज्ञान ।
सृष्टि मानसी नहिं चली, तब बिराट अनुमान ॥४८॥
आज्ञा देबी को दई, कीजै सृष्टि उदार ।
बिधि हरि हर के पास को, तब चलि गई निहार ॥४९॥

श्लोक—विश्वेश्वरी[1] विश्वकलाऽऽदिपूरुषं,
कामातुरं तत्र समागता च ।
समाश्रयात्तस्य पुरश्च शब्दं
रतिं वरं देहि ममाभिकामा ॥ ४ ॥

दो०—पुरुष सो देबी के हिये, प्रगट कीन बहु काम ।
बिधि हरि हर सों यह कह्यौ, कीजै रति अभिराम ॥५०॥
यह सुनि तीन्यो देव, कीन्हे सोच अपार ।
तुम माता तुम ही पिता, तुम जग सिरजन हार ॥५१॥
हम तीन्यो तव पुत्र हैं, जननी तुम मम सोइ ।
उचित नहीं तुमको वरे, धर्म पराजय होइ ॥५२॥
अति प्रसन्न ह्वै देखि तब, कीन्हे जब हुंकार ।
महा अग्नि प्रगटी तबै, तासों ज्वाल अपार ॥५३॥
येक ज्वाल सों सींगि मुख, पूँछि पृष्ठ तब कीन ।
दूजे सों छाती करयो, प्रगट ज्वाल तब तीन ॥५४॥
श्रवन, रोम, खुर, आदि, करि गऊ भई तैयार ।
अस्तन सों तब पय चलयौ, पीलियो बिस्नु उदार ॥५५॥

१—संसार की स्वामिनी और संसार को रचनेवाली उस देवी को देखकर आदिपुरुष कामातुर होगये और उन्हें इस अवस्थामें पाकर देवीने कहा तुम मेरे साथ यथेच्छ रमण करो ।

गायत्री रूपी गऊ, बिस्नु दोह किय पान।
जो अनादि मय बेद हैं, टिको छिदें अस्थान ॥५६॥
फिरि निकसो पय उदर तें, तासों अंडा सात।
सप्तव्याहृती होत भो, बढ़ी छनहिं छन जात ॥५७॥
सात कियो आकाश में, सात कियो पाताल।
सातौं अंडा सों रच्यो, चौदह लोक बिशाल ॥५८॥
भू जु भुवर् सुर् जन महर्, तप सत लोक प्रतच्छ।
अतल बितल सुतलै कियो, और महातल स्वच्छ ॥५९॥
कियो तलातल रसातल, औरौ कियौ पताल।
अंडा सों चौदह भुवन, प्रगट भयो ततकाल ॥६०॥
फिरि देबी सुरभी भली, कियो अंगतें ढारि।
काली लछिमी सरस्वती, सुंदर रूप सँवारि ॥६१॥
ब्रह्मा बिस्नु महेश को, दीन्ही तुरत हँकारि।
काम दाह देबी हिये, तुरत गये तब हारि ॥६२॥
फिरि सुरभी सों प्रगट भये, गोलाकार हुताश।
महाज्वाल सों छिति तबै, कंपन लगी निराश ॥६३॥
बहै अगिनि सों प्रगट भै, तुरंग बेग बलवान।
पौन रूप यक रथ भयौ, शोभा सुभग बखान ॥६४॥
गोलाकार जो बह्नि है, सो रथ पर असवार।
भ्रमत कुलाले चक्र सम, अंडकटाह अपार ॥६५॥
नव टुकड़े पृथिवी भई, तासों भो नव खंड।
बीच खंडछिति जो रहा, सप्तदीप कहि चंड ॥६६॥
यह बिराट अनुसासनै, सृष्टि मानसी स्वच्छ।
सृष्टि मैथुनी अब कहौं, सुनि लीनै [जै] परतच्छ ॥६७॥
देखि मानसी सृष्टि कों, बिधि हरि हरहिं बिचार।
बिना मैथुनी सृष्टि के, है है नहिं संसार ॥६८॥
बिधि गायत्री देखि कों, कीन्हे हिय में ध्यान।
श्रुति प्रतक्ष है यह कहेउ, कीजै जज्ञ महान ॥६९॥
बह्नि जो गोलाकार सों, काम धेनु परतच्छ।
बिधि हरि हर के पास चलि, बोली बचनहिं स्वच्छ ॥७०॥
सोरठा—जो कछु इच्छा होइ, बिधि हरि हर सों यह कह्यौ।
जज्ञ सामग्र सोइ, सुनत बैन सब प्रगट कियौ ॥७१॥

दोहा—बेद उक्ति ब्रह्मा तबै, जज्ञ कीन्ह अभिराम।
बह्नि सिखा मारुतहि सों, दामिनि भई ललाम ।।७२।।
चमकन लागी दामिनी, बायू भ्रमन बिलास।
अगिनि धूम सें मेघ भै, पुंस न पुंस अकास ।।७३।।
जल लागे बरषन तबै, गर्बं छमा उर आइ।
ताहि स्वास पाला, उपल, त्रिन, बन, औषध गाइ ।।७४।।
पान, फूल, फल, अन्न, धन, पृथी, कीन उतपत्य।
जज्ञ मध्य बिधि के मुखन, बेद अनादि जो सत्य ।।७५।।
परतीची मुख सों भयो, बेद अथर्बन स्वच्छ।
प्राची मुख सों जजुर भो, दक्षिन साम प्रतच्छ ।।७६।।
ऊदीची रिग आमनये[1], बिधि मुख प्रगटे चारि।
जज्ञ पुरुष तब प्रगट भो, पूरन जज्ञ निहारि ।।७७।।
त्रै अंडा कर में लिए, बिधि हरि हर कहँ दीन।
पालन पोषन संहरन, ह्वै है तब गुन तीन ।।७८।।
जज्ञ पुरुष यक बेलि दल, दीन्हे पियो सुजान।
यह कहि कै त्रै देव सों, ह्वै गो अन्तरध्यान ।।७९।।
बिधि हरि हर तब बेलि को, लिय निचोय करि पान।
तीनि लोक चौदह भुवन, सात दीप अँखियान ।।८०।।
जग रचना सर्बज्ञता, ज्ञान सिरोमनि स्वच्छ।
बिधि हरि हर अनरूप किय, अंडा उदर अदच्छ ।।८१।।
चौरासी लक्ष जोनि जो, उदर हमारे होइ।
दिब्य दृष्टि सों जानि लिय, त्रै अण्डा गुन सोइ ।।८२।।
यह बिचार करते रहे, चेष्टा भयो मनोज।
कुंड भस्म अवरन कियो, अन्तर परदा बोज ।।८३।।
तुल्य भीति[2] के देखि कै, बिधि हरि हर सुख पाय।
अपने अपने नारि सों, रति प्रसंग किय जाय ।।८४।।
जज्ञ कुंड की भस्म जो, उड़ी पवन संग स्वच्छ।
सिमिटि सिमिटि परबत भये, छिति आछादन दच्छ ।।८५।।
काली लक्ष्मी सरस्वती, गर्भ भये ततकाल।
तब ताके उतपत्य भै, महासुभग त्रैबाल ।।८६।।

---

१ आम्नाय = वेद। २ भीति = भित्ति, दीवार।

छन में भये कुमार तब, गगन गिरा तेहि काल।
लछ चौरासी जोनि है, बालक उदर बिशाल ॥८७॥
करो मथनं इन को उदर, सुनि त्रै देव ललाम।
इच्छा कीन्ही मथन को, बाल समर कहँ बाम ॥८८॥

श्लोक—रुद्रं[1] करे स्पृश्य महाकरालं
मिमन्थिषन्ती मलिनं तु पूरुषम् ।
दीर्घः कुमारः शिथिलांगरुद्रो
विष्णुं बभाषे चित्तवृत्तिरोधः ।
परोक्षविष्णुः समरे प्रतीतः
क्षमः क्षमः पुत्र पिता तवायम् ॥

दोहा—येक कुमार कोप करि, मथन को कियो बिचार।
क्रुद्ध जुद्ध होने लगेउ, रुद्र पराक्रम हार ॥८९॥
चित रोधन करि रुद्र तब, बिस्नु को कियो पुकार।
कमलापति आयौ तहाँ, बोल्यो बैन उदार ॥९०॥

चौ०—पुत्र तुम्हार पिता ये नीके। इन सों लरे काम सब फीके।
पुत्र पिता सन बैर बराई। हानि होय जग माहँ हँसाई ॥९१॥
यह सुनि किय कुमार रिसि भारी। रमानाथ कहँ मुष्टि प्रहारी।
लपटि गयौ कमलापति काया। करत जुद्ध जलनिधि महँ आया ॥९२॥
रुद्र बिस्नु के रहे कुमारा। तेऊ तहाँ गयौ बरिआरा।
तब बिराट देखो बल भारी। बिधि हरिहर के बल गयहारी ॥९३॥
दै निदेश देवी कहँ तबहीं। मथन करौ तन खलके अबहीं ॥९४॥

दो०—यह सुनि देवी क्रोध करि, नख तें ग्रीवाँ फारि।
बिस्नु कुमार के उदर ते, देव सपक्ष निकारि ॥९५॥
दुसरे अंस से बृहस्पति, तिसरे सों यह कीन।
गरुड हंस खग आदि दै, प्रगट कियौ परबीन ॥९६॥

---

1 महाकराल, मलिनपुरुष रुद्र को हाथ से छूकर मथन करने की इच्छा करने लगी। तब बड़े कुमार रुद्र थक गये और चित्तवृत्तिनिरोधपूर्वक विष्णु को पुकारे। विष्णु ने युद्ध में प्रकट होकर कहा। हे पुत्र! यह तुम्हारे पिता हैं इनसे युद्ध न करो।

बिधि कुमार को अँग मथ्यो, भयौ महाजन स्वच्छ।
महर लोक बासी भयो, निकसे देव प्रतच्छ ॥९७॥
जो सपक्ष सुर प्रथम भो, ताको आज्ञा दीन।
तुम सुरलोकहि जाय कै, पक्ष छुवाय प्रबीन ॥९८॥
पक्ष छुवाये देव अँग, ह्वैगो तन द्वै खंड।
इस्त्री जुत सब देव भे, गे सुरलोक अदंड ॥९९॥
मथन कियौ कटि को जबै, नाभी उदर गभीर।
कामधेनु उच्चैश्रवा, ऐरावत लै बीर ॥१००॥
कल्पबृक्ष बारुनि सुधा, प्रगटे ताके अंग।
सब अंगन के अंस सों, कूर्म सु येक अभंग ॥१०१॥
वाके अङ्ग बिस्तार बहु, जितने छिति बिस्तार।
जल के नीचे जाय कै, लियो छमा को भार ॥१०२॥

सोरठा—हर कुमार को सीस, मथन कियो जगदम्बिका।
निकसे कहैं मुनीस, फण सहस्र को सेस भो ॥१०३॥

दो०—जल अन्तर में बास किय, तहँ बिराट करि सैन।
फिरि ताको छाती मथ्यौ, हरि हर गन उतपैन ॥१०४॥
उदर शुक्र शनि पेंडु से, दैत्य हलाहल चारु।
कटि से सिंह पिसाच उर, पग से सर्प निकारु ॥१०५॥
कर सों बिसुकर्मा भयो, आँती सो सफरीन।
मांस अहारी रोम सों, रुधिर सों जलचर कीन ॥१०६॥
बिधि हरि हर रोदन कियो, आँसु गिरे जल माहँ।
जलमानुस तासों भये, या बिधि सृष्टि निबाहँ ॥१०७॥
जलचर थलचर गँगनचर, सुर नर नाग जितेक।
सृष्टि किये या बिधि प्रगट, रचना किये अनेक ॥१०८॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे सृष्टिक्रमवर्णनं नाम
द्वितीयः प्रकाशः ॥२॥

तृतीयः प्रकाशः

चौ०—तब त्रैदेव कियो अनुमाना। भिन्न भिन्न करि बरन बिधाना।
तब ब्रह्मा मरीच उपजाए। ताके कस्यप सुत सुभ भाए॥१॥

दो०—कस्यप के सुत होत भे, श्राद्धदेव[1] मनु स्वच्छ।
श्राद्धदेव के दस तनय, ज्ञानी भये प्रतच्छ॥२॥

चौ०—प्रथम भयो इक्ष्वाकु ललामा। नृग सरजाति दिष्ट अभिरामा।
धृष्ट करूषक पँचए जानो। कहि नरिष्य अरु पृषधर मानो॥३॥
नभग नाम कबि दश ए कहिए। नृग के वंश भए सो लहिए॥४॥

अथ नृग को वंश बरनन[2]

चौ०—नृग सुत सुमति नाम अस भयऊ। भूतज्योति ताहि सुत ठयऊ।
तासुत भे प्रतीक बलवाना। ताके बोधवान परमाना॥५॥

नरिष्यंत को वंश बरनन[3]

चित्रसेन ताके भो नीके। ताके ऋक्ष परमगुन ठीके।
ता सुत भो विद्वान उदारा। ताके कूर्च तनै बरियारा॥६॥
ताके इन्द्रसेन गुन आगर। ताके बीतिहोत्र भे नागर।
सत्यश्रवा ताके सुत भए। उरूश्रवा सो सुत उपजाए॥७॥
ताके देवदत्त गुन पावन। ताके अग्निवेश्य मन भावन।
तपबल सो भे ब्रह्म रिषीशा। दिष्ट को बंस नभग अवनीसा॥८॥
बैश्य भये करि बैश्य करम को। सुनो बंस बिस्तार परमको॥९॥

१—ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत।
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् स आत्मवान्॥
इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषकान्।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं, च कविं विदुः॥
(भागवत ९।१।१०-११)

२—देखिये भागवत ९।२।१७-१८। ३—वही ९।२।१९-२७।

अथ दिष्टि[1] को वंश बरनन

तासुत भये भलंदन नामा, बत्सप्रीति ताके गुन धामा।
ताके प्रांसु प्रांसुसुत परमिति, ता सुत भी खनित्र बैरीजिति ॥१०॥
ता सुत चाछुष नाम ललामा, ता सुत बीबिंसति गुनधामा।
ताके रम्भ नाम सुत भाए, ता सुत भे खनिनेत्र सुहाए ॥११॥
भए करंधम तनै उजागर, ताके बीच्छित भे सुत नागर।
ताके मरुत ताहि सुत दम कहि, दम के सुत राजा बर्धन लहि ॥१२॥
तासुत सुधृति ताहि के नर भे, नर के सुत केवल कहि वरभे।
ताके बंधुमान सुत सोहैं, ता सुत बेगवान कहि जोहैं ॥१३॥
बेगवान के बुध सुत ठाये, बुध के त्रिनबिंदू सुत भाए।
त्रिनबिंदू के सुत त्रै भायो। प्रथम बिशाल नाम उपजायो ॥१४॥
दूजे शून्यबंधु अस नामा। तीजे धूम्रकेतु अभिरामा।
भे बिशाल के हेमचन्द कहि। ता सुत भे धूम्राक्ष नाम लहि ॥१५॥
ताके सुत संजम हि उदारा। संजम के कृशाश्व सुबिचारा।
ताके सोमदत्त सुत पावन। ता सुत सुमति नाम मनभावन ॥१६॥
ताके जनमेजय सुत भाए। अवसर जाति बंस के ठाये।
प्रथम नाम उत्तानबरहि कहि। दूजे आनर्त भूरिषेण कहि ॥१७॥
आनर्त के रैवत सुत जानो। ताके ककुदम्भी पहिचानो ॥१८॥

नाभाग[2] को वंश बरनन

ताके भे नाभाग सुत पावन। अंबरीष ताके सुत आवन।
अंबरीष त्रै सुत उपजाए। नाम बिरूप प्रथम सुत भाए ॥१९॥
दूजे केतुमान अस नामा। तीजे संभु नाम अभिरामा।
भे बिरूप के पृषदस्व नामा। भए रथीतर सुत अभिरामा ॥२०॥

इच्छाकु[3] को बंश

श्राद्धदेव तिय रवितप कीन्हे। सूर्यपुत्र इच्छाकुहि दीन्हे।
तब ते सूर्यवंश कहवाए। तीनि तनै इच्छाकुहि जाए ॥२१॥
दंडक, निमि, त्रिकुच्छि अस नामा। सुनहु बिकुच्छि वंशअभिरामा।
भेबिकुच्छि के त्रैसुत नागर। पुरंजयो काकुत्स्थ उजागर ॥२२॥
तीजे इंद्रबाह अस नामा। भए अनेना गुन अभिरामा।
ताके पृथु नामा सुत सोहै। ताके बिश्वबंधु मनमोहै ॥२३॥

१—देखिये भागवत ९।२।२३-३६।

२—वही ९।४।१,६ अ० १. २. ३.   ३—वही स्कं० ९ अ० ६

ताके चन्द्र चन्द्र सम जानो। जुवनाश्वो ताके परिमानो।
ताके सुत सावस्त सुहावन। ताके बृहदश्वो सुत पावन ॥२४॥
ताके कुवलयाश्व कहि भावन। नाम सुनौ तिनके सुत पावन ॥२५॥
दो०—भे द्रिढाश्व कपिलाश्व सुत, तीजे भे भद्रास।
हरजसु भे भद्रासु के, ताहि निकुंभ प्रकास ॥२६॥
बरहणाश्व ताके भये, भे कृशाश्व सुत स्वच्छ।
भये सेनजित ताहि के, जौवनाश्व परतच्छ ॥२७॥
मान्धाता ताके भए, ता सुत तीनि उदार।
अम्बरीष पुरुकुत्स भे, कहि मुचकुंद पियार ॥२८॥
अम्बरीष[1] के होत भे, जौवनाश्व सुत सोइ।
ता सुत भे हारीत नृप, परम प्रतापी जोइ ॥२९॥
चौ०—भे अनरण्य ताहि सुत नीके। ता सुत भे हरजस्व बलीके।
ताके अरुन तनै बल भारी। तासु त्रिबंधन भे गुनकारी ॥३०॥
ताके भे तिरशुंक महीपा। भे हरिचंद परम अवनीपा।
ताके रोहितासु हारित कहि। हारित चंपक तनै परम लहि ॥३१॥
चंपक के सुदेव सुत जानो। ताके बिजय भरुक परमानो।
भरुक तनै को बक है नामा। ता सुत बाहुक छबि गुनधामा ॥३२॥
ताके सगर खार जेहि सागर। ताके असमंजस गुन आगर।
ताके भे दिलीप नृप नीके। भए भगीरथ ता सुत ठीके ॥३३॥
ताके श्रुतिसिंधू सुत नागर। ताके दीपनाग बुधि आगर।
ताके अभय ताय सुत भाये। कहौं भागवत को मत लाए ॥३४॥
प्रज्झटिका—रितुपर्ण भये ताके सुत दास। सौदास ताहि असमक प्रकास।
भे नारिकवच दशरथ सुवेश। तेहि ऐडबिडो बिश्वोह वेश ॥३५॥
खट्वांग भए सुत दीर्घबाह। रघु भए तासु सुत जगतनाह।
भे रघुके अज अजके दसरथ्थ। भे चारि तनै तिनके समरथ्थ ॥३६॥
भे रामचन्द्र दूजे भरथ्थ। लछिमनै शत्रुहन भे समरथ्थ।
सुत लछिमन अंगद चित्रकेत। शत्रुहन तनै सुबाहु नेत ॥३७॥
श्रुतसेन नाम दूजे ललाम। अब बंस कहौं कुसके सुनाम ॥३८॥

कुश[2] के वंश को बरनन

दंडक—कुश के अतिथि ताके निषध भे ताके नभा,
ताके पुंडरीक ताके क्षेमधन्वा जानिए।

१—देखिये भागवत ९ म स्कन्ध अध्याय ७ से ११ तक।
२—वही ९म स्कंध १२ अ०।

ताके देवानीक ताके अनीह सुत स्वच्छ,
ताके पारियात्र भे बलस्थल प्रमानिए।
ताके बज्रनाभ ताके स्वगण विधिृतिपुत्र,
ताहि के हिरण्यनाभ ताके पुष्य मानिए।
ताके ध्रुवसंधि भे सुदर्शन के अग्निबर्ण,
ताके शीघ्र मरु ताके प्रसुश्रुत ठानिए ॥३९॥
ताके संधि ताहि के अमर्षण के सहस्वान,
ताके बिश्वासाह ता प्रसेनजित जानिए।
ताके तक्ष ताहि बृहद्वसु पुत्र ताहि,
बिरहद्गुन ताके अरु क्रिया मानिये।
ताके बत्सवृद्ध वाके प्रतिव्योम ताके भानु,
ताके भे दिवाकर ताके सहदेव आनिये।
ताके बृहदश्व ताके भानुमान प्रतीकाश्व,
ताके परतीक मेरु देव अनुमानिए ॥४०॥
ताके सुनछत्र ताके पुष्यकल अन्तरिक्ष,
ताके सुतपा है ता अमित्रजित आनिए।
ताहि के बृहद्भानु ताके भे वर्हि पुत्र,
कितंजये रणंजय संजय ताहि मानिए।
ताके सक्य ता सुद्धोद लाङ्गल भे तनै ताहि,
ताके प्रसेनजित छुद्रक बखानिए।
रणक भे ताहि तनै ताके भे सुरथ सुत,
ताके भे सुमित्र आगे सुव्रत बखानिए ॥४१॥
प्रज्झ०—लहि सत जुग से त्रेता विराम। अरु द्वापर में जे भए नाम ॥४२॥
दो०—सूर्ज बंस छत्रीन को, इनसें भे बिस्तार।
सूर्ज बंस से होत भे, चंद्रबंस निरधार ॥१४३॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे सूर्यवंश्यवंशावलीवर्णनं नाम
तृतीयः प्रकाशः ॥३॥

चतुर्थः प्रकाशः

दोहा—बैवश्वत[1] मनु पुत्र हित, कहि बशिष्ट मुनि पास।
मित्राबरुणहि जज्ञ मुनि, करन लगे सुत आस ॥ १ ॥
मनु की पतिनी यह कह्यौ, कन्या जनमै सोइ।
इला नाम तनया भई, मनु लखि बिस्मित जोइ ॥ २ ॥
तब बशिष्ट मुनि बृत्त लहि, कन्या सो सुत कीन्ह।
सुद्युम्न नाम धरि रिषै तब, बहु बिधि आसिष दीन्ह ॥ ३ ॥
भये अयोध्या के नृपति, खेलन गये सिकार।
इलाबृत्त उत्तर दिशा, खंड बड़ो बिस्तार ॥ ४ ॥
महादेव के श्राप तें, जातहि भे नृप नारि।
बुध को आसन तहाँ लखि, गये भूप हिय हारि ॥ ५ ॥
लहि कै बुध भे काम बस, कीन्ही रति सुख ख्याति।
भए पुरूरवा पुत्र तेहि, सोम बंस यहि भाँति ॥ ६ ॥
पुत्र पुरूरवा के भए, षट प्रचंड बलवान।
आयु[2] श्रुतायू सुत भए, सत्यायू परमान ॥ ७ ॥
चौ०—जय रय विजय नाम सहजानौ। श्रुतायु के बंस बखानौ ॥ ८ ॥

श्रुतायु को वंश बरनन

चौ०—भे बसुमान तनै बल भारी। श्रुतञ्जयो सो तनै बिचारी।
ताके कांचन पुत्र गुनागर। कांचन के नृप होत्र उजागर ॥ ९ ॥
होत्र तनै भे जानु गँभीरा। जानु के पुत्र बलाक सुधीरा।
भे बलाक के सुत अज नामा। अज के कुश भे तनै ललामा ॥१०॥
भे कुश के कुशाम्बु सुत सोई। भे कुसाम्बु के गाधि निकोई।
गाधि के बिश्वामित्र उदारा। तप करि भए रिषीश बिचारा ॥११॥

आयु को वंश

आयू[3] के सुत नहुष बिचारो ॥ नहुष तनै षट भे गुन चारो।
जति जजाति सरजाति औ आजति ॥ बिहति कृत्तिकहि नाम जथामति।
॥१२॥

१—देखिए भागवत नवमस्कन्ध अध्याय १। २—वही अ०१५।
३—वही अ० १८।

सोरठा—जदु तुरुबसु कहि नाम, द्रुह्य पूरु अनुपाँच कहि।
पुरु[1] के सुत गुन धाम, जनमेजय जाको कहै ॥१३॥
चौ०—प्रचिन्वान तेहि सुत को नामा। तासुत भे प्रवीर जस धामा ॥
ताके तनै मनस्य नाम सद। ताके भए बिलोकि चारु पद ॥१४॥
तासुत सुद्य परम गुन पावन। तासुत भे बहुगवै सुहावन ॥
ताके भे संजाति महीपा। ताके अहंजाति जगदीपा ॥१५॥
ताके भे रौद्राश्व मनोहर। आठ पुत्र ताके सोहैं बर ॥
प्रथम रितेयु नाम है जानों। दूजे कहि कुच्छेयु सयानो ॥१६॥
तीजे अस्थंडिलेयु बखानौ। अरु क्रतेयु जलेयु प्रमानौ ॥
संततेयु अवनेयु बिचारो। धर्म सत्यव्रतेयु उदारो ॥१७॥

रितेयु को बंश बरनन

भे रितेयु के रंतिभार कहि। रंतिभार के सुत तीनौ लहि ॥
प्रथम सुमति प्रतिरथ्रुव जानो। प्रतिरथके रावन सुत मानो ॥१८॥
ताके मेधातिथि बलवाना। भरत ताहि ता बितथ बखाना ॥
बितथ[2] के मन्यु ताहि सुत पाँचौ। बृहच्छत्र जय नाम है जांचौ ॥१९॥
महा बीर्ज नर गर्ग उदारा। नर के भे संस्कृति बरिआरा ॥
रंतिदेव गुरु द्वै सुत ताके। गर्ग तनै सिबि नाम है जाके ॥२०॥
सिबि के गर्गि नाम भल जो कहि। महाबीर्य के दुरितच्छय लहि ॥२१॥
दुरितच्छय सुत तीनि अपारा। त्रय्यारुणि कबि नाम उदारा ॥
पुहुकरु अरुणि तीसरे जाने। यै ब्राह्मन ह्वै गये सयाने ॥२२॥

बृहच्छत्र को बंश बरनन

दो०—भे अजमीढ द्विमीढ सुत, कहि पुरमीढ सयान।
भे अजमीढ के बृहदरिपु, ताके बृहधनुजान ॥२३॥
बृहदकाय ताके भए, ताहि जयद्रथ मानि।
बिशद भए तेहि सेनजित, त्रै सुत ताहि बखानि ॥२४॥
कास्यबत्स रुचिरास्व कहि, दिढधनु तीजो नाम।
पार भए रुचिरास्व के, ताके द्वै गुन धाम ॥२५॥
चौ०—पृथूसेन अरु नीप बखानो। नीप के ब्रह्मदत्त परमानौ।
ब्रह्मदत्त के बिष्वकसेना। ताके उग्रसेन बलऐना ॥२६॥
ताके भे भल्लार सुहावन। अब कहि सुत द्विमीढकेपावन ॥२७॥

१—देखिये भाग० स्कं० ९ अ० २० । २—वही अ० २१ ।

अथ द्विमीढ को वंश बरनने

चौ०–भए जवीनर ता सुत सोई। ताके सुकृतमान सुत जोई।
ता सुत सत्यधृति परमानौ। ताके भे द्रिढनेम बखानौ ॥२८॥
तनै सुपार्स्व ताहि के जानौ। बिद्या बल गुणवंतहि मानौ।
ताके सुमति जाहि मति नीकी। सन्नतिमान पुत्र प्रियजीकी ॥२९॥
सन्नतिमान के नीप सयाने। नीप के उग्रायुध बलवाने।
ताके छेम्य छमा औतारा। ताके पुत्र सुबीर उदारा ॥३०॥
पुत्र रिपुंजय ताके भयऊ। ताके बहुरथ सब गुन ठयऊ ॥३१॥
दो०—दुसरी तिय अजमीढ की, नील भए सुत स्वच्छ।
सांति भए सुत नील के, तासु शांति परतच्छ ॥३२॥
ताके पुरजोरक तनै, ताके भे भरम्यास्व।
पाँच पुत्र ताके भए, पंच देव तेजास्व ॥३३॥
भे मुदगल अरु जवीनर, बृहद बिश्व जेहि नाम।
कहि संजय काँबिल्य ए, पाँच परम गुन धाम ॥३४॥
मुदगल के दिवोदास भे, ताके भे मित्राय[२]।
ताके च्यवन सु तासु के, भे सुदास जस छाय ॥३५॥
चौ०–ताके सुत सहदेव बखानौ। ताके सोमक सोभहि जानौ ॥३६॥
दो०—पुनि अजमीढ के सुत भए, रिक्ष नाम तेहि जानि।
ताके तनै स्वब्रणे कहि, चारि तनै तेहि मानि ॥३७॥
चौ०–परिछित, सुधनु, जन्हु, निषधहि कहि। सुधनके पुत्र सुहोत्र नामलहि[१]।
ताके च्यवन कृती ताहि के। तासु ताके बृहद्रथहि जाहिके ॥३८॥
मत्स्य कुशाम्ब प्रत्यग्र बखानौ। चेदिय चारौ तनय प्रमानौ।
बृहद्रथ के कुशाग्र सुत ठाए। ताके रिषभ सत्यहित जाए ॥३९॥
सत्यहितहि के पुष्पबान कहि। ताके जन्तु त्यहि जरासंध लहि।
ताके सुत सहदेव उदारा। भे सोमापि ताहि सुत च्यारा ॥४०॥
ताके श्रुतश्रवा गुन आगर। जन्हके सुरथ नरन महँ नागर।
ताके भए बिदूरथ नामा। ताके सारभौम परिनामा ॥४१॥
ताके भे जैसेन गँभीरा। तासु तनै राधिक मतिधीरा।
ताके अयुतु ताहि के क्रोधन। ताके देवातिथि गुन बोधन ॥४२॥
ताके रिष्य दिलीप ताहि के। भे प्रतीक सुत सुभग जाहिके ॥४३॥

१—देखिये भाग० ९।२१। २—वही० ९।२२

प्रतीक को वंश

प्रज्झटिका—देवापि एक संतनु उदार। बाह्लीक तीसरो पुत्र प्यार॥
पटरानी द्वै संतनु उदार। ताहि नाम कहौं करिकै बिचार॥४३॥
एक जोजनगंधा बास पूरि। यक गंगा पावन प्रभा भूरि॥
दो०—चित्र बीज चित्रांग द्वै, सुत सुगंध गुन गाह।
गंगा के भीषम तनै, कीन्हो नहीं बिवाह॥४५॥
चित्र बीज गंधर्ब हति, छल करि रनमें सोय।
राज रोग चित्रांग के, तन तजि सुरगति लोय॥४६॥
राजबंस नहिं रहि गयौ, भीषम कियो बिचार।
जोजनगंधा सों कह्यौ, मनमें सोच अपार॥४७॥
पारासर हम सों रमे, व्यास पुत्र तब कीन।
व्यास चले बन को जबै, मो कहँ यह बर दीन॥४८॥
कौनौ औसर त्वहि परै, सुमिरे ऐहौं पास।
ध्यान धरो जब व्यास को, प्रगटे आय अवास॥४९॥
चित्र बीज चित्रांग के, रानी जुगल नवीन।
व्यास कह्यौ सौहैं चलै, तन में बसन बिहीन॥५०॥
एक मृत्तिका घँसि चली, तासों पांडु उदार।
एक आँखि मूँदे चली, धित्तराष्ट्र तेहि बार॥५१॥
दासी चली निलज्ज है, तासों बिदुर ललाम।
पांडु कि पटरानी युगल, कुंती माद्री बाम॥५२॥
कुंती के त्रय पुत्र भे, दान कृपान उदार।
नृपति जुधिष्ठिर भीम अरु, अज्जुँन बल बरियार॥५३॥
बीर नकुल सहदेव द्वै, भे माद्री के बार।
अज्जुँन के अभिमन्यु भे, परिक्षित ताहि उदार॥५४॥
जनमेजय ताके तनै, जाकी पुंज प्रताप।
सर्प जज्ञ बहु बिधि करे, जारे जग के साँप॥५५॥
बाँटि दियो निज सुतन को, देस जिते जगमाह।
जानवार देशहिं गये, भये तहाँ नरनाह॥५६॥
नाम भयो जनवार कुल, क्षत्री परम उदार।
गोत्र नाम वैयाघ्रपद, सोम वंश निरधार॥५७॥
नमच छावनी पास है, पावा गढ गुजरात।
राजा नय सुखदेव तहँ, बल प्रताप अवदात॥५८॥

॥ इति श्रीदिग्विजयभूषणे चंद्रवंश्यवंशावलीवर्णनं नाम
चतुर्थः प्रकाशः॥ ४॥

पंचमः प्रकाशः

प्रज्झा०–षट सुतनय सुखदेव गँभीर । नाम कहौं ताके मतिधीर ॥ १॥
भे चंद्रसेन समसेरशाह । भे भूप ब्रह्म बल पूर बाँह ।
अरु कृसनराय बरियार साह । जेहि तेज उदय रबि जगत माह ॥ २ ॥

दो०–गे बरियार महीप बर, दिल्ली पति के पास ।
नजरि दिये आदर किये, नाम सु भयौ प्रकाश ॥ ३ ॥

चौ०–ताजुद्दीन साह तहँ गोरी । बोलि कहो नृप सों बर जोरी ।
पैंसे उत्तर देस न आवै । डाकू चोर प्रजान सतावै ॥ ४ ॥
जाय करो तुम ताकों नासै । दियो राज हम सहित बिलासै ।
बादसाह के किए सलामै । पाय खिलैत सैन बलधामै ॥ ५ ॥

दो०—सम्बत बिक्रम भूप के, तेरह सै पचीस ।
राज अकौना को लह्यो, बर बरियार महीस ॥ ६ ॥
अँचलदेव ताके भये, महाबीर बलवान ।
तेरह सै बासठि गये, राज किये परमान ॥ ७ ॥
तेजसाहि ताके भए, तेजवान शुभ साज ।
तेरह सै द्वै कम असी, सम्बत में किय राज ॥ ८ ॥
रामसिंह ताके भए, सुन्दर सोभा रूप ।
लहि चौदह सै बीस में, भए बड़े बर भूप ॥ ९ ॥
बिस्नुसिंह ताके भये, महाबीर रनधीर ।
चौदह सै पैंतालिसै, मैं किय राज गँभीर ॥१०॥
नृप गंगासिंह ताहि के, जस जेहि गंगाधार ।
चौदह सै यकसठि बरष, मैं किय राज उदार ॥११॥
ताके माधवसिंह भे, दूजे तनै गनेश ।
चौदह सै लहि छानबे, सम्बत माह नरेस ॥१२॥
सुत गनेश के प्रगट भे, लछिमिनरायन जानि ।
ताको बंश बिबेक बिधि, राज अकौना मानि ॥१३॥
दै गनेशसिंह बंधु कों, राज अकौना वेस ।
हते घुसाहे भूप कों, माधवसिंह नरेस ॥१४॥

बादल बढ़ई नृपति बर, दूजे षंभू भूप।
रन मारे सयदान नृप, कीरति किए अनूप ॥१५॥
बसे रामगढ़ गौरि में, माधव सिंह महिपाल।
द्वै सुत ताके प्रगट भे, प्रबल प्रताप बिशाल ॥१६॥

प्रज्झटिका—कलियानसिंह अभिराम नाम। बल्यामसाह दूजे ललाम॥
बल्याम साह बलिरामपूर। निज नाम बसायौ बरन पूर॥१७॥
कलियानसाह के प्रान चंद। अरु मुकुँद साह आनंद कंद॥
सैंतीस पाँच दस सै प्रकास। लहि सम्बत मैं किय राज बास॥१८॥

दो०—पंद्रह सै सत्तावनै, सम्बत सुबस बिलास।
प्रानचंद राजा भए, कीरति कलित प्रकास ॥१९॥
तेजसाहि ताके तनै, महाबीर बलवान।
सोरह सै भै सम्बतै, मैं किय राज बिधान ॥२०॥
तासु तनय हरिबंस सिंह, भूप भये सिर ताज।
सौरह सै सतावनै, मैं किय राज समाज ॥२१॥

प्र०—भे छत्रसिंह ताके उदार, बासंतसिंह दूजे बिचार।
सत सत्रह द्वै सम्बत बखानि, भे छत्रसिंह महिपाल जानि ॥२२॥
भे छत्रसिंह के तनय तीन, कहि फतेसिंह इज्जति प्रवीन।
नारायनसिंह तीजे बखानि, परचंड तेज जग अभय दानि ॥२३॥

दो०—सत्रह सै बावन हुतो, सम्बत बिक्रमराज।
भूप नरायनसिंह तब, कीन्ही राज समाज ॥२४॥
पुत्र नरायनसिंह के, रहो न कियौ बिचार।
फतेसिंह के पुत्र कौं, सुत सम कियौ पियार ॥२५॥
फतेसिंह के तीनि सुत, जेठे सिंह अनूप।
रूपसिंह दूजे भए, अरु पहाड़सिंह भूप ॥२६॥
सुत पहाडसिंह के भए, पाँच परम गुनवान।
ककुलतिसिंह जेठे तनै, कुलमें कमल बखान ॥२७॥
साँवलसिंह जसवंतसिंह, रामसिंह रनधीर।
पँचएँ भए दलेलसिंह, बाहुबली बलबीर ॥२८॥
चारि बंधु के बंश नहि, हरि इच्छा बलवान।
ककुलतिसिंह के नवलसिंह, जेहि रुचि दानकृपान ॥२९॥
इज्जतिसिंह के सुत भए, बेचूसिंह उदार।
कुंजलसिंह ताके भए, बड़े बीर बरिआर ॥३०॥

कुंजलसिंह के सुत भए, जासु नाम दलजीत।
बंश नहीं दलजीत के, हरि इच्छा बिपरीत ॥३१॥
भे पहाड़सिंह के तनै, जासु बांहबलसिंह।
पहिले डोमनसिंह भे, दूजे बेचनसिंह ॥३२॥
बेचनसिंह के सुत भए, बखतबलीसिंह नाम।
वंश न उपजो ताहि के, और कहौं परिनाम ॥३३॥
द्वै सुत डोमन सिंह के, गजनसिंह यक नाम।
दूजे छोटकूसिंह भे, सब गुन के बल धाम ॥३४॥
छोटकूसिंह के तीनि सुत, शिवप्रसादसिंह नाम।
बृंदासिंह, रबिदत्तसिंह, परम धरम अभिराम ॥३५॥
तनय भया रबिदत्त के, जगतपाल सिंह स्वच्छ।
बसे अजौं जेवनार में, सब गुन जानत अच्छ ॥३६॥
भए नरायनसिंह के, पाछे सुत पृथिपाल।
सत्रह सै नव द्वै रहो, सम्बत सुभग बिशाल ॥३७॥
पृथीपालसिंह भूप के, बंश न उपजो कोय।
ककुलति के सुत नवलसिंह, करि दावा लिय सोय ॥३८॥
अट्ठारह सै अढतिसै, सुदिन लगन को पाय।
नवलसिंह नरनाह भे, अरि मुख कारिख लाय ॥३९॥
नवल नवल जस नित किये, नवलसिंह नरनाह।
दंड जोतसी के रहो, बैर बाग बन मांह ॥४०॥
कबि कोबिद घर बिप्र को, त्यागि आँच सब ठौर।
नवलसिंह नरनाह को, तेज भानु कछु और ॥४१॥
नवलसिंह के द्वै तनै, दान कृपान उदार।
जेठ बहादुरसिंह भे, बाँहबली बरियार ॥४२॥
दूजे अर्ज्जुन सिंह नृप, अरजुन सो गुन स्वच्छ।
दया दान में दान रुचि, जो करिबे मन दच्छ ॥४३॥
जीते अरि करिवर जिते, बाँह बली नरसिंह।
बिमुख मुखालिफ को करै, नाम बहादुरसिंह ॥४४॥
नाजिम अहमदअली खाँ, किये छोभ करि कोप।
बली बहादुरसिंह नृप, रन छीने तेहि तोप ॥४५॥
गारि गलानि अहमदअली, नहिं बाँधे सिर पाग।
रन जीतौं यक बार नृप, यही लगन मन लाग ॥४६॥

बैरी दल बोहित बड़ो, चहै भूप बल पार।
बली बारि बारिधहि में, बोरे कैयो बार ॥४७॥
अरजुन नृप कीरति ललित, अरजुन सों करि नित्य।
जाचक जानै करन कर, प्रजा बिक्रमादित्य ॥४८॥
अट्ठारह सै चौहतरि, सम्बत बिक्रम भूप।
मंजुल प्रद मंगल घरी, भे अर्ज्जुनसिंह भूप ॥४९॥
अरजुनसिंह के द्वै तनै, जिमि रबि तेज प्रकास।
बैरी लुके उलूक सम, सरसिज मित्र बिलास ॥५०॥
जै नरायनसिंह प्रथम, रुचि नारायन प्रीति।
दान मान दाया मया, करत नीति की रीति ॥५१॥
भूप दिग्विजयसिंह भे, राजन के महराज।
लंदन पति जाको दई, पदबी बड़ी दराज ॥५२॥
रहो अठारह सै असी, सात सम्बतहि बेस।
जयनारायनसिंह भे, प्रजापाल निज देस ॥५३॥
किये बरष षट राज नृप, कीरति करि अभिराम।
तन तजि गे सुरधाम को, गति लहि ललित ललाम ॥५४॥

प्र०—अट्ठारह सै तीरान्नबे। सन बारह सै चौआलीस तबे।
सुभघरी महूरति लगन बेस। भे भूप दिग्विजैसिंह नरेस ॥५५॥

भुजंग०—पढ़े फारसी आरबी ग्रंथ रूरे। पढ़े बेद बेदांत ब्याकर्ण पूरे।
पढ़े काव्य के अङ्ग जेते बखाने। पढ़े न्याय नीके भली नीति जाने ॥५६॥
पढ़े शस्त्र विद्या तुरंगैसवारी। पढ़े राग संगीत भेदै बिचारी।
लसे पुंज शोभा भरे अङ्ग जामै। मनो देंह धारी लखो रूप कामै ॥५७॥

चन्द्रकला—जबै तिलंगे निमक हराँमी, अँगरेजन सों कीन्हे।
चीफ कमिसनर बहिराइच के, आए नृप सुख दीन्हे॥
नास किए बदमास लोग को, करि लखनऊ प्रकास।
भूप दिग्विजय सिंह बहादुर, बोलि पठाए खास ॥५८॥

टीका—जिस काल निमक हराम तिलंगों ने स्वभाव अनुसरे अर्थात् अपने स्वामी अँग्रेजन्ह को स्त्री, बालक वधपूर्वक शेषकों निकारि आपु राज्याधिकारी भए तब बहराइच के चीफ कमिश्नर बलरामपुर में आय महाराजा बहादुर सों अनेक भाँति सुख पाय जंग बहादुर के पास जाय और वहाँ से कुमक लाय फेरि लखनऊ को बिजय कियो और महाराज बहादुर को बोलि पठायो ॥५८॥

जथा वा—दिये दाहिने दिसि कुरसी को, पहिलो नम्बर नाम।
बाइस भाँति किए खिलति नृप, आदर ललित ललाम॥
असिस्टंट दीवानी आदिक, किये कमिस्नर काम।
करि खिताब महराज बहादुर, लिखे लाट अभिराम॥५९॥

अपने दक्षिण भाग कुर्सी दै लखनऊ मण्डल के सकल भूपों में प्रथम लम्बर का नाम लिख्यो और बड़े आदर से बाइस पारचे की खिलत दियो। असिस्टंटी दीवानी, फौजदारी कलट्ठरी को अखतियार दै महाराज पदवी युक्त पत्र लिखिकै लाट साहेब बहादुर भेज्यो। बाइस पारचे की खिलत—कलँगी १, शिरपेच १, रत्न जटित मुक्तमाल १, तरवारि विलायती १, ढाल १, घड़ी १, दूरबीन दर्शक यन्त्र १, बग्गी सहित घोड़ों के १, दुशाला १, रुमाल १, पगड़ी कारचोबी १, गोसवारा १, कमरबन्द १, नीमा जरकशी १, जामा जरकशी १, रुमाल दस्ती कारचोबी १॥ ५९॥

दंडक—राजै नाग इंदु खंड चंद्र चारु सम्बत जो,
कातिक असित तिथि पूजा दान दीप के।
लहि लखनऊ महाराज दिग्बिजै सिंह,
बेस कै बिलास लाट साहेब समीप के॥
'बृज' अभिराम दरबार आम भूप भीर,
तामें पहिलोई नाम नम्बर महीप के।
बड़ी आबरूह सों खिलैत खूब दै खिताब,
पेशवानरेश सूबे औध अवनीप के॥६०॥

दो०—को कहि पावै पार कबि, गुन निधि अमित बखान।
मति नौका सी लखिभ्रमै, भूप आप अपमान॥६१॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे नृपवंशावलीवर्णनं
नाम पंचमः प्रकाशः॥ ५॥

टीका राजै पद०—नाग आठ, इंदु एक, खण्ड नव, चन्द्र एक सम्बत राजै है। अर्थात् उन्नीस सौ अठार सम्बत रह्यो, 'अंकानां वामतो गतिरिति' गणितसूत्रम्। कार्तिक कृस्न पक्ष की अमावास्या को लखनऊ में लाट साहेब बहादुर के निकट प्रतिष्ठा पूर्वक खिलति पाय पहिलो नम्बर और लखनऊ के भूपों की पेशवा पदवी पाई॥६०॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां नृपवंशावलीवर्णनं
पंचमो प्रकाशः॥ ५॥

षष्ठः प्रकाशः

चौ०—खंड इंदु नव चंद प्रकास। बिक्रम सम्वत सित मधुमास।
ग्रंथ दिग्बिजै भूषन नाम। अलंकार 'बृज' बिरचि ललाम ॥१॥

टीका—खंड पद० खंड नव, इंदु एक, नव और चन्द्र एक, अर्थात् उन्नीस सौ उन्नीस विक्रमादित्य को संवत रह्यो। मधु चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में दिग्विजैभूषन अलंकार ग्रंथ बृजोपनामक गोकुल कवि रच्यौ ॥१॥

इस दिग्विजयभूषन नामक ग्रन्थ में रूपक करि सब भूषन धरयो है।

अथ ग्रंथ भूमिका

हरिपद—सुभग शब्द सुन्दर पट राजै, गुनगन ललित ललाम।
रतन पदारथ रुचि प्रकाश करि, जतन जुक्ति अभिराम॥
सुबरन रूप अनूप अङ्ग त्यौं, बरनत हैं गुनधाम।
ग्रंथ दिग्बिजै भूषन करि 'बृज', पंथ पुंज अभिराम ॥२॥

टीका—सुभगपद० सुन्दर शब्द जामें पट शोभित है। गुन गन पद प्रसाद माधुर्य्य ओज आदि गुन के गन जामें सूजनकार है। पदार्थ कहै पद के अर्थ जामें रत्न लगे हैं। रुचि विवेचक की प्रीति जामें प्रकाश कहै दीप्ति है और जतन जुक्ति से अभिराम कहै सुन्दर सुबरन रूप पद सुंदर वर्ण अक्षरों का रूप अनूप कहै जोग्यता पूर्वक रचना में संनिवेशित करिबोई जाको अंग कहै प्रकरण को शोभित करै है अर्थात् जिस भाँति सुवर्ण सोना और रूप कहै चांदी के घटित आभूषण अङ्ग की शोभा को करैं हैं तैसे ही वर्ण मैत्री आदि सुन्दर रचना इस ग्रंथ की अनूपता करै है ॥२॥

अंगभूषन-बरनन (अष्टजाम प्रकाश)

दंडक—जागै जोति जेब जामैं कंचन के काम जामैं,
पेन्हे पयजामैं फबै फेंटे को बिलास है।
पानि पाय पायताबे मोजे पुंज मोल के जो,
साजे मौज ही सो प्रति रोज के लिबास है।
राजै महाराज दिग्बिजै सिंह सिरताज,
जड़ित जतन सो रतन के उजास है।
मानो मारतंड चंड मंडल के आस पास,
मंडित नवग्रह की मंडली प्रकास है ॥३॥

टीका—जागै जोति पद० इहाँ रत्न जटित आभूषन जिनको महाराज बहादुर पेन्हे हैं सो वस्तु ताको सूर्य मंडल जो अति तीव्र है ताके आस पास नवग्रह की मंडली को प्रकाश विषय उक्त है याते उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार, और स्पष्ट है ॥३॥

अथ नवग्रह नवरतन नाम

हरिपद—मानिक रबि शशि मुक्ता दीजै, मूँगा मंगल हेत।
बुध पन्ना गुर पोखराज रुचि, हीरा शुक्रहि देत॥
नीलम शनि को केतु बैदूजैक, राहु गोमेदक ठान।
नवग्रह अबल सबल जो चाहै, करै रतन नव दान॥४॥

टीका–मानिकरवि पद० सूर्य के तोषनिमित्त मणि, चंद्रमा परितोषार्थ मुक्ता कहै मोती, मंगल के अर्थ विद्रुम कहै मूंगा, पन्ना बुध के प्रसन्नार्थ, बृहस्पति के शान्त्यर्थ पुखराज, शुक्र के शमन के अर्थ हीरा, शनि की रुचि के हेतु नीलमणि कहै लहसुनिया, राहु के प्रमोद के कारण गोमेद, केतु की प्रीत्यर्थ वैदूर्य्य मणि दीजै। मुहूर्त्तचिंतामणौ—"माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्र-नीलम्। गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम्"इति॥४॥

हरिपद—चाँदी सोना रतन आदिके, बारह भूषन अंग।
तैसे शब्द अर्थ करि बारह, अलङ्कार के ढंग॥
ग्रंथ दिग्बिजैभूषन माहीं, त्यों भूषन परकास।
जैसे नाम चाहिए गुन त्यौं, बरनै बुद्धि बिलास॥५॥

जथा बारह भूषन

दो०–शीश भाल श्रुति नासिका, ग्रीवाँ कटि उर बाँह।
मूल पानि अँगुरी चरन, बारह भूषन चाह॥६॥

टीका—चाँदी सोना पद० जैसे चाँदी सोना और रत्न के बारह भूषन अंग को भूषित करै हैं तैसोई शब्द अर्थ मिलि बारह अलंकार काव्य के भूषन हैं। द्वादस भूषणस्थान यथा—सिर, भाल, श्रवण, नासिका, ग्रीवाँ, कटि, उर, बाहु, पानिमूल और पानि, अंगुरी, चरन अंगुली ए बारह भूषन के स्थान हैं, इनसे अधिक नहीं वर्णन कियो है, इसी हेतु दास कवि अपने ग्रंथ में बारहै अलंकार को मुख्य करि वर्णन कियो है॥५–६॥

जथा बारह अलंकार (दास कवि काव्य-निरनय)

छप्पै—उपमा पूरन अर्थि लुप्त उपमा रु अनन्वय।
उपमयउपम प्रतीप और श्रौती उपमाचय॥

१—केवल बारह संख्या की महत्ता के लिये ही यहाँ इन बारह अलंकारों को उपमा-मूलक होने से चुना गया है, क्योंकि अलंकारों में उपमा को ही प्राधान्य दिया जाता है और इन अलंकारों में उपमानोपमेयभाव अवश्य रहता है।

पुनि दृष्टांत बखानि जानि अर्थान्तरन्यासहि।
बिकसरो निदरसन तुल्य जोगिता प्रकासकहि॥
गनि लेहु सप्रतिबस्तूपमा, अलंकार बारह बिदित।
उपमान और उपमेय के, हैं बिकार समझो सुचित॥७॥

टीका—तद्यथा पूर्णोपमा उपमा आर्थी और शाब्दी, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, बिकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता और प्रतिवस्तूपमा, ये बारहौ अलंकार उपमान और उपमेय के विकार सों होवै हैं और अलंकार की मूल उपमा, इसी में सब अन्तर्भूत होवै हैं। इस हेतु कवि ने बारहै अलंकार विदित कियो॥७॥

बारह प्रकास ग्रंथ के

दो०—प्रथम मंगलाचरन कहि, दूजे सृष्टि बिधान।
सूर्यबंस छत्रीन को, तीजे करौं बखान॥८॥
चंद्र बंश छत्रीन की, चौथे उतपति स्वच्छ।
पँचएँ नृप बंसावरी, बरनौं सुजस प्रतच्छ॥९॥
छठएँ एकै पदहि के, कहौं अलंकृत नाम।
सतएँ चारौं पदन में, अलंकार अभिराम॥१०॥
अठएँ संकर अलंकृत, नीर छीर के न्याय।
नवएँ अक्रम संसृष्टिहि, कहौं भेद दरसाय॥११॥
दसएँ संसृष्टिहि परम, क्रम से कहौं बिचारि।
ग्यरहें चित्रोत्तर कहौं, काव्य ग्रंथ निरधारि॥१२॥
बरहें अनुप्रासहि कहौं, गुरु गनपति शिर नाइ।
जाके सुमिरन के किए, देहैं ग्रंथ बनाइ॥१३॥

टीका—प्रथम पद० अवसर प्राप्त ग्रंथ के बारह प्रकाश को वर्णन किया जाता है। इसी हेतु ग्रंथकर्त्ता इस प्रस्तुत ग्रंथ में बारह प्रकास कियो। प्रथम में मंगलाचरन १, दूसरे में सृष्टि वर्णन २, तीसरे में सूर्य्य वंशीय क्षत्रियों का वर्णन ३, चौथे में सूर्य्यवंश सों कारण करि चन्द्रवंशीय को विभाग ४, पंचम में नृपवंशावली वर्णन ५, छठएँ में एक पदालंकार ६, सातवें में चारयो पद के अलंकार ७, आठवें में नीर क्षीर न्याय के तुल्य संकर को वर्णन ८, नवयें में अक्रमसंसृष्टि ९, दसएँ में क्रमसंसृष्टि १०, ग्यारहवेंमें चित्रोत्तर ११, बारहवें में अनुप्रास को वर्णन कियो है १२॥८–१३॥

काव्य कोश व्याकरन सद, शास्त्र सकल अभ्यास ।
भ्रम तम नाशक भानु सम, जाको ज्ञान प्रकाश ॥१४॥

शास्त्र गदा[1] धरिकै भए, सुबुध गदाधर स्वच्छ ।
अलंकार के भेद जिन, मोहिं बताए अच्छ ॥१५॥

ता पद पावन सुमिरि मति, बोहित[2] हेतु निबेरि ।
अलंकार जल आरनव,[3] रतन पदारथ हेरि ॥१६॥

टीका—काव्यपद० काव्य दशांग, कोश चौसठ्यो, व्याकरण दशौं, षट् शास्त्र [में] सम्पूर्ण जाको अभ्यास, भ्रम जो है तम ताके नाश करने में जाके ज्ञान को प्रकास सूर्य्य के प्रकास के तुल्य भयो, शास्त्र रूपी गदा धारन करने के हेतु जाको गदाधर ऐसो नाम प्रसिद्ध भयो, जिन्ह मोपर कृपा करि अलंकार को यह बिलक्षण भेद बतायो ताके पावन कहै पवित्र पद सुमिरिकै मति नौका के द्वारा अलंकार समुद्र मध्य रत्न पदार्थ को अन्वेषण करौं हौं ॥१४–१६॥

अलंकार

दोहा—अलंकार बरने सु कवि, शब्दा अर्था दोइ ।
चंद्रालोक बिलोकि मत, ग्रंथ अवरलहि सोइ ॥१७॥
अनुप्रास अरु चित्र जो, शब्द अलंकृत होइ ।
उपमादिक [4]अर्था कहौं, रस उपकारी सोइ ॥१८॥

टीका—अलंकार पद० अलंकार को 'चंद्रालोक' और 'चित्रमीमांसा' आदि के कर्त्ता सुकवि लोग दो भाँति वर्णन कियो एक शब्दालंकार दूसरो अर्थालंकार अनुप्रास जासों शब्दकौ भूषण होवै है और चित्रबद्ध और प्रश्नोत्तर आदि शब्दालंकार करि वर्णन कियो उपमा आदि अर्थालंकार करि कह्यो ॥१७, १८॥

अलंकार लक्षन

दोहा—शब्द अर्थ जो करत है, जहँ रस को उपकार ।
चमतकार आनंदता, सुनि रुचि होत अपार ॥१९॥

१—'शास्त्ररूप गदा' शास्त्रों में गदा का आरोप करने से रूपक अलंकार है।
२—बोहित = नौका। ३—आरनव (अर्णव) = समुद्र।
४—अलंकरणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते ।
तं विना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥१॥
अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती । —(अग्निपुराण ६४४।१–२)

अलंकार बरने कबिन, तीनि भेद परमान।
यक केवल, संकर दुतिय, कहि संसृष्टि बिधान॥२०॥

टीका—शब्द अर्थ पद० शब्द और अर्थ के द्वारा रस के उपकारपूर्वक एक चमत्कार विशेष जासों उपजै आनंद और रुचि कहै प्रीति होवै ताकों अलंकार कहै हैं॥ तेहि अलंकार कों कबिन तीन प्रकार बरने। एक केवल, दूसरो संकर, तीसरो संसृष्टि॥१९, २०॥

एक जहाँ केवल कहौं, संकर जामें दोय।
तीनि चारि आदिक जहाँ, तहँ संसृष्टि[1] सुहोय॥२१॥

जैसे पय पावन परम, मिलै न जामें नीर।
अलंकार त्यों एक है, करि रचना मतिधीर॥२२॥

नीर छीर सों मिलि रहत, संकर जो पद दोइ।
मति मंजुल कबि जानि है, प्रतिभा गति करि सोइ॥२३॥

तिल तंदुल सों जहँ लखै, अलंकार बहु ज्ञान।
शब्द अर्थ लखि कबित सों, कहि संसृष्टि बिधान॥२४॥

टीका—एक पद० जहाँ एक ही अलंकार होवै है ताको केवल, और द्वै जहाँ होय ताको संकर और तीन चारि आदि जहाँ होवै हैं ताको संसृष्टि करि वर्णन करै हैं॥ जैसे शुद्ध दुग्ध जामें नीर नहीं मिल्यो अर्थात् एकै अलंकार जहाँ होवै ताको केवल कहैं हैं॥ जैसे नीर और क्षीर मिलि किसी भाँति पृथक नहीं है सकै है तैसे दो अलंकार मिलने से संकर होय है। ताको जाकी शुद्ध मति सो कवि अपनी प्रतिभा के बल से जानैगो॥ तिल तंदुल के सदृश जहाँ तीन अथवा चारि अलंकार मिलैं शब्दालंकार किंवा अर्थालंकार ताको संसृष्टि कहैं हैं॥२१—२४॥

१—संसृष्टि और संकर विषयक ग्रन्थकार का यह मत आलोच्य है। आकर ग्रन्थों में ऐसे पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं जिनमें तीन, चार या इससे भी अधिक अलंकारों का सांकर्य और केवल दो ही अलंकारों में भी संसृष्टि होती है।

वास्तव में संसृष्टि और संकर में यही अन्तर है (जैसा कि ग्रन्थकार ने भी आगे वर्णन किया है) कि संकर में दो या अधिक अलंकार दूध में पानी की तरह इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनका स्वरूप पृथक्-पृथक् नहीं प्रतीत होता, किन्तु संसृष्टि में तिल-तण्डुल की भाँति परस्पर मिश्रण होने पर भी उनकी पृथक् स्थिति स्पष्ट लक्षित होती है।

अथ एक अलंकृत

दो०—तीनौं पद में होइ नहिं, एक चरन में होइ।
एक अलंकृत त्यहि कहैं, उत्तम रचना सोइ ॥२५॥

टीका—तीनों पद० अथ उद्देश क्रम प्राप्त केवल अर्थात् एक अलंकृत को लक्षण लिखे है। जहाँ तीनि पदन में कौनो अलंकार न होय एक चौथाई पद में अलंकार दरसाय ताको केवल अर्थात् एक अलंकृत कहैं हैं ॥२५॥

एक पद में अलंकार बरनन

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज' (उपमा)

दुमिला—'बृज' मायके में वह नाइनि आइ, कही ठकुराइनि बात भली।
हरि पौरि में राजैं तिहारे भटू, हम देखि लटू छबि छाए रली ॥
सुनि बात इती चित चायनसों, मन माहँ मसोसनि कीन्हे अली।
पहिलेहीं बगारी है बेग बड़ो, फिरि मंद गयंद लौं चाल चली ॥२६॥

पहिले काम सें शीघ्र चली जब लाज आई तब मंद, यातें मध्या ॥

टीका—बृजमायके पद० उदाहरण ग्रंथकर्त्ता को, बृज कवि की उक्ति। नायिका अपने मायके में रही। तहाँ वह नायिनि जो सासुरे की थी, आइकै यह भली कहै जो अपने को प्यारी है बात कहती भई। तुम्हारे हरि कहैं प्रीतम पौरि में राजे हैं उनकी छबि देखि लटू कहे वश्य ह्वै गई। इतनी बातें सुनिकै प्रेम के आधिक्य से मन में कसामसी करि पहिले ही काम के उद्दीपन से बड़ो बेग सो गमन कियो फिरि जब लाज उदय भई तो मंदगयंद लौं चाल अर्थात् मंद मंद चली। इहाँ नायिका उपमेय, गयंद उपमान, लौं वाचक, मंद चाल धर्म चाच्यो हैं, यातें पूर्णोपमा अलंकार और लाज मदन के साम्यता करि कै मध्या नायिका ॥२६॥

१—उपमा(उप = समीप, मा = तौलना,) जहाँ दो पदार्थों की समता दिखायी जाय वहाँ उपमा होती है। इसके चार अंग हैं—उपमेय—जिसका वर्णन अभीष्ट हो अथवा जिसके लिये दूसरे की समता दी जाय, उपमान—उपमेय से जिसकी समता की जाय, धर्म—जिस गुण के कारण दोनों में समता दिखाई जाय और वाचक—वे शब्द जिनके द्वारा उपमा लक्षित हो।

पौरि = द्वार, दरवाजा। भटू = आली, सखी। रली = युक्त। बगारी = फैलाया, बढ़ाया। गयंद = हाथी ॥२६॥

(असंगति[1])

सुन्दर-पास परोस की बाग बहार बहारन कों 'बृज' धाइ गई।
रोसन रोसनी पुंज प्रसून सुगंधन हीं सो अघाइ गई॥
जानि परो न कछू त्यहि औसर ताप मनोभव ताइ गई।
काटत माली गुलाब की डार बिलोकत बाल सुखाइ गई॥२७॥

टीका—पास परोस पद० निकट ही परोसी की बाग में विहार करने के हेतु काम की अधिकता से दौरिकै गई। जाकी दीप्ति फैल रही है फूलन के सुगंधन सों अघाइ गई। ता छिन कछू न जानि परयो क्योंकि मनोभव काम के ताप सों संतप्त ह्वै गई थी। माली गुलाब की डार काटत रह्यो, ताको देखि नायिका सुखाय गई। यहाँ डार को कुँभिलानो चाहिए सो नहीं कुँभिलान्यो, नायिका सुखाय गई अर्थात् कुँभिलाय गई, यातें असंगति अलंकार। और डार काटने सों नई कली यामें फूलि है ता पै चटकाहट ह्वै है, ताको सुनि नायक भोर जानि मेरे निकटसों उठि जैहै तासों प्रौढा रतिप्रीता नायिका॥२७॥

यथा

दु०—हरि ईठि[2] सों डीठि अरूझै जबै, गुन कानि कुटुम्ब को टूटिहै री।
चल चौज चबाइनि कै चित में, गुर गाँठि परे पर फूटि है री॥
'बृज' कैसे कै नेह नयो निबहै निज नाँह को नातोई छूटिहै री।
मनमाँह कसाससी ऐसी बसी क्यहि भाँति भटू जुग जूटिहै री॥२८॥

टीका—हरि ईठि पद० श्रीकृष्णचंद्र की अँखियान सों जब मेरी दृष्टि अरुझैगी तौ गुनरूपी जो कुटुम्ब है ताकी कुल-कानि टूटि जैहै और ये चबाइनै जो इत उत मित्र की बातैं अबहीं सों चलाती हैं, तिनके मनमें बड़ी गाँठि परि कै फूटि है अर्थात् मेरी प्रीति को प्रगट करि देहैं। बृज कवि की

१—कारण और उसका कार्य जहाँ भिन्न भिन्न स्थानों में हों वहाँ असङ्गति अलंकार होता है, इसके तीन भेद हैं जो क्रमशः उदाहरणों में स्पष्ट किये जा रहे हैं—कारण अन्यत्रके लिये हो और कार्य अन्यत्र हो जाय, यह असंगति का पहला भेद है। जैसे उक्त पद्य में कटी तो डाल, मुरझायी नायिका (कटना रूप कारण तो डाल में हुआ पर मुरझाना रूप कार्य जो डाल में होना चाहिये था वह नायिका में हुआ)॥२७॥

२—कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो जाय। जैसे-यहाँ उलझे तो नेत्र पर टूट गया कुटुम्ब, यह असंगति का दूसरा उदाहरण है।

उक्ति कि किस प्रकार नयो नेह निबहिहै । निज स्वामी को जो नातो है सो भी छूटि जैहै । मनमें ऐसी कसामसी बसी किस भाँति मेरी और ललाजू की जुग जुटि है। इहाँ कृष्णचन्द्र के मिलने के हेतु अनर्थ ठहरावै है यातें शंकाभाव और गुरजन को भय करै है यातें गुरजन सभीता नायिका । इहाँ अपनो नेह हेतु और टूटो कुटुम्ब कार्य विरुद्ध और भिन्न देश, यातें असंगति अलंकार "विरुद्धं[1] भिन्नदेशत्वं कार्य्यहेत्वोरसंगतिरि'ति तल्लक्षणम् ॥२८॥

मत्तगयंद०—केहूँ[2] कहूँ कबहूँ न सुनी सजनी यह बात अनोख निबेरे ।
जाहि जरै घर मंगल गावत देखन हार जरे कहुँ केरे ॥
सो गति आजु बिलोकि अली अति सोच सँकोच हिए बस मेरे ।
प्रीतम पास परोसिनि के परदेश चलें दुख दीरघ तेरे ॥२९॥

टीका—केहूँ केहूँ पद० कोई कबहूँ यह अनोखी बात न सुनी, हे सजनी याको निबारन होवो कठिन कि जाको घर जरै सो तो मंगल गावै और देखन हारो दुखी होय । सो गति आजु मैं देखती हौं यातें मेरे हृदय में बड़ो सोच होय है कि स्वामी परोसिनि को परदेश जाय है और दीरघ बड़ो दुख तोकों होय है । स्वामी मेरो नित याके निकट रहत रह्यो आज परदेश को जाय है तो अब मेरो दुःख इसको भोगने पर्यो इस व्यंग्य सें प्रवत्स्यत्प्रेयसी-नायिका और जाको प्रिय परदेश जाय है ताकों दुःख होयबो संभवित है, सो नहीं याकों होय है यातें असंगति अलंकार ॥२९॥

(ललित[3])

दुमिला—अति स्वच्छ सखी सेमुषी उनकी जिन आदिहूँ अंत बिचारि करै ।
बलि जारिबे जोग सुभाव भद्द परसे कथहि भाँति बखान करै ।

१—चन्द्रालोक ५।८४ ।

ईठि = प्रीति, मित्रता । दीठि = दृष्टि । कानि = मर्यादा । चौज = उक्तियाँ, बातें । चबाइनि = बदनाम करनेवाली । कसामसी = घबराहट ॥२८॥

२—कारण भिन्न हो और उससे कार्य भिन्न ही हो जाय, जैसे इस छन्द में जिसका पति परदेश जा रहा है वह पड़ोसिन तो प्रसन्न है (क्योंकि पति इसे खंडिता बनाकर उक्त नायिका का उपभोग करता था) किन्तु यह नायिका दुःखी है (क्योंकि उपपति-संगम का अवसर न मिलेगा), यह असंगति का तीसरा भेद है ॥२९॥

३—वर्णनीय (प्रस्तुत) वृत्तान्त का वर्णन न करके उसके प्रतिबिम्ब स्वरूप किसी अप्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन करना, ललित अलंकार है । जैसे उक्त

निज खाइ हलाहल त्यागि अमी 'बृज' तापै कह्यो है उपाइ करै।
जब चोरि गए धन धामहि ते तब काम कहा रखवार करै ॥३०॥

टीका—अतिस्वच्छ पद० सखी की उक्ति नायिका सों, अति स्वच्छ जाकी सेमुषी कहै बुद्धि है, सो आदि और अन्त विचारिकै अर्थात् परिणाम शोचि कै सकल काम करै है। हे सखि तुम्हारो यह सुभाव जारिवे योग्य है जाके वश ह्वै पीतम कों रुटाय दियो आनसों केहि भाँति यह वृत्तान्त कहैं। शोच की बात है कि अमी त्यागि गरल खाय तापै कहै कछू उपाय करै, कहा ह्वै सकै है। जब घर में धरी वस्तु कों चोर लै गयो तो रखवार जो घर की रच्छा करै है ताको कहा काम है। इहां नायिका के निकट नायक आयो और रूठि कै चल्यो गयो ताके मनाइबे हेतु सखीको पठाइबो और पश्चात्ताप करिबो, यातें कलहांतरिता नायिका और प्रस्तुत नायक रूठि कै चल्यो गयो ताको प्रतिबिंब चोर की चोरी के अनन्तर रखवार की रक्षकता को वैफल्य देखाइबो, यातें ललित अलंकार। 'प्रस्तुते[1] वर्ण्यवाक्यार्थप्रतिबिंबस्य वर्णनमि'ति तस्य लक्षणम् ॥३०॥

(चपलातिशयोक्ति[2])

द्रुमिला—अलि आइ अचानक बोलि कही परदेस पयान बिहान लला।
सुनि सोचन गोरी गरो भरिकै अँखिया अँसुआ बहि बेगि चला॥
नहि जानि परो केहि भाव भट्ट बलया कर में छिगुनी के छला।
'बृज' बाल के हाल बिलोकि सबै तहँ पूँछि रही अबलै अचला ॥३१॥

टीका—अलिआइ पद० सखी की उक्ति सखी सों कि नायिका सों सखी यों आय बोलि कै कही कि परदेश को जावैगें प्रात उठि लला नायक।

उदाहरण में 'जब नायक ही रूठकर चला गया तो हम जी कर क्या करें' इस वर्णनीय वाक्य को स्पष्ट न कह कर 'जब माल ही चोरी चला गया तो रखवाला रखकर क्या करें' इस प्रतिबिम्ब रूप में कहा गया है।

१—चन्द्रालोक ५।१२७। चन्द्रालोक की कई प्रतियों में "वर्ण्ये स्याद्वर्णीवृत्तान्त" ऐसा पाठ है, किन्तु कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित को "प्रस्तुते वर्ण्यवाक्यार्थ" यही पाठ अभीष्ट है और उन्होंने इसी के आधार पर टीका की है ॥३०॥

सेमुषी = बुद्धि। हलाहल = विष। अमी = अमृत ॥३०॥

२—कारण के आभासमात्र से जहाँ कार्य का अतिशय वर्णन हो, वहाँ चपलातिशयोक्ति होती है। जैसे इस उदाहरण में 'नायक कल प्रातः जानेवाला है' यह सुनते ही नायिका इतनी मोटी हो गयी कि उसके हाथ का कंकण कानी अँगुली के छल्ले की भाँति कसा हुआ लगने लगा॥

यह बात सुनि शोच से गोरी गरो भरिकै अर्थात् स्वरभंग कंठ में उदय है, आँखिन सों आँसू बहि चल्यो। सखी कहै कि हे भट्टू नहीं जानि परै है कि किस हेतु बलया कंकण छिगुनी कनिष्ठिका को छला भयो। वृज कवि की उक्ति, नायिका को यह हाल देखि सकल व्रज बनिता मंडल परस्पर पूँछि रही हैं यह बड़े आश्चर्य की बात कि दुख में सुख देखि परै है। इहाँ बहिरंग सखी आदि के विश्वास के हेतु कि याको प्रिय प्रवास गमन जनित खेद अतिशय देखि परै है इस कारण आँसू भरै है, परंतु है वह आनंदाश्रु, क्योंकि स्वामी के संगम को सुलभ समुझि सात्विक भाव को उदय भयो है और बलय कंकण को छला होयबो बिना सुख के स्थूलता नहीं होय है। तत्काल में ऐसो होयबो यातें मुदिता नायिका को स्थूल होयबो और इसी हेतु कंकण को छला होयबो यातें चपलातिशयोक्ति अलंकार ॥३१॥

(शुद्धापह्नुति[1])

सवैया—बह सीर समीर निशापति शीतल राति बढ़ी रबि तेज घटावै।
हिमि सों सहमे जगजीव जितै रुचि मंद हुतासन की सरसावै॥
अति सीत सों भीत भई हौं भट्टू कर कंपित देह सँभारि न जावै।
सुख पुंज सभै यह कौन कहै दुःख पुंज हिमंत हमैं नहिं भावै॥३२॥

टीका—बह सीर समीर पद० वह सीतल वायु जाके स्पर्श से मनोज्ञ सुत के तुल्य प्रबुद्ध होय है। निशापति चन्द्रमा के किरणों से शीतल रात्रि अपनी रुचि को बढ़ाय रही है। सूर्य के तेज को अर्थात् अवशिष्ट दिवा ताप जो रहि गयो है ताको दूरि करै है। हे भट्टू। अति शीतसों भीत भई हौं, हाथ और देह काँपै है, नहीं सँभारि जाय है। याको सुखदायक सभै कौन कहै है जामें दुख ही की अधिकता सों हमें नहीं भावै है। इहाँ शीतल वायु और सुधांसुयुक्त रात्रि उद्दीपन सों उद्दीपित है सात्विक भाव के प्रादुर्भाव को दुरावै है। यातें खेद भाव और व्यंग्य करि नायक को संभोग लक्षित होय है। ताको मिसु करि दुरावै है। यातें गुप्ता नायिका और तारानायक भूषित रात्रि के सुखपुंजत्व गुण को दुराय दुख पुंजत्व को आरोप। यातें शुद्धापन्हुति अलंकार। 'शुद्धापन्हुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नव'[2] इति तल्लक्षणम् ॥३२॥

१—अपह्नुति = छिपाना। जहाँ वस्तु के वास्तविक धर्म को छिपा कर उसमें अन्य का आरोप किया जाय, वहाँ शुद्धापह्नुति होती है। यहाँ सात्विक भावों की उद्दीपक रात्रि की सुखपुंजता का निषेध कर उसमें दुःखपुंजत्व का आरोप किया गया है, अतः उक्त अलंकार है। २—चन्द्रालोक ५।२५।

(पिहित[1])

सवैया—मन मालिनि दीन ह्वै बोलि कहै करि तेह तमोलिनि बोलत टेरे।
सरमाय कहै मुख नायनि जो सतराय कहै मनिहारिनि हेरे॥
खिसियात खवासिनि बैन कहैं मुख मोरि कहै बहु चेरिनि चेरे।
'बृज' भीतर बाहिर की घरनी घर घेरि कहैं बतियाँ तिय तेरे॥३३॥

टीका—मनमालिनि पद० सखी की उक्ति नायिका सों कि जब तूँ मालिनि कों बोलकारे है तब मन में दीनह्वै बोलि कहै है, और नायिनि सरमाय कहैं लज्जित ह्वै कहै है, सतराय कहै झुलहुलाय मनिहारिनि धीरे बोलै है और खवासिनि लज्जासों अधोमुख करि बोलै है। और चेरिनैं कहै जो दासी लोग हैं सों मुख मोरि कहै हैं। बृज कवि की उक्ति-भीतर और बाहर की स्त्री लोग तेरेई बात की चर्चा करै हैं। इहाँ मालिनि आदि के दीन बचन बोलने से यह व्यंग्य सूचित भयो कि मेरो कहा काम है। तेरो नायकै तोको गजरा गूँथि देय है। तमोलिनि क्रोध करै है कि अब पान की बीरी तेरो नायकै तोको खवावै है मेरो कहा काम, आगे मेरोई दियो महाउर तोकों प्रिय रह्यो अब नायकै देय है यातें नायिनी लज्जित होय है, भलो नयो चार है कि मनिहारिनि बैठी रहै और नायक चूरी पहिरावै यह बिपरीत देखि मनिहारिनि सतराय कहैं सोपालंभ कहै है, खवासिनि खिसियाय कै कहै कि मेरो काम तो नायकै करि लेय है मेरो कहा काम, चेरी मुख मोरि कहै है कि सब दास्यकृत्य नायकै करै है, नायक के सम्पूर्ण काम करने से नायिका को स्वाधीनत्व व्यंग्य भयो तातें स्वाधीन-पतिका नायिका और सखी लोगों के गुप्त वृत्तान्त जानि लेने से पिहितालंकार। 'पिहितं[2] परवृत्तान्तज्ञातुः साकूतचेष्टितम्' ॥३३॥

(व्याघात[3])

जिन अंगन मैं अँगराग लग्यौ तिहि अंग बिभूति लगाए कसाला।
हिय हारहूँ को न बिहार मैं अन्तर सों 'बृज' देखिबे को परे लाला॥

१—किसी की गुप्त चेष्टाओं को जानकर गुप्त रूप से ही जहाँ भाव प्रकट किये जायँ, वहाँ पिहित अलंकार होता है। प्रस्तुत पद्य में नायक के द्वारा ही नायिका का श्रृङ्गार रूप, गुप्त चेष्टा को जानकर मालिन आदि का क्रोध, खीझना, दीन होकर बोलना आदि गुप्त रूपों से प्रकट हो रहा है अतः पिहित अलंकार है।

२—चन्द्रालोक ५।१५१।

तेह = क्रोध। सतराय = उलाहना देकर। खवासिनि = बाँदियाँ। मोरि = मोड़कर। चेरिनि चेरे = दासी-दास ॥३३॥

३—व्याघात (वि = विशेष, आघात = टक्कर)—एक क्रिया से दो परस्पर विरोधी कार्यों का होना अथवा दो परस्पर विरोधी क्रियाओं से एक कार्य का

प्रिय जोबन भोग बिहाय हहा तिय जोबन मैं जपै जोग की माला।
हरि कूबरी साला दुसाला दिए ब्रजबाला बिछावन को मृगछाला॥३४॥

टीका—जिन अंगन पद० काहू की उक्ति कै गोपी की उद्धवसों। जिन अंगन में अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य से मिश्रित अंगराग लग्यो बड़े कष्ट की बात ताही अंग में बिभूति लगाइबो और जेहि श्रीकृष्नचन्द्र को अंतराल बिहार समै हार सों अप्रिय अर्थात् नहीं सहि जाय है ताके देखिबे को अब हमैं लाला परयो। हाय हाय प्रिय कहै कान्त के साथ जोबन भोग कहैं युवावस्था में कामकेलि कला कोकशास्त्र विहित बाह्य अन्तर भेद करि षोडश प्रकार के आलिंगन चुंबन नख-रददानादि छोड़ि, इस फेरि नहीं आवने वाली नायिका की युवावस्था में जप करैं, जोग की माला कहैं, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, अष्टांग जोग जो स्त्री से नहीं है सकै हैं। और हरि हमारे स्वामी कृष्नचन्द्र, कूबरी जाको अंग कुटिल अर्थात् त्रिभंग ताकों तो ओढ़ने और बिछाने के अर्थ शालादुशाला दियो और ब्रज की बालाओं को ओढ़ने और बिछावने को मृगछाला, जो अजोग्य। इहाँ जो कूबरी को चाहिए सो गोपिन को दियो और जो गोपिन्ह को चाहिए सो कूबरी को दियो, यातें व्याघात अलंकार स्पष्ट है। 'स्याद्व्याघातोऽन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेदि'ति[1] लक्षणम् ॥३४॥

(उत्प्रेक्षा[2])

मत्तगयंद—आए मनावन मानै न मानिनि साधन कोटि किए बरजो है।
जाम गयो जुग जामिनि को घनस्याम सबेरहिं कै रहे सो है॥

सिद्ध होना, व्याघात कहलाता है। उक्त पद्य में एक ही हरि (कृष्ण) के द्वारा सुरूपा युवती गोपियों को योगमाला और मृगछाला देना तथा कुरूपा कूबरी को शाला-दुशाला देना रूप परस्पर विरोधी कार्य किये गये हैं अतः व्याघात अलंकार है।

१—चन्द्रालोक ५।१०१।

अंगराग = सुगन्धित द्रव्य का लेप। बिभूति = भस्म। कसाला = दुःख। लाला = दुर्लभ होना ॥३४॥

२—उपमेय में की जानेवाली उपमान की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—१-वस्तूत्प्रेक्षा, २-हेतूत्प्रेक्षा, ३-फलोत्प्रेक्षा, वस्तूत्प्रेक्षा में विषय (वस्तु) का वर्णन करके तब उसपर सम्भावना की जाती है। जैसे उक्त पद्य में नायिका की मुसकान को पहले कहकर तब चन्द्रमा में

सोहैं लला 'बृज' खोलि बिलोचन आनन मंद कछू बिहँसो है।
मानहुँ इंदु असंद कला महँ कुंद कली अवली बिकसो है ॥३५॥

टीका—आए मनावनपद० मनावै के अर्थ कृस्नचन्द्र आए, कोटिन साधन कहै उपाय कियो, मानिनी नायिका नहीं मानै है। इसी में रात्रि के द्वै जाम बीति गयो। घनस्यौंम कृस्नचन्द्र प्रातःकाल होबो जानि सोय गए, तब नायिका लालजी के स्नेह के अर्थ आनन रोष सों मंद कछू बिहँसो हैं कहै नयन खोलि सोंहैं कहैं स्वाभिमुख कियो, ताकी छबि इस प्रकार भई कि मनहु चन्द्रमा की अमंद देदीप्यमान कला के मध्य कुंदकली की अवली कहै पंक्ति विकसित है रही है। नायिका के दशन की द्युति को चंद्रमा के मध्य कुंदकली की उत्प्रेक्षा कियो। नायिका की बिहसनि बस्तु उक्त, ताको चन्द्र मध्यगत कुंदकली [सों] तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा। उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार, मानवती नायिका ॥३५॥

जथा

सवैया—बिसरी सुधि अंग सँभारिबे कों रति रंग महा मनमोद बसै।
अलसातहिं गात जम्हात उठी अवलोकि अली हिय में हुलसै ॥
'बृज' छूटे लटै को लपेट लटू निरखै मुख यों उपमा दरसै।
सुरभान समेत मनो शशिमंडल भानु के मंडल मंजु लसै ॥३६॥

टीका—बिसरी पद० अंग सँभारिबे की सुधि जाकों बिसरि गई क्योंकि जो रात्रि कों रति रंग कियो है अर्थात् कामवश वाम रतिरण के महामोद में मत्त है रही है। अरसानी देह और जँभात उठी जाकी छबि देखि सखीजन अपने हृदय में हुलास को प्राप्त है रही हैं। छूटे लटै को रस में लटू है लपेटि रही और आदरश में मुख देखती ताको यह उपमा दरसाय है। मानो सुरभानु कहैं राहु, सहित चन्द्रमंडल सूर्य मंडल के मध्य शोभित होय है। इहाँ छूटे लट को लपेटिबो और मुख को आदर्श में देखिबो वस्तु उक्त विषय ताकों स्वर्भानु सहित चन्द्रमडल सूर्यमंडल मध्यगत शोभा तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा ॥ ३६ ॥

कुन्दकली की संभावना व्यक्त की गयी है अतः वस्तूत्प्रेक्षा है। अलंकार ग्रन्थों में वस्तूत्प्रेक्षा दो प्रकार की वर्णित है—उक्तविषया और अनुक्तविषया, जहाँ विषय (वस्तु) का स्पष्ट निर्देश रहता है वह उक्तविषया (जैसे उक्त छन्दमें) और जहाँ विषय का स्पष्टनिर्देश नहीं रहता वहाँ अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा होती है। जाम (याम) = प्रहर। जामिनि = रात्रि। सोहैं = सामने। असंद = पूर्ण ॥३५॥

(असिद्धविषया उत्प्रेक्षा[1])

दुमिला—जानि जबै मनभावन आवन पानिपपुंज प्रभा छलके हैं।
अंग सिंगार सिंगारि सबै सजि सेज सरोजन के दलके हैं॥
कै मुख घूँघट वोट लखै चख चंचल द्वार लगी पलकें हैं।
चंद्र के मंडल मैं 'बृज' मंजुल मानहुँ खंजन द्वै झलके हैं॥३७॥

टीका—जानि जबै पद० मनभावन नायक को आवन जानि शोभा जाल को जगारि रही है। अंगन शृंगार कहै भूषनों से भूषित कै और कमलों के फूलन को सेज साज्यो घूँघट मध्य मुख के ताकै ओट कहै आड़ में चंचल नेत्रों से द्वार निहारि रही है मानो चंद्रमा के मंडल में द्वै खंजन आछी विधि लरि रहे हैं। इहाँ मुख और चंचल नेत्र को निवेश वस्तु, ताको चन्द्रमंडल के मध्य लड़ते हुए खंजन की झलकबे की शोभा को उत्प्रेक्षा, असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार और द्वार देश के विलोकनादिक सों प्रियागमन संभावना सूचित होय है यातें वासकसज्जा नायिका॥३७॥

(स्वभावोक्ति[2])

सवैया—कैसी हुती जुबती जग वै 'बृज' मान करैं निज बानि बिगारैं।
शील सयानप खोवैं खई मुखते सखि रूखोई बात निकारैं॥

१—किसी वस्तु में संभावना करने के लिये जो हेतु नहीं है उसे हेतु मानकर जहाँ उत्प्रेक्षा की गई हो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यह भी दो प्रकार की है—सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा। जहाँ आस्पद (विषय) सिद्ध होता है वहाँ सिद्धास्पदा और जहाँ असिद्ध होता है वहाँ असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा होती है। उक्त पद्य में मुखमण्डल में स्थित चञ्चल दो नेत्रों में चन्द्र मण्डल में झलकते हुए दो खंजनों की उत्प्रेक्षा की गई है जो प्रसिद्ध नहीं है अतः असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा है।

हुलसै = प्रसन्न होती है। लटै को लपेट = बालों का जूड़ा बाँध कर। सुरभान = राहु॥३६॥

मनभावन = प्रियतम। पानिपपुंज = शोभा समूह। वोट = ओट। चख = नेत्र॥ ३७॥

२—स्वभावोक्ति (स्वभाव + उक्ति) अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी की जाति या क्रिया आदि का स्वाभाविक वर्णन किया गया हो। जैसे उक्त पद्य में चन्दन और उत्तमा नायिका का जातीय स्वभाव कहा गया है कि वे स्वयं नष्ट होने पर भी क्रमशः सुगन्ध और सज्जनता को नहीं छोड़ते।

काह बुझाइये बूझि बिना अपने जिय तें कछु जो न बिचारैं।
कोपि कै काटत क्रूर जऊ तऊ चंदन मंद सुगंध बगारैं ॥३८॥

टीका—कैसी हुती पद० कैसी वै नायिका हैं जो मान कै कै अपनी बानि कहैं स्वभाव कों बिगारती हैं। शील स्वभाव और चातुरी खोय कै मुखतें हँसखि रुखोई बातैं निकारै हैं, जो कोई अपने मनसों नहीं बूझे हैं ताकों कहा बुझाइए। क्रोध करि क्रूर लोग जद्यपि चंदन कों काटै हैं, तऊ चन्दन अपनोई सुभाव अनुसरै है अर्थात् सुगंध ही को बगारै है। इहाँ यद्यपि नायक सापराध लखि नायिका क्रोध नहीं कियो किन्तु सत्कारै कियो, यातें उत्तमा नायिका। चंदन और उत्तमा नायिका को यही स्वभाव है यातें स्वभावोक्ति अलंकार। 'स्वभावोक्तिः[1] स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनमि'ति लक्षणात् ॥३८॥

जथा—वेद[2] पुरान पुरातम लोग गए कहि बात अलीक न कोई।
सो 'बृज' देखो बिचारि अजों जस बीज बये फरिहै फर वोई॥
आप भलो तौ भलो जग है यह नीतिनिरूपन मैं करि जोई।
खोटो सो खोटो खरो सो खरो निखरैगो कसौटी कसे रंग सोई ॥३९॥

टीका—वेद पुरान पद० नायिका की उक्ति सखी सों कि प्राचीन लोग बेद और पुरानों में जो बात कहि गए हैं झूठी नहीं है किन्तु साँची बात कह्यो है, ताकों अजहूँ बिचारि कै देखो कि जैसो बीज बोवै तैसो फल खाय है। तैसोई यह नीति भलीविधि विचारिकै मैंने जोई है अर्थात् देखी है। जो खोटो सो खोटो, जो खरो सो खरो, कसौटी में कसे सोई रंग निखरैगो जो स्वाभाविक होयगो। इहाँ हिताहित आचरन सों मध्यमा नायिका औरन कों ऐसोई स्वभाव होय है यातें स्वभावोक्ति अलंकार ॥३९॥

(विशेषोक्ति[3])

जथा—अंग सुभाव मिटैगो कहाँ 'बृज' कोऊ कितेक उपाय करै।
है नहिं झूठ बिचारि कहौं सति जानि परै सतसंग परै॥

१—चन्द्रालोक ५।१५९

खई = क्षीण, मन्द (यह मानिनी के प्रति आक्रोश सूचक प्रयोग है)। कूर = क्रूर। बगारैं = फैलाते हैं ॥३८॥

२—यह क्रियागत स्वभावोक्ति है, कसौटी में खोटा धातु रगड़ने से खोटा और खरा रगड़ने से खरा रंग आता है, कसौटी का स्वभाव है कि वह रगड़ना रूप क्रिया से खोटे को खोटा और खरे को खरा सिद्ध कर देती है।

अलीक = मिथ्या। वोई = वही। जोई = प्रत्यक्ष किया है, देखा है ॥३९॥

३—जब कारण रहते हुए भी उसका कार्य न हो तो विशेषोक्ति अलंकार

शीतल नीर समीर सिरे घनसार उसीर के धाम धरै।
फेरि दिवाकर के परसे कर सूर्यमुखी लखि आगि झरै ॥३९॥

टीका—अंग सुभाव पद० जाको जौन अंग स्वभाव होय सो कहाँ मिटि जायगो, नहीं मिटै है कोऊ कितेको उपाय करै। यह बात झूठी नहीं आछी भाँति विचारिकै मैं कहौं हौं। सत्य तब जानि परै है जब सतसंग परै, सीतल नीर जल, शीतल समीर कहै वायु घनसार कपूर और उसीर के धाम कहैं घर में जऊ धरै तऊ सूर्य्य के किरण के स्पर्श के निमित्त सूर्य्यमुखी कहैं सूर्यकांत मणि आगि ही को झरैगो, इहाँ शीतल नीर आदि कारण यद्यपि अधिक पुष्ट है तथापि तदनुगुण कार्य्य की उत्पत्ति नहीं भयो किन्तु स्वानुगुण को अनुसर्‍यो यातें विशेषोक्ति अलंकार, अधमा नायिका ॥३९॥

(रूपक[1])

रंग भौन को भामिनि भोरे गई जहँ चारु चितेरे रचे रुचि नीके।
छबि छाजै सुलाखन ताखन में 'बृज' औचक दीठि परी तरुनी के ॥
पग पानि चलै न हलाए हलै न कहै कछु बैन सुनैन सखी के।
बृजचन्द्र के चित्र बिचित्र चितै चख चंद्रपखान भे चन्द्रमुखी के ॥४०॥

टीका—रंगभौन पद० रंगभौन कहै कान्तागारको प्रभात नायिका गई, जहाँ चारु कहै रमणीय चित्र चित्रकारों के बनाए बिराज रहे हैं। शोभा झलकै है

होता है। जैसे शीतल जल, वायु, कपूर और उशीर में कोई भी उष्ण पदार्थ रखा जाय तो उसकी उष्णता नष्ट हो जाती है किन्तु सूर्यकान्तमणि को इन सभी ठंढे से ठंढे पदार्थों के मध्य रखने पर भी सूर्य की किरणों का स्पर्श होते ही उससे आग बरसने ही लगती है। सभी शीतल कारणों के रहते हुए भी उसमें शीतलता रूप कार्य का अभाव ही दर्शाया है।

सति = सत्य। सिरे = ठंढे। उसीर = खस। कर = किरण ॥३९॥

१—बिना किसी प्रकार का निषेध किये जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप किया जाय वहाँ रूपक अलंकार होता है [उपमेय का निषेध कर के उपमान का आरोप करने में अपह्नुति अलंकार होता है यह पहले कह चुके हैं] उक्त पद्य में कृष्ण में चन्द्र का और चन्द्रमुखी (नायिका) के चक्षुओं में चन्द्रकान्त शिला होने का आरोप बिना किसी निषेध के किया गया है।

चितेरे = चित्रकार। सुलाखन = झरोखों। ताखन = ताखों। चन्द्र-पखान = चन्द्रकान्त शिला ॥४०॥

तामस और मुस्कल में जहाँ अचानक ही गूजरी की दृष्टि परि गई, ज्योंही निगाह पहुँचो ताही छन ताकी यह दशा भई कि हाथ-पाँव चलाए नहीं चले हैं और हलाए नहीं हाले हैं। कछु काहू सों नहीं कहै है और सखीन को बचन नहीं सुनै है, कृष्णचन्द्र को चित में चितै चन्द्रमुखी नायिका को चख नेत्र चन्द्रपखान कहै चन्द्रकांतमणि भयो। इहाँ बृजचन्द्र को देखि चन्द्रमुखी को चख चन्द्रपखान चंद्रकांतमणि भयो। कृष्ण चन्द्र, चख चंद्रपाषाण कोर समताद्रूप्य रूपक अलंकार स्पष्ट है और मदन सों रंग भोन को गई लाज सों आँखिन में आँसू झलक्यो यातें मध्या नायिका ॥४०॥

(उल्लेख[1])

दंडक—कोऊ कहै बान मनोभव के समान सोहैं,
कोऊ कहै मंत्र मोहिबे को बरजोर हैं।
कोऊ कहै बेस है नरेस नेह के दिवान,
कोऊ कहै बृज बनिता के चित चोर हैं।
कोऊ कहै खंजन कुरंग मन रंजन हैं,
कोऊ कहै मंजु पुंज कंज फूले भोर हैं।
जानी हौं चकोर चख 'गोकुल' गोबिंद जू को,
चितै रहै चंद मुख राधा जी के वोर हैं ॥४१॥

टीका—कोऊ कहै कि मनोभव काम को बान है। कोऊ कहै नागरी गूजरी के मोहिबे को मोहनी मंत्र है। कोऊ कहै स्नेह के दीवान हैं। कोऊ कहै बृज की बनितान के चित को चोर हैं। कोऊ कहैं खंजन और कुरंग के मनको रंजन कहै राग रचने वाले हैं। कोऊ कहै प्रभात काल के अर्थात् नवीन विकसित कमल हैं। परन्तु मेरे जानि राधा जी के मुख चन्द को चितवै के अर्थ श्री कृष्ण-चन्द्र जी को यह अनिर्वचनीय चख चकोर हैं। यहाँ बहुत विवेचक कृष्णचन्द्र के

१—एक वस्तु का अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करें अथवा एक ही व्यक्ति एक ही वस्तु का, उसके विभिन्न गुणों के कारण, अनेक रूप में वर्णन करे तो उल्लेख अलंकार होता है। यहाँ कृष्ण के नेत्रों का विभिन्न व्यक्तियों ने अपनी अपनी मति के अनुसार विभिन्न रूपों में वर्णन किया है अतः उल्लेख अलंकार है। किन्तु उन सबके कथन का निषेध करके कवि ने अपना पक्ष स्थापित किया है कि ये, ये सब न होकर राधा के मुखचंद्र को निहारने वाले चकोर हैं। अतः शुद्ध उल्लेख न होकर अपह्नुति मिश्रित हो गया है।

नेत्र को बहुत प्रकार करि वर्णन करे हैं, याते शुद्धापह्नुति गर्भक उल्लेख अलंकार स्पष्ट है ॥४१॥

(पिहित)

दंडक—चौगुनो[1] चटक चित चितवनि चारु मुख,
हाव भाव भावे उपजावै रसरासिका।
चंदन सुगंध वृंद छिरक्यौ छबीली मंजु,
छबि छहरात भौन भ्राजै दीप मालिका।
आगे ह्वै मिली है चलि कीन्हो सनमान बलि,
मधुर बचन 'बृज' आनन प्रकासिका।
छपै न छपाए छामोदरी छल बल यह
सेज के समीप आजु राजै सुक सारिका ॥४२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों, चौगुनो चटक चित और चितवनि वैसे ही रमनीय मुख हावभाव करि नायक के मनमें मनोज उपजावै है। रस की राशि नायिका। चंदन और सुगंध अतर गुलाब आदि अंगराग छिरक्यो अरु लगायो सम्पूर्ण देह में सोभा सरसाती है। दीप के प्रकास करि दीपमालिका के सदृश ग्रह ह्वै रह्यो है। नायक को आगम देखि आगे चलि अगुवानी लियो आछी बिधि सन्मान करि मीठी बातैं बोलि मुख सोभा बगारि रही है। नायक कहै है कि हे छामोदरी तेरे छपाए यह छल बल नहीं छपै हैं, क्योंकि सज्जा के निकट आजु शुक सारिका क्यों धरयो बड़े उल्लास सों पढि रह्यो है। इहाँ सज्जा के निकट शुकसारिका के धरने से नायिका प्रिय को सापराध जानि अपने में क्रोध को गोपन ठानि उत्तम चेष्टा करि रति नहीं चाहै यह व्यंजित होय है। यातैं मध्या-धीरा नायिका और नायिका को छल वृत्तान्त जानि लेने से पिहित अलंकार स्पष्ट है ॥४२॥

१—सब प्रकार की साज-सज्जा प्रकट करने पर भी नायक ने नायिका के छल को समझ लिया कि इसकी इच्छा रमण की नहीं है, अतः अपना भाव प्रकट किया—'आज तो शय्या के पास शुक-सारिका हैं' यही पिहित अलंकार है देखिये लक्षण पृ० ४३।

भाव = स्वभावतः निर्मल चित्त में संभोगेच्छाविषयक जो विकार उत्पन्न होते हैं उन्हें 'भाव' कहते हैं। हाव = उन्हीं संभोगेच्छा-विषयक भावों को जब भ्रू-नेत्रादि की चेष्टाओं द्वारा प्रकट किया जाता है तो वे 'हाव' कहलाते हैं। छामोदरी = कृशोदरी ॥४२॥

(विभावना)

स०—नहिं जात बखानि कछू हमपै वलि मंजुल पुंज प्रभा दरसायौ।
यह रीति नई प्रगटी 'बृज' सुंदर मैं तौ विलोकि महासुख पायौ॥
पर के गुन देखि हिए हरषैं जग मैं बिरलै बिधनैं उपजायौ।
मति आछी अली अति काछी की है जिन कुंदन वेलि कदंब फुलायौ॥४३॥

टीका—नहीं बखानि जाय है हमपैं यह रमणीय शोभा समूह तुम देखायो, यह अपूर्व रीति अति सुन्दर प्रगट कियो। याकों देखि मैं तो बहुतै सुख कों प्राप्त भई। आन को गुन देखि हरषित होय ऐसो थोरे ही मनुष्य ब्रह्मा उत्पन्न कियो। हे सखी धन्य वाकी बुद्धि है जिसने कुंदन की लता में कदंब विकसायो है। इहाँ कुंदन वेलि अकारन तासों कदंब को विकसित होवो कार्य उत्पन्न भयो, यातें चौथो विभावना अलंकार और नायक कों देखि याके सात्विक भाव भयो ताकों देखि सखी प्रेम लक्षित करै है यातें प्रेम लक्षिता नायिका॥४३॥

(अवज्ञा)

मंजुल मौलसिरी मोगरा मधुमालति की गजरा गुहि राखैं।
चंदन पंक लगाइले अंग मयंकमुखी करिकै अभिलाखैं॥
जेब जवाहिर के गहने तन मैं पहिने इनसैं छवि लाखैं।
तो अँग लायक एते सबै सुनि बाल की लाल भई लखि आँखैं॥४४॥

१—कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति में विभावना अलंकार होता है। इसके ६ प्रकार हैं—

१—बिना कारण के कार्य का हो जाना।
२—अपूर्ण कारण से पूर्ण कार्य हो जाना।
३—कारण का प्रतिबन्धक रहते हुए भी कार्य का हो जाना।
४—जो जिस कार्य का कारण नहीं है उससे उस कार्य का हो जाना।
५—कारण के विरुद्ध कार्य हो जाना।
६—कार्य से ही कारण की उत्पत्ति दर्शाना।

उक्त पद्य में कुंद की लता से कदम्ब का फूल होना चौथी विभावना है। काछी = मुराव, कोइरी, तरकारी बोने वाला॥४३॥

२—(अवज्ञा = तिरस्कार) जहाँ किसी के गुण या दोष को दूसरे द्वारा उसी रूप में न ग्रहण करना दिखाया जाय वहाँ अवज्ञा अलंकार होता है। उक्त उदाहरण में गजरे एवं आभूषणों के द्वारा सौन्दर्यवृद्धि रूप गुण को रूपगर्विता नायिका गुणरूप में नहीं मानती, अतः अवज्ञा अलंकार है।

टीका—नायक की ,कै सखी की उक्ति नायिका सों कि रमनीय मौलसिरी, मोगरा और मधुमालती को गजरा गूँधि कै राखे हौं। चंदन पंक गार्‍यौं हौं, हे मयंकमुखी ! ताकों लगाय ले। जवाहिरों के गहने जाको जेब कहैं सोभा लगै है ताकों पहिरे यासों लाख भाँति छबि होवैगो तेरे अंग को। ऐ सब तेरे ही अंग के लायक हैं। इतनी बातें सुनते ही नायिका की आँखें लाल है गईं। इहाँ सखी अथवा नायक के बचन सें कि इन सों तेरो कछू अधिक सौन्दर्य है जायगो। यासों अपनी निंदा ठहरावै है कि मेरे अंग सें ये अधिक सुन्दर हैं यातें रूपगर्विता नायिका और भूषणादि सों नायिका को भूषण न भयो किन्तु दोष, यातें अवज्ञा अलंकार "लोभ्यां तौ यदि न स्यातामवज्ञालङ्कृतिश्च सा" इति तल्लक्षणम् ॥४४॥

(विभावना षष्ठ)

आवन भोर किए मनभावन पान की पीक लगी पलकें हैं।
केलि कलोल में भासे कपोल में भोडर के किनका छलके हैं॥
बाल बिलोकि न बोली कछू 'बृज' अंजन लै अँसुवा छलके हैं।
चन्द के मंडल मीन तें मंजुल धार कढ़ी जमुना जल के हैं॥४५॥

टीका—मनभावन श्री कृष्णचन्द्र जी प्रभात आगमन कियो, जाके पलकों में पवित्र पीक की लीक लग्यो है। कामकेलि के श्रम सें कछू न बोली, अंजन अंजित नेत्र सें आँसू को प्रवाह कढ्यो, ताकी यह शोभा कि चंद्रमंडल गत मीन सों जमुना की धार लसै है। इहाँ कार्य्य मीन, तासों जमुना की धार, कारन को प्रगट होबो छठईं विभावना अलंकार स्पष्ट है और अन्यनायिकासुरत चिह्नित नायक को प्रातःकाल आयबो यातें खंडिता नायिका ॥४५॥

जथा—लेहौं बलाइ बताइये बेगि किए गुन जाहिर जो दरसो है।
बात न जात बखानि कछू छहरै छबि पुंज प्रभा परसो है॥
जो जस काज करै कहिए तस 'गोकुल' ऐसोई मेरो मतो है।
देखे तमाल में किंसुकजाल फुलाइ दए वह मालिनि को है॥४६॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। मैं बलाय लेऊँगीं बेगि बताइए जो तुम्हारो गुन रह्यो सो प्रगट देखाय है। मोपै कछू नहीं कह्यो जाय है जो छबि पुंज रावरी देह में झलकै है। जो जैसो काज करै है ताको तैसोई कहिबो उचित,

१—चन्द्रालोक ५।१२५

भोडर के किनका = अभ्रक के कण [लाल कपोलों पर उत्पन्न स्वेद-बिन्दुओं का वर्णन लाल अभ्रक के कण रूप में किया है]। कढ़ी = निकली ॥४५॥

यही मेरो मतो है। अचम्भे की बात है कि तमाल में किंसुक बिकसायो वह कौन मालिन है। इहाँ तमाल में किंसुक टेंसू को बिकसिबो असंभव, अकारन सें कार्य्य को उत्पन्न होबो यातें चौथी विभावना अलंकार स्पष्ट है। और अन्य नायिका संभोग जनित नखक्षत देखि खेद होबो यातें खंडिता नायिका ॥४६॥

(अर्थान्तरन्यास[1])

मंजुकी—समुद जल खार को कीन्हें कटीली डार सुमना के।
मृगन कों आँखि भल दीने करी छबि हीन नैना के॥
दिए गुन गेह धन नाहीं दिए धन नाहिं गुन जाके।
बड़ेन की बात को बरनै कहै को काज विधना के॥४७॥

टीका—काहू दुःखाक्रान्त को वचन। ब्रह्मा को कर्त्तव्य अकथ है कि समुद्र को जल खार कियो, गुलाब ऐसे फूलन में काँटा। मृग बन के रहने वाले को भली कटीली आँखें दीयो। करी हाथी जो दल को शृङ्गार ताको मृग सदृश नेत्र न दियो। गुनन को आधार अच्छे गुणी जनन कों गुण दियो परन्तु धन न दियो जाकों धन दियो ताकों गुन न दियो। बड़ेन की बातों को को कहै ऐसेई उनको कर्त्तव्य है। इहाँ प्रथम विशेष ब्रह्मा के कर्त्तव्य को कह्यो ता पीछे बड़ेन के कर्त्तव्य सामान्य को वर्णन कियो यातें अर्थान्तरन्यास अलंकार स्पष्ट है। "उक्तिरर्थान्तरन्यासः[2] स्यात्सामान्यविशेषयोः" इति तल्लक्षणम् ॥४७॥

(अनन्वय[3])

त्रिभंगी—नैना रतनारे बृजहिं पियारे तन मन वारे परसंगी।
जिहि बहु चख चोखे यह छबि पोखे आज अनोखे रँगरंगी॥

१—(अर्थान्तर = दूसरे अर्थ का, न्यास = स्थापन) जहाँ किसी विशेष कथन के द्वारा सामान्य का अथवा सामान्य कथन द्वारा विशेष का समर्थन किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यहाँ विधाता के कर्तव्य रूप विशेष कथन का, सामान्य बड़ों के कथन से समर्थन किया गया है।

२—चन्द्रालोक ५।१२१।

३—जहाँ एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों रूपों में वर्णित हो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है। उदाहरण में 'तुम्हारे रूप के समान तुम्हारा ही रूप है' यह स्पष्ट है।

रतनारे = अरुण। चोखे = स्वच्छ। पोखे = देखे। तिरभंगी (त्रिभङ्गी) = तीन जगह टेढ़ा, एक छन्द का नाम ॥४८॥

प्रिय को अनुरागे सब निसि जागे पलक न लागे बिनु अंगी।
तव रूप बराबरि तव रूपै हरि! कवि अनुरूपै तिरभंगी ॥४८॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। यह तुम्हारे नैन रतनारे प्यारे बृज बासिन को तन मन वारे आन नायिका के प्रसंग की सूचना करै हैं, जाकों चोखे चखन सों बिलोक्यो वाही सों आजु यह अनोखो अपूर्व रंग रँग्यो। प्रिया के अनुराग भरे संपूर्ण निसि रात्रि के जागे पलक नहीं लाग्यो है बिना अङ्गी-अर्धाङ्गी मेरे के, हे हरि श्री कृष्ण के सदृश तुम्हारोई रूप है जाकों कबिन त्रिभंगी अनुरूपै है ॥४८॥

(अतिशयोक्ति[1])

सवैया—निशि बासर सेइ रहे उनको इन्ह के हम प्रेम को नेम परेखे।
बन बाग तड़ाग घने सुमने सपने न कबों तिनकों अवरेखे॥
दुख वाको परै तौ सहैं संग मैं सुख आजु समै दुःख पाइ अलेखे।
अरबिंद सें कौने उड़ाइ दई 'बृज' भोर मैं भौंर जपा पर देखे ॥४९॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों व्याजपूर्वक भ्रमर के। दिन राति अर्थात् अहोरात्रि सेवा करि रहै वाकों इनको पूर्ण भो प्रेम हम आछी विधि देख्यों। बन उपबन बाग तडागन्ह में बहुत फूल बिकस्यो हैं स्वप्न में भी कबहूँ उनके निकट नहीं जाय है। कदाचित वाको दुःख परै तो संग मैं वाकों सहैं। आज सुख के समै दुख पायो, अरविंद कमल सों काहू ने उड़ाय दियो, भोर प्रभात काल जपा पै भ्रमर कों मैंने देख्यो। इहाँ परस्त्रीप्रीतिजनक बचन सों नायिका कों दुख लक्षित होय है और अरविंद पद सों नेत्र, भौंर पद सों अंजन, जपा पद सों ओष्ठ उपमेय लच्छित होय है। अरविंदादि केवल उममान वाचक शब्द हैं यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है। 'अतिशयोक्ति[2] रूपक जहाँ केवल ही उपमान' इति। 'रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्य्याध्यवसानत'[3] इति तल्लक्षणम्। और नायक ने अन्य नायिका को आलिंगन चुंबनादि कियो वा समय नेत्र को कज्जल नायक के अधर लग्यो ताकों देखि प्रिया को अन्योपभोगचिह्नित सापराध जानि बिसण्ण ह्वै भ्रमर के अपदेश नायक सों व्यंग्य करि वराहनो देयहै यातें खंडिता नायिका ॥४९॥

१—जहाँ केवल उपमान हो और उसी के द्वारा उपमेय को अतिशयेन लक्षित कराया जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है। उक्त पद्य में अरविन्द, भौंर, जपा, इन केवल उपमानों से क्रमशः नेत्र, अंजन और ओष्ठ इन उपमेयों का सौन्दर्यातिशय लक्षित कराया गया है।

२—भाषाभूषण ४।७०   ३—चन्द्रालोक ५।३५

दोहा—कवित अलंकृत एक पद, हौं बरन्यौं यह पंथ।
तैसे लखि प्राचीन कवि, कबित अलंकृत ग्रंथ ॥५०॥
है भूषन को ग्रंथ यह, रतन पदारथ ठाट।
गुन कबित्त दाना सुकबि, लिखे एक सै आठ ॥५१॥

टीका—एक पद अलंकार के कवित्त को यह अपूर्व मार्ग मैंने वर्णन कियो इसी प्रकार प्राचीन कवीश्वरों को रचित कवित्त वर्णन करौं हौं। यह भूषन को ग्रंथ पद और अर्थ यामैं रत्न गुन कहै सूत्र कवित्त दाना यामैं सुकवि एक सौ आठ अर्थात् अष्टोत्तर सत को माला होय है इसी हेतु इस अपूर्व ग्रंथ में ग्रंथकर्त्ता अष्टोत्तर शत कविन्ह को रचित कवित्त धर्‍यो ॥५०, ५१॥

अथ प्राचीन कविन के ग्रंथ के अलंकार एकै पद में

कवि—चंद (उत्प्रेक्षा)

दंडक—मंडन[1] मही के अरि खंडे पृथुराज बीर,
तेरे डर बैरीबधू डाँग डाँग डगे हैं।
देश देश के नरेश सेवत सुरेश जिमि,
काँपत फनेश सुनि बीर रस पगे हैं।
तेरे श्रुति मंडलनि कुंडल बिराजत हैं,
कहै 'कवि चंद' यहि भाँति जेब जगे हैं।
सिंधु के वकील संग मेरु के वकीलहिं लै,
मानहु कहत कछु कान आनि लगे हैं ॥५२॥

टीका—कवि की उक्ति, शोभा देने वाले पृथ्वी मंडल के, शत्रु संघारे हे पृथ्वीराज बीर! तेरे भय सों अरिबधू पर्वत के कान्तार में भ्रमै हैं। देश देश के राजे सेवन करि रहे हैं इंद्र सदृश तुमकों। तुम्हारी बीररसोत्कर्षता सुनि सेस कंपायमान होवै हैं। तेरे श्रुतिमंडल में कुंडल शोभित होय है ताकी यहि भाँति शोभा जगै है मानौ समुद्र को वकील साथ में सुमेरु के वकीलहि लै अपने स्वामी के अभय हेतु कान में लागि कछू सूचन करि रह्यो है। इहाँ कर्णगत

१—फलोत्प्रेक्षा का उदाहरण है। किसी वस्तु में संभावना करने का जो अभिप्राय नहीं है उस अफल को फल मानकर जो संभावना की गई हो उसे फलोत्प्रेक्षा कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा।

डाँग डाँग डगे हैं = बन बन छान डाले हैं। जेब = शोभा। वकील = अधीन राजाओं के केन्द्र में उपस्थित वे प्रतिनिधि, जो वर्तमान राजदूतों के प्रतिरूप होते थे ॥५२॥

कुंडल को समुद्र और सुमेरु के वकील तादात्म्य करि अभय फलार्थ उत्प्रेक्षा सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है ॥५२॥

कवि—गंग (उत्प्रेक्षा)

स०—सुंदरि अंग सिंगार सिंगारति सौति के गर्बहि गंजन को।
'गंग' कहै कर आरसि लै मनमोहन के मन रंजन को॥
लै कर कज्जल अंगुलि लावति नैन लगावति अंजन को।
राजति यौं महँदी नख मैं मनो गुंज चुँगावति खंजन को॥५३॥

टीका—यहाँ अंजन संभाव्यमान पद ताकों नख में लगने के कारण खंजन को गुंज चुँगाइबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा। उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है ॥५३॥

कवि—रघुनाथ राय[1] (दीपकावृत्ति[2])

दंडक—काल की सी डाढ़ जमडाढ़ काढ़े कै बरन,
देखे नर-नाहर को रूप नरनाह जू।
लोह के पहार माँझ कोप कै अमर सिंह,
एक एक धाय हनी सिगरे सिपाह जू।
केतक हजारी मारे सँग के सँघाती हारे,
छेक्यो छत्रधारी पै सिधारी हिंद राज जू।
ढाल की पनाह न दिवाल की पनाह एक,
लोन की पनाह बचे आलम पनाह जू॥५४॥

टीका—इहाँ पनाह पनाह पद अनेक को निवेश और अर्थ एक यातें शब्दार्थावृत्ति दीपकालंकार ॥५४॥

१—देखिये भूमिका में अमर कवि (५) का परिचय।

२—उपमेय और उपमान में जहाँ धर्म की एकता होती है अर्थात् दोनों जहाँ अपने गुण के कारण एक से कहे जाते हैं वहाँ दीपक अलंकार होता है। इस दीपक की जहाँ आवृत्ति (दुबारा आना) होती है वहाँ दीपकावृत्ति अलंकार होता है। इसके तीन प्रकार होते हैं—१. केवल पद की आवृत्ति, २. केवल अर्थ की आवृत्ति, ३. पद और अर्थ, दोनों की आवृत्ति। उक्त दण्डक में 'पनाह' पद की आवृत्ति होने से पहला भेद है।

जमडाढ़ = तलवार। नरनाहर = पुरुषसिंह, नरश्रेष्ठ। नरनाह = नृपति। हजारी = एक हजारी, मनसबदार। संघाती = साथी। पनाह = त्राण, बचाव। लोन = नमक। आलमपनाह = विश्वरक्षक, बादशाह (शाहजहाँ) ॥५४॥

कवि—नरोत्तम **(पिहित)**

आए मनमोहन बिताइ रैनि औरही सों,
काहू सौति जन पग जावक लै भाल को।
'सुकवि नरोत्तम' सरोजनैनी शील करि,
बलि बलि आगे उठि मिली है गुपाल को॥
अंचल सों पोछि बेगि चंचल बिशाल नैन,
असन बसन करि दसन रसाल को।
पाछे ह्वै कै कहो जाइ अरी सहचरी धाइ,
आरसी के महल बिछौना करौ लाल को॥५५॥

टीका—इहाँ नायक कों अन्य स्त्री संभोगजनित अपराध जानि और रात्रि में कला कल्लोल करि दीर्घ प्रजागर अनुमानि नायिका ने सखी सों आदर्श जड़ित मंदिर में पर्जंक बिछावने के हेतु साभिप्राय आज्ञा दियो, यातें पिहित अलंकार स्पष्ट है और खंडिता नायिका॥५५॥

कवि—केहरी **(पूर्णोपमा)**

इतै साहिजादे जू बजाए सार मूरचनि,
उतै कोट भीतर दबाए दल द्वै रह्यौ।
'केहरी सुकवि' कहै सूर मारे सै हथीन,
तहाँ अवतरनि तमासे आनि वै रह्यौ।
औचक गलीन मैं गनीम दल गाजि उठो,
तुंड गजराजनि के मद आगें च्वै रह्यौ।
रतन सँधारे भट भेदें रबि मंडल कों,
मंडल घरीक नट कुंडल सो ह्वै रह्यौ॥५६॥

टीका—इहाँ रविमंडल उपमेय, नट कुंडल उपमान, ताको भेदिबो धर्म, सो वाचक, यातें पूर्णोपमा अलंकार॥५६॥

कवि—काशीराम **(संबंधातिशयोक्ति)**

कवित्त—गाढ़े गढ़ ढाहत रहत नाहिं ठाढ़े नेकु,
दिग्गज दुरित मद डारत सुकाइ कै।

पगजावक = पैर का आलता, महावर। बलि बलि = प्रेमपूर्वक, बार बार न्योछावर होकर॥५५॥

साहिजादे = युवराज, सार = युद्ध। मूरचनि = मोरचों में॥५६॥

१—असंबंध में संबंध की कल्पना, सम्बन्धातिशयोक्ति कहलाती है।

करा चोली = लोहे का कड़ा और कवच। दावत रकाब = घोड़े की रकाब पर पैर रखता है॥५७॥

करा चोली कसि झुकि निकसि निजामति खाँ,
दावत रकाब जब बरा जोरी पाइकै ।
धरनि के चहूँ कोन 'काशीराम' भौन भौन,
भाजौ भाजौ इहै होत राना राजा राइकै ।
लंक ते लंकेस के पताल हूँ ते सेस के,
सुमेरु ते सुरेश के मिलैं वकील आइकै ॥५७॥

टीका—इहाँ लंका सों लंकेस रावन, पाताल सों सेस और सुमेरु सों सुरेश इन्द्र के वकील को मिलिबो अजोग में जोग की कल्पना यातें संबंधातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥५७॥

(सामान्यनिबंधना[1])

दंडक—काँकर से मुकुता सुकुंज जहाँ कुंदन के,
पन्ना ही को पौरि परिजा के चहुँघा करी ।
बिहरत सुरमुनि उचरत बेद धुनि,
सुख की समेटि राशि बिधिनै तहाँ करी।
बासी ऐसे सर को उदासी भए बिछुरे तें,
'काशीराम' तऊ कहूँ ऐसी आसा ना करी।
पर्‌यो कोऊ काल ताते तक्यौ तुच्छ ताल लघु,
लट्यो जो मराल तौ चुनैगो कहा काँकरी॥५८॥

टीका—इहाँ प्रस्तुत मराल की प्रशंसा प्रशंसनीयता करि तत्सदृश प्रस्तुत जो छुद्रन सों याचना नहीं करै है ऐसे काहू मानी में पर्जवसित है यातें सामान्य निबंधना अप्रस्तुतप्रशंसालंकार। यामैं जग कवि पाँच भेद लिख्यो ताको विवेचन ग्रंथ कर्ता के अलंकार के उदाहरण में लिखैंगे ग्रंथ बिस्तार भय सों यहाँ नहीं लिख्यो ॥५८॥

१—जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) के वर्णन से प्रस्तुत (उपमेय) लक्षित कराया जाय वहाँ पर अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है। इसके ५ भेद हैं—१–सामान्यनिबंधना, २–विशेषनिबंधना, ३–कार्यनिबंधना, ४–कारण-निबंधना, ५–सारूप्यनिबंधना। सामान्य अप्रस्तुत से जहाँ विशेष प्रस्तुत लक्ष्य हो वह सामान्य निबन्धना है। जैसे उक्त दण्डक में सामान्य मराल के वर्णन से किसी विशिष्ट विद्वान् का वर्णन अभिप्रेत है।

काँकर = कंकड़। पन्ना = मरकत मणि। पौरी = प्रतोली, ड्योढ़ी। परीजा = हरापन लिये नीले रंग का एक बहुमूल्य पत्थर। चहुँघा = चारों ओर। लट्यो = पस्त पड़ा हुआ। काँकरी = कंकड़ ॥५८॥

कवि—अमर **(उल्लेख)**

दंडक—काली अरधंग ले कपाली मुंडमाली चल्यो,
देखे लोहू लाली को हुलास भयो प्यासे को।
कोप्यौ रोप्यौ 'राइ रघुनाथ' कौन समुहाय,
राइ उमरायन के परौ जिउ सासे को।
पातसाहि जहाँ बैठो जंग जोरि तहाँ स्वच्छ,
साहसी अमर सिंह रोप्यौ रन रासे को।
लै लै छरा दौरी अपछरा पहिराइबे कौं,
आसन सों आयो पाकसासन तमासे को ॥५९॥

टीका—इहाँ काली सहित कपाली और अपसरा आदि को अपने अपने मनोरथ लाभ के कारन अनेकन मिलि येक जन कों बहुबिधि ठहरायो यातें प्रथम उल्लेख अलंकार ॥५९॥

कवि—मुकुंद **(दीपकावृत्ति)**

दंडक—चले चंद्रबान, घनबान औ कुहुकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रह्यौ।
चली जमडाढैं तरवारैं चलीं चले सेल्ह,
लोह आँजें जेठ के तरनि मानौ त्यै रह्यौ।
ऐसे में मुकुंद सिंह हाथिन चलाइ दल,
रिपु के चलाइ पाइ बीररस वै रह्यौ।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
एते चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यौ ॥६०॥

टीका—इहाँ हय चले हाथी चले आदि पद में चले चले यह चलिबो क्रिया की आवृत्ति और अर्थ समान यातें पदार्थावृत्ति दीपकालंकार ॥६०॥

(विषम[1])

जथा—चंड लगी रबि की किरनैं खलवाट की डाढ़ि 'मुकुंद' तचावै।
सो श्रम मेटिबे कौं तकि छाँह सुबेल के बृक्ष तरे चलि आवै ॥

कपाली = शिव। हुलास = प्रसन्नता। समुहाय = सामना करना। छरा = माला। पाकसासन = इन्द्र ॥५९॥

चन्द्रबान = अर्द्धचन्द्राकार बाण। घनबान = जिनके प्रहार से धाढ़क उत्पन्न हो जाते हैं। कुहकबान = जिनके छोड़ने पर कुहरा छा जाता है। सेल्ह = बर्छी ॥६०॥

१—विषम का अर्थ है अयथायोग्य या अननुरूप। यह तीन प्रकार का होता है—(१) अननुरूप वस्तुओं का एक साथ होना, (२) ऐसे ही कारण से

त्यौं फल ऊँचे ते टूटि महा, सिर पै परि फूटि कै शब्द सुनावै।
भाग विना नर सुक्ख को ध्यावै पै दुक्ख दई तिहि दूनो दिखावै।६१।

टीका—इहाँ भाग्य रहित [खल्वाट] पुरुष अपने भ्रम मेटिबे के अर्थ भाग्यवश बेल की छाया को आश्रय कियो सो अपने इष्ट के उद्यम सों बिल्वफल पतन जनित शिरोभंग रूप अनिष्ट फल कों प्राप्त भयो, याते तृतीय विषम अलंकार स्पष्ट है। "अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात्। भक्ष्याशया हि मंजूषां दृष्ट्वाखुस्तेन भक्षितः" ॥इति॥६१॥

कवि—सिरोमनि　　(उत्प्रेक्षा)

स०—एक समै हरि सों बिपरीत करै वृषभानु सुता रसछाकी।
छूटे ललाट 'सिरोमनि' बार निहारै लगी छबि छीन घटाकी॥
माँग तें छूटत मोतिन के लर यौं उपमा तहँ लागत ताकी।
दाबे बिधुंतुद के बिधुतें दरराइ चली मनो धार सुधाकी॥६२॥

टीका—इहाँ बिपरीत रति में नायिका के माँग सों मोतिन की लड़ी को टूटि के गिरबों संभाव्यमान पद, ताकों बिधुंतुद राहु के दशन के हेतु सों चंद्रमा सों अमृत की धार कढी यह अहेतु को हेतु करि उत्प्रेक्षा असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार॥६२॥

(काव्यलिंग[२])

जथा—दादुर चातक मोर करो किन सोर सुहावन कै भरु है।
नाह तेही सोइ पायौ सखी मुहि भाग सोहागहु को बरु है॥
जानि 'सिरोमनि' साहिजहाँ ढिग बैठ महा बिरहा हरु है।
चपला चमको गरजो बरसो घनपास पिया तौ कहा डरु है॥६३॥

भिन्न कार्य का होना, (३) अच्छे उद्यम का बुरा परिणाम होना। उक्त पद में तीसरा प्रकार है जो टीका में स्पष्ट है।

१—चन्द्रालोक ५।८९। खल्वाट = गंजी खोपड़ी वाला व्यक्ति। तचावै = जलाती है। दई = दैव, भाग्य॥६१॥

बार = बाल, केश। बिधुंतुद = राहु। दरराइ चली = विदीर्ण होकर बह चली॥६२॥

२—किसी समर्थनीय अर्थ का समर्थन जहाँ युक्तिपूर्वक किया जाय वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है। काव्यलिङ्ग का अर्थ है—काव्य का अभिमत स्वरूप, अधिक टीका में स्पष्ट है।

मुहि = मुझको। भरु = भारी। बरु = बल॥६३॥

टीका—इहाँ दादुर चातक मोर घन मेघ और चपला आदि उद्दीपन विभाव काम क्लेश जनित दुख के देन हारे सों उत्पन्न दुख दूरि करिबे के अर्थ नायक को निकट ठहराय दूरी करन को समर्थन करै है, यातें काव्यलिंग अलंकार स्पष्ट है ॥६३॥

कवि—गंग (परिसंख्या[1])

एक बच्यो सुर राज हथी पसु तावल बाड़व औरन होनो।
और सबै बकसे बलबीर बचे रबि के रथ के हय दोनों॥
'गंग' कहै कर उन्नत देखि सुमंगन मौज मुनी तजि मौनो।
लंक सुमेर लुटाइ दई है रह्यो मुँह सालिगराम के सोनो॥६४॥

टीका—बीरबर के दान वर्णन में एक इन्द्र को हाथी और सूर्य के सात घोड़े बचे, अवशिष्ट सावत्सांसारिक हाथी, घोड़े रहे सो सब विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान करि दियो। एक स्थान में वस्तु को निषेध करि दूसरे स्थान में युक्ति सों स्थापन कियो यातें परिसंख्यालंकार स्पष्ट है ॥६४॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

जौहरी लोग जवाहिरी जाचक दानी औ सूम की कीरति गावैं।
तीन के भौन को स्वाल कहा जिमि हाल के देखे हवाल बतावैं॥
'गंग' भनै कुल धर्म छपै नहि चाम की टूकरी काम न आवै।
स्यारथरी में खुरी पुँछ कंछर सिंहथरी मुकता गज पावै॥६५॥

टीका—इहाँ दानी और सूम के प्रस्ताव में स्यार और सिंह के स्थान में खुरी पुच्छ कंछर और गजमुक्ता की प्राप्ति वर्णन को काहू महाशय और दुर्जन को सेवन में पर्यवसान है, यातें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार स्पष्ट है ॥६५॥

(उल्लेख)

दंडक—नवल नवाब खानखाना जू तिहारी धाक
भागे देशपती धुनि सुनत निसान की।

१—(परिसंख्या = नियमन) एक स्थान में किसी वस्तु का निषेध करके अन्यत्र उसी का स्थापन करना परिसंख्या अलंकार होता है। उक्त छंद में सभी हाथी, घोड़ों और सुवर्ण का बीरबल ने दान कर दिया, कहकर सर्वत्र उनका निषेध होने पर भी इन्द्र का हाथी सूर्य के घोड़े और शालिग्राम शिला में सुवर्ण बच गया, कहकर उनका स्थापन किया गया है, अतः परिसंख्या अलंकार है।

स्वाल = सवाल, प्रश्न। हाल = अवस्था, दशा। हवाल = वृत्तान्त। चाम की टूकरी = चमड़े की टुकड़ी। स्यारथरी = सियार की वास भूमि। सिंहथरी = सिंह का वासगुहा। कंछर = मछली के शिरोभाग की हड्डियाँ ॥६६॥

'गंग' कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छोड़ि,
फिरैं बिल्लानी सुधि भूली खान पान की।
कहूँ मिली हाथिन हरिन बाघ बानरन,
उनहूँ तें रच्छा भई उनही के प्रान की।
सची जानी गजन भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ॥६६॥

नवाब खानखाना के दानवर्णन में भय करि बनकों भागि गईं बैरी बधू-जनकों हाथी, हरिण, व्याघ्र और बानर आदि सची, भवानी, चन्द्रमा और जानकी करि अनेक मिलि बहुबिध देखशे यातें उल्लेखालंकार स्पष्ट है ॥६६॥

(पदार्थवृत्ति निदरसना)[1]

सवैया–मेटि कै चैन करै दिन रैन ज्यौं चाकरी ये न सदा सुखकारी।
ताको न चेत धरे गुन को भए नेकु सो लेस निकारत गारी॥
लेहैं कहा हम छाँड़ि महाप्रभु हैं जु महा रिझवार बिहारी।
राज को संग कहै 'कवि गंग' सुसिंघ को संग भुजंग की यारी॥६७॥

टीका—इहाँ राजसंग अर्थात् राजसेवा कों भुजंग की मित्रता और सिंह को संग करि बरन्यों, यातें पदार्थवृत्ति निदर्शना अलंकार ॥६७॥

कवि—बीरबल 'ब्रह्म' (उत्प्रेक्षा)

कवित्त–एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मंजु रसालहिं।
डीठि गई चलि मोहन की बृषभानुसुता उर मोती की मालहिं॥
सो छबि 'ब्रह्म' लपेटि लई कर सो कर लै करकंज सनालहिं।
ईश के सीस कुसुंभ के माल मनो पहिरावत ब्यालिनि ब्यालहिं॥६८॥

१—निदर्शना का अर्थ होता है 'रचना को दिखाना'। जो, सो पद इसके बाचक होते हैं। यह तीन प्रकार की होती है। (१) वाक्यार्थवृत्ति निदर्शना—जहाँ उपमान या उपमेय वाक्यार्थों का उपमेय या उपमान वाक्यार्थ में अभेदेन आरोप होता है। (२) पदार्थवृत्ति निदर्शना—जहाँ दो समान पदार्थों का एक पदार्थ में अभेद से आरोप होता है। (३) क्रियावृत्ति निदर्शना—जहाँ क्रिया से असत् और सत् अर्थ का बोध होता है। उक्त पद में पदार्थवृत्ति निदर्शना है क्योंकि राजा के संगरूप पदार्थ में सिंह या भुजंग के संगरूप पदार्थ का आरोप किया गया है।

रिझवार = रीझनेवाला ॥६७॥

टीका—इहाँ श्रीकृष्णचन्द्र जी राधा की छबि को देख्यो, संभाव्यमान पद, ताको ईस महादेव को सीस मस्तक कुच, व्यालिनि रोमाली, हाथ को प्रतिबिम्ब युक्त मोती की माल व्याल करि उत्प्रेक्षा। अनुक्तास्पदा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥६८॥

एक समै वृषभानुसुता गई प्रात समै सरिताहि के खोरन।
अंगन धोइ अँगौछति अंगन बाहर बैठि के केश निचारन॥
'ब्रह्म' भनै तिनकी उपमा जल के किनका परे बार के छोरन।
मानहुँ चँद को चूसत नाग अमी रस च्वै चलो पूँछि की वोरन॥६९॥

टीका—इहाँ स्नान के अनंतर तट के ऊपर आय राधा के केश निचोरने सों जल को बहिबो तु संभाव्यमान पद अहेतु, ताको चंद्र कों अमृत के अर्थ चूसि रहो नाग के पूँछि के मार्ग अमृत रस को प्रवाह बहि चल्यो करि उत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ॥६९॥

जथा—केलि समै बिपरीत रची मचि किंकिनि की करिहाँ धुनि ऊपर।
बेंदी जराव की टूटी ललाट सों जाय परी नंदनंदन जू पर॥
'ब्रह्म' भनै बन्यौ बेनी की छोर बिराजत है द्रिग चंचल भू पर।
पुच्छ पटकि मनो अहिराज मरो मनि काज मयंक के ऊपर॥७०॥

टीका—नंदनंदन और राधा के बिपरीत [रति] वर्णन में राधा को टीको नंदनंदन के ऊपर गिरि पर्‍यो, सो बेनी की छोर जुक्त चंचल नेत्र पर राजै है ताको कवि ऐसो उत्प्रेक्षा करै है कि मानो पूँछि को पटकि अहिराज अपनी मणि के अर्थ चन्द्रमा के ऊपर गिरि कै मरि गयो। इहाँ बेंदी केश और मुख संभाव्यमानपद अहेतु ताको अहिराज अपनी मणि के अर्थ पूँछि पटकि चन्द्रमाके ऊपर जाय मर्‍यो यहि भाँति उत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्टहै॥७०॥

कवि—प्रताप (अतिशयोक्ति)

कवित्त–कोटि उपाय किए हिय सों रचि बातन सों न सनेह दुरो परै।
सूधे सुभाय बिना बनितान के क्यों करिकै मन मान सुरो परै॥

खोरन = स्नान के लिये। किनका = बूँद। पूँछि की वोरन = पूँछ की ओर॥६९॥

किंकिनि = करधनी। करिहाँ = कटि। जराव की = रत्नजड़ित। अहिराज = नागराज। मयंक = चन्द्रमा॥७०॥

सुरोपरै = मुड़ (लौट) पड़ता है। नेम = नियम। अरविंदन...ढुरो परै = कमलों से पराग गिर रहा है अर्थात् आँखों से आँसू ढुलक रहे हैं॥७१॥

चाखिए ना विष भाषिए साँचु जौ राखिये नेम तौ प्रेम पुरो परै।
आजु प्रभात समै लखी मैं अरबिंदन सों मकरंद ढुरो परै॥७१॥

टीका—इहाँ अरबिंदन सों मकररंद ढुर्यो परै इस पद में अरबिंद पद सों नेत्र और मकरंद पद सों आँसू केवल उपमान पद को उपादान यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है। और असाधारण चिह्न देखि मानपूर्वक व्यंग्य करै है यातें मध्याधीरा नायिका॥३४६॥

(भ्रान्ति[1])

सवैया–खेलत खेल नयो जल में बिन काज बृथा कत जाम बितावै।
छोड़ि के साथ सहेलिनिके रहिकै यह कौन सवादहिं पावै॥
सीख सिखाए न मानति है बरहूँ बस संग सखीन के आवै।
ए री यौं बानि क्यौं तेरी परी नित नीर भरी गगरी ढरकावै॥७२॥

टीका—इहाँ नीर भरी गगरी ढरकावै है, तामें यह व्यंग—नायिका गगरी में अपने नेत्र को प्रतिबिंब देखि मीन के भांति सों ढरकाय देय है। याते भ्रांतिमान अलंकार और अपनी जुवा अवस्था को नहीं जानै है, यातें अज्ञातयौवना नायिका॥३४७॥

कवि—प्रसाद (विरोधाभास[2])

सवैया–जमुना तट कुंज कदंब तरे मनमोहन साथ लिये सखियाँ।
पट पीत दुकूल सुमाल गरे सिर सोहत मोरन की पँखियाँ॥
'परसाद' हितौनि चितौनि चितै मुहि राखत घायल की रखियाँ।
जबतें अँखियाँन लगी अँखियाँ तबतें कबहूँ न लगै अँखियाँ॥७३॥

टीका—इहाँ आँखि [जब सों] कृष्नचन्द्र की आँखिन सों लगी तबसों आँखें नहीं लागती, यह बिरोध, यातें बिरोधाभास अलंकार॥७३॥

१—अत्यन्त समानता के कारण उपमेय को उपमान समझ लेना भ्रान्ति अलंकार कहलाता है। उक्त पद में स्पष्ट भ्रान्ति तो नहीं है किन्तु व्यङ्ग के द्वारा प्रतीत होती है जो टीका में स्पष्ट है।

२—जहाँ विरोध का आभास (प्रतीति) मात्र हो, वस्तुत: विरोध न हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। जैसे उक्तपद में जबसे कृष्ण की आँख से आँख मिली तब से आँख नहीं लगती, यह शब्दों से तो विरोधसा प्रतीत होता है किन्तु आँख नहीं लगी (नींद नहीं आयी) इस अर्थ से विरोध का परिहार हो जाता है।

जाम = प्रहर। बानि = आदत॥७२॥ दुकूल = रेशमीवस्त्र। हितौनि = प्रेमभरी। चितौनि = चितवन, दृष्टि से। चितै = देखकर। मुहि = मुझको॥७३॥

कवि—राजा जसवंतसिंह (सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा)

दंडक—केलि करि सोए जोए वोए रसमोए दोये,
कोये लाल सोये की लोनाई रस चाख्यौ है।
उठि अँगिरात सो जम्हात 'जसवंत सिंह',
रूप लखि भूपर तिहूँपुर को माख्यौ है॥
हेम हिलकोर चोर आखत अरुन भूमि,
बेंदा रस कलित कपोल अभिलाष्यौ है।
मारतंड मंडल सबालबीजुरी सों बाँधि,
मानो चन्द्रमंडल में मैन धरि राख्यौ है॥७४॥

टीका—नायिका के कपोल पै बेंदा पर्यो ताको उत्प्रेक्षा। कपोल पै बेंदा परो केस जुत संभाव्यमान पद ताकों मैन काम चन्द्रमंडल से सूर्यमंडल को बीजुरी सों बाँधिबो करि उत्प्रेक्षा सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है॥७४॥

(संभावना)

आई ब्रह्मलोकतें अचंभ अम्बरूप धरे,
प्रभुता बढ़ायो है भगीरथ के भाल को।
धार की धुकार लोक लोकन पुकार परी,
रही न सँभार सुरपाल को न काल को॥
कहै 'जसवंत' जस गावते उमाके कंत,
खेलन खेलाइ मेल जटन के जाल को॥
गंगा की अलील जौ न हेलतौ गिरीस तौ,
कमंडल सों जातो महि मंडल पताल को॥७५॥

टीका—इहाँ गंगा की धार जौ शिव अपनी जटा पै न रोकतो तौ पाताल को चली जाती। जौ तौ पद करि संभावनालंकार स्पष्ट है॥७५॥

१—वाक्यान्तर की सिद्धि के लिये "यदि ऐसा होता" इत्यादि से जहाँ सम्भावना व्यक्त की जाती हो वहाँ सम्भावना अलंकार होता है। यहाँ कुवलयानन्दकार अप्पय दीक्षित का यह उदाहरण स्मरणीय है—

कस्तूरिका मृगाणामण्डाद्गन्धगुणमखिलमादाय।
यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिह्वायां निवेशयिष्यामि॥

धुकार = शब्द। सुरपाल = इन्द्र। काल = यमराज। उमाके कंत = शिव जी। अलील = लीला। हेलतौ = सँभालते॥७५॥

कवि—श्रीपति (फलोत्प्रेक्षा असिद्धविषया)

सवैया—भोर भए तकिया सों लगी तिया कुंतलपुंज रहे बगराइकै।
पँकज सों कर के तल ऊपर गोल कपोल धरे अलसाइकै॥
आनन पै बिलसै रद की छद 'श्रीपति' रूप रहे अति छाइकै।
मानहु राहु सो घायल ह्वै बिधु पौढ़े हैं बारिज सेज बिछाइकै॥७६॥

टीका—नायिका को प्रातःकालीन छबि बर्णन। रात्रि काम कलोल करते प्रभात भयो। तकिया पै औंध केश बिथारि, आरस भरी हाथ पै गोल कपोल नखक्षत बशिष्ट धरि सोय रही है। इहाँ पंकज पानि, तापै नखच्छत बिशिष्ट गोल कपोल संभाव्यमान पद ताकों राहु सों घायल ह्वै सरोज सज्जा बिछाय चन्द्रमा को पौढिबो करि उत्प्रेक्षा असिद्धबिषया फलोत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है॥७६॥

(रसनोपमा[1])

दंडक—कैसे रति रानी को सिंधोरा कहि 'श्रीपति जू',
जैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे हैं।
कैसे कलधौत के सरोरुह सँवारे कहि,
जैसे रूप नट के बटाऊ छबि धारे हैं।
कैसे रूप नट के बटाऊ छबि धारे प्यारे,
जैसे काम भूपति के उलटे नगारे हैं।
कैसे काम भूपति के उलटे नगारे भारे,
जैसे प्रानप्यारी ऊँचे ऊरज तिहारे हैं॥७७॥

टीका—इहाँ एक को छोड़ि एक की उपमा यातैं रसनोपमालंकार स्पष्ट है॥७७॥

कुंतलपुंज = केशसमूह। बगराइकै = बिखरे हुए। रद की छद = ओठ, पौढ़े = सोया है। वारिज सेज = कमल की शय्या॥७६॥

१—रसनोपमा वहाँ होती है जहाँ पूर्व-पूर्व उपमा में जो-जो उपमेय रहा हो उसे अगली-अगली उपमा में उपमान बनाया जाय, जैसे उक्त दण्डक में कलधौतसरोरुह (स्वर्णकमल) जो उपमेय था वह अगली उपमा (रूपनट के बटाऊ) में उपमान हो गया इसी प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

रसना करधनी का नाम है ('स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रसना तथा' —अमर)उसमें लगे हुए घुँघरुओं में परस्पर जैसा पूर्वापर भाव रहता है वैसा ही इस अलंकार में उपमान और उपमेय के लिये है अतः इसका रसनोपमा नाम है।

सिंधोरा = सिंदूर रखने का डिब्बा। कलधौत = सुवर्ण। बटाऊ = पथिक। ऊरज = स्तन॥७७॥

(विरोधाभास[1])

सवैया—जोति को ध्यान धरो जबहीं तब साँवरी मूरति आनि अरूझै।
ऊधो उपाइ कहा करिए गुरलोगन तें कहो कौन सरूझै।
है कोऊ ऐसो हितू जग 'श्रीपति' जो अपने हिय की गति बूझै।
साँमरे रंग रँगी अँखियाँ सिगरो जग सामरो सामरो सूझै ॥७८॥

टीका—इहाँ साँवरे रंग में मेरी आँखि रँगि गईं यातें सिगरो जग साँवरोई साँवरो सूझै यह विरोध, यातें विरोधाभास अलंकार स्पष्ट है ॥७८॥

कवि—ठाकुर (हेत्वपह्नुति[2])

दंडक—घन ए न होहिं घन काहे को करत सोच,
चंचला न होहिं एक चरित नयो है री।
जज्ञ ते उठी है लूक कौन जज्ञ कौने करी,
अग्र हो बतावो कहा कौतुक भयो है री।
'ठाकुर' कहत आए घर घर कंत बाढ़ो,
आनँद अनंत अंत सोध मैं लयो है री।
बारिद औ बिरह करो है बिरहिनि होम,
तौन धूम आनि आसमान मैं छयो है री ॥७९॥

टीका—इहाँ नायिका के बिरह बर्णन में मेघ को धर्म दुराय बारिद और बिरह के जज्ञ में बिरहिनि होम को धूम छायबो आरोप, यातें हेत्वपन्हुति अलंकार स्पष्ट है ॥७९॥

१—देखिये पृष्ठ ६४ टि०। वास्तव में इस पद्य में 'सम्पूर्ण जगत् सांवरो ही दिखाई देता है' इस समर्थनीय अर्थ का समर्थन 'आंखों के सांवरे रंग में रंगने' रूप अर्थ से किया गया है अतः स्पष्ट ही काव्यलिङ्ग और विरोधाभास की संसृष्टि है।

जोति = ज्योति, ब्रह्म। अरूझै = उलझ जाती है। सरूझै = सुलझा दें। अपने हिय की = मेरे हृदय की। साँमरे = श्यामल, साँवरे। सिगरो = संपूर्ण ॥७८॥

२—जहाँ वस्तु का कोई कारण देकर निषेध किया जाय वहाँ हेत्वपह्नुति होती है। जैसे उक्त कवित्त में—'यह बादल बादल नहीं है' इस निषेध में 'विरहिणी ने विरहाग्नि में जो आँसुओं का होम किया उससे उठा हुआ धूम है' यह कहकर धूम की उत्पत्ति का कारण दे दिया है।

घन = बादल। घन = अत्यन्त। चंचला = बिजली। लूक = लपट। अग्र हो = शीघ्र ही। सोध = खोज ॥७९॥

(काव्यलिंग)

स०—अब का समुझावति को समुझै बदनामी की बीजन बै चुकी री।
यतनोई बिचार कियो मन मैं यहि जाल परे कहो क्यों चुकी री॥
कहि 'ठाकुर' को अब रीति चलै करि प्रीति पतिव्रत ख्वै चुकी री।
अब नेकी बदी जो बदी हुती भाल मों होनी रही सो तो ह्वै चुकी री॥८०॥

टीका—इहाँ नायक की प्रीति को होनी रही सो तो है चुकी जो भाल भाग्य में होय है सोई होय हैं, भाग्यवश करि समर्थन कियो यातें काव्यलिंग अलंकार स्पष्ट है ॥८०॥

(सामान्य निबंधना)

स०—एक ही सों चित चाहिए ओरलों बीच दगा को परै नहि डाको।
मानिक सों मन मोल लियो पुनि फेरि कहा परखायबो ताको॥
'ठाकुर' काम नहीं सबकों यह लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति करे में कहा धौं लगै करि कै फिरि ओर निबाहिबो वाको॥८१॥

टीका—इहाँ प्रीति करते कहा है करिकै फिरि वाको निबाहिबो कठिन, यह सामान्य बात प्रस्तुत नायक को आश्रय, यातें सामान्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार स्पष्ट है ॥८१॥

(पर्य्यायोक्ति[1])

ठाढ़ी रहो न भगो न डरो तुम खेलन देहु जु खेल जो ख्यालहिं।
गावन दे री बजावन दे री जु आवन दे री इतै नंदलालहिं॥
'ठाकुर' हौं रँगिहौं रँग मैं अरु बोड़िहौं बीर अबीर गुलालहिं।
धूँधुरि मैं धुँधकी मैं धमारि मैं हौं धरिहौं धरिलेहौं गुपालहिं॥८२॥

१—पर्यायोक्ति (पर्याय = प्रकारान्तर से, उक्ति = कथन) जहाँ किसी बात को सीधे न कहकर प्रकारान्तर से कहा जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में कृष्ण से मिलकर अपनी अभिलाष पूर्ति करूँगी, इसे सीधे रूप में न कहकर होली के बहाने घुमा फिरा कर कहा गया है।

बीजन बै चुकी = बीजों को बो चुकी। बदीहुती = बँधी थी ॥८०॥

ओरलों = अन्त तक। परखायबो = परीक्षा करवाना ॥८१॥

ख्यालहि = खेलते हैं। बोड़ि हौं = डुबा दूँगी, रंग दूँगी। धूँधुरि = धुँधले में, जब अबीर गुलाल से धुआँ सा छा गया हो। धुँधकी = शोरगुल। धमारि = उछलकूद। हौं धरिहौं = मैं धरा (पकड़ा) जाऊँगी। धरि लेहौं गुपालहिं = कृष्ण को धर (पकड़) लूँगी ॥८२॥

टीका—इहाँ फागु के धूँधरि ब्याज करि कृष्णचन्द्र सों मिलिबो अपनो इष्ट साधन कियो, यातें पर्य्यायोक्त अलंकार ॥८२॥

(लोकोक्ति[1])

चारिहुँ वोर उदै मुख चन्द सों चाँदनी चारु निहारिले री।
तापै अधीर भयो पिय प्यारो मतोई बिचार बिचारिले री॥
कवि 'ठाकुर' चूकि गये जो गोपाल सौ तूँ बिगरे को सँभारिले री।
ह्वैहै न रैहै री या समयौ बहती नदी हाथ[2] पखारिले री॥८३॥

टीका—सखी नायिका के मान कों उद्दीपन और मिलिबे को अवसर देखाय 'बहती नदी [में] हाथ पखारिबो' लोकोक्ति दरसाय छोडावै है, यातें लोकोक्ति अलंकार ॥८३॥

(अर्थांतर गर्भित छेकोक्ति[3])

लगी अंतर की करै जाहिर को बिन माहिर का कवि आनत है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ जितो घरकी कोउ बाहिर आनत है॥
कहि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानत है।
परबीन मिले बिछुरे की बिथा मिलिकै बिछुरे स्वै जानत है॥८४॥

टीका—इहाँ कलहांतरिता नायिका को पश्चाताप में परबीन को मिलिबो और बिछुरिबो अर्थान्तर करि काहू सखी पूछयो, काहू ते बियोग जनित दुख देखाय पर्जवसित करै है, यातें छेकोक्ति अलंकार ॥८४॥

(लोकोक्ति)

सवैया—जानत तीय न आपनै भेद परारे पिया यह बेदन गाई।
जो वर हेरि कै प्रीति करी गुन लोगनि मैं कुलकानि गँवाई॥
'ठाकुर' ते न भये अपने अब कौन सो दोस लगावत माई।
दूध की माखी उजागर बीर सो हाय मैं आँखिन देखत खाई॥८५॥

१—जहाँ लोक में प्रचलित किसी कहावत के द्वारा कथनीय अर्थ को कहा जाय वहाँ लोकोक्ति होती है। जैसे उक्त पद में नायिका को रति का सुन्दर अवसर दिखाकर, मान छोड़कर प्रियतम से रमण करो ऐसा न कह कर 'बहती गंगा में हाथ धो लो' इस प्रसिद्ध लोकोक्ति द्वारा कहा गया है।

२—हि० सा० का इतिहास पृ० ४५८ में 'पाँय पखारिले री' पाठ है।
वोर = ओर। बिचारि = अच्छी प्रकार। पखारिले = धो ले ॥८३॥

३—लोकोक्ति का ही अनुसरण करके जब किसी विशेष अर्थ को व्यक्त किया जाय तब छेकोक्ति कहलाती है अर्थात् अर्थान्तर गर्भित लोकोक्ति को ही छेकोक्ति कहते हैं।
माहिर = प्रवीण। स्वै = वही ॥८४॥

टीका—इहाँ नायक नायिका सों संकेत ठानि वा स्थल को न आयो ताछिन विप्रलब्धा नायिका पश्चात्ताप करै है, ताको बचन। इहाँ दूध की माछी देखत खाने से नहीं पचै है, वान्त ह्वै जाय है। तासों दुख मिलै है। यह लोक प्रवाद को अनुकरन करि लोकोक्ति अलंकार ॥८५॥

काहे अरे मन साहस हारत काहे बरे यह देह तजै है।
कै सुख ए दुख आए चले सदा येकसी रीति रही है न रैहै॥
'ठाकुर' वाको भरोसो कियों रहो जाके बिसास ते हारिन ऐहै।
जाने सँजोग में दीन्हे बियोग बियोगमें सोक संजोग न दैहै॥८६॥

टीका—इहाँ योग में बियोग और वियोग में शोक संयोग को न देयबो यह लोक की कहनावत करि लोकोक्ति अलंकार ॥८६॥

कवि—मन्य (लोकोक्ति)

गई साँझ समै की बदी बदिकै बड़ी बेर भई निसा जान लगी।
अति सूध बलाइबे की बतियानहिं जानिए काधौं बतान लगी॥
'कवि मन्यजू' जानी दगैलन छैलन छैल की छाती निदान लगी।
अब कौन को कीजै भरोसो भटू निज बारिये खेती ये खानलगी॥८७॥

टीका—इहाँ निज बारियै खेती को खाने लगी यह लोक रीत कहनावत। यातें लोकोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥८७॥

जथा—मैं न गई पठई हरि पै निज भागिन दोसन तो कहँ देती।
कीन्हों भलो जो करे अब स्वारथ जानि परी परकारज हेती॥
'मन्य जू' येरी बनाई सबै चतुराई करी अब जानि कै जेती।
के गनि बाँधि नफा सजनी पर हाथ बनीज सनेसन खेती॥८८॥

बेदन = वेदना, दुःख। कुलकानि = कुल की मर्यादा। दूध की माछी··· देखत खाई = जान बूझकर गलती की ॥८५॥

बदी = प्रतिज्ञाकी हुई। बदि कै = बन ठन कर। दगैलन = धोखेबाज। छैलन = रसिक नायक को। छैल की···निदान लगी = अवश्य ही रसिक दूती का स्तनस्पर्श आनन्द दे गया। निज बारिये खेती ये खान लगी = रक्षक ही भक्षक हो गया ॥८७॥

परहाथ बनीज = दूसरे के हाथ से व्यापार। सनेसन = संदेशों से ॥८८॥

टीका—इहाँ अन्य संभोग दुःखिता नायिका को बचन किसने नफा पाई है कि पराये हाथ बनिज और सनैसन खेती करि यह लोक प्रवाद को अनुकरण यातें लोकोक्ति ही अलंकार ॥८८॥

कवि—महाकवि **(उल्लास[1])**

दंडक—आमिली के पातन की पातरी बनाइ रचि,
पातरी सो आगें धरि वाको जस ठान्यौ है।
देती है असीस हठि माँगै बकसीस बड़ी,
वाके भई सीस पीर बैनभेद जान्यौ है॥
'महा कवि' पहिचानि करिकै बिस्वास द्रिढ,
होइ के उदास उर थाल बेर आन्यौ है।
कीन्ह्यौ है प्रगट गुन मान्यौ नही नेकु गुन,
कीन्हो है सगुन असगुन करि जान्यौ है॥८९॥

टीका—इहाँ आमिली के पातन की पतरी बनाइबो बारिनि को गुन सो नायिका को ऐगुन भयो यातें उल्लास अलंकार, और आमिली वाको संकेत रह्यो ताही को पात लाय पतरी बनाय वाके आगें धरी, यातें नायिका को दुःख भयो, यातें सँकेतविघट्टना पहिली अनुशयाना नायिका स्पष्ट है ॥८९॥

(लोकोक्ति)

सवैया—एक ही सेज पै राधिका माधव धाइ लसे सों सुभाइ सलोने।
राख्यौ 'महाकवि' काहू के मध्य सुराधा कह्यौ यह बात न होने॥
साँवरी होहुँगी साँवरे संग मैं बावरी बात सिखाई है कौने।
सोने को रंग कसौटी लगै पै कसौटी को रंग लगै नहि सोने॥९०॥

टीका—राधा कृष्न एक ही सजा पै बिराजे हैं वा समै के विलास में राधा को निज सौन्दर्य ठहराय कृष्नचन्द्र सों बचन ताको उत्तर—इहाँ सोने को रंग कसौटी में लगै है और कसौटी को रंग सोने में नहीं लगै है यह लोक रीति दरशाय अपनो और राधा जी को अंग संग ठहरायो यातें लोकोक्ति अलंकार ॥९०॥

कवि—रसखानि **(उल्लास)**

सवैया-मान की औधि है आधी घरी अरु जो 'रसखानि' डरै हित कै डर।
कीजिये नेह न छोड़िये पा परौं ऐसे कटाक्ष महा हियराहर॥

१—जहाँ किसी एक के गुण या दोष से दूसरे के गुण या दोष का वर्णन किया जाय वहाँ उल्लास अलंकार होता है।

बैनभेद = स्वरभेद ॥८९॥

बाल गोपाल को हाल बिलोकु री नेक छुए किन दे कर से कर।
ना कहिवे पर बारे हैं प्रान कहा अब वारिहैं हाँ कहिबे पर।।९१।।

टीका—मानवती नायिका को युक्ति सों सखी मान छोड़ावै है कि लला जब तुम्हारे ना करिवे पर प्रान वारै है तो जौ तूँ हाँ करिहै तो कहा वारैंगे। यहाँ ना कहिबो दोष सो कृष्नचन्द्र को गुणभयो। यातें उल्लास अलंकार स्पष्ट है ।।९१।।

(व्यतिरेक[1])

सवैया—आए कहा कहिकै कहिए बृषभानलली ते लला द्रिग जोरत।
ता छिनतें अँसुआन के धारन तोरति जद्यपि लोक निहोरत ।।
बेगि चलो 'रसखानि' बलाइ ल्यौ क्यौं अभिमानतें भौंह मरोरत।
प्यारे पुरंदर होहि न प्यारी अबै पल आधक मैं ब्रज बोरत ।।९२।।

टीका—दूती राधिका को विरह निवेदन करै है, कृष्नचन्द्रसों ताकी उक्ति। इहाँ प्यारी पुरंदर नहीं होइ जाके मान को गोवर्द्धन नख पर धारन करि मर्दन कियो। अभी एक पल मात्र में विरह जनित अश्रुधारा सों संपूर्ण व्रज को बोरै है। यह पुरंदर सों याकी क्रिया विशेष देखाई यातें व्यतिरेकालंकार ।।९२।।

(प्रतिषेध[2])

जथा—मोर पखा सिर ऊपर बाँधि कै गुंज को माल हिये पहिरौंगी।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन गोधन संग फिरौंगी।।
जो रसखानि तजौं कुल कानि तौ तेरे कहे सब स्वाँग सजौंगी।
पै मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।।९३।।

टीका—अंतरंग सखी सों राधा की उक्ति—तुम्हारे कहिने सों सब कछू करौंगी परंतु मुरलीधर श्री कृष्नचन्द्र की अधरान धरी मुरली मैं अपने अधरान पै नहीं धरोंगी। इहाँ मुरली को अधर पै धरने को निषेध करै है यातें प्रतिषेध

१—(व्यतिरेक = उलटा) जहाँ उपमान से उपमेय में अधिक विशेषता दिखाई जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

पा परौं = पैरों पड़ती हूँ। हियराहर = चित्त को चुराने वाले ।।९१।।

निहोरत = निहोरा (खुशामद) करते हैं। पुरंदर = इन्द्र ।।९२।।

२—किसी प्रसिद्ध निषेध का विशेष अभिप्राय से जहाँ पुनः निषेध किया जाय वहाँ प्रतिषेध अलंकार होता है।

ओढ़ि = ओढ़कर। गोधन = ग्वाले। गोधन = गायों का झुण्ड ।।९३।।

अलंकार और मुरली को जूँठो ठहराय अपने अधर पै नहीं धरै है यातें धर्मसभीता नायिका और प्रिय भूषण को करिबो व्यक्त है यातें लीला हाव[1] ॥९३॥

कवि—वंसीधर (संदेह[2])

दंडक—दुसासन दुर्जन दुकूल गह्यो दीनवंधु,
दीन ह्वै के द्रौपदी दुलारी यौं पुकारी है।
छाड़ि पुरुषारथ को गाढ़े प्रिय भारथ भो,
भीम महभीम ग्रीव नीचे को निहारी है।
अम्बर जो अम्बर अमर कियो 'वंसीधर',
भीषम करन द्रोन सोभा यौं विचारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है कि,
सारी है कि नारी है कि नारी है कि सारी है॥९४॥

टीका—इहाँ द्रौपदी के वस्त्राहरन समय में भीष्म द्रोण आदि ने यहि भाँति देखयो कि सारी मध्य नारी द्रौपदी है कि नारी के मध्य सारी है, कि नारी है कि सारियै है, कि नारी है कि सारी है यह संदेह भयो यातें संदेहालंकार ॥९४॥

कवि—भूषन (पूर्णोपमा)

दंडक—कत्ता के कसक तेरे महावीर सिवराज,
रूम के चकत्ता लगि संक सरसाति है।
कासमीर कावुल कलिंग कलकत्ता कूट,
कुल्लू करनाटक की हिम्मत हेराति है।
बंकुल बिडाल बंक व्याकुल बलखपीर,
बारहों बिलायत सकल बिललाति है।
तेरी धाक धूँधुरि धरा मैं आनि धूम धाम,
अंधाधुंध आँधी सी धुँधाती दिन राति है॥९५॥

१—अत्यन्त भावावेश में आकर अङ्गों द्वारा, वेष, आभूषण अथवा प्रेम-पूर्ण उक्तियों द्वारा जो प्रियतम का अनुकरण किया जाता है वह 'लीला' नामक हाव कहलाता है।

२—दो पदार्थों को देखकर जहाँ यह तर्क उठे कि इनमें कौन उपमान है और कौन उपमेय, वहाँ सन्देह अलंकार होता है।

महभीम = भीम से बड़े, युधिष्ठिर। अम्बर = आकाश, वस्त्र ॥९४॥

कत्ता = छोटी टेढ़ी तलवार। कूट = पर्वत की चोटी। रूम = रोम (देश) चकत्ता = चगताई, वंश का (औरंगजेब)। कुल्लू = कुल्लू (पंजाब)। धूँधुरि = गर्द के कारण उत्पन्न अँधेरा ॥९५॥

टीका—इहाँ शिवराज महाराज की धाक उपमेय, आँधी उपमान, सी वाचक, धुँधायबो धर्म, चार्‍यों को उपादान यातें पूर्णोपमालंकार ॥९५॥

(विवृतोक्ति[१])

सवैया—केतक देश जिते दल के बल दक्षिन चंगुल बाँधि कै राख्यौ।
मान गुमान हतो गुजरात को सूरत को रस चूसि कै चाख्यौ॥
पंजन पेलि मलिच्छ दले अब सोई बच्यो जिन दीन ह्वै भाख्यो।
एई सिबा महाराज बली जिन नवरंग में रंग एक न राख्यो॥९६॥

टीका—प्रजा जन की उक्ति—एई शिवराज महाराज जिन्ह देश देश के राजन के दल को दलि डार्‍यो यह अंगुल्या निर्देशकरि कि जिन नवरंगजेब जामें नवरंग तामें एकौ रंग न राख्यो गुप्तश्लेषकों कबि प्रगट कियो यातें विवृतोक्ति अलंकार ॥९६॥

कवि—नंदन (उल्लास गुन-दोस बरनन)

सवैया—अलि आवौं न हौं पहिरावन तोहि कहाँ नित पावौं नई चुरियाँ।
तुम हाथ गहे तें ऐसो सिसको सिसकारी सुनाइ कै माधुरियाँ॥
'कबि नंदन' की चढ़ती नहरें घरी आधक दाबति आँगुरियाँ।
थोरि रहाती बलाइ ल्यौं यों चकचूर ह्वै जातीं सबै चुरियाँ॥९७॥

टीका—यहाँ सिसकी गुन, सो चूरी करकि जाने के कारन दोष भयो यातें उल्लास अलंकार और नायिका की सुकुमारता व्यंग्य ॥९७॥

कवि—तोष (संबंधातिशयोक्ति)

सवैया—गोपिन के अँसुआन के नीर पनारे बहे बहि कै भए नारे।
नारे रहे सो भईं नदिया नदिया नद ह्वै गईं काटि करारे॥
बेगि चलो तो चलो बृज को 'कबि तोष' कहै बृजनाथ हमारे।
सो नद चाहत सिंधु भयो अब सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल सारे॥९८॥

४—जहाँ किसी गुप्त रहस्य को कवि अपने कथन द्वारा प्रकट कर देता है वहाँ विवृतोक्ति अलंकार होता है।

पंजन पेलि = बघनख से आक्रमण कर। मलिच्छ = अफजल खाँ। नवरंग = औरंगजेब ॥९६॥

पनारे = घर के जल को बाहर निकालने वाली नालियाँ। नारे = नदी से छोटी जलधारायें। नद = बड़ी नदी। करारे = किनारे। हलाहल = विष ॥९८॥

टीका—गोपिन के विरह को दूतो वर्णन करै है श्री कृष्नचन्द्र सों। इहाँ गोपिन के आँसू बुंद पनारों के द्वारा वहि कर नदी को होबो, तिसके अनंतर नदी सों नद, तासों सिंधु, तासों हलाहल होबो अयोग में योग को कल्पना, यातें संबंधातिशयोक्ति अलंकार और विरह निवेदन दूती ॥९८॥

कवि—दास

दोवै—तुम बिछुरत गोपिन के अँसुवा बृज बहि चले पनारे।
कछु दिन गये पनारे तें वे उमगि चले जिमि नारे॥
वै नारे नद रूप भए हैं कहो जाइ कोइ जोवै।
सुनि यह बात अजोग जोग की है है समुद नदो वै ॥९९॥

टीका—इसी प्रकार दास कवि के कवित्त में गोपिन के विरह-जनित अश्रु प्रवाह को क्रम से दूसरो समुद्र होवो। अयोग में योग कल्पना यातें संबंधातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥९९॥

कवि—मंडन (विषाद[1])

सवैया-अब का करि कै घर जैयतु है कहि कासों सुनैयत बीति दई।
मनमोहन 'मंडन' ठीक ठई विधि जैसी लिलार लिखी सो भई॥
अलि और भई सो भई ही हुती पर एक जो बात ए बीति गई।
गति हूँ से गई मति हूँ से गई पति हूँ से गई रति हूँ से गई ॥१००॥

टीका—यहाँ संकेत स्थल कों जाय वहाँ प्रिय को न पाय गति हूँ तें गई और मति हूँ तें गई और पति हूँ तें गई, रति हूँ तें गई यह नायिका विषाद करै है। इच्छित सों विरुद्ध अर्थ मिलिबे के कारण विषाद अलंकार ॥१००॥

(सम[2])

दंडक—आँखैं देखिबे की हो सरस हिय नावै फेरि,
आप ही मनावै वह मोहन की बानि है।

१—अभीष्ट से विरुद्ध की प्राप्ति जहाँ हो वहाँ विषाद अलंकार होता है (विषाद का अर्थ है खेद, अपने अभिलषित को न पाकर खेद होना स्वाभाविक ही है)।

उमगि चले = उमड़ आये। जोवै = देखे। समुद = समुद्र। नदो वै = वे ही नद ॥९९॥

सुनैयत = सुनाई जाय। दई = दैव, भाग्य से। ठई = ठहराया। लिलार = ललाट। गति = परिणाम। मति = बुद्धि ॥१००॥

२—(सम = योग्य) विषम अलंकार का ठीक उलटा सम अलंकार होता है। इसके तीन प्रकार हैं—१—दो अनुरूप पदार्थों का वर्णन, २—कारण

जब जब ऐहैं झूठी बातनि छिकाइ लेहैं,
तब तब बावरी तैं ऐसी हठ ठानि है।
'मंडन' लला की कहूँ हाँसीखेल जानती न,
मेरो कह्यो मानती न अन्त फिरि मानि है।
आपको झुकावै ताको आपहूँ झुँकैए अरु,
झुँकिए झुकाए तौ सयानप की हानि है ॥१०१॥

टीका—इहाँ आपुको झुकावै ताको आपुहूँ झुकैए और आन के झुकाये पर झुकने सें चातुरी की हानि, यह दूती को अनुरूप वर्णन यातें समालंकार ॥१०१॥

कवि—शंभु (दृष्टान्त[1])

सवैया-नलिनी जलमध्य को आ करै औ उभैको जुराफा उरावहिको।
बिबिचुंबक बीच को लोहो भयो पर दूसरो रूप देखावहि को॥
'कविशंभु' सनेह की रीति यही बिछुरे जलमीन जिआवहि को।
गुनवारी गोपाल सों प्रीति लग्यो अरुझी अँखियाँ सुरझावहि को १०२

टीका—इहाँ कमलिनी आदिको जलमध्य नहीं आड़ होवै है और गुनवारी जामें डोरे परे ऐसी कृष्णचन्द्र की आँखों से मेरी अँखियाँ अरुझगई कौन सरुझावै है, यह विधि प्रतिबिंब करि बरन्यो यातें दृष्टांत अलंकार ॥१०२॥

(भ्रांति[2])

कान्हर की नित 'शंभु' कथा सुनिकै कछु कामिनि कौतुक पागी।
सोवत जागत ही जो रहे मनमो मनमोहन सों अनुरागी॥

के अनुरूप कार्य का वर्णन, ३—बिना श्रम के ही कार्य का हो जाना। उक्त दंडक में जो अपने को झुकाता है उसे अपने भी झुकाना चाहिये अन्यथा बड़प्पन की हानि है, यह कहने से प्रथम भेद है।

१—जहाँ उपमानोपमेय वाक्यों और उनके धर्मों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। प्रतिवस्तूपमा में धर्म एक ही होता है किन्तु दृष्टान्त में एक न होकर पूर्वोक्तधर्म के समान होता है। (दृष्ट = देखलिया है, अंत = निश्चय जिसका) इसमें उपमेय वाक्य का निश्चय उपमान वाक्य द्वारा होता है।

२—जहाँ उपमेय में अत्यन्त साम्य के कारण उपमान का भ्रम हो जाय वहाँ भ्रान्ति अलंकार होता है।

नावै = झुका लेते हैं। बानि = स्वभाव, आदत। छिकाइ लै हैं = फाँस लैंगे, ठग लैंगे। बावरी = पगली। सयानप = चतुरता, बड़प्पन ॥१०१॥

आड़ = आश्रय, सहारा, जुराफा = जोग, मेल। उरावहि = तोड़ देता है। बिबि = दो। गुनवारी = गुणवती (नायिका) ॥१०२॥

दाँत को दाग लग्यौ सपने सपने महँ चौंकत ही उठि भागी।
बारि दिया कर आरसि लै अधरा अधरात कों देखन लागी ।।१०३।।

टीका—कृष्णचन्द्र की कथा को नित्य सखीन सों सुनि सोवते जागते मनमोहन सों अनुराग बढ्यो, एक दिन ऐसों अचंभ भयो कि स्वप्न में लला को दाँत वाके अधर में लग्यो ताही छन चौंकि सेज सों उठिकै भाजी, दीप बारि हाथ में आदर्श ले आधी राति में अधरान को देखै लगी, यहाँ स्वप्न में कृष्णचन्द्र के दंतक्षत को भ्रम भयो, यातें भ्रांतिमान् अलंकार और स्वप्न में श्रीकृष्णचन्द्र को संगम भयो यातें स्वप्नदर्शन ।।१०३।।

कवि—कविंद (वस्तूत्प्रेक्षा)

दंडक—दंपति सुरति बिपरीत मैं रमत अति,
कोक की कलान की अनित अवधारे हैं।
भनत 'कविंद' बिहँसत बतरात सत-
रात अंग अंगन अनंग अंग सारे हैं ।।
उचटे ललाट तें समेत बेंदी माँग मोती,
तहाँ केशपासन पै परे उजरारे हैं।
बदन नछत्रपति छत्रप हुकुम पाइ,
कूदे मानो तमपै कतारें बाँधि तारे हैं ।।१०४।।

टीका—नायिका नायक की विपरीत रति वर्णन में बेंदा समेत माँग में गुँथी मोती की लड़ैं टूटि बिथुरे बारों पै सुथरि रहे हैं, ताकी उत्प्रेक्षा यहाँ केशपाश और मोती आदि संभाव्यमान पद वस्तु उक्त, ताको मुखचन्द्र की आज्ञा पाय, तम पै श्रेणी बाँधि, तारागण को कूदिबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा ।।१०४।।

कवि—पूपी (उत्प्रेक्षा)

दंडक—बनिता सहित बनिताके बीच बनमाली,
करत बिलास 'पूपी' रसकै घमंड को।
रीति बिपरीति की निसीत मै रची है रुचि,
पंचसर जीति लहि आनन अखंड को।

कान्हर = श्रीकृष्ण । कौतुकपागी = आश्चर्यमग्न हो गई ।।१०३।।

कोक = चन्द्रमा । अवधारे हैं = निश्चय किये हैं । बतरात = बातचीत करते । सतरात = रूठते, क्रुद्ध होते हैं । उचटे = उखड़ी । उजरारे = प्रकाशमान । नछत्रपति = चन्द्रमा । छत्रप = राजा । तम = अन्धकार ।।१०४।।

बेनी कहूँ उलटि परी है कुच कुंभ पर,
लोल ह्वै छुवत लाल बदन प्रचंड को।
महा बलबंड रतिराज को बितंड झुँकि,
मानौ शुंडादंड सों लपेटे मारतंड को ॥१०५॥

टीका—इहाँ नायिका के बिपरीति रति बर्णन में बेनी उलटि कै कुच कुंभ पै पर्यो, ताकों दूर करिवे के अर्थ कृष्नचन्द्र अपने हाथ सों बदन मुख कों सँवारै है ताकी उत्प्रेक्षा। इहाँ बेनी कुच कुंभ और मुख संभाव्यमान पद बस्तु उक्त, ताको काम के मतंग को सुंडादंड सों सूर्य्य को लपेटिबो तादाम्य करि उत्प्रेक्षा उक्त विषया बस्तूत्प्रेक्षालंकार ॥१०५॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दंडक—फूल न रसीले जाके फल न रसीले छिति,
छाँह के न सीले पथ पंथी दुखदाई है।
बिटप न कामदार निपटि निकाम दार,
बड़े नामदार 'पूषी' अधिक ऊँचाई है।
सेए श्रम सुवा अन्त पाए फिरि भुवा खेलि,
हारे जिमि जुवा जिय लगन लगाई है।
जग में जनमि जो पै काहू के न काम आयो,
कहा सठ सेमर के बड़े की बड़ाई है ॥१०६॥

टीका—यहाँ सेमर को सेवन कियो सुक तातें कछू फल की प्राप्ति न भई, इस हेतु सेमर के बाढ़ने के तिरस्कार सों काहू प्रस्तुत को आश्रय यातें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार ॥१०६॥

कवि—नेवाज (दृष्टांत)

स०-राधिका जू बृषभानुसुता सुनो माइहि बाप लड़ाइहि लाड़नि।
ताकी दशा सुनि हौं हू 'नेवाज' बिलोकिबै आज गई हुती चाड़नि॥

बनमाली = श्रीकृष्ण। निसीथ = अर्द्धरात्रि। पंचसर = कामदेव। लोल = चंचल। बलबंड = बलशाली। बितंड = हाथी। शुंडादंड = सूँड़ ॥१०५॥

छिति छाँह = भूमि पर पड़ी छाया। सीले = तरावटें। बिटप = शाखा। कामदार = काम में आने योग्य। निपट = बिलकुल। निकाम = निष्काम, व्यर्थ। दार = लकड़ी। सुवा = सुग्गा, तोता। भुवा = रूई के रेशे ॥१०६॥

मैनि मसूसनि कै मुरझानी बड़ी अँखियाँ वै गईं गड़ि गाड़नि।
पाँसुरी पाँसुरी बेधि गई धुनि बाँसुरी की बरमाँ भई हाड़नि ।।१०७।।

टीका——इहाँ पाँसुरी पाँसुरी बेधि जाने के कारण बाँसुरी और बरमा को बिंबभाव यातें दृष्टान्तालंकार ।।१०७।।

कवि–मनसा **(उत्प्रेक्षा)**

दंडक—रची विपरीत रीति प्रीति ही सों स्यामास्याम,
लखे रति कामहूँ की जात मगरूरी है।
लंक लपटाइ दोऊ लूटत अनंद रस,
छूटी परसेद तन खेद होत दूरी है।
बेनी या न बाँधी जात खुली पीठि डीठ परी,
'मनसा' अनूठ एक उपमा बिसूरी है।
लोक बसीकरन प्रयोग के अरंभ मानौ,
कंचनपटा पै काम चारु चौक पूरी है ।।१०८।।

टीका—इहाँ पनवों जुत बेनी नायिका की पीठ पै परी संभाव्यमानपद हेतु सिद्धि, ताकों सकल जन बशीकरण के प्रारंभ में सुवर्ण की पटा पै काम कृत रमनीय चौक पूरिबो तादात्म्य करि उत्प्रेक्षा सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है ।।१०८।।

कवि—चतुर **(पिहित)**

दंडक—जौ लगि न कोऊ पीर लागतो अपाने उर,
तौ लगि पराई पीर कैसे पहिचानिहौ।
जानत हौं आजु लों न लाग्यो नेह काहू सन,
जबै नेह लागि है तो हितहूँ न मानिहौ।
'चतुर कबीश' कहै मेरे कहिबे की बात,
नेकु न रहैगी तूँ समुझि हिय ठानिहौ।
जैसो तुम मोहि नीक लागत हौ प्यारे लाल,
वैसे तुमैं कोऊ नीक लागिहै तौ जानिहौ ।।१०९।।

लाड़नि = प्यार की। चाँड़नि = तीव्र इच्छा से। मैनि मसूसनि = काम की ऐंठन से। गड़ि गाड़नि = धँस गई हैं। पाँसुरी-पाँसुरी = पसली-पसली को। बरमा = छेद करने का एक औजार। हाड़नि = हड्डियों को ।।१०७।।

मगरूरी = गर्व, घमण्ड। परसेद = प्रस्वेद, पसीना। बेनी = लट। अनूठ = अनुपम। बिसूरी = याद आयी। कंचनपटा = सोने की पाटी ।।१०८।।

टीका—नायिका प्रीतम को अन्य बनिता आसक्त जानि वराहनो देय है इहाँ नायक आन स्त्री सों प्रीति कियो, यह वृत्तांत जानि वराहनो चेष्टा करै है, यातें पिहित अलंकार ॥१०९॥

कवि—उदयनाथ　　　　(उत्प्रेक्षा)

दंडक—कूरम नरिंद गजसिंह जू को दल दौरि,
　　　　लंक लौं अदंक बंक शंक सरसाती है।
'उदय नाथ' बाजी चढ़ि दुंदुभी धुकार भार,
　　　　धरा कसमसै गिरिपती डिगुराती है।
कमठ के पीठि कसे सेस के सहस फन,
　　　　दिया लों दबत उपमा न दरसाती है।
फनन के ऊपर निकसि द्वै हजार जीभ,
　　　　स्याह स्याह बाती लौं बुझाती रहि जाती है ॥११०॥

टीका—फनन के ऊपर द्वै हजार जीभ निकसिबो संभाव्यमान पद, ताको दीप की बाती के बुझाइबो करि उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥११०॥

कवि—अमरेश　　　　(स्मृति[1])

दंडक—कसु कुच कंचुकी सों बिरचु बिमल हार,
　　　　मालती के फूल ए धरेई कुँभिलाइगे।
गारो गार चंदन सँवारो अंग आभरन,
　　　　दीपक उजेर तम छितिपर छाइगे।
बारोधूम अगर अगार धूप बैठी कहा,
　　　　'अमरेश' आज तेरे भूल सों सुभाइगे॥
आई साँझ सरस सोहाई सेज साजि साज,
　　　　सुनत सुवा के आँसू वाके नैन आइगे ॥१११॥

१—उपमान को देखकर जहाँ तत्सदृश उपमेय का स्मरण हो आता है वहाँ स्मृति अलंकार होता है।

कूरमनरिंद = कूर्मनरेश, कछवाह जाति के राजा। लंक = लङ्का। अदंक = भय-भीत। बंक = विपरीत, वक्र। सरसाती है = फैलती है। दुंदुभी धुकार भार = दुंदुभी की भयंकर ध्वनि। धरा = पृथ्वी। कसमसै = घबरा जाती है। डिगुराती है = हिलने लगती है। कमठ = कच्छप। दिया लौं = दिये की तरह ॥११०॥

कंचुकी = चोली। कुँभिलाइगे = मुरझागये। गारो = घिसा है। गार = गाढ़ा। सुवा = सुग्गा ॥१११॥

टीका—काहूँ प्रोषितपतिका नायिका सो सुक की उक्ति कि आभूषन अंगराग दीपप्रकाश शय्या आदि को भूषित करै, तूँ क्यों बैठी है ? इतनी बातैं सुनि वाके नेत्रों में आँसू झलकि आयो यातें स्मृतिमान् अलंकार। उसी दिन वाको स्वामी विदेश गयो, सुक बिनु जाने नित्य सिंगार के हेतु कहै है ताको सुनि बिरह सों आँसू झलक्यो, यातें प्रोषितपतिका नायिका ॥१११॥

कवि—जैन महम्मद (पर्यायोक्ति)

दंडक—अनरस रस मैं जो जाकी वोर होत कोऊ,
याहि सों दुरावै कहो वासों को कठोर है।
हाथ हूँ धरैंगे पुनि अंक हूँ भरैंगे हमैं,
भावै सो करैंगे यामैं तुमैं क्या मरोर है।
'जयन महंमद' जो अहै वा तिहारी हित,
वाही वोर राख्यो जो चलै न कछु जोर है।
पीठि है तिहारी सो हमारी है हमारे जान,
रूसिवे तिहारी होत सो हमारी वोर है॥११२॥

टीका—मानवती नायिका सों नायक की उक्ति। इहाँ नायिका मानसों मुरि कै सेजपै लेटी है। ताके सोंहैं करिवे अर्थ नायक पीठि गहै है, तापै नायिका क्रोध करै है तासों नायक को बचन कि, पीठि हमारी है, जो मान में हमारी ओर होय है। जो तुम्हारी है तौ अपानी अलग कीजिए, यह ब्याज करि अपनो इष्ट साधन अर्थात् मान छोड़ाय संमुख करै है, यातें दूसरो पर्य्यायोक्ति अलंकार॥११२॥

कवि—दूलह (युक्ति[1])

दंडक—सारी की सरोटैं सब सारी में मिलाइ दईं,
भूषन की जेब जैसी जेब लहियतु है।

अनरस रस = वह अवस्था जिसमें रस पूर्णरूप से प्रतिफलित न हो सके। जैसे—संभोग शृङ्गार में नायिका का संयोग हो किन्तु वह रूठ जाय और संभोग न हो सके। ऐसे ही अन्य रसों में भी। वोर = ओर। दुरावै = छिपाती है। अंक = गोद। मरोर = अहंकार। रूसिवे = रूठने पर॥११२॥

१—अपने मर्म को छिपाने के लिये किसी क्रिया के द्वारा जहाँ पर दूसरों की वंचना की जाय वहाँ युक्ति अलंकार होता है, (युक्ति = उपाय, रहस्य को छिपाने के लिये निकाला हुआ तर्क)।

कहै 'कवि दूलह' छपाए नख छद रद,
नेह देखे सौतिन को उर दहियतु है ॥
बाला चित्रशाला तें निकसि गुर जन आगे,
कीन्ही चतुराई सो देखाई चहियतु है।
सारिका पुकारै हम नाहीं हम नाहीं एजू,
राम राम कहौ नाहीं नाहीं कहियतु है ॥११३॥

टीका—इहाँ नायिका रात्रि में नायक के साथ काम कलोल अनुभव कियो ताकों देखि सारिका गुरजन आगे हम नाहीं, हम नाहीं, जो नायिका प्रीतम सों संभोग के अर्थ नाहीं करी कहै, ताकों एजू राम राम कहो, और ही संधान कियो यातें युक्ति अलंकार ॥११३॥

(समस्तविषयी रूपक)

सोनजुही की गुही पगिया जु चमेली के गुच्छ रहो झुकि न्यारो।
द्वै दल फूल कदम्ब को कुंडल सेवती को झँगा घूम घुमारो।
है तुलसी पटुका घनस्याम गुलाब अनारन बेलि को सारो।
फूलनि आजु बिचित्र बनाइ कै कैसो सिंगारो है प्यारी ने प्यारो ॥११४॥

टीका—इहाँ सोनजुही की पाग जामें चमेली के गुच्छे न्यारे झुकि रहे हैं। कदंब के कुंडल, सेवती को झँगा, गुलाब अनार आदि को पटुका, नायिका

सरोटैं = कपड़े में पड़ी हुई शिकन। जेब = शोभा। नखछद = नखक्षत। रद = दाँत ॥११३॥

१—रूपक का लक्षण दे० टि० पृ० ४८। चन्द्रालोककार ने रूपक के अभेद और ताद्रूप्य ये दो भेद मानकर प्रत्येक को न्यून, अधिक और सम इन तीन रूपों में विभक्त किया है जिनके उदाहरणों का यथास्थान निर्देश प्रकृत ग्रन्थ में किया गया है। 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि में रूपक के प्रथम दो भेद हैं—१. समस्तवस्तुविषयी, २. एकदेशविवर्ति। आरोप विषयों की भाँति जहाँ सभी आरोप्यमाण भी शब्द से उक्त हों, वहाँ समस्तवस्तु विषयी रूपक होता है और जहाँ कुछ तो शब्द से गृहीत हों, कुछ न हों वहाँ एकदेशविवर्ति रूपक होता है। उक्त पद में प्यारी ने प्यारे को फूलों से कैसा सजा दिया कह कर जुही की पाग आदि सभी उपमानों का आरोप किया गया है अतः समस्तवस्तु विषयी रूपक है।

सोनजुही = स्वर्णजूही। पगिया = पाग, पगड़ी। झँगा = ढीला कुरता। घूमघुमारो = घुमावदार, घेरोंवाला। पटुका = चादर। सारो = सम्पूर्ण ॥११४॥

नायक को फूलनि को सब भूषन बनाय सिंगारो। जुही की पाग आदि उपमान को रूपक यातें समस्तबिषयी रूपक अलंकार ॥११४॥

कवि—सुन्दर (सूक्ष्म[1])

सवैया-एक समै दिन मैं बनितान मैं 'सुंदर' बैठि है राधिका रानी।
आये तहाँ पिय सैन दई चलि प्यारी चितौनि मैं चातुरी ठानी॥
सेत असेत कटाक्ष करे तिन मैं तम जोति की भाँतिहि आनी।
जानि गए हरि औधि बताई है नैनन ही मैं निसा की निसानी॥११५॥

टीका—यहाँ बनिता मंडल गत राधा सों मिलिबे के हेतु कृष्नचन्द्र संकेत कियो। ताकों लाड़िलीजू तमसूचक सेत असेत कटाक्ष करि अवधि निरूपन कियो। ताहि लखि लालजू रात्रि में समागम होयगो यह जानि गयो। पराश्रयाभिज्ञ सों साकूत चेष्टा करने के कारन सूक्ष्म अलंकार स्पष्ट है और बोधक हाव ॥११५॥

(उत्प्रेक्षा)

दंडक—फूलन सों गुही माँग चंदन चढ़ाए अंग,
अंग उमगी है मानो गंग सर नीर की।
सब तन सोभित है मोतिन के आभूषन,
मोतिन के जोति से मिली है जोति चीर की॥
मुसुकाति आछी भाँति दाँतनि देखात दुति,
तैसिये गुराई करि 'सुंदर' सरीर की।
चाँदनी सी बाला मिली चाँदनी मैं ऐसी चली,
मानौ छीर सिंधु में चली तरंग छीर की॥११६॥

टीका—इहाँ अभिसारिका नायिका के अभिसार बर्णन में चाँदनी सी बाला को चलिबो संभाव्यमान पद उक्त, ताकों क्षीर समुद्र में गंगा की धार करि बरन्यों यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥११६॥

१—दूसरे के अभिप्राय को समझकर जहाँ संकेत द्वारा अपना भाव प्रगट किया जाय वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है।

सैन = संज्ञा, इशारा। चितौनि = चितवन, कटाक्ष। सेत-असेत = श्वेत-कृष्ण। औधि = अवधि ॥११५॥

उमगि है = उमड़ आई है। सरनीर = तालाब का जल। चीर = वस्त्र। गुराई = गोरापन। सुंदर = कवि का नाम। सुंदर शरीर = मनोहर देह ॥११६॥

कवि—शिवलाल (विरोधाभास)

सवैया-सब बादिहिं और कहैं मुरहा तुम लौ मुरहा जग आहिरै हौ।
'शिवलालजू' स्याने खरे दरसो सबही में बसो अरु बाहिरै हौ॥
तिहुँ लोकहिं पेट में डारि फिरौ अरु आपुन लोक में नाहिं रै हौ।
बृषभानु किसोरी है भोरी लला तुम चोरी करेहूँ पै साहि रै हौ॥११७॥

टीका—इहाँ मुरहा, सबके अन्तर में बसौ हौ और बाहिर हौ, त्रिलोकी उदर में राखि अपने जग सों बाहिर, राधा भोरी और तुम चोरिहू पै साहि रैहौ यह विरोध बात, यातें विरोधाभास अलंकार॥११७॥

कवि—बोधा (निदर्शना[१])

अति छीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पावँ दै आवनो है।
'कबि बोधा' अनी घनी नेजहु की चढ़ि तापै न चित्त डिगावनो है।
सुई बेध की द्वार सकै न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥११८॥

टीका—यहाँ मृणाल आदि को और अति दुर्गम प्रेम पंथ वाक्यार्थ को ऐक्यारोप, यातें निदर्शना अलंकार॥११८॥

कवि—मतिराम (पूर्णोपमा)

दंडक—साँझ ही सिंगार साजि प्रान प्यारे पास जाति,
बनिता बनक बनी बेलि सी अनंद की।
'कबि मतिराम' कल किंकिनि की धुनि सजै,
मंद मंद चलनि बिराजत गयंद की।
केसरि रँग्यो दूकूल हाँसी में झरत फूल,
केसन मैं छाई छबि फूलन के बृंद की।

बादिहिं = झूठेको। मुरहा = (मूल + हा) जो बालक मूल नक्षत्र में पैदा हुआ हो (नटखट), मुरारि (श्रीकृष्ण)। स्याने = सयाने। साहि रै हौ = साव (ईमानदार) ही रहोगे॥११७॥

१—यह वाक्यार्थवृत्तिनिदर्शना का उदाहरण है, दे० टि० पृ० ६२।

मृणाल = कमल की नाल। अनी = नोक। नेज = बर्छी, भाला। परतीति = प्रतीति, विश्वास। टांड़ो = बैलगाड़ी (जिसके द्वारा बनजारे व्यापार करते हैं।)॥११८॥

पीछे पीछे आवति अँध्यारी सी भँवर भीर,
आगे आगे फैलति अँजोरी मुख चंद की ॥११९॥

टीका—इहाँ बनिता आदि पद उपमेय, आनंद की बेलि आदि उपमान, बनक आदि साधारन धर्म, सी बाचक, च्यारों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार स्पष्ट है ॥११९॥

कवि—चिंतामनि (विशेषोक्ति)

दंडक—हाथ में लकुट लैके मोर को मुकुट साथ,
काँधे पीत पट धरि करै रुचि थावरी।
स्यामता को मद अंग मृगमद अंगराग,
करै डरै नाहिं काहू जो कहैगी बावरी।
'चिंतामनि' गरे गुंजमाल बनमाल करि,
ऐसेही बितावती है बासर बिभावरी।
तुम बिनु मिले लाल नवल नवेली बाल,
पावती न कल सों नकल करै रावरी ॥१२०॥

टीका—इहाँ नकल करने सों भी कल नहीं पावै है। नकल करिबो कारन पुष्ट, तासों नहीं कल पाइबो कार्य्य की उत्पत्ति न भई, यातें विशेषोक्ति अलंकार ॥१२०॥

(पर्य्यायोक्ति)

दंडक—सोने को न रूपे को न जान्यो जात पन्ननि को,
हीरे को न मोती को न काहे को बनायो है।
देव को चढ़्यो है की देवारी को मढ़्यो है काहू,
गुनी को गढ़्यो है बिनु गुन गर आयो है॥
'चिंतामनि' प्रान प्यारे उर सों उतारि लीजै,
नेकु मेरे हाथ दीजै मोहि मन भायो है।
छल की छला सों इंद्रजाल की कला सों तुम,
साँची कहो हाहा हरि हार कहाँ पायो है ॥१२१॥

बनक = शोभा। किंकिनि = करधनी। चलनि = चाल, गति। गयंद = हाथी। अँध्यारी सी = कृष्णपक्ष जैसी। अँजोरी सी = शुक्ल पक्ष सी ॥११९॥

मृगमद = कस्तूरी। बिभावरी = रात्रि। कल = चैन ॥१२०॥

रूपैको = चाँदी का। पन्ननि को = मरकत मणियों का। देवारी = दीपावली में। गुनी = कुशल कारीगर। बिनुगुन गर आयो है = बिना तागे के गले में लटका है। छल की छला = भूत की माया। इंद्रजाल = जादू की विद्या ॥१२१॥

टीका—इहाँ नायक के उर में बिनु गुन माल देखि परस्त्री संगम ठहराय व्यंग करै है। ताकों माँगिबो व्यंग्य को आश्चर्य कि धिक्कार तुम ऐसे छली को, यातें प्रथम पर्य्यायोक्त अलंकार और खंडिता नायिका ॥१२१॥

कवि—किसोर (उल्लास)

स०–यह सौति सवादिनि जा दिन तें मुख सों मुख लायो हियो रसुरी।
निशिद्यौस रहै न घरी सुधरी सुनि कानन कान्हर की जसुरी॥
यक आप सबेध सबेध करै असु री द्रिग आनि ढरै अँसुरी।
अब तो न 'किसोर' कछू बसु री बसु री ब्रज बैरिनि तू बँसुरी ॥१२२॥

टीका—इहाँ बाँसुरी को बाजिबो गुन, ताकों नायिका अपने कामबिकल होने के कारन दोष करि ठहरावै है, यातें उल्लास अलंकार ॥१२२॥

कवि—नीलकंठ (लोकोक्ति)

दंडक—जाके तन जोर आयो सर औ सरापहूँ को,
सो तो सहि सकै कैसे तेज अरितमा को।
कहै 'नीलकंठ' जब पंडव कुबुद्धि भयो,
भावी के भरोसे रिसि राखी उर जमा को॥
पीछे भयो भारथ तौ स्वारथ कहा को भयो,
मिटि गयो पानी जब रानी आन्यो सभाँ को।
छत्री तन पाइ तिय ताड़न द्रिगन देखै,
फूटै क्यों न हिया छत्री छिया ऐसी छमा को ॥१२३॥

टीका—इहाँ छत्री की छमा को धिक्कार लोक कहनावत करि लोकोक्ति अलंकार ॥१२३॥

कवि—गंगापति (असंगति)

दंडक—इत हरि फेरि पीठि उत करि टेढ़ी डीठि,
तबहीं सों पंचसर बैठ्यौ बाँधि बरकस।

सवादिनि = स्वाद किया। रसु = रसयुक्त हो गया। निसिद्यौस = रातदिन। कान्हर = श्रीकृष्ण। सबेध = छिद्रयुक्त। असु = प्राण। अँसुरी = आँसू। बसु = बश है। बसु = रहो। बँसुरी = बंसी ॥१२२॥

जोर = बल, दर्प। पंडव = पांडव (युधिष्ठिर)। भारथ = महाभारत। पानी = प्रतिष्ठा, आब, कांति। छिया = छी-छी, धिक्कार। छमा = क्षमा ॥१२३॥

टेढ़ी डीठि = तिरछे नैन, कटाक्ष। पंचसर = कामदेव। करकस = कर्कश, कठोर। अतने पै = इतने पर। लोन = नमक। भुरकावत =

छिन छिन छीन भई बिथा नित नित नई,
दुःख माँझ नई नई कौन धरै धरकस।
'गंगापति' इहै उर उठत अँदेस एक,
पठयो सँदेस हूँ न ऐसे हरि करकस।
अतने पै घाउ करि लोन भुरकावत हौ,
हमकों बिभूति ऊधो कुबिजा को जरकस ॥१२४॥

टीका—इहाँ उद्धव सों गोपी की उक्ति कि हमैं बिभूति और कुबरी को जरकसी को पट आभूषन। औरै जगह करिबे योग्य और ठौर कियो यातैं तृतीय असंगति अलंकार ॥१२४॥

कवि—चंदन **(लेश[1])**

सवैया-छिति मंडल कै नभ मंडल मेघ उमंडि दशों दिसि धाय रहे।
'कबि चंदन' चारु सों चातक मोर हरेवनै शोर मचाय रहे॥
पिय पावस में बिछुरे बनितान सों आवनहार सो आइ रहे।
केहि कारन हाय विहाय हमैं हरि जाइ बिदेश मैं छाइ रहे॥१२५॥

टीका—इहाँ बरषा रितु की सम्पत्ति और शोभा गुन ताकों स्वामी अनागमन कारक चिन्ता करि दोष ठहरायो, यातैं लेशालंकार ॥१२५॥

(प्रस्तुतांकुर[2])

सवैया-हाथ गहे हरि जो हित सों उत सागर लक्षि के आदिददाई।
अम्बुज चक्रहुँ तें अधिकी गुन रावरे को पहुँचै न गदा ई॥
लायक हौ मुख लागत हौ जन के हित मौन गहो न कदाई।
जुद्ध असंख्यन जीति जु पै सो रहे तुम शंख के शंख सदाई॥१२६॥

छीटता है। धरकस = धैर्य। बिभूति = भस्म। जरकस = सोने का काम किया हुआ वस्त्र ॥१२४॥

उमंडि = उमड़कर। हरेवन = हरेवा (एक पक्षी) ॥१२५॥

लक्षि = लक्ष्मी। आदि ददाई = बड़े भाई हैं। गदा ई = यह गदा (कौमोदकी)। सदाई = सदा ही। अंबुज = पद्म (कमल) ॥१२६॥

१—जहाँ किसी गुण में दोष या दोष में गुण की कल्पना की जाय वहाँ लेश अलंकार होता है। उक्त सवैया में वर्षा ऋतु की शोभा रूप गुण से नायक के न आने रूप दोष की कल्पना की गयी है।

२—जहाँ प्रस्तुत (वर्ण्यमान) एक अर्थ से, प्रस्तुत किसी दूसरे अर्थ की प्रतीति होती हो वहाँ प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है (प्रस्तुत + अङ्कुर, जैसे एक

टीका—इहाँ ऐसो संग पाय संख को संख ही रहि जायबो, यह प्रस्तुत, तासों अच्छे सज्जनों को संगवर्त्ती है अरु वैसई रह्यो काहू पुरुष को वृत्तान्त लक्षित होय है। यातें प्रस्तुतांकुर अलंकार स्पष्ट है ॥१२६॥

(प्रतीप[1])

जथा—ब्रज ग्वारी गँवारी अनारी सबै यह चातुरता न लुगाइन मैं।
बर बारिनि जानि अनारिनि सी गुन एको न 'चंदन' नाइन मैं॥
छबि रंग सुरंग के बुंद लसै छबि इंद्रबधू लघुताइन मैं।
चित जो चँहदी ठगि सी रहँदी कहँ दी महँदी इन पाइन मैं॥१२७

टीका—इहाँ महँदी को रंग पाँव के रंग को उपमान, ताको अनादर, यातें प्रतीप अलंकार, और सखी नायक को दियो नायिका के पाँव में ठहरावै है, यातें लक्षिता नायिका ॥१२७॥

कवि—कुमार (उत्प्रेक्षा)

सवैया-केलि के रंग रची रचि दूसरे द्योस मिले नव संग तमी के।
आनन मैं श्रम की जल की झलकी कन कांतिन भाँति जमी के॥
आरसी मैं प्रतिबिंब भई यों 'कुमार' लखी छबि साथ रमी के।
इंदु सों प्रीति करी अरबिंद मनो अरबिंद मैं बुंद अमी के॥१२८

शाखा से दूसरी शाखा का अङ्कुर फूटता है ऐसे ही इसमें एक अर्थ से दूसरा अर्थ भी भासित होता है)। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस अलंकार को प्रायः सब आलङ्कारिकों ने स्वतंत्र अलंकार रूप में नहीं माना है।

१—प्रतीप का अर्थ है विपरीत, अर्थात् जहाँ उपमान और उपमेय के वर्णन में वैपरीत्य हो वहाँ प्रतीप अलंकार होता है। इसके पाँच प्रकार होते हैं—१-उपमेय को उपमान बना देना। २-उपमान के द्वारा उपमेय का आदर न होना। ३-उपमेय के द्वारा उपमान का अनादर होना। ४-उपमेय की समता के लिये उपमान को अयोग्य ठहराना। ५-उपमेय ही उपमान का भी कार्य करले और उपमान व्यर्थ हो जाय। प्रस्तुत उदाहरण में उपमेय (पैर का रंग) उपमान (मेंहदी के रंग) का अनादर करता है अतः तीसरा भेद है।

बारिनि = पत्तल दोने लगाने, सेवा करने वाली जाति की स्त्री। नाइन = नाऊ, हज्जाम की स्त्री। इन्द्रबधू = अप्सराएँ। लघुताइन = न्यूनता। चँहदी = चाहती है। ठगिसी रहँदी = ठगीसी रहती है। पाइन में = पैरों में ॥१२७॥

द्योस = दिवस, दिन। तमी = अँधेरी रात। कन = बूँद। जमी = एकत्रित। रमी = मुग्ध। अमी = अमृत ॥१२८॥

टीका—इहाँ नायिका के मुख में प्रस्वेद भयो संभाव्यमान पद। ताको चन्द्रमा की प्रीति सों बदन में अमी को प्रादुर्भाव होयबो ठहरावे है, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥१२८॥

(अपह्नुति)

रोष रच्यो तिय दोष तिहारेई प्यारे करो रसराशि परेखो।
पायन हूँ परि प्यारी मनाइए प्रीति की रीति है बंक विशेखो॥
नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय क्यों कल धीरज लेखो।
नीरजनैनी के नीरभरे किन नीरद से द्रिगनीरज देखो॥१२९॥

टीका—यहाँ नीरज नेत्र के गुन को दुराय आँसू भरने के हेतु नीरद पै आरोप, यातें हेत्वपन्हुति अलंकार ॥१२९॥

कवि—किशोर (अनुमान[1])

सवैया–फूलन दे इन टेसू कदम्बन आमन बौरन छावन दे री।
री मतिमंद मधुव्रत पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री॥
को सहि है सुकुमार 'किशोर' अरी कल कोकिल गावन दे री।
आवत ही बनि है घर कंतहिं बीर बसंतहिं आवन दे री॥१३०॥

टीका—इहाँ टेसू आदि को फूलिबो और भ्रमर आदि को गुंजार करिबो उद्दीपन सों बसंत रितु पाय नायक के आगमन को अनुमान करै है, यातें अनुमान अलंकार ॥१३०॥

कवि—पद्माकर (सार[2])

दंडक—दूनी तेज दाहतें है त्रिगुनी त्रिशूल हू तें,
चौगुनी चलाक चक्रपानि चक्रचाली तें।

परेखो = परीक्षा किया हुआ। बंक = वक्र, टेढ़ा। विशेखो = विशेष कर। कलपै = तड़पता है ॥१२९॥

१—काव्यगत वैशिष्ट्य द्वारा जहाँ साधन से साध्य का ज्ञान हो वहाँ अनुमान अलंकार होता है। उक्त पद्य में जैसे—टेसू फूलना आदि द्वारा वसन्त ऋतु का आगमन रूप साधन से नायक के आगमन रूप साध्य का अनुमान होता है। "अष्टौ प्रमाणालङ्काराः प्रत्यक्षप्रमुखाः क्रमात्" कह कर जयदेव ने चन्द्रालोक में प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों के अलंकार माने हैं किन्तु दर्पणकार प्रभृति ने अनुमान को ही स्वतन्त्र अलंकार माना है।

टेसू = पलाश। मधुव्रत = भौंरे ॥१३०॥

२—सार अलंकार वहाँ होता है जहाँ क्रम से वस्तुओं में उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन किया जाय।

कहै 'पदुमाकर' महीप भगिवंत सिंह,
ऐसी समसेर शिर शत्रुन पै घाली तें।
पंचगुनी पवि तें पचीस गुनी पाहन तें,
प्रगट पचासगुनी प्रलै के प्रनाली तें।
सौ गुनी है सर्प तें सहस्र गुनी सर्पिनी तें,
लाख गुनी लूक तें करोरि गुनी काली तें ॥१३१॥

टीका—इहाँ दाह आदि ते दूनी, तिगुनी, चौगुनी यह क्रम करि एक सों एक उत्कर्ष, यातें सार अलंकार ॥१३१॥

कवि—देव (पिहित)

सवैया-'देव' जु पै चित चाहिबो नाह तौ नेह निबाहिबो देह मरो परै।
को समुझाइ बुझाइबो राह अभीर लग्यो पग धोखे धरो परै॥
नीके सैं फीके ह्वै आँसू भरो कित ऊँचो उसास गरो क्यों भरो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान भरो सो भरो उबरो सो ढरो परै ॥१३२॥

टीका—इहाँ नायक सापराध प्रात आय नायिका सों छल बाद करि साँचु बनै है, ताकी दशा देखि नायिका के आँसू भन्यो। ताको पूछयो कि क्यों तुम्हारे नेत्रों से आँसू आयो, वाकों यह कहै है कि आप के रूप कों इन लोभी नेत्रों ने पियो जो भरो सो भन्यो बाकी ढन्यो परै है। पर वृत्तान्त जानि साभिप्राय चेष्टा करे है यातें पिहित अलंकार ॥१३२॥

(पिहित)

सवैया-आजु मिल्यो बहुतै दिन भावत भेंटत भेंट कछू मुखभाखो।
ए भुजभूषन सों भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा रस चाखो॥
लीजिये लाल वोढ़ाइ जरी पट कीजिए जो मन को अभिलाखो।
'देव' हमैं तुमैं अन्तर पारत हार उतारि उतै धरि राखो ॥१३३॥

दाह = अग्नि। चक्रपाणि = विष्णु। चक्रचाली = चक्र की गति। समसेर = तलवार। घाली = फेंक दी, छोड़ी। पवि = वज्र। पाहन = पत्थर। लूक = कपट, ज्वाला ॥१३१॥

अभीर = अहीर, ग्वाला (कृष्ण)। उसास = निःश्वास। गरो = गला। उबरो = बचा हुआ, शेष ॥१३२॥

वोढ़ाइ = ओढ़ा कर। जरीपट = सोने का काम किया दुशाला आदि। अंतरपारत = बीच में व्यवधान कर रहा है ॥१३३॥

टीका—इहाँ नायक और के संग रहि वाकी[1] ओढनी ओढि आयो ताकों देखि नायिका भेटिबे के अर्थ साभिप्राय बचन कहै है यातें पिहित अलंकार और मध्या धीरा नायिका ।।१३३।।

कवि—जगतसिंह (शुद्धापह्नुति)

दंडक—शशि को नमूना करि पहिले बनाय पुनि,
पीछे ते असिल को सँवारे मुख चारु है।
दोऊ येक तीर कै बिरंचि कै बिचारि देख्यो,
सौ गुनो शशी सों गुन पायो मुख सारु है।।
राखिबे को जोग दोनो जान्यौं न 'जगतसिंह'
इन्यौं पुनरुक्त हूँ ते करत विचारु है।
चंद्रमा के मंडल पै मंडल न होइ यह,
कलम से कुंडल करे ई करतारु है।।१३४।।

टीका—इहाँ चन्द्रमंडल गत परिवेष को स्वकीय गुन दुराय, कलम सों कुंडलना करिबो आरोप, यातें शुद्धापह्नुति अलंकार ।।१३४।।

कवि—शिव कवि (उत्प्रेक्षा)

दंडक—झलक सों जोबन की झलकनि अङ्गन मैं,
झाँकति झरोखे दुःख सिगरो बिलात है।
कहैं 'शिव कवि' औरो कौतुक अपूरब है,
लखो नंदलाल लोनी लखिबे की घात है।।
अंगुरी अरुन मेहँदी सों तामें अंजन है,
प्यारी देति द्रिग ऐसे रूप सरसात है।

१—'वाकी ओढ़नी ओढ़ि आयो' यह कथन अनुचित है। कुशल नायक एक नायिका की ओढ़नी ओढ़कर दूसरी के पास भला क्योंकर जायगा। वस्तुतः "हार उतारि उतै धरि राखो" पदके कारण यहाँ पिहित अलंकार है। रातभर दूसरी नायिका के आलिंगन से उसका मुक्ताहार नायक के वक्ष पर गड़ जाने से हार का चिह्न बना है। उसी से परप्रसङ्ग जताती हुई नायिका साभिप्राय बचन कहती है, अतः पिहित अलंकार है।

असिल = वास्तविक। एकतीरकै = एक स्थानपर करके। सारु = सार, तत्त्व। करतारु = ईश्वर, विधाता ।।१३४।।

मानहुँ पगन पोढ़े गहि कै अनारकली,
अली भली भाँति पैठो पंकज में जात है ॥१३५॥

टीका—इहाँ मेंहदी सों अरुन अँगुरी मैं कजल लगाय नेत्र में देबो संभाव्यमान पद, उक्त वस्तु, ताको पग सों अनारकली को पोढे पकरि कमल में पैठिबो करि उत्प्रेक्षा, उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥१३५॥

कवि—भगवंतसिंह (शुद्धापह्नुति)

दंडक—बदरा न होहिं दल आए मैन भूपति के,
बुँदियाँ न होहिं एरी बान झरि लाई है।
दादुर न होहिं ए नकीब बोलैं चहूँ ओर,
मोर ए न होहिं हाँक सुरनि सुनाई है।
बकुला न होहिं सेत धुजा 'भगिवंतसिंह',
चपला न होहिं चंद्रहास चमकाई है।
बालम बिदेश यातें बिरहिनि मारिबें कों,
जुगुनू न होंहि काम जामगी जगाई है ॥१३६॥

टीका—इहाँ ए बादर न होहिं किन्तु कामदेव को दल होयँ। एक को धर्म दुराय एक में आरोप कियो यातें शुद्धापह्नुति अलंकार ऐसे ही औरौ पदन में जानिए ॥१३७॥

कवि—सूरति (व्यतिरेक)

सवैया—बेपग अंधनि है पगदा चलिबो यह नीकनिहूँ को निबार्‍यौ।
'सूरति' थाह बतावत वे यहि प्रेम अथाह के बारिध डार्‍यौ।
बेबस बास बसावत हैं यह बास छुड़ाय उजारिन पार्‍यौ।
देखि अरी हरि की बँसुरी इहि कैसे सुबंस को बंस बिगार्‍यौ॥१३७

टीका—इहाँ बिनु पाँव को और अन्ध है चलिबो आदि और नीकनिहूँ को कहैं पाँव जुक्त और सुलोचन को चलिबो निहारिबो आदि को निवारन करिबो यह उपमान उपमेय को विशेष, यातें व्यतिरेकालंकार ॥१३७॥

सिगरो = सम्पूर्ण। लोनी = सुन्दरी (नायिका)। घात = अवसर। पोढे = पकड़कर। अली = भ्रमर ॥१३५॥

बदरा = बादल। मैनभूपति = कामदेवनृप। दादुर = मेंढक। नकीब = बन्दीजन, भाट, चारण। चन्द्रहास = खड्ग, तलवार। जामगी = बंदूक का पलीता, रंजक ॥१३६॥

(गर्भोत्प्रेक्षा[1])

दंडक—भूपति है प्रेम लाल डोरे हैं निसान तेई,
चंचलता चतुर तुरंग भीर भारी है।
देखिबे अनेक भाँति तेई असवार रेख,
काजर की सोई करी कोर सी सँवारी है।
बरुनी बँदूखन की पाँति सी लई है पिय,
बिरह गनीम मारिबे को पैज धारी है।
'सूरति सुकबि' स्वच्छ स्याम रंग बागे बने,
प्यारी तेरे नैनन मैं नीकी असवारी है ॥१३८॥

टीका—यहाँ प्रेम को राजा करि, लाल डोरे को निशान करि, चंचलता को तुरंग करि, बाकी बिलोकनि को सवारी करि, काजर की रेख सवारन को मुरिबो, बरुनी बंदूख की पाँति, बिरह को गनीम करि, आदि नायिका के नेत्र में काम की सवारी को रूपक करि उत्प्रेक्षा। गर्भोत्प्रेक्षा रूपक अलंकार याके गर्भ में है यातें गर्भोत्प्रेक्षा अलंकार ॥१३८॥

कवि—मीरन (अपह्नुति)

स०-आए कहूँ अनतै मनमोहन सोहत मूरति मैन मई है।
आरस सों रस सों अनुराग सों रूप सों रीझ सों डीठि ठई है॥
रावरे वोठन अंजन राजत 'मीरन' मो मति तेहतई है।
जानति हौं वह भावती औरं सों बोलन की मुँह छाप दई है ॥१३९॥

टीका—इहाँ ओठन पै अंजन राजै है ताको औरन सों न बोलिबे के अर्थ छाप अर्थात् मोहर करि दियो है। अंजन को धर्म दुराय छाप को धर्म

1—यह उत्प्रेक्षा का भेद या स्वतंत्र कोई दूसरा अलंकार नहीं है, अपितु कोई दूसरा अलंकर जब उत्प्रेक्षा को व्यक्त करता है तब गर्भोत्प्रेक्षा कहलाती है। जैसे उक्त दंडक में रूपक से उत्प्रेक्षा व्यक्त हुई है।

निसान = ध्वजा, पताका। असवार = घुड़सवार। रेख = रेखा, पंक्ति। कोरसी = लकीर जैसी। बरुनी = नेत्रपलकों के अग्रभाग में उगने वाले बाल (बरौनी)। गनीम = दुश्मन, शत्रु। पैज = प्रतिज्ञा, जिद। बागे = जामे (एक विशेष प्रकार का पहनावा) ॥ १३८॥

मैनमई = काममयी। आरस = आलस्य। ठई = ठहराई। वोठन = ओठों में। तेहतई = क्रोध से संतप्त। भावती = प्रियतमा ॥१३९॥

आरोप, यातें शुद्धापह्नुति अलंकार, और अन्य नायिका संभोग जनित ओठ गत अंजन रेख विलोकि सरोष बचन कहिबे सों प्रौढा खंडिता नायिका ।।१३९।।

(विरोधाभास)

दंडक—सुमन में बास जैसे सु मन में आवै कैसे,
नाहीं कह्यो होत नहीं हाँ कह्यो चहत है।
सुरसरि सूरजा मैं सूरसुता सों हैं जैसे,
बेद के बचन बाँचे सोंके निबहत है।।
परिवा के इन्दु की कला जो बसै अम्बर मैं,
परि वाको अक्ष परतक्ष न लहत है।
जैसे अनुमान परमान परब्रह्म जैसे,
कामिनी की कटि कबि 'मीरन' कहत है ।।१४०।।

टीका—फूल आदि में सुगंध है परन्तु प्रत्यक्ष नहीं इसी प्रकार से नायिका के कटि है परन्तु अनुमान सों जान्यो जाय है। क्योंकि जो बासैं सुगंध है तौ दृष्टि में क्यों नहीं आवै है। तौ सूक्ष्म रूप सों है, नहीं तौ वाको असंभव है ऐसे ही कटि है भी और नहीं [भी] है यातें विरोधाभास अलंकार ।।१४०।।

कवि—रामकृष्ण (संबंधातिशयोक्ति)

दंडक—राजै मेघ डंबर जो अम्बर परसि कर,
तेज चखचौंधे होत बाहन दिनेस के।
सुंडनि के सीकर छुटत जब ऊरध को,
बसन दरीचिन के भीजत सुरेस के।।
लंका होत संका सुनि घननाद घंटा घोष,
चलत चलत फनि गन भुज सेस के।
उड़त मलिंद गंड मंडल ते 'रामकृष्न',
झूमत गयंद फिरैं कोशल नरेश के ।।१४१।।

सुमन में = पुष्प में, सु = सो, वह। सुरसरि = गंगा। सूरजा = यमुना। परिवा = प्रतिपदा। परि = पर, किन्तु। अक्ष = बिम्ब, आकृति। परतक्ष = प्रत्यक्ष। परमान = प्रमाण ।।१४०।।

मेघडंबर = जलदपटल, बादलों का समूह। अम्बर = आकाश। चखचौंधे = चकाचौंध, तीव्र प्रकाश से आँखों की तिलमिलाहट। दिनेस = सूर्य। सीकर = बूँदें। उरध = ऊर्ध्व, ऊपर ।।१४१।।

टीका—इहाँ श्री रामचन्द्र के हाथिन के बर्णन में आकाश गत मेघ को शुंडादंड स्पर्श करै है, सूर्य के घोड़न के चकाचौंध होवै है, शुंडादंड गत आकाश गंगा के सीकर अम्बु कणिकासों देवलोक गत बिमल महल दरीचीस्थित देवाङ्गना को बसन भीजै है, घंटाघोषसों लंका को शंका होती है। लक्षणाकरि लंका बासी को जानिए। और जाके चलते शेष को फण लचि जाय है यह अजोग जोग बर्णन, यातें संबन्धातिशयोक्ति अलंकार स्पष्ट है ॥१४१॥

कवि—कविराज (संबंधातिशयोक्ति)

स०—लाल कियौ परदेश को गौन सुभावै न भौन सखी सुखदाई।
भोर भए जल लेन गई 'कविराज' मनोभव ताप सताई॥
कूप तडाग नदी जेहि जाइ सो रीति ह्वै जाइ परे परछाँई।
साँझ समै अगरी अति रूप की लै गगरी फिरि रीतियै आई ॥१४२॥

टीका—इहाँ प्रोषित पतिका नायिका के बिरह जनित ताप के बर्णन में जल भरिवे के अर्थ कूप तडागादि को जायबो और वाके परछाँही के परने सें कूपादि के सूखिबे के कारण सम्पूर्ण दिन भ्रमि कै फेरि रीतियै गगरी लै घर को आयबो यह अजोग को जोग बर्णन यातें सबन्धातिशयोक्ति अलंकार ॥१४२॥

कवि—सेनापति (दीपकावृत्ति)

दंडक—धातु शिला दारु निरधारु प्रतिमा को सार,
सो न करतार है बिचार बीच गहरे।
राखि दीठि अन्तर जहाँ न कछु अन्तर है,
जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे।
अंजन बिमल 'सेनापति' मन रंजन दै,
जपि कै निरंजन परम पद लेह रे।
करि न संदेह रे वही है मन देह रे,
कहाँ है बीच देह रे कहा है बीच देहरे ॥१४३॥

टीका—इहाँ कहाँ है वह देह देहरे पद की आवृत्ति सों पदावृत्ति दीपकालंकार स्पष्ट है ॥१४३॥

मनोभव = कामदेव। रीति ह्वै जाइ = खाली हो जाती है, सूख जाती है। अगरी = खान, निधि ॥१४२॥

निरधारु = आधाररहित, निर्धारण करो, सोचो। दीठि = दृष्टि। निरंजन = अकलुष, परमात्मा। देहरे = देवालय के ॥१४३॥

कवि—सुमेर (पर्यायोक्ति)

दंडक—नाइन के भेष स्याम पाइन पखार्‍यो जाइ,
एँडिन महावर सुरंग रंग दियो है।
चूनरी चुनावदार चूनि पहिरायो जब,
हार पहिराइबे को हाथ कर लियो है।
घूँघट उघारि पहिरावत 'सुमेर कवि',
कुचन पै हाथ राखि छुयो जब हियो है।
सुन्दर सलोनी कहै रसना दसन दाबि,
हाय मेरे काज ब्रजराज ऐसो कियो है ॥१४४॥

टीका—इहाँ राधा जी के मिलिबे अर्थ श्रीकृष्नचन्द्र नाथिन को भेष करि अंग सिंगारि चूरी चूनरी पहिराय घूँघट टारि हार पहिरायबे समय कुच गहिबो व्याज करि इष्ट साध्यो याते स्वेष्ट साधन पर्य्यायोक्त अलंकार ॥१४४॥

कवि—देवीदास (दीपकावृत्ति)

दंडक—कीरति को मूल एक रैन दिन दीबो दान,
धरम को मूल एक साँच पहिचानबो।
बाढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबोई,
जानिबे को मूल एक भली भाँति मानिबो।
प्रान मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी 'देवी',
दारिद को मूल एक आरस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ,
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो ॥१४५॥

टीका—इहाँ कीरति को मूल धन आदि पद में मूल पद की आवृत्ति, यातें पदार्थावृत्ति दीपक अलंकार ॥१४५॥

नाइन = नाऊ की स्त्री। पाइन = पैरों को। पखार्‍यो = धोया। चुनावदार = सिकुड़नवाला। चूनि = चुनकर। रसना = जिह्वा। दसनदाबि = दाँतों तले दबाकर ॥१४४॥

दीबो = देना। बाढ़िबे = बड़प्पन पाना। उपाधि = उपद्रव। आरस = आलस्य। आतुरी = घबराहट ॥१४५॥

(विधि[1])

एरे गुनी पाय गुन चातुरी निपुनताई,
कीजिए न मैलो मन काहू जो कछू करी।
पीर न पराए द्वार गए को है यहै भय,
मान अपमान काहू रे करी कै जू करी।
कूर एक कबि चल्यौ जात है सभा के बीच,
तो को तो अटोकि 'देवी' काहू जो पटूकरी।
द्वारे गज राज ठाढ़े कूकरी सभा के मध्य,
कूकरी सो कूकरी औ तूकरी सो तूकरी ।।१४६।।

टीका—इहाँ कूकरी और करी को विधान अनुपयुक्त बाधित है अर्थान्तर को गर्भित करि चारुतातिशय, यातें विधि अलंकार। अर्थान्तर कि तूँ गजराज है दल की शोभा करै है और कूकरी सबको देखि भूकने वाली है यह अर्थान्तर सों गर्भित है ।।१४६।।

कवि—कालिदास (सहोक्ति[2])

दंडक–सितासित संगम के बीचिन के बीच बीच,
ता मुख मरीचिन की छबि छहराति है।
कहै 'कालिदास' भीजी सारी वाकी पीठि पर,
सबन की दीठि संग लिए लपटाति है।
जाके अंग बासी ऐसी केसरि हैं सोहै स्वच्छ,
जमुना और गंगा जाको रंग लिये जाति है।

१—विधि अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी सिद्ध अर्थ का विशेष अभिप्राय से पुनः विधान किया जाय। जैसे उक्त पद में करी और कूकरी का अर्थ क्रमशः हाथी और कुतिया यह प्रसिद्ध ही है, किन्तु इन पदों की पुनरुक्ति (करी = हाथी की भाँति श्रेष्ठ और कूकरी = व्यर्थ भूकने वाली) इस विशेष अभिप्राय से की गयी है।

कूर = क्रूर। अटोकि = हटाकर। पटूकरी = चतुर बनाया, सावधान किया। कूकरी = कूँ कूँ करने वाली, कुतिया। करी = हाथी ।।१४६।।

२—(सह + उक्ति) वाक्यों का एक साथ वर्णन जहाँ काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता हो वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है। सह = साथ या तत्समानार्थक शब्द इसके वाचक होते हैं।

कोऊ मृगनैनी एक बेनी मैं अन्हाति सब,
नैनन की सेनी ताकी बेनी मैं अन्हाति है ।।१४७।।

टीका—इहाँ नायिका की पीठि पर सारी को लपटायबो सबकी दीठि के साथ ही होय है और मृगनैनी बेनी में अन्हाय है, नैनन की सेनी पंक्ति लोगन की वाके साथ उसी की बेनी में अन्हाय है यातें सहोक्ति अलंकार ।।१४७।।

कवि—महाराज (पर्यायोक्ति)

स०-लखि कै अजहूँ अधरातकतें भ्रम मोहि भयो सो न काहू मिटायो।
या सपने को सुभाव कहो तुम ही पिय आपनी बुद्धि को पायो।
नींद को नास भयो तबतें 'महाराज' हियो अति चेटक छायो।
लाल गयौ गिरि मेरे गरे को कहा कहिये सो परोसिनि पायो ।।१४८।।

टीका—इहाँ नायक सों नायिका की उक्ति कि आधी रात्रि को मैंने एक स्वप्न देख्यो है। ताको आपुही बताइए कि मेरे गरे सों लाल गिर्‍यो ताको परोसिनि पायो, याको भेद कहिए। यह आसय लिए है कि हमसों अवधि बदि कै वा परोसिनि के संग बिलम्यो जायकै, कहा कहैं तुमकों, यातें पर्य्यायोक्ति अलंकार ।।१४८।।

कवि—हेम (प्रतिवस्तूपमा)

दंडक—करि कै अडम्बर अनेक धरि अम्बर को,
गति मति हीन फिरै बानक बनाइ कै।
कहूँ तो अदक्ष टूटै पक्ष दरबारिन को,
फिरत खुसामदी में घर घर जाइ कै।।

सितासित = श्वेतकृष्ण। बीचिन = तरंगों। मरीचिन = किरणों। सारी = साड़ी, सम्पूर्ण। दीठि = दृष्टि। बेनी = त्रिवेणी संगम। सेनी = श्रेणी, पंक्ति। बेनी = लट ।।१४७।।

सुभाव = उचित फल, प्रकृति। चेटक = टोना। लाल = रत्न, नायक ।।१४८।।

१—उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य का एक ही धर्म जहाँ भिन्न भिन्न शब्दों में कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है।

[अर्थावृत्ति दीपक में दोनों वाक्य याती प्रस्तुत ही होते हैं या अप्रस्तुत ही, किन्तु प्रतिवस्तूपमा में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों हो सकते हैं। इसी प्रकार दृष्टान्त में दोनों वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है प्रतिवस्तूपमा में नहीं, यही इनमें अन्तर है।]

'हेम' अरबीले अति गुन गरबीले नर,
काहू के दुआरे नहिं जावैं धाइ धाइ कै।
गुनिन के गुनगन आपते प्रगट होत,
मृगमद कहा कहै आप सौंहैं खाइ कै॥१४९॥

टीका—इहाँ गुनिन के गुनगन को प्रकट होयबो और मृगमद कस्तूरी के सुगंध को प्रादुर्भाव सौंहैं खाएँ नहीं होय है, उपमानोपमेयभाव करि दूनों वाक्यार्थ को प्रकट होयबो यातें प्रतिवस्तूपमा अलंकार ॥१४९॥

(रूपक)

दंडक—अरुन हरोल नभ मंडल मुलुक पर,
चढ्यौ अर्क चक्कवै कतार दै करनि कोर।
आवत ही सावँत नखत जोर धाइ धाइ,
घोर घमसान करि काम आए ठौर ठौर॥
सस हरि सेत भए सटक्यौ सहमि ससि,
आमिल उलूक जाइ दुरे कंदरनि वोर।
द्वंद अरविंद बंदीखाने ते भगाने पेखि,
पायक पुलिंदवै मलिंद मकरंद चोर॥१५०॥

टीका—अरुन नभमंडल हरौल मुलुक सूर्य्य चक्रवर्ती आदि उपमान को उपमेय नभमंडल सूर्य्य आदि के साथ ताद्रूप करि बर्णन, यातें समताद्रूप्य रूपकालंकार ॥१५०॥

कवि—संगम (गूढोक्ति[1])

दंडक—तीर है न बीर कोऊ करै न समीर धीर,
बढ्यो श्रमनीर मेरी तपनि बुझाव रे।

अडम्बर = आटोप, आडम्बर। अम्बर = वस्त्र। बानक = वेश। अदक्ष = अचतुर। अरबीले = भोलेभाले। मृगमद = कस्तूरी॥१४९॥

हरोल = सिपाहियों का वह दल जो सबके आगे रहता है। अर्क-चक्कवै = सूर्य-चक्रवर्ती। करनिकोर = किरणों की नोक। सावँत = सामंत। नखत = नक्षत्र, तारे। सस हरि = ससिहरि। सेत = श्वेत। सटक्यौ = भाग गया। आमिल = अधिकारी। कंदरनि वोर = गुफाओं की ओर। बंदीखाना = जेल। पायक = पैदल सिपाही। पुलिंदवै = एक जंगली जाति। मलिंद = भौंरे। मकरंद = पराग॥१५०॥

१—गूढोक्ति अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ किसी को लक्ष्य करके बात कही जाय और उसके द्वारा किसी दूसरे को रहस्य समझाया जाय।

पंखा है न पास एक आस तेरे आवन को,
सावन की रैनि मोहि मरत जिआव रे ॥
'संगम' मैं खोलि राखी खिरकी तिहारे हेतु,
होत हौं अचेत कछु लागै न उपाव रे।
जाम जात जानै कौन कीजिये उताल गौन,
पौन मीत मेरे भौन मंद मंद आव रे ॥१५१॥

टीका—इहाँ तटस्थ कान्त के आगमन उद्देश्य पौन के आगमन के अर्थ निर्जनत्व और कामाधिक्य प्रथित करि कामकलाकेलिकल्लोल अनुभव योग्य आकूत विज्ञापन करै है, यातें गूढ़ोक्ति अलंकार ॥१५१॥

कवि—रघुनाथ (शुद्धापह्नुति)

दंडक—चरखी अलातधनु धूमधार धूरवा है,
बीजुरी हवाई उड़ी दारु दुख खरी की।
जुगुनू चलत टोटा चन्द जोति ताल जरै,
निरझरि चादरि दुसह आगि धरी की।
जहाँ गिरी इंद्रबधू देखि 'रघुनाथ' की सों,
फैलि रही पावस तमासे गरकरी की।
सीकरैं न होहि आली नीर की तरंगैं ए,
अनंगै छोड़ि छूटती फुलिंगैं फुलझरी की ॥१५२॥

टीका—इहाँ सीकरैं न होहिं किन्तु अनंग काम तमासेगर की छोड़ी ऐ फुलझरी की फुलिंगै कहैं अग्नि की चिनगारिएँ छूटतीं हैं। सीकर को धर्म दुराय फुलिंग को धर्म आरोप यातें शुद्धापह्नुति अलंकार ॥१५२॥

(छेकापह्नुति[1])

अंग रंग साँवरो सुगंधनि सों लपटाने,
पीत पट पेखि न पराग रुचि वर की।

तीर = तट पर। समीर = वायु। श्रमनीर = पसीना। तपनि = संताप, गर्मी। उपाव = उपाय। जाम = प्रहर। उताल गौन = शीघ्रगमन ॥१५१॥

अलातधनु = जलती हुई वस्तु को घुमाने से बना हुआ गोलाकार मंडल। धूमधार = धुँवाधार, निरन्तर। धूरवा = मेघखंड। टोटा = कारतूस। इंद्रबधू = बीरबहूटी, वर्षाऋतु में होनेवाला एक लाल रंग का कीड़ा। गरकरी = गला काटना। सीकरैं = जलकण। अनंगै = कामदेव। फुलिंगैं = चिनगारियाँ ॥१५२॥

१—जहाँ अपनी कही हुई बात की वास्तविकता को युक्तिपूर्वक दूसरे से

करे मधुपान मंद मंजुल करत गान,
'रघुनाथ' मिलो आनि गली कुंजघर की।
देखत बिकानी छबि मोपै न बखानी जात,
कहत ही बात सो त्यों और बोली डरकी।
भली भई तोहि मिले कमलनयन प्रात,
नाहीं सखी मैं तौ कही बात मधुकर की ॥१५३॥

टीका—इहाँ अंतरंग सखी सों नायिका निज वृत्तान्त कहै है। वाही समै काहू सौति बोलि उठी कि भली भई आजु प्रभात ही कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र तो कों मिले। यह साँची बात दुरायवे अर्थ, मैं तो मधुकर की बात कही है, मधुकर की बात को आरोप कियो यातें छेकापह्नुति अलंकार ॥१५३॥

(विवृतोक्ति)

मत्तग०—जो कोउ देइ जो सो कोउ लेइ सो है व्यवहार बड़े को चलायो।
मैं अपने जिय में यह जानि दियो तुमको अपनो मन भायो॥
रावरे को गुन मोपै कछू 'रघुनाथ' की सौंह न जात है गायो।
भाउ बराबरि कीतौ कहा चलि देखिबे को फिर पाव न पायो।१५४।

टीका—इहाँ नायिका की उक्ति नायक सों, कि मैं आपुकों अपनो मन दै बराबरि को भाव कियो, फेरि देखिबे को पाव भी न पायो, यह भाव और पाव श्लेष करि प्रीति और चरण को अर्थ उपस्थित भयो यातें बिवृतोक्ति अलंकार ॥१५४॥

कवि—केशवदास (विरोधाभास)

दंडक—परम पुरुष कुपुरुष संग शोभियत,
दिन दानसील पै दुकानहीं सो रति हैं।
सूर कुल सकल सुराह के रहत सुख,
साधु कहै साधु परदार प्रिय अति हैं॥
अकर कहावत धनुषधर शोभियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति हैं।

छिपा लिया जाय वहाँ छेकापह्नुति होती है। (छेक = चातुर्य से, अपह्नुति = छिपाना, अमीर खुसरो की 'मुकरियाँ' आदि प्रायः इसी के अन्तर्गत आती हैं।)

कुंजघर = लतागृह। कमलनयन = श्रीकृष्ण। मधुकर = भौंरा ॥१५३॥

मन = चित्त, ४० सेर का परिमाण। भाव = अभिप्राय, दर। पाव = पाँव, चरण, सेर का चौथा भाग ॥१५४॥

बिद्यमान लोचन द्वै हीन बाम लोचननि,
'केशौदास' राजा राम अद्भुत गति हैं ॥१५५॥

टीका—इहाँ परम पुरुष आदि कहाय कुपुरुष अर्थात् बानर भालु आदि के संग शोभित होयबो बिरोध यातें बिरोधाभास अलंकार ॥१५५॥

कवि—गुरदत्त (अन्योक्ति[1])

स०–सुख बालपनौ कै भयो सपनो सुख मातु पिता के न साथ चरो।
जग जोबन हूँ को न स्वाद मिल्यौ जुबती उनमाद को बाद हरो॥
पन तीजे मैं तूँ अपने मन मैं 'गुरदत्त' कहाँ धौं गरूर धरो।
अब टेकहि टेक तजो शुक जू भजो राम अजौं पिंजरामैं परो॥१५६॥

टीका—बालपन को सुख तुमको स्वप्न के तुल्य भयो और माता पिता के साथ नहीं चारा चुगो हो, जग में युवावस्था को स्वाद नहीं चाख्यो, जुवती के भोग सों रहित हौ, तीसरे पन में अपने मन में कहा गर्व करो हो। हे शुक! टेक तजो कि हम सब सुख करैंगे, पिंजरा में बद्ध हो राम राम कहो। इहाँ शुक के दुख सहिबो उक्ति सों ममता करि कुटुंब में निबद्ध काहू प्रकृत पुरुष को आश्रय, यातें अन्योक्ति अलंकार ॥१५६॥

मंगल को पद जानै नहीं तुम जंगल बासी बड़े खल खाली।
यामैं न रंग उमंग भरे शुक पागे न जू पिंजरान की जाली॥
पाके अनार के बीजन के रस छाके नहीं यह कौन खुसाली।
खान कहाँ कठ जामुनि को फल कोचकी होत है चोच की लाली।१५७।

टीका—इहाँ पक्व अनार आदि फल छोड़ि कठ जामुनि के फल के खायबे में प्रवृत्त शुक की निंदा, उत्तम भोग्य पदार्थ त्यागि अति कटु तीक्ष्ण भाकस विषय

सूर कुल = सूर्य वंश। परदार = परस्त्री, (परा = उत्कृष्ट, दारा स्त्री) सीता। अकर = कर-विहीन। बामलोचननि = सुन्दर नेत्रों से, स्त्रियों से ॥१५५॥

१—(अन्य + उक्ति) जहाँ अन्यको लक्ष्य करके अन्य के प्रति कहा जाय, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में पिंजरे में बद्ध शुक को लक्ष्य करके संसारी पुरुष से कहा गया है। पंडितराज जगन्नाथ ने 'भामिनी विलास' में अन्योक्त्युल्लास नाम से एक पूरे उल्लास की रचना की है।

चरो = चारा (आहार) ग्रहण की क्रिया। बाद = पीछे। पनतीजे = तीसरी अवस्था में। गरूर = घमण्ड। टेक हि टेक = व्यर्थ की हठ ॥१५६॥

पागे = कीन। खुसाली = प्रसन्नता, समृद्धि। कठजामुनि = कड़वी जामुन। रुचकी = उत्कृष्ट। कोचकी = एक रंग जो ललाई लिये भूरा होता है ॥१५७॥

फूल के आस्वाद में निबद्ध काहू प्राकृत पुरुष को आश्रय, यातें अन्योक्ति अलंकार ॥१५७॥

तुम्ह ताकत हो तिन्हैं दूरही तें जन जे रन में तन बेध भयो।
तुम्हैं नेकु सँदेह न जीवन बाप को आप सहस्र लौं सिद्ध भयो॥
खल हो जु बड़े छल छोड़ो अजों अब कौन सनेह न रिद्ध भयो।
मुरदान के अंग अहार कियौ तुम याही तें गिद्ध निषिद्ध भयो॥१५८॥

टीका—इहाँ मुरदान के खायवे में प्रवृत्त गिद्ध की निंदा को अशुचि अपवित्र विषय कुधान्य आदि के भोग में आसक्त काहू कुछिंभरि को आश्रय, यातें अन्योक्ति अलंकार ॥१५८॥

कवि—नरायन (उदात्त[1])

सवैया—शीतल है खस को बँगला चहुँ पास सिंचाइ दई कदली को।
नीके 'नरायन' होत पँखा छुटै चादरि को कहु भाँति भली को॥
आनँद सों छिरकावत चंदन केसरि सैन बताय अली को।
फूलनि सेज मैं पौढ़त लै संग नंदलला बृषभान लली को॥१५९॥

टीका—इहाँ शीतल खस को बंगला, चहूँ ओर कदली के वृक्षन की सिंचाई जहाँ आछी भाँति पंखा छूटि रह्यो है। चंदन केसरि जुत जलसों छिरकायो वा जगह सखीन को सैन बताय फूलनि की सेज बिछाय संग में बृषभान लली श्रीराधा को लै नंदलाल श्रीकृष्नचन्द्र जू पौढ़ैं हैं। यह समृद्धि को कथन, यातें उदात्तालंकार ॥१५९॥

कवि—रघुराय (अन्योन्य[2])

दंडक—प्यारे हित काज प्यारी प्यारी हित काज प्यारे,
दुहुँनि सिंगारे तन नीके चटमट सों।
जमुना के नीर तीर हँसि हँसि बातें करैं,
मन अटकायो कल कोकिला के रट सों।

१—उदात्त अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी की समृद्धि का वर्णन किया जाय अथवा दूसरे का अंग बना कर किसी का आधिक्य वर्णन किया जाय। उक्त सवैया में भगवान् कृष्ण की समृद्धि का वर्णन होने से उदात्त का पहिला प्रकार है।

२—अन्योन्यालंकार वहाँ होता है जहाँ दो पदार्थ परस्पर एक दूसरे के उपकारक हों।

एते 'रघुराई' घन घटा घहराई आई,
बरसन लाग्यो नान्हीं बूँदनि के ठट सों।
जौलों प्यारो प्यारी को उठायो चाहैं पीत पट,
तौलों प्यारी प्यारो ढाँपि लियो नील पट सों॥१६०॥

टीका—इहाँ प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र के हेतु प्यारी श्री राधा को और प्यारी राधा जी के अर्थ श्रीकृष्णचन्द्र जी को सिंगार करिबो परस्पर उपकारक, यातें अन्योन्यालंकार ॥१६०॥

कवि—शोभनाथ (पर्यायोक्ति)

दंडक—जरकसी सारी तामैं कारी सटकारी बेनी,
कंचन की भूमि सों चुराये चित लेति है।
कंचुकी की कसनि कसनि कसकत पुनि,
फाँदा फबै मोतिन के झब्बनि समेत है।
'शोभनाथ' कहै आली अहै निधरक अति,
बानी तेरी उपमा कहति नेति नेति है।
कैसी है अजानी जू पै लालैं देति ऐसी पीठि,
है है ढीठि तेरी पीठि तोही पीठि देति है॥१६१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। कंचुकी आदि की कसनि सकल रसिक जन के हृदय में कसकै है और मोतिन की लरैं झब्बनि समेत न्यारे फबै हैं। तेरी शोभा बानी सरस्वती पै नहीं कह्यो जाय है। कैसी तूँ अजानी है लला की ओर पीठि करै है। एरी ढीठि तेरी पीठि तोही को पीठि देय है। इहाँ मान छोड़ायबे के अर्थ बचन की रचना करि नायक को कार्य्य साधै है, यातें पर्य्यायोक्ति अलंकार ॥१६१॥

कवि—मोतीराम (लेश)

दंडक—मूल मलयज को समूल जरि जैयो अरु,
गुन गरि जैयो या सुगंध सहराई को।
कटि जैयो भूतल तें केतकी कमल कुल,
हूजियो कतल अलि कुल दुखदाई को।

ठट = समूह ॥१६०॥

जरकसी = सोने का काम की हुई। सटकारी = फैलायी, बखेरी। कंचुकी = चोली। कसनि = कसावट। कसनि = कितनों को। फाँदा = फन्दा, गाँठ। फबै = शोभित है। झब्बनि = झालरों से। अजानी = अज्ञान, मूढ़। ढीठ = धृष्ट ॥१६१॥

'मोतीराम' सुकबि मनोज मालती के हुञ्यो,
पूज्यो जनि आस बिरही जन हँसाई को।
राजबंस हंसनि को बंस निरबंस जैयो,
अंस मिटि जैयो या कलानिधि कसाई को ॥१६२॥

टीका—इहाँ मलयज आदि को सुगन्ध गुन ताको निदरिबो ऐगुन, उद्दीपन के कारण नायिका को दोष भयो, यातें लेश अलंकार। ऐसे ही औरो पदन में जानिये ॥१६२॥

कवि—कान्ह (अनुमान)

सवैया–चाँदनी 'कान्ह' मलीन भई गन तारन के पियरान लगे।
चिरिया चहुँ वोर करैं चरचा चकई चकवा नियरान लगे॥
सिगरी निसि मैन मरोरनि माँझ सिंगार कछू जियरा न लगे।
मनमोहन तोहि परान लगे नथ के मुकता सियरान लगे॥१६३॥

टीका—इहाँ चाँदनी को मलीन होयबो और तारागन की पियराई, पच्छीन को बोलिबो, चकई चकवान को एकत्र होयबो, और नथ के मुक्ता को शीतल होयबो, प्रभात सूचित करै है यातें अनुमान अलंकार। सखी नायक के मनायबे अर्थ गई परन्तु वाको मन प्यारी की तरफ न रुजू भयो। और नायिका के पश्चात्ताप भाव के कारण कलहान्तरिता नायिका और नायक के हृदय को काठिन्य व्यंग्य है ॥१६३॥

(उत्प्रेक्षा)

दंडक—तैसो घन पावस को उमड़ि घुमड़ि आयौ,
तैसिये अँध्यारी रैनि सूझत न संग को।
प्यारी बनवारी पै सिधारी बनवारी माँझ,
साजै उर बान पंचबान के निषंग को।
पायतर दब्यौ अहि अहि रह्यो पाय गहि,
कहाँ लौं कहत 'कान्ह' कौतुक उमंग को।

मलयज = चन्दन। गरि जैयो = गल जावे। सहराई = मंदगति से चलना (बहना)। कतल = वध। अंस = अंश, कला। कलानिधि = चन्द्रमा॥१६२॥

पियरान लगे = फीके पड़ने लगे। चहुँवोर = चारों ओर। नियरान लगे = निकट में आने लगे। सिगरी = सारी। मैन = काम। मरोरनि माँझ = मरोड़ों में, करवट बदलने में। जियरा = मन। परान = प्राण। सियरान लगे = ठंडे पड़ने लगे॥१६३॥

लिये लोह संगर यौं संगर करन छूटो,
जात है मतंग मानो नृपति अनंग को ॥१६४॥

टीका—इहाँ अहि सर्प को पाय के तरे दबिबे के कारन ताको दाँतन सों गहिबो और ताहू पै कामवश नायिका को नायक के निकट सत्वर जायबो संभाव्यमान पद, उक्त विषय, ताको अनंग काम नृपति राजा को छुट्यो मतंग को लोह को संगर कहैं जंजीर को संगर संग्राम करिबे के हेतु लै जायबो करि उत्प्रेक्षा, उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार और परकीया अभिसारिका नायिका ॥१६४॥

कवि—प्रहलाद (अनुमान)

जथा—छूटि छूटि परै आजु बेंदी भरै भालपै तें,
मुखपै तें मोतिन की लरी लरकति है।
चूरेहूँ की कील डग भरत निकसि जात,
जब तब जूरेहूँ की गाँठि भरकति है।
जानि न परत परदेश पिय 'प्रहलाद',
निकसि उरोजनि तें आँगी अरकति है।
तनी तरकति कर चूरी चरकति सिर,
सारी सरकति आँखि बाँई फरकति है ॥१६५॥

टीका—बेंदी आदि के छूटिबे सों और बाँई आँखि के फरकिबे सों नायक के आगमन के हेतु सगुन अनुमान करै है, यातें अनुमानालंकार ॥१६५॥

कवि—राम (पर्यायोक्ति)

दंडक—स्वेदकन जाली अंसुमाली की तपनि आली,
सुकी कहूँ खड़े तोहिं बिंबाधर बूझे हैं।
बेनी जानि साँपिनी सु चोथी है कलापिनी वै,
बापुरी चकोरी को कपोल चन्द सूझे हैं ॥

पावस = वर्षा। बनवारी पै = श्रीकृष्ण के पास। बनवारी = बूँदाबाँदी। सालै = कष्ट देता है। पंचबान = कामदेव। निषंग = तरकस। अहि = सर्प। लोहसंगर = लोहे की साँकल। संगर = युद्ध। मतंग = हाथी। अनंग = कामदेव ॥१६४॥

लरकति = लटकती। चूरे = बाँह में पहनने का एक आभूषण। जूरे = जूड़े, कट। भरकति = ढीली होती। उरोजनि तें = स्तनों से। आँगी = चोली, कंचुकी। अरकति = फट जाती। तनी = गाँठ, बन्धन। तरकति = तड़कती है ॥१६५॥

'राम जू सुकवि' मैं पठाई तहाँ तूँ न गई,
बंद कंचुकी के कहूँ झाल मैं अरूझे हैं।
उन्नत उरोजनि समुझि संभु किंसुक सो,
कुंजनि के कोने इन्हैं काने आज पूजे हैं ॥१६६॥

टीका—दूती सों नायिका की उक्ति कि तेरे तन में सूर्य के ताप सों स्वेद झलक्यो, शुकी बिंबफल के भ्रम सों तेरो अधर खंडित कियो। बेनीकों सर्पिनी ठहराय कलापिनी मयूरी चोथ्यो अर्थात् चूस्यो। चकोरी कों तेरे कपोल को चन्द्र भ्रांति भई। और तेरो उन्नत उरोज देखि शंभु की भ्रांति सों काहू प्रेमी जन किंसुक टेसू के फूलनि सों पूजन कियो और आँगी कहूँ झाल मैं अरुझि फटि गई है। तात्पर्य्य यह कि जहाँ को मैंने तोकों पठाई वहाँ तेरी यह दशा नहीं भई, किन्तु कहीं अन्यत्र ही भई है। इहाँ दूती की दशा को बर्णन करि नायक सों भोग करिबो व्यंग्य, वाको धिक्कार करिबे को आश्रय, यातैं प्रथम पर्य्यायोक्ति अलंकार और अन्यसंभोग दुःखिता नायिका ॥१६६॥

दंडक—केसरि कपूर और चंदन अगर चूर,
कुंकुम गुलाब मद मृगमद गारोंगी।
मौलसिरी माधुरी के मालती के हार भाँति-
भाँति के ललित चीर चुनि चुनि धारोंगी।
हरष हिये को बाँह फरकि जतावति है,
'राम जू' प्रतीति मोहिं अंगन सँवारोंगी।
अंक भरि प्यारे कों निशंक आजु भेंटत ही,
दै जुग उरोज शिव मैं मनोज मारोंगी ॥१६७॥

टीका—इहाँ केसरि, कपूर, चंदन, अगर, कुंकुम, गुलाब, मृगमद कस्तूरी, औ मौलशिरी, मालती आदि को हार और ललित बसन चुनि धारन और बाम भुज, बाम नेत्र को फरकिबो अँग सँवारिबो अंक भरि निःशंक उरोज शिव दैके प्यारे को भेटिबो आदि करि मनोज काम को जीतिबो समर्थन द्रिढ़ देखायो, यातैं काव्य लिंग अलंकार ॥१६७॥

अंसुमाली = सूर्य। तपनि = गर्मी। सुकी = सुग्गी। चोथी = नोच डाला। कलापिनी = मयूरी। बापुरी = बेचारी। झाल = झाड़ी। संभु = शिव। किंसुक = पलाश। कोने = किनारे पर। का ने = किसने ॥१६६॥

गारोंगी = निचोड़ूँगी। चीर = वस्त्र। उरोजशिव = स्तनरूपशंकर। मनोज = कामदेव ॥१६७॥

कवि—दयानिधि (विरोधाभास)

स०–रूठि रहो हमसों तो हमैं नितहीं परि पायन पाय मनाइबो।
बोलो न बोलो हमैं नित बोलिबो चाह करो न करो हमैं चाहिबो।
देखो न देखो 'दयानिधि' प्यारी हमैं सुख नैनन को सरसाइबो।
मानो न मानो हमैं यह नेम नयो नित नेह को नातो निबाहिबो।१६८।

टीका—जो पै तुम हम पै रूठि हू रहो तऊ हमैं पायन परि मनायबोई है, और हमसों बोलो न बोलो पै हमको बोलिबोई है, यह बिरोध। क्योंकि जो कोऊ काहू सों रूठै है तो वासों वह भी रूठै है। इहाँ रूठिबे हू पै मनाइबो बिरोध, यातें बिरोधाभास अलंकार ॥१६८॥

कवि—प्रवीन राय (संभावना)

दंडक—सकल सुगंध चार मंजन कै घनसार,
ऊजरे अँगोछे आछे अंजन सुधारिहौं।
देहौं न पलक एक लगन पलक परि,
पूरि पूरि अभिलाष तपनि निबारिहौं।
भनत 'प्रवीन राय' मोज या फरकिबे की,
सुनो बाँए नैन यहै बैन प्रति पारिहौं।
जबहीं मिलैगो मोहिं घनस्याम प्रान प्यारो,
दाहिनो द्रिगहि मूँदि तोही तें निहारिहौं ॥१६९॥

टीका—इहाँ जब मोकों घनस्याम प्रान प्यारो मिलैगो तबहीं दाहिनों द्दग मूँदि, येरी बाम द्दग तोही सों सकल श्रृङ्गार साजि मनभावन को निहारिहौं, यह संभावना की बात। जब ऐसो होयगो तब ऐसो करोंगी यातें संभावना लंकार ॥१६९॥

(विरोधाभास)

स०–आई हौं पूँछन मंत्र तुम्हैं तुम्ह हो इन साह के मंत्र अगोई।
प्रान तजौं न भजौं सुलतानहि मैं न लजो लजिहै पुनि वोई ॥

परि पायन = पैरों पड़कर। नेम = नियम॥१६८॥

मंजन = मज्जन, स्नान। घनसार = कपूर। पलक = पल, क्षण। पलक = आँखों की पलक, निमेष। तपनि = संताप, गर्मी। मोज = मौज। बैन = बचन। प्रतिपारिहौं = प्रतिज्ञा करती हूँ ॥१६९॥

स्वारथ हाथ रहै परमारथ बात बिचारि कहो तुम सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मेरो पतिव्रत भंग न होई ॥१७०॥

टीका—इहाँ जामैं प्रभु की प्रभुता रहै और मेरो पतिव्रत भंग न होय, यह बिरोध बात, यातैं बिरोधाभास अलंकार ॥१७०॥

कवि—कुलपति (रसनोपमा)

स०—मोहन के अभिलाष सो बैस रु बैस समान सुरूप गनो है।
रूप समान लुनाई बिराजै लुनाई समान सुजानपनो है॥
जैसी सुजानता तैसो बिचारिकै कान्ह कुमार सों नेह सनो है।
नेह समान लहै सुख साज सु राधिका जीवन धन्य गनो है ॥१७१॥

टीका—इहाँ मोहन श्रीकृष्नचन्द्र के अभिलाष के समान वयस और वयस के तुल्य स्वरूप, रूप के समान सौन्दर्य, सौन्दर्य्य के सदृश चातुर्य्य, आदि क्रमसों वाकों उपमान, वह उत्तरोत्तर उपमान को उपमेय होने के कारण रसनोपमा अलंकार स्पष्ट है ॥१७१॥

कवि—(अज्ञात)

दंडक—कैसो री सुधासर मैं फूल्यौ है कमलनील,
जैसो पंक बदन मयंक ही को हेरो है।
कैसे पंक बदन मयंक ही को हेरो आली,
जैसे अलि कमल मैं गहत बसेरो है॥
कैसे अलि कमल मैं गहत बसेरो आली,
जैसे मैन मुकुर मैं मोरचा करेरो है।
कैसे मैन मुकुर मैं मोरचा करेरो आली,
जैसो री कपोल वैं अमोल तिल तेरो है ॥१७२॥

मंत्र अगोई = प्रधान सलाहकार, मुख्य मंत्री। मैन = कामदेव। वोई = वही ॥१७०॥

बैस = वयस, अवस्था। लुनाई = लावण्य, सुन्दरता। सुजानपनो = चतुरता, सयानापन ॥१७१॥

सुधासर = अमृतकुण्ड। पंकबदन = काले चिह्न से अंकित मुख। मयंक = चन्द्रमा। गहत = ग्रहण करता है। बसेरो = स्थान, बास। मैनमुकुर = काम रूप दर्पण। मोरचा = जंक। करेरो = कड़ा। तिल = शरीर के किसी अंग पर पड़ने वाला काला चिह्न ॥१७२॥

टीका—इहाँ सुधासर मैं नीलकमल को बिकसिबो उपमेय, ताको पंकजबदन मयंक उपमान आदि, पुनः प्रश्न उपमेय को अनेक उपमान करि क्रम सों उत्तर यातैं रसनोपमा अलंकार ।।१७२।।

(विषम)

सीता पायो दुख अरु पारबती बंझा तन,
　　नृग नैं नरक पायौ बिस्वा गति पाई है ।
बेनु भए सुखी हरिचंद नृप दुखी भए,
　　बलि को पताल स्वर्ग पूतना पठाई है ।।
संकर को बिष बिषधर को दियो है अंग,
　　पांडव पठाए जहाँ हिम अधिकाई है ।
हाल ठकुराइसी मैं बोलिबे अचंभौ कहाँ,
　　ईस्वरै के घरतें अपेलि चलि आई है ।।१७३।।

टीका—सीता पायो दुःख यह अयोग्य की घटना क्योंकि कहाँ सीता और कहाँ दुख, पारबती बाँझ तन अननुरूप, यातैं विषमालंकार ।।१७३।।

कवि—नाथ　　## (प्रतीप)

दंडक—तेरो मुख रचि कै निकाई को निकेत राधे,
　　चारु मुखचंद न रच्यौ है और तेरो सो ।
छबिन को घेरो सो सुहाग को उजेरो सब,
　　सौतिन के आँखिन मैं पारत अँधेरो सो ।
कान्ह की सौं 'कवि नाथ' केतौ पचि रह्यो जाकी,
　　उपमा नवीनी सब हेरि हारो मेरो सो ।
ताकी समताहि री बताऊँ कहि काको जाइ,
　　चाकर सों चंद अरबिंद लागै चेरो सो ।।१७४।।

टीका—इहाँ सखी राधा के मुख की प्रशंसा करि (रही) है कि तेरो मुख सौन्दर्य्य को निकेत, उपमान नहीं मिलै है । जाको चाकर सो चन्द्रमा और चेरो दास के सदृश कमल लागै है । उपमान को उपमेय करि बरन्यो, प्रथम प्रतीप अलंकार।१७४।

बंझा = वन्ध्या, बाँझ । बिस्वा = वेश्या । बिषधर = सर्प । ठकुराइसी = प्रभुता । अपेलि = अन्याय ।।१७३।।

निकाई = सुन्दरता । निकेत = वासस्थान । पचि रह्यो = थक गया । चेरो = दास ।।१७४।।

कवि—लाल (तीसरो विशेष[1])

स०–बाल सों 'लाल' विदेश के हेतु हरे हँसिकै बतिया कछु कीनी।
सो सुनि बाल गिरी मुरझाइ धरी हरि धाय गरे गहि लीनी॥
मोहन प्रेमपयोधि भयो जुरि दीठि दुहूँ की गई रस भीनी।
माँगै विदा को विदा को करै मिलि दोऊ विदा को विदा करि दीनी।१७५।

टीका—इहाँ नायक परदेश पयान करिबे के अर्थ प्यारी के निकट बिदा होयबे को गयो। तहाँ प्रेम समुद्र उमग्यो दोनों की दीठि जुरी ता छिन बिदा को कौन माँगै और को बिदा करै। दोऊ बिदे को बिदा करि दियो। बिदा माँगिबे के आरंभ सों अशक्य जो नहीं संभावित रह्यो घर ही रहि जायबो सिद्ध भयो, यातें तीसरो भेद विशेष अलंकार ॥१७५॥

कवि—गोविंद (विषम)

स०–सागर को जल खारि कियो अरु कंटक पेड़ गुलाब के कीनो।
मित्रन माँह बियोग रच्यौ पय पान विषद्धर को पुनि दीनो॥
पंडित लोग दरिद्रित 'गोविंद' मूढ़न को धन धाम नवीनो।
शुद्ध सुधा बरसै बिष अंकित या विधि सों बिधि है बुधि हीनो।१७६।

टीका—इहाँ समुद्र को जल खार, गुलाब में कंटक, मित्र को वियोग, साँप को पय दूध को पान, पंडितन्ह को दरिद्रता, मूढ़न को धन धाम आदि अननुरूप की घटना, यातें विषमालंकार ॥१७६॥

कवि—पुरान (सूक्ष्म)

दंडक—बाँसुरी के बीच एक भौंर डारि ल्याई सखि,
ढाँपि बट पल्लव सों महा बुद्धि भारी सों।

१—विशेष अलंकार काव्य में तीन स्थलों पर होता है—
(१) जहाँ आधार के बिना आधेय का वर्णन हो।
(२) जहाँ थोड़े से प्रारम्भ से अत्यधिक सिद्धि प्राप्त हो।
(३) जहाँ एक ही वस्तु की सत्ता अनेक स्थानों पर कही जाय।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विशेष और विशेषोक्ति दो पृथक् पृथक् अलंकार हैं। विशेष के तीसरे भेद एवं उल्लेख अलंकार में यह अन्तर है कि उल्लेख में एक वस्तु को या तो अनेक व्यक्ति विभिन्नरूप में देखते हैं या उसके विभिन्न गुणों का दूसरा व्यक्ति विभिन्न रूप में वर्णन करता है किन्तु इसमें एक ही वस्तु की विभिन्न स्थानों में स्थिति होती है।]

बाल = बाला (नायिका)। लाल = नायक, कवि। धरी = पकड़ली ॥१७५॥
विषद्धर = सर्प। विधि = रचना, प्रकार। बिधि = विधाता ॥१७६॥

भनत 'पुरान' यामैं आपुहीतें धुनि होत,
कान दैके कह्यो सुनो राधा सुकुमारी सों ॥
रीझि रीझि बारी ताहि आपही मगन भई,
नभ तन चितै मुख मूँद्यो स्याम सारी सों।
आँचर मैं गाँठि दै बिहँसि उठि चली आली,
प्यारी कही आजु ह्याँहीं रहो न हमारी सों ॥१७७॥

टीका—इहाँ सखी बाँसुरी के मध्य एक भौंर को डारि और बट पल्लव सों ढाँपि कै ल्याई और रीझि कै नभ आकाश की ओर चितै स्याम सारी सों मुख मूँदि आँचर मैं गाँठि दै बिहँसि चली अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र तोको इसी बट वृक्ष के निकट मिलैंगे। यह बटपल्लव सों अर्थ लब्ध भयो, पुष्ट जानो अवश्य मिलैंगे यह आँचर की गाँठि सों अर्थ लब्ध भयो, पराशय जाननेहारी राधा सों साभिप्राय चेष्टा करिबे के कारन सूक्ष्म अलंकार ॥१७७॥

कवि—माखन (स्वभावोक्ति)

स०-हम खेलन पैए न जैए जहाँ मग ताही कढ़ैं अँग सोधि सकै।
कबहूँ कर आछे कै पाछे सो अच्छ गहैं सो कपोलन कै मिसकै ॥
कहि 'माखन' लाखन खेलती हैं वै हमारीहि हेरि करैं हिसकै।
हरि को हैं हमारे वै कौन लगैं परी सासु के गोद में यों सिसकै।१७८।

टीका—अज्ञात यौवना नायिका की उक्ति माय सों, हम खेलने नहीं पावैं हैं जहाँ जाती हौं वाही मग अंग सों अंग घिस कै कढ़ैं हैं, कबहूँ आँखि मूँदिबे की व्याज कर सों कपोलन कों छूवै हैं। लाखन खेलती हैं परन्तु वह हमारोई हिसिका करै हैं। ये हरि हमारो कौन हैं यह कहि अपनी माय के गोद में परी सिसकि रही है। इहाँ अपनी युवावस्था न जानने के कारण यों पूँछै है, अज्ञात यौवना को ऐसोई स्वभाव होय है, यातें स्वभावोक्ति अलंकार ॥१७८॥

(निंदास्तुति[1])

जथा-वर तो बिन बाप बिना जननी सुनि कानन कोऊ कहा करतो।
करतो लै दिगम्बर कोऊ कहा 'कवि माखन' आँखि नहीं डरतो ॥

बारी = बाला। सौं = सौगन्ध, शपथ ॥१७७॥

आछे = अच्छे। पाछे सो = पीछे से। मिसकै = बहाने से। हेरि = खोज खोजकर। हिसकै = देखादेखी किसी बात की इच्छा करना ॥१७८॥

१—जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निन्दा व्यक्त होती हो वहाँ निंदास्तुति अलंकार होता है। इसीको व्याजस्तुति भी कहते हैं।

डरतो गुर गाँठि विवाह की तारि पै रावरी भाँवरि ना भरतो।
भरतो कियो पै हमहीं हर तो हम ना बरती तुमैं को बरतो ॥१७९॥

टीका—इहाँ पार्वती को वचन शिव सों, जौ पै हम तुम्हैं न बरती अर्थात् वर करती तो तुम्हैं को बरतो। क्योंकि जाके अंबर हो धन निष्किंचन, यह निंदा की बात सों सम्पूर्ण स्त्री तुम्हारे जोग्य नहीं। साक्षात् ईश्वर शीघ्र प्रसाद स्तुति कढ़ै है, यातें व्याजस्तुति अलंकार ॥१७९॥

कवि—नागरीदास 'नागर' (समाधि[1])

स०—भादव की अँधियारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्याम जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस मीत मलारहिं गावै ॥
ता समै नागर के द्रिग दूरितें आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघुट टारै दया करि दामिनि रूप देखावै ॥१८०॥

टीका—इहाँ भादों की अँधियारी रात्रि समय घटा झुकी बरसि रही है, नायिका अपनी अटा पै बैठी रससों छकी मलार गावै है। ताको मुख देखिबो भीखि स्याम श्री कृष्णचन्द्र यों पाय रह्यो है, पौन मया करि घूँघट खोलि देय है और दामिनी बीजुरी कृपा करि वाको मुख देखाय देय है। कारणान्तर पौन और बीजुरी के सन्निधान सों समाधि अलंकार ॥१८०॥

कवि—दास (तुल्ययोगिता[2] सधर्म)

सवैया—थाहन पैये गँभीर बड़े हैं सदा ही रहैं परिपूरन पानी।
राकै बिलोकि कै श्री जुत 'दासजू' होत उमाहिल मैं अनुमानी ॥

बर = श्रेष्ठ, दूल्हा। कानन = कानोंसे। गुर = गुरु। भरतो = भर्ता, पति ॥१७९॥

१—कारणान्तर से जहाँ प्रारीप्सित कार्य सरल हो जाय वहाँ समाधि अलंकार होता है। उक्त सवैया में श्रीकृष्ण अपनी अटा पर चढ़कर जब रसपोषक मल्लार गाती हुई नायिका को देखने लगे तो वायु ने घूँघट हटा दिया और बिजली ने प्रकाश कर दिया, इस प्रकार नायिकादर्शन इन कारणान्तरों से विशेष सुलभ हो गया।

नागर = चतुर, श्रीकृष्ण। मया = स्नेह। दामिनि = बिजली ॥१८०॥

२—(तुल्य = समान है, योगिता = अन्वय, जिसमें) इसके तीन प्रकार हैं—

१. प्रस्तुत (वर्ण्य) अथवा अप्रस्तुत (अवर्ण्य) का गुण या क्रिया रूप एक धर्म में अन्वय होना, २. हित और अहित में समान व्यवहार होना, ३. बहुत से पदार्थों के उत्कृष्ट गुणों की एक पदार्थ से समानता होना। इनमें जहाँ धर्म उक्त होता है वहाँ सधर्म, जहाँ अनुक्त होता है वहाँ अधर्म तुल्य योगिता होती है।

आदि वही मरजाद लिए ही रहैं जिनकी महिमा जग जानी।
काहू के क्यौं हूँ घटाए घटैं नहि सागर औ गुन आगर प्रानी ॥१८१॥

टीका—इहाँ सागर और गुन आगर प्राणी को मर्यादा अपरित्याग और घटाये न घटिबो धर्मैक्य, यातें तुल्ययोगिता अलंकार ॥१८१॥

(निदर्शना)

सवैया—प्रान विहीन कै पाँइ पलोट्यो अकेले कै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धर्‍यो बहिरे सों मतो कहि ऊतरु जोयो॥
ऊसर में बरस्यौ बहु बारि पखान के ऊपर पंकज बोयो।
'दास'बृथा जिन साहिब सूम की सेवन मैं अपनो दिन खोयो।१८२

टीका—इहाँ सूमस्वामी की सेवान में जो अपनो दिन खोयो, सो प्रानबिहीन के पाय पलोट्यो, बन में जाय अकेलोई रोयो, अंध के आगे आरसी दर्पण धर्‍यो, बहिरो सों मतो कहि उत्तर जोयो, ऊसर में बहुत जल बरस्यो, पाषान पै कमल रोप्यो। सदृश वाक्यार्थ को एक बृथा रूप धर्म में आरोप, यातें निदर्शनालंकार ॥१८२॥

(छेकोक्ति)

पंडित[1] पंडित सों सुखमंडित सायर सायर के सुख मानै।
संतहि संत अनंत भलो गुनवंतनि कों गुनवंत बखानै॥
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिए सु कहा तेहि की गति जानै।
सूर कों सूर सती कों सती अरु 'दास'जती कों जती पहिचानै॥१८३॥

टीका—इहाँ पण्डित को गुन पण्डित जानै है यह लोक कहनावत, यातें छेकोक्ति अलंकार ॥१८३॥

(अर्थान्तरन्यास)

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिले नृप पै पहुँचै कृमि काठनि संग अनेक बिथाई॥

राकै = पूर्णिमा को (पूर्णचन्द्र से तात्पर्य है)। उमाहिल = उमंगयुक्त। मरजाद = मर्यादा ॥१८१॥

पाँइ पलोट्यो = पाँव दबाये। ऊतरु = उत्तर। जोयो = चाहा। ऊसर = रेगिस्तान। पखान = पाषाण, पत्थर। बोयो = रोपा। सेवन में = सेवाओं में ॥१८२॥

१—वस्तुतः यह भी अर्थान्तर न्यास ही है।

सुखमण्डित = आनन्दयुक्त। सायर = कवि। जती = यती, संन्यासी ॥१८३॥

चंदन संग कुठारु* सुगंध ह्वै नींब प्रसंग लहै करुआई।
'दास जू' देखो सही सब ठौरनि संगति को गुन दोष न जाई॥१८४

टीका—इहाँ पौन के संग धूरि को आकाश चढ़िबो आदि विशेष अप्रस्तुत और संगति को गुन-दोष न जाई, यह सामान्य प्रस्तुत को न्यास, यातें अर्थान्तरन्यास अलंकार ॥१८४॥

कवि—निपटि निरंजन (विकल्प[1])

दंडक—भूँख लागै प्यास लागै शीत अरु घाम लागै,
मो पै नाहिं मिटै प्रभु मिटै तो मिटाइए।
चाहै देह दीजै चाहै लीजै देह आपनी को,
'निपटि निरंजन' जू अनत न डुलाइए।
रावरो भिखारी ह्वै कै कौन पै हौं माँगों भीख,
भीख यह माँगों मो पै भीख न मँगाइए।
साधुन औ सिद्धन को संत औ महंतन को,
जौ लौं जीवै जीव तौ लौं जीविका तो चाहिए॥१८५॥

टीका—इहाँ भूख-प्यास, शीत-घाम, मोकों दुख देय हैं परन्तु मेरो मिटायो नहीं मिटै हैं। हे प्रभु तेरो मिटायो मिटै तो मिटाइयो, और जीव जो लौं जीवै तौ लौं वाकों जीविका चाहिए क्योंकि बिना जीविका के जीबो असंभव, यह तुल्यबल विरोध यातें विकल्पालंकार ॥१८५॥

कवि—जगजीवन (व्यतिरेक)

दंडक-दूनों भलो सुपथ कुपथ पै न ऊनो भलो,
सूनों भलो घर पै न खल साथ करिए।
अनल की लपट झपट भली नाहर की,
कपटी के कपट सों दूरिहि तें डरिए।

---

* भिखारीदास ग्रन्थावली में 'कुदारु' पाठ है।

बिथाई = व्यथा को। कुठारु = कुल्हाड़ी, फरसा। नीबप्रसङ्ग = नीम के साथ। करुआई = कड़वापन ॥१८४॥

1—समान बलवाली दो वस्तुओं का जहाँ विरोध होता हो वहाँ विकल्प अलंकार होता है।

दूनों = दोनों, दुगुना दूरी का। ऊनो = न्यून, निकट। अनल = अग्नि। नाहर = सिंह। सरबस = सर्वस्व ॥१८६॥

यह 'जगजीवन' परम पुरुषारथ है,
पर घर बैठि पुनि रस सों निकरिए।
हार मान लीजै पै न कीजै बात मूरख सों,
सरबस दीजै परबस पै न परिए ॥१८६॥

टीका—इहाँ सुपथ औ कुपथ दूनौ भलो पर ऊनता नहीं भली, सूनो घर भलो पै खल संग नहीं भलो। अग्नि की लपट, नाहर सिंह की झपट भली पर कपटी के कपट सों दूरिही तें डरिए। संसार में जीवन को परम पुरुषारथ यह है कि पर घर द्रव्यादि दै रस सों निकारिए, हारि कों मान लीजै पर मूरख के संग बात न कीजै, सब दीजै पै परबश न हूजिए। यह उपमानोपमेय को विशेष, यातें व्यतिरेकालंकार ॥१८६॥

कवि—बेनी (उत्प्रेक्षा)

दंडक–राति रति रंग मैं रसीली अरसीली बैठी,
सेज मैं बिलोकि सोहै आदरस धरि कै।
'बेनी कवि' बेनी तें खुले हैं कच मेचक वै,
पेंच पेंच छाये मुखमंडल बगरि कै।
तिन में अरूझो सीसफूल सो अतूल छबि,
प्यारी सुरझाइ लीन्हैं ऐसो कर करिकै।
बाँधे तम बृंदन निरखि दिनकर मानो,
प्रात अरबिंदन छोड़ाये बंधु लरिकै ॥१८७॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रंथे एकालंकारचरणांत-
वर्णनं नाम षष्ठः प्रकाशः ॥ ६ ॥

टीका—राति रतिरंग पगी अरसीली सेज पै बैठी सौहैं आदरस धरि अपने को बिलोकि रही है। बेनी खुली केश मेचक स्याम पेच पेच मुख मंडल पै बगरि छाय रह्यो है। तिहमें फूल अरुझ्यो ताहि प्यारी कर कमल सों सरुझाय रही है। इहाँ खुली बेनी, तामें अरुझ्यो फूल, मुखमंडल छिप्यो संभाव्यमान पद वस्तु उक्त, ताकों तमबृंद सूर्य्य को बाँध्यो ताहि बंधु अरबिंदन्ह लड़िकै छोड़ाइबो करि उत्प्रेक्षा, उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ॥१८७॥

इति श्रीदिग्विजयभूषणटीकायां षष्ठः प्रकाशः ॥ ६ ॥

अरसीली = आलसभरी। बेनी = लट। कच = केश। मेचक = श्याम वर्ण के। पेंच पेंच = मोड़-मोड़। बगरिकै = बिखरे हुए। अतूल = अनुपम। तमबृंदन = अंधकार के झुण्डों को। दिनकर = सूर्य। लरिकै = लड़कर ॥ १८७ ॥

सप्तमः प्रकाशः

अथ चारौं चरन में एक अलंकार बरनन

दो०—चारि चरन में एकई, अलंकार जो होइ।
यह उत्तम रचना रचै, कवि प्रतिभा जेहि होइ ॥ १ ॥

टीका—चारों पदन में एकई अलंकार होवै यह उत्तम काव्य है ॥ १ ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज' (रूपक)

दंडक—संख दहिनाबरत बारन अनेक बाजी,
जेवर जवाहिरात कोश मनि सौं भरो।
अमी है अमरबात बैद है धन्वंतर सो,
कर कलपतरु देत सबै दान औसरो।
रंभा सी रमा सी भौंह धनु चंद्रमा सी कांति,
राजश्री प्रकाश बिद्या कामधेनु सो खरो।
'गोकुल' बखानै महाराज दिग्विजय सिंह,
बिना मद माहुर को पारावार दोसरो ॥ २ ॥

१—आकर ग्रन्थों में कविता के एकही चरण या चारों चरणों में अलंकार होने का कोई पृथक् वैशिष्ट्य नहीं माना गया है। प्रकृत ग्रन्थकार ने इसे उत्तम रचना माना है। इसमें कवि की प्रतिभा एवं बहुज्ञता की झलक अवश्य मिलती है, किन्तु अर्थान्तरन्यास, संसृष्टि, संकर आदि कई अलंकारों का समावेश नहीं हो सकता, केवल एक अलंकार का माला-गुम्फन रहता है।

दहिनाबरत = दक्षिणावर्त्त, ऐसा शंख जिसका घुमाव दक्षिण ओर को हो [यह निधि माना जाता है प्रायः कम मिलता है]। बारन = हाथी। बाजी = घोड़े। अमरबात = दृढ़प्रतिज्ञता। बैद = वैद्य। औसरो = अवसरों पर। मद = मद्य। माहुर = विष। पारावार = समुद्र ॥ २ ॥

टीका—इहाँ दहिनावर्त्त संख आदि होने से महाराज दिग्विजय सिंह बहादुर कों मदमाहुर के बिना दूसरो समुद्र, अर्थात् समुद्र सों अभेद वर्णन करिबे के कारण, न्यूनाभेद रूपक अलंकार ॥ २ ॥

(पूर्णोपमा)

मत्त०—मत्तगयंद लौं पायन मैं गति छीन है लंक मृगाधिप सो री।
दीपसिखा सी लसै तन दीपति वोज उरोज हैं श्रीफल सो री।
माधुरी बैन सुधारस लौं मुख की छबि छाजै छपाकर सो री।
रंग बिलोचन बारिज लौं 'बृज' बानि बधू चित चातक सो री ॥३॥

टीका—इहाँ बैन उपमेय, माधुरी साधारण धर्म, सुधारस उपमान, लौं बाचक, चान्यों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। ऐसई औरौ पदन में जानिये और बानिबधू पद में यह व्यंग्य कि बानि कहै स्वभाव चातक सो अर्थात् चातक एक स्वाती हीं सों प्रीति राखै है तैसोई नायिका एक नायकै सों प्रीति राखै हैं और सों नहीं, याते स्वकीया नायिका ॥ ३ ॥

(परिसंख्या)

दंडक—बागन मैं बैर कूट कहिए कसेरन के,
कानन कितब फबै फूटि काँकरीन मैं।
दीपक मैं नेहहानि दंड जोतसी के जानि,
मान बनिता मैं मद अंधता करीन मैं।
कोक मैं बियोग सोक सोहै खाट मैं बिलोकि,
रूखता कठोरताई सूखी लाकरीन मैं।
रावरे के राज मैं बिराजे 'बृज' ऐसी नीति,
भीति है दिवार पेच पारै पागरीन मैं ॥४॥

मत्तगयंद = मत्त (झूमता) हुआ हाथी, एक छन्द का नाम। लंक = कटि। मृगाधिप = सिंह। दीपति = कान्ति। वोज = आभा, कान्ति। उरोज = स्तन। श्रीफल = बिल्वफल। छपाकर = चन्द्रमा। बानि = स्वभाव, आदत ॥३॥

बैर = बदरीफल, बैरभाव। कूट = कपट, एक धातु जो कांसे में मिलाया जाता है। कसेरा = कांसे आदि के बर्तन बनाने वाला। कितब = धूर्त, धतूरा। फबै = शोभित है। फूटि = द्वेष, फूट (ककड़ी) नाम का फल। काँकरीन = ककड़ियों। नेह = स्नेह-प्रेम, तेल। दंड = घड़ी (२४ मिनट का प्रमाण), सजा। करीन = हाथियों। कोक = चक्रवाक। सोक = चारपाई की दो रस्सियों के बीच का छिद्र। लाकरीन = लकड़ियों। भीति = भय, दीवाल। पेच = प्रपंच, मोड़। पागरीन = पगड़ियों ॥४॥

टीका—बैर बागन ही में और कूट कसेर ही के, कितव धतूर कानन बनै में, फूटि काकरी कहै कर्कटिका फलै में, स्नेह हानि दीपकै में, वियोग कोक कहै चकई चकवान में, दंड ज्योतिर्विद के पंचांगै में, मान बनिता स्त्रीगण में, मदांधता हाथीन में, शोक खाट कहै पर्य्यंक में, रूखता और कठोरताई सूखी लाकरी में, हे महाराज रावरे के राज में ऐसी नीति गजे है कि भीत दीवार ही में लब्ध होय है, पेच पाग ही में परै है। एक स्थान में वस्तु को निषेध करि एक स्थान में नियमन, याते परिसंख्या अलंकार ॥४॥

(स्मृतिमान्)

दंडक—देखे जगजीवन न भावै जग जीवन है,
लखि जलजात अँखिया सों जल जात है।
गति मति कुंद होत फूली कुंदकली पेखि,
सरद सुधाकरै सरद करै गात है।
दर को दरसि 'बृज' दर न परत कल,
कोक लहि को कहै जो सोक अवदात है।
केहरी करी को हेरि के हरी है सुधि बुधि,
सोन को निहारे जैसे सो न कहै बात है ॥५॥

टीका—देखें जग जीवन कहै जगत के जीवन कों जग में जीवन नहीं भावै है, वाके देखे सों नायक को स्मरण होय है यातें स्मृतिमान् अलंकार। ऐसेई चारयों पदन में जानिये ॥५॥

(मुद्रा)

दंडक—चलै ग्वालि यार पास नेह नैपाल करि,
वना रस आज मेर करै औधवार है।
कही हौं दिली की बात कान्ह पूर प्रेम कीन्हे,
मग हरि हेरै कर नाटक बहार है।

जगजीवन = जगत को जिलाने वाला, मेघ। जलजात = कमल। कुंद = कुंठित, एकफूल। सरद सुधाकरै = शरत्कालीन चन्द्रमा। सरद = ठंढा। दर = घर, निवास स्थान। दरसि = देखकर। दर = थोड़ा भी। कोक = चन्द्रमा। अवदात = दीर्घ। केहरि = सिंह। करी = हाथी। सोन = सुवर्ण ॥५॥

१—जहाँ पद्य में आए हुए किसी पद से किसी विशेष अर्थ की सूचना मिलती हो वहाँ मुद्रा अलंकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है। नाटकों

पटना पहिन चीन्ह बे तिया चबाई 'बृज',
निशि गुजरात कहै मन में बिचार है।
बेश बैश वारे अस नीके नंदलाल प्यारे,
मोहबे न हूजै कीजै बेगिही बिहार है॥ ६॥

टीका—इहाँ दूती नायक के मिलिबे के हेत (अर्थ) नगर के नाम वर्णन में नायिका सों कहै है। ग्वालियार नगर और है ग्वालि यार मित्र ता के पास निकट चलु। नयपाल सहर और नेह स्नेह नीति पालिकै, बनारस वाराणसी और रस बनो है। आजमेर नगर और आज मेर (मेल) करै नायक सों। औध अयोध्यापुरी और औधवार दिन कहैं मिलिबे के अर्थ निश्चित दिन है। इसी भाँति और पदन से जानिए। नगरन को नाम और अपने दूतपन सूच्य अर्थ को सूचन, यातें मुद्रा अलंकार। ग्वालियर, नयपाल, बनारस, अजमेर, औध, दिली, कान्हपूर, मगहरि, करनाटक, पटना, चीन्ह, बेतिया, गुजरात, बैसवारा, असनी, महोबा, बिहार इतने पदन में मुद्रालंकार॥ ६॥

(श्लेष[1])

जथा—मैना कछु बोले तोते प्रीति पारावत पेखि,
झगर बगेरी स्यामा बेसरि है जाने मैं।
लाल जो हरेवा बड़े बाज आए तीतर सो,
सारस बिहाय 'बृज' मुरगहे साने मैं।

के प्रारम्भ में सूत्रधार-प्रयुक्त वचनों में प्रायः यह अलंकार पाया जाता है, क्योंकि वह कुछ विशेष पदों के द्वारा भावी अर्थ को सूचित करता है। जैसे—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥

(स्वप्नवासवदत्तम्)

इस पद में उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक का नाम देकर नाटक की घटना की सूचना दे दी गयी है।

दिली = हृदय की। कान्ह = नायक। पूर = पूर्ण। मग = रास्ता। नाटक = दृश्य, खेल। पट = वस्त्र। चीन्ह = चीना, रेशम। तिया = स्त्रियाँ। चबाई = निन्दक। गुजरात = बीत रही है। बैस = अवस्था। मोहबे = अज्ञ॥

१—इन दोनों (७, ८) पदों में शुद्ध श्लेष नहीं अपितु श्लेषानुप्राणित मुद्रालङ्कार ही है। पूर्व पद में पक्षियों और द्वितीय पद में नक्षत्रों के नामों द्वारा अभिप्रेत अर्थ को सूचित किया गया है।

काक है बटेर सुनि कर बतकही कूर,
पिकहिं पियार बानी हारि लहे ठाने मैं।
बरही अगिनि चूनै चिनगी चकोर चख,
तूती मिलै आजु बृजराज चिरीखाने मैं॥ ७॥

टीका—इहाँ तूती को वचन नायिका सों, तू ती कहै तू प्यारी नायक की, आजु बृजराज श्रीकृस्नचन्द्र सों चिरीखाने में मिले, यह संकेत दिखरायो। मैं तोसों कछू नहीं बोलै है। तेरी प्रीति पारावत कबूतर कैसी देखि, झगरा दूरि कर, स्यामा राधे ये स्वार्थ मैं जानती हौं। लाल श्री कृष्नचन्द्र बड़े हरेवा कहैं चतुर हैं। हारि मान्यो तीतर सों सारस रस बिहाय साने मुर कहैं मुढि कै गहे। बया कहै अब तोसों टेरि कै, वाकी टेढ़ी बतकही सुनि पि कहि स्वामी पियार कहि प्यारी बानी हारि लह्यो, बरही मयूर पिच्छ अग्नि चुनै अर्थात् अग्नि और चूना कैसो लागै है। चिनगी चकोर नेत्र चूनै है अर्थात् आँखों से चिनगारी उड़ै है, यासों हे राधे चिरीखाने में चिरिया रहै हैं तिनको नाम भी इन वाक्यों में निवेसित कियो गयो है, क्योंकि जिसैं बहिरंग सखी और दुर्जन कों आभ्यन्तर की बात कि यह अभिसार करावै है न जानि परै। सूच्यार्थ नायक के निकट प्यारी संघट्टन कों सूचन करै है, यातें मुद्रा अलंकार। इन पदों में मुद्रा यथा। मैना, तोते, पारावत कबूतर, स्यामा, लाल, हरेवा, बाज, तीतर, सारस, मुरग, काक, बटेर, बतक, पिक, हारिल, बरही मयूर, चकोर, तूती इत्यादि॥ ७॥

अश्वनी को घूँघट है रोहिनी रमन मुख,
नैनं मृगशिरा सो है हस्त कैसी चाल है।
श्रौन से बिशाखा सुनै कहौं मैं पुनरबस,
छबि अस लेखै नासा कीरतिका भाल है।
रेवती रमन बन्धु ताहि अनुराधा चित्र,
पूरवानुराग स्वाती चातक सो ख्याल है।
भाव भरनी है रस मूल आरद्रवै 'बृज',
आभा अभिजितनी है वरुनो बिशाल है॥ ८॥

टीका—अश्व कहै घोड़ा लक्षणा करि ताके ग्रीव कैसो घूँघट है। रोहिनी रमन चन्द्रमा कैसो मुख, नेत्र मृग की भाँति, सिरा श्रेष्ठ सोहै है, हस्त अर्थात् करिनी कैसी गति है, बिसाखा सखी कानन सों सुनै। मैं पुनर कहै फिर बस छबि के करों हौं। एहि भाँति देखै, नासा कीर शुकठोर के सदृश तौ का

नायिका की भा शोभा लहै है। रेवतीरमन बलभद्र को बंधु भ्राता श्री कृष्णचन्द्र जी कों चित्र में अनुराधा कहै साधि रही है, पूर्व अनुराग सों जैसे स्वाती कों चातक चाहै है वैसे ही लाल जी को प्रेमवश चाहै। भाव भरनी अर्थात् हाव-भाव भरी रस की मूल थार (यार) बिहारी जी को देखि द्रवै है। आभा शोभा सों सारी व्रज वनितान को जीते है। जाकी बिशाल कहै बड़ी बड़ी बरुनी पलक है। इहाँ नायिका को वर्णन रूपार्थ, ताकों नक्षत्रन्ह के नाम से सूचन कियो, यातें मुद्रा अलंकार। नक्षत्र नाम गत मुद्रा यथा—अश्विनी, रोहिणी, मृगसिरा, हस्त, श्रवण, विशाखा, पुनर्वसू, अश्लेषा, कृत्तिका, रेवती, अनुराधा, चित्रा, पूर्वा तीन्यो, स्वाती, भरणी, मूल, आर्द्रा, अभिजित, इतने पदन में जानो। इति ॥८॥

(संदेह)

माधवी-बक पाँति की मोतिन माल लसै तड़पै तड़िता किधौं पीत पटा है।
धनु कैधौं पुरंदर की अधराधरे बाँसुरी जे कुल कीन्ही कटा है॥
'बृज' व्यौम धुँधारे की कारे महा शिर शोभित सुंदर बार अटा है।
दुख सों न हमैं कछु जानि परै घनस्याम किधौं यह स्यामघटा है।९।

टीका—इहाँ श्री कृष्णचन्द्र के बर्णन में नायिका पूर्वानुराग सों बियोग बश प्रलाप करै है। बक पाँति है कि यह मोती को माल शोभित होय है। इंद्रधनु है कैधों अधरान धरी बाँसुरी है, जिसने कुल कानि को कटा कहै जीति लियो। आकाश में मेघ है किधों शिर शोभित बार है किधों यह स्यामघटा है। संदिग्ध ज्ञान होयबे के कारन संदेहालंकार ॥ ९ ॥

किरीट—बारन मुक्त की व्यौम सितारन मंगल की 'बृज' माँग मैं सेंदुर।
बेसरि बेस की वै कबि की छबि केसरि आड़ की है सुर के गुर॥
कान के बीर हलै की चलै रथ द्वै द्रिग की मृग जोरे जुवे गुर।
चाँदनी चंद्र की चंद्रमुखी मुख जानि परै न हमैं दुख सो फुर ॥१०॥

टीका—बिरहासक्त नायक को वचन, यह केश को मुक्ता है कि आकाश के नक्षत्रगण हैं, मंगल होय की माँग में सिंदूर, बेसरि है की सुक्र की छबि, केशरि को आड़ है की सुरगुरु बृहस्पति, कान को बीर हलैहै की चन्द्रमा को

पुरन्दर = इन्द्र। कटा = नाश। धुँधारे = धुंधले। अटा = शोभा। स्याम-घटा = काला मेघसमूह ॥ ९ ॥

सितारन = तारों। बेसरि = नाक में पहिना हुआ मोती। बेस = सुन्दर। कबि = शुक्र। सुर के गुर = देवों के गुरु, बृहस्पति। बीर = कान का एक आभूषण। फुर = स्फुट, प्रत्यक्ष ॥१०॥

रथ है, द्वै दृग नेत्र हैं कि मृग युक्त जुवा है, चन्द्रमा की चाँदनी की चन्द्रमुखी को मुख है, दुख सों हमैं यथार्थ नहीं जानि परै है। इहाँ सन्देह निवृत्त नहीं है, यातें सन्देहालंकार ॥ १० ॥

(व्यतिरेक)

माधवी—वह जाहि लगै अँग घालत है यह सालत चित्त जोई लगलावै।
वह घाय अनी की लखाय परै यह घाय घनी हूँ नहीं दरसावै॥
वह जात बिथा उपचार किए यह बेदन को कोउ भेद न पावै।
वहि बानतें आनई आन करै यह नैन की बान बिना धनु धावै॥११॥

टीका—वह जाके लागै है अंग ही को घालै यह लागे सों चित्त में सालै है। वह घाय अनी की देखि परै, यह कैसेहू नहीं दरसाय है। वह उपचारि किए मिटै है, याको कोऊ भेदै नहीं पावै है। वह बान धन्वा के आश्रय ह्वै चलै है, यह बिना धन्वा के धावै है। इहाँ साधारन बान सों नैन बान को विशेषता देखायो, यातें व्यतिरेक अलंकार ॥ ११ ॥

(समस्तविषयी रूपक)

दंडक—द्रिग अरबिंद पै मलिंद ऐसो भयो रिंद,
चारु मुख चंद पै चकोर लौं लुभान्यौ है।
दंत मुकुतान पै मराल सो निहाल 'बृज',
बिंब फल ओठ कीर कैसे ललचान्यौ है।
ठोढ़ी गाढ़ पानिप बिलोकि भई मीन दीन,
कंचन कलश कुच रंक लौं बिकान्यौ है।
नाभी नद रोम लहरी मैं हेरि हारे हद,
मेरो मन तेरे हीरा हार मैं हिरान्यौ है॥१२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों, इहाँ दृग अरविन्द कमल होय। द्रिग उपमेय, अरबिंद उपमान सों सम अभेद वर्णन। मुख और चन्द्र को, दशन और मुक्ता को, ओठ और बिंब फल को, ठोढ़ी की गहिराई शोभा और पानिप को, कुच और कंचन कलश को, नाभी और नद को, रोमावली और लहरी को,

---

घालत = घायल करता है। सालत = कष्ट देता है। घाय = घाव। अनी-की = सेना की, बुरी। बिथा = व्यथा कष्ट। बेदन = वेदना ॥११॥

मलिंद = भौंरा। रिंद = उद्दण्ड। मराल = हंस। ओठ = ओठ। कीर = सुग्गा। पानिप = शोभा। रंकलौं = दरिद्र की भाँति। नद = बड़ी नदी ॥१२॥

हार और हीरा की पाँती को सम अभेद करि वर्णन, यातैं सम अभेद रूपक अलंकार। नायक आसक्तता देखाय कै नायिका को अपने अभिमुख करै है ॥ १२ ॥

(धर्मलुप्ता[1]-उपमा)

सवैया—जब आनन तें कढ़ै बान से बैन सुने हित हेत निदान करैं।
'बृज' रोकिबे कारन को करतार केवार दुहूँ अधरान करैं।
रद बत्तिस कै रखवार बली मुख मोछ पनाह को टान करैं।
चित राखै जबान को ध्यान में नित्त न बात कमान समान करैं ॥१३॥

टीका—नायक की उक्ति सहृदय सों, कि जब आनन मुख सों बातें काढै है बान के समान सुने सों हित हेतु विनाश मिट जाय है, तेहि बान के रोकिबे हेतु ब्रह्मा ने अधर को केवार बनायो, दशन बत्तिस को मुख द्वार की रक्षा के अर्थ कियो। इहाँ बात उपमेय, कमान उपमान, समान वाचक, धर्म नहीं, यातैं धर्मलुप्ता अलंकार ॥१३॥

(समस्तविषयी रूपक)

दंडक—जंघ कदली को खंभ त्रिबली गँभीर कुंड,
हिए हार चौकी लौं चउक पूरि धारी है।
कंचन कलश कुच पानिप भरे हैं अंग,
अधर अरुन मुख पल्लव पधारी है।
लाज बलिदान दिये चितवनि मंत्र ठए,
देह दुति दीपक अखण्ड जोति बारी है।
धनी मन हरन अकरषन नेम करि,
सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है ॥१४॥

१—उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक ये चारों अंग जहाँ हों वहाँ पूर्णोपमा होती है। यदि इनमें कोई भी एक या इससे अधिक अंग का लोप हो तो लुप्तोपमा कही जाती है। यह ८ प्रकार की होती है—१. वाचकलुप्ता, २. धर्मलुप्ता, ३. धर्मवाचकलुप्ता, ४. वाचकोपमेयलुप्ता, ५. उपमानलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८. धर्मोपमानवाचकलुप्ता।

करतार = विधाता, ईश्वर। केवार = द्वार। रद = दाँत। रखवार = रक्षक। जबान = वाणी। कमान = धनुष ॥१३॥

त्रिबली = उदर में पड़ने वाली तीन रेखाएँ। पानिप = दीप्ति, शोभा। चितवनि = दृष्टि, कटाक्ष। अकरषन = आकर्षण। नेम = नियम। सीकरनवारी = सी-सी शब्द करने वाली ॥१४॥

टीका—नायिका के लावण्य को वर्णन। जाको जंघा कदली को खंभ, त्रिवली और गंभीर कुंड को सम अभेद, हृदय में हार की चौकी को चौक पूरिबो, शोभा भरे कुच को और कंचन कलश को, अरुन अधर ओठ और पल्लव को, लाज को परित्याग और बलिदान को, चितवनि और मंत्र ठानिबे को, देह की दुति को प्रकाश अखंड दीप जोति बारिबे को, घनी नायक के मन के हरिबे अर्थ आकर्षन को नियम करि प्यारी को सी-सी करिबो, बशीकरनवारी है, इन सब पदन में उपमेय को उपमान के साथ सम अभेद करि वर्णन, यातें समस्त विषयी रूपक; समाभेद अलंकार स्पष्ट है। और नायिका के नायक के मन बस्य करिबे के अर्थ बशीकरन प्रयोग को और वाके लावण्य को रूपक करि वर्णन कियो ॥१४॥

दो०—कबित भरे में होय जो, अलंकार एक रूप।
त्यौं कबित्त प्राचीन के, लिखे बुद्धि अनुरूप ॥१५॥

टीका—कवित्त भरे में एक ही अलंकार प्राचीन कविन लिख्यो, तिन को उदाहरण इस ग्रंथ में कवि लिखे है ॥१५॥

अथ प्राचीन कविन के कवित्त

कवि—देव **(समस्तविषयी रूपक)**

दंडक—बरुनी बघम्बर मैं गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भिगो हैं भेष भतियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिनिहूँ जागै तौ है,
धूम शिर छायो बिरहानल बिलखियाँ।
आँसू जो फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोग आजु,
जोगिन ह्वै बैठी हैं वियोगिनि की अँखियाँ ॥१६॥

टीका—दूती नायक सों नायिका गत बिरह निवेदन करै है, हे लाल वाकों अब शीघ्र दर्शन दीजिये क्योंकि उस वियोगिनी की आँखें तुम्हारे दर्शन के बिना जोगिनी ह्वै बिराजै हैं। बरुनी को बघंबर तामें गूदरी दुवी पलकैं नेत्र कोण लाले बसन भीगे तुम्हारे अर्थ राति-दिन जल ही मे बूड़ी रहैं अर्थात् आँसू

बरुनी = पलकों के आगे के बाल, बरौनी। गूदरी = गुदड़ी। कोये = डोरे, रेखायें। राते = लाल। जामिनी = रात्रि। बिलखियाँ = रुदन, बिलाप। फटिक = स्फटिक। सेल्ही = बर्छी। चेली = सेविकायें ॥१६॥

को प्रवाह बह्यो जाय है, जोगी लोग जल शयन लेय हैं यह आँखि भी दिनों राति आसूँ ही में बूड़ी रहै है, यह व्यंग्य। औ जागै अर्थात् नींद नहीं परै है बिरहानल की धूम भौंहैं, शिर में छायो कहै टकटकी लगी है। आसूँ की स्फटिक माल, लाल डोरे जो नेत्रन में बिलसै हैं वाही कों सेल्ही कियो, चेली सलोन को संग छोड़ि अकेली ही रहै है। इहाँ बरुनी को बघंबर आदि को धर्म देखाय निरूपन कियो, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार ॥ १६ ॥

त्रिबली तरंगिनी निकट नाभी नद तट,
रोमराजी बनघासि मुकुत अन्हात है।
नेह नगरी मैं गुन गेह उर ऊँची पौरि,
'देव' कुच कंचन के कलश लखात हैं।
लोचन दलाल ललचावत बटोहिन को,
हाल चलि देखो लाल मोल न लहात है।
जोबन बजार बैठो जौहिरी मदन सब,
लोगन के हीरा वा के हाथ में बिकात है ॥१७॥

टीका—इहाँ त्रिबली आदि को तरंगिनी आदि करि बर्णन, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार। दूती नायिका के सौन्दर्य को बर्णन करि नायक के मन में रति उपजावै है, यह व्यंग्य ॥ १७ ॥

कवि—रतन (समस्तविषयीरूपक)

दंडक—सुषमा के घर पूरे पानिप के सरवर,
आसन अनूप हर नूप बिसराम के।
चातुरी के चर कला-केलिके अपार हाव,
भाव के भँडार पाय ईदीबर दाम के।
रति के रतन जात मोहन के मूल माल,
राजत रसाल हैं बिशाल नैन बाम के।
मीन के महीपति हैं खंजन प्रभा के पति,
मृग के सलामति सलावति हैं काम के ॥१८॥

टीका—इहाँ नायिका कों सुषमा शोभा को गृह करि बर्णन कियो, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार, ऐसे ही औरौ पदन में जानिए ॥ १८ ॥

तरंगिनी = नदी। बनघासि = पानी में उगने वाली घास। पौरि = द्वार। बटोहिन = यात्रियों को। लहात = लगता है ॥ १७ ॥

सुषमा = अत्यन्त शोभा। पानिप = शोभा। पाय = पैर। रसाल = रसभरे। बाम = स्त्री। सलामति = रक्षक ॥ १८ ॥

कवि—धुरंधर (रूपक)

मदन महीप के बिचच्छन नजरिबाज,
पीछे लगे आवत छपद करैं सोर हैं।
'सुकवि धुरंधर' भनत अरविंद बन,
चौकी भरै चंपक चमेली चहूँ ओर हैं।
सबही के स्वारथ के सकल सुगंध सिय-
राई सरबस के हरैया बरजोर हैं।
कहाँ के समीर ये लुकंजन लगाए चले
जात मलयाचल तें चँदन के चोर हैं ॥ १९॥

टीका—इहाँ शीतल मंद सुगन्ध वायु को अदर्शकाञ्जन लगाये मलयाचल को चोर करि बर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार ॥ १९ ॥

कवि—आनंद घन (रूपक)

सवैया-फैलि परी घर अम्बर पूरि मरीचिन बीचिन संग हिलोरति।
भौंर भरी उफनाति खरी सु उपाव के ताव तरेरनि तोरति॥
क्यौं बचिए अजिहूँ 'घन आनँद' बैठि रहे घर पैठि ढँढोरति।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति॥२०॥

टीका—दूती को बचन, नायक सों नायिका को बिरह निवेदन करै है। बियोगिनी की जोन्ह प्रलय को पयोनिधि है सम्पूर्ण ब्रज कों बोरै है, इस हेतु हे श्री कृष्णचन्द्र लाल वेगि चलिए। इहाँ जोन्ह को प्रलय कालके समुद्र को वर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार ॥ २० ॥

कवि—प्रेमसखी (रूपक)

सवैया-प्रेम की डोरी मरोरनि नैन की चाल की चारो सुधा सुखकारी।
गूढ़ अथाह बिदेह पुरी जहँ खेलन को चले औध बिहारी॥

बिचच्छन = अद्भुत, विचक्षण। छपद = षट्पद, भौंरे। सियराई = ठंढी पड़ गयी, मन्द हो गयी। समीर = वायु। लुकंजन = अदृश्याञ्जन। (ऐसा अंजन जिसे आँखों में लगाने पर लगानेवाला सबको देखता है पर उसे कोई नहीं देखता) ॥ १९ ॥

अम्बर पूरि = आकाश को पूरा भर कर। बीचिन = तरङ्गों के। हिलोरति = लहराती है। भौंर = जल का आवर्त, भँवर। उफनाति = उबाल सी आती है। उपाव = उपाय, प्रयत्न। ताव = गर्व। तरेरनि = क्रोधपूर्ण दृष्टि से। ढँढोरति = ढूँढ़ती है। जोन्ह = चन्द्रिका। बोरति = डुबाती है ॥२०॥

साज समाज सबै कुल की जल त्यागि सबै प्रभु ऊपर वारी।
वंसी भई छवि सामरे की जिन मीन सों काढ़ि कै बाहर डारी ॥२१॥

टीका—प्रेम जो संपूर्ण जन में रामचन्द्र की छवि निरखिबे हेतु वर्त्तमान है, ताकी डोरी नेत्र को इधर-उधर फेरिबो मरोरनि, और चाल गति की चारा, अमृत के तुल्य सुख देन हारी, गूढ़ गुप्त अथाह अगाध जनक की पुरी मिथिला जहाँ खेलिबे के अर्थ अवध बिहारी कहै जो अवध के नर नारी को सुखद प्राप्त भये। साज समाज संपूर्ण अपने कुल को जल अर्थात् कुलकानि ताकों त्यागि सब कोई रामचन्द्र के ऊपर वारिदियो। सामरे गात की छवि वंशी कहै बडिश लोक में प्रसिद्ध मीन के मारिबे की काँटाभई, जिसने कुलकानि जल सों काढि ऊपर डारि दियो अर्थात् सबकी कुल कानि छोडाय दियो। इहाँ प्रेम आदि को डोरी प्रभृति करि वर्णन कियो, यातें समस्तविषयी रूपक अलंकार ॥ २१ ॥

कवि—तोषनिधि (प्रतीप)

दंडक—देखे अरुनाई करुनाई लगै कंजन को,
मृगन गुमान तजि लाज गहिबे परी।
'तोषनिधि' कहै अलि छौननहूँ दीनताई,
मीनन अधीन ह्वै कै हारि सहिबे परी।
चरचा चकोरन की कोरि डारे कोरन सों,
कविन कवीशता गरीबी गहिबे परी।
आई बीर चंचलाई राधिका के नैनन में,
खासे खँजरीटन खराबी सहिबे परी ॥२२॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। एरी वीर राधा के नेत्र में चंचलाई आवते ही इन सम्पूर्ण उपमानों की व्यर्थता लखाय परै है। राधा के नेत्र की अरुनाई देखने सें कंजन को करुनाई लगै है कि वहि अरुणता के आगे इन विचारों की कहा लालिमा की शोभा, और मृगन को अपने नयन की दीर्घता को गर्व तजि लज्जा स्वीकार करिबो परयो, अलिछौनन को दीनताई और मीनन को आधीन ह्वै हारि सहिबो, चकोरन की चर्चाई नहीं, कविन को कवीशता को

मरोरनि = घुमाने से। वंसी = बडिस, मछली मारने का कांटा। अरुनाई = लालिमा। करुनाई = दयालुता। अलि छौनन = भौंरों के बच्चे। कोरि॰ डारे = खोद डाली, नष्ट कर दी। कोरन सों = कनखियों से। चंचलाई = चपलता। खंजरीटन = खंजन पक्षियों को ॥२१॥

को अभिमान छोड़ि गरीबी गहिबे परी अर्थात् वर्णन करिबे को गर्व ध्वस्त है गयो, खंजरीटन की खराबी अर्थात् सर्वत्र तिरस्कार सहिबे परी। इहाँ उपमेय राधिका के नेत्र के आगें इन सब उपमानों की कैमर्थ्यता देखायो, यातें पंचम प्रतीप अलंकार ॥२२॥

कवि—मुकुंद (सन्देह)

सवैया-पिय देखन कैधौं रमा उझकी मुख कुंकुम मंडित राजत है।
निशि ती उर को अनुराग सुहाग छपा बधू को किधौं भ्राजत है॥
किधौं पूरन चंद सु छंद उदोत 'मुकुंद' सबै सुख साजत है॥
किधौं प्राची दिशा नव बाल के भाल गुलाल को बिंदु बिराजत है॥२३॥

टीका—चन्द्रोदय बर्णन। इहाँ प्राची दिशागत चंद्रमा को कुंकुम भूषित रमाको आनन, छपावधू को अनुराग सुहाग, पूर्ण चंद्रोदय की छबि, प्राची दिशा नायिका नवोढ़ा के भाल में गुलाल को बिन्दु आदि को संदेह करै है, याते संदेहालंकार ॥२३॥

कवि—सुखदेव मिश्र (रूपक)

दंडक—मीन की बिछुरता कठोरताई कच्छप की,
हिए घाय करिबे को कोल तें उदार हैं।
बिरह बिदारिबे को बली नरसिंह जू सों,
बामन सों छली बलि दोऊ अनुहार हैं।
द्विज सों अजीत बलबीर बलदेव ही सों,
राम सों दयाल 'सुखदेव' या बिचार हैं।
मौनता मैं बौध कामकला मैं कलंकी चाल,
प्यारी के उरोज बोज दसौं अवतार हैं॥२४॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों। ए प्यारी के उरोज गुरु बिष्नु के दशौं अवतार हैं, अर्थात् बिष्नु सकल जग पालन करै हैं तैसोई ए ताल फल सों भी अति गुरु मेरे मनोभिलाष रूप जगत को पालन करै हैं। बिछुरनि में मीन रूप, कठोरताई में कच्छप रूप, हृदय घाय करिबे में बाराह रूप, बिरह बिदारण करिबे में नृसिंह रूप, छलिबे में बामन रूप, नहीं पराजित होयबे में

उझकी = उछल आयी। ती उर = स्त्री हृदय। छपा बधू = रात्रि रूप नायिका। भ्राजत है = शोभित होती है। सुछन्द = स्वच्छन्द। उदोत = प्रकाश, उद्योत॥२३॥
बिछुरता = चपलता। घाय = घाव। कोल = बाराह, सूकर। बलि = प्रिय।

परशुराम रूप, बल में बलभद्र रूप, दयालुता में रामचन्द्र रूप, मौनता में बौद्ध रूप, कामकला में कल्की रूप। इहाँ प्यारी के उरोज को विष्नु के दशौं अवतार सों अभेद करि वर्णन कियो, यातें सम अभेद रूपक अलंकार। यद्यपि इहाँ एक के विषय भेद वर्णन करिबे के कारण दूसरो भेद उल्लेख को भी प्रतीत होय है परन्तु 'प्यारी के उरोज वोज दशौं अवतार हैं' यह जो रूपक निरूपित पद है ताही को वै पोषक है, यातें उक्त दोष को अवसर नहीं है ॥२४॥

कवि—पूषी (उन्मीलित[1])

दंडक—चौंथते चकोर चहूँ वोर जानि चंद मुख,
जो न होते अधर दशन दुति दंपा के।
लील जाते बरही बिलोकि बेनी ब्याल गुन,
गुही पै न होती जो कुसुम सर पंपा के।
कहै 'कवि पूषी' दृग भौहैं न धनुष होते,
कीर कैसे छोड़ते अधर बिंब झंपा के।
दाख कैसे झौरा झलकत जोति जोबन की,
भौंर चाटि जाते जो न होते रंग चंपा के ॥२५॥

टीका—नायिका के सौन्दर्य को बर्णन। नायक अपने सहृदय सों अति लोनी कांति भरी रूपवती बनिता को चित्रितहै बर्णन करै है। चकोर गण मुख कों चन्द्रमा ठहराय चौंथते अर्थात् बारंबार चूस लेते, यदि अधर दशनन की द्युति सों न दमकतो। और बरही मयूर बेनी ब्याल नागिनी, यदि पंपासर के कुसुम सों न गुही होती। इहाँ पंपासर के कुसुम को अति स्वच्छता के कारण

अनुहार = समान। द्विज = द्विज, ब्राह्मण। मौनता = चुप्पी, शान्ति ॥२४॥

१—उन्मीलित अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी युक्ति द्वारा कहे गये सादृश्य से उत्पन्न भ्रम मिटकर वास्तविकता प्रकट हो जाय, जैसे उक्त पद्य में नायिका के मुख को चन्द्रमा समझ कर चकोर गण चूस जाते, यदि उसके दाँतों की चमक से ओठ न चमके होते—यह कह कर मुख का चन्द्रमा से सादृश्य चकोरों के चूसने रूप युक्ति से कहा गया और दन्तकान्ति द्वारा ओठों की चमक सादृश्य का भ्रम मिटा कर वास्तविकता प्रकट कर देती है।

[वस्तुतः यह शुद्ध उन्मीलित का उदाहरण नहीं है प्रत्युत रूपक और संभावना से अनुप्राणित उन्मीलितालंकार है]

चौंथते = चूस लेते। चहूँवोर = चारों ओर। दंपा = बिजली। बरही =

कह्यो है और सर को स्वच्छगुन है। पूरी कवि की उक्ति, यदि दृग भौंहैं धनुष न होते तौ कीर शुक अधर जो बिंबफल के झंपा के सदृश ताको कैसे छोड़ते। दाख के झौंरा के सदृश जोवन की जोति झलकै है ताकों भौंर चाटि जाते यदि चम्पाको रंग न होतो। इहाँ चन्द्रमुख रूपक, अधर दशन दुति को दमकिबो धर्म, अधिक रूपक, और जो ऐसो न होतो तौ ऐसो होतो, इस अर्थ सें भूत संभावना अलंकार। और चन्द्रमा सों और चन्द्रमुख सों अधर दशन दुति को दमकिबो धर्म भेद स्फूर्त्तिकारक है, यातें उन्मीलित अलंकार भी होय है। इसी प्रकार चाग्यो पदन में जानिए ॥२५॥

कवि—कृष्नसिंह (रूपक)

दंडक—कानन समीर सेवैं भृकुटी अपांग अंग,
आसन अजिन मृग अंजन अनाधा के।
अरुन बिभोगी कोर बिशद बिभूति अंग,
त्यागें नीद बिषय निमेष बिपबाधा के॥
'कृष्नसिंह' काम-कला त्रिबिध कटाच्छ ध्यान,
धारना समाधि मनमथसिद्धि साधाके।
प्रेमके प्रयोगी सुख संपति सँजोगी अति,
स्याम के बियोगी भए जोगी नैन राधाके ॥२६॥

टीका—इहाँ कृष्न को वियोग पाय प्रेम के प्रयोग के करनेवाले राधा जी को नयन जोगी को रूप धारन कियो है। भृकुटी कानन को सेवै है योगी लोग कानन बन सेवै है, इहाँ राधा जी के नेत्र कानन कों सेवै है अर्थात् कृष्नचन्द्र के देखिबे के कारन कानन सेवै कहै बन की ओर लखै हैं। और समीर कहै बायु कों भी योगी लोग पान करै है। अंगन को आसन अजिन चर्म मृग को, अंजन अनाधा कहै नहीं देय है अर्थात् योगी भूषन नहीं करै हैं। वियोग सों देह स्वेत भयो सोई बिभूति अंग में, निद्रा नहीं परै है। विषय त्याग काम कलादि का ध्यान धारना समाधि मन्मथ काम की सिद्धि साधना के निमित्त। प्रेम के प्रयोग करनहारे सुख संपति के संयोगी कृष्नचन्द्र के बियोग सों राधा के नेत्र योगी भए। इहाँ राधा के नेत्र और योगी को रूपक यातें समाभेद रूपक अलंकार ॥२६॥

मोर। बेनी = लट। व्यालगुन = सर्प की तरह। झंपा = कूदना, उड़कर आना। झौंरा = गुच्छा ॥२५॥

कानन = बनों की, कानों की। समीर = वायु। अपाङ्ग = नेत्रकोण।

कवि—हरि (रूपक)

दंडक—कैला कालकूटके तचाई तेज बाड़व की,
सेस फूक धमक प्रचंड ताव चढ़ी है।
आई आसमान तें की भासमान सान पाय,
कलह बुझाय पौन पैनी धार कढ़ी है।
'हरि' हर हरि के त्रिशूल चक्र पास बैठि,
बैरिन के बँधिबे को अच्छ-सिच्छ पढ़ी है।
अबदुल बाहिद के नवीन खान तेरी तेग,
बज्रके हथौरा काल कारीगर गढ़ी है ॥२७॥

टीका—खड्ग वर्णन। कैसी तरवारि है कि कालकूट हालाहल के कैला और बाडवानल के तेज सों तचाई गई है और सेस के फूक के धमकनि सों अति प्रचंड ताव यामैं चढ़ी है। *इंद्र महादेव बिस्नु के वज्र त्रिशूल चक्र के निकट बैठि बैरिन के मारिबे की शिक्षा आछी भाँति पढ़ी है। हे अबदुल वाहिद के नवीखाँ तुम्हारी तेग बज्र के हथौरा सों काल कारीगर की गढ़ी है। इहाँ खड्गवर्णन में कालकूट को कैला आदि करि बर्णन कियो, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार ॥२७॥

कवि—आलम (संदेह)

दंडक—कैधौं मोर सोर तजि गए री अनत भागि,
कैधौं उत दादुरन बोलत है ए दई।
कैधौं पिक चातक महीप काहू डारे मारि,
कैधौं बकपाँति उत अंतगति ह्वै गई।

अजिन = चर्म। निमेष = पलक गिरना। मनमथसिद्धि = कामदेव की प्राप्ति। साधा = साधना। प्रयोगी = प्रयोग करने वाले ॥२६॥

कैला = कोयला। कालकूट = विष। तचाई = तपाई, गर्म की। ताव = ताप। सान = एक पत्थर जिसमें अस्त्र तीक्ष्ण किये जाते हैं। पौन = पवन, वायु। पैनी = तीक्ष्ण। अच्छसिच्छ = अच्छी शिक्षा। तेग = तलवार ॥२७॥

* टि०—टीका में इन्द्र और वज्र पद व्यर्थ हैं। मूल कविता में आया हुआ 'हरि' पद इन्द्र का वाचक नहीं प्रत्युत कवि का प्रतीक है। वज्र पद मूल में है ही नहीं।

'आलम' कहत मेरे अजहूँ न आए पीव,
महा बिपरीत कैधौं औरै बुद्धि वै ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे ते रही,
जूझ्यो कहूँ मेघ कैधौं बीजुरी सती भई ॥२८॥

टीका—प्रोषितपतिका नायिका की उक्ति। कैधौं पिक कोकिल और चातकन कों काहू राजा ने मारि डार्यो, कि बकपंक्ति कहँ बलाका की गति वहाँ औरई भाँति की भई। यदि ए होते तौ उद्दीपित करि घर आइबे के लिये प्रेरणा करिबोई करते, क्योंकि अजहूँ मेरो प्रियतम न आयो। बड़ी बिपरीतता लखाय है। अथवा औरई बुद्धि तौ नहीं ठई, अर्थात् काहू और नायिका सों बद्धप्रीति अनुरागी तौ नहीं भयो, जासों मेरी सुधि बिसारी। अथवा मदन महीप की दुहाई वहाँ नहीं फिरी। किंवा मेघ काहू सों समर करि जूझ्यो, ताको लै बिजुरी सती तौ नहीं भई। इहाँ बिरहव्याकुल नायिका स्वीय प्रीतम के अनागमन कारण की चिंता करि इन सब के उद्दीपकता की हानि ठहरायो, यातें सन्देह अलङ्कार ॥२८॥

कवि—घासीराम

कवित्त—कीधौं बिषधर खाए मोरन की आई मीचु,
कीधौं कीच भूतल में प्रगटी नहीं नई।
कीधौं दबि दादुर रहो है डर ब्यालन के,
कीधौं री पपीहा पापी पी की टेर ना दई।
'घासीराम' कीधौं बक बाजन की मानि त्रास,
कीधौं बीर पावस में काहू सखि ना ठई।
कीधौं काम स्यामजी के अंगनि निकसि गयो,
मेघ कहूँ जूझ्यो कीधौं दामिनी सती भई ॥२९॥

टीका—नायिका प्रोषितपतिका की उक्ति। कैधौं बिषधर सर्प भक्षण करि मोर मरि गए। सर्प भक्षण करि जीव मरि जाय है। किंवा भूतल में कीच न भई। किंवा दादुर ब्याल के डर सों कहीं दबि रह्यो। पपीहा पापी पी की टेर रटनि नहीं दई। किंवा बक पंक्ति बाजन की त्रास मानि नहीं उड़े है। अथवा

अनत = अन्यत्र। ए दई! = ऐ विधाता!। अंतगति = मृत्यु। पीव = प्रियतम। ठई = सोची, हो गयी। दुहाई = घोषणा। जूझ्यो = लड़मरा ॥२८॥

बिषधर = सर्प। मीचु = मृत्यु। कीच = कीचड़। दबि = छिप कर। बाजन = बाजपक्षियों की। पावस = वर्षा ऋतु ॥२९॥

है बीर पावस की सुधि काहू ने नहीं दयाई। किंवा स्यामजी के अंगन सों काम हीं निकसि गयो। अथवा काहू सों समर करि मेघ जूझ्यो ताको लै बीजुरी सती भई। यदि होती तौ अपनी दमकनि सों मेरी सुधि थाइ प्रवास सों गृह कों पठावती। इहाँ सन्देहालंकार ॥२९॥

कवि—दयाराम (रूपक)

दंडक—झूमत मतंग मतवारे से घुमड़ि घन,
घूमत नकारे से धुकार धूर से मढ़े।
धुरवा झमक उद्‌भट से तमक उठे,
चपला चमक चहूँवोर शस्त्र से कढ़े।
ऐसे दल पावस प्रबल साजि 'दयाराम',
आए बिरहिनि पर अंत अति ही बढ़े।
काम बान बर वासी होन लागी बरषा सी,
करखा सी कहत मयूर गिरि पै चढ़े ॥३०॥

टीका—उमड़ि घुमड़ि घन नभमंडल में मतवारे मतंग से घूमै हैं। धुकार गरजिबो, धूर से मढ़े नगारे की ध्वनि होय है। मेघन की इत उत दौड़ उद्भट सें तमकि उठै है। चपला की चमक चहूँ ओर शस्त्र के तुल्य कढ़ी। पावस रितु ऐसो प्रबल दल सजि बिरहिनि के मारिबे के हेतु चढ़्यो। मेह की झरि काम के बान के समान होन लगी। मयूरगन गिरि पै चढ़ि सोर करखा सो करन लाग्यो। इहाँ घन को मतवारो मतंग करि बर्णन कियो, यातें समाभेद रूपक अलंकार ॥३०॥

कवि—लाल (रूपक)

दंडक—बादले की बाँधि फेटा पेच पर पेच ऐंठा,
तापै जरतारी तुर्रा बानो यों धरति है।
भौंहन मरोर धनु बरुनी बनाए बान,
तिरछी चितौनि हू की बरछी करति है।

नकारे = नगारे। धुकार = जोर की ध्वनि। धूर = धूल, रज। धुरवा = बादल। उद्‌भट = प्रबल। तमक उठे = चमकने लगे। चपला = बिजली। वोर = ओर, तरफ। कढ़े = निकलती है। करखा सी = युद्ध के समय का संगीत सा ॥३०॥

फेटा = कमरबन्द। पेच = मोड़। जरतारी तुर्रा = सोने की कामदार कलंगी। बानो = वेश। बरुनी = पलकों के अग्रवर्ती बाल। चितौनि = चितवन, कटाक्ष।

मंद मुसुकानि महा वोपी किरपान जानि,
हिए रति खेत रन नेकु न डरति है।
झिलिमिलि जामा लाल पहिरै कवच बाल,
दैकै कुच आड़ ढाल लाल सों लरति है ॥३१॥

टीका—नायिका को नायक सों संभोग रूप समर वर्णन। बादले की फेटा, जामें पेच पेच में ऐंठनि, तापै जरतारी तुर्रा बानों को इस भाँति धारन करै है। भौंहन की मरोर धनुष, बरुनी को बान बनाय और तिरछी चितौनि की बरछी कहर करै है। मंद मुसकानि बड़ी सानधरी तरवारि। हृदय में रतिरन खेत में नेकु किंचित् नहीं डरै है। झिलमिली जामा लाल बख्त पहिरि और कुचढाल को आड़ दै लाल सों लड़ै है। इहाँ बादले की फेटा आदि रूपकापन्न पदन के संनिवेश तें समस्तविषयी रूपक अलंकार। ऐसोई चारयो पदन में ॥३१॥

कवि—सेनापति (उत्प्रेक्षा)

कवित्त—लाल लाल कैसे फूलि रहे हैं बिशाल संग,
स्याम रंग भेटि मानो मसि सों मिलायो है।
तहाँ मधुकाज आइ बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपबन बन धायो है।
'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाव कविता के मन भायो है।
आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो,
बिरही दहन काम कैला परचायो है ॥३२॥

टीका—लाल लाल टेसुए कैसे फूलि रहे हैं स्याम ताके सङ्ग मानो काहू ने मसि सों मिलायो है। और उसी टेसू पर मधु के अर्थ मधुकर पुंज आय बैठे। और मलयाचल को पवन उपबन में धाय रह्यो है। माधव बैसाख महीना में पलास तरु देखि देखि कविन के मन में यह नयो भाव उपजे है। आधे अन-सुलगे और आधे सुलगे कैला को बिरहीनि के दाहिबे काज, काम परचायो कहै प्रज्वलित कियो है। इहाँ टेसू को काम को परचायो आधा सुलगो आधा अनसुलगो कैला के तादात्म्य करि बर्णन, यातें उक्त बिषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

वोपी = चमकती हुई। किरपान = कृपाण, तलवार। रतिखेत = रतिक्षेत्र, केलि-गृह। जामा = घुटने तक का एक विशेष प्रकार का पहिनने का वस्त्र ॥३१॥

मसि = स्याही। मधुकाज = मधु के लिये। मधुकर = भौंरे। माधव = बैशाख। कैला = कोयला, अंगार। परचायो है = जलाया है ॥३२॥

टेसू आधा लाल होय है और आधा ढेपी की ओर स्याम होय है। अथवा मधुकर के बैठिबे सों आधा स्याम लखाय है, यातें कैला आधा सुलगो आधा अनसुलगो करि वर्णन कियो है ॥३२॥

कवि—नागर (द्वितीय अप्रस्तुतप्रशंसा[1])

दंडक—गहिबो अकास पुनि लहिबो अथाह थाह,
अति बिकराल ब्याल काल को खिलाइबो।
सेर समसेर धार सहिबो प्रहार बान,
गज मृगराज द्वै हथेरिन लराइबो।
गिरि सों गिरन ज्वालमाल मैं जरन होइ,
कासी मैं करोट देह हिम मैं गलाइबो।
पीबो बिष बिषम कबूल 'कवि नागर' पै,
कठिन कराल एक नेह को निबाहिबो ॥३३॥

टीका—प्रीति के निबाहिबे की कठिनता बर्णन। अकाश को गहिबो, अथाह कहे अगाध को थाह लेबो, अत्यन्त कराल काल के समान ब्याल नाग को खेलाइबो, सेर ब्याघ्र और समसेर खड्ग को प्रहार और धार को सहिबो, गज हाथी और मृगराज सिंह को दोऊ हथेरिन कहे करतल पै पकरि कै लराइबो कहैं युद्ध को कराइबो, परबत सों गिरिबो, अग्नि मैं जरिबो, काशी को करोट, हिमि मैं देह गलाइबो, भैरव झाप जो केदारनाथ में प्रसिद्ध है, अति कठिन बिष को पान करिबो, अङ्गीकार अर्थात् ऐ सब सुगम, पै नेह प्रीति को निबाहिबो अति कठिन और कराल है। इहाँ अकाश को गहिबो आदि कठिन अप्रस्तुत है तिनहूँ सो अति कठिन प्रीति के निबाहिबे को आश्रय, यातें अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार ॥३३॥

कवि—देवीदास (समुच्चय[2])

दंडक—कोऊ केहूँ मिलै ताहि जानि सनोमान करै,
हँसि दीठि जोरै पुनि हिय सों देखावे हेत।

१—दे० टि० पृ० ५८। यहाँ आकाश को ग्रहण करना, अथाह की थाह लेना आदि विशेष का वर्णन करके नेह-निर्वाह रूप सामान्य को लक्षित किया गया है, अतः यह द्वितीय (विशेषनिबन्धना) अप्रस्तुतप्रशंसा है।

गहिबो = पकड़ना। लहिबो = पाना। सेर = सिंह। समसेर = तलवार। हथेरिन = हथेलियों से, दोनों हाथों से। करोट = करवट (एक प्रसिद्ध स्थान) ॥३३॥

२—समुच्चय का अर्थ है समुदाय। जब एक ही वस्तु में बहुत से भाव

आपनो गरब कहूँ नेकु न जनावै अरु
कोऊ नहीं जानै जैसे गुपत ही दान देत।
कोऊ उपकार करै ताको परकास करै,
धरम नियम पर नित रहै सावचेत।
आप उपकार करि चुप रहै 'देवीदास'
एते सब गुन कुलवंत में देखाई देत ॥३४॥

टीका—कुलीन के स्वभाव को बर्णन। कोऊ किसी प्रकार मिलै ताको भली भाँति सन्मान कहै आदर करै, और हँसि कै दृष्टि ओरै कहै प्रसन्नमुख ह्वै बिलोकै। पश्चात् अन्तःकरण को प्रेम देखावै। अपने गर्व को कौनेउ रीति सों नेकु किंचित् भी न प्रकाश करै, ऐसो प्रच्छन्न करै जैसो कोऊ गुप्त दान देत है। और कोऊ अपने साथ उपकार करै ताको प्रकाश करै। धर्म और नियम अर्थात् इन्द्रिय दमन में सचेत रहै। काहू के साथ उपकार करि आप चुप ह्वै रहै। ए सब गुन कुलवन्तन में लखाय परै हैं। इहाँ बहुत भाव के पदन को एकत्र निवेश के कारण समुच्चयालंकार ॥३४॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दंडक—माथ बन्यो मुह बन्यो मूछ बनी पूँछ बन्यो,
लाघव बन्यो है पुनि बाघ समतूल को।
रँग्यौ चँग्यौ अंग बन्यो लाँक बन्यो पंजा बन्या,
कृत्रिम बन्यो है सब सिंह ही के मूल को।
कूजिबे की बेर मौन गहि बैठो 'देवीदास'
तैसेई सुभाव कूद काद फल फूल को।
कुंजर के कुंभन बिदारिबे की बेर कैसे,
कूकर पै निबहैगो स्वाँग सारदूल को ॥३५॥

टीका—कैतवाचरण कृतवेषी किसी धूर्त्त पुरुष का वर्णन। माथ, मुख, पूँछ मोछ आदि सम्पूर्ण अंग व्याघ्र के सदृश बन्यो अर्थात् जन बंचन के लिये अपनी

एकत्र हो जायँ, अथवा एक कार्य के लिए जहाँ एक ही कारण पर्याप्त है वहाँ अनेक कारण एकत्र हो जायँ, तब समुच्चय अलंकार होता है। यहाँ बहुत से भाव एक ही कुलवन्त में एकत्र हुए हैं अतः समुच्चय का प्रथम भेद है।

सावचेत = सावधान, सचेत ॥३४॥

समतूल = बराबर। लाँक = कटि, कमर। कूजिबे = शब्द करते। कुंजर = हाथी। कुंभन = गण्ड स्थलों के। सारदूल = सिंह ॥३५॥

आकृति वैसी ही बनाई, जो कोई देखै सारदूले कहै। कुंजर हस्ती के कुंभ के बिदारिबे समय कूकर सार्दूल को शब्द कहाँ पावैगो। इहाँ कैतव बेष धारण करि सकलजन बंचन मैं तत्पर काहू पुरुष को वृत्तान्त स्फुरित होय है यातें अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार ॥३५॥

कवि—चंद (मिथ्याध्यवसित[1])

दंडक—महाराज तेरी सब कीरति बखानै कवि,
'चंद' यह केवल अकीरति बखाने है।
आँधरे ने देखि देखि हमको बताइ दई,
बहिरे ने सुनी जैसी हमहूँ पिछाने है।
कच्छपी के दूध ही के सागर पै ताको गीत,
बाँझसुत गूँगे मिलि गावत यौं जाने है।
तामैं केते बड़े शशश्रृंग के धनुष वारे,
रीझि-रीझि तिन्हैं मौज दैकै सनोमाने है ॥३६॥

टीका—महाराज पृथ्वीराज की कीर्ति को वर्णन। रावरी कीर्ति सब कोई बखानै है परन्तु यह अकीर्ति को बखानिबो है आँधरे ने देखि देखि हम को बताई और बहिरे ने जैसी सुनी तैसोई हमहूँ पहिचान्यो। कच्छपीके दूध के समुद्र के सदृश रावरी अकीर्ति को बन्ध्यापुत्र और गूँगे ने गान कियो, यों मै जान्यों। तामें कितेक शशश्रृंग के धनुषवारे रीझि-रीझि मौज सों तिनको सनोमान कियो। इहाँ एक के मिथ्यात्व के ठहरायबे के अर्थ और भी मिथ्या को वर्णन, यातें मिथ्याध्यवसित अलंकार और आप की कीर्ति मानो बचन की अगोचर है यह व्यंग्य ॥३६॥

कवि—निपटि (प्रथम उल्लेख)

दंडक—हाँसी मैं बिषाद बसै विद्या मैं बिबाद बसै,
भोग माहिं रोग और सेवा माहिं दीनता।
आदर मैं मान बसै रुचि मैं गलानि बसै,
जोंवन मैं जान बसै रूप माहिं हीनता।

१—मिथ्याध्यवसिति का अर्थ है मिथ्या का निश्चय, अर्थात् जहाँ एक मिथ्या कल्पना के समर्थन के लिये दूसरी मिथ्या कही जायँ वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलंकार होता है।

पिछाने = पहिचाने ॥३६॥

जोग मैं अभोग औ सँजोग मैं बियोग बसै,
पुन्य माहि बंधन औ लोभ मैं अधीनता।
'निपटि निरंजन' प्रबीन नए बीनि लीन्हे,
हरि जू सों प्रीति सबही सों उदासीनता ॥३७॥

टीका—भगवद्भक्ति को परत्व वर्णन। हाँसी मैं बिषाद होवै है, और बिद्या मैं विवाद, भोग में रोग, सेवा में दीनता, आदर मैं मान अहंकार, रुचि मैं ग्लानि, आगम मैं गमन, रूप में हीनता, जोग में भोग-त्याग, संयोग मैं बियोग, पुण्य में बंधन, लोभ मैं आधीनता, प्रबीनन संपूर्ण मथिकै हरि सों प्रीति को [श्रेष्ठ, अन्य सबसों] उदासीन ठहरायो। इहाँ बहुत वस्तु को बहुत प्रकार सों ठहरायो, यातें उल्लेख अलंकार ॥३७॥

कवि—गोकुलनाथ (पूर्णोपमा)

सवैया—बारिज से मुख मीन से नैन सेवारसे बारन की सुखदा सी।
कंबु से कंठ लसै कुच कोक से भौंर से नाभि भरी भ्रम भासी॥
'गोकुल'धार सी रोमावली लहरी सी लसी त्रिबली छबि रासी।
लाल बिहार करौ सुख मैं वह बाल बनी सुख की सरिता सी ॥३८॥

टीका—दूती को बचन नायक सों। हे लाल बिहार करो, वह नायिका सुख की सरिता के समान बनी है। कमल सो मुख, मीन सों नयन, सेवार के तुल्य बार, जाको कंबु शंख के सदृश कंठ शोभित होय है। कुच कोक ऐसे, भ्रवरावली के तुल्य नाभी, जाके बिलोके भ्रम भासित होय है, धारा के सदृश रोमावली, त्रिवली की छबि लहरी सी लहराय है, इहाँ बारिज उपमान, से वाचक, नायिका उपमेय, धर्म को लोप, यातें धर्मलुप्ता अलंकार। कंबु से कँठ लसैं, इहाँ उपमेयलुप्ता। यदि नायिका को उपमेय मानिये तौ पूर्णोपमा अलंकार ऐसेई सब पदन में जानिये ॥३८॥

कवि—तारापति (सन्देह)

दंडक—इंदिरा के मंदिर असंद दुति किंदुक से,
बंधुर बिनोद भरे जुग धौं बिरद के।

आवन = आगमन, आना। जान = गमन, जाना। अभोग = भोग का त्याग ॥३७॥

सुखदा = आनन्ददायिनी। कंबु = शंख। कोक = चकवा। त्रिबली = उदरस्थ तीन रेखाएँ ॥३८॥

तारापति ललित लता के स्वच्छ गुच्छ कीधौं,
श्रीफल सुफल भए आनि अनहद के।
कीधौं चक्रवाक आय बैठो ऊँची भूमि पर,
तुंब के परन तीरबासी नाभिनद के।
सुभग सरोज से उरोज तेरे वोज भरे,
कीधौं मीर फरस मनोज मसनद के ॥३९॥

टीका—नायिका के कुच को बर्णन, नायक की उक्ति। इन्दिरा लक्ष्मी, ताको मंदिर कमल, ताको किंदुक कहैं गेंद है। कमल पद सों सरोज कली अमंद दुति होयबे वाली है, आगन्तुक प्रभात काल में बिकसैगी, यासों अमन्द दुति विशेष सार्थक भयो। अथवा सुन्दर बिनोद भरे अर्थात् जाके लखे बिनोद उपजै है, द्वै विरद है, अथवा ललित रमणीय लता के गुच्छ है, अथवा श्रीफल यह स्थल पाय कै अपने को सफल कियो। अथवा उच्चभूमि लखि चक्रवाक-युगल आय कै बैठो है। किंवा नाभीनद के निकट तुंची फल है। सरोज कमल सों भी सुभग रमणीय ए तेरे उरोज ओज गुरु सघन मनोज की मसनद पै मीर फरस धरे हैं। इहाँ संदेहापन्न वाक्य है, यातें संदेहालंकार ॥३९॥

कवि—मननिधि (प्रतीप)

दंडक—लसत सपानि तीच्छ ढारे खरसान महा,
मनमथ बान को गुमान गरियतु है।
भारे अनिआरे देखु तरल तरारे ए सु—
लक्षनीन तारे मीन हीन भरियतु है।
मृग बन लीन जोति मोतिन की खीन ऐसे,
जलज नवीन जलधाम धुनियतु है।

इन्दिरा = लक्ष्मी। किंदुक = गेंद। बंधुर = मनोहर। बिरद = ख्याति, प्रसिद्धि। तारापति = चन्द्रमा। श्रीफल = बिल्वफल। अनहद = असीम, अक्षत। तुंब = गोललौकी। परन = पर्ण, पत्ते। वोज = प्रताप। मीर फरस = वे बड़े पत्थर आदि, जो फर्श आदि के कोनों पर रक्खे जाते हैं, जिससे वे उड़ न सकें। मसनद = बड़ी तकिया ॥३९॥

सपानि = चमकते हुए, पानीदार,। तीच्छ = तीक्ष्ण। खरसान = एक प्रकार की सान जिस पर हथियार तेज किये जाते हैं। अनियारे = नुकीले, तीक्ष्ण। तरल = चंचल। तरारे = उछलते हुए से। सुलक्षनीन = सुंदर लक्षणों

'मननिधि' आजु की अजूबी लखि नैनन मैं,
खूबी खंजरीटन की खाम करियतु है ॥४०॥

टीका—नायक की उक्ति। शोभित होय है सहित पानी के तीक्ष्ण धारे खरसान जापै खड्गादि तीक्ष्ण कियो जाय है। जाको लखि काम के बान को गुमान दूरि होय है। भारे दीर्घ, अनियारे चंचल लक्षणविशिष्ट। जाको लखि मीन हीन होय है, और जाकी सुन्दरता देखि ग्लानि सों मृगगण बन सों सिधार्‍यो। मोतिन की जोति क्षीण, और जलज कमल जाकी लावण्य प्राप्त होयवे के अर्थ जल में तपस्या करै है। अय प्यारी इन तेरे नैनन की खूबी आजु बिलोकि खंजरीटन की उत्कर्षता खाम करियतु है। इहाँ ए सब उपमानवाचक पद हैं। अपने कों निरादरै है यातें प्रतीप अलंकार ॥४०॥

कवि—राजा गुरदत्त सिंह (रूपक)

दंडक—सीसफूल सूर पास थली को बिभूषै भूप,
मंगल सुरंग बिंदु चंदन को मूल है।
टीको सुर गुर मुख चंद्र को बिलोकै शुक्र-
लटकन मोती सो न रोकै राहु अलकै।
ठोढी अंक स्याम शनि गोरे रंग बुध गनि,
ऐंठत डिठौना केतु सौतिन को तलकै।
उच्चथल परे हैं सकल ग्रह तेरे आली,
यातें बनमाली लोट पोट कोटि ललकै ॥४१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। तेरे शीस को फूल सूर्य, सुरंग बिन्दु चंदन को मंगल, और टीको बृहस्पति, मुख चन्द्रमा, शुक्र लटकन की मोती, केश राहु, ठोढी में जो स्याम रंग को बिंदु अर्थात् गोदना दिए है शनि है, गोरो रंग बुध, डिठोना केतु, हे सखि संपूर्ण ग्रह तेरे उच्च है अंग ही में आय टिके, यातें बनमाली कृष्ण तेरे ऊपर कोटि-कोटि भाँति लटू है रहे हैं। इहाँ शीसफूल आदि को सूर्य आदि अभेद करि वर्णन यातें समाभेद रूपक अलंकार ॥४१॥

से युक्त। खीन = क्षीण। धुनियतु = कष्ट पा रहे हैं। अजूबी = विचित्रता। खूबी = विशेषता। खाम = क्षाम, हीन ॥४०॥

सूर = सूर्य। सुरंग = अच्छी शोभा वाला। सुरगुर = बृहस्पति। लटकन = नासिका का एक आभूषण, बेसर। अलकै = केश। ठोढी अंक = ठुड्डी पर का गोदना। डिठोना = मस्तक में लगा काजल बिन्दु (जिससे दूसरों की डीठ = नजर नहीं लगती)। तलकै = दबाता है। ललकै = चाहता है ॥४१॥

(प्रतीप पंचम)

दंडक—मीन ह्वै कमीने परे पानी में निहारे हारि,
हारि कै चकोर ताते चुँगत अँगारे हैं।
भूपति भनत गंज कंजन के खंजन के,
गंजन गरब करि डारे के निकारे हैं।
डोरे रतनारे तारे कारे औ सितारे सेत,
उपमा सितासित तरंगनि में भारे हैं।
प्यारी तेरे मान दृग पानि परसान धारे,
कै बरकसी से वै कमान वारे-बारे हैं ॥४२॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों। मीन कमीने तेरे आँखिन की छबि सों हारि पानी में परे और चकोर हारि कै आगि को अंगार चूँगिबो अंगीकार कियो। और कंज खंजन के गर्व को गंजन भंग करि डारयो, यातें वै निकरि गए अर्थात् ग्राम ही में लाज वश नहीं आवैं है। लाल डोरे और श्याम तारा कनीनिका और नेत्र परिसर स्वेत, यातें सितासित तरंगिनी त्रिवेणी की उपमा लखाय है। हे प्यारी मान के तेरे दृग सान धरे कै वर के मान को भंग करै हैं। इहाँ नायिका को नेत्र उपमेय ताके आगें उपमान मान आदिक को व्यर्थ होयबो वर्णन करै है यातें पंचम प्रतीप अलंकार ॥४२॥

कवि—दास (परिणाम विषय रूपक)

सवैया-अनी नेह नरेस की माधौ बने बनी राधे मनोज की फौज खरी।
भटभेरो भयो जमुना तट 'दास जू' सान दुहूँ की ज्यौं सानधरी॥
उरजात चँडोलनि गोल कपोलनि जौ लौं मिलाप सँलाप करी।
तौ लौं वाको हरौल भटाक्षन सों री कटाक्षन की तरवारि परी ॥४३॥

कमीने = तुच्छ। गंज = नाशक। गंजन = नष्ट। रतनारे = लाल। तारे = आँखों की पुतलियाँ। सितारे = पुतली का बाहरी भाग। सितासित तरंगिनि = त्रिवेणी (जैसे गंगा-श्वेत, यमुना-कृष्ण, सरस्वती-लाल ये तीनों मिलकर त्रिवेणी कहलाती है, ऐसे ही तुम्हारी आँखों में लाल डोरे, कृष्ण पुतलियाँ, श्वेत बहिर्भाग होने से त्रिवेणी की उपमा योग्य है यह तात्पर्य है।) पानि = हाथ ॥४२॥

अनी = सेना। माधो = श्रीकृष्ण। मनोज = कामदेव। भटभेरो = मुठभेड़। सान = तड़क-भड़क। उरजात = स्तन। चँडोलनि = पालकी। हरौल = सेना का अग्रभाग। भटाक्षन = नेत्ररूप योद्धा ॥४३॥

टीका—प्रेम नृप की सेना श्री कृष्णचन्द्र बन्यो अरु मनोज काम की फौज राधा बनी। जमुना तट दोऊ सेना की चढ़ाव भई सौंहैं, उर जात धँडोलनि उरमें प्रगटित जो रतिजनित औत्सुक्य। जौलौं मिलाप संलाप गोल कपोलनि सों कियो चाहै, तौलौं दोनों के कटाक्षन की तरवारि परी अर्थात् परस्पर रतिसूचक अनुभाव होने लग्यो। यहाँ नेह को नरेश, ताकी फौज कृष्न, मनोज काम की फौज राधा को वर्णन कियो, यातें समस्त विषयी रूपक अलंकार ॥४३॥

कवि—बीरबल (दीपक[1])

सवैया—पूत कपूत कुलच्छनी नारि लराक परोसि लजावन सारो।
भाई बड़ो हित प्रोहित लंपट चाकर चोर अतीथ धुतारो॥
साहिब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
'ब्रह्म' भनै सुनि साह अकब्बर बारहौं बाँधि समुद्र में डारो॥४४॥

टीका—कपूत पूत और कुलक्षनी नारि स्त्री, लराको परोसी आदि बारहौ कों बाँधिकै समुद्र में डारि देवों उचित है। इहाँ बाँधिकै समुद्र में डारिबो धर्म सब को एक है यातें दीपक अलंकार ॥४४॥

कबि—सेनापति (श्लेष[2])

दंडक—नाहीं नाहीं कहै थोरे माँगे सबदैन कहै,
मंगन को देखि पट देत बार बार है।

१—जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्य (उपमेय और उपमान) अपने गुण के कारण एक से कहे जायँ अर्थात् दोनों में धर्म की एकता हो वहाँ दीपक अलंकार होता है। इस छन्द में यद्यपि उपमानोपमेय भाव नहीं है किन्तु बाँधकर समुद्र में डालना रूप धर्म की एकता होने से दीपक माना गया है।

प्रोहित = पुरोहित। अतीथ = अतिथि। धुतारो = धूर्त। अराक = अड़ियल। नकारो = आज्ञा न मानने वाला ॥४४॥

२—श्लेष शब्द का अर्थ है चिपका हुआ। जहाँ दो या अधिक अर्थ एक में चिपके हुए हों वहाँ श्लेष अलंकार होता है। मुख्यतः यह दो प्रकार का है—१. अर्थश्लेष, २. शब्दश्लेष। शब्दश्लेष में विभिन्न अर्थों का बोधक एक शब्द होता है, यदि उसे बदल दिया जाय तो श्लेष नहीं रह जाता। किन्तु अर्थश्लेष में शब्द का परिवर्तन करने पर भी श्लेष में कोई अन्तर नहीं

जिन के लखत भली प्रापति की घरी होत,
सदाँ सब जन मन भाए निरधार है।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरै दान पाठ परिवार है।
'सेनापति' बचन की रचना बिचारि देखो,
दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है ॥४५॥

टीका—कवि की उक्ति, दाता और सूम को श्लेष। बिचार करि देखो ब्रह्मा ने दाता और सूम को एक ही सार कियों अर्थात् जो गुण दाता में सोई

होता जैसे—

थोरे हूँ ऊँचो चढ़ै, थोरेहिं नीच घनेर॥
सरिस बृत्ति दूनों अहै, तुलाकोटि खल केर॥

यहाँ "थोरे हूँ" के स्थान में "अल्पहि तें" और "थोरेहिं" को "अल्पहिं" ऐसा पर्यायवाची पाठान्तर कर लैं तब भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता। यही अर्थश्लेष है।

शब्दश्लेष के दो रूप हैं—सभङ्ग और अभङ्ग, जहाँ शब्द को भङ्ग कर के (तोड़कर) अर्थान्तर का बोध हो वहाँ सभङ्गश्लेष और जहाँ शब्द ज्यों का त्यों रहता हुआ अर्थान्तर का बोध करता है वहाँ अभङ्गश्लेष होता है। जैसे उक्त पद में—"थोरे माँगें सबदैन कहै" (१. सब दैन कहै = सब कुछ देने को कहता है, २. सबदै न कहै = शब्द ही नहीं बोलता) यह सभङ्गश्लेष है। इसी प्रकार "मंगन को देखि पट देत बारबार है" (१. पट देत = वस्त्र देता है, २. पट देत = द्वार बन्द कर देता है) यह अभङ्ग श्लेष है।

यह सभङ्गाभङ्गात्मक शब्दश्लेष तीन प्रकार का होता है—वर्ण्य, अवर्ण्य और वर्ण्यावर्ण्य। इसी को प्रकृत, अप्रकृत और प्रकृताप्रकृत श्लेष भी कहते हैं। इनके लक्षण और उदाहरण इसी ग्रंथ के ११वें प्रकाश में टीका में स्पष्ट किये गये हैं।

श्लेष के भेदों के विषय में ग्रंथकारों के विभिन्न मत हैं। कुछ आचार्य अर्थश्लेष को नहीं मानते। किसी ने सभङ्ग को शब्दश्लेष और अभङ्ग को अर्थ-श्लेष माना है। काव्यप्रकाश और चित्रमीमांसा आदि में इसका विशद विवेचन है।

समासोक्ति में भी प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है किन्तु उसमें विशेषण ही समान होते हैं और श्लेष में विशेष्य श्लिष्ट होता है यही अन्तर है।

सूम में लखाय परै हैं, दातापक्षे—नाहीं नाहीं कहै नाहीं को नाहीं करै है अर्थात् दीबे में निषेध कबहूँ नहीं करै है। थोरे माँगे सब दैन कहै—थोरेहू माँगे पै सब देबो कहै है। मंगन को देखि पट देत बार बार है—मंगन जाचक को देखि बारबार बस्त्र देय है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी सदा—जाके देखे सर्वदा भली प्राप्ति की घरी होय है। सब जन मन भाए निरधार है—सम्पूर्ण जन के मन में भावै है अर्थात् सब कोऊ वासों प्रीति करै हैं। भोगी ह्वै रहत—भोगी अर्थात् भोग बिलास करिकै पृथ्वी के मध्य बसै है। कनक न जोरै दान—कनक सुवर्णदान करिबे में कछू नहीं ठहरावै है।

सूमपक्षे—जाचक कों देखि नाहीं-नाहीं कहै हैं, थोरे हू माँगे पै सबदै अर्थात् मुख सों बात ही नहीं निकासै है। मंगन को देखि०—जाचक को देखि पट दरवाजा बंद करि लेय है। जिनके लखत०—जाके मुख देखि परिबे सों कहूँ कछू प्राप्ति नहीं होय है। सब जनमन भाए—सब जनम न अर्थात् संपूर्ण जन्म भरि काहू के मन में नहीं भावै है। भोगी वै रहत०—भोगी सर्प ह्वै मरन के अनंतर जहाँ वह धन गड़ो रहै है वाही जगह पै रहै है बिलास करै है, अवनी पृथ्वी के मध्य अर्थात् सर्प ही ह्वै। यह बात प्रसिद्ध है कि सूम मरिकै उसी धन का रक्षक सर्प होय है। कन कन जोरै—एक एक कन कनिका कों जोरतै कहै बटोरतै रहै है ॥४५॥

तीनि अर्थ (श्लेष)

दंडक—लछिमनै संग लीन्हे जो बन बिहार करै,
　　सीता ही मैं रहै ऐसो और अभिराम को।
नव दलै शोभा जाकी बिकसै सुमित्रै लखि,
　　बिभ्रमरहित नरहित कवि काम को।
अच्छ धाम हारी सदागति जात दूत जाको,
　　कोसलै बसत बीच ऐसोई सुठाम को।
'सेनापति' कीन्हो है कवित्त तामरस ही को,
　　राम को कहत औ कहत कोऊ बाम को ॥४६॥

टीका—सेनापति कवि तामरस कमल ही को कबित्त कियो है परन्तु कोऊ कवि राम को कहै हैं और कोउ बाम कहै बनिता को कहै हैं। कमल पक्षे—लछिमनै संग लीन्हें—लक्ष्मणा सारसी कों संग लै, बन कहै जल में बिहार करै है। "लक्ष्मणा सारसवधूरि"त्यमरः। सीता ही मैं रहै—सीत ओस अथवा सीत कहै ठंढक ही में रहै है। जब जल नहीं रहै तब कमल भी सूखि जाय है

यह प्रसिद्ध है। ऐसो और अभिराम को—कमल के तुल्य और कौन शोभा पाय सकै है। नवदलै शोभा जाकी—नवीन दल फूल और पत्र, तासों शोभा जाकी रमनीय है। बिकसै सुमित्रै लखि—मित्र सूर्य को देखि प्रफुल्लित होय है। बिभ्रमरहित—विशेष करि कै भ्रमर मधुपवृन्द को हित, अर्थात् परिमल आस्वाद में लंपट कबहूँ नहीं, कमल के तुल्य और फूल में मकरन्द पान करिबे की आसा करै है। नरहित—मनुष्यन को सुद देय हैं, कवि काम को—कवि लोग अपने काव्यन में प्रस्तुत नृपादि के बर्णन में मुख नेत्र चरण आदि को उपमेय और सरोज को उपमान करि बर्णन करै हैं। अच्छ कहै स्वच्छ धाम स्थान में रहै है। सदागति जात दूत जाको—सदागति वायु जाको दूत परिमल गुण सर्वत्र जाय बगारै है। कोश लै बसत—कोश जो कमल को मध्य अति रमणीयता को धारण करै है। बीच ऐसोई सुठाम को—कमल कोश के तुल्य आन कौन उत्तम निवास स्थान है। जाको लक्ष्मी निज गृह बनायो इसी हेतु लक्ष्मी को कमलालया नाम प्रसिद्ध भयो और कमल भी इन्दिरामंदिर नाम सें प्रसिद्ध भयो। इति।

रामपक्षे—लछिमनै संग लीन्हे लछिमन सुमित्रानंदन को संग लै जो रामचन्द्र बन में बिहार कहै बन के जीव और वहाँ के बासी ऋषिमुनि को सनाथ करते बिहरै हैं। सीता ही मैं०—सीता जनकनन्दिनी हृदय में विराजै हैं, यासों श्रीरामचन्द्र को पति नायकत्व व्यंजित भयो। ऐसो और अभिराम को—श्री रामचन्द्र के सदृश और कौन त्रिभुवन में सुन्दर है, काकु करि अर्थात् कोऊ नहीं इनकी समता को प्राप्त ह्वै सकै है। न बदलै शोभा जाकी—जाकी कांति कदापि नहीं बदलै है यथास्थित बनी ही रहै है। बिकसैं सुमित्रै लखि—सुन्दर मित्र सुग्रीवादि अथवा मित्र सूर्य को लखि बिकसित कहै प्रफुल्लित होय हैं, अथवा सुमित्र लक्ष्मण को जानिये। विभ्रमरहित०—भ्रम सों रहित, नर मनुष्यों के हित प्रीति दाता कविजन को मुख्य प्रयोजन, अर्थात् जाकी लीला को बर्णन करि अपने सहित भुवन पावन करै हैं। अक्षधामहारी सदागति जात दूत जाको—अक्षयकुमार रावण को पुत्र ताके प्राणहरैया सदागति वायु सों जात कहै उत्पन्न हनुमान जी ऐसो दूत जाको, "मातरिश्वा सदागतिरि"त्यमरः। कोशलै बसत बीच—कोशला अयोध्या राजधानी जाकी संसार में ऐसो और कौन स्थान है।

बनिता पक्षे—इहाँ बाम पद सों वेश्या को ग्रहण है क्योंकि बाम कहते हैं टेढ़े को, अभिप्राय यह है कि वेश्या सब भाँति टेढ़ी है, प्रथम सर्वस्व हरि लेय है कुल धर्म की हानि, जगत में हास्य, कुटिलता दृढ़ कराने में और भी बहुत से उदाहरण हैं। लछिमनै संग—लाखों के मन को संग लै अर्थात् हरि कै, जीवन युवावस्था के कामकेलि आदि अनेक भाँति के रति-हाव-भाव बिहार

करै है। सीता ही में रहै है सीसी भरिबो यही जानै है। ऐसो और अभिराम को–उस समय सी-सी के समान और कौन प्रिय लागै है, कवि जन याकों वशीकरण करि बर्णन कियो है, यथा जगतसिंह—"सीकरन प्यारी को बसीकरन मंत्र है"। नवदलै शोभा जाकी—नहीं बदलै शोभा कांति जाकी अर्थात् रसिकन के मन मोहिवे और धन के अभिलाष करि सदा वस्त्र आभूषन आदिसों भूषित किये रहै। बिकसै सुमित्रैं लखि—सुमित्र कहै धन दाताकों देखि प्रफुल्लित होय है। इहाँ लच्छना करि हृदय कमल को विकसिबो जानिये। बिभ्रमरहित—बिभ्रम भय सों रहित, जाकों काहू को भय नहीं है। नरन को हित अर्थात् जो चतुर हैं वासों प्रीति करै हैं अथवा मनुष्य चातुरी सीखिवे के हेतु वासों प्रीति जोरै हैं। यथा–"देशाटनं पण्डितमित्रता च वाराङ्गना राजसभाप्रवेशः। अनेकशास्त्रस्य विलोकनं च चातुर्य्यमूलानि भवन्ति पञ्च"॥ या सों वेश्या को चातुरी को मूल जानिये। कविकाम को—कविजन अनेक भाँति करि वर्णन करै है। त्रिविधनायिका में सामान्या की भी गणना है। अच्छधाम सुन्दर मंदिर में सजा सँवारि धनी के मन को हरै है। सदागति—संपूर्ण काल में गति जब चाहै निःसंदेह वाके घर चलो जाय। जात दूत जाको–धनी के निकट जाको दूत जाय है। स्वीया-परकीया के संघटन में दूती प्रधान है, सामान्या में दूत ही को प्राधान्य है। कोश लै बसत—कोश धन लैकै कामी के निकट शयन करै है। ऐसोई सुठाम को–वेश्या के घर की बराबर और निर्भय स्थान कौन है अर्थात् कौनौ नहीं ॥४६॥

कवि—बेनी (श्लेष)

दंडक—हाव भाव बिविध देखावै भली भाँतिन सों,
मिलत न रति दान जागे संग जामिनी।
सुबरन भूषन सँवारे ते बिफल होत,
जाहिर किए ते हँसै नर गजगामिनी।
रहै मान भारे लाज लागत उघारे बात,
मन पछितात न कहत कहूँ भामिनी।
'बेनी कवि' कहै बड़े पापन ते होत दोऊ,
सूम के सुकबि औ नपुंसक की कामिनी ॥४७॥

टीका—बेनी कवि की उक्ति-कि सूम के घर सुकवि कहै सुंदर रचनादिक में निपुण काव्यकर्ता और नपुंसक की कामिनी, ए दोऊ बड़े पाप तें होवै हैं। सूम को सुकवि पक्षे—हाव काव्य में दश प्रसिद्ध है, भाव विविध प्रकार के

स्थायी व्यभिचारी सात्विक मिलि एक ऊनपँचास प्रसिद्ध हैं, ताकी भली भाँति रचना करि और रात्रि भर साथ में जागि कै देखावै है, परन्तु रतिदान नहीं मिलै है। रति कहैं प्रीति ताहू को दान नहीं मिलै है अर्थात् दीबो लीबो कहा कहै प्रसन्नहू नहीं होय है जासों कवि अपने श्रम को सफल मानै। अथवा रती भरि दान नहीं देय है। सुबरन भूषन—सुन्दर वर्ण अक्षर अर्थात् वर्ण मैत्री आदि और भूषन अलंकार जासों सँवारो काव्य जाके निकट बिफल होय है। प्रसिद्ध किए तें नर नारी के हँसिबे को कारन होवै है। रहै *मान मारे—मान प्रतिष्ठा* छोड़ कै बरतै है। ऐसी बात उघारिबे सों लाज लगै है। मन में पछिताय है परन्तु अपनी स्त्री सों भी नहीं कहै है।

नपुंसक की कामिनी पक्षे—अनेक भाँति के हाव भाव देखावै है और राति की राति संग में लपटाय जागै है, रतिदान अर्थात् संभोग नहीं पावै है, क्यों कि वाके अंग में काम की चेष्टा ही नहीं है वासों कहा करैगो। सुन्दर बरन उबटन मंजन आदि सों स्वच्छ करि भूषन जेवर आदि कों पहिरै है सो बिफल होय है, क्यों याकी शोभा तबही है जब पर्य्यंकपै अपने प्रियतम के साथ भोग बिलास करि लपटाय कै सोवै। प्रसिद्ध किए ते नगर की नर नारी के हँसिबे को कारण होवै है। मान मारे अर्थात् कबहूँ मान नहीं करै है। करै भी तो कासों करै। बात प्रकट किये ते लाज लगै है, मन में पछिताय-पछिताय रहै है, काहूँ सों नहीं कहै है। इति ॥ ४७ ॥

कवि—अनीस (प्रस्तुताप्रस्तुत श्लेष)

दंडक—सुनिए बिटप प्रभु पुहुप तिहारे हम,
राखिहौ हमें तौ शोभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजिहौ हरषि कै तौ बिलग न शोचैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनौ जस गाइ हैं।
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे पर,
'सुकवि अनीस' हाथ-हाथ में बिकाइ हैं।
देश में रहैंगे परदेश में रहैंगे काहू,
भेस में रहैंगें तऊ रावरो कहाइ हैं ॥४८॥

टीका—अप्रस्तुत पुष्प पक्षे—फूल की उक्ति बृक्ष सों। हे बिटप! मेरे प्रभु याकों कान दे भला सुनिये तौ कि हम तिहारे हैं, यदि हमैं राखि हौ तौ रावरी ही शोभा की बृद्धि करैंगें अर्थात् जो देखैगो यही कहैगो कि क्या यह बृक्ष बिकसित है। यह कोऊ न कहैगो कि इस बृक्ष में कैसे फूल बिकसित

है। यदि तजोगे अपने सों अलग करोगे तौ कछू बिलग न मानैंगे, जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ-तहाँ दूनो-दूनों तुम्हारो जस गावैंगे। देवतन के ऊपर चढ़ैंगे, अथवा नरन के सीस पै चढ़ैंगे, किंवा हाथ हाथ में बिकायँगे, देश में अथवा परदेश में अथवा काहू भेस में रहैंगें अर्थात् माला आदि है, तऊ तुम्हारेई कहावैंगे। जो कोऊ देखैगो यही कहैगो कि इस वृक्ष को फूल है।

प्रस्तुत निज प्रभु पक्षे—दास की उक्ति। हे बिटप, प्रभु! अर्थात् बिटन के पालन करन हारे प्रभु हम तिहारेई हैं, यदि राखोगे तौ रावरी ही शोभा बढ़ाय हैं। हरषि कै त्याग करोगे तौ कछू बिलग न मानैंगें, जहाँ जहाँ जायँगे तहाँ तहाँ दूनो जस गान करैंगें। अर्थात् कहूँ निंदा न करैंगें। देवतन के शिर पै चढ़ैंगे किंवा नर मनुष्य लक्षण करि राजन के सीस पै चढ़ैंगें अर्थात् देवता और राजा लोगन के शिरोमनि होयँगे। अथवा हाथ हाथ में बिकायँगे अर्थात् इत उत भागे फिरैंगे, देश में बिदेश में अथवा काहू भेस में रहैंगे, तऊ रावरोई कहावैंगे। इहाँ बिटप और पुष्प अप्रस्तुत, और बिटप प्रभु और दास प्रस्तुत दोऊ में श्लेष साधारण, यातें प्रस्तुताप्रस्तुत अलंकार ॥४८॥

कवि—दास (श्लेष)

दंडक—गजराज राजै बरबाहन की छबि छाजै,
समरथ बेश सहसनि मन मानी है।
आयसु करै है आगे लीन्हे गुरजन गन,
बस मैं करत जो सुदेश रजधानी है।
महा महाजन धन लै लै मिलै श्रम बिनु,
पदुमन लेखै 'दास' बास यों बसानी है।
दरपन देखै सुबरन रूप भरी बार-
बनिता बखानी है कि सेना सुलतानी है ॥४९॥

टीका—दास कवि की उक्ति कि यह बारबनिता वेश्या है कि सुलतानी सेना है। बारबनिता पक्षे—गज राज राजै—कहै गजराज कैसी राजै अर्थात् गजगामिनी है। बाहन की छबि कहै भुजलतानि की शोभा छाजै है। अथवा धनिन को दियो हाथी और घोडे जाके दरवाजे पै बिराजैं हैं। समरथ वेश सम कहैं समीचीन रथ लोक में बहल प्रसिद्ध है, वेश सुन्दरता सहसनि कहैं हजारन के मन में बसी है अर्थात् हजारन मनुष्य जाकी अभिलाषा राखैं हैं। अथवा भूषन बसन समर्थन कहै धारन करि हजारन के मन कों मोहै है। गुरजन वाकी माता और पिता भाई आदि आगें है बुलावैं हैं। बस मैं करत

उदय करि लेय हैं जो देश और राजधानी कों। महा महाजन०—बड़े बड़े महाजन साहूकारे और धनी बिना श्रम उद्योग ही सों रत्न हीरा मोती आदि धन लै लै जाको मिलै हैं कहै जाके निकट आवै हैं। पदुम लै धन कों नही लेखै है, यह बात देश देश में फैलि रही है कि यह बेश्या ऐसी रति चातुरी है कहै आसन आदि कोककला मैं प्रवीन है कि असंख्य धन की अभिलाषा नहीं करै है। जाको भाग्य को उदय होय है वाकों मिलै है। सुन्दर बरन लावण्य और रूप कुच-कपोलादि और युवावस्था सों भरी काम-रस सों माती दर्पण में अपनी प्रतिअंगन की सुन्दरता देखि रही है।

सुलतानी सेना पक्षे। गजराज राजै—गजराज हाथी बर श्रेष्ठ बाहन घोड़े बिराजैं हैं। समरथ बीर लोगन को बेश सहसनि हजारन के मन में खटकै है अर्थात् ऐसे ऐसे बीर हैं कि एक एक जोधा हजारन के बध करिबे में समर्थ हैं। आयसु करै हैं—हाँक दै रहे हैं गुरजन गन अपने अपने बस्तादन कों आगे लिये, जे देश और राजधानी अपने आधीन करि लेय हैं। बड़े बड़े महाजन धन लै लै बिना श्रम के मिलैं हैं, पदुम पर्य्यंत धन की इच्छा नहीं राखै हैं अर्थात् कोऊ धन दैके उनसों पनाह चाहै, बिना शरण गये नहीं अभिलाषा करै है। ऐसी कीर्त्ति देश देश में फैलि रही है। दरप न देखैं—काहू राजा को गर्ब नहीं देखि सकै हैं। सुबरन रूप भरी—सोना चाँदी सों पूरित है सेना। इति ॥ ४९ ॥

(अथ तीनि अर्थ)

दंडक—पानिपके आगर सराहैं सब नागर,
　　कहत 'दास' कोसतें लख्यौ प्रकास मान मैं।
रज के सँजोग तें अमल होत जप तप,
　　हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं।
श्री को धाम सहजें करत मन काम थकै,
　　बरनत बानी जा दलन के बिधान मैं।
एते गुन देखे राम साहिब सुजान मैं की,
　　बारिज बिहान मैं की कीमति कृपान मैं ॥५०॥

टीका—इहाँ एक कवित्त में रामचन्द्र और प्रभात कालीन कमल और कृपाण खड्ग को अर्थ श्लेष करि निकसै है। दास कवि की उक्ति, एते गुन रामचन्द्र और प्रभात के बिकसित कमल अथवा कृपान खड्ग में देख्यो है।

रामपक्षे—पानिप के—पानिप शोभा के आगर कहैं अग्रगामी अर्थात् सौन्दर्य्य में पहिले श्रीरामचंद्र ही की गणना होय है। सराहैं श्लाघा करते हैं सम्पूर्ण नागर

नगर के बासी अथवा चतुर जाकों रूप की पहिचान है । दास कवि की उक्ति । कोश भरे तें प्रकाशमान कहे शोभायमान मैं अपने नयन सों देख्यो हैं । जाके रज कहे चरन के धूरि सों जप तप अमल कहे विमल होय है अर्थात् जाके चरन को रेणु जप, तप, यज्ञ आदिक कों पवित्र करै है तौ यदि उस जप तप करन हारे कों पूर्ब पुन्य के उदय सों लाभ होय नहीं जानि परै है वाको कहा फल होय है । हरि हितकारी—हरि सुग्रीवादि बानर के हित कहे राज्य के करावने हारे अथवा संपूर्ण जीवन में बानर निषिद्ध जीव है, तिनहूँ को हितकारी कहे मुक्ति देन हारे । जीव को परम हित मुक्ति ही है । अथवा हरि इन्द्र ताको हित कारन अभिप्राय यह कि गौतम के शाप बश सहस्र योनि के बदले सहस्र नेत्र पायो, अथवा इन्द्रादिक देवता को यज्ञ भाग रावण हरि लियो ताको बध करि फेरि यज्ञ भाग के भागी कियो—अथवा हरि सूर्य्य ताको हितकारी कहे सूर्य्य वंश में अवतार धरि संपूर्ण वंश और नगरबासिन को बैकुंठ दियो । वंश को उद्धार में यह हेतु है कि जो रामचन्द्र सों पहिले भये सूर्य्य सें लैकर दशरथ पर्य्यन्त और पीछे अपना सों लैकर सुमित्र ताईं सब को उद्धार कियो, या सों सूर्य्य के हितकारी रामचन्द्र भए । बास जाहिर जहान मैं—बास स्थान श्री अयोध्या जी जगतभरे में प्रसिद्ध और धन्यवाद है । यथा श्री गोसाईं तुलसी दास "धन्य अवध जेहि राम बखानी' । श्री को धाम—श्री शोभा और संपत्ति ताको स्थान कहे शोभा और संपति श्री राम ही में एकान्त सेवन करै है, अथवा श्री लक्ष्मी के निवास को स्थान है । श्री रामचन्द्र विष्नु को अवतार है । अथवा श्री लक्ष्मी को अवतार श्री जानकी जी ताके निवास को स्थान श्री रामचन्द्र हैं, क्योंकि पतिनायक श्री रघुनाथ और स्वकीया श्री जानकी जी को कविन ठहरायो है । सहजे मनोभीष्ट देय है । जैसे बिभीषन सुग्रीवादि को राज्य पद असंभव ताकों बिना परिश्रम अर्थात् मित्र के अर्थ आपुही बाली और रावण को बध करि । यद्यपि लक्ष्मण जी कहा कि विजय के अनंतर इनको राज्य देबो नीति विरुद्ध, तथापि निर्लोभ है उनहीं कों राज्य दिये । थकै बरतन बानी—जाके दलन के कहे रावणादि के मारिबे के बिधान बर्णन करिबे में बानी सरस्वती थकि जाय हैं अथवा जाके दलन कहे सेना के बिधान गणना करिबे में बानी सरस्वती थकि जाय हैं ।

बारिज बिहान पक्ष—पानिप के आगर—पानिप शोभा के आगर कहैं शोभायमान पदार्थ में अग्रगण्य संपूर्ण नागर चतुर जन जाके लावण्य अथवा जेहि प्रभात कालीन कमल कों सराहै तारीफ करै हैं । कोश कमल को मध्य भाग तासों प्रकाशमान देखि परै है । रज के संयोग ते—रज जो है पराग ताके

संयोग तें अमल कहैं स्वच्छ होय है। जप तप और हरि बिष्नु—ताको हितकारी है। बहुत मंत्रन के प्रयोग में कमल को होम होय है और बिष्नु कों अतीव प्रिय यातें हितकारी कह्यो। बास जाहिर—बास सुगन्ध संसार में प्रसिद्ध है अथवा बासगृह जल रूप जगत में बिदित है। श्री को धाम—श्री लक्ष्मी ताकों धाम कहैं निवास स्थान है। सहजे करत०—सहज मनकों काम की ओर अर्थात् उद्दीपन करै है। काम के पंच बाण में कमल भी एक बाण है। यथा—"इन्दीवरमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः।" थकै बरनत—जाके दल कहै पंखुरी ताकी रचना के बर्णन में बानी सरस्वती अथवा कबि को बचन थकि जाय है ॥इति॥

कृपाण पक्षे—पानिप कहै पानी तासों आगर अर्थात् अत्युत्तम जामें पानी दीन गई है। सम्पूर्ण चतुर जन जेहि खड्ग को सराहैं कहै तारीफ करै हैं। कोश लोक में मढ़ अथवा मियान जामें तरवारि रहै है वाकों कहै है। वाहू में रहिबे पर प्रकाशमान कहै देदीप्यमान है। रज के संयोगतें—रज कहै भस्म ताके संयोग तें अमल होय है, जब खड्ग में मुर्चा लगि जाय है लोग राखी लगाय साफ करै हैं। जपतप हरि हित कारी०—जप और तप किए सें हरि हित कारी बैकुंठ धाम जोगिन कों मिलै है। याकी धार सों जाकों शिर पवित्र भयो अर्थात् रण में सम्मुख जूझि गयो वाको भी वही लोक मिलै है। यथा—

द्वावेव पुरुषौ लोके सूर्य्यमंडलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।

श्री को धाम—श्री लक्ष्मी ताको धाम कहैं गृह में बिना श्रम भरि देय हैं। मन काम कहै मनोभीष्ट कों करत है। थकै बरनत बानी जाके दलिवे के बिधान कों बानी सरस्वती जू भी थकि जाय है ॥५०॥

कवि—गोविंद

बतिया मन मोहनी मोहै 'गोविंद'
भली बिधि नेह नवीन सनी।
अवनी की सबै अँगना मैं अहै,
उजियारी जगामग जोति घनी।
बर अम्बर मैं सुप्रकासित है,
सुषमा कबि कौन पै जात भनी।
कमनी नव बाल बनी सजनी,
किधौं दीप की माल रसाल बनी ॥५१॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों संदेहापन्न श्लेष करि नायिका के लावण्य को वर्णन करैहै। कमनीय कहै रमणीय नवयौवना नायिका है, अथवा दीपक माल है। नायिका पक्षे—हे गोविंद मनमोहनी बतिया कहि मन को मोहै है। भली बिधि, आछी भाँति नवीन स्नेह सों पगी है। अवनी की सबै-अवनी की कहै संपूर्ण अंग जाको शोभित है, अंगना नायिकागन में जाके अंग की उजियारी घनी जगमगाय है। बर अम्बर में—बर कहै श्रेष्ठ बसन में सुन्दर शोभित होय है जाकी सुषमा कहै परमशोभा, कौन कवि पै कह्यो जाय है।

दीपक पक्षे—हे गोविन्द श्रीकृष्ण चन्द्र जू जेहि दीपक में बतिया कहै बाती मनको मोहै है, और भलीभाँति नेह कहै तैल सों पूरित है। अवनी पृथ्वी में अंगना मैं जाकी उजियारी की जोति जगमगाय है। बर अंबर में—बर कहै श्रेष्ठ अम्बर आकाश मैं सुन्दर प्रकाशित है अथवा बर कहै श्रेष्ठ अम्बर वस्त्र मैं प्रकाशित है लोक में फानूस कहै तामें धरयो है। सुषमा कवि—सुषमा परमशोभा कौन कवि पै कह्यो जाय है अर्थात् काहू सों नहीं कहि जाय है॥५१॥

कवि—केशवदास

सवै०—लोग लगे सिगरे अपमारग बात भली बुरी जानि न जाई।
चंचल हस्तिनि को सुखदा अचला चित पद्मिनि को दुखदाई।
हंस कलानिधि सूर प्रभा हर खंड सिखंडिन की अधिकाई।
'केशव' पावस मास किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई॥५२॥

टीका—केशवदास कीउक्ति कि पावस वर्षा के मास हैं अथवा अविवेकी राजा की ठकुराई है।

पावस मास पक्षे—लोग लगे सिगरे अपमारग—सम्पूर्ण जन राह को छोड़ि अपमारग कहै बिना राह के चले हैं। जथा गोसाईं तुलसीदास—"हरित भूमि तृण संकुल समुझि परै नहीं पंथ।" चारयों ओर सें हरित तृण छाय लेय है यासों मार्ग नहीं जानि परै है। बात भली बुरी—बात कहै बायु भली बुरी पुरवाईं, पछियाँव, दखिनहर, उतरौंही नहीं जानि परै है अर्थात् वर्षा में बायु सब बहै है कछु नियम नहीं है। चंचल हस्तिन को—चंचला बीजुरी और हाथिन को सुखदाई है। अचला धरनी चित कहै सब भाँति सों संपन्न है। पद्मिनि को दुःखदाई—पद्मिनी कमलिनी को दुःख देय है। अर्थात् मलिन जल सों सूखि जाय हैं यातें दुःखदा कह्यो। हंस कलानिधि—हंस कलानिधि चन्द्रमा और सूर कहै सूर्य की प्रभा कांति को हरै हैं अर्थात् हंस वर्षा में मानसरोवर त्यागि अन्यत्र निर्बाह करै है और चन्द्रमा सूर्य मेघ की घटनि सों निरन्तर आच्छादित रहै है। खंड जूथ जूथ शिखंडिन कहै मयूर

गन की अधिकाई होय है। अभिप्राय यह कि स्याम घटा देखि मयूरगन अति आनन्दित ह्वै नाचै है। यथा "लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि।"

अबिबेक महीपति की ठकुराई पक्षे—लोग लगे सिगरे अपमारग-सम्पूर्ण मनुष्य जाकी अविबेकता देखि निर्भय ह्वै सनातन पंथ छोड़ि कुमार्ग चलै है। बात भली बुरी अर्थात् कौनेउ बात को ठेकाना नहीं जो जैसई चाहै वैसई बकै है। चंचल हस्तिनि—चंचला हस्तिनी कहै स्वैरिणी बनितान को सुखदाई है अर्थात् जाके राज्य में व्यभिचार को कुछ भय नहीं है। अचला चित पद्मिनि०—अचल है चित्त जाको ऐसी जो पद्मिनी पतिव्रता स्त्री हैं ताकों दुःखदाई हैं अर्थात् दुष्टन की श्रेनी प्रबल काहू के घर नीकी स्त्री सुनी वाके पातिव्रत्य भंग करिबे की उपाय करैं हैं। हंस कलानिधि—हंस परम हंस, कलानिधि तेजस्वी और सूर कहै सावंतन की प्रभा दीप्ति कों हरै है अर्थात् कोऊ नहीं आदरै है। खंड शिखंडिन की शिखंडी०—नपुंसक नटबिट कौतुकिन की अधिकाई है ॥५२॥

कवि—शंभु

सवै०—मैलो कै डारत पीतपटा घर जानन पैए बोलावन धावत।
लाल मलीन ह्वै जात जबै जब बारहिं बार सनेह लगावत।
धवाइए औ रहिए 'कवि संभु'ए धोइबो मो पै नहीं बनि आवत।
तूँ कलपावत ए री भटू हम सांवरे रंगन हो कल पावत ॥५३॥

टीका—संभु कवि की उक्ति। रजकी दूती श्री कृष्नचन्द्र को बृत्तान्त नायिका सों श्लेष करि कहै है कि हे भटू यह धोइबो मो पै नहीं बनि आवै है काहू और सों धवाइए। मैलो करि डारै है पीत पट पीतांबर कों। घरताई जानेंहूँ नहीं पावती हों, बुलाइबे के लिये फेरि धावै है। ए लाल बस्त्र जो मैं नित्य धोय लावती हों इसी हेतु मलिन ह्वै जाय है। बार केशनि में सनेह तेल लगाया करै है। यह अनोखी बानि तेरी मोकों नहीं भावै है तू कलपावत कहै कलप करवावै है। धोबी कपड़ा पै कलप देय है। और मैं सामरे रंग जो तू रोज रोज बसन मलीन करि डारै है, वासो नहीं कल कहै सावकाश पावती हौं।

दूतपन नायक वृतान्त पक्षे। हे भटू तूँ कलपावै है कहै लाल जी को तरसावै है अथवा तूँ कल कहै सावकास श्रीकृष्णचन्द्र सों पावै है। और मैं नहीं कल पावती हौं। जब देखो तब मोकों तेरे मिलाप के लिये घेरे रहै हैं। मैलो करि डारत०—बार बार मेरे घर आय अथवा मोकों अपने घर बुलाय

पीत पट पीताम्बर मैलो करि डारें । हौं घर तक जान नहीं पावती हौं घाय कै फेरि बुलावै हैं लाल जू। जब मैं बारहि बार कहै आजु नहीं काल्हि प्यारी तो सों मिलैगी, यह कहि स्नेह प्रीति उपजावती विलम्ब लगावती हौं तो मलीन ह्वै जाय है कहै अधीरज ह्वै जाय हैं। यामें यह व्यंग्य कि अब बिलंब न करु, तेरे बिना लाल बहुत बेहाल हैं ॥ ५३ ॥

कवि—रघुनाथ

सवैया—जीवन बाकी कछू न रह्यो तन भोर भरे सँग के सब जी हैं ।
छीन महा है सरोज बिलोकिए दीन ह्वै पक्षी टरे कित ही हैं ।
सूने भए प्रतिकूल सबै थल जे 'रघुनाथ' बिहारत पी हैं ।
सीरी करो घनस्याम तची बृज बाम सरोवरी ग्रीषम की हैं ॥५४॥

टीका—दूती को बचन श्रीकृष्नचन्द्र सों, बृज बाम गोपिन के बिरह निवेदन ग्रीष्म ऋतु की सरोवरी को श्लेष करि वर्णन करै है । बृज बाम पक्षे—जीवन बाकी—तन में जीवन कहै जीवो कछू बाकी नहीं रह्यो है । भोर भरे—भोर भरे कहै भोर प्रातः काल ताईं भी संग के सब परिवार आदि जीवैंगे । अर्थात् एक हू दिन न जीवैंगे । छीन दूबरी अति ह्वै रही, सरोज कमल देखिए, जैसे सरोज बिना जल के सूखि जाय है ऐसे ही वाकी दशा है, अथवा सरोज कहै रोगयुक्त देखि के दीन दुःखी ह्वै पक्षी कहै पक्ष वाले जित तित टरि गये । अर्थात् यह दुःख नहीं देखि और सहि जाय है, जे प्रतिकूल कहै बैरी रहै वै लोग भी, सूने कहै शोकार्त्त ह्वै रहे हैं। अथवा सूने भये सूनो लखाय परै है और प्रतिकूल कहै जो सुख को देत रहै वह थल अब दुःखदाई भए । सीरी करो घन स्याम—हे घनस्याम श्रीकृष्नचन्द्र अपनो दरस दै अब वाको शीतल करो कहै जुड़वावो । घनश्याम सजल मेघ सब जीवन को सुख देय है तुम को भी सब कोई घनश्याम कहै हैं शीघ्र ही चलि आनंदित कीजिये ।

ग्रीष्म की सरोवरी पक्षे—जीवन जल वामें कछू बाकी कहै अवशेष नहीं रह्यो । भौंर भ्रमर जो भरे हैं, सँग के हमेसा के साथी क्या जीवैंगे, काकु करि अर्थात् नहीं जीवैंगे । सरोज कमल बहुत ही छीन ह्वै रह्यो है अर्थात् सूखिगयो है । दीन दुःखी ह्वै कै पक्षी गन जहाँ तहाँ उड़ि गये । सूने ह्वै गए प्रतिकूल जो वासों कूल जित तित क्षेत्रादि सींचिबे के अर्थ गयो रह्यो अर्थात् वाके सूखि जावेके कारन सब कूल आदि जल के स्थल जो वासों कढ्यो रह्यो सो भी सूखि गयो । जहाँ अपने अपने प्रियतम के साथ बनिता गन बनि बनि बिहार जल-क्रीडा करती रहीं । हे घनस्याम सजल जलद यह ग्रीष्म ऋतु की सरोवरी को

फेरि शीतल करो, तुम्हारे बिना याकों वैसे ही करिबे कों कोऊ समर्थ नहीं है ॥ ५४ ॥

दंडक—सोहै जुग चरन बरन बृत्त पाटी चारु,
गुनन सों बीनी महा महिमा के ठाट की।
राजति अनूप रंग रंगनि अनेक भरी,
परम नरम पद सद सुख घाट की।
प्यारी लगै भोग कर ताको कहै 'रघुनाथ'
नित चित बसी ही ते नासक उचाट की।
बिधिना की सृष्टि ऐसे बाट की बनी है देखो,
भाँट की कवित्त जैसे खाट आठ काठ की ॥५५॥

टीका—इस कबित्त में ब्रह्मा की सृष्टि, भाट की कबित्त और आठ काठ की खाट कहै पर्यंक को अर्थ श्लेष करि निकरै है। ब्रह्मा की सृष्टि पक्षे—सोहै जुग चरन पद—शोभित होय है चार्यो जुग सत्य युग, त्रेता, द्वापर, कलियुग को चारि चरन। अर्थ यह है कि सत्य युग में धर्म के चार्यो पाव अबाधित रहे, फेरि त्रेता आदि में एक एक घटने लगे। त्रेता में एक घट्यो तीन रहै, द्वापर में द्वै घटे द्वै रहै, कलियुग में तीन घटे एक रह्यो। और ताही के अनुसार बरन बृत्त पाटी चारु कहै रमणीय, अर्थात् सत्य युग में सत्य युग के अनुसार चातुर्वर्ण्य कहै ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को आचरण रह्यो। गुनन सों बीनी ब्रह्मा की सृष्टि रजो गुण, तमो गुण, सत्त्व गुन सों बीनी है कहै इन्हीं तीन्यो गुन सों रची गई है। महामहिमा के ठाट की—बड़ी महिमा कहै माहात्म्य जाको है। राजति अनूप रंग—अनेक प्रकार के रंगन अर्थात् गौर, स्याम, सित, पीत, चित्र कपिश आदि सों पूरित अपूर्व शोभा लखाय परै है। परम नरम पद—परम नर्म हास्य को स्थान अर्थात् निन्दा स्तुति को आस्पद। सद सुख—समीचीन सुख कहै बिलासादि को घाट है। प्यारी लगै भोग—कर्त्ता जीवात्मा कों भोग करते प्यारी लागै है। निरन्तर चित्त में बसी रहै है और उचाट को नाशक है, अर्थात् सांसारिक अनेक भाँति की बस्तु लखि कबहूँ उचाट कहै विराग हृदय में न होवै।

आठ काठ के खाट पक्षे—जामें जुग कहै चारि चरन लोक में पावा कहै है, और पाटी चारु कहै रमनीय शोभित होय है, बरन बृत्त कहै रंग सों युक्त अर्थात् नाना प्रकार के चित्र विचित्र रंग सों रँगी है। गुनन सों बीनी—गुन रज्जु को भी कहै है लोक में रस्सी प्रसिद्ध तासों बीनो, बड़ी नीकी भाँति कहै चौकी आदि काढ़ि कै। राजति अनूप रंग कहै पावा और पाटिन में अपूर्व

रङ्ग लसै है—परम अतीव नरम कहै कोमल, पद पावन को सुख देन हारी। भोगकर्त्ता कहै यहि पर्य्यंकपै सोवनहारे को प्यारी लगै है। नित्य ही चित्त में बसी रहै और हृदय सों उच्चाट को मिटाय देय है अर्थात् पलिकापै पाँव धरते ही आँखिन में निद्रा आय जाय है।

भाट के कवित्त पक्षे—सोहै जुग चरन—चारि चरन कहै छंद के चारि पाद और वर्ण वृत्त की परिपाटी सों सोहै। गुनन सों—गुण प्रसाद, माधुर्य्य, ओज, तिन सों बनी कहै जाकी कविताई ग्रथित है। महा महिमा—प्रस्तुत राजादि के जस को ठाट कहै वर्णन जामें है। अनेक रंग अर्थात् अलंकारादि सों भूषित अपूर्व शोभा को प्रगटै है। परम नरम पद०—जामें कोमल पद को सन्निवेश, सुख देन हारी। प्यारी लागै भोग—रघुनाथ कवि की उक्ति, कर्त्ता जो काव्य को करनहारो है ताको प्यारी लगै है। अथवा भोग करता विवेचक सहृदय ताकों प्यारी लागै है। निरंतर चित्त में बसी हृदय सों उच्चाटन को दूरि करि अलौकिक आह्लाद देय है। इति श्लेष प्रकरणम् ॥ ५५ ॥

कवि—रघुनाथ (वक्रोक्ति अलंकार[1])

सवैया-पौरि में आपु खरे हरि हैं बस है न कछू हरिहैं तौ हरैं वै।
वे सुनी कीबे कोहै बिनती सुनौ है बिन ती तिय कोउ वरैं वै।।
देवे को लाए हैं माल तुम्हैं 'रघुनाथ' लै आए हैं माल लरैं वै।
छाँडिए मान वै पापकरैं कहै पाप करैं कहै औसि करैं वै ॥५६॥

टीका—अथ वक्रोक्ति प्रकरणम् ॥ दूती की उक्ति मानवती नायिका सों। श्रीकृष्णचन्द्र तेरे मनायवे के अर्थ पौरि में खड़े हैं। यह सुनि वामा श्लेष करि वक्रोक्ति करै है कि मेरो कछू वश नहीं, यदि हरिहैं अर्थात् चोरी करैंगे तौ हरैं कहै चोरी करैं। दूती है हे प्यारी सुनो बिनती करै हैं अर्थात् अपने अपराध

१—श्लेष अथवा काकु (स्वरभेद) से जहाँ किसी के कहे हुए शब्दों का अर्थ पलट कर उत्तर दिया जाय, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में दूती द्वारा प्रयुक्त हरि, बिनती, माल और पापकरैं, इन द्व्यर्थक पदों का नायिका ने दूसरा ही अर्थ ग्रहण करके उत्तर दिया है। यह श्लेष द्वारा उक्ति की वक्रता का उदाहरण है।

पौरि = द्वार। हरि हैं = श्रीकृष्ण हैं। हरि हैं = हर कर ले जायेंगे। बिनती = प्रार्थना, बिन ती = बिना स्त्री के। माल = उपहार, सुन्दर वस्तु। माल = योद्धा। पा पकरैं = पैर पकड़ते हैं। पाप करैं = पाप करते हैं। औसि = अवश्य ॥५६॥

की छमा करावै हैं, बामा—बिन ती अर्थात् बिना स्त्री के हैं तौ ब्रज में बहुतेरी हैं काहू सों ब्याह करैं जाय। दूती—तोकों माल देबे को लाए हैं, बामा—माल योधा लाए तौ वासों जाय कै युद्ध करैं। दूती—तेरे पा पाय पकरैं मान छोड़ दे। बामा—यदि पाप करिबे को कहैं यामें मेरो कहा करैं जाय। इहाँ नायिका के मान छोडायबे को दूती बाक्य कहै, वाही को श्लेष करि नायिका और ही अर्थ करि कहै है यातें बक्रोक्ति अलंकार ॥५६॥

सवैया–भावतो तोहि बुलावत है मैं न बोलति काहे तौ बोलति हौ सुनि।
बूझो चहै कछु बात के भेद को बात के भेद बईध कहै गुनि॥
ऊतरु दीजिए सूधे बलाइ ल्यों ऊतर है 'रघुनाथ' बसे मुनि।
का कहती हौ जू का कहिबे को है काक कहौ कहि आई है सो सुनि।५७।

टीका—दूती को बचन नायिका सों—भावतो प्यारे जू तोकों बुलावै हैं, नायिका—क्या मैं नहीं बोलती ? बोलती हौ, तोकों नहीं सुनि परै है सुनु। दूती—प्यारी तो सों कछू बात के भेद सुनो चाहै, नायिका—याको भेद मैं नहीं जानती बैद्य जानै है। दूती—मैं बलाइल्यों सूधे क्यों नहीं ऊतर देती, नायिका—उत्तर दिशा में तो मुनिगन बसै हैं। दूती—का कहती हौ अर्थात् कहा कहै है, नायिका—का कहिबे को है यदि तू का कहै तो हमहूँ सुनती हौं। काक ही होवैंगे ॥५७॥

सवैया–ऊग्यो[1] जो भानु तौ ऊगन दे अरिबिंदन मैं अलिहूँ सचुपैहैं।
कुंज गुलाबन के चटके चकई चकवा मनमोदन मै हैं॥
लेहु भले सुख बासर के रजनी सजनी अधिकी अधिकै हैं।
ए बृजचंद सबै बृज के हितू आज गये फिरि कालि न ऐ हैं।।५८॥

टीका—दूती मान छोडायबे के अर्थ नायिका को मनावै। भानु उदय भयो, नायिका—यदि उदयभयो तो ऊगन दे, अरविंद कमल में राति बँधे भ्रमर अब सचुपावैंगें अर्थात् कोश सों निकसि जित तित और फूलन पै गुंजरैंगे। दूती—गुलाबन के कुंज चटके कहै प्रभात काल के पवन को स्पर्श पाय बिकसित

भावतो = प्रियतम। बात के = बातों के। बात के = बात रोग के। बईध = वैद्य। ऊतरु = उत्तर, जबाब। ऊतर = उत्तर दिशा ॥५७॥

१—इस पद्य में कोई पद द्व्यर्थक नहीं, केवल 'ऊगन दे' आदि पदों को नायिका ऐसे उच्चारण करती है कि जिससे नायक के प्रति उपेक्षा भाव द्वारा उक्ति में वक्रता आ जाती है, यह काकु वक्रोक्ति का उदाहरण है।

ऊग्यो = उदय हुआ। सचुपैहैं = प्रसन्न होंगे। कुंज = झाड़ियाँ। चटकै = विकसित हुई। बासर = दिन ॥५८॥

भए, नायिका—यह प्रभात चकई चकवा के मन मोद कों बढ़ावैगो। दूती—यदि प्रभात भयौ तौ बासर दिन को सुख अर्थात् बिहार जनित मुद लेय, नायिका—हेसजनी [रजनी]में और अधिक सुख अधिकायगो। अभिप्राय यह कि जैसे हमैं विहाय सौति के संग पगे वाही सों विलक्षण सुख पाय हैं। दूती—ए बृजचन्द सबके हितू हैं, नायिका—आज गए तौ कालिह फिरि नहीं आवैंगे। इहाँ दूती के बचन को काकु करि और ही अर्थ करै है यातें वक्रोक्ति अलंकार ॥५८॥

कवि—लाल (चारौं पद में वक्रोक्ति)

दंडक—बात को बिलोको, कत पवन बिलोकियत,
पीतम निहारो, तुम पीवो अन्धकार को।
आए नँदलाल, हम गाहक बजाजी के न,
देखो बनमाली, तौ ल्यावो गुहि हार को।
बोलै बलवीर, तौ बिदारे कंस केसी जाय,
ऐंठी कित जात, कियो ठीक किहि दारको।
ऐसे बहु भाँति बतराय सतराय थकी,
दूतिका न पावै वाके बातनि के पार को ॥५९॥

टीका—दूती को बचन मानवती बनितासों। हे प्यारी बात जो प्यारो कह्यो है वाकी तरफ बिलोकै, नायिका—कहूँ पवन भी लखाय परै है बावरी तौ नहीं भई है। दूती—पीतम को निहारो कहै उनकी सौंहैं चितवै, नायिका—तम अंधकार को तूँ पीवै मो सों नहीं पान कियो जाय है। दूती—आये नँदलाल श्री कृष्नचन्द्र आये, नायिका—हम बाजार में कछू बजाज के दूकान सों नहीं चाहै हैं, जो कोऊ बजाज सों कछू बस्त्र आदि लियो चाहै वापै जायबो उचित है। दूती—ए जू दलाल को मैं नहीं कहती बनमाली कों कहै हैं, नायिका—यदि बनमाली कहै बन को माली बागवान को कहै तौ फूलन को हार गुहि लावै। दूती—बलवीर कहै बलभद्र को भ्राता हैं, नायिका—यदि बलवीर है तौ कहूँ कंस और केशी आदि को बिदारन करै जायँ, यहाँ कहा काम है। दूती—क्यों ऐंठी जाय है सूधे क्यों नहीं ऊतर देय है, नायिका—ठीक सूधी किहि दार को

बात = वार्ता, वायु। कत = कहाँ। पीतम = प्रियतम (पी + तम) अन्धकार को पीकर। नँदलाल = श्री कृष्ण, (न + दलाल) दलाल नहीं। बनमाली = श्रीकृष्ण, बगीचे का पोषक। बलबीर = बलदेव जी, पराक्रमी। कंस केशी = इस नाम के दैत्य। बतराय = बातें कर के। सतराय = क्रोध कर ॥५९॥

कियो। एहि भाँति दूती बतराय और सतराय कहै तेह भरि थकि गई, परंतु नायिका सों बातन से पार नहीं पावै है। इहाँ दूती के बचन को और ही अर्थ किये यातें बक्रोक्ति अलंकार ॥५९॥

कवि—घनश्याम

कवित्त—खोलो जू केवार, तुम को यहि बार, हरि-
　　　नाम है हमार, बसो कानन पहार मैं।
माधौ हौं तो भामिनि, तौ कोकिला के माथे भाग,
　　　भोगी हौं छबीली, जाय पैठो जू पतार मैं।
नायक हौं नागरि, तौ लादौ किन टाँडौ जाइ,
　　　हौं तौ 'घनस्याम' जाय बरसो जू हार मैं।
हौं तो बनमाली जाय सींचौ किन बाग बारी,
　　　मोहन हौं प्यारी बसो मंत्र अबिचार मैं ॥६०॥

टीका—राधा जू सों लाल जू के उत्तर-प्रत्युत्तर। कहूँ अनत सों आय राति मैं प्यारी के घर जाय श्रीकृष्णचन्द्र कह्यो ए जू केवार खोलो। राधा कह्यो तुम को है? यहि बार के खोलिबे को कहौ हौ। कृष्नचन्द्र—मेरो नाम हरि है, राधा—यदि तुम हरि हौ तो कानन बन और पहार में बसो जाय, यहाँ कौन काम तुम्हारो है। हरि बानर और सिंह को भी कहै हैं। कृष्ण—हे भामिनी माधव हौं मेरो नाम माधव है, राधा—यदि माधव बसंत हौ तौ कोकिलान को भाग जग्यो। कृष्ण—हे छबीली हम भोगी हैं, राधा—यदि भोगी सर्प हौ तौ पाताल में निवास करो जाय। कृष्ण—हे नागरि हम नायक हैं, राधा—यदि तुम नायक हौ तौ बनिज के लिए कहूँ जाय टाँडो लादो करो। कृष्ण—हम घनस्याम हैं, राधा—यदि घनस्याम हैं तो कहीं खेत अथवा ऊसर में जाय क्यों नहीं बरसते हैं। कृष्ण—हम बनमाली हैं, राधा—तो बाग फुलवारी क्यों नहीं सींचते। कृष्ण—हे प्यारी हम मोहन हैं, राधा—यदि मोहन हौ तो मंत्रन के बिचार में क्यों नहीं बसते यहाँ तुम्हारो कहा काम, हम को कछू प्रयोग पुरश्चरण काहू के वश्य करिबे को नहीं है। इहाँ श्री कृष्णचन्द्र के बचन को और अर्थ करि आन ठहरायो यातें बक्रोक्ति अलंकार ॥ ६० ॥

केवार = द्वार। हरि = कृष्ण, बानर, सिंह। माधौ = श्रीकृष्ण, वसन्त। भोगी = कृष्ण, सर्प। पतार = पाताल। नायक = प्रियतम, स्वामी। टाँडो = बनजारों का झुण्ड। बनमाली = कृष्ण, बगीचे का माली। अबिचार = अभिचार, जादू-टोना ॥६०॥

कवि—दास (वक्रोक्ति)

आजु[1] तौ तरुनि कोप कित अवलोकियत,
रितु रीति ह्वै है 'दास' किसलै निदान जू।
सुमन न, रीतो यह ह्वै है देखे घनस्याम,
कैसी कहौ बात, मंद शीतल सुजान जू।
सौहैं करो नैन, हमैं आन नहिं आवै करि,
आन के बुझाए, आन बार ही की आन जू।
क्यों है दलगीर, रहि गये कहूँ पीरे-पीरे,
एते मान, मान यह जानै बागवान जू ॥६१॥

टीका—नायक मान छोडावै है ताकी उक्ति नायिका सों। हे तरुनि! आजु कोप कहै क्रोध क्यों लखाय परै है, नायिका—आजु तरुनि वृक्षन कों पकित कहै पके देखै हैं। यह रितु की रीति है समय पाय किसलय पल्लव फलादि देखिही परै है। कृष्न—सुन्दर मन नहीं है तेरो, नायिका—हे घनस्याम होयगो, जब फल लगै है तौ सुमन फूल नहीं रहि जाय है। कृष्न—हे प्यारी कैसी बात कहै है, नायिका—यामें तीनि ही गुन होय है शीतल, मन्द और सुगंध। कृष्न—सौंहै सामने करो नेत्र को, नायिका—सौंह शपथ के सेवाय और कछू नहीं करि आवै है। आन के बुझाए अर्थात् कोऊ सिखायो है कि ऐसो २ कहि बुझाइयो जाय। सो आन बार कहै और ही बेर की आनि है, आजु तौ कछू नहीं है। कृष्न—क्यों है दलगीर काहे को दलन करै है, नायिका—कहूँ वृक्षन में पीरे पीरे दल रहि गयो होयगो। नायक—एते मान ऐसो मान अथवा इतनो मान, नायिका—मान लोक में एक वृक्ष होय है, प्रसिद्ध है मान को वृक्ष तो बागवान माली जानै है। इहाँ नायक के बचन को श्लेषकारी और ही अर्थ करि बर्णन, यातें बक्रोक्ति अलंकार ॥ ६१ ॥

१—नागरी प्रचा० सभा द्वारा प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में निम्नपदों में पाठ-भेद है—

कोपकित—कोपजुत (कोंपल युक्त), सुमनन रीतो—सुमन नहीं तो, आनके बुझाये आनबार ही की आनजू—आनन की बूझि आन बीर ही की आनजू।

तरुनि = हे युवती, वृक्षों में। कोपकित = क्रोध क्यों, (को + पकित) फल। सुमन = सुखी चित्त, पुष्प। बात = बार्ता, वायु। सौंहैं = सीधे, शपथ। आन = अन्य। आनबार = अन्य समय। दलगीर = उदास, पत्तों का गिरना। मान = संख्या, प्रमाण। मान = इस नाम का वृक्ष। बागवान = माली ॥६१॥

कवि—श्रीपति (रूपकातिशयोक्ति)

दंडक—एहो बृजराज एक कौतुक बिलोको आज,
भानु के उदोत बृषभानु के महल पर।
बिनु जलधर बिनु पावस गँगन बिनु,
चपला चमक चारु घनसार थल पर।
'श्रीपति' सुजान मन मोहत मुनीशन के,
कनकलता सी देखि ऊँचे से अँचल पर।
तामैं एक कीर चौंच दाबे हैं नखत जुग,
नाचत फफूल स्याम लोहित कमल पर ॥६२॥

टीका—सखी की उक्ति कृष्णचन्द्र सों अथवा दूती की उक्ति। एहो बृजराज सूर्य्य के उदयकाल बृषभानु के महल पै एक कौतुक आश्चर्य्य लखाय परै है, ताको देखो। जलधर मेघ पावस बर्षाकालीन आकाश के बिना घनसार कपूर के थल पै चपला बीजुरी को चमकिबो देखाय परै है। घनसार थल पै लखाय यामें व्यंग्य है कि बिजुरी स्वेत घटा मैं नहीं देखि परै है और यहाँ घनसार थल पै देखि परै है, आश्चर्य व्यंजित करै है। श्रीपति सुजान—श्रीपति कवि की उक्ति कि मुनीसन के जे जितेन्द्रिय हैं, मन में बिकार कबहूँ नहीं होय है, यह मन कों मोहै है, ऊँचे पर्बत पै कनकलता की भाँति देखि परै है। तामें एक शुक चौंच में द्वै नखत दाबै है और स्याम लोहित कमल पै फफूल तिलफूल नाचि रह्यो है। श्री राधा जी पिता के महल के फटिक चबूतरो पै चढ़ि इत उत बिलोकिबे के अर्थ खड़ी रही है। वाही समय दूती अथवा सखी कृष्णचन्द्र को वाको लावण्य देखावै है। इहाँ चपला उपमान, देह लता को कनक लता भी उपमान, कीर नासिका को उपमान, नखत जुग सों मोती को, स्याम लोहित कमल, नेत्र को उपमान। नेत्र में स्यामता [तथा] लौहित्य होय है। तिल फूल नेत्र की पूतरी कहै कनीनिका को उपमान। उपमेय को कथन नहीं, केवल उपमान बाचक शब्द को उपादान, यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार ॥६२॥

कवि—देव

कवित्त—भूपर कमल जुग ऊपर कदलि खंभ,
ब्रह्म की सी गति मध्य सूक्षम मनींदीबर।

उदोत = उदय। जलधर = मेघ। पावस = वर्षा। चपला = बिजली। घनसार = कपूर। अँचक = पर्वत। कीर = सुग्गा। नखत = नक्षत्र। ॥६२॥

तापै है अनंत रूप रूप की तरंगैं तहाँ
श्रीफल जुगल मौलि मल्लित मलींदीवर।
'देव' तरु बल्ली बिधु डोलत सपल्लव,
प्रकास पुंज जामैं जगमगै जोति बिंदीबर।
इंदिरा के मंदिर मैं उदित अमंद इंदु,
आनन उदित इंदु मंदिर मैं इंदीबर ॥६३॥

टीका—नायिका को लावण्य देखि काहू की उक्ति। भूपर कमल, कमल सों चरन युग। तापै कदली को स्तंभ, यातें दोऊ जघन को ग्रहन। व्रह्म के तुल्य अलक्ष्य गति मध्य कटि, तापै अनंत सर्प, यातें रोमावली। तहाँ रूप की तरंगैं, यातें त्रिबली। तदुपरि श्रीफल युगल, यातें कुच युग। तापै भ्रमर यातें कुचाग्र, तहाँ देवतरुबल्ली सहित पल्लव के, यातें करयुक्त भुजलता। जामें बिन्दुन की दुति जगमगाति है यातें मेंहदी के बिन्दु। इन्दिरा के मंदिर मैं उदय को प्राप्त चन्द्र मुख, यातें भाल मंडल मै मुख को ग्रहण। इन्दुमण्डल में इन्दीवर है कमल, यातें नेत्र युगल। यहाँ केवल उपमान वाचक शब्द सों समता करि वाही के उपमेय को ग्रहण, यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार ॥६३॥

कवि—सबलस्याम (रूपकातिशयोक्ति)

दंडक—कहा भयो जानै कौन सुंदर 'सबलस्याम',
छूटो गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो।
हालत न चंपलता डोलत समीरन के,
बानी कल कोकिल कलित कंठ परिगो।
छोटे-छोटे छौना नीके-नीके कलहंसन के,
तिनके रुदन तें श्रवन मेरो भरिगो।
नील कंज मुद्रित निहारि बारि विद्यमान
भानु, मकरंदहिं मलिंद पान करिगो ॥६४॥

टीका—नायक की उक्ति सहृदय सों अथवा सखी की उक्ति सखी सों संभोग जनित दुःख देखि वराहनो देय है। सबलस्याम कवि की उक्ति, कि

केदलि = केला। मध्य = कटि। श्रीफल = बिल्वफल। मौलि = मस्तक। मल्लित मलींदीवर = जिन पर भौंरे बैठे हैं। देवतरुवल्ली = कल्पवृक्षलता, अथवा 'देव' कवि-वाचक, तरुवल्ली = वृक्ष लता। इंदिरा = लक्ष्मी। इंदीवर = कमल। ६३।

गुन = डोरी, गुण। तुनीर = तूणीर, तरकस। हालत न = हिलता नहीं। समीरन = वायु। छौना = बच्चे। विद्यमानभानु = सूर्य के रहते हुए। मकरंद = पराग। मलिंद = भौंरा ॥६४॥

कहा भयो अर्थात् क्या भयो और कौन जानै धनुष सों गुन कहै रोदा छूटि गयो। तूनीर तरकस सों तीर बाण झरिगो अर्थात् छूट्यो। चंपलता नहीं हालै है, यद्यपि समीर वायु डोलै है। कोकिल के मधुर कंठ में कल बानी परि गई अर्थात् गल रुद्ध भयो यातें नहीं कढ़ै है। और कलहंसन के छोटे छोटे छवनन के रोदन सों मेरो श्रवन भरि गयो। नील कमल जल मैं मुद्रित भानु सूर्य के विद्यमान होयबे पर भी अर्थात् सूर्य को लखि विकसिबो उचित सो नहीं भयौं। ताहू पै मलिंद भ्रमर मकरंद पान करि गयो। इहाँ नायिका मुग्धा ता को प्रथम संभोग सखी सखी सों कहै है कि हम लोगन को भी खबरि नहीं, नायक आय सुकुमारी सों जो यह काम करि गयो, वाकी दशा कहा कहै मृत्यु तुल्य हो रही है, अथवा सखी सखी सों नायक सों वाको जो संभोग भयो है आश्चर्य ह्वै कहै है कि वाको नायक वाके वयस की समीक्षा निहारै है, बीच ही दूती नायक सों मिलाय दियो, प्रथम समागम जनित रतिदुःख जो वाको भयो और बेखबर ह्वै घर में परी है, ब्रज भरे में फैलि गयो है, यातें भानु विद्यमान और मलिंद को मकरंद पान कह्यो। इहाँ गुन सों अंजन, धनुष सों नेत्र, तीर सों आँसू, चंपलता सों वाको देह, कोकिल बानी सों वाको बोलिबो, कलहंसन के छोटे छोटे छौनन सों छुद्र घंटिका, नील कंज मुद्रित कुच बारि विद्यमान। याको अभिप्राय यह कि द्योसकु में बिकास होयबे वालो विद्यमान भानु नायक, मलिंद सों उपपति, उपमान बाचक शब्द को उपादान, उपमेय बाचक को निगरण लक्षणा करि परिज्ञान, यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार ॥ ६४ ॥

कवि—दीनदयालु गिरि 'परमहंस'

दंडक—'दीन के दयाल' बृज बीच अचरज हाल,
कहिए कहाँ लौं नाहीं मोपै कहि आवती।
कढ़ै शुकतुंड तें दवानल के बातझुंड,
सर पर हंसन की श्रेनी न सुहावती।
चंपक की दाम नेह सूखि रही घनस्याम,
कंजन के ठाम भौंर भीर न लखावती।
पंकज के अङ्क मैं मयंक सोइ रह्यो दीन,
तहाँ मीन तें कलिंदजा की धार धावती ॥६५॥

शुकतुंड = तोते की चोंच। दवानल = वनाग्नि। बातझुण्ड = बवंडर, आँधी। दाम = माला। ठाम = स्थान, ठौर। लखावती = दीख पड़ती है। मयंक = चन्द्रमा। कलिंदजा = यमुना ॥६५॥

टीका—नायिका को बिरह श्रीकृष्नचन्द्र सों दूती निवेदन करै है—हे दीन दयालु कहै दुःखीन के ऊपर आपु की दया होय है, यह कौन अपराध कियो जासों या पै आप की अनुकम्पा नहीं होय है, यह व्यंग्य। व्रज में आजु मैं एक अचरज आश्चर्य देख्यो है, मो पै नहीं कहि आवै है, शुक के चोंच सों दावानल को बायु अर्थात् दावानल सम्बन्धी वातावर्त्त, लोक में आँधी प्रसिद्ध है, कढै है और सरपै हंसन की शोभा नहीं सोहाय है। चंपकली बिनु नेह जल घनश्याम के सूखि रहीं है। घनस्याम में व्यंग्य मेघ जगत को जीवन अपनी धारन सों अवनी लक्षणा करि पृथ्वी के यावज्जीव बसुधा सहित जुड़वावै हैं। हे ब्रजराज! घनस्याम तुमको भी कहै हैं संपूर्ण उपद्रव सों बचाय अब क्यों नहीं वाकी रक्षा करते। कमल के निकट भौंरन की भीर नहीं ललाय परै है। पंकज सरोज के अंक में चंद्रमा दीन सोई रह्यो है। तहाँ मीनतें कलिंदजा यमुना की धार कढ़ै है। इहाँ शुकतुंड आदि उपमान सों नासिकानिःश्वास, मुक्ताहार, देह, नेत्र, कज्जल, पानि तल, तामें कपोल नेत्र सों आँसू आदि को आहार्य्य निश्चय, यातें अतिशयोक्ति रूपकालंकार और कलिंदजा के धार को कढिबो मीन तें कह्यो, मीन कार्य, कलिंदजा की धार कारन, सों यहाँ कार्य्य तें कारन को जन्म यातें विभावना संकर होय है ॥६५॥

कवि—सूरदास

अद्भुत एक अनूपम बाग,
जुगल कमल पर गजबर क्रीडत ता पर सिंह किए अनुराग।
हरि पर सरबर सर पर गिरिबर ता पर फूले कंज पराग,
रुचिर कपोत लसत ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर शुक पिक मृगमद काग,
खंजन धनुष चन्द्रमा पूरन तापर है एक मनिधर नाग।
अंग अंग प्रति और और छबि ताकी उपमा करत न त्याग,
'सूर' स्याम प्रभु पियो सुधा रस मानहु अधरन को बड़ भाग॥६६॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों। हे प्रभु स्याम यह अपूर्व बाग है, द्वै कमल पै गजबर श्रेष्ठ हाथी क्रीडा करि रह्यो है, तापै सिंह अनुराग करै है। हाथी और सिंह सों प्रसिद्ध बैर, सो यहाँ परस्पर अनुराग करै है यह अपूर्वता आयो। हरि सिंह तापै सरोवर, तापै गिरि पर्बत, तापै पराग मकरंद युक्त कमल फूल्यो। ताके ऊपर कपोत लसै है, तापै अमृत फल लग्यो है। तापै पुष्प, तापै पल्लव, तापै शुक, पिक कहै कोकिल, मृगमद कस्तूरी और काक है। तापै खंजन धनुष और पूर्ण चंद्रमा राजै है। तापै एक नाग मणि धारन किए बिराजै है।

जुगल कमल सों चरण युग, गजबर सों गज गति ऊरू आदि। सिंह सों कटि, सरोवर सों नाभी, गिरि सों कुच, कमल सों कुचाग्र, कपोत सों कण्ठ, अमृत फलसों ठोढी, पुष्प और पल्लव सों अधर ओष्ठ, शुकसों नासिका, पिक सों बैन, मृग मद प्रसिद्ध बिंदु (तिलक जो) नायिका लोग देती हैं, काक सों काकपक्ष, खंजन सों नेत्र, धनुष सों भ्रूभंग, पूर्ण चंद्रमा सों मुख मंडल, मणिधर नाग सों अरुण माँग युक्त चोटी, उपमेय वाचक शब्द को ज्ञान, यातें रूपकातिशयोक्ति अलंकार और सखी बाग करि कह्यो यामैं यह व्यंग्य कि बाग ही को संकेत बतायो। अपूर्व बाग करि बर्णन कियो, यातें यह व्यंजित अवश्य बिलोकिबे योग्य और नायिका की कान्ति बर्णन कियो, भाग्यवश ऐसी कामिनी मिलै है, सो तुम्हारे हेतु बाग में लाई हौं, हे रसिक बिहारी वेगि चलि सुधारस पान करो। इन तुमारे अधरन की बड़ी भाग अर्थात् अबही वाको कोऊ अधरपान नहीं कियो, यह व्यंग्य है ॥ ६६ ॥

कवि—दास (मुद्रा)

दंडक—'दास' अब[1] को कहै बनक लोल नैनन की,
सारस खंजन बिनु अंजन हराए री।
इनको तौ हाँसी वाके अंग में अगिनि बासो,
लीला ही जो सारो सुख सिंधु बिसराए री।
परे वे अचेत हरे वे सकल चेत हेत,
अलक भुजंगी डसी लोटन लोटाए री।
भारत अकथ करतूतिन न हारि लही,
या तैं घनस्याम लाल तो ते बाज आए री ॥६७॥

१—'भिखारी दास ग्रंथावली' में उक्त पद्य का पाठ इस प्रकार है—

दास अब को कहै बनक लोन नैनन की
सारस ममोला बिन अंजन हराए री।
इनको तो हाँसो वाके अंग मैं अगिनि बासो
लीलहीं जु सारो सुखसिंधु बिसराए री।
परे ये अचेत हरे वै सकल चिरचेत
अलक-भुजङ्गी डसे लोटन लोटाए री।
भारथ अकर करतूतिन निहारि लहीं
यातें घनश्याम लाल तोतें बाज आएरी ॥
(द्वितीय खंड, पृष्ठ १९०)

टीका—नायिका मान किए है, ताके मनायबे के कारन दूती जाय वाकों मनावै है। तेरे नैनन की बानिक कहा वर्णन करों, बिन अंजन के अर्थात् नायक सों रूसिकै भूषन नहीं करै है ताहू पै खंजन और सारस को हराय दियो है। इनकी तो हास है परन्तु वाके कहैं नायक के अंग में अग्नि को बास, तेरे बिना वाको सर्वांग जरबो जाय है और इर्मा हेतु तेरी लीला को स्मरण करि सम्पूर्ण सुख सिन्धु बिसारि दियो। तेरी अलक भुजङ्गी को डस्यो अचेत ह्वै परे हैं। तेरी अकथ करतूति है। तू हारि नहीं लहै है। याही हेतु घनस्याम श्रीकृष्नचन्द्र लाल जी तोतें बाज आए अर्थात् हरि कै तेरे ही कहे में हैं।

इहाँ कोक चक्रवाक, सारस, खंजन, हास, अगिनि बासो, लीला ही सारो, हरेवा, लोटन, कपोत, तूती, हारिल, लाल, तोते, बाज, इतने पदन में मुद्रा अर्थात् सूच्यार्थ नायक कृत अपराध क्षमा कराय नायिका को मान छोड़ायबो इन्हीं नामन में निवेसित कियो, यातें मुद्रा अलंकार व मानवती नायिका ॥६७॥

कवि—देवकीनन्दन (मुद्रा)

दंडक—सोन जुही जानि यह सेवती सुरसखानि,
कहत अजू बातें अनारिनि न लावई।
'देवकीनंदन' कहै अन्तर न दीजै दाँव,
पैंचहिं भुलाय गुल लालहिं लगावई।
जपा कर नाम तौ सुदरसन पावै नित,
कलह निवारी जात दोसहिं लगावई।
पागि लेरी अखिल बहार है जोबन जोहि,
हिये पिये बास तौ सोहागिन कहावई ॥६८॥

टीका—दूती की उक्ति नायिका सों। सूनो हृदय जानि कै यह तेरी हितू तोकों सेवै अर्थात् तेरे बिनु लाल को हृदय शून्य लखाय परै है, यासों मैं तोकों मनावती हौं। रसकी खानि बातें मैं कहती हौं। अनारिनि तूँ कछू

बनक = शोभा। परे ये = फाख्ता नामक पक्षी विशेष, वे पड़े हैं। अलक भुजङ्गी = केश रूप सर्पिणी। लोटन = कबूतर की एक जाति विशेष। भारत = महाभारत। अकथ करतूतिन = अवर्णनीय करतूतों की। सोन जुही = (सोन = शून्य। जु = जो। ही = हृदय), स्वर्ण जूही पुष्प विशेष। सेवती (सेव = सेवा कर। ती = तिय, स्त्री), सफेद गुलाब। अजू = आजे। अन्तर न दीजै = भेद मत समझो। जपा कर = (नाम का जप किया कर), जवा (अड़हुर) का फूल। पागना = अनुरक्त होना ॥६८॥

ध्यान में नहीं लावै है। देवकीनन्दन कवि की उक्ति कि, अंतर कहँ बीच न दे, दाँव पेच जो प्यारे के साथ करती है, बिसारि कै गुलफूलन के सदृश लाल श्री कृष्णचन्द्र कों हिय में लगाय ले और जपा करै नाम उनको तौ सुन्दर, दरसन नित ही पावैगी। कलह निवारन कियो जाय है। जो गत ह्वै गयो, दोस कहै अपराध वाको भी नहीं लगायो चाहिये। अय प्यारी संपूर्ण बहार प्राप्त है यामैं आछी भाँति पागिले और अपने जोबन को निहारु, यह सदा नहीं रहैगो। हिय में पिय को बास है तो सोहागिन कहै सौभाग्यवती तौ कहायले। इहाँ दूत नायिका सों नायक को वृत्तान्त बन को बर्णन करि कहै हैं। बन पक्षे—अरी भटू बहार बन को जो लखै है यामैं पागिले कहै अच्छी भाँति बिलोकै, सोनजुही सेवती इत्यादि। इहाँ बनकी लता और फूलन के नाम में दूतपन करै। इहाँ सूच्यार्थ को सूचन, यातैं मुद्रा अलंकार। इतने पदन मैं मुद्रा है—सोनजुही, सेवती, दाव पेंच, गुल लाल, जपाकरना, सुदरशन, निवासी, पियाबास; सोहागिन, इति ॥६८॥

कवि—केशवदास (परिसंख्या)

सवैया—पातक हानि, पिता संग हारिबो, गर्बके शूलन से डरिए जू।
ताळनि को बँधिबो, बध रोग को, नाथ के साथ चिता जरिए जू॥
पत्र फटै ते फटै रिनि, 'केशव' कैसे हु तीरथ मैं मरिए जू।
नीकी लगै सदा गारी सगाने की, दंड भलो जु गया भरिए जू॥६९॥

टीका—यह कवित्त प्रास्ताविक है काहू की उक्ति। यदि हानि होय तो पातक की हानि होय यही अच्छा है। हारिबो पिता के साथ अच्छा। यदि शूल से डरै तौ गर्व ही के शूल सों डरिबो, बँधिबो ताल ही को, बध रोग ही को, जरिबे में स्वामी के साथ चिता में जरिबोई अच्छो है। पत्र फाटिबे में रिण को पत्र फाटिबो अच्छो है, मरिबो तो तीर्थ ही में मरिबो, गारी ससुरारि ही की, दंड को भरिबो तो गया जी को अन्यत्र नहीं। इहाँ एक जगह सें वस्तु को निषेध करि हानि इत्यादि को पातकादि ही में नियमन, यातें परिसंख्या अलंकार ॥ ६९ ॥

कवि—नायक

जथा—सूरताई आँधरे में हठताई पाहन मैं,
नासिका नचानि मध्य मौन रहो हाट मैं।
धर्म रहो पोथिन बड़ाई रही बृक्षनि,
बँधेज बग पाँतिन में पानी रह्यौ घाट मैं।

यहि कलिकाल ने बिहाल कियो सब जग,
'नायक' सुकबि कैसी बनी है कुठाट मैं।
रज रही पंथनि रजाई रही शीत काल,
राई रही राईते रनाई रही भाँट मैं ॥७०॥

टीका—समय के ह्रास पाय सब वस्तु को ह्रास देखायबे हित निर्वेद दशा प्राप्त होयके काहू सों कोऊ वर्णन करै है। यह कलिकाल ने सब को बिह्वल करि डार्‍यो, काहू मैं सत्त्व न रह्यो, जैसे कि सूरताई आंधरेई में रह्यौ, दृढ़ताई पाषाण ही में, नाचिबो नासिका ही में, नोन अर्थात् नवनि हाट बाजार में। धर्म पोथिन में, बड़ाई वृक्षन में, बंधेज वक की पंक्तिन हीं में, पानी घाट ही में, रज पंथ मार्ग ही में, रजाई शीतकाल ही में रह्यो, राई राई जो एक प्रकार को अन्न होय है ताही में रह्यो, रनाई भाट ही में रह्यो। इहाँ भी एक जगह में वस्तु को निषेध करि स्थापन, यातें परिसंख्या अलंकार ॥ ७० ॥

कवि—रघुनाथ

दंडक—आए जुरि जाचिबे को जाचक जहाँ लौं रहे,
एहो कबि 'रघुनाथ' आजु तीनौ थर मैं।
एते मान दान तिन्हैं भूप दशरथ दीन्हे,
देत यौं देखाई कहूँ कोऊ सोध घर मैं।
बसन के नाते बास पास कौशिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर मैं।
घोड़े हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माँझ,
राम के जनम रहे दाम दफ़दर मैं ॥७१॥

टीका—रामचन्द्र के जन्मसमय में महाराज दशरथ को दानवीरत्व वर्णन, कवि की प्रौढोक्ति है। त्रिलोकी के जाचक एकत्र ह्वै जाचिबे के अर्थ महाराज दशरथ के निकट प्राप्त भए। कवि की उक्ति महाराज दशरथ अति आनन्दित ह्वै इतनो दान दियो राजमन्दिर में यही पदार्थ देखिबे को बाकी रहि गयो।

सूरताई = बीरता, अन्धापन। नौन = नम्रता, नमक। बंधेज = नियम। राई = स्वामित्व, छोटे बीज वाला एक अन्न। रज = रजोगुण, ऐश्वर्य, धूल ॥७०॥

बसन = वस्त्र। चित्रसारी = चित्रशाला। रहे दाम दफदर में = दफ्तर में ही केवल दाम (रुपयों के आँकड़े) रह गये थे ॥७१॥

बसन के नाते श्री महारानी कौशल्या के अंग में बही एक बस्त्र जाको पहिरे रही। प्रसिद्ध है कि सूतिकाघर मेंजब स्त्री प्रसव के निमित्त जाय है तो नीलाम्बर एक पहिरि लेय है और कछू नहीं धारन करै है। और भूषन के नाते एक नथ नाक में रह्यो अवशि संपूर्ण भूषण रुचि सों नेगहारिनिन कों दै दियो। और हाथ में छला रह्यो। यदि संदेह करै कि इन को भी क्यों न दै गयो, ताको समाधान यह है कि नथ को सौभाग्य चिह्न जानि न दियो और छला तुच्छ पदार्थ, इस हेतु न दियो। घोड़े हाथी चित्र में रहि गये और दाम दफ़्दर में रह्यो अन्यत्र नहीं रहि गयो। इहाँ भी बस्तु को निषेध करि एकत्र नियमन, यातें परिसंख्या अलंकार ॥ ७१ ॥

जथा—अति ही कराल कलि काल की व्यवस्था कछू,
ए हो 'कवि रघुनाथ' मो पै जात ना कही।
देखिए बिचार तौ अचार रहो कुंभनि मैं,
गुन गरुआई बनिआई हाट मैं रही।
तेली के सनेह रह्यो, नेम गेह बेश्यन के,
रहे है कसेरन के गेह साँच की सही।
नदिन मैं पानिप, परन तरिवरन मैं,
बरनी हैं बन केदरी के करनी रही ॥७२॥

टीका—प्रास्ताविक उक्ति समय के न्यूनत्व सों सम्पूर्ण पदार्थन की हानि वर्णन करै है। यहि कलिकाल की व्यवस्था अति ही कराल है कछू वर्णन नहीं कर्‍यो जाय है। बिचार करि देखिए तौ अचार कुम्भन में रह्यो आम्रफल आदि को तैल में धरि राखै हैं, वाही को अचार कहै है। गुन गरुआई और बनिआई यह बजार ही में रह्यो। स्नेह तेली के रह्यो। नेम वेश्या के घर, साँच की सही कसेरन के घर, पानी नदी मैं, परन तरिवर बृक्षन में, करनी वन मैं बर्णन करिबे को रही। पूर्व कबित्तन समान इहाँ भी परिसंख्या अलंकार ॥ ७२ ॥

कवि—अज्ञात

दंडक—माँगत पपीहा, मुँह मैलो है सरोजन के,
करिहाँई दूबरो, दुखी न कोऊँ जानिए।

अचार = सदाचार, आम आदि का आचार। गुन = सद्‌गुण, सूत (तागा)। गरुआई = महत्त्व, तौल करना। सनेह = प्रेम, तेल। नेम = नियम। साँच = सत्यता, मिट्टी का साँचा। पानिप = शक्ति, मर्यादा, जल। परन = प्रण, पत्ता। बन केदरी = कदली वन। करनी = कर्तव्य, हाथी ॥७२॥

दंड है जतीन के, कुरंगहीं के बन बास,
मोरन की अँखियाँ सु नीके करि मानिए।
नाहीं एक नवल तियान मुख देखियत,
हा हा एक सुरत समै ही अनुमानिए।
पूँछि देखो जाहि ताहि प्रेम पुंज चाहि चाहि,
एते खानखानाजू को राज पहिचानिए ॥७३॥

टीका—नवाब खानखाना के राज्य की संपन्नता को वर्णन। एती बात खानखाना जू के राज्य ही में देखियत है। माँगने हारो एक पपीहा मिलै है, मुख म्लानता उरोज ही की, दूबरो दुःखी करिहाँई परो है, दंड जतीन के, बनवास कुरंग मृग गण को, मोर की आँखि की निकाई, नाहीं कहिबो एक नवोढा नायिका ही के मुख सों कढ़ै है, हाँ हाँ करिबो एक सुरत समय ही मैं सुनि परै है। इहाँ एकत्र वस्तु को निषेध करि एक ठौर नियमन, यातें परिसंख्या अलंकार ॥ ७३ ॥

कवि—कुलपति (रूपक)

कवित्त—भट सेवत भूप भयंकर रूप बने तिन ग्राह समान चहै।
कपि पुंज तहाँ रतनावलि सी निशि बासर पास लगेई रहै।
बिष से हथियार लखै अरि भार गहै कर बारन भाजत है।
कवितामृत को जस चंदहू को जग कारन राम नरिंद कहै ॥७४॥

टीका—रामचन्द्र की सेना को वर्णन। श्री रामचन्द्र जू की सेना समुद्र रूप देखि परै है। भट सेवन करै हैं, भूप सुग्रीव और विभीषण आदि ग्राह समान हैं। कपिन को समूह रत्नावली राति दिन निकट बनी रहै है। हथियार शस्त्र अस्त्र बिष के सदृश। कविता अमृत और जस चन्द्रमा। इहाँ रामचन्द्र की सेना को समुद्र करि वर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार ॥ ७४ ॥

कवि—किशोर (शुद्धापह्नुति)

दंडक—गाजत न घन ए सघन तनतूर बाजैं,
मोर की न कूक ए नमाजनि के हेले हैं।
बक की न पाँति ए लसति माल कौड़िन की,
जल की न धूँधि ए बिभूतिन के रेले हैं।
फूली नहीं साँझ लाल चादरि 'किशोर' कहै,
दौरति न बादर चपल गति चेले हैं।

करिहाँई = स्त्रियों की कटि ही। दूबरो = दुबली पतली है ॥७३॥
बिस = कमलतन्तु ॥७४॥

सुनु री सलोनी नारि काहे को करति शंक,
पावस न झेले ए मलंगनि के मेले हैं ॥७५॥

टीका—प्रोषितपतिका नायिका सों सखी की उक्ति। हे सलोनी नारि सुनु, काहे को अपने जी में संदेह करै है। यह पावस बर्षाकाल नहीं होय, यह तौ मलंगन की मेला होय, मलंग एक प्रकार के मुसलमान फकीर होते हैं। ए घन नहीं गरजै हैं, यह सघन तनतूर बाजै हैं। मोरन की कूक न होय किन्तु निमाज पढ़ै हैं। बक की पाँति यह न होय किन्तु यह कौड़िन की माल शोभित होय है। यह धूँधि न होय अपनी देह में बिभूति लगाये हैं। यह संध्या समय की अरुनाई नहीं होय किन्तु यह लाल चादरि होय। बादर नहीं दौरै हैं किन्तु चपल गति उनके चेले दौरै हैं। इहाँ घन आदि को गरजिबो (आदि) धर्म दुराय तनतूर आदि मैं आरोप, यातैं शुद्धापह्नुति अलंकार ॥७५॥

कवि—चतुर **(संदेह)**

दंडक—सरद त्रिजाम कृत तदवत आनन पै,
श्रवाबुंद कुंदज परागन प्रसिस पोत।
हीरन खिरदान की सत जुग तच्छ कहै,
चतुर अनच्छ छबि छाजित किसित होत।
गॅगन घनाबी किन घन घनसार कैधों,
फैनब पहार अति फटिक छटी है जोत।
शशि शुक्र भा कृत की सुकृत प्रभाकृत की,
स्रमतामृता कृत प्रसंगिल ससी को सोत ॥७६॥

॥इति श्रीदिग्विजयभूषणे चतुर्षु पदेषु अलंकारवर्णनं नाम सप्तमः प्रकाशः॥

टीका—नायिका को मुख में प्रस्वेद भयो, ताको लखि संदेह करै है। शरद काल की त्रिजामा रात्रि में चंद्र सदृश मुख पै अमृतस्रवित भयो है। किं वा कुंदज पराग पसीज्यो है। अथवा हीरन को खंड है, स्वच्छ छबि छाजै है। अथवा गगन मेघन में घन को छौंड्यो सीकर है। अथवा घनसार है। किंवा फेन को पहार होय। अथवा शशि चन्द्रमा शुक्र की प्रभा किंवा सुकृत की शोभा किंवा अमृत स्रव अथवा चन्द्रमा सों अमृत को सोत बह्यो है। इहाँ संदेहापन्न बाक्य करि वर्णन, यातैं संदेहालंकार ॥७६॥

॥ इति श्रीदिग्विजय-भूषण टीकायां सप्तमः प्रकाशः ॥

तनतूर = एक वाद्यविशेष। जक की धूँधि = कुहरा। मलंग = एक प्रकार के मुसलमान साधु ॥७५॥ खिरदान = टुकड़े, खण्ड ॥७६॥

अष्टमः प्रकाशः

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज' (संकर[1] अलंकार)

दोहा—पय पानी मिलि जाहिं जब, जानै जाननिहार।
संकर भूषन त्यौं लखै, कवि करि हंस बिचार॥ १ ॥
दोइ अलंकृत के मिले, संकर उत्तम होइ।
जोइ पाछिले चरन मैं, मध्यम अनमिल सोइ॥ २ ॥

टीका—अथालंकाराणां संकरत्वं वर्ण्यते। जेहि विधि दूध में पानी मिलै पर भिन्न नहीं लखाय परै है याही भाँति अलंकारन को संकर अर्थात् एक अलंकार दूसरे अलंकार सों मिलि जायबे सों पुष्ट एक को निश्चय नहीं होय है और चमत्कार को अतिशय होय है, यातें अलंकार संकर कहै है। याको हंस की चाल सों कवि को चाहिये कि अपनी बुद्धि के वैलक्षण्य सों पृथक् करै, जासों भिन्न भिन्न लखाय परै॥ १—२ ॥

(रूपक-सहोक्ति[2] संकर)

दंडक—बृज बरसाने की बधूटी बनी चंद रूप,
खेलिबे को होरी होरी गावै गोरी गाथके।

१—संकर का अर्थ होता है मिश्रण। जब एक ही पद्य में दो या दो से अधिक अलंकारों का मिश्रण होता है तो उन अलंकारों का संकर कहा जाता है। यह तीन प्रकार से होता है—१. अङ्गाङ्गीभाव—जब एक अलंकार प्रधान हो और अन्य अलंकार गौण रूप से उसका पोषण करते हों, २. एकाश्रयानुप्रवेश—एक ही वाचक में दो या अधिक अलंकारों का अनुप्रवेश हो, ३. संदेह संकर—जहाँ कई अलंकारों का संदेह हो अर्थात् रचना में अर्थभेद से कई अलंकारों के लक्षण घटते हों और निर्णय न हो सके कि वस्तुतः कौन सा अलंकार है। देखिये टि० पृ० ३७,

२—सहोक्ति लक्षण दे० टि० पृ० ९७। वस्तुतः यह सहोक्ति नहीं प्रत्युत विशेषोक्ति अलंकार है। पिचकारी भर कर रंग खेलने के सारे कारण विद्यमान रहते हुए भी रंग खेलना रूप कार्य नहीं हो पाता, क्योंकि राधाकृष्ण एक दूसरे के स्वरूप पर मुग्ध हो जाते हैं और पिचकारी हाथ की हाथ में ही रह जाती है। रंग खेलने के लिये ब्रज-बधूटियों ने श्वेत वस्त्र पहिने हैं, अतः 'चंदरूप' कहा है।

अगर अबीर छोरी केसरि गुलाब घोरी,
जोरी लै कुसुंभ कुंभ ढारै रोरी माथ के।
कुंज की गलीन बीच 'गोकुल' मची है फागु,
भयो भटभेरो दोऊ दौरे देखै साथ के।
बोरिबे को अंग रंग लये पिचकारी संग,
हाथ ही की हाथ रही राधा—राधानाथ के ॥३॥

टीका—प्रथमतो ग्रन्थकर्तुरुदाहरणम्। बरसाने की बधू एक ठौर ह्वै होरी खेलिबे के लिए अगर अबीर केसरि गुलाब घोरि कुम्भन को भरि कृष्णचन्द सों आय भिरी। राधा और कृष्न परस्पर मोदभरे पिचकारी भरि बोरिबे के अर्थ दोऊ दौरे। वाही समय सात्विक भाव भूलि गयो, राधा और कृष्नचन्द्र के हाथ की पिचकारी हाथ ही में रही। इहाँ बरसाने की बधू चन्द्र रूप यामें रूपक। चंद्रमा सों उनको अभेद बर्णन, यामें रूपक और हाथ ही की हाथ रही यहाँ सहोक्ति दूनौं अलंकार को संकर ॥ ३ ॥

(लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा संकर)

मदिरा—आए मनावन मानै न मानिनि दीरघ दोष बिसोचन सो।
तेल तमोल अमोल अभूषन छाँड़े सबै 'बृज' सोचन सो ॥
केलि कला सबी सामुहे कै हँसी जोन्ह से बाल सँकोचन सो।
मानहु मान मलिंद से छूटि गिर्यौ अरबिंद बिलोचन सो॥४॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नायक मनायबे के हेतु आयो पर वाको बड़ो दोष अनुमानि नहीं मानै है। इसी सोच सों तेल, ताम्बूल, अमूल्य भूषण छाड़ि दियो। केलिकला की तसवीर सामने करि जोन्हसी हँसी। मानो अरबिंद बिलोचन नेत्र सों मान रूप मलिंद कहै भ्रमर छूटि गिर्यो अर्थात् उड़ि गयो। इहाँ हँसी जोन्ह से—हँसी उपमेय, जोन्ह उपमान, सी बाचक, धर्म नहीं, यातें धर्मलुप्ता। अरबिंद बिलोचन रूपक, मानहु उत्प्रेक्षा बाचक शब्द, मान संभाव्यमान पद, ताको अरबिंद बिलोचन सों मलिंद को उड़िबो करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा संकर ॥ ४ ॥

(उत्प्रेक्षा-विभावना संकर)

दंडक—गायन के पाछे पाछे चटक लटक चाल,
आछे कटि पीत पट काछे दोह दौर पर।
माथे पै मुकुट मोरपच्छ के लकुट हाथ,
स्वच्छ गुच्छ मंजरी रसाल छबि छोर पर।

'गोकुल' बिलोकि बाल कज्जल कलित आँसु,
गिरे मुख पर ढरे ढहरे उरोज पर।
मानो कंज कोसते कढ़ी कलिंद नंदिनी है,
चढ़ी चंद मंडल पै मंडित सुमेर पर ॥५॥

टीका—इहाँ नायिका के नेत्र सों आँसू गिरयो संभाव्यमान पद, ताको कंज कोश ते जमुना की धार कढ़ि चन्द्रमंडल पै चढ़ि सुमेरु पर मंडित होयबो करि बर्णन, यातें उत्प्रेक्षा अलंकार। और कंज कोश कार्य्य, तातें कलिंदजा को कढ़िबो कारण की उत्पत्ति, यातें बिभावना संकर। और कृष्णचन्द्र को संकेत को चिह्न रसाल मंजरी समेत देखि आपना न गई संकेत कों, यातें पश्चात्ताप करि आँसू ढारयो, यातें अनुशयाना[1] नायिका ॥५॥

(पूर्वरूप[2]-श्लेष संकर)

दंडक—पति परदेश तें संदेस को पठाए 'बृज',
कीजो न अँदेस सुभ साइति जो आती है।
घरी या पहर दुपहर दिन बीते पर,
संपति समेत आवै बाँचि लीजो जाती है।
धावनि जो धाय आय दई जानि तीके पानि,
हिए हरखाय पाय पढ़े रुचि राती है।
गये कुँभिलाइ सो उठे फुलाइ कंज मुख,
पाती मंजु मित्र कर लाइ लई छाती है ॥ ६ ॥

टीका—इहाँ पहिले नायक को वियोग पाय कंज मुख कुँभिलाय कहैं सूखि गयो रह्यो, धावनि के हाथ पठायो पाती पाय नायिका को मुख फेरि बिकसि उठ्यो, यातें पूर्वरूप और मित्र सूर्य और नायक ताको कर किरण और हाथ श्लेष को संकर ॥६॥

१—देखिये नायिका-प्रकरण १७वाँ प्रकाश।

२—'पूर्वरूप' का अर्थ है पहिले वाला रूप, अर्थात् जहाँ कोई वस्तु अपने गुण को एक बार छोड़ कर पुनः उसे ग्रहण कर ले वहाँ पूर्वरूप अलंकार होता है। यह अलंकार वहाँ भी होता है जहाँ वस्तु के विकृत या नष्ट होने पर भी उसकी पूर्वावस्था का गुण विद्यमान रहे। जैसे—"दीपक बुझाने पर भी करधनी में जड़े रत्नों से कमरे में प्रकाश होता ही रहा।"

अँदेस = आशंका। साइति = मुहूर्त। धावनि = दूती ॥ ६ ॥

(संबंधातिशयोक्ति-रूपक संकर)

मत्तगयंद—जो परदेस पयान करो हरि साथहिं मैं हूँ पयान करौंगी।
राखे न येक घरी बनि है 'बृज' लोग लुगाई न धीर धरैंगो॥
मेरे सनेह समूह को पाइ हिए बिरहागि जबै पजरैगी।
देह जरै फिरि गेह जरै पुर पौरि जरै बन बाग जरैगी॥ ७॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। हे हरि! यदि तुम परदेश को पयान करते हौ तौ हमहूँ साथहि पयान करोंगी। एकहू घरी राखे न बनैगो। ए बृज की लुगाई न धीर धरैंगीं अर्थात् क्योंकि मेरे बिरहागि की जरिबे के भय से धीर न रहैगो। सनेह नाम तेल, आगि में परे अधिकात ज्वाल, यातें सबको धैर्य न रहैगो और मेरे सनेह समूह को पाय हृदय में जब बिरहाग्नि प्रज्वलित होय है तब क्या है है कि देह जरैगो, फिरि गेह जरैगो, पुर जरैगो और बन बाग जरैगो। इहाँ बिरहाग्नि पद में रूपक और बिरहाग्नि प्रज्वलित होयबे सों देह-गेहादि को जरिबो अयोग में योग कल्पन, यातें सम्बन्धातिशयोक्ति संकर। और प्रवत्स्यत्प्रेयसी[1] नायिका॥ ७॥

(भ्रांतिमान्-धर्मलुप्ता संकर)

दुमिला-'बृज' अंग सिँगार सिँगारिबे को चुनिल्याई है चूनरी भाँति भली।
तन भूषन भूषित कीजै भटू अस बोलि लटू कहैं प्यारी अली॥
बरसाइति है बर पास चलो बलि पूजिहै तो मन आस रली।
सुनि संक मयंकमुखी के भयो मुख ह्वै गयो पंकज कैसी कली॥ ८॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। हे भटू अंग श्रृंगार सँवारिबे के अर्थ भली-भाँति चूनरी चुनिल्याई हौं। यासों अपने तन कों भूषित कै आजु बरसाइति है बर के पास चलो। लटू है जब सखी ऐसो कह्यो कि तुम्हारे मन को अभिलाष पूरन करैगो, सुनते ही मयंकमुखी चन्द्रबदनी को मुख भ्रम सों पंकज कमल की कली के समान ह्वै गयो। इहाँ बरसाइति है बर पास चलो, यह सखी को बचन सुनि याकों भ्रम भयो कि यह कहा कहै है कि बर श्रेष्ठ साइति है, बर कहैं प्रियतम के निकट चलो ऐसो भ्रम भयो। साधारन अर्थ को परिज्ञान न भयो कि बरसाइति = बटसावित्री व्रत जेष्ठ की अमावस्या को होय है।

१—दे० नायिका-प्रकरण १७वाँ प्रकाश।

पजरैगी = प्रज्वलित होगी॥ ७॥

बरसाइति = नायक के पास जाने का मुहूर्त, बटसावित्री। बर = नायक, बट का वृक्ष॥ ८॥

सिगरी वनिता भूषन कै बर कहे बट वृक्ष के निकट जाय वाको पूजन करै है, यातें भ्रांतिमान् अलंकार। और मुख है गयो पंकज कैसी कली, इस पद में मुख उपमेय, पंकजकली उपमान, सी वाचक, संपुटित रहिबो धर्म नहीं है, यातें धर्मलुप्ता संकर और चन्द्रमुखी पद सो पूर्ण सुखत्व और आह्लादकत्व धर्मविशिष्ट अर्थ को वाचक, पंकज कली सों चिन्ता व्यभिचारी व्यंजित होय है, यातें नवोढा नायिका ॥८॥

(विषम-श्लेष संकर)

माधवी—यक तौ बिनु बारबिलासिनि के तन ताय कलापिन तापर टेरे।
तड़पै तड़िता बहै पौन प्रचंड उड़े तृन से मन ही में न हेरे॥
'बृज' एते सबै दुख दायक हैं सुख लायक नाम सुने हम तेरे।
जग जीवन जीवन दै जगजीवन क्यों हठि जीवन लेते हौ मेरे॥९॥

टीका—प्रोषित वैशिक[1] नायक की उक्ति। एक तौ बिना बारबिलासिनी के वैसे ही तन में ताप, तापै कलापिन कहे मयूरन टेर रहे हैं। बीजुरी तड़पि रही है, प्रचंड पवन बहै है, तृन के समान मेरो मन उड़यो। एते सब दुःख देन-हारे हैं, सुख देनहारो नाम एक तेरो ही सुन्यो है। हे जगजीवन सजल जलद जगत भरे को जीवन को जीवन दै क्यों हठि मेरो जीव लेय है। इहाँ जीवन जल और जीवन जीव दान श्लेष करि यह अर्थ लब्ध भयो, यातें श्लेषालंकार और जग जीवन है अर्थात् जगत भरे को जीवन दै एक को दुःख दैबो अननुरूप, यातें विषम अलंकार संकर ॥९॥

(रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दुमिला—कुँभिलाइ गयो नव नेह को अंकुर आँच बियोग दिनेश दली।
परदेश तें प्रीतम आयो जबै अवलोकिबे को द्रुत दौरि चली॥
'बृज' बेगि मिली गलबान तबै छबको है बिलोचन खोलि अली।
मुकुले निशि फूले रसीले मनो सुषमासर स्याम सरोज कली॥१०॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नवीन स्नेह को अंकुर, बियोग दिनेश सूर्य को ताप पाय कुँभिलाइ गयो रह्यो। जब प्रियतम परदेश तें आयो वाके बिलोकिबे के लिये शीघ्र ही दौरि के चली और बेगि मिलते ही गलबाँही दिए, वारि भऱ्यो बिलोचन ऐसो लखाय परै है मानो सुषमा के सर में बियोग निशि पाय मुद्रित भई रही समागम दिन पाय स्यामसरोज की कली विकसित

१—वैशिक = वेश्या नायिका का नायक। देखिये नायक प्रकरण।
बारबिलासिनि = वेश्या। कलापिनि = मयूरी। जीवन = आधार, जल, प्राण ॥९॥

भई। इहाँ नव नेह को अंकुर और वियोग दिनेश की आँच, सुषमा सर, रूपक अलंकार और परदेश तें आयो प्रियतम को बिलोकि पूर्व ही वियोग जनित दुःख सों मुद्रित भयो बिलोचन फेरि बिकसित भयो संभाव्यमान पद, ताको रात्रि संपुटित नीलकमल को फेरि दिन में सूर्य किरण बिलोकि बिकसिबो तादात्म्य करि बर्णन, यातें उत्प्रेक्षा संकर और आगच्छत्पतिका नायिका ॥१०॥

(स्वभावोक्ति-काव्यार्थापत्ति[1] संकर)

सवैया—सखि खेलन के मिसु साजि सबै सुषमा दुति दीह दुरे दरसात।
'बृज' लैकै चली मनमोहन पै, पग पाछे धरै मग में अड़ि जात॥
तन भूषन भार सँभार नहीं सुकुमारि के लंक उनै उनै जात।
कटि छीन किए मृगराज को दीन कहा गति मंद गयंद की बात॥११॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की सुकुमारता और सौन्दर्य्य को वर्णन करै है। हे सखि खेलिबे को व्याज करि सम्पूर्ण भूषन बसन साजि जाकी दीह दुति दुरे अर्थात् वस्त्रादिक के आड़ हू पै अंग की सुषमा कहै परम शोभा दरसात है। बृज की उक्ति-मन को मोहन कृष्णचन्द्र पै लैकै चली पर पग पाछे धरै है, मग में अड़ि जाय है। तन देह में भूषन के भार को सँभार नहीं है यासों सुकुमारि नायिका को लंक करिहाँ उनै उनै जाय है। कटि छीन मृगराज सिंह को कियो और मंदगति गयंद को, यह कहा कहिबे की बात है अर्थात् याके मंद गमन के आगे गयंद की चाल को कहा चरचा करिबे लायक है काहूँ भाँति नहीं ह्वै सकै है, लज्जास्पद जान्यो जाय है। इहाँ मृगराज आदि की कटि छीन, गज की मंदगति स्वभावोक्ति और याके मंदगमन के आगे गज की मंदगति की कहा चर्चा कैमुत्य करि अर्थ साधन कियो यातें काव्यार्थापत्ति अलंकार संकर ॥११॥

दोहा—त्यों ह्याँ संकर कविन के, कबितन मैं लखि जोइ।
उदाहरन दृष्टांत हित, लिखत ग्रंथ महँ सोइ॥१२॥

१—स्वभावोक्ति देखिये पृष्ठ ४६ टि०। काव्यार्थापत्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ 'दण्डापूपिक न्याय' या 'कैमुतिक न्याय' हो, दण्डापूपिक न्याय का अर्थ है जैसे कोई कहे 'चूहा तो डण्डा भी खागया'। जब डण्डा भी खा गया तो उसमें लटकाए हुए अपूपों (पूओं) की बात ही क्या ? उन्हें तो निश्चय ही खा गया होगा। कैमुतिक का अर्थ है—'जब वह हो गया तो यह क्या है' जैसे-'जब नायिका के मुख ने चन्द्र को जीत लिया तो कमल की कौन कहे'।

लंक उनै उनै जात = कमर झुकी झुकी जा रही है ॥११॥

टीका—त्योंही इस ग्रन्थ में प्राचीन कविन के अलंकार संकर को उदाहरन लिख्यो कि जासों काहू के मन में संदेह न होय इस हेतु दृष्टान्त दियो है ॥१२॥

कवि—देवकीनंदन (काव्यलिंग-यथासंख्य[1] संकर)

दंडक—बैठी रँगरावटी में हेरति पिया की बाट,
अजहूँ न आए भई निपट अधीर मैं।
'देवकी नंदन' कहै स्याम घटा घेरि आई,
जानि गति प्रलै की डेरानी भवभीर मैं ॥
सेज पै सदाशिव की मूरति बनाइ पूजी,
तीनि डर तीनि हूँ की करी तदबीर मैं।
पाखन मैं साँवरो सुलाखन मैं अछैबट,
ताखन मैं लाखन की लिखी तसबीर मैं ॥१३॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों, रँगरावटी कहै नीलमणि के मंदिर मैं बैठी प्रियतम की बाट जोय रही हौं अबतक न आए, यातें निपटि अधीर भई, घटा घेरि आई प्रलय अनुमानि बहुत भयभीत भई। सेज पै तौ सदाशिव की मूर्ति स्थापित करि पूजन कियो और प्रलय में तीन वस्तु अवशिष्ट रहि जाय है ताको उपाय कियो, पाखन मैं साँमरो विष्णु और सुलाखन मैं अक्षयबट, ताखन मैं लाखन लक्ष्मण अर्थात् सेस जू की तसवीर लिखी। इहाँ काम के जीतिबे अर्थ सदाशिव की मूर्ति बनाय कै पूजी, यातें यह व्यंजित भयो कि अरे मनोज तोकों अब मैं भस्म ही किये डारती हौं, मोकों बहुत क्लेश दियो इसलिये सदाशिव की मूर्ति पूज्यो। और तीनि डर दैहिक, दैविक, भौतिक कों होय है, तासों बचिबे के अर्थ पाखन मैं विष्णु आदि को बनाय कै पूजन कियो, यातें यथासंख्य। सो तहाँ काव्यलिंग और यथासंख्य को संकर भयो ॥१३॥

१—यथासंख्य शब्द का अर्थ होता है संख्या (क्रम) के अनुसार। जिस क्रम से वस्तुएँ कही गई हों उसी क्रम से उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ जहाँ कही जायँ वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है। जैसे इस पद्य में ३ डरों से बचने के लिये क्रम से ३ मूर्तियों का बनाना। काव्यलिंग लक्षण देखिये टि० पृ० ६०।

रँगरावटी = केलिगृह। तदबीर = उपाय। पाख = मकान में लम्बाई की दीवारों की अपेक्षा चौड़ाई की वे ऊँची दीवारें जिन पर बँड़ेर रक्खी जाती है। सुलाख = सलाखें, बल्लियाँ। ताख = आले ॥१३॥

कवि—आनंदघन (रूपक-पूर्णोपमा संकर)

सवैया—मग हेरत दीठि हेराइ गई जब तें तुम आवन औधि बदी।
बरसो कितहूँ 'घन आनंद' प्यारे बढ़ावत हो इत सोच नदी॥
हियरा इन औधि उदेग की आँच चुआवत आँसुन मैन मदी।
अब औसर पाय मिलोगे सुजान! बहीर लौं बैस तौ जात लदी॥१४॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। हे मनमोहन जब से तुम आयबे के *अर्थ अवधि बदी तुम्हारो मग विलोकते नेत्र हेराय गयो,* अर्थात् लोक कहै हैं कि निरखते निरखते आँखि फूटि गई। हे प्यारे तुम कहूँ बरसो, पै सोच नदी को यहाँ बढ़ावत हो। हृदय में अवधि करि नहीं आयो, यातें वियोग उदेग की आँचन सों आँसू चुवावत हो। अब कहूँ अवसर पाय मिलि रहियोगे, यह बैस बहीर नौका के सदृश तौल दी जाय है। यहाँ सोच को नदी करि बर्णन कियो, यातें रूपक और वयस उपमेय, बहीर उपमान, लौं वाचक, लदिबो धर्म, चार्यों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार संकर है और मध्या अधीरा नायिका॥१४॥

कवि—शम्भु (पूर्णोपमा-सामान्य संकर)

सवैया—उत फूलन को बिनिबो ठहराय इकंत लै दूती मिलाइ दई।
नँदलाल निहाल भयो अवलोकि कै कुंदनमाल सी बाल नई॥
करतें छुटि भाजि दुरी पग द्वै बलि पै न चली कछु चातुरई।
हरि हेरे न पावते भावती 'संभु' कुसुंभ के खेत हेराइ गई॥१५॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। उत संकेत स्थल में फूलन को बिनिबो ठहराय नन्दलाल सों दूती एकान्त में नायिका को मिलाय दियो। देखते ही कृष्णचन्द्र निहाल ह्वै गयो कुन्दन माला के सदृश नई बाल नवल यौवना कों हाथ सों पकरते ही द्वै पग भाजि कै दुरि गई। वा समै कृष्णचन्द्र की कछू चतुराई न चली, भावती जो मन में बसी रही ताकों हेरे नहीं पावै है, वह कुसुंभ के खेत में हेराय गई अर्थात् कुसुंभ फूल के सदृश जाकी अंग

उदेग = उद्वेग। बहीर = नौका। बैस = वयस, अवस्था॥१४॥

१—समानता के कारण जहाँ दो विशेष पदार्थों में कुछ भी भेद न मालूम पड़े वहाँ सामान्य अलंकार होता है, जैसे उक्त पद्य में नायिका का रंग कुसुंभी है अतः रंग की समानता से कुसुंभ के खेत में छिपी वह पहिचानी नहीं जाती।

इकंत = एकांत। दुरी = छिपी। भावती = प्यारी॥१५॥

गोराई पृथक् न लखाय परी, यातें हेराय गई कह्यो। इहाँ कुंदनमाल सी-कुंदन माल उपमान, सी वाचक, धर्म को लोप, नायिका उपमेय, यातें धर्मलुप्ता अलंकार और कुसुंभ के खेत हेराय गई इहाँ सादृश्य कुसुंभ खेत, तासों नायिका को भेद न लखाय पर्‌यो, यातें सामान्यालंकार संकर ॥१५॥

कवि—ठाकुर (विषाद-उत्प्रेक्षा संकर)

सवैया—बरुनीन में नैन झुकैं उझकैं मनो खंजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसें गनों सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे॥
कहि 'ठाकुर' कौन सों का कहिए हमें प्रीति किए की कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिबे को हमें लाले परे॥१६॥

टीका—नायिका पछिताय है कि बरुनीन में आँखें झुकि उझुकि रही हैं, मानों खंजर प्रेम के जाल में फँदि गयो है। हे सखी अवधि के दिन कहाँ लौं गनौं, गनते २ अंगुरीन के पोर में छाले परि गए। कासों कहौं प्रीति किए के कसाले कहै दुःख भोगिबो पर्‌यो, जे कृष्नचन्द लालन इतनी प्रीति करी ताको देखिबो हमें लाले परे। इहाँ मानो खंजन प्रेम के जाले परे उत्प्रेक्षा अलंकार और सदा लालन सों प्रेम निबहैगो यह इष्यमाण कहै इच्छित, तासों बिरुद्ध कृष्न-चन्द्र को देखिबो लाले परे प्राप्त भयो, यातें विषाद अलंकार संकर, प्रोषित पतिका नायिका ॥१६॥

कवि—पद्माकर (लुप्तोपमा-अप्रस्तुतप्रशंसा संकर)

सवैया—अब है है कहा अरविंद सों आनन इंदु के हाय हवाले परे।
'पदुमाकर' भाषे न भाषे बनै जिय ऐसे कछूक कसाले परे॥
एक मीन बिचारो बिंध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले परे।
मन तो मनमोहन गोहन गो तन लाज मनोज के पाले परे॥१७॥

टीका—नायिका अनर्थ ठहराय पश्चात्ताप करै है। कहा होयगो अरबिंद कमल के समान आनन मुख हाय कष्ट में कह्यो जाय है, इन्दु चन्द्रमा के हवाले परे, कमल और चन्द्रमा को बैर यातें दुःखदाई ठहरायो। पद्माकर कवि की उक्ति; नायिका अपने मन में कहै है कि भाषे और न भाषे नहीं बनि आवै है, जीव ऐसे कछू बीच कसाले कहै दुःख में पर्‌यो, एक तो मीन बेचारो दुखी बंसी कहै बडिस में बिंध्यो, दूजे जाल में फंदो फँद्यो। मेरो मन मोहन के गोहन कहै संग ही गयो, फेरि देहो लाज और मनोज काम के पाले पर्‌यो। इहाँ अरबिंद

बरुनीन = बरौनियाँ, नेत्रपलकों के आगे उगे हुए बाल। जाले = जाल में। कसाले = दुःख। लाल = नायक। लाले = अभाव ॥१६॥

सों आनन धर्मलुप्तोपमा, मन को मीन करि बर्णन रूपक और एक मीन विचारो अप्रस्तुतार्थ मन लाज और मनोज के पाले परयो प्रस्तुतार्थ को आश्रय, यातें लुप्तोपमा और अप्रस्तुत प्रशंसा को संकर। और भाषे न भाषे बने—काम क्लेश सों कह्यो चाहै है फेरि लाज सों नहीं कहै है, और मन तौ मनमोहन गोहन गो, तन लाज और मनोज के पाले पऱ्यो, इहाँ भी लाज और मनोज की समानता देखायो, यातें मध्या प्रोषितपतिका नायिका ॥१७॥

कवि—श्रीपति (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दंडक—लचके ललित लंक मचके उरोज ऊँचे,
हचके हँवेलन नवेली हियरे परे।
नैनन के चाय धरे मृदु मुख स्वास करे,
फिरि फिरि अंक भरे मिलती गरे गरे।
'श्रीपति' सुहात बारिजात से बदन पर,
रूप सरसात झुकि मुकुता लरे लरे।
मेरे जान कातिक की पूँनवाँ मयंक पर,
चहूँघा नखतमाल डोलत हरे हरे॥१८॥

टीका—नायिका के संभोग को बर्णन। ललित सुन्दर और सूक्ष्म लंक करिहाँ लचकि गयो। ऊँचे उरोज मचके हचके हमेल नायिका के हृदय पै पऱ्यो, नैनन के चाय प्रीति धारन कियो अर्थात् परस्पर सादर बिलोकन करि कहैं है। मृदु मुख सों श्वास हफनि कढ़ै है। ताहू पै बार बार अंक भरि भरि गले लावै है। बारिजात बदन पै मुक्तामाल की लरैं सुथरी शोभित होय हैं, मानो कार्त्तिक की पूनों के चन्द्रमा पै नक्षत्रावली हरे हरे डोलै है। इहाँ अरविंदमुख रूपक और मुख पै मुक्ता लरैं लहराय हैं सो गम्यमान पद, ताको कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा पै नक्षत्रावली को डोलिबो करि बर्णन, यातें उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार संकर और लचके ललित लंक आदि पदन सों प्रौढ़ा को सुरत ॥१८॥

कवि—पजनेस (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दंडक—लागी दीठि लगन लजान लागी लोगन को,
लंक लागे लचन लोभान लागे 'पजनेष'।

हँवेल = हमेल, गले में पहनने का एक आभूषण जो छाती तक लटकता है। लरैं = लड़ें। बारिजात = कमल। नखतमाल = ताराओं की पंक्ति। चहूँघा = चारों ओर ॥ १८ ॥

चंपक प्रसून दीह दुति कलिका के गात,
औरे औरे रंग अंग अंगनि परति देष।
कसमसे कसे उर उकसे उरोजन पै,
उपटत आँगिन की तुरफ तिरीछे सेष।
अस्ताचल उदया की दूनौ कोर दाबि मानो,
दीपति नवीन पथ रविरथ चक्र रेष ॥ १९ ॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। बाला की दीठि लागने लगी अर्थात् नायक कों चाह सों देखने लगी। लोगन कों देखि लजाने लगी, और लंक करिहाँ लचन लाग्यो, नायक देखि कै लोभान लाग्यो। चंपक प्रसून की दुति वाके गात की होन लगी, और और अंगनि में लावण्य देखाई देन लग्यो। कसमसे कसे उर में उकसे कहै अंकुरित उरोजन पै आँगी की तुरफनि तिरीछी उपटनैं कहै ऊँचे देखि परै लगी। मानो अस्ताचल और उदयाचल की दूनौ कोर दाबि, दीपति नवीन पथ पै रवि सूर्य के रथ चक्र की रेखा होय, यहि भाँति लखाय परै है। इहाँ बारिजात से बदन पर रूपक, और नायिका के कुच गोल के मध्य सूक्ष्म रेखा को अवकाश मात्र लखाय परै है संभाव्यमान पद, ताको उदयाचल अस्ताचल के कोर को दाबि सूर्य रथ चक्र की रेखा करि बर्णन, यातैं उत्प्रेक्षा संकर और मुग्धा नायिका ॥१९॥

(लुप्तोपमा-पूर्णोपमा संकर)

दंडक—कवि 'पजनेस' केलि बांछित बिभाव नैनी,
कीन्हे हैं डिठौना श्रमसेद मुखवर पै।
दीठि सिचि जात मीची इँचति न ऐसी खैंची,
खिंचति न तसबीर तसबीरगर पै॥
निमिषि निहारी नेह दीपक सिखा सी चारु,
राजमनि मंदिर दरीची के कँगर पै।

कसमसे = कुलबुलाते हुए। उकसे = उभड़े हुए। आँगी = चोली। तुरफ = एक प्रकार की सिलाई ॥१९॥

डिठौना = काजल का टीका जो किसी की नजर न लगे, इसलिये लगाया जाय। श्रमसेद = पसीना। सिचि जात = बन्द हो जाती है। इचति न = खुलती नहीं। तसबीरगर = तसवीर खींचनेवाला, चित्रकार। दरीची = खिड़की। कंगर = कोना। रंधती = अरुंधती, एक छोटा तारा जो सप्तर्षि मण्डल में वशिष्ठ के पास दीखता है ॥२०॥

रुंधती के नखत लौं लखत न जो लौं तौ लौं,
झँखत नगीच मीचु बैठो मैनसर पै ॥ २० ॥

टीका—पजनेस कवि की उक्ति, केलि बांछित बिभाव रसोत्पादक अर्थात् कामोद्दीपक नेत्र जाकी ऐसी जो नायिका, सो श्रमजनित स्वेद पसीननि की डिठौना मुख मंजु पै कियो है, जाके निरखिबे के अर्थ दीठि मिचि जात कहै अति कठिनता सों चुभि जाय है और ऐसी डिठौना जुत मुख है कि तसबीरगर पै भी वा की तसबीर नहीं खिंच्यो जाय है एक पल भरि लों निहारी नेह स्नेह दीपक की सिखा सी रमणीय राजमणि मंदिर की दरीची के कँगर पै बिराजै । अरुंधती नखत के सदृश जौ लौं लखिए तौ लौं खसकि कै दै मारी आँखें मैन काम के सर पै बैठी देखि परै है अर्थात् वाके देखते ही आँखिन में चकाचौंध आइ और काम बश ह्वै अंगन की सुधि भूलि गई । इहाँ नेह दीपकशिखा सी चारु-दीपक शिखा उपमान, सी बाचक, चारु साधारन धर्म, उपमेय नायिका है, यातें पूर्णोपमा । चारु धर्म को उपादान न कीजै तो धर्म को लोप, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार और अरुंधती के नखत लौं—अरुंधती नखत उपमान, लौं बाचक, नायिका उपमेय, अतिसूक्ष्मता धर्म को उपादान नहीं, यातें धर्मलुप्ता अलंकार संकर है ॥२०॥

(गम्योत्प्रेक्षा-संदेह संकर)

सवैया–स्याम सरूप मैं सोहै बुलाक सखी सत मोल सोहाग मैं लीजै ।
ढीली डगैं मुरि मैन जुड़ी गिरि जंघन मैं न मसूसनि भीजै ॥
हौं लगि जोयो यही 'पजनेस' सयानहूँ लोग यही तजबीजै ।
या जमजाम मैं सीसा सिकंदरी या दुरबीन लै देखिबो कीजै ॥२१॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों । स्याम स्वरूप नायिका को तामैं बुलाक सोहै है, हे सखि सोहाग मैं नायक को मोल लीजै । ढीली जंघा काम

१—उत्प्रेक्षा लक्षण दे० दि० पृ० ४४ । उत्प्रेक्षावाचक शब्द 'मानो' आदि जहाँ पर रहते हैं वहाँ वाच्योत्प्रेक्षा और जहाँ नहीं रहते वहाँ गम्योत्प्रेक्षा कही जाती है, इसी को प्रतीयमाना भी कहते हैं । यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि जहाँ वाच्योत्प्रेक्षा के वस्तु-हेतु-फल भेद से तीन प्रकार हैं, वहाँ गम्योत्प्रेक्षा के हेतु और फल ये दो ही प्रकार हैं । साहित्य दर्पण में इन भेदों का विशेष विवरण है ।

मसूसनि = मरोड़, ऐंठन । जोयो = देखा, बिचारा ॥ २१ ॥

झुरि करि और मैन की मसूसनि सों भीजि गई है। मैं हूँ अब तक जोयो अर्थात् बिचार कियो और सयान लोग यही बात तजवीज करै है कि जमसेद के जाम कहै पियाला में सिकंदरी सीसा है या दुरबीन लै देखा कीजिये। इहाँ मानो आदि पद उत्प्रेक्षा वाचक नहीं है और संभाव्यमान बुलाक उपादान, यातें गम्योत्प्रेक्षा अलंकार और बुलाक को जमशेद के पियालगत सिकदरी सीसा करि कह्यो, ताहू पै दुरबीन लै देखिबो कीजै कह्यो, यथार्थ काहू वस्तु को नहीं ठहरायो अर्थात् निश्चय न कियो, यातें संदेह अलंकार संकर ॥२१॥

कवि—गिरधारी (काव्यलिंग-रूपक संकर)

दंडक—गति गजराज जहाँ कटि मृगराज राजै,
नेउर के संग मैं भुजंग कचभार की।
कहैं 'गिरधारी' माँग मोती है असुर गुर,
सोहै सुर गुर आड़ केसरि लिलार की॥
आँखैं अरबिंद जानि आनन अमंद इंदु,
अंजन जहर सुधा अधर अधार की।
आली क्यों न करै बनमाली सों बिगार जो पै,
बिधि ही बनायौ तोहि मूरति बिगार की॥ २२॥

टीका—मानवती नायिका सों सखी की उक्ति। जो पै तेरी गति गजराज के समान है और कटि मृगराज सिंह के कटि के सदृश, हाथी और सिंह को स्वाभाविक बैर है। नेउर नासिका, भुजंग सम कच केशपाश है, इनको भी परस्पर विरोध। माँग में मोती गुँथी असुरगुरु शुक्र, केसरि आड़ सुरगुरु बृहस्पति, नेत्र अरबिंद, आनन मुख अमंद पूर्ण इंदु चन्द्रमा, अंजन गरल, अधर सुधा अमृत। हे आली सखी बनमाली कृष्णचन्द्र सों तूँ क्यों न बिगार करै, ब्रह्मा तोको जो पै बिगार ही की मूरति बनायो है। इहाँ कृष्णचन्द्र से बिगार करिबे को नायिका के आभूषन में परस्पर बिरोधी को बर्णन करि समर्थन कियो, यातें काव्यलिंग और गति गजराज आदि पद में रूपक, यातें काव्यलिंग रूपक अलंकार संकर ॥२२॥

(पर्यायोक्त-रूपक संकर)

दंडक—गति गजराज राजै, घूँघट बिराजै बाजि,
सीसा से कपोल, पान बेनी बेस करे हौ।

केसरि लिलार की = मस्तक में स्थित केसर का गोलाकार तिलक। बिगार = विरोध ॥ २२ ॥

कहै 'गिरधारी' हीरा मोती से दशन, वोठ
बिद्रुम से स्वच्छ, दाखै बैन अनुसरे हौ ॥
रेसम से बार, रंगदार नारंगी से पाँय,
चारु हैं अनार से उरोज उर धरे हौ।
कहत गोपाल कोतवाल बनि गोपिन सैं,
देहौ न जगाति जो पै एते माल भरे हौ ॥२३॥

टीका—कृष्नचन्द्र की उक्ति गोपिन सों। गति गजराज की सी, घूँघट बाजि अश्व, सीसा सों कपोल, पान बेनी, हीरा मोती दशन, ओठ बिद्रुम, दाख बैन को अनुसरै है। रेसम सों बार केश, नारंगी सों पाँय, अनार से चारु रमनीय उरोज। गोपाल कृष्नचंद्र कोतवाल बनि गोपिन सों कहै है कि तुम सब एतनो माल लादे हौ तो मेरो जगाति क्या नहीं देवोगी। इहाँ गति गजराज आदि पदन में रूपक और इतनो धन लादे हौ तौ मेरो जगाति क्यों नहीं देउगी, यह ब्याज करि अपनो इष्ट साधन कियो, यातें पर्य्यायोक्त संकर अलंकार ॥२३॥

कवि—श्रीपति (प्रतीप-दीपकावृत्ति संकर)

दंडक—आरि जात अलि की नेवारिन कीआरि जात,
सारि जात सहज बयारि जाके तन की।
'श्रीपति' सुजान जाहि जूथिका बिदारि जात,
महिमा बिगारि जात बारिजात बनकी।
मारि जात मालती गुलाब मद झाँरि जात,
सौरभ उतारि जात केतकी सघन की।
बारि जात अगर तगर धूप हारि जात,
राह पारि जात पारिजात के सुमन की ॥२४॥

टीका—नायिका के सौन्दर्य्य को वर्णन। अलिन भ्रमरन की अवली जो नेवारिन की कियारी में अड़ी रही है, जाके तन के सहज बयारि को परसि सारि जात अर्थात् उन्मत्त है इत उत दौरी फिरै है। जाही जूही के परिमल को

सीसा = दर्पण। पान = नागवेल। बेनी = कट। जगाति = जकात, चुंगी ॥२३॥

आरि = आली, पंक्ति। नेवारिन = बनमल्लिका, जूही-सा एक पुष्प। कीआरि = क्यारी। बारि जात = न्यौछावर होता है। अगर = चन्दन विशेष। तगर = धूप विशेष ॥२४॥

बिदारि जाय है, जाके तन को सौरभ प्रभात कालीन कमल की महिमा को बिगारि डारे है। मालती को मारि जात है और गुलाब के मद को झारि डारत है, केतकी के सौरभ को फीको करि देय है, अगर बारि जाय है, तगर को धूप हारि जाय है, पारिजात फूलनि की राह परि जाय है अर्थात् कोऊ वा मग नहीं जाय है। इहाँ *नेवारी आदि उपमान* को *अनादर*, यातें *प्रतीप अलंकार* और आरि जात आरि जात पारि जात आदि पदन सों पदावृत्ति दीपक अलंकार संकर ॥ २४ ॥

कवि—सुन्दर (लोकोक्ति-रूपक संकर)

सवैया—मंजन कै अँग रंजन अंजन दै करि खंजन नैन नचावै।
अंबर भूषन बेष बनाइ अनूप जो कंचुकी चोवा चढ़ावै॥
साजि सिंगारन सेज बनाइ कै सुन्दर मंदिर सूनो बतावै।
बूझै तऊ न इते पर कूर तौ और कहा कोउ ढोल बजावै॥२५॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। *नायिका मंजन करि अंगराग सों अंग* को विभूषि खंजन नैन में अंजन दै साकूत बिलोकि च्याह देखावै है। अम्बर भूषन अपूर्व सिंगारि कै कंचुकी पै चोवा अतर गुलाब आदि चढ़ावै है। शृंगार साजि, सेज बनाय सूनो मंदिर संकेत बतावै है। हे सखि वह कूर अनभिज्ञ इतने हू पै यदि न बूझै तौ कहा कोऊ ढोल बजावै, अर्थात् मिलिबे के अर्थ चेष्टादिक सों अपनो अभिप्राय सूचन करै है। याहू पै कूर अनभिज्ञ नायक न जान्यो। इहाँ खंजन नैन पद में रूपक और कहा कोऊ ढोल बजावै यह उक्ति *लोकप्रसिद्ध, यातें लोकोक्ति अलंकार*॥२५॥

कवि—कालिदास (उत्प्रेक्षा-रूपक संकर)

दंडक—अंधकार धूम धार सम शिर छूटे बार,
बिथुरि बिराजै रति सेज अंत पर मैं।
'कालिदास' काम रूप स्याम संग सोई बाम,
काम तें कलित तहाँ काम केलि घर मैं।
नवला की नाभी कान्ह जानु दै कुचन गहि,
सोए जोए जड़ित अंगूठी सोहै कर मैं।

मंजन = मज्जन, स्नान। अंबर भूषन = वस्त्राभूषण। चोवा = इत्र आदि सुगंधित द्रव्य॥२५॥

मेरे जान करो नाग बाम तें बिकसि फन,
राख्यौ मनि मंडित सुमेरु के शिखर मैं ॥२६॥

टीका—कवि की उक्ति अथवा सखी की उक्ति सखी सों, सुरतान्त शयन को वर्णन। अंधकार और धूमधार के समान अर्थात् अति स्याम शिर के बार काम केलि में छूटे रत के अन्त में बिथुरि बिराजैं हैं, काम रूप स्याम श्री कृष्न-चन्द्र के संग कामतें कलित कहे कामरस भरी काम केलि घर बिहार स्थान में सोइ रही है। नवल यौवना की नाभी पै कान्हलाल जू जानू दै और मणि जटित अंगूठी बिराजै है जेहि कर में वासों कुचन को गहि सोइ रहे हैं। कवि की उक्ति मेरे जान वाम कहे बिववटिसों कारो नाग निकसि मणि सों भूषित सुमेरु के शिखर पै फण धरि लसै है। इहाँ अंधकार धूमधार करि शिर के केश को बर्णन और काम रूप स्याम अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र को काम रूप करि कह्यो, यातें रूपक अलंकार और बिहारी जू को नवला की नाभी पै जानु दै और मणि जटित अंगूठी पहिरे करसों कुच गहि सोइबो संभाव्यमान पद, ताको बाल्मीक कहै बिववटि सों निकसि मणि मंडित सुमेरु के शिखर पै कारो नाग के सोइबो करि बर्णन, यातें उत्प्रेक्षा अलंकार संकर ॥ २६ ॥

(लुप्तोपमा-रूपक संकर)

कीन्ही आजु आसन दुसासन शरासन सी,
गरे भुज पासन सों पकरि छबीली को।
'कालिदास' ललकि लपेटि लीन्हो दामिनि लौं,
स्यामघन जोघन सुबातन जसीली को।
गहि कै कठोर कुच तुंबन कनक रंगु,
चुंबन करत अंग अंग चटकीली कौं।
मैन मद झूमि झूमि तूल सम तूमि तूमि,
लेत सुख चूमि चूमि नायिका रसीली को ॥२७॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका के संभोग को बर्णन। नायक दुःशासन शरासन के तुल्य आसन करि अर्थात् दृढ़ आसन करि भुजपाशन

धूमधार = धुएँ का प्रवाह। बिथुरि = बिखरे हुए। कलित = युक्त। नवला = नवयुवती। बाम = बल्मीक, सर्प का कोटर ॥२६॥

शरासन = धनुष। [नायक के फन्दे में फँसी होने से दुःशासन शरासन की उपमा दी है अन्यथा टेढ़े तो सभी धनुष होते हैं।] तूल = रूई। तूमि तूमि = हाथ से मसक मसक कर ॥२७॥

सों गर में छबीली को पकरि कहैं गलबाँही दै ललकि अति प्रेम करि लपेटि लियो, स्याम घन मेघ जैसे दामिनी बीजुरी को अपने में निबद्ध करि लेय है। सुबातन कहैं मीठी मीठी बातन सों सरसता देखाय बश्य करि लियो, कठोर कुच गहि कै कनक रंग तुम्बन कहै तुम्बी फल के सदृश, यातें प्रौढ़ा नायिका ब्यंजित भयो। जाके अंग अंग की शोभा झलामलै होय है बार बार आलिंगन करि मैन काम मद सों झूम झूमि, तूल के तुल्य तूमि तूमि, नायिका रसीली को मुख चूमि चूमि लेय है। इहाँ दुशासन शरासन सी—पद में धर्मलुप्ता लुप्तोपमा और दामिनि लौं लुप्ता, कठोर कुच तुम्बन कनक रंग पद में रूपक संकर है ॥ २७ ॥

कवि—मुकुंद (उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमा संकर)

दंडक—रति बिपरीति मृगनैनी की बिराजै बेनी,
कनकलता पै यों भुजंगी लहरत है।
स्वेद कन गिरत कपोल तें 'मुकुंद लाल',
मानो तम देखि इंदु अमी छहरत है।
खुटिला समीप राजै लोल चलदल सम,
कंचन से तन प्यारी त्यों त्यों थहरत है।
नेजेबरदार दोऊ अंसनि लगाए मानो,
दुहूँ ओर मैन की फतूही फहरत है ॥२८॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। मृग के नैन कैसे नैन हैं जाके ऐसी जो नायिका, ताकी बिपरीत रति बिराजै है। कनक की लता पै भुजंगी के समान बेनी लहराय है। मुकुंद कवि की उक्ति—कपोल तें स्वेदकन अर्थात् श्रम वारि बिन्दु गिरत है, मानौ तम कहै राहुको देखि इन्दु चन्द्रमा अमृत को भय से उगिलत है। अभिप्राय यह है कि रतिश्रमजनित प्रस्वेद बिन्दु अधिक भयो है कपोलतें पसीजि द्रवै है। खुटिला करन फूल के समान भूषन बिशेष होय है ताके समीप लोल चंचल दल पत्र के सदृश कंचन कहै कुन्दन सों तन प्यारी नायिका त्यों थरथराय है। नेजेबरदार काम के बाके दोऊ अंसन कहै स्कंधमूल पै लगाए, मानों दूनों भाग में मैन की फतूही फहराय है। इहाँ मृगनैनी पद में उपमान लोप, कनक लता पै ज्यों भुजंगी लहरति है इस पद में कनकलता आधार, तासों नायिका की देह को ग्रहण भयो। भुजंगी

खुटिला = कान का एक आभूषण। नेजेबरदार = झंडा लेकर चलने वाला। मैन = कामदेव। फतूही = ध्वजा ॥२८॥

उपमान, यों वाचक, लहरायबो धर्म, बेनी उपमेय, चारों को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। नायिका के कपोल तें प्रस्वेद को गिरिबो संभाव्यमान पद, ताकों तम राहु को देखि चंद्रमा सों अमृत को झूरिबो करि वर्णन, यातें उत्प्रेक्षा। पुनः खुटिला समीप चंचल नेत्र को फरकिबो संभाव्यमान पद, ताकों मैन काम की फतूही कहै विजय फरहरा करि वर्णन कियो, यातें उत्प्रेक्षा संकर ॥ २८ ॥

कवि—सुखदेव मिश्र (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

सवैया—साँझ समै अलबेली तिया दियरा करिकै अपने घर आवै।
पौन बहै अतिही सियरो तब अंचल मैं 'सुखदेव' दुरावै॥
देखि उरोज सिरीफल दीपक आपने ही हियते ललचावै।
कीजै कहाँ गहिबे को नहीं कर याही ते मानहु सीस धुनावै ॥२९॥

टीका—साँझ समय अलबेली नायिका दीपक बारि अपने केलिमंदिर को आवै है। वा समै अति ही शीतल पवन बहै है, अंचल के आड़ में बुझि जायवे के कारन छिपावै है। श्रीफल उरोज कहै कुच को देखि दीपक अपने हृदय में ललचाय है अर्थात् अपने मन में पछिताय है कि हाय परमेश्वर हमको कर न दियो, नाहीं तो ऐसो अवसर पाय याको ग्रहण करि अपने मन को अभिलाष पूरो करते। कहा करों गहिबे को कर कहै हाथ नहीं है। याही तें मानो दीपक अपने शीश को धुनावै है अर्थात् सिर धुनि-धुनि पछताय है। इहाँ उरोज सिरीफल पद में रूपक और दीपक के शिर को हालिबो स्वतः सिद्ध संभाव्यमान पद, ताकों कुच गहिबो अफल को फलत्व करि वर्णन, यातें असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा अलंकार संकर ॥ २९ ॥

कवि—शिरोमनि (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

सवैया—है अति लोचन लज्जित आली के लाली रही लगि वोठन आधो।
भौंहनि भाय सुभाय 'शिरोमनि' कै मकरध्वज है शर साधो॥
होत इहै मुख और दुहूँ लट यौं उपमा जो उरोजनि बाँधो।
द्वै घट द्वै बिधु सिंधु सुधा भरि चंद कहार लै कामरि काँधो ॥३०॥

सियरो = ठंढा। उरोजसिरीफल = बिल्व फल के समान स्तन। कर = हाथ ॥२९॥

वोठन = ओठों में। आधो = आधी। कामरि = कँवरी। काँधो = कन्धे पर ॥३०॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। हे सखि आली के लोचन अति लज्जित हैं। और लाली कहे पीक लीक आधो ओठन पै लगी लखाय है। भौंह निभाय कहे नचनि शोभायमान होय है, मकरध्वज काम सर संधान कियो है, मुख दूनौं लट के मध्य और उरोजन को यों उपमा दरसाय है मानो द्वै चन्द्रमा द्वै घट में समुद्र सों सुधा भरि चन्द्रमा कहार अर्थात् जलवाहक कामरी काँधे पर लिये विराजे हैं। अभिप्राय यह है कि नायिका की लट छूटि उरोजन के ऊपर दुहूँ ओर परी है ताको लखि सखी तर्क करि सखी सों हास्य पूर्वक अर्थात् नायक सों भागे सूचक रूप दरसावै। इहाँ चंद्र कहार पद में रूपक और दोऊ कुच को सुधा पूरित घट करि संभावना, यातें उत्प्रेक्षा संकर ॥३०॥

कवि—लीलाधर (व्याघात-काव्यलिंग संकर)

दंडक—भूल्यौ दान लेबो और बंसी को बजैबो भूल्यौ,
भूल्यौ कुंज जैबो जहाँ कीन्हो जो सँजोग है।
'लीलाधर' लीलापथ देखत ही लीले लेत,
जमुना भई है जमप्रीति कहाँ रोग है।
तजी हम भूख प्यास नींद को न विसवास,
कूबरी करै बिलास बात या अजोग है।
आपु ह्वै हैं जोगी तब हम जोग लेहैं ऊधो,
होत कान्ह भोगी कहाँ हमैं जोग जोग है ॥ ३१ ॥

टीका—गोपिन की उक्ति ऊधो सों। आश्चर्य की बात है हे ऊधो बिहारी जू दान लेबो और बंसी को बजैबो भूलि गयो। वह कुंजहूँ को बिसारि दीनो जामैं हम लोगन के साथ सँयोग कहे रास कियो। लीलाथल जहाँ श्रीकृष्ण-चन्द्र लीला कीन्हीं है, वह स्थान बिलोकत ही लीले लेय है। जमुना जम सों प्रीति ठई क्यों न स्नेह करै वाकी तो भगिनि ही होय। और हम सब भूख प्यास तजि दियो और नींद को कहा विश्वास, जब भोजनादि करि सुचित होय है तब निद्रा परै है। कहा कहौं हमको दुःख और कूबरी बिलास करै, यह अजोग की बात है। तासों हे ऊधो यदि आपहू जोगी ह्वै हैं तब हमहूँ जोगिनि ह्वै है। यदि कान्ह भोगी होत हैं तो तुम उनके सखा हौ, साँची कहो भला तौ योग हमैं जोग है कि नहीं है अर्थात् नहीं है। इहाँ आपु ह्वै हैं जोगी तब हम जोग लैहैं ऊधो, इहाँ कार्य्य विरोधिनी क्रिया है, यातें व्याघात अलंकार और निज जोगिनी न होयबे के अर्थ कान्ह भोगी है तो हमैं जोग-जोग है यह काकु करि अर्थात् नहीं है समर्थन कियो, यातें काव्यलिंग संकर है ॥३१॥

कवि—कविदत्त (प्रतीप-सामान्य संकर)

सवैया-हीरन के मुकुतान के भूषन अंगन लै घनसार लगाए।
सारी सफेद लसै जरतारी की सारद रूप से रूप सोहाए॥
प्रीतम पै चली यौं 'कविदत्त' सहाय ह्वै चाँदनी याहि छपाए।
चाँदनी को यहि चंदमुखी मुख चाँद के चाँदनी सों सरसाए॥३२॥

टीका—नायिका को अभिसार नायक पै। हीरन और मुकुतान के भूषन अंगन में धारण करि, घनसार कपूर मिश्रित स्वेत चन्दन को अंगराग लगाय, स्वेत सारी पहिरि, शारद कहै शरत्कालीन चन्द्रमा के रूप सों रूप शोभित होय है, यहि भाँति अपने को सँवारि सिंगारि प्रियतम पै चली। चाँदनी को सहाय पाय वाही रूप में मिलि गई और चाँदनी याको भी छिपायो। नायिका चन्द्रमुखी के मुख चन्द की चाँदनी प्रसिद्ध चन्द्रमा की चाँदनी को सरसायो। अभिप्राय यह कि चन्द्रमुखी मुखगत मरीचिका और प्रसिद्ध चन्द्रगत चन्द्रिका एकत्र ह्वै एक अपूर्व अतिशय प्रकाश प्रगटित कियो। इहाँ नायिका को चन्द्रमुखी करि वर्णन। ताकी चन्द्रिका चन्द्रचन्द्रिका को सरसायो यह उपमानोपमेय वैषम्य अर्थात् चन्द्र चन्द्रिका उपमान सों चन्द्रमुखी मुखचन्द्रिका उपमेय को उत्कर्षता देखायो, यातें प्रतीप अलंकार। और चन्द्रमुखी नायिका स्वेत शृंगार करि नायक के पास चली चन्द्रमा की चन्द्रिका मैं मिलि गई पृथक् नहीं ह्वै सकै, यातें सामान्यालंकार संकर और शुक्लाभिसारिका नायिका॥३२॥

कवि—नेवाज (स्वभावोक्ति-रूपक संकर)

सवैया-पीठि दै पौढ़ि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोटत।
बाँहन बीच हिए कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि 'नेवाज' पिया कर सों कर दै निज वोर करोटत।
नीबी विमोचत चौंकि परी मृगछौन सी बाल बिछौना पलोटत॥३३॥

टीका—नायक की ओर पीठि दै कपोल को दुराय पौढ़ि रही है। कोटि-कोटि भाँति नायक अपने अभिमुख कियो चाहै, नहीं होय है। और बाँहन के

जरतारी = सोने का काम की हुई॥ ३२॥

पौढ़ि = सोई है। दुराय = छिपाकर। पोटत = फुसलाते हैं। बाहन = बाँहों को। वोर = ओर। करोटत = करवट बदलवाता है।

१—'बिछौना पलोटत' इस पद का टीकाकार ने जो अर्थ किया है उसकी अपेक्षा 'बिछौने को पलोट कर = अपनी ओर मोड़कर, अपने को ढकने की चेष्टा करती है।' यह अर्थ स्वभावोक्ति के अधिक अनुकूल पड़ता है॥ ३३॥

बीच दिए अर्थात् दोऊ भुज के बीच कुच को दुराय मन ही मन में सोचि रही है। नायक सोवती जानि हाथ सों हाथ दै अपनी ओर करोटि रह्यो और नीवी को खोलने लग्यो। वाही समय नायिका चौंकि परी, मृगछौना के समान बिछौना पै लोटि रही है अर्थात् बाल्य भाव और लाज बश बिलखाय रही है। इहाँ मृगछौना सों रूपक और लोटिबो नवोढा को स्वभाव ही है, बश नहीं होय है, यातें स्वभावोक्ति अलंकार संकर और नवोढा नायिका ॥३३॥

कवि—दास (उत्प्रेक्षा-रूपक संकर)

धूसरितै धूरि मानों लपटी बिभूति भूरि,
मोति माल मानहुँ लगाए गंग गलसों।
बिमल बघनहाँ बिराजै उर 'दास' मानो,
बाल बिधु राख्यौ जोरि द्वै कै भाल थल सों।
नीलमनि गूँदे मनिवारे आभरन कारे,
डौंरू कर धारे जोरि द्वैक उत पलसों।
ताके कमला के पति गेह जसुदा के फिरैं,
छाके गिरिजा के ईस मानो हलाहल सों॥ ३४॥

टीका—श्री कृष्णचन्द्र की बालावस्था को वर्णन। धूसरितधूरि अर्थात् धूरि में लोटे हैं मानो बिभूति अंग में लगाये हैं और मोतिन की माल पहिरे मानो गंगा जी बिराजती हैं। बघनहीं पहिरे बाल बिधु चन्द्रमा के समान बिराजै हैं। नीलमनि गूँदे हैं मानो मनि वारे आभरन कारे कहैं सर्पगन हैं। द्वैक उत्पल कमल जोरि के डमरू बनाय राख्यो है। कमला लक्ष्मी के पति साक्षात् बिष्णु बाल रूप धरि जसुदा के घर में बिहरै हैं, मानो गिरिजा पार्वती के स्वामी संभु बिराजै हैं। इहाँ बिभूति आदि करि धूरि आदि लगाये हैं महादेव करि संभावना, यातें उत्प्रेक्षालंकार और नीलमनि गूँदे मनि वारे आभरन कारे इस पद में रूपक, संकर है ॥३४॥

कवि—देव (संदेह-भ्रम संकर)

दंडक—सूझत न गात बीति आई अधरात अरु,
सोए सब गुरजन जानिकै बगर के।

१—नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में इस पद्य के भी निम्न पदों का पाठ भिन्न है—बघनहीं-बघनहा। नीलमनि गूँदे-नीलकुल गूँदे। आभरन-अभरन।

बघनहीं=बाघ के नख का बना हुआ एक आभूषण। मनिवारे=सर्प ॥ ३४ ॥

छपिक छबीली अभिसार को केवार खोले,
खुलते सुगंध चहुँ चंदन अगर के ॥
'देव' कहै कुंजन तें भौंर पुंज गुंजि आए,
पूछि पूछि पाछे परे पाहरू डगर के।
देवता, की दामिनी, मसाल है, कीं जोति जाल,
झगरो मचत जागे सगरो नगर के ॥३५॥

टीका—ऐसी अँधियारी निशा कि जामें गात भी नहीं सूझि परै है। आधी राति बीत गई, छबीली इत-उत बिलोकि गुरजन को सोवत जानि और छपि कै अभिसार के अर्थ केवार खोलि कै चली। खुलते ही वाके अंग को और चन्दन अगर को सुगंध चहूँ ओर फैलि गयो। यह अपूर्व परिमल पाय भौंर कुँज तें निकसि वाके पाछे-पीछे गुंजार करि रहे हैं। और भ्रमर की झनकार सुनि पाहरू डगर के उठे, यहि भाँति परस्पर कहि रहे हैं कि यह देवता चली जाय है कि दामिनी है, किं वा मसाल होय अथवा जोति को जाल एक ठौंई ह्वै गयो है, यह झगरो मचते ही सब नर नारी नगर के जागे। इहाँ भ्रमर जान्यो कि कौनो लता की सुगन्ध बायु के साथ इहाँ आवत है, इस हेतु मधुकर पुंज गुंजरते चले, यातें भ्राँतिमान् अलंकार और देवता की दामिनी आदि करि संदिग्ध अनुमान। सब पाहरू परस्पर मिलि झगरो कियो यथार्थ न ठहरायो, यातें सन्देहालंकार संकर, अभिसारिका नायिका ॥३५॥

कवि—आलम (रूपक-उत्प्रेक्षा संकर)

दंडक—हिए हूक हूल सोहै औधि हूँ न आए हरि,
हेरि मग हारी तातें भई तन छीनी है।
'आलम' सुकवि थकी बिषम बयारि लागी,
मानि मन सकल सकेलि बिथा दीनी है।
उमसि उसासन सों पाँसुरी उकसि आई,
बीच बीच कहूँ अँसुवान भरि लीनी है।

गुरजन = गुरुजन। बगर के = प्रासाद के, घर के। छपिकै = छिपकर। पाहरू = पहरेदार। डगर = मार्ग। सगरो = सभी लोग ॥३५॥

हूक = कोकिल के शब्द आदि कामोत्तेजक ध्वनि को सुनकर या ऐसे किसी पदार्थ को देखकर हृदय में उठनेवाली टीस। हूल = शूल। बिषम बयारि = शीतल, मन्द, सुगन्ध, त्रिविध हवा। उमसि = पसीने से तर होने से।

बिरह के बीज बर सलिल मैं सींचि हूए,
तन भूमि मानो काम काछी कैसी कीनी है ॥३६॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। नायिका के हृदय में कोकिल को कूक शूल के समान लगै है, अवधि बांद के ताहू में हरि न आये। हेरि-हेरि कहै बिलोकि बिलोकि कै हारि गई, तातें अधीर है दूबरी भई। बिषम बयारि कहैं त्रिबिध समीर लागै है, याते थकि गई। सम्पूर्ण संकेत स्थल केलि कलोल की भूमि अतिशय व्यथा दीनी है। उसासन सों उमसि पाँसुरी वाकी उकसि आई। बीच-बीच में कहूँ आँखिन में आँसू भी भरि लीनी तासों यहि भाँति लखाय परै है कि काम काछी के प्रकार तन भूमि में बिरह के बीज बोय और सलिल सों सींच कै हरा कियो है। इहाँ बिरह को बीज करि आँसू सलिल सों हरा करि वर्णन, यातें रूपक अलंकार और काम को काछी करि संभावना यातें उत्प्रेक्षा अलंकार संकर ॥३६॥

कवि—हरजीवन (रूपक-विभावना संकर)

सवैया—'हरजीवन' नेह भरी न रहै घर जी मनमोहन के गरजी।
गरजी सुनिकै उनकी मुरली ततकाल हिए मैं लग्यो सर जी॥
सरजीवन देहन ऐसी परी सु मनो धन प्रान गये धर जी।
धर जीभ गई लटराय तऊ मुखतें निकसे हर जी हर जी॥३७॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की प्रेमासक्तता वर्णन करै है। हरजीवन कवि की उक्ति। नेह भरी नायिका प्रेम बश घर में नहीं रहै है—जीव मन मोहन कहै मन के मोहि लेन हारे श्री कृष्णचन्द्र के गरजी भये। उनकी मुरली गरजी सुनि कै कहै मेरे अर्थ वह अति व्याकुल और उत्सुक है इस हेतु ततकाल हृदय में शर है लगी। देह में इस भाँति सरजीवन कहै विशल्य-करणी औषध है रही मनो धन और प्रान धरि कहै बँधि ऐसे गए। जीभ धरि-कहै दाबि कै लटराय गई, तऊ मुख तें हर जी हर जी कढ़यो। इहाँ मुरली को शर करि वर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार। और सरजीवन देहन ऐसी भई, इहाँ सरजीवन व्यथा हरन हारो और जीवन देन हारो तासों व्यथा की प्राप्ति और जीवन में बाधा यह बिरुद्ध तें कार्य्य की उत्पत्ति, यातें विभावना अलंकार संकर है ॥३७॥

उसासन सों = दीर्घ निःश्वासों से। पासुरी उकसि आई = पसलियाँ उभड़ आईं। काम काछी = कामदेव रूप कोइरी (तरकारी बोने वाला) ॥३६॥

जी = मन। गरजी = इच्छुक। सरजीवन = घाव को भरने वाली संजीवनी। लटराय = लड़खड़ा ॥३७॥

कवि—घनस्याम (लेश-रूपक संकर)

सवैया—बँसुरी बन बाजत है जबहीं तबहीं छबि जात हिए पँसुरी।
पसु री न चरै तृन ताम कहूँ 'घनस्याम' रहै रसना रसुरी॥
रसु रीति तजै घर की घरनी बरुनी सर से बरसै अँसुरी।
अँसु री ब्रज बाल बिहाल भई मनमोहन सों न कछू बसु री॥ ३८॥

टीका—सखी परस्पर श्री कृष्णचन्द्र के बंशी के दुःख दायित्व को बर्णन करै है। बन में मोहन की बँसुरी जबही बजै है वाही छन हृदय में गड़ि जाय है और औरही रंग ह्वै जाय है। पँसुरीन में पीड़ा होने लगै है। पशु भी जो रस को नहीं जानै है सरस ह्वै देह की सुधि बिसारि भूख-प्यास त्यागि तृन को नहीं चरै है। घनस्याम श्री कृष्णचन्द्र रसना को रस ह्वै रहते हैं अर्थात् उनहीं को नाम रट्यो करै हैं। घर की स्त्री रस रीति अपने पति के साथ भोगादि सुख छाड़ि बरुनी सर सों आँसू बरसावै है। ऐसी बृजबाल बिहाल भई, हे सखि मनमोहन सों कछू बश नहीं चलै है, कहा कीजिये। इहाँ बरुनी सरसों बरसै अँसुरी—में बरुनी को सर करि बर्णन कियो, यातें रूपक अलंकार और वंशी को बाजिबो और सबके कानन में सुख देबो गुण सों गोपिन को दुःख देबो है दोष भयो, यातें लेश अलंकार है॥३८॥

कवि—शोभनाथ (लोकोक्ति-रूपक संकर)

सास के त्रास उसास भरो मन ही मन माँझ मसोसनि मारिबो।
घेरे रहै घर बाहिर लौं ननदी कितहूँ न कितौ पचिहारिबो॥
'नाथ' सुजान वै बेपरवाह पहार हमैं निज पौरि बिहारिबो।
फेरि बनै केहि छंद सखी नँद नंदन को मुखचंद निहारिबो॥३९॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों। हे सखि सासु के त्रास कहैं भय सों ऊर्ध साँस भरा करौं, कौनेउ प्रकार को सुख नहीं पावती हौं, मन ही मन भीतर मसूसनि को मारिबो पर्‌यो। ननदी ऐसी हठीली, घर बाहिर लौं घेरे रहती हैं। कितहूँ न कितौ पचिहारती हौं। मेरे नाथ सुजान बेपरवाह मेरी दशा कों नहीं देखै हैं। अपने पौरि ताईं को बिहार करिबो हमैं पहार है। फेरि हे आली नंदनंदन के मुखचन्द को निहारिबो हमैं कैसे बनै। इहाँ नंदनंदन को

पँसुरी = फैलती, आ जाती है। तृनताम = घासपात। रसनारसु = जिह्वा का स्वाद। बरुनीसर = आँखें। अँसुरी = आँसू। अँसु = ऐसी॥ ३८॥

उसास = निःश्वास। मसोसनि = आन्तरिक व्यथाओं से। पचिहारिबो = परेशान होना। पौरि बिहारिबो = द्वार तक घूमना। छंद = प्रकार॥ ३९॥

मुखचंद इस पद में रूपक अलंकार और सास कै त्रास आदि लोक कहावत प्रसिद्ध। अभिप्राय यह कि यदि नायिका स्वच्छंद भी होय, तऊ सखी से अपनी पराधीनताइए कहती है यह लोक प्रसिद्ध, यातें लोकोक्ति अलंकार ॥३९॥

कवि—शोभ (भ्रम-रूपक संकर)

कवित्त—आली बनमाली पै सिधारी प्यारी राधे आज,
सघन तमाली झुकी झिलमिली जाती है।
अंग ही के सहज सुगंधनि अनंद मई,
भौरैं जे अलिंदन की रंग रली जाती है।
ठौर ठौर मोरनि को सोर दरसात 'शोभ',
भोरे बेनी ब्याल के नजरि छली जाती है।
चाहि चाहि चंदमुखी चाँदनी चहूँघा चली,
चंचल चकोरनि की चुँगै चली जाती है॥४०॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों। हे आली बनमाली श्री कृष्णचन्द्र पै प्यारी राधा अभिसार के अर्थ चली। सघन तमाली झुकि कै झिलमिली जाती है कहै तमालन की अवली में मिली जाय है। अंग के सहज परिमल सों आनंद मई है, ताकों पाय मलिंद भ्रमरन की भीर पीछे गुंजार करती है। और ठौर ठौर मोरन को सोर मचि रह्यो है। भ्रम सें बेनी को ब्याल जानिकै उनकी नजरि छली जाय है। अभिप्राय यह है कि मोरगन बेनी को ब्याल जानि पीछे पीछे गहिबे के अर्थ चले जाँय हैं। चन्दमुखी नायिका के मुखचंद की चाँदनी को चाहि चाहि चकोरगन चंचल ह्वै चारयो अलंग से दौरि कै चंगुल चलाय रहे हैं। इहाँ बेनी को ब्याल करि बर्णन और चन्दमुखी पद में रूपक अलंकार और मोरन को बेनी देखि ब्याल कहै सर्प को भ्रम भयो, चकोरन को मुख देखि चन्द्रमा को भ्रम भयो, यातें भ्रांतिमान् अलंकार संकर, अभिसारिका नायिका ॥४०॥

कवि—नंदन (रूपक-विभावना संकर)

कबित्त—नई भई वेदन निवेदन की गई भई,
जई भई जोग की सँजोग स्वपने भए।

सघन तमाली = घनी तमाल की झाड़ियों में। अलिंद = भौंरे। भोरे = भोले-भाले ॥ ४० ॥

तन भए तूल औ अतन भयो ज्वाला मूल,
सोम भयो शूल सो तपन तपनै भए।
गोकुल के चंद 'कवि नंदन' उदास भए,
वै वन बिलास निखिद्योस जपने भए।
लीन भए लोचन अधीन भए रोम रोम,
दीन भए प्रान पै न कान्ह अपने भए॥ ४१॥

टीका—नायिका प्रीति करि पछिताय है, ताकी उक्ति। यह बेदन कहै पीड़ा नई भई है। निवेदन कासों करों, करिबे के योग्य नहीं। जोग की जड़ अर्थात् निर्वेद होयबे के कारन अब सब पदार्थ तुच्छ ही देखि परत है। संजोग नायक को, स्वप्न भयो। तन कहै देह तूल भये, अतन काम ज्वालमूल अग्नि को रूप भयो अर्थात् ऐसो दुःखदाई भयो और तन को जरायबेवारो कि अग्नि याही सों उत्पन्न भयो है। सोम चन्द्रमा शूल और तपन सूर्य्य ताप करनहारो भयो। गोकुल के चन्द्र श्री कृष्णचन्द्र उदास कहै दीन भए और वह वन को बिलास जामें अनेक प्रकार को सुख अनुभव कियो, राति-दिन जपने कहै चरचा ही करिबे को रहे। लोचन कहै नेत्र बिलोकते-बिलोकते लीन कहैं पलकैं परि गईं। रोम-रोम अधीन भए। प्रान दीन कहै दुःखी भए। पै कान्ह तऊ अपने नहीं भए। इहाँ तन भए तूल आदि में रूपक अलंकार और जाके कारन इतनो दुःख उठायो उचित है कि फेरि ऐसो बियोग जनित दुःख न भोगिबो परै, यह प्रतिबंधक के रहिबे हू पर कान्ह अपने नहीं भए, कार्य्य की उत्पत्ति भई, यातें बिभावना संकर और यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण दुःख को कारन अधिक मानिए, ताहू पै कार्य्य की उत्पत्ति, तौ बिशेषोक्ति संकर, परंतु इसमें और उसमें कछु थोरा ही सूक्ष्म भेद है नहीं तो एक ही है॥४१॥

कवि—सदानंद (रूपक-दीपकावृत्ति संकर)

दंडक—झनक मनक जोती नासिक बनक मोती,
'सदानंद' को ती तिय तेरी तीर तोरदार।
रतन के कानन तरौना इंदु आनन पै,
खुली है अलक मोती मालनि मरोरदार।
उन्मद उरोजन पै कैसी लसी उरबसी,
तैसी कसी कंचुकी कसुंभी रंग वोरदार।

बेदन = वेदना, पीड़ा। गई = समाप्ति। जई = अँकुर। तूल = रूई। अतन = कामदेव। ती = स्त्री, नायिका॥ ४१॥

छोरदार अंचल की ओट दुरे दौर दार,
करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार ॥ ४२ ॥

टीका—सौन्दर्य्य वर्णन। जाके अंग की जोति झनक-मनक कहै झलझलाय रही है। नासिका में सुथरी मोती पहिरे है सखि नंद की तिय जसोदा तेरी तीर तोरदार अर्थात् तेरे निकट औरन की सुन्दरता को तोरि डारै है। अभिप्राय यह है कि तेरी लोनाई देखि और कान्ह को लावण्य पेखि मन में बिचारे है कि वह तौ मेरे कन्हैया ही के जोग्य है। इस हेतु औरन की सुन्दरता तेरे आगे वारि डारै है। रत्न जड़ित तरेवना कानन में सोहैं। चन्द्र-बदन पै खुली अलकैं झलकै हैं और मोती की माला मरोरदार शोभित होय है। उन्मत्त उतंग उरोजन पै कहा उरवसी शोभा पाय सकै है। तैसोई कुसुंभ रंग में रंगी कंचुकी कैसी शोभा देय है। छोरदार कहै किनारी टँक्यो अंचल की ओट दुरि बड़े दीरघ और कोरदार तेरे नेत्र कैसी कजाकी करैं हैं अर्थात् जाकी ओर चितवै हैं वह लोट-पोट ह्वै घायल गिर जाय है। वाकौं तूँ सहजै ही बस्य करि लेय है। इहाँ औरदार-कोरदार आदि पद के निवेश तें दीपकावृत्ति अलंकार, इन्दु आनन पद में रूपक अलंकार संकर है ॥४२॥

कवि—भूधर (रूपक-लुप्तोपमा संकर)

जोबन उजारी प्यारी बैठी रंगरावटी मैं,
मुख की मरीची सो दरीचो बीच झलकैं।
'भूधर' सुकवि सोहैं भौंहैं मन मोहैं खरी,
खंजन सी आँखैं मनरंजन सी पलकैं।
सीस फूल बेना बेनी बीर और बंदनी की,
चंदन की चरचा की चारु छबि छलकैं।
कोर वारी चूनरी चकोर वारी चितवनि,
मोर वारी बेसरि मरोरवारी अलकैं ॥ ४३ ॥

टीका—कवि प्रौढ़ोक्ति अथवा काहू उपपति की उक्ति सहृदय सौं। जाके जोवन की उजारी कहै दीप्ति झलामलैं होय है। ऐसी नायिका बनि ठनि

तरौना = ताटंक, कर्णफूल। मरोरदार = घुँघरारी। उरबसी = स्वर्णमाला। दौरदार = भ्रमणशील। कजाकी = लूटमार ॥ ४२ ॥

रंगरावटी = केलि गृह। मरीची = किरणें। दरीची = खिड़की। बेना = उशीर। बेनी = चोटी। बीर = कान का एक आभूषण। बंदनी = रोली। मोर = मोड़ ॥ ४३ ॥

रंगरावटी में बैठी है। जाके मुखचन्द्र की मरीची कहैं किरणें दरीची के बीच झलकें हैं। शोभित भौंहैं रसिकन के मन को मोहैं। आछी खंजन सी आँखें मनरंजन कहै मन के रंग देनहारी जाकी पलकैं हैं। सीस के ऊपर फूल, बेना बेंदा और बेनी और बंदनी की सिंदूर माँग में बिराजै है। चंदन की चरचा कहै अंगराग लगाये जाकी चारु कहै रमणीय छवि छलकै बाहर प्रसिद्ध देखि परै है। कोरवारी कहै किनारी गोटा पट्टादार चूनरी ओढ़े है। चकोर कैसी चितवनि, मोरवारी कहै मोर पंख लगी बेसरि और मरोरवारी जाकी अलकैं शोभा देय हैं। इहाँ जोबन उजारी, खंजन सी आँखैं, इसमें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार और शीस फूल बेना बेनी पद में रूपक अलंकार संकर है ॥४३॥

कवि—कासीराम (लुप्तोपमा-संदेह संकर)

नागरि गई ही घाट गागरि भरन काज,
हाटक सो तन ताको कैसी नीकी खरी है।
तब तुम एक पल ताकि रहे 'कासीराम',
ता घरी ते वह तौ घरीसी करि घरी है।
हाथ पाँव टारति न अँचरा सँभारति न,
आँखिन उघारति न यौं अचेत परी है।
ए हो बनवारी जू तिहारी चितवनि माँझ,
बिष है कि सुरा है कि जंत्र है कि जरी है ॥ ४४ ॥

टीका—सखी की उक्ति श्री कृष्णचन्द्र सों, नायिका की दशा बर्णन करै है। नागरी कहै अति चतुरी मेरी सखी गागरि भरिबे के अर्थ घाट पै गई [हु] ती, जाकी हाटक कहैं सोना ऐसी देह तुमहूँ जानते हौ कि वह कैसी खरी कहै सुन्दरी है। तब तुम वाकों एक पल लौं टकटकी लाय ताकि रहै, वाही घरी सौं वह घरी सी कहै घरी भरन हारो सी, घर में वाकी घरी है रही है। हाथ-पाँव नहीं टारती, अँचरा को नहीं सँभारती, आँखिन कों नहीं उघारती, यों अचेत है परो है। एहो बनवारी जू तुम्हारी चितवनि के मध्य बिष है, किंवा सुरा कहै मदिरा है, किंवा कौनो जंत्र है, अथवा कौनो जरी कहै बूटी औषधि है, जो तुम वाकों यहि भाँति करि दियो है। इहाँ हाटक सों तन, इस पद में हाटक उपमान, तन उपमेय, सों वाचक है, धर्म को लोप है, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार और तुम्हारी चितवनि में बिष है कि, सुरा है कि, जन्त्र है कि, जरी है यह संदिग्ध बचन, यातें सन्देहालंकार संकर ॥४४॥

घरी = समय। घरीसी = घड़ियाँ गिनने वाली सी। घरी है = घर में पड़ी है। जरी = जड़ी-बूटी ॥४४॥

कवि—सूरति (संदेह-उल्लास संकर)

दंडक—कैधों यह केश वेश रस के नरेश वाके,
देश की सँदेश भूमि सोभा रस भीनी है।
कैधों यह मदन की पाटी मंत्र पढ़िबे को,
'सूरति' सुकवि बनी हाटक नवीनी है।
जोबन के मंदिर की भीति है सुढार कैधों,
राज रतिराज रुचि सों बनाय कीनी है।
येरी मेरी तेरी यह पीठि नेकु डीठि परी,
देखत ही ईठि सबही को पीठि दीनी है ॥ ४५ ॥

टीका—नायक की उक्ति नायिका सों। अय प्यारी कैधों यह तेरी पीठि केश वेश जो कि इस शृंगार के नरेश राजा हैं ताके देश की संदेशभूमि है। अर्थात् जो कोई याकों देखै है तब रसनिमग्न है यह अनुमान करै है कि यदि यही ऐसी शोभा धारन करती है तो या पै बिलास करनहारे केश के लावण्य कों कहा कहैं, यातें संदेशभूमि कह्यो। शोभारस सों भीनी है अथवा मदन की मंत्र पढ़िबे की पाटी है। सूरति कवि की उक्ति—हाटक कहैं सोना नवीन की बनी है कहै कुंदन रंग है। कैधों जोबन कहै जुवा अवस्था सुढार चिकनौंही दीवार है। अथ राज रुचि सों रतिराज नीकी भाँति बनाई गई है। एरी प्यारी मेरी दीठि जब सों तेरी पीठि पै परी है तब सों और रमणीन की ओर पीठि ही देय है। अब काहू और सुन्दरीन को नहीं निहारै है, वाके आगे सिगरी बनितान की सुंदरता फीकी देखाय परै है। यहाँ कैधों पद प्रकासित केश की शोभा की भूमि आदि संदिग्ध वर्णन कियो, निश्चय नहीं ठहरायो, यातें संदेहालंकार और वाकी पीठि देखि दीठि को फेरि औरन को न देखिबो दोष भयो, यातें उल्लास अलंकार संकर और अपनी बश्यता नायिका को देखावै यह व्यंग्य है ॥४५॥

कवि—कृष्न (भ्रम-संबंधातिशयोक्ति संकर)

दंडक—कूरम कलश महाराज जयसिंह फैलो,
रावरो सुजस सुरलोक में अपार है।
'कृष्न कवि' ताके कन सुंदर जलज जानि,
सुरन की सुंदरीन लीन्हो भरि थार है।

पाटी = तख्ती । सुढार = सुडौल, सुन्दर । राज = स्थपित, बढ़ई । रतिराज = कामदेव । ईठि = इष्ट, प्रिय ॥ ४५ ॥

तिनहीं के संग को सरस तेरो गुन लैकै,
हार पौहिबे को उन करती बिचार हैं।
मोती जो निहारै कहूँ रंध्र को न लवलेश,
गुन को निहारे कहूँ पावती न पार हैं ॥ ४६ ॥

टीका—कूरम जाति विशेष महाराज जैसिंह को सुजस बरनन है। कृष्ण कवि कहै है—जलज कहै मोती जानि सुर कहै देवन की स्त्री थार में भरि लईं, भ्रम भासित भयो, यातें भ्रांतिमान् अलंकार। तिन ही के संग तिहारे जो सरस गुन हैं सो लै कै हार पोहिबे को बिचार करती हैं। गुन सूत, गुन विद्यादिक एक शब्द को द्वे अर्थ, यातें श्लेष अलंकार। मोती जो निहारती है तौ रंध्र कहे छिद्र को लवलेश नहीं अरु गुन को जो निहारती हैं पार नहीं पावती हैं, अजोग जोग कथन तें संबंधातिशयोक्ति अलंकार ॥४६॥

कवि—गंग (रूपक-लुप्तोपमा-उल्लेख संकर)

दंडक—तारापुर प्रबल पठान भूमि भारी भीर,
भीम सम भिरो रन भावसिंह मिरजा।
भभकि भभकि घाय कूप सो भरत घट,
भारी भारी बीर मारे रन पाय खिरजा।
लोहू की नदीन 'गंग' हाथी धारा लोथ बहै,
जोगिनी से जोगिनी पुकारै पार तिरजा।
हीरन के हार बर वारती वरंगना लै,
मुंडमाल हर गजमोती लै लै गिरिजा ॥ ४७ ॥

॥ इति श्री दिगविजयभूषणनामकग्रंथे संकरालंकारवर्णनं
नाम अष्टमः प्रकाशः ॥ ९ ॥

टीका—तारापुर नगर के पठान के प्रबल भीमसम भिरो। पठान उपमेय, भीम उपमान, रूपक। भभकि घाय कूप सो भरत घट, यातें घाय उपमेय, भरत धर्म, सो बाचक, घट उपमान बाचक पूर्णोपमा अलंकार। हीरन के हार वारती वरँगना लै। अरु मुंडमाल हर अरु गजमोती की माल लैकै पारवती। एक को बहुत लोग बहुत जानै, तहाँ दूसरो उल्लेखालंकार ॥४७॥

इति श्री दिग्विजयभूषणनामक-ग्रंथे टीकायां संकर
अलंकार वर्णनं नाम अष्टमः प्रकाशः ॥८॥

कूरम कलश = कछवाह वंश में श्रेष्ठ। पौहिबे = गूँथने के लिये। गुन = तागा, डोरा। भभकि = उबल कर ॥ ४६ ॥

नवमः प्रकाशः

।। अथ अक्रम अलंकार संसृष्टि[1] बरनन ।।

दोहा—अंत अलंकृत प्रथम लखि, प्रथम अलंकृत अंत।
ताहि अक्रम संसृष्टि कहि, जे कवि मो मतिमंत ।। १ ।।

टीका—अथाक्रमसंसृष्टि-अलंकारवर्णनम्। जामें क्रम न लखाय परै अर्थात् कहूँ और अलंकार होय और अन्यत्र और ही होय, आदि अंत को विचार न होइ ताहि अक्रम संसृष्टि कहै हैं ।।१।।

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(रूपक-विशेषोक्ति-भेदकातिशयोक्ति-यथासंख्य)

दंडक—साधन अगाधन की बरषा बरसिहारो,
जरनि जुड़ानि न त्रिसानी कछु बात है।
केती अनाकानी ठानी जानी जान पनी तेरी,
सीसदान मान लीन्हे तऊ अठिलात है।
नैनन तें औरै 'बृज' बैनन तें औरै रंग,
अंगन प्रसंगन तें औरै दरसात है।
खाए बबरात, एक पाए बबरात, एक
आए बबरात, तो मैं तीनों अवदात है ।। २ ।।

टीका—दूती को बचन नायिका सों। मान करि नायिका रूठि बैठी ताके मनायबे अर्थ दूती बुझावती है। साधन अगाधन कहै मनायबे की अनेक

१—संसृष्टि अलंकार में भी संकर की भाँति दो या अधिक अलंकारों का मिश्रण ही होता है अन्तर केवल इतना ही है कि संकर में वे विभिन्न अलंकार परस्पर सापेक्ष होते हैं जैसा पृ० ३७ की टिप्पणी में दिखाया गया है, किन्तु संसृष्टि में एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सब निरपेक्ष रहकर पृथक् पृथक् पदों में स्वतन्त्र रूप से प्रदर्शन करते हैं। संसृष्टि ३ प्रकार की होती है—१-केवल शब्दालंकार। २-केवल अर्थालंकार। ३-शब्दार्थालंकार।

जरनि = जलन, ताप। जुड़ानी = शान्त हुई। त्रिसानी = समझ में आयी, वश चला। पनी = प्रतिज्ञा। अँठिलात = गर्व करती है। अवदात = चमकते, दीखते ॥ २ ॥

उपाय करि हारी, मनायबे की झरि बाँधि दई, ताहू पै तेरो मन न पघिल्यो। और तेरी जरनि न जुड़ानी, न मेरी बात तोको बिसानी कहै तेरे मन में न बैठ्यो। केती अना-कानी तैं ठानी। मोको जानि पर्‍यो कि यह तेरे बान ही में परी, पै तू अठिलाय है। तेरे नैनन तें कछू और ही, बचनन तें कछू और ही, रंग अंग के प्रसंगन तें अंग-अंग में कछू और देखाय परै है। एक मद के खाये बौराय हैं। एक कवन धन, ताके पाये बौराय है और एक आए कहै जोबन के आए बौराय है। जग में तेरे तीन्यों लखाय परै है कहै—जोबन, धन, मद, यह तीन्यों तोमें देखाय परै है। साधन कारण, [तें] जरनि कार्य न भयो, तातें विशेषोक्ति अलंकार, और नैनन तें औरै, 'बृज' बैनन तें औरै पदमें कि मान के पूर्व तेरे नैन बैन कछू और ही ढंग के रहे अब कछू और ही प्रकार के लखात हैं। नैन टेढ़े, बैन व्यंग्य जुत, अंग अंग मान व्यंजक दरसाय हैं, या तें भेदकातिशयोक्ति अलंकार और जोबन धन मद के मादकता को निषेध करि यामें नियमन अर्थात् उन्मादकता या ही में रह्यो अन्यत्र कथन मात्र रह्यो, यातें परिसंख्या अलंकार। अथवा नैन अरुन ते मद पाये, बैन ते कुटिलता धन पाये, अंग ते जोबन आगम, तातें यथासंख्य अलंकार ॥ २ ॥

(पूर्णोपमा-असंबंधातिशयोक्ति-रूपक-विभावना)

सुंदर—जाइ न जात नगीच भट्ट पट वोट किए तन ताप चढ़ै।
तेल फुलेल न भावत भूषन देह दशा दुति दीप बढ़ै ॥
देखे बिना 'बृज' चंदकला चख चारु चकोर लौं मोह मढ़ै।
कोकिल कंठन से 'बृज' मंजुल चातिक के कल बोल कढ़ै ॥ ३ ॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की बिरह दशा वर्णन करै है। वाको निकट नहीं जायो जाय है। हे भट्ट पट कहै बस्त्र के ओट हूँ किए पै देह में ताप चढ़ि आवै है। जो कोई सखी तेल फुलेल देय हैं वाको नहीं भावै है। भूषन की रुचि नहीं करै है। देह दशा की शोभा दीप के समान बढ़ै है। बृजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र के देखे बिना नेत्रन को चकोर के समान मोह सों मढ़ै है। वाके कोकिल कंठ सों चातक को कल बोल कढ़ै है अर्थात् पीव कहाँ, पीव कहाँ यह राति दिन रट्यो करै है। इहाँ चकोर उपमान, चख उपमेय, चन्द्रकला देखे बिना मोह को मढ़िबो साधारन धर्म, लौं वाचक, यातें पूर्णोपमा अलंकार। और नगीच नहीं जायो जाय है, पट ओट किये हू पै तन ताप चढ़ै है, अजोग को जोग कल्पन, यातें असंबंधातिशयोक्ति अलंकार। और देह दशा दुति दीप पद ते और बृज चन्द्रकला पद में रूपक अलंकार, और कोकिल

कंठ सो चातक को कलबोलनि कढ़िबो अकारण तें कार्य्य को जन्म, यातें चौथी बिभावना अलंकार, प्रोषित पतिका नायिका ॥३॥

(रूपक-पूर्णोपमा-विभावना-पर्याय)

वसुधाधर मालती छंद—

'बृज' बैरी बसंत लगालगी मैं तरु फूलि हैं फूल हुतास अँगारन।
अति मंद सुगंध समीर बहे त्रिन से उड़ि हैं मन कोस हजारन॥
बन बौरत बौरी ह्वै जाऊँगी मैं बनि है न कछू उपचार बिचारन।
पहिले निज प्रानहि अंत करों तब आवै बसंत पलास के डारन॥४॥

टीका—नायिका अपने मन में पछिताय है। बैरी कहै दुखदाई बसंत के लगालगी में पलाश बृक्षन में अंगार फूल फूलि हैं। और शीतल मंद सुगंध समीर चलि है, यासों तृण के समान मन हजारन कोस उड़ि जै है। बन बौरत कहैं जब रसाल बन में बौरि है वाही छन मैं बौरी ह्वै जाऊँगी, तब कछू उपचार न बनि परि है। यासों पहिले ही अपने प्रान को अंत करोंगी, तब बसंत पलाश के डारन में अंगार फूल बिकसावैगो। फूल हुतास कहै अग्नि के अँगार फूलि हैं, यातें समस्तविषयी रूपक अलंकार। त्रिन से उड़ि है मन, त्रिन उपमान, मन उपमेय, से वाचक, उड़िबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलंकार। बन बौरत बौरी-बन कहै बृक्षन को फूले देखि दुख है है, यातें बिभावना। नायिका ऊढ़ा बन के बौरे बौरी कहै बावरी हो ह्वै जाऊंगी। उपचार कहै जतन करिबो न बनि है क्योंकि निज पति तौ घर ही है, यातें परकीया॥ ४॥

(परिकर-रूपक-उल्लास-असंगति-पर्याय)

सुंदर—निज सौति समान सी है बनसी अधरा रस लै प्रिय लालन को।
छलछिद्र भरी हिय सुन्य सखी 'बृज' बात क्यों जानै कसालन को॥
फल फूलत बंस बिनास करै जनि आस करै हित पालन को।
उपजी कुल कंटक नालन मैं तन बेधि गयो बृज बालन को॥५॥

टीका—निज कहै आपनी सौति के सदृश यह बंसी है बंसी अधर मैं लालन के। लाल के अधर के रस को पान जैसे सौति करती है तैसे यह बनसी पान करती है, यातें समस्तविषयी रूपक। छल छिद्र कहै जेहि बंशी मैं बहुत छिद्र हैं और हृदय को शून्य है कहै खाली है। तो वह कसाला कहै व्यथा

लगालगी = मेलजोल। हुतास = अग्नि। बौरत = बौर (मंजरी) आते ही। बौरी = पागल ॥ ४ ॥

बंस = बाँस, कुल। हितपालन = मित्र-संरक्षण ॥ ५ ॥

औरन को क्यों जानि है, यह आसय लिये है, यातें परिकर अलंकार। फल फूलत बंश—कहै फूले और फरे तें बाँस को नाश होत है। फूल फल गुन, बिनाश बंश को दोष, यातें उल्लास अलंकार। उपजी कुल कंटक—उपजी कहै जन्मी है कंटक कहै काँटन मैं तनं कहै देह बेधत कहै छेदत है। बृज बालन कहै गोपिन के, कारण कार्य्य भिन्नदेशत्व तें असंगति अलंकार ॥५॥

(श्लेष-उल्लास-पर्यायोक्ति)

माधवी–तम नासत भौन प्रकास भए गुन एक अनेकन दोष निहारै।
'बृज' कोमल बात चले बिलखै चित मित्र बिलास के द्रोही बिचारै॥
नित स्वच्छ सनेह को नास करै अति याते सखी सिख मेरी बिचारै।
मनि मंजु धरै बलि मंदिर मैं रजनी मैं जनी जनि दीपक बारै॥ ६॥

टीका—तम कहै अंधकार को नाशत है यह एक गुन है। अनेक दोष देखो–दीपक मैं अनेक दोष लगाय निज कारज साधो च्याहती है, यातें पर्यायोक्ति। दीपक प्रकाश गुन मित्र बिछोह ते दोष भयो, यातें उल्लास अलंकार। बृज कोमल बात०—कोमल कहै मंद मंद बात कहै बयारि चले बिलखाय कहै उदास होत है। मित्र बिलास के द्रोही०—मित्र नाम सूर्य्य ताके द्रोही कहै बिरोधी है। ये दीपक क्यों प्रातः काल भये मंद होत है, और मित्र नाम हित ताके बिलास कहै सुख, तेकर द्रोही है कि प्रात: काल दुति मंद देखि नायक उठि जात तब नायिका को दुःख प्राप्त होत है याते द्रोही है। मित्र पद श्लेष, तातें श्लेषालंकार। मनि को प्रकाश दिन राति मंद न है यातें मंदिर में धरै। नायक को भोर न जानै सनेह के नाशक-सनेह नाम तेल सनेह नाम प्रीति रति के नाशक, अतिप्रौढा रतिप्रीता ॥६॥

(लुप्तोपमा-रूपक-पर्यायोक्ति)

माधवी–गति मंद गयंद मृगाधिप लंक उरोज सरोजकली छबि धारै।
मुख चंद सिरोरुह राहु रहे भृकुटी धनु बान कटाक्ष निहारै॥
'बृज' नैन कुरंग है अंजन भृंग लसै तन चंपक बास बगारै।
बिलखाई कहाँ कछू दोसन तौ अरि येते जहाँ कहु क्यौं न बिगारै॥७॥

टीका—गति कहै चाल मंद हरे हरे, गयंद कहै हाथी, मृगाधिप कहै सिंह, लंक कहै कटि, उरोज सरोज कहै कमल कली है, यातें रूपक लुप्तोपमा।

बलिमंदिर = प्रिय भवन, केलिनिवास। जनी = स्त्री। जनि = मत (निषेध वाचक) ॥ ६ ॥

सिरोरुह = केश। येते = इतने ॥ ७ ॥

अरु नायिका अंग मैं अनमिल संग बिरोधी के बरनन कियो, रचना की बातन सों की तूँ क्यों बिलखती तेरे अंग में तो सब बिरोधी, तो क्यों न बिगार कराय देहिं, यातें पर्यायोक्ति। यह नायिका कलहांतरिता कलह करि पीछे पछिताय है, ताहि जुक्ति करि सखी समझावै है ॥७॥

(लोकोक्ति-पर्यायोक्ति-रूपक-लुप्तोपमा)

सवैया–फिरि मान करै कहँ साध रहै बतियान मेरी पतिआइले री।
यक बार पखानहुँ तो पघिलै पहिले छल छैल छपायले री॥
जग आपनो आँध उघारे हँसी सरसी 'बृज' लाज अन्हाई लेरी।
त्रिय बेनी निहारी त्रिबेनी सी है तोहि की सुभ सौंह कराइ लेरी॥८॥

टीका—फिरि कहै हाहरि आइको मान करिबे को तेरे साध कहै अभिलाष रहि है अर्थात् नायक जो अपराध करतो तो मैं मान करती, यातें यह सूचित भयो कि अब नायक दोष न करि है। यक बार०—यक बार कहै एक बेर पखान कहै पत्थर पसीजत कहै कोमल है जात। यह कहनावति लोक में, तातें लोकोक्ति अलंकार। आपनो जाँघ उघारे हँसी, अर्थ यह की अपने पति की हिनाई कहे ते आपुनोई हँसी है। सरसी बृज लाज रूपक अलंकार। त्रियबेनी जो जूरा सो त्रिबेनी सो है, धर्मलुप्तोपमा लंकार। त्रिबेनी गंगादिक, ताकी सौंह कहै शपथ खवाइ ले, यह रचना की बात सों पर्यायोक्त अलंकार। मानमोचन साम उपाय ॥८॥

(रूपक-पूर्णोपमा गम्योत्प्रेक्षा)

सवैया–जैसे लगे मुख चूमै लला कहै तोमुख मंजुल कंजहि कैसे।
कैसे कहौं ललिता सम आनन तो अति सुंदरता छवि तैसे॥
तैसे भए सुनि लाल बिलोचन बाल की भौंहैं चढ़ी धनु ऐसे।
ऐसे भरे 'बृज' आँसुन बुंद मलिंद लसे अरबिंद में जैसे॥९॥

टीका—जैसे कहै जब ही मुख चूमने लगे लला तब कहै तोमुख कंजकैसे, यातें रूपक। कैसे कहौं ललिता सम तेरे मुख को, यह सुनते ही बाल की भौंहैं धनुष ऐसी चढ़ी। भौंह उपमेय, धनु उपमान, चढ़ब धर्म, ऐसे वाचक, यातें पूर्णोपमा, ऐसे कहै यहि भाँति आँसुन के बुंद अंजन जुत भरे जैसे मलिंद अरबिंद में बसे हैं, जैसे पद लीजै तो सिद्धविषया वस्तूत्प्रेक्षालंकार और जैसे

साध = अभिलाषा। पतिआना = विश्वास करना। पहिले छल = पुराने अपराध। छपाय ले = भूल जाओ। बेनी = जूरा ॥ ८ ॥

मलिंद = भौंरे ॥ ९ ॥

पदांत में लीजै तौ वाचक लोप तें गम्योत्प्रेक्षा। नायिका को मध्यमान मध्यम मान निज पति के मुख तें पर बनिता को नाम कहै ह्यामुख चूमने के समै में ललिता को नाम कह्यो की तेरे मुख समता उनको मुख नहीं इति ॥९॥

(रूपक-लुप्तोपमा-पूर्णोपमा-श्लेष-काव्यार्थापत्ति)

दंडक—आनन अमंद इंदु खोलो घेर घूँघट सो,
जैहै कुँभिलाइ सौति मुख जलजात है।
लोचन कटाक्ष बान भौंह की कमान तानि,
मारौ मृगनैनी जोई हेरै हरि गात है।
स्याम को सनेह और बाम को जराइ देहौं,
दीपक सिखा सी देह दीपति मो ख्याल है।
जो पै ब्रज नाथ 'बृज' हाथ जोरि डारै माथ,
तो पै राधा जीतिबे की कौन बड़ी बात है॥१०॥

टीका—मुख इन्दु रूपक। जैहै कुँभिलाइ सौति मुख जलजात-कुँभिलाय धर्म, मुख उपमेय, जलजात कमल उपमान, वाचक बिना वाचक लुप्तोपमा। लोचन कटाक्ष बान०—अलंकार याहू में लुप्तोपमा है। स्याम को सनेह०—सनेह नाम तेल, सनेह नाम प्रीति यातें श्लेष। दीपकशिखा सी देह दीपति है मेरी और बाम को सनेह जराय देहौं, दीपक उपमान, देह उपमेय, दीपति धर्म, सी वाचक यातें पूर्णोपमालंकार। जो पै बृजनाथ०—जो पै कहै जब बृजनाथ कहै श्रीकृष्न हाथ जोरि कै माथ नावत हैं मेरे पायन को तौ राधा जीतिबे की कौन बड़ी बात है। कैमुत्यर्थ तें काव्यार्थापत्ति। याते नायिका रूप गर्विता इति॥१०॥

(विभावना-परिकर[1]-निरुक्ति[2]-श्लेष)

दंडक—नाम धरो सुधाधर सुधा वसुधा मैं बिधि,
बिष सो बिषम जोन्ह जाहि ते झरा करै।

१—(परिकरोति = प्रकृतार्थमुपकरोति इति परिकरः, सोऽस्मिन्नलंकारे सः) प्रकृत अर्थ का पोषक साभिप्राय शब्द जहाँ विशेषण रूप में प्रयुक्त हो अर्थात् जो भी विशेषण दिया जाय वह किसी विशेष अभिप्राय से युक्त हो वहाँ परिकर अलंकार होता है, जैसे उक्त पद में "कालिमा कलंक-वाके कुल में कुटिल श्याम......बराकरै" इसमें प्रत्येक विशेषण विशेष अभिप्राय से कहा गया है, अतः परिकर अलंकार है।

२—निरुक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी शब्द के प्रसिद्ध यौगिक अर्थ को छोड़ कर कारणवशात् उसमें दूसरे चमत्कारिक अर्थ की कल्पना की

कालिमा कलंक ताके कुल मैं कुटिल स्याम,
छोड़ि प्रिय बाम क्यों न कुबरी बरा करै।
एरे मतिमंद चंद ऐगुन अनेक तोमैं,
जो मैं वृषभानजा बिचारि बगरा करै।
धोखा किए गौतम सों श्राप दियो रोषा करि,
गौतम न दोषाकर दोषा तैं करा करै॥११॥

टीका—सुधाधर नाम ब्रह्मा सुधा कहै मिथ्या धरो है, क्योंकि जा मैं जोन्ह बिष से विषम झरै है, बिरुद्ध कार्य्य उतपति ते पंचम बिभावनालंकार। कालिमा कलंक ताही कुल मैं कुटिल स्याम अर्थात् ऐसे कलंकी कहै दोषी कुल मैं कुटिल कहै कपटी त्रिभंगी स्याम, सो क्यों न कुबरी बाम कहै कूबर वारी बाम कहै टेढ़ी नारी सों प्रीति करै। यह सब पद आसै जुत अर्थ है, परिकर अलंकार। ऐ मतिमंद चंद तोमैं बहु ऐगुन, तै इत कहै मेरि दिशि बिचारि कै प्रकाश करै क्योंकि मैं वृषभानजा हौं। मेरे सौंमुहे तेरी दुति मिटि जैहै, क्योंकी वृषभान वृषरासि में भान कहै सूर्य्य, ताकी मैं जाई हौं और दूसरो अर्थ वृषभान राधा के पिता को नाम। यातें श्लेषालंकार। धोखा किए०—धोखा कहै विश्वासघात, गौतम ते किये ताही श्राप ते यह गति भई। सो हे दोषाकर दोषई कहै दोषन को करौ करै। दोषाकर कहै दोष के आकर कहै खनि, क्यों न दोष को करै, यातें निरुक्ति अर्थ कल्पना ते प्रोषितपतिका उग्रता दशा है॥ इति॥११॥

दोहा—त्यौं अक्रम संसृष्टि लहि, कवि लोगन के ग्रंथ।
लिखे कबित निज ताहि हित, काव्य अलंकृत पंथ॥१२॥

कवि—नृपशंभु (अक्रम संसृष्टि रूपक-सुमिरन[1]-लुप्तोपमा)

सवैया-बालम के बिछुरे बृज व्याकुल ता बिरहा है महा दुःख दानि तै।
चौपरि आनि रची 'नृपसंभु' सहेलिनि साहि बनी सुख दानि तै॥

जाय, जैसे—दोषा = रात्रि का आकर, यह प्रसिद्ध अर्थ है किन्तु इसे न मान कर दोषों = दुर्गुणों का आकर = खजाना, यह अर्थ प्रसङ्गवशात् कर लिया, अतः निरुक्ति अलंकार है।

सुधा = व्यर्थ। विषम = कठिन, बुरी। जोन्ह = चाँदनी। बाम = स्त्री, टेढ़ी। ऐगुन = अवगुण। वृषभान = ग्रीष्म का सूर्य, राधा के पिता। बगरा करै = फैलती है॥११॥

१—जहाँ उपमान को देखकर तत्सदृश उपमेय का स्मरण हो आवे वहाँ स्मरण अलंकार होता है।

तै जुग फूटै न मेरी भटू यह काहू कह्यो सखिया सखियान तै।
पंकज पानि ते पाँसे गिरे अँसुवा गिरे खंजन सो अँखियान तै ॥१३॥

टीका—वालम कहै प्रीतम के वियोग ते वृजतिय व्याकुल कहै दुःखित चौपरि खेलन लगी। ताहि समै एक सखी बोलि उठी। तै जुग फूटै न०—तेरी गोट की जुग न फूटै, यह सुनि एक गोपी के पंकजपानि ते पाँसे गिरे अर्थात् यह की नायिका को पति बिदेश को गयो है। यह स्मरन भयो की मेरो जुग फूटि गयो, याते सुमिरन अलंकार। पंकज पानि रूप, अँसुवा गिरे खंजन सों अखियाँन ते, खंजन उपमान, सो वाचक, नैन उपमेय, धर्मलुप्तोपमा ॥१३॥

कवि—प्रेमसखी (विशेषोक्ति-रूपक-अनुज्ञा)

सवैया-हौं करि हारी उपाय घनी सजनी यह प्रेम फँदो नहि टूटै।
बाढ़त जात बिथा अधिकी निशि बासर को बिरहानल घूटै॥
मोहि लखाव लला मुख चंद तू 'प्रेमसखी' इतनो जस लूटै।
लालन देखत जो मरि जाउँ तौ मैं बलि जाउँ महा दुख छूटै ॥१४॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों, अपनी अवस्था जो नायक के विरह से व्यथा आदि करि देह दौर्बल्य, इसी हेतु अंगशैथिल्य और कार्य भूषण बस्त्रादि को पहिरिबो, अंगरागादि लगायबो, तेल फुलेल आदि में अनुत्साह और अतीव विरह व्याकुल है अंतरंग सखी सों एक बार नायक के देखिवे की प्रार्थना करै है। हे सजनी मैं बहुत उपाय करि हारी, यह प्रेम फंद नहीं छूटै है। उपाय कारनबाहुल्य हू पै प्रेम फंद कार्य को टूटिबो न भयो, यातें बिशेषोक्ति अलंकार। राति दिन अधिकी व्यथा बढ़ती जाय है। बिरहानल घूटे लेय है, बिरहानल रूपक। मोहि लला श्रीकृष्णचन्द्र के मुख को दिखावै। मुखचंद पद में रूपक। हे सखि इतनो जस लूटै यदि लालन के देखते मैं मरि जाऊँ, क्योंकि यह असह्य महा दुःख तो छूटि जायगो। मरिबो दोष ताकी प्रार्थना, यातें अनुज्ञा अलंकार ॥१४॥

चौपरि = चौसर नाम का खेल, जो चार रंग की गोटियों से बिसात पर खेला जाता है। ताहि = शाह, बड़ी गोटी। जुगफूटै = जोड़ा टूटना ॥१३॥

१—अनुज्ञा अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी विशेषता के कारण दोष को भी गुण मानकर उसकी आकांक्षा की जाय; जैसे उक्त पद में दुःख छूटना रूप विशेषता के कारण नायिका मरना रूप दोष को गुण मानकर उसकी इच्छा करती है।

घनी = बहुत। प्रेमफँदो = प्रेमपाश। घूटै = निगल जाता है। लखाव = दिखाओ। बलि जाऊँ = कृतकृत्य हो जाऊँ ॥ १४ ॥

(पूर्णोपमा-लुप्ता-रूपक)

दंडक–'रामसखी' राम रूप देखिबे को दौरति हौं,
बूझों तू बलाइ कहा जुवती सयानी सौं।
सिथिला सहर मैं कहर परि गयो भई,
घायल घनेरी कहूँ झूठ न सुबानी सौं।
बेधी परी नारी केती गलिन अँटारिन मैं,
तीखे नैन बान मारे भुव धनु तानी सौं।
बैठी घर मंद हाँसी फाँसी गरे डारि डारि,
कीन्हीं कतलानी केती जुलफैं कृपानी सौं ॥ १५ ॥

टीका—तीखे नैन बान मारे-तीखे कहे तीक्ष्न नैन बान लुप्तोपमा, बाचक लोप। भुव धनु तानी सों-भुव भौंह उपमेय, धनु उपमान, तानब धर्म, सो बाचक, यातें पूर्णोपमा। हाँसी फाँसी रूपक। जुल्फै कृपानी कहे कृपान, धर्मलुप्ता। ऊढ़ा नायिका ॥१५॥

कवि—नृपसंभु (लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा-सामान्य-पूर्णोपमा)

दंडक–आजु जलकेलि मैं बिलोकि वृषभानुसुता,
सोभा अंग अंगन की कासमीर पीसी सी।
दाँतन की मुर मुसकात चमकत मनो,
हीरन कनिन को लगाइ राख्यौ मीसी सी।
'संभुराज' धार यार धारसी लगत मंजु,
जमुना के तीर मिली नदी नद दीसी सी।
स्याम की ससी सी स्याम उर में बसी सी स्वच्छ,
जाके मुख सी सी ढरकति सुधा सीसी सी ॥ १६ ॥

टीका—आजु जल बिहार में बृषभान की सुता के अंगन की प्रभा कैसी देखी है की जैसे कासमीर कहे केसरि पीसी है। अंग उपमेय, केसरि रंग

कहर = आफत, विपत्ति। घनेरी = अनेकों, बहुत सी। बेधी परी = घायल पड़ी हैं। कतलानी = कत्ल हुई। जुल्फैं = सिर के लंबे बाल, जो पीछे की ओर लटकते हैं। कृपानी = छुरी, छुकड़ी ॥ १५ ॥

कासमीर = काश्मीर देश में उत्पन्न केसर। मुर = मुड़कर, मुड़। मीसी = दाँतों को रँगने के लिये बना एक रंग विशेष। दीसी = दिखाई दी। स्याम = काला, अंधकार, श्रीकृष्ण। सी सी = संभोगकाल में नायिका द्वारा प्रयुक्त एक विशेष प्रकार की ध्वनि। सुधा सीसी = अमृत की बोतल ॥ १६ ॥

उपमान, धर्म नहीं, यातें धर्मलुप्तोपमा है। दाँतन की मुसकाहट की चमक मानो हीरन की कनिन की मीसी होइ, वस्तूप्रेक्षा सिद्धविषया। संभु राज धार पद०—संभुराज कहै संभु राजा कवि की उक्ति है। यार जो मित्र ताके रस की धार सी लगत है। जमुना के तीर कहै तट पर मिली है जैसे नदी नद में मिलै। स्याम की ससी पद०—स्याम कहै अंधकार की ससी सी कहै चंद्रमा ऐसी है। स्याम कहै कृष्ण के उर में बसी है। जाके मुख सी सी कहै सीत्कार जो रति समै में स्त्रियों के मुखन तें कढ़त, सो सुधा कहै अमृत की सीसी ऐसी ढरकति है। सीसी उपमेय, ढरकब धर्म, सीसी कै सुधा उपमान, यातें पूर्णोपमा ॥१६॥

कवि—दयानिधि (लुप्तोपमा-रूपक-सुभावोक्ति-पूर्णोपमा)

दंडक-कुंद की कली सी दंत पंक्ति कौमुदी सी दीसी,
बिच बिच मीसी रेख अली सी ठरकि जात।
बीरी त्यौं रची सी बिरची सी तिरीछी सी लखै,
रीसी अँखियान सफरी सी वै फरकि जात।
रस की नदी सी थाह 'दयानिधि' कोन दीसी,
चक्रित अरी सी रति डरी सी सरकि जात।
प्यौफंद फँसी सी ऐसी होत जो कसीसी ताकी,
सी सी करिबे मैं सुधा सीसी सी ढरकि जात ॥ १७ ॥

टीका—कुंद के कली ऐसी दंत की पंक्ति, यातें धर्मलुप्तोपमा। मीसी की रेख अली कहै भौंर सी। मीसी उपमेय रेख, अली उपमान, धर्म लोपन है, यातें धर्मलुप्तोपमा जानो। तिरीछी सी पद०—नायक को देखि तिरछी कहै बंक आंखि, रिसिभरी सफरी कहै मछरी ऐसी फरकि उठै है। यह मुग्धा नायिका नवोढा को प्रथम समागम में होत है, यातें सुभावोक्ति अलंकार। रस की नदी सी रूपक, रस की नदी है थाह कोन दीसी थाह समुद्र को कौन देखो है। चक्रित अरी कहै अड़ी है डरी है रति सों, पिय के फंद में फँसी है, मुख ते सी सी कहत है, सो सुधासीसी है। चारिउ बात तें पूर्णोपमा ॥१७॥

कवि—पुहुकर (लुप्तोपमा-विभावना-संदेह)

दंडक—काल की सी कामिनी है दामिनी दमकि रही,
भामिनी भुवंग कैसी जामिनी न खेल की।

कौमुदी सी = चन्द्रिका सी। दीसी = दिखाई दी। बीरी = पान का बीड़ा। चक्रित = कुण्डलित, गोलाकार। अरीसी = अड़ी हुई सी, निश्चल। प्यौफंद = प्रियतम के बाहुपाश में। कसी सी = बँधी हुई सी ॥ १७ ॥

कुंज कुंज कोकिला की कूक कुंजराज बिन,
कसकसी कसकै कसक जैसी सेल की।
डार डार बिहंग पुकारैं 'पुहकर कवि',
सार की सी आर किलकार केकी ऐल की।
कीधौं व्याल ज्वाल कीधौं व्याल की पुकार धार,
धाराधर धार कीधौं धार ताते तेल की॥ १८॥

टीका—काल की सी कामिनी है यह जो दामिनि दमकती है, फेरि यह का है भामिनी कहै सौंपिनि है, यातैं लुप्तोपमा धर्म वाचक लोप। कुंज-कुंज कोकिला की कूक, कुंज राज बिन सेलह कैसे कसकत है, बिरुद्ध कार्य उत्पत्ति तें पंचम बिभावना। डार डार बिहंग कहै पंच्छी पुकार के रहे हैं, सो सार बाजा लड़ाई में बाजत हैं और किलकार केकी कहै मजोरन की बोली, याहू में बिभावना। कीधौं व्याल ज्वाल०—कीधौं कहै कि यह व्याल कहै साँप की ज्वाला होइ, की व्याल कहै नाग या हाथी के पुकार कहै घोर सुर होय, या पदन तें संदेहालंकार॥१८॥

कवि—ममारख (उपमा-रूपक-श्लेष-उत्प्रेक्षा)

सवैया–झूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठक त्यौं उकरूँ की।
पावन दै दुमची मचकै लचकै कटि केहरि गोल हरू की॥
सीखिबे को बिपरीत 'ममारख' पावस मैं चटसाल सुरू की।
खोटी परै उछलै तिय चोटी चमोटी लगै मनो काम गुरू की॥१९॥

टीका—झूलत पाट की डोरी पकरि कै झूला को, तैसे बिपरीत रति मैं पटुली कहै जाँघ पर उकरूँ बैठि कै बिहार करती हैं स्त्री लोग, यातैं उपमान, उपमेय, धर्म, त्यौं बाचक तें उपमालंकार। पटुली कहै पीढ़ा तिपाई आदिक पाठशाला में जहाँ लड़के पढ़ते हैं तापै बैठि कै उकरूँ, यातैं अर्थ श्लेष ते श्लेषालंकार। पावन दै पद०—पावन कहैं दोऊ पाय से मिचकी कहै हरे-हरे डोलाइबो कटि को, सो तीनिउ अर्थ मैं व्यंजित है झूला झूलत में, बिपरीत रति में, लड़िकन के बिद्या पढ़ते में। कटि केहरि उपमान उपमेय तें रूपक अलंकार। सीखिबे को कहै अभ्यास करिबे। बिपरीत पावस रितु में चटसाल कहै पाठशाला सुरू कहै आरंभ, खोटी परै कहै नायिका की जो बेनी बिपरीत रत मैं पीठि में

भुवंग = सर्प। खेल = क्रीड़ा, विहार। सेल = बरछी। सार = युद्ध। आर = अनी, काँटा, नोक। ऐल = कोलाहल, हल्ला। धराधर = मेघ॥ १८॥

पटुली = पिंडली, पीढ़ा। उकरूँ = घुटने के बल बैठना। दुमची = कड़ी, नायक पैरों में अपने पैर फँसाने से बनी हुई शृंखला चमोटी = छड़ी॥ १९॥

लागती है सो, कवि कहै है की यह काम गुरू की चमोटी है। क्यों की नायिका बिपरीत बिद्या पढ़न मैं खोटी कहै चूकि जाती, यातें काम अपने छड़ी सों मारै है, यातें उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया ॥१९॥

(पर्यायोक्ति-रूपक-लुप्तोपमा)

सवैया—कौंल से पानि कपोल धरे बर बारि लौं बारि भरे हिय हारे।
चित्र बिचित्र भई सी भई है नई भृकुटी गई नींद निवारे॥
रावरी लागी है दीठि 'ममारख' तातें कहैं हम बात पुकारे।
जागि है जी है तो जी है सबै बिष पीहै सबै न तो नंद के ध्वारे ॥२०॥

टीका—कौंल उपमान, पानि उपमेय, से बाचक, एक धर्म बिना धर्म-लुप्ता। चित्र सों बिचित्र है, नींद नहीं अर्थात् पलक नहीं चलावै है, यातें उपमा। चित्र उपमान, नेत्र उपनेय, लौं बाचक, पलक नहीं लगावै है जड़ता धर्म चित्र में, यातें पूर्ण भयो। रावरी दीठि कहै टोना लागि है। जो जागि है कहै मूर्छा ते चैतन्य है है तो सब लोग जी है नहीं तो सबै घर के लोग नंद के ध्वारे पर बिष खाइ मरि है। अर्थ यह तुम चलो तौ जी हैं, यह रचना की बात कहि अपनो कार्य्य कियो चाहै, तातें पर्यायोक्ति ॥२०॥

(उपमेय-धर्मलुप्ता-पर्यायोक्ति)

सवैया—बंसी बजावत आनि कढ़ो वा गली मैं छली कछू जादू सो डारे।
नेकु चितै तिरछी करि भौंह चले गयो मोहन मूठी सो मारे॥
वाही घरी की डरी वह सेज पै नेकु न आवत प्रान सँभारे।
जी है तौ जी है न जी है सखी न तौ पी है सबै बिष नंद के ध्वारे॥२१

टीका—जादू सो डारै-जादू उपमान, सो बाचक, उपमेय धर्मलुप्ता। तिरछी करि भौंह-भौंह उपमेय, मूठ उपमान, सी वाचक, यातें धर्मलुप्ता। वाही घरी ते वह सेज पै परी है। जीहै वह तौ सब लोग जीहै नहीं तौ नन्द के ध्वारे सबै बिष खाय मरि है, यह रचना की बात कहि मिलायौ चाहै है, यातें पर्यायोक्ति ॥२१॥

(स्वभावोक्ति-धर्मलुप्ता-पूर्णोपमा)

सवैया—सुहिला रति मंदिर मैं पहिलो ही मिलायो चहै अबलै अबलै।
अरुझाइ भजै बिरुझाइ भजै सुरझाइ भजै जल जोक सलै॥

कौंल = कमल। पानि = हाथ। चित्र विचित्र भई सी = (नींद न आने और पलक न लगने से) चित्र में लिखी हुई सी। रावरी = आपकी। ध्वारे = धोरे, समीप ॥२०॥

सुख माह लगी जक नाहीं वो नाह 'समारस' छाँह छुए उछलै।
तिय कौलदलै पग सों मसलै छिति सों बिछलै मचलै न चलै ॥२२॥

टीका—प्रथम समागम नवोढा के सुरतारंभ बर्नन है। सुरझाइ अरुझाइ को भागै है ललकोक ऐसी, यातें पूर्णोपमा। सुखमाह लगी जक नाहीं नाहीं यह नवोढा के स्वभाव है, यातें सुभावोक्ति। तिय कौंल दलै-तिय के कौंल के पखुरी सो पग, यातें लुप्तोपमा धर्म बिना भयो ॥२२॥

कवि—सुखदेव दोसरे (प्रतीप-संबंधातिशयोक्ति-सहोक्ति-परिवृति)

दंडक—मंदर महिंद गंधमादन हिमालै मेरु,
जिन्हें चलै जाने ऐ अचल अनुमाने ते।
भारे कजरारे तैसे दीरघ दतारे मेघ,
मंडल बिहंडै जे वै सुंडादंड ताने ते।
कीरति बिशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे,
दान जो अमान कापै बनत बखाने ते।
इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै,
पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते ॥२३॥

टीका—गंधमादन हिमालय आदि अचल याही ते भये की जो गज राना कविन को दान दियो है उनकी चाल देखि लज्जित भए, यातें प्रतीप। अथवा

सुहिला=सुंदर, नायक। अबलै अबलै=सखी नायिका को। जक=रट, हठ, धुन। कौंल दलै=कमल दल को ॥२२॥

१—परिवृत्ति का अर्थ है विनिमय अर्थात् अदला-बदली। चमत्कार की दृष्टि से जहाँ न्यून वस्तु देकर बदले में बहुत अधिक लिया जाय अथवा बहुत अधिक देकर बदले में न्यून मिले वहाँ परिवृत्ति अलंकार होता है। वस्तुतः यहाँ 'इतै कवि... ...' पद में सहोक्ति अलंकार ही स्पष्ट है, परिवृत्ति नहीं, परिवृत्ति का स्पष्ट उदाहरण दास कवि का यह पद है—

"तिय कंचन सो तनु तेरो उन्हें मिलि कै भयो सौतुख को सपनो।
उनको नगनीळ सो गात है तैसहि तौ बस 'दास' कहा लपनो॥
इन बातनि तेरो गयो न कछू उनहीं बहकायो अली अपनो।
निज हीरो अमोल दयो, औ लयो यह द्वैपल को तुअ प्रेमपनो॥

कजरारे=काले। दीरघ दतारे=लम्बे लम्बे दाँतोंवाले। बिहंडै=विदीर्ण कर देते हैं। सुंडादंड=हाथी की सूँड़। अमान=अपरिमित। जस आखर=यश के अक्षर। पाखर=हौदा, अम्बारी। पील=हाथी। पीलखाना=हस्तिशाला ॥२३॥

उत्प्रेक्षा पहाड़न को स्वभाव अचल होबो बर्नन अहेतु ताको हेतु, यातें हेतूत्प्रेक्षा। कजरारे०—दीरघ कहे बड़े हैं दतारे ऐसे की मेघ के मण्डल को बिहँडै कहै बिडारे हैं, अजोग जोग तें संबंधातिशयोक्ति। कीरति बिशाल०—श्री राजा अनूप सिंह के दान को कौन बखानि सकैगो की इत कवि के मुख ते जस के अच्छर निकसे हैं तैसे उतते साथही पाधर कहे हौदा आदिक समेत पील कहे हाथी पीलखाने ते खुले कहे देत है, यातें सहोक्ति अलंकार ॥ २१ ॥

कवि—हरदेव (प्रतीप-लुप्तोपमा-संबंधातिशयोक्ति)

दंडक—उड़ि-उड़ि जात घनसार घन शोभासार,
हेरि हेरि हंसन सी कर तै अतारै सी।
कहि 'हरदेव' हिमगिरि सी गिरा सी गंग
कैसी सरसाती है रती के तोर तारै सी।
कीरतै तिहारी रघुनाथराय महा दानि,
पुंडरीक श्रेनी सुभ्र सहज लतारै सी।
छीरद को छ्वै रही छटा सी छिति छोर पर,
चारों वोर वैरही कलानिधि कतारै सी ॥२२॥

टीका—घनसार और हंसन की शोभा जाकी कीरति उड़ि जाती है कहै दुरि जाती, यातें प्रतीप। कहि हरदेव—हिमगिरि उपमान, सी वाचक ते धर्मलुप्ता। कीरतै तिहारी—हे राजा रघुनाथ सिंह तिहारी कीरति छीरद कहै मेघमंडल को छ्वै रही है, अजोग जोग कल्पना तें सम्बन्धातिशयोक्ति ॥२२॥

कवि—कासीराम (लुप्तोपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा)

दंडक—कमल से आनन कुरंग नैनी पिक बैन,
कान्ह पास कानन को चली री उमहिरी।
आय बाय अंचल उड़ाय दियो ताही छन,
वाकी छतिया में मेरी दीठि गई लहिरी।
रंगदार अँगिया के ऊपर सघन छोटी,
केसरि की टिपुकी सी आछी गई गहिरी।
मदन के डर अरबर करि 'कासीराम',
मानो हर हहरि हजार मेखी पहिरी ॥२३॥

घनसार = कपूर। अतारैसी = इत्र की भाँति। तोर तारैसी = कारचोबी के काम की तरह। लतारै = लता, बेल ॥२२॥

उमहिरी = उमंगयुक्त हुई। बाय = वायु। दीठिगई लहिरी = दृष्टि पड़ गयी। टिपुकी = बिंदु। अरबर करि = घबराकर। मेखी = एक प्रकार का कवच ॥२३॥

टीका—कमल उपमान, मुख उपमेय, से बाचक, यातें धर्मलुप्ता। कुरंग नैन समरूपक। रंगदार—उरोजन पै अँगिया बायु लागे ते उड़ी, ताकी उत्प्रेक्षा कबि करत है। मदन कहै काम के डर ते मानो हर कहै शिव मेघो बकतरादि, हर को भय मानिबो अहेतु ताको हेतु मानो, यातें असिद्धविषया ॥२३॥

कवि—निधिमल्ल (प्रतीप-उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमा)

सवैया–तब चंचल चाल हुती पग मैं अब लाज मरै गज गौनन सों।
अंग अनंग के रंग रँगे मानो कीन्हे है सुंदर सोनन सों॥
कहि 'मल्ल' तबै तुतरी बतिया अब बैन कढ़ै मुख टोनन सों।
तब आँखि हुती अब नैन भये कजरारे महा मृग छौनन सों॥२४॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। तब तेरे पग में चंचल चाल रही अब गज अपनी गति को बिलोकि लाजन मरै है। नायिका की चाल उपमेय, तासों उपमान की व्यर्थता, यातें प्रतीप अलंकार। अंग काम के रंग सों रँग्यो अर्थात् बिलक्षण शोभा लखाय परै है, मानो सोनन सों सुदार रच्यो गयो है, अनंग रंग सों रँगिबो उक्त, ताको सोन सों रचिबो करि बर्णन, यातें उक्त बिषया बस्तूत्प्रेक्षा। तब तोतरी बात कढ़ती रही अब टोना ऐसी कढ़ै है। बैन उपमेय, टोना उपमान, सों बाचक, धर्म को लोप, यातें लुप्तोपमा अलंकार। और तब आँखि हुती अब कजरारे मृग छौन के नेत्र के समान नैन भए, इहाँ आँखि सिद्ध ताही को शोभातिशय करि नेत्र करि बर्णन, यातें बिधि अलंकार और अज्ञातयौवना नायिका ॥२४॥

कवि—गंग (लुप्तोपमा-प्रतीप-पूर्णोपमा)

दंडक—मृग कैसे दृग, मृगमद को तिलक भाल,
अधर ललो है, मुख लाखन लहतु है।
सोने को करनफूल श्रवनन सोभियत,
चीकने चिबुक, कुच उठन चहतु है॥
कहै 'कवि गंग' तू तौ प्यारी प्राननाथ जू की,
तेरिये निकाई रति रती न लहतु है।
कली और फूल औ त्रिकूल मूल मध्य जाके,
कमल से चारौं फूल फूलोई रहतु है॥२५॥

गौनन = गतियों (चालों) से। सोनन = सुवर्णों। टोनन = जादू ॥२४॥

मृगमद = कस्तूरी। ललो है = रंगा है। निकाई = सुन्दरता। रति = कामदेव की स्त्री। रती = थोड़ा भी। त्रिकूल = तिकोना ॥२५॥

टीका—सखी की उक्ति नायिका सों। मृग कहैं हरिण के नेत्र के समान तेरो द्दग है, मृग को नेत्र उपमान, नायिका को द्रिग उपमेय, यासों यहाँ मृग शब्द को उपादान नेत्र को लोप, यातें उपमानलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार। माथ में मृगमद कस्तूरी को तिलक, अधर ओठ, ललो है, ताम्बूलादिक सों, मुख को लाखन रसिक विलोकि रहै हैं। सुवर्ण निर्मित करनफूल कान में शोभित, चीकनो चिबुक टोढ़ी, कुच उठ्यो चहत हैं। तूँ प्रानप्यारे की प्यारी। अभिप्राय यह कि प्राण सबको प्यार होय है तू तो प्रानहू सों प्यारी है। तेरी लुनाई देखि रति काम की प्यारी स्त्री कहै थोरो शोभा नहीं लहै है। उपमान को अनादर यातें प्रतीप अलंकार। कली और फूल और तीनि फूल को मूलमध्य बाके कमल से चारों फूल सदा फूलोई रहत है। चारों फूल नेत्र द्वै, कुच द्वै। इहाँ नेत्रादि को फूल निश्चय करि उपमेय ठहरायो, कमल उपमान, सें वाचक, फूलिबो साधारण धर्म को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार। मुग्धा नायिका॥ २५॥

कवि—कुमार (उल्लास-लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

सवैया–कुंज दुरथो पिय खोजत ताहि गए जुग से जुग जाम तमी के।
जागी सँजीवनि औषधी सी जिय ताप मिलाप भए बिन पी के॥
बाढ़यो 'कुमार' पयोनिधि पूर सों पूरत हा बिरहानल ती के।
चंद उदै लखि लोचन च्वै चले चंदपखान से चंदमुखी के॥२६॥

टीका—सखी की उक्ति सखी सों, नायिका की दशा बर्णन करै है। नायक कुंज में छिप्यो ताके खोजिबे में जामिनी रात्रि को जाम जुग समान बीत्यो। जाम उपमेय, जुग उपमान, सों बाचक, धर्म को लोप, यातें धर्मलुप्ता लुप्तोपमा अलंकार। जिय में संजीवन औषधी सी बिना भेट प्रान प्यारे के ताप जग्यो, ताप उपमेय, संजीवन औषधी उपमान, सी वाचक, जागिबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलंकार। बिरहानल पयोनिधि समुद्र के पूर के समान बढ़्यो। बिरहानल उपमेय, पयोनिधि उपमान, सो बाचक, बाढ़िबो धर्म, यातें पूर्णोपमा अलंकार। वाही समय चंद्रमा को प्रकाश लखि चंद्रमुखी के दोनों लोचन चंद्रपखान चंद्रकांतमणि के सदृश चले अर्थात् आँसू बहने लगे। चंद्रमा को प्रकाश गुण, तासों नायिका को ताप रूप दोष भयो, यातें उल्लास अलंकार और विप्रलब्धा नायिका॥ २६॥

दुरथो = छिपा है। जुग = युग (सतयुगादि)। जुगजाम = दो प्रहर। तमी = रात्रि। चंदपखान = चन्द्रकान्तमणि॥२६॥

कवि—पजनेस (उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा)

तन तम तामस रसादि पद तोयद सी,
नीलक जटान पद जटि प्रजटी सी है।
'पजन' प्रकंदरप दीपक सिखा सी चारु,
हाटक फटिक वोप चटक फुटी सी है।
कच कुचदुविच विचित्र कृत बक्र वेष,
छूटी लट पाटी घट नट चबटी सी है।
बिरह असुभ्र पक्ष ती तन प्रदोष पाय,
पन्नगी पिनाकी पद पूजि पलटी सी है ॥२७॥

टीका—तम कहै तिमिर होय की तामस होय कहै क्रोध, यातें संदेहालंकार। पजन प्रकंद०—दीपक सिखा सी यातें पूर्णोपमा। कच कुच दुविच कच कहै बार, कुच कहै स्तन तेहि बीच लट परो है, ताको उत्प्रेक्षा संभावित भयो है। बिरह असुभ्र पक्ष—बिरह कहै बियोग असुभ्र कहै अँध्यार पक्ष, प्रदोष कहै सायंकाल में मानो पन्नगी पिनाकी कहै महादेव को पूजन करि पलटी कहै फिरी है ॥ २७ ॥

(रूपक-प्रतीप-पूर्णोपमा)

छहरै छबीली छटा छूटि छिति मंडल मैं,
उमगि उज्यारी महा वोज उजबक सी।
'कवि पजनेस' कंज मंजुल मुखी के मुख,
उपमाधिकात कल कुंदन तबक सी।
फैली दीप दीप दीप दीपति दिपति जाकी,
दीपमालिका की रही दीपति दबक सी।
रहतो न ताव लखि मुख महताब आप,
निकसी सिताब महताब के भभक सी ॥२८॥

टीका—छबीली नायिका की छबि छितिमंडल में छहरि रही है। कवि पजनेस०—कंज मंजुलमुखी के मुख, कंज उपमान, मुख उपमेय, यातें समरूपक। उपमाधिकात कहै उपमा अधिक है। कुंदन कहै सोना ऐगे, यातें लुप्तोपमा।

वोज = । उजबक सी = उजड्ड सी। कुन्दनतबक = सुवर्ण की पत्री। दीप दीप = द्वीप द्वीप में। दीपति = दीप्ति (प्रकाश)। दिपति = प्रकाशित हो रही है। दबक सी = दबी हुई सी। ताव = ताप। महताब = चन्द्रमा। सिताब = झटपट, शीघ्र। भभकसी = चमक जैसी ॥२८॥

फैली दीप-दीप फैलि रही सातों दीपु में जाकी दीपति, अजोग कथन से सम्बन्धातिशयोक्ति। दीपमालिका की दीपति दबकि रही अर्थ लजित, यातें प्रतीप। रह तो न ताव०–मुँह उपमेय, महताब कहै चन्द्रमा उपमान, भभक सी कहै प्रकाशता धर्म, सी वाचक, यातें पूर्णोपमा ॥ २८ ॥

कवि—बेनी (उत्प्रेक्षा-पूर्णोपमा-लुप्तोपमा)

दंडक—रति बिपरीति मैं लसत अलबेली लखि,
कुंदन की बेली सी सिमिटि कै सिकुरि जात।
'बेनी कवि' कहै बिहँसति बतराति बाल,
छटा लौं छहरि घनघटा तन जुरि जात।
मोतिन की लरैं अलकावली तरल ऐसी,
उघरे जुरत मुख चंद इमि दुरि जात।
मानौ ससि पीछे डारि आगे पाँति तारन की,
तम की जमाति तें उभरि लरि मुरि जात ॥२९॥

टीका—कुंदन की बेली सी–कुंदन उपमान, नायिका उपमेय, सी वाचक, सिमिटि जाइबो धर्म, यातें पूर्णोपमा। बेनी कवि०–छटालौं छहरि छटा कहै बिजुली लौं छहरि, यातें लुप्तोपमा। छहरिबो धर्म, यातें पूर्णोपमा। मोतिन की लरैं मुख पर परी ताकी उत्प्रेक्षा, मानो ससि कहै चन्द्रमा को पीछे डारि आगे तारन कहै नक्षत्रन की पाँति तम कहै अँध्यार नें लरि कै मुरि जात कहै भागि जात इति ॥२९॥

कवि—पद्माकर (प्रतीप-संबंधातिशयोक्ति-पूर्णोपमा)

दंडक—साजि बृजचंद पै चली है मुख चंद जाको,
चंद चाँदनी की दुति मंद से करत जात।
कहै 'पद्माकर' त्यौं सहज सुगंधि ही से,
पुंज बन कुंजन में कंज से भरत जात ॥
धरत जहाँई जहाँ पग है सुप्यारी तहाँ
मंजुल मजीठि ही के माठ से ढरत जात।
हीरन ते हेरो सेत सारी के किनारिन तें,
बारन तें मुकुता हजारन झरत जात ॥३०॥

बतराति = बातचीत करती है। छटा = बिजली। छहरि = चमक कर। दुरिजात = छिप जाता है। उभरि = आगे बढ़कर। लरि = लड़कर। मुरिजात = मुड़ जाती है ॥२९॥

मजीठि = मेंहदी। माठ = मिट्टी का बना बहुत बड़ा पात्र (कुण्डा) ॥३०॥

टीका—जाके मुख चंद के देखत चंद्र चाँदनी को मंद करत, यातें प्रतीप। कहै पदमा०—सहज सुगन्ध कहै बिना अंगराग के तन ताको सुबास बन में, कुंजन में, कंजन में भरि जात, यातें संबंधातिशयोक्ति, अथवा तन की सुगंधता कंज में भरि गयो, उपमेय को धर्म उपमान में आरोप ते निदर्शना। धरत जहाँई० पग जहाँ धरती है तहाँ मजीठि के माठ से ढरत। पग को रंग उपमेय, मजीठि उपमान, ढरब धर्म, से वाचक, तें पूर्णोपमा। अभिसारिका नायिका ॥३०॥

कवि—नवी (अनुमान-लुप्तोपमा-लेश)

दंडक—कोकनद कली देखो कली की रली बिशेषो,
राची एक संग ह्वै कै प्राची अरुनाति है।
तारे मनिहारे इंदु आभा उजिआरे अलि,
खोलि देखु तारे तारे काहे अरसाति है।
'नवी कवि' उरगलता सी मुख ठहरानी,
पियरानी पिय रानी काहे पियराति है।
हारी हौं मनाइ इत उत मग हेरि हारे,
तू तौ इतराति उत राति बीती जाति है ॥३१॥

टीका—कौंल कली सम्पुट ह्वै रही सो प्राची अरुनाति कहै पूरब दिशा में लाली होन लागी, ताहि देखि राची कहै राती होन लगी फूलन के हेतु। तारे मनि कहै दुति हारे कहै त्यागे। चंद्रमा प्रकाश को अर्थ, प्रातः काल होन चहै है। या अनुमान ते अनुमानालंकार। नवी कवि, उरगलतासी उरग कहै नाग लता कहै बेलि अर्थ नागबेलि कहै पान ऐसे पियराई मुख मैं, यातें पूर्णोपमा, नायिका मानिनी ॥३१॥

कवि—घनस्याम (प्रतीप-संबंधातिशयोक्ति-लुप्तोपमा)

दंडक—अटै औनि अंबर छुटे सुमेर मंदर से,
घटै मरजादा बीर बारिध के बेला के।
कहै 'घनस्याम' घनघोर सो घुमंडै घन
मंडल उमंडै गज रवि रज रेला के।

कोकनद = लाल कमल, रली = क्रीड़ा, आनंद। प्राची अरुनाति है = पूर्व दिशा में लालिमा (अरुणोदय की) छा रही है। मनि हारे = रत्नों को छोड़े हुए से। तारे = आँख की पुतली। अरसाति है = आलस्य करती है। उरगलता = नागबल्ली (पान की बेल)। पियरानी = पीली पड़ी हुई। पिय रानी = प्रियतम की प्यारी। इतराति = घमंड करती है। उत = उधर ॥३१॥

धारै बरछान को बिदारै देवता को तन,
मंद सी कुठार बढ़ै संकर के चेला के।
दब्बै दिगपाल बल फब्बै न बिगीसन के,
जा दिन जुनब्बै कढ़ै बाँधबी बघेला के ॥३२॥

टीका—औनि कहै पृथ्वी, अंबर कहै आकाश लौं, सुमेर पर्वत ऐसे लुप्तोपमा। अर्थ ऐसे ऊँचे हैं कि उन के आगे सुमेर के मरजादा कहै सीमा घटै है, यातें प्रतीप। धारै बरछान को० बरछान को धारि देवतन को तन बिदारै कहै बेधै है, अजोग जोग कथन तें संबंधातिशयोक्ति। मंद सी कुठार० संकर कहै महादेव, चेला कहै परसराम, कुठार कहै फरसा, मंद कहै धार, कुंठित ह्वै जात है। जा दिन बाँधबी बघेला की जुनब्बै कहै तरवारि कढ़ती है, याहू तें प्रतीप भयो ॥३२॥

कवि—भूषण (रूपक-निदर्शना-संबंधातिशयोक्ति)

दंडक—कोकनद नैनन ते कज्जल कलित छूट्यो,
आँसुन के धार तें कलिंदी सरसाती है।
मोतिन की लरैं गरै छूटि परै गंग छबि,
सेंदुर सुरंग सरस्वती दरसाती है।
'भूषन' भनत महाराज शिवराज बीर
रावरे सुजस ए उकति ठहराती है।
जहाँ जहाँ भागती है बैरी बधू तेरे त्रास,
तहाँ तहाँ मग मैं त्रिबेनी होति जाती है ॥३३॥

टीका—कोकनद कमल नेत्र सम रूपक, आँसुन के धारि नैं कलिंदी उपमेय को धर्म उपमान में आरोप तें निदर्शना। मोती की लरैं गर ते छूटि परत हैं भागत के समै में राह में, सो गंगा की छबि है, सेंदुर भाल ते गिरे है सो सरस्वती के है, यह तीनि रंग जुत त्रिबेनी मग में ह्वै जाती है। हे सिबराज भूप तिहारे बैरिन की बनिता जब भागती है। अजोग जोग कथन सम्बन्धातिशयोक्ति, समस्त विषयी रूपक है ॥३३॥

बारिध = समुद्र। कुठार = परशु। संकर के चेला = शिवजी के शिष्य, परशुराम। दब्बै = दब जाता है। फब्बै न = नहीं चलती। जुनब्बै = तलवार। कढ़ै = निकलती है ॥३२॥

कलिंदी = कालिंदी, यमुना ॥३३॥

कवि—सोभ (उदात्त-लुप्तोपमा-प्रतीप)

दंडक—देखिये पियारे कान्ह सरद सुधारे सुधा-
धाम उजियारे चौकी चामीकर दरसै।
चोभै चाँदी चमकै चँदोए गुही मोतिन की,
झलकति झालरैं जुन्हाई जोति परसै।
हीरा सी हँसनि हीरा हार की लसनि सोधि,
सारी रही सनि 'कवि सोभ' छवि सरसै।
कोटि कोटि कला मुख चंद तें सरस प्यारी,
बादिला फरस रूप झलाझल बरसै ॥३४॥

टीका—चौकी चामीकर चोप चांदी के, मोतिन की झालरैं, यह बहु ऐश्वर्य के बरनन ते उदात्त। झलक जोन्हाई जोति लुप्तोपमा, हीरा सी हँसनि धर्म लुप्ता, कोटि कला मुख की चंद्रमा ते सरस उपमान के निरादर तें प्रतीप ॥३४॥

कवि—नाथ (लुप्तोपमा-रूपक-प्रतीप-संदेह)

दंडक—मदन तुका सी किधौं राजै कुंद कासी कांति,
कंज कलिका सी कुच जोरी हूँ विकासी है।
गासी भरी हाँसी मुख भासी मोह फाँसी मद,
जोबन उजासी नेह दिये की सिखा सी है।
जाकी रति दासी रस रासी है रमा सी को,
कहै तिलोतमा सी रूप रसनि प्रकासी है।
काम की कला सी चपला सी 'कवि नाथ' किधौं
चंप लतिका सी चारु चंद्रचंद्रिका सी है ॥३५॥

टीका—नायिका के सौन्दर्य्य को बर्णन, मदन काम को तुका के सदृश, तुका गोल फेंकि कै मारिबे को एक बान के तुल्य होय है। कुच उपमेय, मदन-

---

सुधाधाम = चूना पुते हुए प्रासाद। चामीकर = सुवर्ण। चोभै = खम्भे। चँदोए = मंडप, सिंहासन आदि में शोभा के लिये लगाया गया झालरदार आच्छादन वस्त्र। लसनि = शोभा। सनि = लीन। बादिला फरस = सोने-चाँदी का काम किया हुआ बिछाने का वस्त्र ॥३४॥

तुका = तुक्का (एक प्रकार का समीप में प्रहार कर सकने वाला क्षेप्यास्त्र, लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'भिड़ गया तो तीर नहीं तो तुक्का') गासी = बरछी की नोक। मुखभा सी = मुख की कान्ति। जोवन उजासी = यौवन की दमक। तिलोत्तमा = स्वर्ग की एक अप्सरा ॥३५॥

लुप्ता उपमान, सी वाचक, धर्म को लोप, यातें धर्म लुप्ता। किधौं शोभित होय है, कुंदकलिका सी लुप्तोपमा, कंज कमल कलिका सी कुच जोरी कहै दोनों कुच शोभित होय है। मुखशोभा फाँसी करि बर्णन, यातें रूपक। जाकी रति दासी, उपमान को तिरस्कार, यातें प्रतीप। किधौं संदेहापन्न पदनिवेश यथार्थ ठहरायो, यातें संदेहालंकार ॥३५॥

कवि—देव (उल्लास-लुप्तोपमा-रूपकादि)

दंडक—केलि के बगीचे को अकेली अकुलाइ आई,
नागरि नवेली बेली देखति हहरि परी।
कुंज के अवास तहाँ गुंजरत भौंर पुंज,
शीतल समीर सीरे नीर की नहरि परी।
'देव' तेहि काल गूँधि लाई माल मालिनि यौं,
देखत बिरह बिष ब्याल की लहरि परी।
छोह भरी छरी सी छबीली छिति माह फूल,
छरी सी छुवत फूलछरी सी छहरि परी ॥३६॥

टीका—अकुलाइ को आई जहाँ कुंज भवन कहै केलि थल, तहाँ नीर कहै पानी भरी नहरि देखि परी तो लखिहि देह हहरी कहै काँपी। संकेतनाश ते अनुशयाना। देव तेहि काल०—ताहि समै मालिनी माल लाई, गुन तें दोष भयो तातें उल्लास। माला फूलन के उद्दीपन बिरह बिष ब्याल समरूपक। छोह भरी०—फूलछरी सी धर्मलुप्ता ॥३६॥

कवि—गंग (रूपक-श्लेष-परिवृत्ति)

'गंग कवि' जौहरी रतन गुन पारिख के,
जस मुकुताहल चहूँघा दरसाई है।
चाहि है जे नृप करनाभरन करिबे को,
तिनही के आगे बेस कीमति सुनाई है।
देहैं करि मौज सोई लेहैं हम हरबर,
तोछन उआदो खत टीपन लिखाई है।
आदर जमा में कैसे हानि होन पावै जग,
बेचि है तहाँई जहाँ नफा कछु पाई है ॥३७॥

हहरि परी = काँप गई। सीरे = ठंढे। छोह = क्षोभ, दुःख। छिरी सी = ठगी हुई सी। फूलछरी = फुलझरी ॥३६॥

रतनगुन = (१) रत्नों के गुण (२) गुणरूपरत्न। जस मुकुता हल = (१) जैसे मोती का फल (दाना), (२) यशरूप मुक्ताफल। चहूँघा = चारों ओर।

टीका—कवि जौहरी ते रूपक। चाहि है जे नृप०—करनाभरन कहै कान को भूषन, दूजो अर्थ जे कान भरन करि अर्थ सुनि, याते श्लेष व्यंजितार्थ ते श्लेषालंकार। जस रूपी मुकता दे कै मौज आदर लेबो, ताते परिवृत्ति अलंकार ॥३७॥

कवि—सोमनाथ (लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा-रूपक-वृत्त्यनुप्रास)

कवित्त—सोने सो सरीर ता पै आसमानी रंग चीर,
और ओप कीनी रविरतन तरौना है।
'सोमनाथ' कहै इंदिरा सी जगमगै बाल,
गाढ़े कुच ठाढ़े मनौ ईसजुग मौना है।
कारी घुँघरारी मंद पवन झकोर लागै,
फरहरै अलक कपोलनि के कोना है।
सो छबि अमंद मनो पान सुधाबुंद करि,
इंदु पर खेलत फनिंदनि के छौना है ॥३८॥

टीका—उपमान, उपमेय, वाचक तें धर्म लुप्त, रविरतन रूपक। सोमनाथ कहै०—इन्दिरा सी जगमगै, इंदिरा उपमान, नायिका उपमेय, सी वाचक, जगमग धर्म ते पूर्णोपमा। कारी घुँघरारी०—पवन के झकोरतें हालै है, कपोल पै लट संभाव्यमान पद ते उत्प्रेक्षा। मानो सुधाबुंद इंदु पर पान करि फनिंद के बालक खेलै है। सिद्धबिषया वस्तूत्प्रेक्षा ॥३८॥

कवि—पदमाकर (उदात्त-पूर्णोपमा-रूपक-युक्ति)

दंडक—बंजुल निकुंजन मैं मंजुल महल मध्य,
मोतिन की झालरैं किनारिन मैं कुरुबिंदु।
आइगे तहाँई 'पदमाकर' पियारे कान्ह,
आइ जुरी चौचंद चवाइनि के बृंद बृंद।

करनाभरन करिबे को = (१) कान का आभूषण बनाने को, (२) कानों से सुनने को। हरबर = शीघ्र। उआदो = वादा, इकरार। खतदीपन = लिखत, दस्तावेज ॥३७॥

१—वृत्त्यनुप्रास लक्षण देखिये आगे अनुप्रास प्रकरण की टिप्पणी।

चीर = वस्त्र। ओप = शोभा, कान्ति। रविरतन = माणिक्य। तरौना = कान का एक आभूषण। इंदिरा = लक्ष्मी। ईस जुग मौना है = चुपचाप खड़े दो शिवलिंग। फनिंदनि के छौना = सर्प के बच्चे ॥३८॥

बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी;
पीठि दै प्रबीनी द्रिग द्रिगन भरे अनंद।
आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर मैं,
इंदीवर सुंदर गोबिंद के मुखारबिंद ॥३९॥

टीका—मोतिन की झालरैं किनारिन में कुरुबिंद कहै मानिक मूँगादि पद संपत्ति, चरित्र ते उदात्त। बैठी फिरि पूतरी० कहै दृष्टि फेरि बैठी अनूतरी कहै नहीं ताकती है पीछे को, जैसे सतरंज के खेल में पियादा पीछे को नहीं चलता है, यातें पूर्णोपमा। पियादा उपमान, पूतरी उपमेय, अनूतर धर्म, कैसी बाचक। आछे अवलोकि० आदरस कहै ऐना-के मंदिर में गोबिंद कहै कृष्न के मुखारबिंद अवलोकि कहै देखि रही प्रतिबिंब को, याते क्रियाविदग्धा नायिका। मुखारबिंद कहै मुख अरबिंद ते रूपक ॥३९॥

(रूपक-अप्रस्तुतप्रशंसा-लोकोक्ति)

सवैया—गुन गाँहक सों बिनती अतनी हक नाहक नाहि ठगावनो है।
यह प्रेम बजार की चाँदनी चौक मैं नैन दलाल अँकावनो है।
गुन ठाकुर जोति जवाहिर है परबीनन सो परखावनो है।
अब देखु बिचारि सँभारि कै माल जमा पर दाम लगावनो है ॥४०॥

टीका—यह प्रेम बजार समस्तविषयी रूपक, गुनी लोग के गुन प्रस्तुत बरनन ते प्रस्तुत प्रशंसा, अथवा जवाहिर रूपी गुनी को परखावने ते अन्योक्ति और जमा पर दाम लगावनो है लोकोक्ति। यह अर्थ की जस गुन होय वैसे दाम लगाइबे कहै वैसई सनमान करिबो चाही। जमा पर दाम लगाइबो यह लोकबोली लोकोक्ति, इति ॥४०॥

कवि—अनुनैन (प्रतीप-रूपक-पूर्णोपमा)

सवैया—दुति देखत दंतन की हिय हारत हीरन के गन दाड़िम हैं।
बसुधा बिच चारु कुधा की मिठाई सुधाधर सो धर सालिम हैं॥

बंजुक निकुंज = बैंत की झाड़ी। कुरुबिंदु = रत्नों का जड़ाव। चौचंद = निन्दा, अपवाद की चर्चा। चवाइनि = निंदक स्त्रियाँ। बैठी फिरि = मुँह फेर कर बैठ गई। पूतरी = पुतली (क्रियाशून्य सी)। अनूतरी = कुछ उत्तर न देती हुई अर्थात् पीछे को न मुड़ने वाली। फिरंगी = प्यादा। आदरस मन्दिर = दर्पणों से युक्त प्रासाद ॥३९॥

अँकावनो = अन्दाजा लगाना ॥४०॥

'अलुनैन' बनी भृकुटी कुटिलै कल मैन के चाप सो आलिम हैं।
जग जाहिर जोर जनाइ सकै अँखियाँ जमराज सों जालिम हैं ॥४१॥

टीका—दुति दंतन देखि हीरा दाड़िम लज्जित तें प्रतीप। सुधाधर सो अधर लुप्तोपमा अथवा रूपक। भृकुटी कुटिल मैन के चाप से, भृकुटी उपमेय, कुटिलता धर्म, मैन के चाप उपमान, सो वाचक ते पूर्णोपमा अलंकार ॥४१॥

कवि—पजनेश (उदात्त-लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा)

सवैया—बिलौर की बारादरी जिमि जोति जम्मुर्रद की कुरसी बजै बीन।
गनै पहिली पति दीपति सो 'पजनेश' कहैं सो बड़ी है प्रवीन॥
प्रसेद के बुंद डिठौना फिरी लट लागि रही मनो लोयन लीन।
मनो रतनाकर मैं रतिनाथ चुनी कर बंशी बँझावत मीन ॥४२॥

टीका—बिलौर की बारादरी, जम्मुर्रद की कुरसी, बहु संपत्ति के बरनन ते उदात्त। गनै पहिली०—कहै पति सो पहिली प्रीत जाकी दीपति, पजनेस कहै बड़ी प्रवीन पति की प्रीत मैं दीपति सो, याते धर्मउपमेयलुप्ता। स्वेद को बुंद डिठौना कहै जो बुंदा कज्जल को स्त्री भाल में लगावत सो लट में लागि कै लोयन कहै नेत्र तक लीन कहै ठिग परे संभाव्यमान पद ते वस्तूत्प्रेक्षा। मानो रतनाकर मैं रतिनाथ मीन बझावत बंशी कहै कटिया डारि कै ॥४२॥

कवि—सुंदर (रूपक-लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

सवैया—बार सिवार है ओठ सुधा सी सुधाकर सो मुख आछे उजेरो।
नैननि हाथनि पायनि जाके लसै रंग कंजन के बहुतेरो॥
'सुंदर' मो हिय माँझ निरंतर ऐसे ही प्यारो को पीय बसेरो।
जानत हौं अपुनोई अभाग इते पर ताप तपै तन मेरो ॥४३॥

टीका—बार कहै केश सिवार है, यातें रूपक। ओठ सुधा सी, मुख सोम सो उजेरो; सुधा उपमान, ओठ उपमेय, सी वाचक, लुप्तधर्म। मुख उपमेय, चंद उपमान, उजेर धर्म, सो वाचक तें पूर्णोपमा। यह सब वस्तु शीतल नायक के अंग में, सो मेरे हिय में बसत, तापर ताप मेरे तन में तपै, कारन तें कार्य्य

जालिम = पूर्ण। आलिम = समर्थ, विद्वान् ॥४१॥

बिलौर = स्फटिक। बारादरी = हवादार बैठका। जमुर्रद = पन्ना। प्रसेद = प्रस्वेद, पसीना। लोयन = लोचन। रतनाकर = समुद्र। बंशी = मछली को फँसाने का साधन। बझावत = फाँस रहा है ॥४२॥

सिवार = सेवार, जल की काई ॥४३॥

न भयो, तातें विशेषोक्ति। नायिका प्रोषितपतिका, चिंता संचारी अथवा गुन कथन ॥४३॥

कवि—तोष (उल्लास-पर्य्यायोक्ति-दीपकावृत्ति)

दंडक—ऊख उखरत दुखरत अभुआनी बाल,
चित अनुमानो हाय होत हित हानि है।
कहै कवि 'तोष' बनितान आनि पानि गही,
मुरि मुसक्याय पान दीन्हो गहि पानि है।
ऊख अरहरि सन बन ऐसो राखि है जो,
ताहि हम राखि है सकल सुखदानि है।
भानि है जो कोऊ ताहि हेरि हेरि भानिहौं री,
हुकुम भवानी को न मानि है सो जानि है ॥४४॥

टीका—ऊख के उखरतै दुःख रत कहै दुःख मैं रत भई। ऊख उखरब दोष ते दोष, तातें उल्लास। ऊख उखरि गए संकेत मिटौ, तातें अनुशयाना नायिका। कहै कवि तोष० पानि गहि बनिता को अभुवान लगी पानि में पान दीन्हे। पानि-पानि आवृत्ति, अर्थ शब्द को एकै, तातें दीपकावृत्ति। अभुआनी और भवानी को यह हुकुम की ऊख आदि कोई काटै न। निजकार्य्य साधन करिवे की जुक्ति कियो, तातें पर्य्यायोक्ति अर्थात् क्रिया व्यंजित मिसुकरि साधन तें जानो इति ॥४४॥

कवि—दास (रूपक-प्रतीप-लुप्तोपमा-पूर्णोपमा)

† 'दास' मुख चंद्र कैसी चंद्रिका बिमल चारु,
चंद्रमा की चंद्रिका लगत जामैं मैली सी।
कनी की कपूर धूरि वोढ़नी सी फहराति
बात बास आवत कपूर धूर फैली सी।
बिज्जुसी चमकि महताब सी दमकि उठै,
उमगति हिय के हरष की उजेली सी।

अभुआनी = भूत बाधा से पीड़ित सी। अरहरि = अरहर (जिसकी दाल बनती है)। भानि है = काटेगी ॥४४॥

† 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में इस पद्य में निम्न पाठभेद है—
कनी की—बनी की। वोढ़नी—ओढ़नी। बातबास—बातबस। कपूर धूर—कपूर धूरि। हेमबरना—हेमबरनी। रावरे—साँवरे।

हाँसी हेमबरना की फाँसी सी लगति ही मैं,
रावरे द्रिगन आगे फूलत चमेली सी ॥४५॥

टीका—मुखचंद्र मुख उपमेय, चंद्र उपमान तें रूपक। चंद्रमा की चंद्रिका मैली कहै मलीन लागत। उपमान के निरादर तें प्रतीप। बिजुली चमकि बिजुली उपमान, सी वाचक, चमक धर्म तें पूर्णोपमा। फूलत चमेली सी०—चमेली उपमान, फूलब धर्म, सी वाचक तें लुप्तोपमा, बिना उपमेय के ॥४५॥

(रूपक-संदेह-श्लेष)

चारु मुखचंद्र कों चढ़ायो बिधि किंसुक की,
सुक नयो बिंबाधर लालच उमंग है।
नेह उपजावन अतूल तिल फूल कीधौं
पानिप सरोवरी को उरमी उतंग है।
'दास' मनमथ साहि कंचन सुराही मुख,
बंसजुत पाल की कि पाल सुख रंग है।
एकही मैं तीनों पुर ईश को है अस कीधौं,
नाक नवला की सुरधाम सुरसंग है ॥४६॥

टीका—चारु कहै रमनीय, मुखचंद्र पद मुख उपमेय, चंद्र उपमान, ताते रूपक। अरु की किंसुक होय, की सुक कहै सुवा होइ। बिंबाधर कहैं बिंबफल सौं अधर, ताहि हेतु सुवा आयो है, यातें संदेहालंकार। नेह उपजावन नेह कहै तेल अरु प्रीति द्वै अर्थ के प्रसंग तें श्लेष अलंकार और दास मनमथ पद में सब संदेह अलंकार की रीति है ॥४६॥

(पूर्णोपमा-लुप्तोपमा-अनन्वय-उपमानोपमेय-प्रतीप तीनों-चौथे दृष्टांत-तुल्ययोगिता-निदर्शना)

दंडक—घन से सघन स्याम केश बेश भामिनी के,
ब्यालिनि सी बेनी भाल ऐसो एक भाल ही।

कपूर धूरि = कपूर की तरह धवल (सफेद)। बोढ़नी = ओढ़नी, चादर। महताब = चन्द्रमा ॥४५॥

किंसुक = पलास। सुक = सुग्गा, तोता। बिंबाधर = बिंबफल के सदृश ओष्ठ। अतूल = अनुपम। पानिपसरोवरी = पानी की छोटी तलैया, शोभा का समूह। उरमी = लहर, तरंग। बंसजुतपाल = बाँस का बना हुआ ढकना। पाल = वस्त्र। सुरसंग = स्वर सहित ॥४६॥

भृकुटी कमान दोऊ दुहुँन को उपमान,
नैन से कमल नासा कीरमद चाल ही।
गरब कपोलनि मुकुर समताके सीप,
श्रौन आगे ओठ आगे बिंब एक हाल ही।
मोतिन की सुषमा बिलोकियत दंतनि में,
'दास' हास बीजुरी को देख्यौ एक चाल ही ॥४७॥

टीका—केश मैं पूर्णोपमा, बेनी मैं लुप्तोपमा, भृकुटि मैं उपमानोपमेय, नासिका कपोल मैं तीनौं प्रतीप, श्रवन ओठ मैं चौथो प्रतीप, दृष्टांत तुल्य जोगिता दाँत मैं, हास मैं निदरशना इति ॥४७॥

(रूपक-अपन्हुति-उत्प्रेक्षा-संदेह-भ्रांति-सुमिरन)

दंडक—ती को मुख इंदु है तु स्वेदन सुधा को बुंद,
मोतीजुत नाक मानो लीन्हे सुक चारो है।
ठोढ़ी रूप कूप है की गाड़ोई अनूप है की,
अभिराम मुख छबि धाम को पनारो है।
ग्रीवाँ छबि सीवाँ मैं ललित लाल माल लखि,
अखत चकोर जानै अमल अँगारो है।
देखत उरोज सुधि आवत है साधुन को,
ऐसई अँचल शिव साहिब हमारो है ॥४८॥

टीका—तीको मुख इंदु है०—मुख उपमान, इंदु उपमेय, ते रूपक। स्वेद सुधाबुंद धर्म लीजै तौ लुप्तोपमा। मोतीजुत नाक मानो शुक कहै सुवा चारो लिये है, यातें उत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा। ठोढ़ी पै संदेह, ग्रीवाँ भ्राँति, उरोजन पै सुमिरन अलंकार ॥४८॥

कवि—बलभद्र (रूपक-लुप्तोपमा-संदेह)

दंडक—तन तरिवर की उभय शाखा 'बलिभद्र',
सुंदर सुढार अति गोल सम तूल हैं।
साँचे करि ढारे बिधि दामिनि सी कैधौं दोऊ,
दमकति दुति नहि दुरति दुकूल हैं।
सुख के सरोवर के पेखे हैं मृणाल कीधौं,
फूलकर अभ्र कीधौं नद कैसे कूल हैं।

कीरमद चालही = तोते के घमंड को चूर कर देती है ॥४७॥

स्वेदन = पसीना। चारो = चारा, आहार। ग्रीवाँ = गरदन। छवि सीवाँ = सौन्दर्य की सीमा ॥४८॥

काम ही कुँदेरे भाए सुंदर कनक दंड,
कैधौं भोरी भामिनी के गोल भुजमूल हैं ॥४९॥

टीका—तन तरिवर की उभय शाखा, तन उपमेय, तरिवर उपमान तें रूपक। दामिनी सी कैधौं कहै बिजुली कैमा कैधौं कहै चमकत, यह धर्म ते लुप्तोपमा अथवा उपमेय लीजै तौ पूर्णोपमा। सुख के सरोवर पदते संदेहालंकार ॥४९॥

(उत्प्रेक्षा-लुप्तोपमा-संदेह)

दंडक—फूले मधु माधवी के पुहुप सरन सोहैं,
'बलिभद्र' पंच शाखा मानो देवतरु की।
केसरिकली सी कलधौत की फली सी फबैं,
फूली नव भाँति कुंज लता काम सर की।
कोमल कमल अग्र दश चक्र चिह्न राजै,
लीवी दसौं दिसन की शोभा सुनर की।
तेरे तन बसत तनक तनधर तंत,
कीधौं कर पल्लव किशोरी तेरे कर की ॥५०॥

टीका—यह अँगुरी बरनन है फूले मधु माधवी० ताको उत्प्रेक्षा। मानो पाँच शाखा देवतरु की है, पाँचों अँगुरी है। केशरि कली सी, केसरि उपमान, सी वाचक, याते धर्म उपमेय लुप्त। कोमल कमल अग्र केवल उपमान तें अतिशयोक्ति रूपक। तेरे तन बसत० या पद में संदेहालंकार ॥५०॥

(रूपक-लुप्तोपमा-उत्प्रेक्षा)

पाटल नयन कोकनद कैसे दल दोऊ,
'बलिभद्र' बासर उनींदी देखे बाल मैं।
सोभा के सरोबर मैं बाड़व की आभा कीधौं
देवधुनी भारती मिली है पुन्य काल मैं।
काम कैवर्त्त बैठो नासिका उड़प आइ,
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।

सुढार = अच्छी प्रकार ढले हुए से। पेखे = देखे हुए। कुँदेरे = बढ़ई, छीलने-ताछने वाला ॥४९॥

मधुमाधवी = वासन्ती लता। पुहुप = पुष्प। सरन = तालाबों में। देवतरु = कल्पवृक्ष। तनधर = देहधारी। तंत = तत्त्व (पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व) ॥५०॥

लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो,
फँदे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं ॥५१॥

टीका—नेत्र के डोरे को बरनन है। पाटल नैन कोकनद कैसे। नैन उपमेय, कोकनद उपमान, कैसे बाचक ते धर्म उपमेय लुप्तोपमा। सोभा के सरोवर मैं०—यह होइ यातैं संदेहालंकार। काम उपमान, कैवर्त्त उपमेय, यातैं रूपक। लोचन सितासित०—कहै लोचन कारे और उजारेमें जो लोहित लकीर है सो मानो लाल रेशम के जाल मैं नेत्र मीन बाझे हैं, यातैं बस्तूत्प्रेक्षा सिद्ध विषया ॥५१॥

(लुप्तोपमा-रूपक-संदेहादि)

दंडक—बिष की लता सी बिनु प्रान दुहिता सी आसी-
बिष अलपा सी भामिनी की यहि भाँति है।
कुच चकडोरन की डोरी मखतूल हूँ की,
जानि अमी घटन चढ़ी पपील पाँति है।
जठर अगिनि आभा नारी नाभि कूप की की,
चतुर चितवनि की कदनि अहराति है।
अलप उदर पर तेरी रोमराजी कीधौं,
बानी के बिपंची को उतारि धरी तार है ॥५२॥

टीका—यह रोमराजीबर्नन है। बिष की लता सी० बिष उपमान, सी बाचक ते धर्म उपमेय लुप्ता। कुच चकडोरन की०—कुच उपमेय, चकडोर उपमान ते रूपक। जठर अगिनि पद मैं संदेहालंकार। अलप उदर पर—यह रोमराजी बानी बिपंची की उतारि धरी तार है, बानी कहै भारती बिपंची कहै बीना के तार है, या हूँ में संदेह है ॥५२॥

पाटल = लाल। कोकनद = रक्तकमल। बासर = दिन मैं। उनींदी = रात्रि में जगने से अलसायी हुई। बाड़व = जल की अग्नि। देवधुनी = गंगा। भारती = सरस्वती (नदी)। कैवर्त = धीवर, केवट। उडुप = छोटी नैया ॥५१॥

आसीविष = सर्प। अलपासी = छोटी सी। कुचचकडोरन की = स्तन रूप चक्रवाकों को झुलाने वाली। मखतूल = काले रेशम की बनी, अत्यन्त कोमल। अमीघटन = अमृत के घड़ों में। पपील पाँति = चींटियों की पंक्ति। चितवनि = कटाक्ष, दृष्टि। कदनि = मारना। अहराति = डोलती है। बानी = सरस्वती। बिपंची = बीणा ॥५२॥

कवि—प्रताप (प्रतीप-रूपक-उत्प्रेक्षा-संदेह)

दंडक—डोरे रतनारे बीच कारे औ़र सारे सेत,
जिनके निहारत कुरंग गन भूले हैं।
आनन अमंद ऐसो मानो विधुमंडल मैं,
सारदी के खंजन सुभाय अनुकूले हैं।
जनकसुता के मुख चंद के चकोर कीधौं,
बरनै न जात छवि उपमा अतूले हैं।
राजे रामलोचन मनोज्ञ अति वोज भरे,
सोभा के सरोवर सरोज जुग फूले हैं ॥५३॥

टीका—यह नेत्र बरनन है। लाल स्याम सेत डोरे मृग देखि भूले हैं कहै लज्जित, यातैं प्रतीप। आनन अमंद पर मानो विधु कहै चंद्रमा के मंडल मैं खंजन होय, यातैं वस्तूत्प्रेक्षा अनुक्तविषया। जनकसुता के मुख चंद के चकोर कीधौं, यातैं संदेहालंकार। राजै रामलोचन शोभा के सरोवर, शोभा उपमान, उपमेय ते रूपक ॥५३॥

(रूपक-प्रतीप-संदेह)

दंडक—झूलन के झूला भरे पानिप थला हैं काम-
तुला के पला हैं अमला हैं पंचसर के।
दुति के निवासक प्रकाशक प्रकाश के हैं,
बिधु रवि नाशक सुरेस विधि हर के।
कहै 'परताप' अति आकर प्रभा के छिति,
छवि के छपाकर दिवाकर उभर के।
आदरस तोल बिधु मंडल के डोल कीधौं,
अधिक अमोल ए कपोल रघुबर के ॥५४॥

टीका—यह कपोल बरनन है। काम कहै मनोज, तुला कहै तराजू, पला कहै पलरा होइ, यातैं रूपक। दुति के नेवाशक पदतैं प्रताप, आदरस कहै ऐना होई कि विधु मंडल कहै चन्द्रमा को मंडल होइ यातैं संदेह ॥५४॥

डोरे = रेखायें, सूत। रतनारे = लाल। सेत = श्वेत। सारदी = शरत्काल। वोज = ओज। सरोज जुग = युगलकमल ॥५३॥

पानिप थला = शोभा के स्थान। अमला = कर्मचारी। पंचशर = कामदेव। छपाकर = चन्द्रमा। उभर = तेज। आदरस तोल = दर्पण तुल्य ॥५४॥

कवि—कविंद (दीपकावृत्ति-उपमादि)

दंडक—काहू की न मूठी के अनूठी सौहैं खात,
दीठि ईठि कौन के अदीठि सो पिरात हैं।
बात मैं न शाख बोलैं कौन ऐसे नीकी शाख,
साखामृग कैसे चल भए फहरात हैं।
भनत 'कविंद' उभरे न कहूँ चितवत,
परदा रहित परदारहित गात हैं।
जैसे सटकारे कारे बार बार बाँधे नेही,
जानि जब छोरे तऊ कारे कुटिलात हैं ॥५५॥

टीका—यह धीरा नायिका की उक्ति है। काहू की न मूठी के कहै काहू के ए वसि नहीं, अनूठ अरु झूठ कसमखात हैं, दीठि ईठि कहै मित्र कौन के। बातन मैं शाख बोलै कौन ऐसे शाख, यातें दीपकावृत्ति, शब्द अर्थ एकरवतें। शाखा मृग कैसे चल शाखामृग कहै बाँनर तासों चंचल, धर्म से बाचक तें उपमालंकार। परदारहित परदारहित परदार कहै पराई स्त्री, ताके हित और परदा रहित परदा कहै लाज या वोट ते रहित, यातें दीपकावृत्ति तीसरी शब्द अर्थ भिन्न तैं। जैसे सटकारे०—जैसे बाँधे जात हैं जब छोरे जात तब कुटिलता कहै टेढ़े ह्वै जात हैं, तैसे ए जब दीठि के पीठि होत ही कोटिन कुटिलाई करते हैं, छोरब गुन ते ऐगुनता कुटिलाई, जातें उल्लास अलंकार ॥५५॥

कवि—दत्त (लुप्तोपमा-उल्लेख-तुल्ययोगिता)

दंडक—चोप करि बिरची बिरंचि रूपरासि कैसी,
कोक की कला सी चारु चातुरी की शाला सी।
चंद्रमा सी चाँदनी, सो लोचन चकोर ही को,
सुधा सखी जन ही को, सौतिन को हाला सी।

मूठी के = मुट्ठी के, बश के। सौहैं = सौगंध, कसम। दीठि = दृष्टि पड़ने पर। ईठि = मित्र। अदीठि = अदृष्ट, ओझल हुए। पिरात हैं = दुःख देते हैं। शाख = सत्यता। शाख = डाली (अन्यनायिका से अभिप्राय है)। साखा-मृग = बन्दर। फहरात हैं = घूमते हैं। उभरे = सामने प्रकट हुए। कहूँ = कभी। चितवत = देखते हैं। परदा रहित = लज्जाहीन। परदारहित = परस्त्री-पोषक। सटकारे = (१) झटकारे हुए (केश) (२) शठ कारे-मलिन। नेहीजानि = स्नेह युक्त जान कर (नायक), तेल लगे जानकर (केश) ॥५५॥

कहाँ मंजुघोषा उरवसी न सुकेसी 'दत्त',
जाकी छबि आगे वारियत, मैन बाला सी।
चंपक की माला सी लगै हिए बरषकाला,
शिशिर दुशाला होत ग्रीषम मैं पाला सी ॥५६॥

टीका—नायिका को सामान्य रूपोत्कर्षता बरनन। कोक की कला सी चन्द्रमा सी, चन्द्रमा उपमान, सी वाचक ते लुप्तोपमा। लोचन चकोर-उपमान उपमेय तें रूपक। कहाँ मंजुघोषा उरवसी आदि ते गुन उत्कृष्ट, ताते तुल्य-योगिता और सौतिन को हाला कहै विस ऐसो लागत और सखी जन को सुधा ताते उल्लेखालंकार। अरु एक वस्तु अनेक उपमान के बरनन ते मालोपमा॥५६॥

कवि—आनंदघन (रूपक-विशेषोक्ति-स्वभावोक्ति)

सवैया–सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न घिरे।
निसिद्यौस घुमेरनि भौंर पर्यौ अभिलाष महोदधि हेरि हिरे॥
'घन आनंद' भीजत सोचनि सूखत थाकति दौरि सँभारि गिरे।
तन तो यह लाज घिर्यौ घर मैं बन में मन मोहन संग फिरे॥५७॥

टीका—बेनु के नाद पर प्रेम बरनन है। घुमेरनि और अभिलाष महोदधि रूपक अलंकार। घन आनंद भीजत सोचनि कहै सोच सो सूखत कारन ते कारज सूखब न भयो, ताते विशेषोक्ति अथवा भीजबते सूखब भयो ताते विरोधाभास।तन०—तन तौ लाज के घर में है, मन मोहन के संग बन में फिरै है। मध्या नायिका के स्वभाव ऐसोई होवै है, याते स्वभावोक्ति अलंकार है॥५७॥

(दीपकावृत्ति-व्याघातादि)

सवैया–मन मेरो घनेरो अनेरो भयो अब कौन के आगे पुकार करौं।
सुखकंद अहो बृजचंद सुनो जिय आवत है तुमही सो लरौं॥
अनमोह भए जू न मोह न मोहन या निधि सोक पराही भरौं।
'घन आनंद' ह्वै दुख ताप तचावत क्यों करि नाँवहि नाँव धरौं॥५८॥

चोप = तीव्र इच्छा, चाह। बिरंचि = विधाता। कोक की कला = काम की कला। सुधा = अमृत। हाला = विष। मंजुघोषा–उरबसी–सुकेशी = स्वर्ग की अप्सराएँ। बरषकाला = वर्षा काल में। पाला = हिम॥५६॥

बेनु = बंशी। निसिद्यौस = रातदिन। घुमेरनि = चक्करों से। भौंर पर्यो = भँवर (जलावर्त) पड़े हैं। हेरि हिरे = खोजते थक गये हैं। थाकति = थकती है॥५७॥

घनेरो = अत्यन्त। अनेरो = अन्धकारयुक्त, निराश। सुखकंद = सुख के मूल। घन आनंद = कवि का नाम, आनन्दप्रद बादल। तचावत = जलाते हो॥५८॥

टीका—यह प्रेमाधिक्य बरनन है। मोहन मोहन शब्द अर्थ भिन्न ते दीपकावृत्ति अलंकार। घन आनंद है घन कहै मेघ आनंद है कै ताप कहै ज्वाल उपजावत है, याते व्याघात और कार्य ते कारन विरुद्ध। सोक निधि रूपक ॥५८॥

(रूपक-लुप्तोपमा-श्लेष)

सवैया—रूप सुदेश को राज करो करि छत्र गुमानहि शीश धरे जू।
सुंदर साँवरे हो दिन दूलह चोब चहूँ दिशि चौंर ढरे जू॥
नीके लसो बर सो 'घन आनंद' चातिक लोचन प्यास मेरे जू।
राँचत हैं तुम्हैं जाचत है बृज जीवन रावरी आस करे जू॥५९॥

टीका—यह प्रेमानुराग बरनन है। रूप के देश को राज करो, यातें रूपक। गुमान के छत्र शीश धरे याहू में रूपक। सुन्दर साँवरे०—दूलह चोप चहूँदिशि० नीके सरोवर सो बरसो—बर कहै दूलह ऐसे, चौंर ढारो धर्म ते एसे वाचक उपमेय के लोप ते उपमेय लुप्ता। घन आनंद कहै आनंद के मेघ हौ चातक लोचन प्यास मेरे यह आश्चर्य ते रसवत्। राँचत हौ कहै रुचत है। ताते तुम्हैं जाचत हौं, बृज के लोग को जीवन कहै जीव तिहारे आस, अथवा घन आनंद कहै बरसन हारे मेघ हो जीवन कै जल तिहारे आस है। एक शब्द में दुइ अर्थ व्यंजित ते श्लेष अलंकार इति ॥५९॥

कवि—देव (लुप्तोपमा-रूपक अभेद-पूर्णोपमा)

सवैया—चंपक पात से गात मरोरि करोरिक भाइ सुभाइ सवैयतु।
मोमिसि भेंटि भटू भरि अंक मयंक ही आनन वोठ अँचैयतु॥
'देव' कहै बिनु बात चले नव नील सरोज से नैन जँचैयतु।
ता रससिंधु गई बुधि बूड़ि न वोहित धीरज कैसे बचैयतु॥६०॥

टीका—यह ऊढ़ा नायिका की विरह दशा है। चंपा उपमान, गात उपमेय, से वाचक तें लुप्ता। मोमिसि०—कहै मोही को जानि मयंक ही आनन कहै मयंक चन्द्रमा कैसो जाको आनन, ताको वोठ को अंचैयतु कहै पान करतो

छत्र गुमानहि = गर्वरूप छत्र को। चोब = सोने से मढ़े हुए। चौंर ढरे = चँवर डुल रहे हैं। बर सो = (१) वर-दूल्हा-जैसे (नीके लसो से अन्वय है), (२) पानी बरसाओ (घन से अन्वय है)। राँचत = अनुरक्त। जाचत = याचना करते हैं। रावरी = आपकी ॥५९॥

सवैयतु = बढ़ाते हैं। वोठ = ओष्ठ। जँचैयतु = प्रतीत होते हैं। वोहित = नाव ॥६०॥

है। चंद मुख ते रूपक अभेद। मयंकहि—कहै जाके मुख चंद्र में है। नवें नील सरोज से नैन० नीलता धर्म, कमल उपमान, नेत्र उपमेय, से वाचक ते पूर्णोपमा। ता रस सिंधु में पूर्णोपमा ॥६०॥

(लुप्तोपमा-पूर्णोपमा-प्रतीपादि)

दंडक—फटिक सिलान सो सुधारो सुधा मंदिर,
उदधि दधिका सो अधिकाई उमगे अनंद।
बाहेर तें भीतर लौं भीतिन देखाई देव,
दूध कैसे फेन फैलो आँगन फरसबंद।
तारा सी तरुनि तामैं ठरी झिलामिलि होत,
मोतिन की जोति मिलो मल्लिका को मकरंद।
आरसी सी अंबर मैं आभा सो उज्यारी लगै,
प्यारी राधिका के प्रतिबिंब सो लगत चंद ॥६१॥

टीका—यह राधा जी के अँग की दीपति बरनन हैं। सुधारो कहै बनाए हैं मंदिर, उदधि दधि उदधि कहै समुद्र दधि कहै दही कैसे आभा अधिक जोति धाम को। तारा सी तरुनि लुप्तोपमा धर्म बिना धर्मलुप्ता। आरसी सो अंबर मैं आभा, यातें पूर्णोपमा। आरसी उपमान, सी वाचक, आभा धर्म, अंग उपमेय। राधिका के प्रतिबिंब सो चंद लागत है, याते उपमान के निरादर तें प्रतीप ॥६१॥

(लुप्तोपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा)

सवैया—हेलिनि पेखिबे के मिसु सुंदरि केलि के भौन मैं पेलि पठाई।
बाल बधू बिधु सो मुख चूमि लला छल सों छतिया मैं लगाई ॥
राजत लोल कपोलनि मैं झलके जल दीपति दीप की झाँई।
आरसी मैं प्रतिबिंबित ह्वै मनो 'देव' दिवाकर देत देखाई ॥६२॥

टीका—बाल बधू०—बिधु सो मुख० बिधु चंद्रमा उपमान, सो वाचक, मुख उपमेय, धर्म नहीं यातें धर्म लुप्ता। राजत पद०—जल दीपति दीप की रूपक, आरसी मैं प्रतिबिंबित यह उत्प्रेक्षा ॥६२॥

(लोकोक्ति-दीपकावृत्ति-परिवृत्ति)

दंडक—हाथी दै निशंक काहू अंकुश को बाद कीन्हो,
सो पखानो साँचो प्रिय प्यारे बिछुरावती।

सुधामंदिर = अमृतप्रासाद, चूना पुते महल। उदधिदधिका = दधिसमुद्र। भीतिन = दीवालों में। फरसबंद = बिछाने का वस्त्र ॥६१॥

हेलिनि = सखियों ने। पेखिबे के मिसु = देखने के बहाने। पेलि = ठेल कर ॥६२॥

आजु की मिलाप की अवधि करी सौंहैं नहीं,
होति एहो सौंहैं भौंहैं सतरावती।
कहा करो लाज आज मदन गोपालजू सो,
सदन बलाइ 'देव' मदन दुरावती।
कंचन सो तन दैकै मानिक सो मन लैकै,
चंद सो बदन चंदमुखी क्यौं चुरावती ॥६३॥

टीका—हाथी दै निसंक० 'हाथी निशंक दे डारै अंकुश देवे में सोच' यह लोक कहनावति ते लोकोक्ति। आजुकी मिलाप की आज मिलिवे को सौंहैं कहै शपथ खायो, अब भौंहैं सौंहैं कहै संमुख नहीं करती। सौंहैं सौंहैं पद अर्थ और है शब्द एक अर्थ और तैं दीपकावृत्ति। कंचन सो पद०—कंचन कहै सोना ऐसो तन दे कै मानिक कहै मनि ऐसो मन लीजै, कछु दैकै कछु लेबो परिवृत्ति अलंकार। चंद सो बदन चंद उपमान, सो बाचक, बदन उपमेय, धर्म बिना धर्म लुप्ता ॥६३॥

(रूपक-अर्थान्तरन्यास-विकस्वर)

दंडक—आगे धरि अधर पयोधर सधर जानु,
जोरावर सघन जघन लरे लचि कै।
बार बार देत जैतवारन को बकसीस,
बारन को बाँधे जे पछारी दुरे बचिकै।
उरनि दुकूल दै उरोजनि को फूल माल,
ओठनि खवाए पान पाए धाए बचिकै।
'देव' कहै आजु यहि जीतो है अनंग रिपु,
पीके संग संगर से रति रंग रचि कै ॥६४॥

टीका—यह नायिका को सुरत बरनन है। आगे धरि अधर पयोधर सधर जान जैसे आगे सिपाही हरबल फौज के लड़ते हैं। तैसे अधर ओठादिक रूपक। बार बार०—बार बार कहै [फिरि] फिरि जैतवार कहै जीतन हारे को बकसीस कहै इनाम देते हैं। जैतवार सामान्य नामते अर्थान्तरन्यास है। बारन को बाँधे जे०—रति समै में बार छूटि जात सुरत के पीछे जो बाँधत है तैसे जे लडाई में कादर होते हैं पाछे छपाइ रहत ते बाँधे जात हैं,

---

बाद = विवाद, झगड़ा। सो पखानो सोचो = वह कहावत याद आयी। सतरावती = सिकोड़ती है या चढ़ाती है। मदन दुरावती = काम को छिपाती है ॥६३॥

इहाँ समान्य है। उरनि को दुकूल, उरोजनि को फूल माल, वोठनि को पान पीक यह विशेष रागबरनन तें विकस्वर ॥६४॥

(स्वभावोक्ति-प्रतीप-उपमा)

सवैया—देखिरी दर्प्पन दौरि इते रचि आनन मेरो बिगारे है एहरि।
कंचन हूँ रुचि रंग रुचै नहिं मोतिन की लरी मोतन केसरि॥
'देव' रहै दुबि सी छबि छाती की कोउ मरो मनिमाल हिए धरि।
भाल मृगम्मद बिंदु बनाइकै इंदु सो मोहि गुविंद गए करि॥६५॥

टीका—नायिका की उक्ति सखी सों—हे सखि दर्पन देख और दौरि दौरि आय रचि कई श्रृंगार करि मेरो आनन बिगारि कई अशोभित करि गए, कंचन सोनाहूँ की रुचि और मोतिन की लरैं मेरे तन की कांति की समानता नहीं पावै हैं। उपमान की न्यूनता तें प्रतीप अलंकार। कोऊ कोटि उपाय करि मनिमाल मेरे हिय पै धरि छाती की शोभा मिटायो चहै। छाती की छबि दबिसी रहै है, छाती की छबि उपमेय, दबि उपमान, सी बाचक, दबबो धर्म के उपादान तें पूर्णोपमा। मेरे भाल में मृगबिंदु बनाय कै गोविंद मोको इंदु करि गए अर्थात् कलंक रहित मेरो आनन चंद ताको सकलंक करि गए, यह गर्व प्रकाशक व्यंग्य, यातें रूपगर्विता नायिका और याको स्वभाव ऐसो बिकने को होय है, यातें स्वभावोक्ति अलंकार और इंदु सो मोहि गुविंद गए करि, ए में उपमा अलंकार होय है ॥६५॥

कवि—सेनापति (रूपक-व्यतिरेक-प्रतीपादि)

दंडक—देखे तेरे मुख चंद देख्यौ न सुहाइ अरु,
चंद के अछत जाको मन तरसत है।
ऐसे तेरे मुख सों कहत सब कवि एसे,
देख्यौ मुख चंद के समान दरसत है।
वै तै समुझै न कछू 'सेनापति' मेरे जान,
चंद ते मुखारबिंद तेरो सरसत है।
हँसि हँसि मीठो मीठी बातैं कहि कहि ऐसें,
तिरछे कटाक्ष कब चंद बरसत है॥६६॥

टीका—चंद-मुख उपमान उपमेय ते रूपक। तेरे मुख देखत चंद को देखिबो सुहात नाहीं, उपमान निरादर ते प्रतीप। चंद ते मुखारबिंद ते रूपक।

सरि = सदृश। मृगम्मद = कस्तूरी ॥६५॥
अछत = रहते हुए। सरसत है = रस को बढ़ाता है, आनन्द देता है ॥६६॥

हँसि हँसि मीठी बात कहै औ तिरछी कटाक्ष से ऐसो चंद मैं कहाँ है, यह व्यतिरेक, वस्तुव्यतिरेकालंकार ॥६६॥

(श्लेष-लुप्तोपमा-अपह्नुति)

दंडक—तेरे उर लागिबे को लाल तरसत महा,
रूप गुन बाँध्यौ तू न ताको उमहति है।
यह सुनि ससिमुखी ऊतरु को देइ जौं लौं,
आइ परी सासु बात कैसे निबहति है।
रूखी जो कहति तौ तौ प्रीति न रहति जो,
सनेह की कहै तौ सासु डाँटति दहति है।
'सेनापति' याते चतुराई सों कहत बलि
हार करो ताहि जाहि लाल तू कहति है ॥६७॥

टीका—यह दूती को बचन है। तेरे उर लागिबे को लाल कहै कृष्न तरसत है, तेरे रूप गुन में बँधे हैं, रूपगुन समस्तविषयी रूपक। यह सुनि ससिमुखी उपमान, धर्मवाचक लुप्तालंकार। ससिमुखी कहै वही नायिका, उत्तर जौलौं देन चाहै तौलौं कहै तब हीं सासु आइवरी है। तौ प्रतच्छ उत्तर देवे कैसे बनै, तौ जुक्ति करि कहै। जाको तू लाल कहै मनि गन कहती है ताहि हार करौंगी, इहाँ दूती को प्रति उत्तर में लाल कहै कृष्न, ताहि हार के समान राखौंगी, धर्म अन्य थल आरोप तें अपह्नुति, दुइ अर्थ शब्द एक ते श्लेष अलंकार ॥६७॥

(रूपक-श्लेषादि-अनन्वय)

दंडक—पैये भली घरी तन सुख सब गुन भरी,
नूतन अनूप मिही रूप की निकाई है।
आछी चुनिआई कैयो पेचन सों पाई प्यारी,
ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यौं त्यौं मूंड़हि चढ़ाई है।
पाय गजगति बरदार है सरस अति,
आपै उपमान 'सेनापति' बनि आई है।
प्रीति सो बँधै बनाइ राखै छबि थिरकाइ,
काम कैसी पाग विधि कामिनी बनाई है ॥६८॥

उमहति = चाहती है। ऊतरु = उत्तर। निबहति है = निभती है। बलि = सखि। लाल = रत्न, कृष्ण ॥६७॥

गुन = सद्‌गुण, सूत। निकाई = सुंदरता। पेचन सों = प्रयत्नों से, फन्दों से। मूड़हि = सिर में। गजगति = हाथी की चाल, गज (३६ इंच लम्बा नापने का साधन) की गति ॥६८॥

टीका—सब गुन भरी कहै गुन सूत तासों भरी हो, नूतन कहै नवीन, मिही कहै पतील, रूप की निकाई कहै शोभावान् है, यह पगरी पच्छे। अब नायिका पच्छे—सब गुन भरी कहै सब हुनर या विद्यादि से भरी, मिही कहै सूक्ष्मांगी। एक शब्द के दुई अर्थ तें श्लेष अलंकार। पाय गज गति०—पगड़ी पच्छे—गज गति कहै नाप जुत है। नायिका पच्छे—गज कहै हाथी, गति कहै चाल, पाय कहै पग, यातें रूपक। आपै उपमान, यातें अनन्वय अलंकार ॥६८॥

(रूपक-श्लेष-अप्रस्तुतप्रशंसा)

दंडक—पीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन,
मेरो तन जातरूप तातें निदरत हौ।
'सेनापति' पाइ परे बिनती किए हूँ तुम्हैं,
देती न अधर तौ जैं तहाँ को ढरत हौ।
बाट में मिलाइ तारे तौलौ बहु बिधि प्यारे,
दीन्हो है सुतीय आप तापर अरत हौ।
पीछे डारि अधमन हम दीलो दूनो मन,
तुम्हैं, तुम नाथ इत पाउ न धरत हौ ॥६९॥

टीका—हे प्रीतम तिहारे अंगन अनमोल धन है प्रस्तुत, तामें अप्रस्तुत को अर्थ कन्यो की तुम्हारे बहुत सी नायिका हैं, यामें दक्षिन नायक, यातें अप्रस्तुतप्रसंसा। जौ तुम्हारे अनंत धन है तौ मेरे तन जातरूप कहै सोना को निदरे चाहै, सोना मन तें रूपक। बाट में मिलाय—बाट कहै बटखरा जासों सोना तौलौ जाय है, यह सोना पक्षे अर्थ। बाट कहै राह में, मिलाइ, एक शब्द के दुइ अर्थ, यातें श्लेष। पीछे डारि०—पीछे कहै तिहारे पीछे अधमन कहै आधो-मन कहै तनिक जो अन्य नायिका है सो लगाये है, अरु हम दीनौं दूनो मन है। दुहुमन अर्थ तौल के है अथवा दूनों मन कहै दुइ मन तन मन दीन्हों, तुम पाउ न धरत हौ कहै पाय पग नाहीं यहि ओर धरत हौ। अथवा पाव भरि को, कहै है कि तुम पावो भरि सनेह नाहीं कर जैहै, यातें विवृतोक्ति अर्थ है ॥६९॥

(रूपक-लुप्तोपमा-श्लेष)

दंडक—बदन सरोरुह के संग ही जनम जाको,
अंजन नयन खंज सोभा परसत है।

अनगन = अनङ्गुष । धन = संपत्ति, प्रेयसी । जातरूप = सुवर्ण । निदरत हौ = उपेक्षा करते हो । बाट = बटखरा (तोलने का), रास्ता । अरत हौ = अड़ते हो । अधमन = दुष्टों (अन्य नायिकाओं) को, आधामन । पाउ न धरत हौ = पाँव भी नहीं रखते हो, पाव (सेर का चौथा भाग) भी नहीं रखते हो॥६९॥

महा रूखो मुनिहूँ को मन चिकनाइ जात,
'सेनापति' जाहि जब नेकु दरसत है।
रूपहिं बढ़ावै सब रसिकन भावै मीठो-
नेह उपजावै पै न आप बिनसत है।
आली बनमाली मन फूल मैं बसायो तेरे,
तिल है कपोल सो अमोल बिलसत है ॥७०॥

टीका—तिल बरनन। बदन सरोरुह रूपक, नैन खंजन सों लुप्तोपमा। महारूखो०—मुनि कै मन रूखो ताहि देखि चिकनात है। मीठो नेह उपजावै०—मीठ कहै मधु, प्रीति उपजावै है अथवा मीठा तेल तिल से बनत, एक शब्द ते द्वै अर्थ, तातें श्लेष ॥७०॥

कवि—तोष (रूपक-दीपकावृत्ति-उत्प्रेक्षा)

सवैया-बैठी हुती पलने पर बाल खुले अँचरा नहिं जानत सोऊ।
कोक उरोज पै कंचुकी लाल बिलोकि कै लाल बिलोचन सोऊ॥
सो छबि छाक छक्यौ 'कबि तोष' कहै उपमा यह सुंदर सोऊ।
मानो मढ़ी सुलतानी बनात सो शाह मनोज के गुम्मज दोऊ॥७१॥

टीका—कोक उरोज पै० रूपक अलंकार। कंचुकी लाल बिलोकि कै लाल, लाल लाल शब्द को अर्थ है, याते दीपकावृत्ति। कंचुकी लाल को उत्प्रेक्षा, मानो सुलतानी बनात से, यातें साह काम के गुंमज मढ़ौ है ॥७१॥

कवि— घनश्याम (लुप्तोपमा-विषादादि)

दंडक—औसर को पाइ धरे चौसर सो नीलम को,
हार औ सिंगार चारु चोवा की गली गई।
घाँघरो घुमोरो घन कारो घनो घूमै तैसी,
अँगिया अनूप ओप सुषमा मली गई।
आई घनस्याम में मिलन घनस्याम ही सों,
गए 'घनस्याम' दूनों दुख सों दली गई।
केलि के निकेत को न होत अवलोक शोक,
मीनकेतु धूमकेतु धूमैं में चली गई॥७२॥

अँचरा = आँचल। छाक छक्यो = नशे में मस्त। सुलतानी बनात = बहुमूल्य वस्त्र। गुम्मज = गोल छत ॥७१॥

चौसर = चार लड़ों वाला। ओप = शोभा। घनश्याम में = बादलों के अँधेरे में। घनश्याम = कृष्ण। दूनों = बादल और कृष्ण दोनों। मीनकेतु (= काम) धूमकेतु (= अग्नि) = कामाग्नि ॥७२॥

टीका—यह नायिका विप्रलब्धा। घाँवरा घुमारदार कहै कारे घन कैसो घुमड़े है, याते लुप्तोपमा। आई घनस्याम में कहै जब अँध्यार रह्यो तब आई, घनस्याम कहै कृष्न ते मिलन, घनस्याम घनस्याम शब्द एक, अर्थ द्वै, याते दीपकावृत्ति। केलि के निकेत०—केलि कहै बिहार के मंदिर में नायक को नाहीं देख्यो तौ मीनकेतु कहै काम, तासों धूमकेतु कहै आगि के धूम में चली जरती बरती चली गई। कामअग्नि तें रूपक। सुख हेत गई दुःख पायो, चित चाह ते उलटो भयो, यातें विषाद इति ॥७२॥

कवि—दूलह (विषम-रूपक-लुप्तोपमा-दीपकावृत्ति)

दंडक—उरज उरज धँसे धँसे उरगहे लसे,
बिनु गुन माल गरे धरे छबि छाये हौ।
नैन 'कवि दूलह' सुराते कोकनद प्राते,
देखे सुने सुख को समूह सरसाए हौ।
जावक सो भाल लाल पलक में पीक लीक,
प्यारे ब्रजचंद सुचि सूर से सुहाए हौ।
होत है अनोत यहि कोत माँ बसी आजु,
कौन घरबसी घर बसी करि आए हौ ॥७३॥

टीका—नायिका की उक्ति नायक सों। उरज कुच तुम्हारे उरमें धँसे ऐसो लखाय परे है। जोउ जेहि के उर में लसे कहै भूषित कियो, अभिप्राय यह कि अति प्रेम सों दृढ़ कुच गहि हृदय में लगायो, ताको छाप इस काल हू में भी मिट्यो न लखाय परे है। इहाँ कोमल हृदय में कठोर कुच को दाग ग्रहण करिबो अनुरूप की घटना, यातें विषम अलंकार, अति कठोर हृदय व्यंग्य। बिनु गुन माल अर्थात् मुक्तामाल आलिंगन सों गड़ि गयो, यातें बिनु गुन माल कह्यो, रूपक अलंकार। रात्रि जागरन बस नेत्र लाल, प्रभात कालि को दुःख बढ़ायबो व्यंग्य। ब्रजचंद रूपक, कलंक वैशिष्ट्य व्यंग्य। सूर से सुहाए हौ—सूर उपमान, से वाचक, सुहायबो धर्म, उपमेय प्रत्यंगोत्कर्ष को लोप, यातें लुप्ता अलंकार। आश्चर्य देखाय परे है कौन घरबसी को घर, बसी करि आए हो। घरबसी पदावृत्तिदीपकालंकार, खंडिता नायिका ॥७३॥

बिनु गुनमाल = बिना सूत की माला। सुराते = अधिक लाल। जावक = पैर का महावर। पीक लीक = पान के पीक की रेखा। अनोत = आश्चर्य। कोत = किधर। घरबसी = घरवाली, गृहिणी ॥७३॥

कवि—दीनदयाल गिरि "परमहंस"

(यथासंख्य-रूपक-चपलातिशयोक्ति-लुप्तोपमा)

दंडक—कूजन न पावै पिक मोर बन बागन मैं,
ठौर ठौर गोपीगन कागन को आदरै।
पथी मधुबन के नृपन के समान ब्रज,
मूँदरी करन की बिभूषन बनी गरै।
रावरी उपासी भई बावरी कला सी स्याम,
दच्छिन निदरि बाम बाम को बिनै करै।
आचरज भारी अब सुनिए बिहारी एक,
बेद की रिचाहू ❀ जोतसी के पाय पै परै ॥७४॥

टीका—ऊधो को बचन कृष्नचंद्र सों। हे स्याम रावरी उपासी गोपीगन बावरी सी भई, पिक मोर बन बाग में कूजन नहीं पावै है। पिक बन में और मोर बाग में, पिक मोर बन बाग में यथासंख्य अलंकार। और ठौर ठौर कागन को आदर करै है, सगुन सूचन हेतु। मधुबन के पथिक जो कोऊ कार्य्यबश वा मग कढ़ै है नृप के समान आदर करै है, पथिक को नृप करि बर्णन, यातें रूपक अलंकार। ऐसी छीन भई कि अँगुरी की मूँदरी गरे को बिभूषन की योग्यता अर्थात् गरे में पहिरै है, और दक्षिण नेत्र भुज निदरि बाम को आदरै है, यहाँ भी शुभ सूचक अभिप्रायगर्भित दोष की प्रार्थना, यातें अनुज्ञा अलंकार। और हे बिहारी श्री कृष्नचंद्र एक यह भारी आश्चर्य सुनिए कि बेद की रिचा है तुम्हारे आगमन हेतु जोतसी के पायन परै है, कलासी पद में लुप्तोपमा अलंकार। गोपिन को बिरह निवेदन है ॥७४॥

मूँदरी = अँगूठी। करन की = हाथों की। रावरी उपासी = आपकी सेविकाएँ। दच्छिन = दक्षिण दिशा, योग्य। निदरि = तिरस्कार करके। बाम = स्त्री। बाम = उत्तर दिशा, उलटा, विपरीत। बिनै = विनय ॥७४॥

❀ पुराणों में भगवान् श्रीकृष्ण को वेदपुरुष और गोपियों को उनकी ऋचाएँ कहा है, अर्थात् वेद कृष्ण रूप में और ऋचाएँ गोपी रूप में अवतीर्ण हुई थीं (गर्ग संहिता में इसका सविस्तर वर्णन है)। इसीलिये उद्धव कहते हैं जो गोपियाँ स्वयं वेद की ऋचा रूप हैं वे आपके आगमन को पूछने ज्योतिषियों के पास जाती है।

कवि—महाराज मानसिंह (रूपक-लुप्तोपमा-श्लेष)

सवैया–प्रथमै चिकसे बन बैरी बसंत के बातन ते मुरझाई हुती।
'दिज देव जू' ताहू पै देह सबै बिरहानल ज्वाल जराई हुती॥
यह साँवरे रावरे नेह सो अंगन प्यारी न जो सरसाई हुती।
तोपै दीप सिखा सी नई दुलही अवलोकिबे की न बुझाई हुती॥७५॥

टीका—चिकसे बन बैनु के सदृश हैं, बातन कहे बयार से भरी। दिज देव० बिरहानल ज्वाल ते जराइ है, यातें रूपक बिरह आगिते। यह साँवरे०—हे साँवरे रावरे नेह सों प्यारी सरसाई है, यह नेह पद दुइ अर्थ को व्यंजक श्लेषालंकार। तो पै दीपसिखा सी०—दीप सिखा उपमान, सी वाचक, एक उपमेय बिना उपमेय लुप्ता॥७५॥

(भ्रम-लुप्तोपमा-स्तुतिनिंदा)

सवैया–ए नहिं वाके उरोज लसै कत श्रीफल के फल झूमि झपेटत।
त्यौं 'दिज देव जू' नाहक ही मुख भौंरे घने अरविंद घुरेटत॥
सो तड़िता सी मिलैगी तुम्हैं किन लाजन आपनो स्वाँग समेटत।
स्याम प्रबीन कहाइ कहा तुम फूलछरीन भुजान सों भेटत॥७६॥

टीका—यह नायिका के उरोज नहीं हैं श्रीफल के फल हैं, अर्थ यह की नायिका सों नायक को वियोग हैं; श्रीफल को देखि उरोज बूझो, यातें भ्रांतिमान् अलंकार। सो तड़िता सी मिलैगी तुम्हैं०—सो कहै वह नायिका तड़िता कहै बिजुली है तुम्हैं मिलैगी, अर्थ काकु करि तुमैं न मिलैगी। तड़िता उपमान, सी वाचक, उपमेय धर्म को लोप ते उपमेयधर्म लुप्ता। स्याम प्रबीन०—हे स्याम प्रबीन कहै चतुर कहाइ फूलकी छरी भुजा सों भेटत, अर्थ यह की प्रबीन बरनन ते स्तुति निंदा यह करती है कि तुम बड़े मूर्ख हो तुम्हैं देह नायिका की और फूल की छरी नहीं जानि परै है, यातें स्तुतिनिंदा अलंकार है॥७६॥

(लुप्तोपमा-रूपक-दीपकावृत्ति-संभावना)

सवैया–चाहि है चित्त चकोर दवा श्रुति आपनो दोष परोसिनै लै है।
ए दिग अंबुज से अकुलाइ कला बिषबंधु की हाइ अँचै है॥
ऐसी कसामसी मैं 'दिज देव' अली अलि के गन गाइ सुनै है।
ह्वै है सो कौन दशा तन की जो पै भौन बसंत लौं कंत न ऐ है॥७७॥

कत = क्योंकर। श्रीफल = बिल्वफल। घुरेटत = समझते हैं। फूलछरीन = फुलझड़ियों को॥७६॥

दवा = अंगार। बिषबंधु = चन्द्रमा। अँचैहै = पी जायँगे॥७७॥

टीका—चित्त चकोर पद ते रूपक *अलंकार। ए दिग अंबुजसे—दिग उप*-मेय, अंबुज उपमान, से वाचक ते धर्म बिना धर्मलुप्तालंकार। ऐसी कसामसी पद०—अली अलि पद ते दीपकावृत्ति। है है सो कौन दशा। है है कौन दशा तन की जौ पै बसंत लौं कंत न ऐहैं। जौलौं तौलौं वाक्य तें संभावनालंकार। प्रोषितपतिका नायिका ॥७७॥

(रूपक-श्लेष-उत्प्रेक्षा)

दंडक—बहि हारे शीतल सुगंधित समीर धीर,
कहि हारे कोकिला सँदेशो पंचबान के।
साधन अगाधन बिसानी न कछूक जापै,
कौन गनै भेद पग सीसदान मान के।
'दिज देव' की सौं कछु मित्र के बिछोह काल,
देखि सकुचाने द्रिग अंबुज अयान के।
भाजोई भभरि सो तौ मान मधुकर आली,
आज ब्याज कज्जल कलित अँसुवान के ॥७८॥

टीका—शीतल समीर, कोकिला बोलि हारे और साधन अगाधन कहै बहु कियो पै कछु न बिसानी कहै कार्य न साध्यो, यातें बिशेषोक्ति। दिज देव की सौं कहै कसम करि कहत हौं। मित्र के बिछोह समै सकुचाने द्रिग अंबुज, यातें यह अर्थ व्यंजित भयो कि मित्र नाम सूर्य्य के अस्त भये कमल सकुचाय है, तैसे मित्र कहै नायक को बिछोह भयो तौ नायिका के नेत्र सकुचाने कमल रूपी, यातें मित्र के दुइ अर्थ ते श्लेष, द्रिग अम्बुज ते रूपक। भाजोई भभरि०—कहै भागौ हौ भभरि कै मान मधुकर, ए आली जो यह कज्जल जुत कहै सने आँसू नायिका की आँखिन ते गिरे हैं सो मधुकर कहै भौंर होइ, कज्जल कलित आँसू संभाव्यमान पद, याते वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया, नायिका कलहांतरिता ॥७८॥

कवि—ग्वाल

(रूपक-उदात्त-उत्प्रेक्षा)

दंडक—काठी कामतरु तैसे सीधी है सलाक सम,
चाँडी बिश्वकरमै खरादि खुस खासा है।

बहि = बहकर। पंचबान = कामदेव। साधन अगाधन = अनन्त प्रयत्नों से। बिसानी न कछू = कुछ फल न मिला। सौं = शपथ। मित्र = सूर्य, प्रियतम। अयान = बाला। भाजोई = भागा यह। भभरि = डरकर, घबराकर। ब्याज = बहाने ॥७८॥

चामीकर तारन के जाल करि रंग तापै,
चिंतामनि जड़ित जड़ावन को वासा है।
'ग्वाल कवि' नंद के लड़ाइते कुँवर जू की,
लकुट लड़ैती ताकी ताक्यौ मैं तमासा है।
मानौ श्री सनेह को समर एक चोपदार,
ता के पानि मंजुल मैं अद्भुत आसा है ॥७९॥

टीका—यह कृष्न जी की लकुटी को बरनन है। काठी कहे काठ यह कामतरु, तैसे सीधे सोक्ष कैसे है जैसे सलाक, यातें रूपक। चामीकर०—चामीकर कहे चाँदी सोनादिक, चिंतामनि रतनादिक ऐश्वर्य वर्नन ते उदात्तालंकार। मानौ०—श्री कहे लक्ष्मी, सनेह कहे प्रीत, समर कहे काम सर चोपदार, ताके पानि कहे हाथ, तामें आसा है यह लकुटी कृष्न के हाथ में जो है, संभाव्यमान पद ते वस्तूत्प्रेक्षा सिद्धविषया अलंकार ॥७९॥

(रूपक-लुप्तोपमा)

दंडक—मोहन बंदूकची सुमेर की बंदूक बाँधि,
कीन्ही देवतान की सुगज गजखाने मैं।
मारतंड तनया सी गोली अनतोली भरि,
वृंदाबन विदित बरूद सरसाने मैं।
'ग्वाल कवि' मथुरा चमकदार पथरी दै,
गोकुल अनूप कल तुरत दबाने मैं।
साज प्रागराज सो दराज ही अवाज होत,
छूटत ही लागै जाय पातक निशाने मैं ॥८०॥

टीका—मोहन कहे श्रीकृष्न, बंदूकची कहे बंदूक को चलावन हारे, सुमेर की बंदूक, देवता को गज, यातें रूपक समस्त विषयी। मारतंड तनयासी कहे जमुना, सी वाचक, गोली उपमेय, धर्म लुप्ता। ग्वाल कवि०—मथुरा चमकदार पथरी, गोकुल अनूप कल कहे कर है, पातक निशान है। पातकनिशाना तद्रूप सम ॥८०॥

काठी = काष्ठ, लकड़ी। कामतरु = कल्पवृक्ष। चाँडी...खासा है = विश्वकर्मा ने जिसे प्रसन्नता से खराद कर कौशल से गढ़ा है। चामीकर = सुवर्ण। चिंतामणि = एक रत्न विशेष, जो सब मनोरथ पूर्ण करता है। जड़ावन = रत्नों। लड़ाइते = प्यारे। लड़ैती = प्यारी। चोपदार = सिपाही। आसा = बल्लम ॥७९॥

सुगज = सुंदर गज, बारूद भरनेका डंडा। मारतंड तनया = यमुना ॥८०॥

(दीपकावृत्ति-रूपक असंबंधातिशयोक्ति)

दंडक—रेवती रमन कीन्हो बसन बिचित्र बेस,
राधिका रँवन कीन्हो बपुष रसाल है।
चंद्र मैं प्रसिद्ध रूप सोहै रस भूप सम,
लीन्हे चंद्रधर तमोगुन जो कराल है।
'ग्वाल कवि' कमला किए हैं कर कंजनील,
नीलमनि भूषन बनाए जग जाल है।
मारतंड तनया तिहारो स्याम रंग काम,
रह्यौ मंडि लोकन मैं मंडन बिशाल है ॥८१॥

टीका—रेवती रमन कहै बलिभद्र बसन कीन, राधिका रमन बपुष कहै देह कीन। रमन रमन पद, कीन कीन पद, शब्द अर्थ एकई है, ताते दीपकावृत्ति अलंकार। चन्द्रमा मैं कलंक, चंद्रधर महादेव मैं तमोगुन, कमला कहै लक्ष्मी के कर मैं नील कमल इत्यादि पदनै मैं है जमुना तिहारो रंग मंडित है, एक वस्तु को अनेक ठौर बरनन, ताते विशेषालंकार। सोहै रस भूप सम—सोहै सोभित है, रसभूप कहै शृंगार रस सम, यातैं रूपकालंकार है ॥८१॥

(पूर्णोपमा-रूपक-अक्रमातिशयोक्ति)

गोरी गरबीली जाकी गति है गयंद मंद,
गरे मुकुताहल के गजरा मराला वह।
कज्जल कलित दृग ललित लुनाई भरे,
श्रीफल उरोजन पै मृगमद आला वह।
'ग्वाल कवि' रविजा तिहारे नीर न्हाइ आई,
धाई लेन देवन की अवली बिशाला वह।
सीप दीप मृग ए पहुँचि पहिलेई गए,
पाछे स्यामरूप ह्वै सिधारी नव बाला वह ॥८२॥

टीका—गोरी गरबीली कहै सुन्दरी ऐसी है कि जाकी गति गयंद सी मंद है, याते पूर्णोपमा। श्रीफल उरोजन पै०—यह रूपक अलंकार। सीपदीप०—मृग पहिलेई पहुँचि गये पीछे स्याम रूपह्वै कै वह बाला कहै सुन्दरी सिधारी, यातैं अक्रमातिशयोक्ति ॥८२॥

राधिका रवन = श्रीकृष्ण। रसभूप = रसराज, शृङ्गार। चन्द्रधर = शिव जी। नीलमनि = नीलम। मंडि = व्याप्त। मंडन = अलंकरण ॥८१॥

मुकुता हल = मुक्ताफल। लुनाई = लावण्य ॥८२॥

कवि—अयोध्या प्रसाद वाजपेयी (प्रतीप-दीपकावृत्ति-रूपक)

दंडक—उड़िगे चकोर मोर खंज सिलीमुख जोर,
जंगल गे उरग तुरग मृग द्विपनाह।
झष मारि मन हारि कंज कारि बूड़े बारि,
ऊपर परीन की परीन की परीन आह।
'औध' अकबाल यो बहाल हरि हाल लाल,
सौति साल बोल चाल वाह वाह आह आह।
लखत सखत दसखत ए तखत भाव,
बखत बलंद प्यारी तेरे नैन पातशाह ॥८३॥

टीका—चकोर खंजन आदि लज्जित, ताते प्रतीप। झखमारि०—झष कहैं मीन, कंज बूड़े बारि। परीन की परीन की०—दीपकावृति अलंकार परीन परीन पद ते व्यंजित है। प्यारी-तेरे नैन पातशाह, याते रूपक ॥८३॥

(पूर्णोपमा-लुप्तोपमा-दीपकावृत्ति-रूपक)

सवैया—तन स्याम घटा सी छटा सी दुकूल प्रकाशत 'औध' बिराजत ही।
बिन देखे छमा सी छमासी पला उपहाँसी की नासी न काजत ही।
मृदु हाँसी की फाँसी में फाँसी फिरै सुषमा सी उदासी न साजत ही।
बिषवासी ये गाँसी सिखा सी हिए लगै बंसी बिशासी के बाजत ही।॥८४॥

टीका—तन स्याम घटा सी है, तन उपमेय, घटा उपमान, सी वाचक, धर्म नहीं है याते धर्म लुप्ता। छटा सी०—छटासी दुकूल छटा कहै बिजुली प्रकाशत कहै चमकत है, चमक धर्म ते पूर्णोपमालंकार। बिन देखे पद०—छमासी छमा सी पद ते दीपकावृत्ति। मृदुहाँसी०—कहै मंद हाँसी की फाँसी में फँसी कहै बझी फिरै है, याते रूपक। विषवासी०—बिषवासी कहै माहुर जामैं बसो है, ऐसी बंसी बोलती कि उर में लागत ही कहै सुनते ही दुःख उपजै है ॥८४॥

सिलीमुख = भ्रमर। द्विपनाह = गजराज। झष = मीन। कंजकारि = कमलों को काढ़कर। परीनकी...आह = अत्यन्त सुन्दरी परियाँ भी आह भरने लगीं। अकबाल= प्रताप, सौभाग्य। साल= दुःख। बलंद = ऊँचा, श्रेष्ठ ॥८३॥

छमा = डुबकी। छमासी = छः मास का समय। पला = एक पल। बिषवासी = विषभरी। गाँसी = बर्छी। उपहाँसी = उपहास, निन्दा। बिशासी = विश्वासघाती ॥८४॥

कवि—सरदार (रूपक-दीपकावृत्ति-उल्लास-अलंकार)

दंडक—खेलै लगे खेल री खुशाल खोटे खंजरीट,
राजहंस बंस ते प्रसंश परसै लगे।
गुंजि गुंजि मालतीन पै मलिंद बृंद बृंद,
कंज मकरंद बारे बुंद बरसै लगे।
'कवि सरदार' काश कुसुम कसाई कूर,
शरद ससाई के दरस दरसै लगे।
वोज मन मंजुल मनोज बरसै री बैरी,
सर सर सरन सरोज सरसै लगे ॥८५॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूणनामक-ग्रंथे गोकुलकायस्थविरचिते
अक्रमसंसृष्टिवर्णनं नाम नवमः प्रकाशः ॥९॥

टीका—यह अनुशयाना नायिका की उक्ति है। खेलै कहै फिरै लगे, खुशाल कहै खुसी ह्वै कै, खोटे खंजरीट कहै खञ्जन, राजहंस कहै मराल, विहरै लगे अर्थ की बरषा बिगत देखि सरद रितु जानि मोद मई विहरै है। कवि सरदार पद०—सरदार कवि की उक्ति है कि काश कुसुम काश फूलते देखि संकेत अभाव भयो है, जब काश में फूल फूलत है तब पुरजन काटि डारत है, याते नायिका को दुःख दरसायो। रितु के गुन ते दोष, ताते उल्लास अलंकार भयो। काश कुसुम कसाई कूर पद तें रूपक अलंकार। सर सर पद०—सर सर कहै ताल ताल में सरोज कहै कमल सरसै लगै कहै अधिकान लगे। सर सर पद शब्द अर्थ एकई है, ताते दीपकावृत्ति ॥८५॥

इति श्रीदिग्विजयभूषणनामग्रन्थे गोकुलकायस्थविरचिते टीकायाम्
अक्रमसंसृष्टिवर्णनं नाम नवमः प्रकाशः ॥९॥

खुशाल = प्रसन्न हुए। खंजरीट = खंजरीट पक्षी। मलिंद = भौंरे। शारद ससाई = शारदीय चाँदनी ॥८५॥

दशमः प्रकाशः

(क्रम से संसृष्टि)

दोहा—तिल तंडुल से जहँ प्रगट, अलंकार बहु रूप।
क्रम सों एक कवित्त में, उत्तम रीति अनूप ॥ १ ॥

टीका—तिल तंडुल०—कहै तिल अरु चाउर जेहि भाँति मिले पर देखि परै है तैसे बहुत अलंकार एक में मिले भिन्न देखि परै है, ताहि संसृष्टि अलंकार कहै हैं। क्रम सों कहैं आदि अंत अलंकार के निबाह होइ, जैसे पूरन उपमा, ताके पीछे लुप्तोपमा, ताके पीछे जो अलंकार होइ सो निबहै, ताहि क्रम संसृष्टि कहिये। तासों अलंकार गनना कहै संख्या उचित है ॥ १ ॥

(अलंकार गणना)

दोहा—पूरन उपमा लुप्त कहि, अनन्वयालंकार।
फिरि उपमानोपमेय है, पाँच प्रतीप विचार ॥ २ ॥
षट् रूपक परिनाम यक, द्वै उल्लेख विचारि।
सुमिरन-भ्रांति-संदेह त्रै, छईउ अपह्नुति धारि ॥ ३ ॥

टीका—पूर्णोपमा एक, लुप्तोपमा आठ, उपमानोपमेय एक, प्रतीप पाँच। रूपक भेद षट्, परिनाम एक, उल्लेख दुइ, सुमिरन-भ्रम-संदेह तीनि, अपह्नुति भेद षट् ॥२–३॥

शुद्धापह्नुति हेतु कहि, परजस्ता को ठानि।
भ्रांता-छेका-कैतवापह्नुति षटौ बखानि ॥ ४ ॥

टीका—सुद्धापह्नुति, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रांता-छेका कैतवापह्नुति ॥ ४ ॥

उत्प्रेक्षा षट भेद है, बस्तु हेतु फल होइ।
रूपकाति - सापह्नवा, भेदकाति कहि सोइ ॥ ५ ॥
संबंधातिसयोक्ति कहि, असंबंध सै उक्ति।
अक्रमाति - चपलाति है, अत्यंतातिसयोक्ति ॥ ६ ॥

टीका—उत्प्रेक्षा षट्—बस्तु, हेतु, फल, उक्त, अनुक्त, सिद्ध, असिद्ध। अति-

शयोक्ति आठ—रूपकातिशयोक्ति, सापन्हावति०, भेदकाति०, संबंधाति०, असंबंधाति०, अक्रमाति०, चपलाति०, अत्यंतातिशयोक्ति ॥५–६॥

तुल्यजोगिता तीनि है, दीपक एकै भाँति।
तीनि दीपकावृत्ति है, पदहि अर्थ त्रैजाति ॥ ७॥
प्रतिबस्तूपम एक है, दृष्टांतौ कहि एक।
तीनि प्रकार निदर्शना, यक बितरेक बिबेक ॥ ८॥

टीका—तुल्य जोगिता तीनि, दीपक एक, दीपकावृत्ति तीन, प्रतिबस्तूपमा एक, दृष्टांत एक, निदरशना तीनि, व्यतिरेक एक ॥ ७,८ ॥

एक सहोक्ति, बिनोक्ति द्वै, समासोक्ति है एक।
परिकर, परिकरअंकुरौ, त्रै श्लेष बिबेक ॥ ९॥
अप्रस्तुतप्रसंस यक, प्रस्तुतअंकुर एक।
पर्यायोक्ति व्याजोक्ति द्वै, त्रै निषेध धरि टेक ॥१०॥

टीका—सहोक्ति एक, बिनोक्ति द्वै, समासोक्ति एक, परिकर एक, परिकर अंकुर एक, श्लेष तीन, अप्रस्तुप्रशंसा येक, प्रस्तुतअंकुर एक, पर्यायोक्त, व्याजोक्ति द्वै, निषेध तीनि ॥९,१०॥

एक बिरोधाभास है, षट बिभावना जानि।
बिशेषोक्ति है एक ही, एक असंभव ठानि ॥११॥
बिषम असंगति सम त्रिबिध, एक बिचित्र प्रवीन।
अधिक दोय यक अल्प है, एक अन्यौना कीन ॥१२॥

टीका—बिरोधाभास एक, बिभावना षट्, बिशेषोक्ति एक, असंभव एक, बिषम तीनि, असंगति तीनि, चित्र एक, अधिक दोइ, अल्प एक, अन्योन्या एक ॥११,१२॥

त्रै बिशेष व्याघात द्वै, कारनमाला येक।
एक यकाबलि जानिए, मालादीपक एक ॥१३॥
जथासंख्य यक, सार यक, परजाया द्वै रूप।
परिबृत्त यक, परिसंख्य यक, एक बिकल्प अनूप ॥१४॥

टीका—बिशेष त्रै, व्याघात द्वै, कारणमाला, एकावलि, माला दीपक, यथा-संख्य, सार एक एक, परजाय द्वै, परिबृत्ति, परिसंख्या, बिकल्प एक ॥१३–१४॥

दोइ समुचै बरनिए, कारकदीपक येक।
यक समाधि, प्रतिनीक यक, काव्यार्थापति एक ॥१५॥

काव्यलिंग यक बिधि कही, यक अर्थान्तर न्यास।
यक बिकसर प्रौढोक्ति यक, संभावन यक भास ॥१६॥

टीका—दोइ समुच्चै, कारकदीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्था-पत्ति एक काव्यलिंग, बिधि, अर्थान्तरन्यास, बिकसर, प्रौढ़ोक्ति, संभावना एक एक ॥१५,१६॥

मिथ्याध्यवसित एकई, एक ललित को जानि।
तीनि प्रहर्षन कहत कबि, एक बिषाद बखानि ॥१७॥
चारि भाँति उल्लास है, येक अवग्या होय।
येक अनुग्या लेस द्वै, मुद्रा एकहि सोय ॥१८॥

टीका—मिथ्याध्यवसित, ललित एक, प्रहर्षण तीनि, विषाद एक, उल्लास चारि, अनुग्या एक, अवज्ञा एक, लेस द्वै, मुद्रा एक ॥१७,१८॥

रत्नावलि, तद्गुन सु यक, पूर्वरूप द्वै भाँति।
येक अतद्गुन अनुगुनौ, मीलित एकहि जाति ॥१९॥
सामान्या, उन्मीलितौ, औरो येक बिशेष।
गूढोत्तर, चित्रोत्तरौ, सूक्षम, पिहित परेष ॥२०॥

टीका—रत्नावलि, तदगुन एक, पूर्व रूप द्वै, एक अतद् गुन, अनुगुन, मीलित एक, सामान्य, मीलित, विशेष, गूढ़ोत्तर, चित्रोत्तर, सूक्ष्म, पिहित एक एक ॥१९,२०॥

व्याजोक्तिक, गूढोक्ति कहि, बिवृतोक्ति, यक जुक्ति।
लोक उक्ति, छेकोक्ति यक, बक्रोक्तिक द्वै, वक्ति ॥२१॥
स्वभावोक्ति, भाविक कही, है उदात्त द्वै सोइ।
यक अत्युक्ति, निरुक्ति यक, प्रतिषेध, बिधि दोइ ॥२२॥

टीका—व्याजोक्ति, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, जुक्ति, लोक उक्ति, छेकोक्ति एक, वक्रोक्ति द्वै, स्वभावोक्ति, भाविक एक, उदात्त द्वै, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रति-षेध एक, विधि द्वै ॥२१,२२॥

हेतु अलंकृत दोय बिधि, कबि कुल पावन जानि।
कहै एक सै आठ लिखि, चंद्रालोक बखानि ॥२३॥

टीका—हेतु दोइ, एते आदि दै एक सै आठ अलंकार है ॥२३॥

रस राजा सिंगार रस, उचित बिभूषन ताहि।
रच्यौ अलंकृत जे सकल, रस सिंगार के माँहि ॥२४॥

टीका—तिनको राजा शृंगार रस, ताको भूषन अवश्य उचित, यातें भूषन स्थानीय अलंकार द्वै बिध कविन बनायो ॥२४॥

(भाषा-भूषन)

दोहा—बाचक धर्मरु बर्ननिय, जहँ चौथो उपमान।
यक बिनु द्वै बिनु तीनि बिनु, उपमा[२] लुप्त बखान ॥२५॥

टीका—उपमान, उपमेय, बाचक, धर्म, इनके मध्य एक अथवा द्वै अथवा तीनि न होयबे के कारन आठ भेद लुप्तोपमा के होत हैं ॥२५॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(अथ पूर्णोपमा, वाचकलुप्ता, धर्मलुप्ता, धर्मवाचक-लुप्ता, उपमेयलुप्ता, बाचकोपमेयलुप्ता, उपमानलुप्ता, वाचकोप-मानलुप्ता, धर्मोपमानलुप्ता, धर्मोपमानवाचकलुप्ता)

दंडक—मंद मंद गति कै गयंद की सी मंजु पुंज,
काकली रसीली बैन कढ़ै मुख जाके हैं।
जाँघ केदली सी लखि कीन्हे हैं बखान 'बृज',
मृगपति लंक अंक बंक भौंह ताके हैं।
अधर अरुण सोहैं वोप है उरोज ऐसे,
नारि मृगनैनी हाव भाव सुषमा के हैं।
रंभा है निबाहै नेह दीपति बिलास देह,
छबि तें प्रकाशै गेह रूप बनिता के हैं ॥२६॥

टीका—मंद धर्म, गति उपमेय, गज उपमान, सों बाचक, याते पूरन उपमा। काकली उपमान, रसील धर्म, बैन उपमेय, बाचक[१] लोप। जाँघ उपमेय, केदली उपमान, सी बाचक, यातें धर्म[२] लोप। मृगपति उपमान, लंक उपमेय, धर्मबाचक[३] लोप। बंक धर्म, भौंह उपमेय, उपमानवाचक[४] लोप। अरुण धर्म,

---

१—भाषाभूषण में १-'है' २-'लुप्तोपमा प्रमान' यह पाठान्तर है।

गयंद = हाथी। काकली = मधुर ध्वनि। केदली = केला। लंक = कमर। बंक = बक्र, टेढ़ी। वोप = ओप, आभा। दीपति = दीप्ति, कांति ॥२६॥

अधर उपमेय, सो वाचक, उपमान लोप। उरोज उपमेय, सो वाचक, धर्म-उपमान लोप। हेमलतिका सी उपमेयधर्म लोप। रंभा उपमान, नेह निबाहे धर्म, सी वाचक, यातें उपमेय लुप्त। और रंभा सी निबाहे नेह व्यंग्य। रंभादि नेमा गनिका इन्द्रकी, यातें गनिका नेमा ॥२६॥

(अनन्वय[1]-उपमेयोपमा-पाँचौं प्रतीप)

दंडक—उपमा न आन तो सों तुहीं उपमान नैन,
कंज के बखान कंज लोचन से रति की।
बने हैं कपोल से अमोल आदरस गोल,
सुने कल बोल लजैं बीना बानी मति की।
गरब करति कहा मुख की छबीली बलि,
देखै छपाकर छबि छावै आभा अति की।
नैन के निरीछन सें मंद भए मैन बान,
मंद गति आगे न प्रभा गयंद गति की ॥२७॥

टीका—उपमा न तोसों उपमान तुही याते अनन्वय। जहाँ उपमेय उपमान है जाइ नैन कंज सें और कंज नैन सें, पर्याय सें उपमानोपमा, यातें उपमेयोपमा।

दोहा—उपमा लागै परसपर, सों उपमानुपमेइ[2] ॥

कपोल सें आदरस बने, यातें प्रतीप प्रथम, जब उपमेय सों उपमान कीजै। कल बोल सुने बीना लजै, उपमान जहाँ समता लायक नाहि चौथो प्रतीप। गरब कहा करती अपने मुख को छिपा कर को देखो उपमेय को आदर जहाँ

१—अनन्वय—लक्षण देखिये टि० पृ० ५३। उपमेयोपमा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ उपमान और उपमेय दोनों को क्रमशः उपमेय और उपमान बनाया जाय। जैसे उक्त पद में 'कंज नैन सदृश हैं और नैन कंज सदृश हैं' इस प्रकार कंज और नैन दोनों क्रम से उपमान और उपमेय बन जाते हैं।

यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि अनन्वय में एक ही पदार्थ उपमान और उपमेय दोनों होता है। इसमें दो भिन्न भिन्न पदार्थ परस्पर उपमानोपमेय होते हैं जो तीसरे किसी पदार्थ से उसके सादृश्य का व्यवच्छेद कराते हैं यही भेद है। प्रतीप, देखिये टिप्पणी पृष्ठ ८८।

कंज = कमल। आदरस = दर्पण। कलबोल = सूक्ष्म मधुर ध्वनि। बानी = सरस्वती। छपाकर = चन्द्रमा। निरीछन = निरीक्षण, देखना। मैन = कामदेव ॥२७॥

२—भाषा भूषण ४।४७।

उपमान सें न होय दूसरो प्रतीप। "दोहा—उपमा से उपमेय को, आदर जहाँ न होयँ।।" नैन के निहारे तेरे मैन बान मंद, अन आदर उपमेय ते उपमान को तीसरो प्रतीप। तेरे गति आगे गयंद चाल की कुछ शोभा नाहीं उपमान उपमेय आगे व्यर्थ होय तहाँ। "दोहा—व्यर्थ होय उपमेय से जहाँ देखि उपमान" पञ्चम प्रतीप ।।२७।।

(रूपक षट)

कवित्त–आनन अमंद इंदु इंदु ते अधिक सदा,
आभा अभिराम रातौदिन यक ठान के।
उपजे न सिंधु ते हैं बिद्रुम अधर लाल,
हीरा है दसनजोन्ह मंद मुसकान के।
तीक्षन नयन एई ईक्षन हैं मैन बान,
अधिक करत बिन मारत कमान के।
आली है मराली पय संभव न मानसर,
चाहत न मुकतान बानि पहिचान के ।।२८।।

टीका—आनन इंदु इंदु ते अधिक, तातें अधिक तद्रूप[1]। अधर बिद्रुम पै समुद्र से नहीं, याते न्यूनतद्रूप[2]। हीरा है दशन समतद्रूप[3]। जोन्ह मुसकान समै अभेद रूपक। नैन, ए ईं मैन बान बिना कमान यातें, अधिक[4] अभेद रूपक। यह मराली मानसर की नहीं यातें निउन अभेद[5] रूपक।

दोहा—है रूपक[2] द्वै भाँति को, मिलि तद्रूप अभेद।
अधिक निउन सम दुहुन में, तीनि तीनि करि भेद ।।

और मुकता नहीं चाहै याते स्वकीया व्यंग्य है ।।२८।।

(परिणाम[3] दोनों उल्लेख-स्मरण-भ्रम-संदेह)

दंडक—नैन अरबिंद सों बिलोकती हो जाको जब,
पति जानै प्रीति मैं अनीति सौति जानै री।

१—भाषा भूषण ४।४९। २—भाषा भूषण ४।५३।

अमंद = पूर्ण प्रकाशमान। दसन जोन्ह = दन्तकान्ति। ईक्षन = दृष्टि। कमान = तीर। मराली = हंसी। मानसर = मानससरोवर। मुकुतान = मोतियों को। बानि = स्वभाव, आदत ।।२८।।

३—परिणाम का अर्थ है परिवर्तन। जब स्वयं किसी कार्य को करने में असमर्थ हुआ उपमान, उपमेय रूप में परिणत होकर कार्य करे तो परिणाम

गोरि की गुराई गिरा गुन भारती की छबि,
बानि कुलकानि 'बृज' कोविदै बखानैरी।
ऐरी मेरी सीख लेरी छोड़ि मान चलै तेरी,
वैतौ लखि सुधाधर सुधि तेरी आनैरी।
मुख मंजु कंज जानि घेरिहैं मलिंद बृंद,
चंद्रमा की चंद्रमुखी चकै चकवानैरी ॥२९॥

टीका—नैन अरबिंद सें देखात है, नैन कंज है देखन क्रिया तें परिनाम करै, क्रिया उपमान है वर्णनीय परिनाम। पति प्रीतमै जानै, सौति अनीति जानै, सो उल्लेख, जो एक को बहु समुझै बहु रीति। गोरि आदि बहुत गुन बहुविधि बरनै एक को, सो दूसर उल्लेख। वैतौ चन्द्रमा को लखि तेरी सुधि करत, तातें मान छांड़ि चलै, सुमिरन। और चलत में मुख कंज जानि घेरिहै भ्रम। और चंद्रमा की चंद्रमुखी चकवा चकि है, यातें संदेह। नायिका मानिनी। "सुमिरनै भ्रम संदेह, यह लक्षन नाम प्रकाश" ॥२९॥

(शुद्धा-हेतु-पर्यस्ता-भ्रांति-छेका-कैतवापह्नुति)

कवित्त–लाली दिग होय नाहिं सौत भाल लाल बिंदु,
तीछन छपाकर न रैनि रबि आगि है।
होइ न सुधाधर सुधाधर है सौतिमुख,
जाहि लखि स्याम छोड़ि धाम अनुरागि है।
चढ़ो तन ताप ज्वर होइ न मनोज दाप,
बेध करै हिय तीर न समीर लागि है।
शीतल सलिल मिसु हीतल जरावै हाइ,
बिष बरसावै मेघ कहौ कहाँ भागि है ॥३०॥

अलंकार होता है। जैसे 'नैन अरबिंद सों बिलोकती' पद में उपमान अरबिंद स्वयं विलोकन में समर्थ नहीं, अतः उपमेय नैन में परिणत हो गया और नैन अरबिंद सो कहा। देखिये टि०—उल्लेख पृ० ४९, स्मरण-पृ० ८०, भ्रम-पृ० ६४, संदेह-पृ० ७२। १—भा० भू० ४।६०।

गुराई = गोरापन। कुलकानि = वंश मर्यादा। सुधाधर = चन्द्रमा। मलिंदबृंद = भ्रमर समूह। चकै = शंका करेंगे ॥२९॥

दिग = दिशाओं में। छपाकर = चन्द्रमा। रैनि = रात्रि में। सुधाधर = अमृतयुक्त, चन्द्रमा। मनोजदाप = कामाग्नि का संताप। समीर = वायु। मिसु = बहाने ॥३०॥

टीका—यह नायिका बियोगिनी चंद्रोदय की लाली देखि कहै है कि यह दिशा की लाली नहीं,यह सौति के भाल को बिंदु लाल है, धर्म ललाई आरोप तें शुद्ध अपह्नुति। "धर्म दुरै आरोप तें सुद्धापह्नुति जानि ॥" तीछन छपाकर० —रैनि में रबि नहीं होय है, तब सखी कही क्या है ? आगि बतायो, अर्थात् समुद्र से उठी बड़वानल की ज्वाल देखि परै है। हेतु तीछन आगि में ठहरायो चन्द्रमा को छपायो, यातें हेतु अपह्नुति। "वस्तु दुरावै जुक्ति सों हेतु अपह्नुति होइ ॥" होइ न०—यह सुधाधर न होइ, सुधाधर सौति मुख, जो पान करि स्याम हमें छोड़े, सुधाधरपनौ सौति मुख में ठहरायो, यातें पर्यस्तापह्नुति। "परजस्त जु गुन और के और बिषे आरोप ॥" चढ़ो तन०—तन तापज्वर, सखी कहो न मदनदाप है, यातें भ्रांति अपन्हुति। "भ्रांति अपह्नुति बचन सों भ्रम जब पर को जाय ॥" बेध करै०—बेध किये हीं कों, सखी तीर कहो, नायिका कहो न समीर लागे है, यातें छेकापह्नुति। "छेकापह्नुति जुक्ति करि पर सों बात दुराय ॥" शीतल जल मिसु मेरे हिय कों जरावै, कों मेघ बिष बरसावै। जहाँ साँची बात को छिपावनो तहाँ कैतवापह्नुति। "कैतौपह्नुति एक मिसु करि बरनन कबि आन" इति ॥३०॥

(छइउ-उत्प्रेक्षा)

दंडक—मंद मंद चलै मानो जोबन के भार ही तें,
समता न गति यातें हंस छोड़ै मानसर।

१—भा० भू० ४।६२। २—भा० भू० ४।६३। ३—भा० भू० ४।६४। पर्यस्त का अर्थ है प्रक्षिप्त अर्थात् फैंका हुआ। जहाँ एक वस्तु का धर्म दूसरे पर फैंका जाता है अर्थात् आरोप किया जाता है, वहाँ पर्यस्तापह्नुति होती है। इसमें धर्मवाला शब्द प्रायः दो बार प्रयुक्त होता है, जैसे 'सुधाधर' पद उक्त पद में दो बार आया है।

४—भा० भू० ४।६५। उपमेय में होनेवाली उपमान की भ्रांति का जहाँ उक्ति से निवारण किया जाय, वहाँ भ्रान्तापह्नुति होती है। जैसे उक्त पद में काम जन्य दाह में जो साधारण ज्वर की भ्रान्ति हो गई थी उसका निवारण किया गया है।

५—कैतव का अर्थ है छल या बहाना। जहाँ एक के बहाने से अन्य का वर्णन किया जाय अर्थात् वास्तविकता को छिपाया जाय, वहाँ कैतवापह्नुति होती है। जैसे उक्त पद्य में "मेघ जल नहीं विष बरसा रहे हैं।" कह कर जलवर्षण की वास्तविकता छिपाकर उसमें विषवर्षण का आरोप किया है, और हृदय के जलने से उसे पुष्ट किया है।

लंक छीन करिबे को बिधि कै नितंब पीन,
देह सम होन सोन तप कै अनल जर।
हरी सारी परी है उरोज पर न्हात नारि,
दबे मानो कलिका सरोज पुरईन तर।
खेलै सरसी मैं 'ब्रज' कर तें पखारै मुख,
धोवत कलंक कंज मानहु मयंक कर ॥३१॥

टीका—मंद गति चलै मानो जोबन के भार तें। जोबन के भार तें मंद चलनो अहेतु, ताहि हेतु माने, यातें हेतूत्प्रेक्षा। जोबन को भार सिद्ध है, तातें सिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा। अरु समता गति हंस न पाए, यातें पावस में मानस त्यागे, गलानि आई, यह अहेतु। वै तौ स्वभाव ही पावस में त्यागते हैं, यातें दूसरी हेतु, गतिसमता चाह सी असिद्ध, याते असिद्धास्पदा हेतूत्प्रेक्षा। "जहँ अहेतु को हेतुहि मानै। हेतूत्प्रेक्षा द्विविध बखानै॥" लंक छीन करिबो, यातें नितम्ब को बढ़ाये बिधि यह फल पाइबे को। "जहाँ अफल कों फलकरि मानै। फल उत्प्रेक्षा द्विविध बखानै॥" कटि छीन नितंब पीन स्वतः सिद्ध है, यातें सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा। और देह समता होन सोन तप करै है। समता होन फल सो नहीं, सोन तौ सदै जरत है। समता होन चाह असिद्ध, यातें असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा। और हरी सारी उरोज पर परी है। हरी सारी सिद्ध वस्तु। पुरइनि के पात तर कली दबी है, यह आस्पद संभावना करिबे की वस्तु है, यातें उक्तविषया वस्तूप्रेक्षा। धोवत०—कंज मयंक के कलंक मुख को कर सों धोवत, वस्तु संभावना और कंज चंद्रमा को कलंक धोइबो असिद्ध, यातें असिद्ध विषया वस्तूप्रेक्षा। भाषाभूषन—

दोहा—उत्प्रेक्षा संभावना वस्तु हेतु फल लेषि।
वस्तु द्विविध उक्तास्पदा अनुक्तास्पदा पेषि॥

उत्प्रेक्षा तीनि–हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, वस्तूप्रेक्षा। सिद्धास्पदा, असिद्धास्पदा, हेतूत्प्रेक्षा। सिद्धास्पदा असिद्धास्पदा, फलोत्प्रेक्षा। सिद्धविषया, असिद्ध विषया वस्तूप्रेक्षा। जाहि विषय संभावना को जैसो आस्पद संभावना संभाव्यमान पद। इति ॥३१॥

मानसर = मानस सरोवर। लंक = कमर। सोन = सुवर्ण। तपके = तपस्या करता है, संताप सहता है। अनल जर = अग्नि में जलकर। सरोज पुरइनि तर = कमल बेलि के नीचे। सरसी = अल्प सरोवर। मयंककर = चन्द्रमा का ॥३१॥

(संबंधाति०, भेदकाति०, सापह्नवा रूपकाति०, असंबंधाति०, अत्यंताति०, अक्रमातिशयोक्ति)

दंडक—सोनबेली साजि चली स्याम के मिलन हेत,
अंग को सुगंध भरो बाग बन जान तें।
औरई बिलास हाँस औरै छबि आस पास,
सुधा भरे मुख सुधा इंदु में बखानतें।
गात रूप देखे सनोमान कब जातरूप,
चंद ह्वै दुचंद पहिले ही जीति ठानतें।
पाछे कुंज सून पाए साथै दुःख दून पाए,
छिगुनी के छला 'बृज' बिछलै भुजान तें ॥३२॥

टीका—सोनबेली साजि चली, सोनबेली केवल उपमान तें रूपकातिशयोक्ति। अंग के सुगन्ध बागबन में भरे यह अजोग ताको जोग ठहरायो। "संबंधातिशयोक्ति, जहँ दई अजोगहि जोग ॥" औरै बिलास हास भेदकातिशयोक्ति। "अतिशयोक्ति भेदक वहै औरै बरनो जात ॥" मुख में सुधा इंदु में मिथ्या कहत है, इहाँ सुधा कहै बचन, वर्णनीय नायिका में सुधापनो छपाय सुधा कह्यो, याते सापह्नवा रूपकातिशयोक्ति, जो बचन सुधा जुत कहते तौ रूपक होतौ। "होइ, छपायो कछु वहै सापह्नव ठहराइ ॥" दोय होय छपायो कछु छपा को अर्थ वर्णनीय बस्तु में कोई गुन राखै और गात को देखे सोनो को सनोमानै यह अजोग, यातें असम्बंधातिशयोक्ति। "अतिशयोक्ति दूजी वहै जोग अजोग बखान ॥" अरु चंद दुचंद भयो, दुख देबे को पहिले ही ठाने, याते अत्यंतातिसयोक्ति। "अत्यंतातिशयोक्ति जो पूरब पर क्रम नाहिं ॥" पाछे कुंज सून पाये ताके साथ ही दुःख पायो, सून देखिबो कारन, दुःख कारज साथ ही भयो। "अतिशयोक्ति अक्रम जहाँ कारन कारज संग ॥" औ छिगुनी

सोनबेली = स्वर्ण लता, (सो + नबेली) वह चतुर नायिका। सुधा = अमृत। सुधा = व्यर्थ, मिथ्या। जातरूप = सुवर्ण। दुचंद = दुगुना। छिगुनी = कनिष्ठिका, कानी अँगुली। छला = छल्ला, अँगूठी। बिछलै = गिर जाता है ॥३२॥

१—दे० टि० पृ० ५४।　२—भा० भू० ४।७१, दे० टि० पृ० ५७।
३—भा० भू० ४।७२।　४—भा० भू० ४।७१।
५—भा० भू० ४।७४।　६—भा० भू० ४।७७।
७—भा० भू० ४।७५।

के छला बाँह में ढीले होन लागे ऐसी कृशता भई, यातें चपलातिशयोक्ति। "चपलात्युक्ति जो हेतु ही ज्ञान होत तेहि काज॥" विप्रलब्धा नायिका ॥३२॥

(तुल्यजोगिता तीनों)

दंडक—चलिबो सुनत मग झलका परत पग,
रावरे की बात साथ काँपै गात वाके हैं।
चंपक चमेली मंजु मालती कठोर तासों,
कोमल अमल देह 'बृज' बनिता के हैं।
कुंती दमयंती सकुंतला रंभा रति आदि,
गौरि की गुराई गिरा गुन समता के हैं।
सौति के गुमान पति मान परपति प्रीति,
करती पराजै ऐसी राजै बनिता के हैं॥३३॥

टीका—इहाँ नायिका की अंग सुकुमारता और चंपकादि कठोरता रूप गुन, ताको बर्ण्य अबर्ण्य ते तुल्यजोगिता।

"तुल्य जोगिता तीनि विध, लक्षन नाम प्रमान।
होइ बरनन की आबरनि, एकै धर्म समान॥
कोक कुंभ नहि लहत सखि सोभा उरज उतंग॥"

वर्ण्य अहै। अवर्ण्य–जहाँ क्रिया रूप धर्म एक होय तहाँ प्रथम, गौरिगिरादि गुन सम उत्कृष्ट सों कहे, यातें दूसरी, गुन सों जहाँ उत्कृष्ट सो सम करि कहत अनूप पतिमान आदि पर पति प्रीति पराजै यह पराजै एक वृत्ति, तातें तीसरी। तुल्ययोगिता, शत्रु मित्र पै वृत्ति सम होत है और प्रकार वृति को अर्थ व्यवहार यह मध्यम दूती। पहिले कहै तुम्हारो नाम सुने सात्विक वाके होत, फेरि कहै परपति प्रीत पराजै करती है, कछु नीक कछु परुष ते जानो ॥३३॥

(दीपक-दीपकावृत्ति)

सवैया–दीप दशा बनिता कच मैं 'बृज' लागे सनेह सबै दुखदा के।
कारी घटा बर सोहै अली बरसो है मिलै छबि देखु छटा के॥

१—भा० भू० ४।७६।

झलका = छाले, फफोले। गुराई = गोरापन। गुमान = गर्व। मान = अहंकार, रूठ जाना। पराजै = पराजय, हार। राजै = चरित्र, रहस्य ॥३३॥

दीपदशा = दीपक की बत्ती। कच = केश। स्नेह = प्रेम, तेल। बर सोहै = सुन्दर शोभित है। बरसो है = बरस रही है। दीह = दीर्घ।

दादुर दीह पुकार करै रव झींगुर के झनकार बिथा के।
काम से माती मयूरी महा मुदमाते मयूर कलाप कला के ॥३४॥

टीका—दीपक बाती मैं औ बनिता के बार में नेह लागे, सुख दीप आदि अबर्ण्य बनिता बर्ण्य एक धर्म, ताते दीपक। "दीपक बर्ण्य अबर्ण्य को एकै धर्म समान।" बरसों है बरसों है प्रथम प्रकार, झनकार दूसरी, माती माते तीसरी दीपकावृत्ति।

"आवृतिदीपक तीनि विधि पद की आवृति होय।
पुनि है आवृति अर्थ की दूजो कहिये सोइ॥
पद अरु अर्थ दुहून की आवृति तीजी होइ।"

मानिनी नायिका रितु देखाय मान छोड़ावती है इति ॥३४॥

(प्रतिवस्तूपमा-दृष्टांत-तीनों निदर्शना)

दंडक—मेघ जल भरे भ्राजै रस भरे राजै स्याम,
काठ तें कठोर कूर मन महा घोर सों।
मीठे तो उदार बैन सोन मैं सुगंध जैसे,
खंजन की चपलाई धरै नैन जोर सों।
'सूर' सों नसित तम बोध यह कीन्हे 'बृज',
जगत बिरोधी नास करै दीह दौर सों।
निज फल बृद्धि हित कुमुद प्रकाश कीजै,
कहि दीजै ऐसी बात नंद के किसोर सों ॥३५॥

टीका—यह नायिका मानिनी, सखी मनावन आई, सो प्रति उत्तर देय है। जल भरे भ्राजै मेघ रस भरे स्याम राजै, सो मेघ जहाँ तहाँ बरसत तैसे स्याम जहाँ तहाँ रस बरसत, यातें धृष्ट नायक, राजै भ्राजै पद तैं प्रतिवस्तूपमा।

'प्रतिवस्तूपमा बाक्य द्वै, उपमेयरु उपमान,
तिन के धर्म जु एक ही, जुदे जुदे पद मान।
सोहत भानु प्रतीप करि, लहै चाप करि सूर॥"

भानु उपमान, सूर उपमेय, सोहत लसत एक धर्म। और काठ सें कठोर कूर मन

रव = शब्द। बिथा = व्यथा। मुद = मोद, प्रसन्नता। मयूर कलाप = मोरों के झुण्ड ॥३४॥

भ्राजै = शोभित होते हैं। राजै = शोभित होते हैं। कूर = क्रूर। सोन = सोना। चपलाई = चंचलता। सूर = सूर्य। नसित = नाश होता है। दीह दौर = लम्बा प्रयाण, दीर्घ दौड़ ॥३५॥

धोर बिम्ब प्रतिबिम्ब तें दृष्टांत। "जहाँ बिंब प्रतिबिंब सो दुहूँ वाक्य दृष्टांत।" और मीठे तेरे बचन उदार, जैसे सोन से सुगन्ध, उपमान वाक्य उपमेय वाक्य जो सो करि एक ठहरावै, सो प्रथम निदर्शना।

"जहँ उपमेय सुवाक्य में, उपमा वाक्य सु जोग।
जो सो करि सु निदरसना, कहत सबै कवि लोग।।"

और खंजन की चपलाई नैन में धरै है, पर नारी देखिवे को उपमान को धर्म उपमेय में राखे, तातें दूसरी निदरसना।

"राखै जहँ उपमेय में उपमा वाक्य सो आनि।
उपमा में उपमेय को धर्म धरै सु बखानि।।"

और रबि सों तम नाश होत, जगत बिरोधी को समुझावै है कि, जगत बिरोधी अर्थ जग कों दुख देन हारे को मेरे ही समान नाश होवै है। वैसे ही नास होत, वैसे ही जो मेरी दुख देन हारी है उनको नास ह्वै है। सत असत के कहनावति सों तीसरी निदरसना। "जहाँ असत को करि क्रिया याही को उपदेश।" जहाँ क्रिया करि असत को समुझावै सत भले कों समुझावै और निज फल बृद्धि अपने हित कमल कों देवो, यह सत निदरसना। यह नंदकिशोर सों कहि दीजै ।।३५।।

(व्यतिरेक[1]-सहोक्ति-विनोक्ति-समासोक्ति-परिकर-परिकरांकुर)

दंडक—पंकज सो नैन मंजु तिरछे कटाक्ष देखे,
साथै छोड़े नेह परगेह जैवो स्याम जो।

१—दे० टि० व्यतिरेक—पृ० ७२, सहोक्ति—पृ० ९७।

विनोक्ति—(विना + उक्ति) किसी से रहित होने का वर्णन। यह दो प्रकार की होती है। वर्ण्य (उपमेय) जहाँ किसी वस्तु के बिना हीन (अशोभन) हो वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में नैन बिना अंजन के शोभा नहीं देते। यही प्रस्तुत (वर्ण्य) जहाँ किसी वस्तु से हीन होने पर अधिक शोभा प्राप्त करता हो वहाँ भी विनोक्ति अलंकार होता है। जैसे तुम्हारा मुख कलङ्कहीन होने से चन्द्रमा से अधिक शोभावान् है।

समासोक्ति—समासोक्ति का अर्थ है संक्षेप में उक्ति। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ कवि ने अपना जो अभीष्ट वर्णन किया है उससे ऐसे किसी वर्णन का आभास हो जाय जिसका उसमें कोई प्रसंग नहीं है। जैसे उक्त पद में कवि ने चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी के भी प्रसन्न होने का वर्णन किया है किन्तु इससे अप्रस्तुत प्रसङ्ग-नायक को देखकर नायिका के प्रसन्न होने का

मुख तो मयंक बिकलंक अति सोभा सोहै,
नैन बिना अंजन न आभा अभिराम जो।
देखि कलाधर कुमुदिनि हूँ मुदित भई,
चलै चंद्रमुखी ताप नासै परिनाम जो।
मिलै 'ब्रज' राज छोड़ि मन के दराज आज,
सूधे कहै मानिहै न नाम तेरो बाम जो ॥३६॥

टीका—नायिका मानिनी, सखी मनावै है कि कंज से मंजु नैन हैं, क्यौं की जामैं कटाक्ष। उपमान तें उपमेय में अधिक गुन, तातें व्यतिरेक। "व्यतिरेक[1] जु उपमान तें उपमे अधिकी देखि।" और तिरछे कटाक्ष तेरे देखत के साथ ही पर नारी नेह गेह छोड़ैं, यातें सहोक्ति, जो साथ ही दूनौ को बरनै। "सो [2]सहोक्ति जो साथ ही बरनै दुहुन बनाइ।" और मुख बेकलंक अधिक शोभा देत। प्रस्तुत मुख कलंक बिना छीन यातें, प्रथम बिनोक्ति। और नैन बिना कज्जल नहीं शोभित, क्यौं मान है। प्रस्तुत नेत्र अंजन बिनु हीन, यातें दूसरी बिनोक्ति।

दोहा—"है बिनोक्ति[3] द्वै भाँति की, प्रस्तुत कछु बिन छीन।
जो शोभा अधिकी लहै, प्रस्तुत कछु यक हीन ॥"

आभास होता है। केवल चन्द्रमा का पुंल्लिङ्ग और कुमुदिनी का स्त्रीलिंग होना ही इस आभास का हेतु है।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कुमुदिनी सूर्य को देखकर ही विकसित होती है चन्द्रमा को देखकर नहीं, ऐसी कविसमयप्रसिद्धि है—(देखिये नैषध— "अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाकरेणाऽपि सुधाकरेण।") अतः अप्रस्तुत प्रसङ्ग का भान होना स्वाभाविक है।]

परिकर—दे० टि० पृ० २०८। परिकरांकुर—जिस प्रकार विशेषण साभिप्राय होने से परिकर अलंकार होता है उसी प्रकार विशेष्य यदि साभिप्राय हो तो परिकरांकुर अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में बाम (स्त्री) यह विशेष्य अभिप्रायपूर्ण है। तू सीधा कहना क्यों मानेगी? तेरा तो नाम ही बाम (वक्र या कुटिल) है।

नेह = प्रेम। मयंक = चन्द्रमा। बेकलंक = निष्कलंक। अभिराम = मनोहर। कलाधर = चन्द्रमा। कुमुदिनी = कमलिनी। ब्रज = कवि का नाम। ब्रजराज = श्रीकृष्ण। दराज = छिद्र, दरार। बाम = बामा (स्त्री), कुटिल ॥३६॥

१—भा० भू० ४।९०। २—भा०भू० ४।९१। ३—भा०भू० ४।९२।

और कलाधर कों देखि कुमुदिनि मुदित भई यातें समासोक्ति। "समासोक्ति[1] अप्रस्तुतै फुरै सुप्रस्तुत माझ।" जहाँ कोई प्रस्तुत के प्रसंग को बरनन करतें अप्रस्तुत को प्रसंग फुरै। इहाँ कुमुदिनि स्त्रीलिंग शब्द तें और कलानिधि पुंलिंग शब्द तें अप्रस्तुत नायिका नायक जान्यों, कि यहि समै में स्त्री अपनों पति देखि मुदित भई। तू कैसी है चंद्रमुखी चलै ताप नासै, चंद्रमुखी ताप नासिबो विशेषण तें परिकर है। "है परिकर[2] आशय लिए जहाँ विशेषण होय।" सूधे कहे न मानि है, नाम तेरो बाम है, यह अभिप्राय लिये शब्द कहै कि ना मानैगी। बाम टेढ़ो को भी कहै हैं, यातें परिकरांकुर अलंकार। "साभिप्राय[3] विशेष्य जहाँ परिकर अंकुर नाम।" ॥३६॥

(श्लेष वर्ण्य-अवर्ण्य-वर्ण्यावर्ण्य)

सवैया–कर मंजु द्वै पाये दबाये चलै गज सोहै भले छवि मासो निहारी।
'बृज' चोटी है चारु लसै रँग कुंदन तोरति है बहुतै अविकारी॥
लखिहौ अस जोबन दूखि है सुंदरि काम के रूप को दोपति वारी।
कतरो बँद बाँधि ले आई लला चित चाहत जाति वहै यह नारी॥३७॥

टीका—यह लोहारिनि दूती कृष्नजी सों बनदूखि बर्णन नायिका के मिलन कों कहै है। बनदूखि पक्षे अर्थ—कर मंजु द्वै पाये दबाये चलै-कर जासो बनदूखि चलती है मंजु रमनीय है। दो पाये पै दबाने सों चलती है। गज सोहै भले-जामें गज सोहत है आछी भाँति। छवि मासो निहारि—छवि जाको मासा निहारने सें देखि परै है। बृज चोटी है चारु-जाकी चोटी अति उत्तम है। लसै रंग कुंदन-शोभित रंग कुंदन मैं। तोरति बहुतै अविकारी—तोरति है बहुतै

1—भा० भू० ४।९३। 2—भा० भू० ४।९४। 3—भा० भू० ४।९५।

कर = हाथ (नायिका के), घोड़ा (बन्दूक का)। द्वैपाये = दोनों पैर (ना०), दोनों ओर से (बं०)। दबाये = दुबककर (ना०), दबाने से (बं०)। गज = हाथी, बारूद भरने की छड़। मासो = मासा, (मा + सो) लक्ष्मी की तरह। चोटी = लट, शिखर। कुंदन = सुवर्ण। तोरति है = तोड़ती है, तुमसे प्रेम करती है (तो + रति है)। अस जोबन दूखि = ऐसे यौवन को दुःखी, ऐसी जो बन्दूक (जो + बनदूखि)। काम के......वारी = जिसमें रूप (चाँदी) का काम होने से शोभायुक्त है, कामदेव की शोभा जिस पर न्योछावर है। कतरो = कितने हो। बँधबाँधि = प्रयत्न सहकर, जोड़ों को जुड़ाकर। यक नारी = अद्वितीय रूपवती स्त्री, एकनालवाली (बन्दूक) ॥३७॥

अर्थात् अधिक लखिं हौ। अस जो बनदूखि है, सुन्दरि काम के रूप की दीप-तिवारी–देखोगे ऐसी जो बनदूखि कैसी है सुंदरि बहुत शोभायमान है जामें काम रूपे को है कहै दीसिमान् है। कतरो पद०–कतरि कै कितेकौं बंद बाँधि कै लै आई हौं, लला कृष्नचंद्र चित में चाहते हौ जो वहै एक नारी जाको एकनाली कहै है॥ नायिका पक्षे। कर हाथ मंजु रमनीय हैं। दो पाये दबाए चलै–दूनौ पाँव को दबाये चलती है अर्थात् परकीया है। गजसो है कुंजर सें है चाल, भले उत्तम, छवि मा सो निहारी अर्थात् लक्ष्मी के सदृश शोभा है जाकी। बृज चोटी है चारु जाकी चोटी कहै बेनी चारु रम्य है। लसै शोभित है रंग कुंदन सोना के सदृश। तोरति है बहुतै अधिकारी—तुम्हारे में रति कहै प्रीत तौ बहुत ही अधिक है। लखि हौ देखोगे। ऐसी जोवन दूषन करोगे, सुंदरि काम की अर्थात् काम की स्त्री रति को रूप की दीपति वारी जाकी रूप की सोभा पै वारती हैं। कतरो बंद बांधि लै आई लला-कितेको बंद कहै उपाइ बांधि कै ल्याई हौं। हे लला कृष्नचंद्र चित चाहत जौ वहै यक नारी चित सें चाहते हो जौन वहै जो तुमारे मनमें बहुत दिनों सें खटकि रही है, एक नारी—एक कहै सब सें अधिक सुन्दरी नारी नायिका। इति। इहाँ लोहारिनि दूती के बनदूखि बर्णन और नायिका के मिलन हेतु दूतपन वर्न्यावर्न्य तें श्लेषालंकार। "श्लेष[1] अलंकृत अर्थ बहु जहाँ सब्द में होत।" सो तीनि प्रकार एक बर्न्य, दूजो अवर्न्य, तीजो बर्न्यावर्न्य। यहि कवित्तमो तीन्यो श्लेष कौ उदाहरन कवि धर्‌यो है, यथा—कर मंजु द्वै पाये दबाये चलै यहि पद में कर हाथ और कर है जासो बनदूखि चलती है। दो पाये दबाये चलै दोनों पांव दबाये अर्थात् इत उत निहारती नायिका चलै है और दो पाये पै दबाने से चलती है बनदूखि, सो इहाँ नायिका बर्न्य औ बनदूखि के कर और पाये को बर्नन सो अवर्न्य दूनौ पदमें श्लेष, ताते बर्न्याबर्न्य श्लेष। छबि मासों निहारी-छबि मासे के निहारने से जो बनदूखि में होती है, जाकी सामना देखि निशाने पै चलाई जाती है और छबि सुन्दरता मा मक्ष्मी के सदृश जाकी निहारी जाती है। *इहाँ बनदूखि और नायिका में तुल्य श्लेष, ताते बर्न्य श्लेष।* ब्रज चोटी है चारु लसै रंग कुदन–चोटी कहै बेनी, और चोटी जो बनदूखि में होती है। इहाँ चोटी पद दूनौ स्थान में तुल्य, परन्तु प्रधान नायिका को बर्णन है किन्तु एक देश को बर्नन, तातें अवर्न्य श्लेष। लसै रंग कुंदन–शोभित है रंग कुंदन में अर्थात् बनदूखि के आधार काष्ठ में और सोहै है रंग पानिप कुंदन तस सोना के सदृश। उसी प्रकार दोनों पद अवर्न्य, तातें अवर्न्य श्लेष। तोरति है बहुतै

1—भा० भू० ४।९७।

अधिकारी–तोड़ती है बहुत ही अधिक और तुम्हारे में रति कहै प्रीति बहुत ही अधिकी करै है नायिका, यातें बर्न्य श्लेष। इसी प्रकार औरो पदन में जानौ। यथा और उदाहरन—

"होय न पूरन नेह बिनु, मुख दुति दीप उदोत।।"

नेह नाम तेल को और प्रीति को, उदोत मुख को प्रकाश और दीप को प्रकाश, मुख बर्न्य दीप अबर्न्य, ताको श्लेष।

पीन पयोधर अंग छबि, नग धारे अभिराम।
रहैं सुकेसी मान को, वृंदा वन हित स्याम।।"

पयोधर कुच पयोधर मेघ, नग गोवर्द्धन नग हीरा आदि, अभिराम सुन्दर, सुकेशी दैत्य सुकेसी अप्सरा, बृंदावन हित बृन्दा गोपसमूह ताको अबन पालन, सो है हित जाको श्री राधिका जी को। बृन्दावन हित स्याम—श्री कृस्न किंवा स्यामा काहू सो पढ़्यो है, जैसे बाला को बाल कहै है। स्यामा सोरह बरस की। "श्यामा षोडशहायनीतिकथिते"ति कामशास्त्रम्। इहाँ दोऊ बर्न्य।

"अति अकुलाइ शिलीमुखन, बन में रहत सदाय।
तिन कमलन की रहत छबि, तेरे नयन सुभाय।।

शिलीमुख बान, शिलीमुख भ्रमर। बन जल को भी नाम है, इहाँ हरिन और भ्रमर अबर्न्य श्लेष। "स्यात्कुरङ्गोऽपि कमल" इत्यमरः। सो कमल अरु हरिन भी, हरिन बधिक के बान सों अकुलाइ करि कै बन में रहै है, अरु कमल भ्रमर निकरि अकुलाय करिकै जल मैं बसै है, तिन कमलन की छबि तेरे नयन हरे हैं। इहाँ कमल अरु भ्रमर उपमान अरु शिलीमुख बान अरु भ्रमर यह दोऊ उपमा है, यह सब नैन के है। अबर्न्य को श्लेष है, याते यह उपमान को श्लेष है। और सब ग्रन्थकार सभंग अभंग श्लेष लिखत हैं, सो छबि मासो निहारी, यहाँ सभंग श्लेष है कर मंजु द्वै पाए दबाए चलै औ ब्रज चोटी है चारु लसै रंग कुदन इस पद में अभंग श्लेष है। और अन्य ग्रंथकार अर्थालंकार मैं अभंग श्लेष को लिख्यो सभंग को नहीं। परंतु अबर्न्य श्लेष में सभंग भी होय है। ताको यह अभिप्राय है कि कवितात्पर्य बर्ननीय ही में है अबर्न्य में नहीं, तामों अबर्न्य में सभंग श्लेष होने सें भी कवितात्पर्य अरु ग्रन्थ बिरुद्ध नहीं होवै है इति।।३७।।

१—भा० भू० ४।९७।

(अप्रस्तुतप्रशंसा-प्रस्तुतांकुर-पर्यायोक्ति-व्याजस्तुति)

दंडक—देखो सखि चाहत चतुर सेवै स्वाती एक,
पाहरू प्रभू को चोरि कहा भल ताके हैं।
त्यागि भौंर मालती को सेए गंधफलनी को,
जाहि रंग देखि कंज फूलै मिलि ताके हैं।
ल्याई परतीति हेत पट नट नागर की,
हमैं न भरोसो बात लंपट लला के हैं।
ऐसो क्यों न करै काज कान्ह कूर बंश साज,
मेरे काज पाए परि तोहि सम ताके हैं ॥३८॥

टीका—यह अन्यसंभोग दुःखिता को बचन है। देखो चातक एकै स्वाती को सेवत, यह उत्तम पुरुष को आशय। और पाहरू प्रभु को धन चुरावै यह नीच पर। अर्थात् इहाँ नायिका दूती को नायक के बलाइबे के अर्थ पठाई, उहाँ आपुही संभोग करि कै आई, तासों नायिका की उक्ति, सो पाहरू को धन चुराइबो अप्रस्तुत अर्थ से दूती को नीच कर्म करिबो प्रस्तुत, ताको आश्रय, याते अप्रस्तुतप्रशंसा।

"अलंकार द्वै भाँति के अप्रस्तुत प्रशंस।
यक बरनन प्रस्तुत बिना दूजे प्रस्तुत अंस॥"

एक तौ जहाँ प्रस्तुत को बरनन होय, और पर कहै और पर लागै, स पाँचो तरह ग्रन्थ बढ़ने हेतु नहिं कहे। तेई भँवर गँवार मालती त्यागि गंधफलनी पर बैठे। सोधि कहै हरि को, हम को छाड़ि दासी सों प्रसंग, गौण प्रसंग मैं प्रधान प्रसंग निकरै, भँवर गंधफलनी को जाबो प्रस्तुत है दूसरो प्रधान प्रस्तुत या तिया की रति न तातें प्रस्तुतांकुर। "प्रस्तुत अंकुर है किए प्रस्तुत में प्रस्ताइ।" मेरी प्रतीत को पट लाई या रचना की बात कही, पट बदलि गयो है यातें पर्य्यायोक्ति। जहाँ रचना की बात होय जाकी दृष्टि सें कंज बिकसै है अर्थात् सूर्य्य की, ताको मित्र भी कहै है, सो यहाँ व्यंग्य से अर्थ भयो कि हमारे मित्र से भोग करि आई है, तातें दूसरो पर्य्यायोक्ति। ऐसे कान्ह क्यों न करै कूर बंश

पाहरू = पहरेदार। सेए = सेवित करता है। गंधफलनी = चंपा की कली। नटनागर = चतुर नायक। लंपट = धूर्त, झूठा। कान्ह = कृष्ण। कूर = क्रूर। साज = सजा, शोभा ॥३८॥

१—भा० भू० ४।९८। २—भा० भू० ४।१००।

तो होवै, यहाँ कृष्न की निंदा ते चंद्रमा की निंदा को ज्ञान भयो। मेरे हेतु दुःख सहे तोहि सम को, यह स्तुति मैं निंदा वाही की, यातें *व्याजस्तुति व्याजसों स्तुति।*

दोहा—"व्याज निंद निंदाहि सों, निंदा करै जो ठान।
निंदा स्तुति सों होत जहँ, स्तुति निंदा को ज्ञान ॥"

एक निंदा, स्तुति से जहाँ निंदा को ज्ञान होय इति ॥३८॥

(तीनौं निषेधाभास औ विरोधाभास)

सवैया—हौं नहि चाव चबाइ करौं अँग तेरे सबै कहै देत हैं आगे।
पूजो चहै शशिशेखर को अथवा है उरोज नखैछद दागे॥
को बरजै हमैं काहू परी रुचि तेरी जितै तितही अनुरागे।
आँखि सों आँखि लगी जब सों तब सों अँखियाँ सखि तेरी न लागे॥३९॥

टीका—यह नायिका लक्षिता, सखी व्यंग्य करि कहै है। हौं नहीं चबाइ करती हौं, यह निषेध बचन तें निषेधाभास प्रथम। पूजो महादेव को चहो पै कछु काम नहीं, उरोज में नख तौ हई है, कछु कहिबे फेरि देइ तौ दूसर निषेधाभास। को बरजै जहाँ तेरी रुचि होय तहाँ जावै यह बिधि बचन अर्थात् कहीं न जावै, यह तीसरो निषेधाभास।

दोहा—तीनि भाँति आक्षेप है, एक निषेधाभासु।
पहिले कहिये आपु कछु, बहुरि फेरिए तासु।
दुरै निषेध जु बिधि बचन लक्षन तीनों लेखि॥

निषेध जो मना करिबो ताको आभास नाम झलक होय पहिले आप कहै फेरि बिचारि कै निषेध करै तामें नाहीं करिबो निकरै। दूसर बिधि बचन ताको बरजिबो। तीसर आँखि सों आँखि लगी तब सें आँखि नहीं लगै यह बिरोध, ताते बिरोधाभास। "भासै जहाँ बिरोध है, वहै बिरोधाभास।" बिरोध भासै बिचारे बिरोध न होय ॥३९॥

१—आक्षेप—आक्षेप का अर्थ है दोष लगाना या निषेध करना यह तीन प्रकार का होता है—१. निषेधाभास—जहाँ किसी बात का निषेध करके फिर उसका स्थापन किया जाय अर्थात् जो वस्तुतः निषेध न होकर निषेध सा प्रतीत हो, वह निषेधाभास होता है। २. उक्ताक्षेप—स्वयं किसी बात को कहकर फिर दूसरी उत्कृष्ट बात द्वारा उसका निषेध करना। ३. व्यक्ताक्षेप—जो विधिवचन कहा गया है उसी में निषेध छिपा हो। उक्त पद्य में इनके उदाहरणों को टीका में स्पष्ट कर दिया गया है। विरोधाभास—दे० टि० पृ० ६४।

चावचबाई = चुगल खोरी, मुखदेखी प्रशंसा। शशिशेखर = शंकर। उरोज = स्तन। नखैछद = नखक्षत। बरजै = रोकता है ॥३९॥

(षटौ बिभावना)

दंडक--केसरि लगाए बिना परी पियराई अंग,
हीरे करे पार फूल बान बेधे मार के।
बरी जरी जात लागे मलयज पंक अंक,
कोकिला के कंठ ही सों चातक पुकार के।
रावरे के नेह बिनु देह दुति छीन 'ब्रज',
करै अति ताप तन शीतकर झार के।
आवै छैल चलो छपी प्रीति रही आछी भाँति,
पाछे नैन-मीन कढ़ै धार पारावार के ॥४०॥

टीका—यह नायिका नायक के मान से दुखी, ताकों सखी मनावन आई। जथा केसरि बिना लगाये पियराई अंग में, यह बिना कारन कारज भयो, यातें प्रथम बिभावना होइ। "होति छैभांति[2] बिभावना कारन बिन ही काज।" फूल बान हिय पार करे हेतु अपूरन है, तातें पार होयबो कारज भयो, यातें दूसरी। "हेतु अपूरन ते जहाँ कारज पूरन होय।" चंदन पंक लगाए बरी जात यह तीसरी। "प्रतिबंधक के होत ही कारज पूरन मानि।" प्रतिबंधक जतन किए तऊ वह कार्य्य होय तहाँ जानौ। कोकिल के कंठ से चातक पुकारो पी कहाँ, अकारन तें कारज चौथी।"जबै अकारन वस्तुतें कारज परगट होत॥" शीतकर तन ताप करै है, यह बिरोध बात है, यातें पाँचवीं। "काहू कारन ते जबै कारज होय बिरुद्ध।" कौनो बिरुद्ध कारन ते जब कारज होय। नैन मीन से पारावार की धारा कढ़ि है। नदी सें मीन होब कारज, कारज सों मीन सों पारावार धार कढ़ि है, जहाँ कारज तें कारन उपजे यातें छठवीं। "पुनि कछु कारज तें जबै उपजै कारन रूप" ॥४०॥

(बिशेषोक्ति[3]-असंभव और तीनौ असंगति)

दंडक—निज नैना के नेह तजे कुल कानि बानि,
नीर भरे रहे तऊ प्यास बुझै या के न।

---

१ बिभावना—देखिये टिप्पणी पृष्ठ ५१। २—भा० भू० ४।१०९।

पियराई = पीलापन। हीरे = हृदय को। मार = कामदेव। मलयजपंक = चन्दन। शीतकर = चन्द्रमा। छपी = छिपी हुई। पारावार = समुद्र ॥४०॥

३—बिशेषोक्ति—दे० टि० पृष्ठ ४७। असंभव—जहाँ किसी ऐसे कार्य के होने की असंभावना का वर्णन हो, जो हो चुका है, वहाँ असंभव अलंकार होता है। जैसे उक्त पद्य में 'नीच जाति की, असुन्दरी कूबरी और उसके वश में श्रीकृष्ण' यह असम्भव सा प्रतीत होता है। असंगति—दे० टि० पृष्ठ ३९।

अंक बंक कूबरी अधम जाति दासी नारि,
सुन्दर सुजान स्याम होइ बस ता के न।
कीन्हो दावानल पान देखि देह जरै मेरो,
भोग ठौर जोग पढ़ै याते छैल वा के न।
ऊधो सुनो सूधी बात मोह मेटिबे को आए,
मोह उपजाए हाय ऐसो छोह ?ा के न ॥४१॥

टीका—यह प्रोषित पतिका नायिका ऊधो सों आपनी व्यथा कहती है। निज नैन के बश कुलकानि छोड़े, सों जल भरी तऊ इन को प्यास नहीं बुझै है। हेतु द्रिढ़ रहै हू पै कारज न होइ, तहाँ बिशेषोक्ति। "बिशेषोक्ति जहँ हेतु सों कारज उपजे नाहिं[1]।" कूबरी अधम ताके बश स्याम सुन्दर यह असम्भव, ताते असंभव। "कहे, असंभव होइ जो बिन संभावन काज[2]।" कार्य को सिद्धि होइ संभावन बिना, जब दवानल पान किये देखि देह मेरो जरो। दावा कारन, कृष्न को देह जरियो चाहिए नायिका की देहँ जन्यो यह कार्य, तातें प्रथम असंगति, और भोग ठौर जोग यह अवरठौर कार्य, तासों दूसरी असंगति। मोह मिटावन आये सो तो मोह उपजाये, और कार्य आरंभ करि और किये, यातें तीसरी।

दोहा—"तीन असंगति कार्य अरु, कारन न्यारे ठाम,
और ठौर ही कीजिए, और ठौर के काम।
और काज आरंभिए औरै कीजे दौर[3]॥ इति ॥४१॥

(तीनौं विषम-तीनौं सम-अनुमान)

दंडक—मंजु कै उपाय सुख हेतु को बसी निकुंज,
पाए सुख पुंज छैल छली घनस्याम जो।
बूड़ी स्याम रंग मैं भयो है अंग पीरो मेरो,
कोमल जो तन आगि लाए लखो काम जो।
बसै कूबरी के संग लायक त्रिभंगी अंग,
नीच है गँवार हौं सुनी गोपाल नाम जो।

कुलकानि = कुल मर्यादा। बानि = स्वभाव, आदत। अंक बंक कूबरी = टेढ़ी-मेढ़ी कूबरवाली। दावानलपान = बनाग्नि को पीना। छोह = क्षोभ ॥४१॥
१—भा० भू० ४।११५। २—भा० भू० ४।११६। ३—भा० भू० ४।११७,११८।
मंजु = मनोहर, सुन्दर। बूड़ी = डूबी। त्रिभङ्गी = तीन जगह टेढ़ा। सुधाधर = चन्द्रमा। बाम = वक्र, स्त्री ॥४२॥

आनन सुधाधर ते कह्यो मीठी बातें बोलि,
आए क्यों न आली आई दिग लाली बाम जो ॥४२॥

टीका—यह उत्कंठिता [नायिका] जब दुःख पाये तब बातैं दोष की कहन लागी है। आछे उपाय करि सुख पाइबे निकुंज बसी तौ दुःख पाये, यातें तीसरो विषम। और स्याम के रंग बूड़ी अब देह पीयरी, कारन को रंग और कार्य्य को और, यातें दूसरो विषम। अति कोमल मेरे तन, तामें आगि लगायो यह अनमिल संग तें प्रथम।

दोहा—"विषम अलंकृत तीनि विधि, अन मिलते को संग,
कारन को रंग और कछु, कारज औरै रंग।
और भलो उद्यम किए, होय बुरो फल आइ ॥"

और बसे कुबरी के संग, सो लायक है। क्योंकि कृष्न भी त्रिभंग हैं, यह जथा जोग, ताते प्रथम सम। और नीच गँवार गोपाल नाम से जान्यो गो नाम गऊ ताको चरवाह नीच, यह कार्य से कारन को ज्ञान दूसरो सम। मीठी बातैं बोलि कह्यो-तुम चलो संकेत को हौं हूँ आऊँगो, आनन सुधाधरतें कह्यो मीठी बोलि आनन सुधा धरते सुधा है अधर मो जेहि आनन के वासो मोठी बात बोलिबो, यत बिनु सुधाधर चन्द्रमा को कहै है, सो मुख को उपमान श्लेष करि होवै है, यातें तीसरो सम। आवे क्यों न आली दिशान में लाली आई, जो बाम कहै कुटिल है अर्थात् दुख देन हारी है यासों भोर जाने, तातें अनुमान। दोहा—"अलंकार सम तीनि विधि जथाजोग को संग। कारज ही में पाइए कारन ही को संग॥ श्रमबिनु कारज सिद्ध जो उद्यम करते होइ" ॥४२॥

(विचित्र[2]-अधिक-अल्प-अन्योन्य)

दंडक—निशि को बिताय घर आए देखि भई दीन,
छिगुनी को छला करै भुज मैं निवास है।

---

१ भा० भू० ४।१२३-२४।

२—विचित्र—विचित्र का अर्थ है विलक्षण, जहाँ किसी फल की इच्छा की गयी हो, और उसे प्राप्त करने के लिये जो उपाय है उसके विपरीत उपाय किया जाय, वहाँ विचित्र अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में "प्रवीण लोग ऊपर चढ़ने के लिये नीचे झुकते हैं" नीचे झुकना विपरीत सा लगता है, किन्तु बिना झुके ऊपर नहीं चढ़ा जा सकता या बिना नम्रता के बड़प्पन नहीं प्राप्त होता, यही विचित्र अलंकार है।

अधिक—जहाँ पृथुक आधार से आधेय की अधिकता दिखाई जाय अथवा

नँवत बड़ाई हेतु बड़े जे प्रवीन 'बृज'
मान तजै मान हित मानिनी विलास है।
उमगो अनंद तेरे हिए न असाय प्यारी,
बरने न जात गुन बानी सों प्रकास है।
दामिनि सों घन सोहै घन ही सों दामिनि है,
मेरो मन तो में तेरो मन मेरे पास है ॥४३॥

टीका—यह शठ नायक मीठी बातें बनाय कहै है, राति को विताय अरसान आयो, नायिका देखि दुःखी भई, शोच सों छिगुनी को छला भुज में निवास कियो। छिगुनी को छला आधेय, तासों भुज आधार को सूक्ष्म करि वर्णन, यातें अल्पालंकार। "अल्प[1] अल्प आधेय तें सूछम होइ अधार।" बड़ाई हेतु बड़े नमित रहत, मान तजै मानिनि मान हेतु अर्थ मनोमान हेतु, "इच्छै[2] फल बिपरीत की, कीजै जतन बिचित्र। नँवत उच्चता लहन को, जे है पुरुष पवित्र" ॥ नमित उत्तम को उच्चता की चाह। ऐसो आनंद उमगो तेरे हिये नही समाय है। आधार हिय, आनंद आधेय सो अधिक, तातें अधिकालंकार। और तेरे गुन बानी सों नहीं बरनि जात, आधार गुन बानी आधेय, सो अधिक आधार, तातें दूजो। दोहा—"अधिकाई[3] आधार तें जब आधेय की होइ। जो आधार आधेय सों अधिक अधिक है सोइ ॥" रहनेवाला आधेय, जामें रहै सो आधार। आधार पात्र, आधेय घृत, जामैं धरै सों पात्र आधार। औ घन सें शोभित दामिनी और दामिनी सों घन, यहाँ परस्पर उपकार। "जहाँ परसपर उपकरैं अन्योन्यालंकार" इति ॥४३॥

(तीनौं विशेष-दूनौं व्याघात)

सवैया–सुधि आय बसी प्रिय की जबहीं तब सों हियरो गो हेराय हमारो।
वह आनन कानन आँखिन मैं निज प्यारी सबै थल माँह विहारो।

पृथुक आधेय की अपेक्षा आधार को अधिक दर्शाया जाय, वहाँ अधिक अलंकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है।

अल्प—जहाँ पहिले आधेय ही अल्प (छोटे से छोटा) हो और फिर आधार को उससे भी अल्प (छोटे) रूप में वर्णन किया जाय। जैसे उक्त पद में आधेय छिगुनी का छला स्वयं एक लघु पदार्थ है, विरह के कारण वह भी भुजा में लटकने लगा कहकर उसकी आधारभूत भुजा को और भी दुबली करके वर्णन किया है, अतः अल्प अलंकार है।

छिगुनी = कानी अंगुली। छला = छल्ला, अंगूठी। नँवत = झुकते हैं ॥४३॥

१—भा० भू० ४।१२९। २—भा० भू० ४।१२६। ३—भा० भू० ४।१२७।

रति रंभा रमा 'बृज' देखे सही तन जीवत भामिनि भौन निहारो।
अवलोकत जो सुख देत हुतो अब देखिबे सों दुख देत बिचारो ॥४४॥

टीका—यह प्रोषित नायक अपनी दशा बिरह की कहै है, जब सें सुधि बसी हिय में तब सें हिय मेरो हेराय गयो। जहाँ बिना आधार आधेय रहै सो प्रथम बिशेष। जथा ललितलला मतिराम,—"चलो लाल वाकी दशा, लखो कही नहिं जाय। हिये रही सुधि रावरी, हियरो गयो हेराय ॥" और वह आँखि-कान-मुख में बसी एक बस्तु अनेक ठौर बरने, ताते दूसरो विशेष, और रंभा रमा रति हम देखि चुके जो जीवत प्यारी कों देखैं बड़ी बस्तु की सिद्धि, ताते तीसरो विशेष। दोहा "तीन प्रकार विशेष है, अनाधार आधेय। बड़ी बस्तु की सिद्धि को कछु अरंभ जो देय॥ बस्तु एक को कीजिए, बरनन ठौर अनेक॥" इति। और जिन देखे सुख मिलत रह्यो ताहि देखे दुःख, इहाँ और कार्य्य करिबे की बस्तु और कार्य्य, तातें व्याघात "सो व्याघात जु और सो होवै कारज और। बहुरि बिरोधी तें जबै, काज ल्याइए ठौर" ॥ बहुरि बिरोधी याको अर्थ यह आछी तरह जो क्रिया बरननीय होय सो पराये को इष्ट कार्य ताको विरोधी होय तहाँ दूसरो, इति ॥४४॥

(कारणमाला-एकावली-सार-मालादीपक)

दंडक—कहा कहौं कान दोस जिन उपजाए रोस,
रोस ही सों मान मान भए हित हानि है।

१—कारणमाला—जिस रचना में कारण, माला की तरह गुँथे हुए होते हैं अर्थात् जो पहिले कार्य था वह दूसरे में कारण और जो दूसरे में कार्य था वह तीसरे में कारण हो जाता है, इस प्रकार कारणों की एक श्रृङ्खला सी बन जाती है, वहाँ कारणमाला अलंकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है। इसे गुम्फ अलंकार भी कहते हैं जिसका अर्थ है गुँथा हुआ।

एकावली—जहाँ उत्तर-उत्तर पद को ग्रहण करके पूर्व-पूर्व पद को छोड़ दिया जाता है, वहाँ एकावली अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में 'तन, मन के वश में है, मन मति के बश में है' यहाँ पहिले पूर्वपद तन को ग्रहण किया, दूसरी बार उत्तर पद मन को ग्रहण कर तन को छोड़ दिया। ऐसे ही आगे भी क्रम रहता है। यही एकावली (एक लड़वाली माला) है। इसमें पूर्व और उत्तर पद में कारण-कार्य भाव नहीं होता, अतः कारणमाला से यह भिन्न अलंकार है। सार—देखिये टिप्पणी पृष्ठ ८९।

मालादीपक—जहाँ दीपक और एकावली अलंकार मिल जाते हैं वहाँ

'बृज' तन मन बश मन मति के है बस,
सोई मति मेरी बातैं कुमति की ठानि है।
मधु सो मधुर अमी अमी सो मधुर बैन,
तिन्हैं तजि हाय बातैं बिषम बखानि है।
लोन मिलै नीर नीर मिलै जैसे छीर,
तैसे मिलो उन्हैं बार फेरि आवै तेरी आनि है ॥४५॥

टीका—यह नायिका कलहांतरिता आपनो पछिताव चलानै है कहा कहौ कान आदि। कान कारन, रोस कारज, फेरि रोस कारन, मान कारज, फेरि मान कारन, हित हानि कारज, यह कारन कारज की परंपरा तें कारनमाला, "कारन काज परंपरा कारनमाला होत"। और तन मन के है बश, मन मति के, ग्रहीत मुक्त सें एकावली, "ग्रहित मुक्त सों होत है एकावलि तहँ मानि।" मधु सों मधुर सुधा, तासों बैन, एक से एक अधिक, तातें सार अलंकृति, "एक-एक तें अधिक जहँ अलंकार है सार"। लोन मिलै नीर, नीर मिलै छीर, लोन ग्रहित नीर युक्त नीर ग्रहित छीर, यह एकावली। मिलिबो एक पद एक ही क्रिया को वर्न्य अवर्न्य में अन्वय, तातें मालादीपक, इति ॥४५॥

(यथासंख्य-दोनों पर्याय-परिवृत्ति)

दंडक—बाम दुख हायनि औ स्याम सों सलोनी बोल,
अनरीति रीति प्रेम प्रीति अनुसारी है।

मालादीपक कहलाता है। जहाँ वर्ण्य और अवर्ण्य में धर्म की एकता हो वहाँ दीपक होता है, उक्त पद में "लोन मिलै नीर, नीर मिलै छीर" मिलना रूप धर्म की एकता है अतः दीपक हुआ और पहिले लोन और नीर को ग्रहण किया फिर नीर-छीर में नीर को लेकर लोन को छोड़ दिया अतः एकावली, इस प्रकार दोनों मिलकर मालादीपक बना।

कान = कान्हा, श्री कृष्ण। अमी = अमृत। लोन = लवण। छीर = क्षीर, दूध। आनि = शपथ ॥४५॥

१—यथासङ्ख्य दे० टि० पृ० १७९। पर्याय—पर्याय का अर्थ है क्रम से, जब अनेक वस्तुओं का क्रम से एक वस्तु में आश्रय ग्रहण कराया जाय अथवा एक वस्तु क्रम से अनेक वस्तुओं में आश्रय ग्रहण करे तो पर्याय अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में चञ्चलता और मन्दता दो भिन्न वस्तुओं का क्रम से एक नेत्र में आश्रय प्रथम पर्याय है। मुखद्युति दिन में कमल में और रात्रि में चन्द्रमा में समाई, एक मुखद्युति ने कमल और चंद्र इन दो भिन्न वस्तुओं में आश्रय लिया, यह दूसरा पर्याय है। परिवृत्ति दे० टि० पृ० २१५।

आगे तो बिलोचन चपल चितवनि हुती,
अब भये मंद कहौ कौन हेत धारी है।
कलित कमल तजि आनन की आभा आजु,
चंद्र मैं समानी नेरे नेह सों निहारी है।
कौन लीन्हे तेरे मन दीन्हे करि मौन धन,
'गोकुल' बिराजी रोमराजी सो बिचारी है ॥४६॥

टीका—यह नायिका लक्षिता, कृष्नको देखि सात्विक भाव भयो, तासों लक्षित करै है। बाम दुःखदायनि-जो टेढ़ी तेरो दुःख मानै और स्याम सों अन॰रीति, रीति रीति क्रम से यथासंख्य। "यथासंख्य[1] बरनन बिषै बस्तु अनुक्रम संग"। क्रम तें अन्वय चंचल नेत्र मंद भो जड़ता भई, क्रम सें अनेक को एक आश्रय, यातें पर्य्याय अलंकार। तिय मुख दुति दिन में कमल में रात्रि में चंद्र में, कमल-चंद्रमा एक आश्रय, तातें दूसर पर्य्याय। दोहा-"द्वै[2] परजाय अनेक को, क्रम सों आश्रय एक। फिरि क्रम तें जब एक ही, आश्रय धरै अनेक"॥ और कौन तेरो मन लै कै मौनता दीन्हे, परिवृत्ति अलंकार। "परिवृत्ति पलटे कीजिए, कछु लैकै कछु देइ" ॥ इति ४६ ॥

(परिसंख्या[3]-विकल्प-समुच्चय दोनों)

दंडक—नेह को न हानि तन मन में तिहारे प्यारे,
गेह में निहारे दीप बारे दरसात हैं।
राखौ हित और सोकी ह्वै है बश वाके आय,
मान को मनाय लीबो इहौ बड़ी बात हैं।
'गोकुल' बिलोकि बाल रावरे को हाल सुने,
खीझै फिरि रीझै माखै मोहि सतरात है।
जोबन मदन धन मद उपजाए जात,
आए बौरात एक पाए बौरात है ॥४७॥

१—भा० भू० ४।१४० । २—भा० भू० ४।१४१ ।

बाम = वक्र, टेढ़ी, स्त्री। सलोनी = सुन्दर। अनरीति = कुरीति, बुरी-प्रथा। चितवनि = दृष्टि, कटाक्ष। कलित = सुन्दर। नेरे = घने ॥४६॥

३—दे० टि०—परिसङ्ख्या पृ० ६१, विकल्प पृ० ११५, समुच्चय पृ० ११६।

नेह = स्नेह, तेल, प्रेम। निहारे = देखने पर। माखै = रुष्ट होती है। सतरात = धमकाती है। बौरात = पागल हो जाता है ॥४७॥

यह नायिका के नायक सें कछु अनमिलाप सो सखी शिक्षा कहै है। नेह की हानि रावरे के नहीं है दीप में होइगो, यातें परिसंख्या। "परिसंख्या यक थल बरजि, दूजे थल ठहराय॥" रावौ हित और सों की वाके बश रहि है जो बश होय तौ और सो हित न रांइ जै है। जथा मतिराम—"मान कियो जब पीय सों, अति हिय रोस बढ़ाय। रखि है हित कै और सों, कै बश ह्वै हो आय॥" यातें बिकल्पालंकार। "सम बल को जु बिरोध जहँ, तहाँ बिकल्प सु भाव। भूपति काहिह नवाइहौ अरि को शिर की चाव॥" अरि को शिर नवायबो अरु चाप नवायबो सम बल है। और तुम्हारी बात सुने रीझै खीझै सतराय बहुत भाव तें प्रथम समुचय। और जोबन कहै पहिले मैं मद उपजावौ घन कहै मैं उपजावो। "दोय समुच्चय भाव बहु, कहुँ एक उपजत संग। बहुत काज चाह्यो करौ, है अनेक यक संग।" बहुत को किंवा एक को बहुत भाव एक ही संग में उपजै, जहाँ रचना करै तहाँ प्रथम और यह अर्थ अनेक एक को कार्य करो चाहै मैं ही पहिले करौं तहाँ दूसरो समुच्चय॥ ४७॥

(कारकदीपक-समाधि-प्रत्यनीक-काव्यार्थापत्ति)[2]

दंडक—चकी सी जकी सी ठोक ठगी सी तैं बोलै बोल,
पूँछत क्यों रूखी परै कहा सतरात है।
लाख अभिलाषि किए हरि के हवाल हेतु,
तौलै अलि आइ गई देखै सुखसात है।
आज मुख आभा हेरि हारि हिए मानि इंदु,
देत अरबिंद दुख ताते कुँभिलात है।

१—भा० भू० ४।१४४।

२—कारक दीपक—जहाँ एक कारक (पदार्थ या व्यक्ति) में बहुत सी क्रियाओं का क्रम से होना वर्णन किया गया हो वहाँ कारक दीपक अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में एक ही नायिका चकी सी, जकी सी, ठगी सी होकर बोलती है आदि। समाधि—समाधि का अर्थ ही है समाधान या समर्थन। जैसे उक्त पद में हरि का हाल जानने की इच्छा हो ही रही थी, सखी के आ जाने से वह कार्य सुगम हो गया। दे० टि० पृ० ११३।

प्रत्यनीक—(प्रति + अनीक = सेना) जैसे कोई राजा को न जीत सके तो उसकी सेना आदि पर आक्रमण करता है, ऐसे ही प्रबल उपमेयादि की समानता न करके जहाँ अन्य पर बल प्रयोग दिखाया जाय वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में नायिका की मुख आभा को न जीत सकता हुआ चन्द्र तत्सदृश कमलों को दुःख दे रहा है ऐसा वर्णन किया गया है।

जो पै 'बृज' चंद्र चंद्रमुखी तुम कीन्हे बश,
मेरे ताप मेटिबे की कौन बड़ी बात है ॥४८॥

टीका—यह अन्य संभोग दुःखिता के बचन व्यंग्य से। जथा चकी जकी ठगी आदि एक भाव साथ, तातें कारक दीपक। "कारकदीपक[1] एक मैं क्रम तें क्रिया अनेक।" अभिलाष किए की हरि को हाल मिलै तौलौं तूँ आई, यह कारज और हेतु मिलि सुगम भयो समाधि। "सो[2] समाधि कारज सुगम, और हेतु मिलि होत।" आजु तेरे मुख की आभा देखि इंदु हारि कै कंज को दुःख देत अर्थात् कंज मुख को उपमान, इस हेतु अरि पच्छ जानि दबाये, यातें प्रत्यनीक। "दुख दै अरि कै पक्ष को, प्रत्यनीक यहि भाय॥" बलवान् शत्रु, तासों जोर न चलै शत्रु के पक्षी को दुख देनो, और जो बृज चंद्र को बश किये तो मेरो ताप ताको मेटिबो कौन बात है, यातें काव्यार्थापत्ति। "काव्यार्थापति यौं कियो, तिनकी यह कहि जात।" यह कियो तो यह कितनी बात है इति ॥४८॥

(काव्यलिंग-अर्थान्तरन्यास-विकस्वर-प्रौढोक्ति)[3]

दंडक—बीतिगो करार प्रीति पाल्यो न गँवार मीत,
गाइ चरवाह को रसिक मैं बखानते।

चकीसी = आश्चर्य युक्त सी। जकीसी = सकपकाई हुई सी। बोल = बचन। हवाल = हाल, वृत्तान्त। सुखसात = सुखी होती है। कुँभिलात = मुरझा जाती है ॥४८॥

१—भा. भू. ५।१४८। 'भाव अनेक' पाठान्तर। २—भा. भू. ५।१४९।

३—दे० टि०—काव्यलिंग पृ० ६०७, अर्थान्तरन्यास पृ० ५३, विकस्वर—किसी विशेष बात का समर्थन सामान्य से किया जाय और उस सामान्य का समर्थन किसी दूसरे विशेष से कर दिया जाय तो विकस्वर अलंकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है।

प्रौढोक्ति—(प्रौढ + उक्ति, = उत्कृष्ट कथन) जहाँ किसी वस्तु की उत्कृष्टता के लिये, उत्कर्ष के अहेतु में हेतु की कल्पना कर ली जाती है वहाँ प्रौढोक्ति अलंकार होता है जैसे उक्त पद्य में हलधर (बलदेव) जी का भाई होना श्रीकृष्ण के त्रिभंगी (तीन जगह टेढ़ा) होने में कारण नहीं है किन्तु हल के त्रिकोण होने से उसे कारण मान लिया गया है, अतः प्रौढोक्ति है।

[यहाँ यह ज्ञातव्य है कि—भगवान् श्रीकृष्ण जब बंशी बजाते हैं तब उनका एक पैर दूसरे पैर के ऊपर और कमर एवं गर्दन एक ओर को झुकी हुई रहती है, इसी मुद्रा को "त्रिभंगी" (तीन जगह टेढ़ी) कहा गया है।]

वारुनी प्रसंग गंग पानी कौन करे पान,
　　नीच संग जात चित चातुरी सयान ते।
किए क्रूर काम कान्ह जाय न सुभाय जाति,
　　साँप सुधा पियै निरविष किन मानते।
हलधर बंधु जाहि ताहि सो त्रिभंग भये,
　　बाम अंग कूबरी बरी है बड़ी सानते ॥४९॥

टीका—यह नायिका उत्कंठिता, कृष्न करार करि नाहीं आए, बिरह तें कामपीर को कहत है। गीति गो आदि० गाय के चरवाह मूर्ख, रसिकन की बात क्या जाने। समर्थनीय जो अर्थ ताको समर्थन पुष्ट करनो, तासों काव्यलिंग। "काव्यलिंग[1] जहँ जुक्ति सों अर्थ समर्थन होय ॥" वारुनी आदि० वारुनी विशेष और नीच सामान्य, सो विशेष तें सामान्य द्रिढ होत अर्थान्तरन्यास। "बिशेष तें[2] सामान्य दिढ़ तहँ अर्थान्तरन्यासु। रघुबर के बर गिरि तरे बड़े करे न कहा सु ॥" क्रूर कान्ह बिशेष, जाति सुभाव सामान्य, साँप बिशेष, यातें विकस्वर। "विकस्वर[3] होत बिशेष जहँ, फिर सामान्य विशेष ॥" हरि गिरिधारचो सत पुरुष भार सहे ज्यों शेष ॥" और हलधर बंधु हल त्रिकोन ताही सों त्रिभंगी भये, यह उत्कर्ष को कारन ही होय ताको कारन करि बरने, याते प्रौढोक्ति। "प्रौढ उक्ति[4] उत्कर्ष को, करै अहेतुहि हेत, जमुना तीर तमाल सो, तेरे बार असेत ॥ अहेतु को हेतु जहाँ वरनै इति ॥४९॥

(तीनौं प्रहर्षन[5])

सवैया—लाखन भाँति किए अभिलाष हिए सिधि साधन मंत्र दिढ़ावै।
　　आइ कै माय रिसाय कही घर नंद के जामन जाइ लै आवै ॥

वारुनी = मदिरा। क्रूर = क्रूर। हलधर = हल को धारण करने वाला, बलदेव। त्रिभंग = तीन जगह टेढ़ा। बाम अंग = वक्र, टेढ़े अंग वाली। बरी है = स्वीकार की है। सान = शान, गर्व ॥४९॥

१—भा० भू० ४।१५२। २—भा० भू० ४।१५३।

३—भा० भू० ४।१५४ ४—भा० भू० ४।१५५।

५—प्रहर्षण—(प्र = प्रकृष्ट (अत्यधिक) + हर्षण = प्रसन्न होना) यह तीन प्रकार का होता है—१. बिना प्रयत्न किये अभिलषित फल की प्राप्ति होना। २. जितने फल की इच्छा थी उससे अधिक की प्राप्ति हो जाना। ३. जिसके लिये प्रयत्न किया जा रहा था उसका स्वयं उपस्थित हो जाना। उदाहरण टीका में स्पष्ट हैं।

जाइबे को जहाँ सोधै सखी घर ताहि गई 'बृज' ऐसो बतावै।
सूखहि पानि के भूख ही तें तेहि आनि कोऊ लै पियूख पिआवै॥५०॥

टीका—यह नायिका मुदिता कृष्न के देखिबे को मन मंत्र बिचारै, तबै माय कही नंद घर से जामन लावै। जतन बिनु कारज, तातें प्रथम प्रहर्षन। और जहाँ जावे को सोधती रही तहाँ गई, यातें दूसरो। पानी को पियासो होय ताही कोई अमी प्यावै, यह बांछित तें अधिक फल, तातें तीसरो प्रहर्षन। जथा दोहा—"तीनि प्रहर्षन[1] जतन बिनु, बांछित फल जो होय। बांछितहूँ ते अधिक फल, श्रम बिनु लहियत सोय॥ सोधत जाके जतन को, बस्तु चढ़ै कर सोय। जाको चिंत चाहत हुती, आई दूती सोइ॥" चाहत सो आप दूती बनि आई, इति॥ ५०॥

(मिथ्याध्यवसित-ललित-संभावना-विषाद)

सवैया—भूत मिठाई अकाश को फूल सचाई तिहारी है त्यों ही अली।
ए सुख सोवन नींद सखी 'बृज' सेज अँगार बिछाय रली॥
मो पै न जात बखानि कछू गुन गावतो सेस जो हो तो थली।
चाहत संग सहेली कियो हम पायो तुमैं सुभ सौति भली॥५१॥

टीका—यह नायिका अन्य संभोग दुःखिता को बचन, जथा तेरी सचाई भूत की मिठाई, आकाश को फूल। एक झूठ के लिए दूसरो झूठ जहाँ होय, तातें मिथ्याध्यवसित। दोहा—"मिथ्याध्यवसित[2] झूठ हित, कहै झूठ यह रीति। कर मैं पारद जो रहै करै नवोढ़ा प्रीति।" यह सुख सोइबो अंगार के सेज पै है, जो नायक सों रति करि आई है ताही को प्रतिबिंब कहति, यातें ललित; "ललित कहो कछु चाहिए, ताही को प्रतिबिंब।" जवन बात कहिबो होय ताको कछु बचन कह्यो चाहिए, ताहि छोड़ि वाही बात को प्रतिबिंब कोई और बचन सों कहिए। मतिराम जथा—"मेरी सीख सिखै न सखि, मो सन उठै रिसाय। सोयो चाहै नीद भरि, सेज अंगार बिछाय॥" और तेरो गुन मो पै नहीं कह्यो जाय है, शेष गावतो जो तो थली में होतो, संभावना। "है यौं जै यौं होय

सिधि साधन = सिद्धि की साधना। जामन = दही आदि वह खट्टा पदार्थ जो दूध को जमाने के लिये उसमें डाला जाता है। सोधै = खोज रही थी। सूखहि = सूख रहा है। पियूख = अमृत॥५०॥

१—भा० भू० ४।१५९-१६०।

२—भा० भू० ४।१५७। ३—भा० भू० ४।१५८।

अँगार = जलते हुए कोयले। रली = सोई॥५१॥

तौ, संभावना[1] विचार। बकता हो तो सेष जो, तो गुन लहतो पार।।" ऐसे जहाँ तर्क करै जो शेष होतो तो पार पावतो। और सेग की सहेली चाहती, ताहि सौति पाई, नित चाहते उलटो, तातें बिषाद। दोहा—"सो बिषाद[2] चित चाहतो उलटो जो कछु होय" ।।५१।।

(चारौं उल्लास-दो अवज्ञा-एक अनुज्ञा)

दंडक–एक ससि सारदी को स्रवै सुधा सिंधु मोद,
एक सोम मेटे ज्वाल साहै शिव भाल सों।
एक सीतकर बिरहिनी तन ताप कर,
एक चौथिचंद देखे दोष लै कराल सों।
एक सुधाधर कर परसे न फूलै कंज,
एक निसापति सोक कोक को बिशाल सों।
एक द्वैज इंदुकला बंदन के जाग लाल,
या मैं कौन इंदु 'बृज' कहौ नंदलाल सों ।।५२।।

टीका—यह नायिका धीरा, व्यंग्य बचन कृष्न से पूछै है कछु चिह्न देखि। जथा एक ससि सरद के सुधा को बरसावै, जाते सिंधु को मोद होय है। सुधा गुन, सिंधु को मोद गुन, यह गुन तें गुन भयो, तातें प्रथम उल्लास। एक ज्वाल मेटि शिव के भाल ऐसो है है। शिव के ज्वाल दोष सों चन्द्रमा को गुन भयो, शिव के भाल पर बैठे दोष ते गुन, यातें दूसरो उल्लास। एक निशिकर बिरही तापकर। शीत गुन, बिरही को ताप दोष, गुन तें दोष तीसरो उल्लास। एक चौथि चंद्र दोष, ताहि देखि दोष लागै। दोष तें दोष, यातें चौथो उल्लास। एक सुधाधर कंज को परसे न फूले, सुधा गुन, कमल को न लाग्यो, यातें अवज्ञा प्रथम। एक निसिपति कोक को शोकित करै, सो दोष चन्द्रमा को नहीं लाग्यौ, जब अमावस को चन्द्र नहीं रहते तऊ कोक सोकित रहै, यहि दूसरी अवज्ञा। एक द्वैज इन्दु कला करि छीन ताको जग बन्दन करत है। यह दोष को गुन, यातें अनुज्ञा। अथ उल्लास दोहा—"गुन ऐगुन[3] जब और ते, और धरै उल्लास। न्हाय संत पावन करै गंग धरै यह आस।" जहाँ एक के गुन तैं और को गुन, एक के दोष तें और को गुन, और के गुन तें और को दोष, और के दोष ते और को दोष। अवज्ञा दोहा—"होत अवज्ञा[4] अवर के, लगै न गुन अरु दोष।"

१—भा० भू० ४।१५६। २—भा० भू० ४।१६२।

सारदी = शरत्पौर्णिमा। स्रवै = बरसाता है। सीतकर = चन्द्रमा। कर-परसे = किरणों से स्पर्श करने पर। निसापति = चंद्रमा। द्वैज = द्वितीया को।५२।

३—भा० भू० ४।१६३। ४—भा० भू० ४।१६४।

काहू के गुन तें काहू को गुन न होय। अनुज्ञा दोहा—"होत अनुज्ञा जो चहै, दोषहि को गुन मानि। होत बिपति जामें सदा हिये बसत हरि आनि॥" इति ॥५२॥

(दूनौ लेस-मुद्रा-रत्नावली-तदगुन)

दंडक—बिरचे बिरंचि हाय अंग मैं सुगंध यह,
भौर ही से भौंर दौरि दलत कराल हैं।
कलाधर छीन कला ताहि न ग्रसत राहु,
श्रौन से बिशाखा सुनै मेरो ए हवाल हैं।
मोतिन की माल हिए सोन के मिसाल होत,
हीरा नग लागे हाथ होत परबाल हैं।
बानी पर बानी रमा रूप पर ठानै खीझि,
गिरिजा गुराई पर बिलखै बिशाल हैं॥५३॥

टीका—यह नायिका रूप गर्विता के वचन, न्यूनता करि गर्व जनावती है। बिरंचि यह सुगंध गुन दिए, जो भौंर भोर ही से अंग मेरे दलत, गुन से दोष ते प्रथम लेश, और देखो चन्द्रमा जब कला छीन रहै तब तक राहु नहीं, ग्रसै दोष, कला छीन राहु न ग्रसै तासों दूसरो लेश। दोहा—"गुन[3] को दोष रु

१—भा० भू० ४।१६५।

२—लेश, मुद्रा—दे० टि० पृ० ८७, ११९। रत्नावली—वर्णन किये जाते हुए किसी प्रसङ्ग में जहाँ अन्य नाम भी प्रकट हो जायँ वहाँ रत्नावली अलंकार होता है। मुद्रा अलंकार में सूच्य अर्थ का सूचन करने के लिये जान बूझकर ऐसे शब्द रक्खे जाते हैं जिनसे प्रस्तुत अर्थ के साथ ही भावी घटना की भी सूचना मिलती है किन्तु रत्नावली में प्रस्तुत वर्णन में ही अनायास ऐसे शब्द आ जाते हैं। यही दोनों में अन्तर है।

तद्गुण—तद्गुण का अर्थ है दूसरे का गुण अर्थात् जहाँ कोई वस्तु अपना गुण छोड़कर समीपवर्ती वस्तु का गुण ग्रहण करे वहाँ तद्गुण अलंकार होता है। जैसे मोतीमाल हृदय का स्पर्श करते ही सुबर्ण हो गई उसने अपना श्वेत गुण छोड़कर देह का पीतगुण ग्रहण किया आदि।

दलत = कष्ट देते हैं। श्रौन = श्रवण नक्षत्र, कान। विशाखा = नक्षत्र, सखी का नाम। हवाल = हाल, वृत्तान्त। सोन = सुवर्ण। मिसाल = उदाहरण। परबाल = प्रबाल, मूँगा। बानी = बोलना, वचन। बानी = सरस्वती। गुराई = गोरापन ॥५३॥ ३—भा० भू० ४।१६६।

दोष को गुन मानै तहँ लेश। सुक यह मधुरी बानि ते बंधन लहे विशेष" ॥ श्रौन से बिसाखा सुनै। श्रवन नछत्र, बिसाखा नछत्र। श्रवन कान, बिसाखा गोपी। प्रस्तुत पद से नछत्र को अर्थ और होत, ताते मुद्रा। दोहा—"मुद्रा प्रस्तुत पदविषै औरै निकरै नाम। तोहिं मनावन को कहे भामिनि दोहा स्याम॥" इहाँ प्रस्तुत नायक बरनन में दोहा को अर्थ हा हा। और बानी पर बानी, रमा रूप पर, क्रमते प्रस्तुत अर्थ मैं सरस्वती लक्ष्मी पारबती के नाम निकरे, यातें रत्नावली। "रत्नावली[1] प्रस्तुत अरथ अवरै बरनै नाम। रसिक चतुरमुख लच्छिपति सकल ज्ञान के धाम" ॥ यह प्रस्तुत राजा के बरनन में ब्रह्मा बिस्नु महेश कह्यौ। *अन्थान्तर दोहा—"रवि तेरे तेजहि करत, सोम शील को देत"* ॥ मोती माल ही में परसे सोन होत, हीरा हाथ छुये मूँगा होत, आपनो गुन तजि संगति गुन लिये, ताते तद्गुन बरनन। दोहा—"तद्गुन[2] तजि गुन और के संगति को गुन लेय" ॥ इति ॥ ५३ ॥

(दोष पूर्वरूप[3]-अतद्गुन-अनुगुन)

दंडक—सेत है बुलाक मोती हेत मुसकान मंद,
रही जो ललाई चढ़ी बोठ अभिराम के।
दीप को बुझाय चली आली बनमाली पास,
भूषन प्रकास फैलो फेरि 'बृज' बाम के।
काँकरी कठोर मग धरति है धाय पग,
गड़त न नेकु फूल पाँखरी अराम के।
लाल अनुराग ही के माल पर बाल ही के,
अधिक है लाल नीके ललित ललाम के ॥५४॥

१—भा० भू० ४।१६८। २—भा० भू० ४।१६९
३—पूर्वरूप—दे० टि० पृ० १७५।

अतद्गुण—तद्गुण का विपरीत अतद्गुण होता है अर्थात् गुणी के संग रहकर भी दूसरा उसका गुण ग्रहण न करे तो अतद्गुण अलंकार होगा। जैसे उक्त पद में *नायिका, नायक-मिलन के लिये इतनी व्याकुल रही कि कंकड़ों* में पैर पड़ने पर भी उनका गड़ना उसे प्रतीत नहीं होता था। कंकड़ों का संग होने पर भी गड़ना रूप गुण पैरों ने ग्रहण नहीं किया अतः अतद्गुण है।

अनुगुण—जहाँ किसी दूसरी वस्तु के संग से प्रकृत वस्तु का गुण अधिक बढ़ जाय वहाँ अनुगुण अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में लाल (श्रीकृष्ण) के *अनुराग से नायिका की मूँग की माला* (जो स्वतः लाल थी) और अधिक लाल हो गयी। (अनुगुण = पूर्व गुण का सहायक।)

टीका—यह नायिका प्रौढ़ा अभिसारिका। सेत है बुलाक, मोती जो अधर के ललाई से लाल रही पूर्व का रूप पाए, याते पूर्वरूप प्रथम। दीप को बुझाइ चली फेरि भूषन को प्रकाश फैलो, यातें दूसरो पूर्वरूप। दोहा—"पूर्व रूप लै संग गुन, तजि फिरि निज गुन लेत। दूजो गुन जो ना मिटो कियो मिटन के हेत॥ शेष स्याम है सिव गरे, जस तें उज्जल होत। दीप बढ़ाये हू करै, रसना मनिन उदोत॥" काकरी कठोर मग की पाय में गड़िबो नहीं जानि परत, क्यों कामातुर सें। प्रौढ़ा। संग के गुन गड़व नहीं लगो, याते अतद्गुन। "सु अतद्गुन[2] गुन ना गहै संगी को जिहि गाहिं। पिय अनुरागी ना भये बसि रागी मन माहिं॥" मन को रंग नहीं लाग्यो जो रंगीन मैं रहत सों रंगीन होत। लाल के अनुराग से मूँगा की माल अधिक लाल भये। संगति से पूरब गुन सरसाने, याते अनुगुन इति॥ ५४॥

(मीलित[1]-सामान्य-उनमीलित-विशेषक)

दंडक—नेकु न लखाइ सोन भूषन सलोनी अंग,
छुए पैर जानि मृदु करकस कर से।

बुलाक = नासिका का आभूषण। ललाई = कालिमा। ओठ = ओठ, अधर। बनमाली = श्रीकृष्ण। काँकरी = कंकड़। गड़त न = चुभती नहीं। पाँखरी = पँखुड़ियाँ॥५४॥

१—भा० भू० ४।१७०-७१। २—भा० भू० ४।१७२। 'सोइ अतद्गुन संगतें जब गुन लागत नाहिं'—पाठान्तर।

१—मीलित—यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ दो मिली हुई वस्तुओं की समानता के कारण कुछ भेद ही न मालूम पड़े, जैसे उक्त पद में कांचन-वर्णा नायिका के अंग में स्वर्णाभरण पहिचाने ही नहीं जाते।

सामान्य—जहाँ सादृश्य के कारण दो पृथक् वस्तुओं में भेद लक्षित न हो वहाँ सामान्य अलंकार होता है। जैसे उक्तपद में नायिका को खोजने के लिये दीप जलाया किन्तु दीपशिखा और नायिका की देहदीप्ति का भेद नहीं ज्ञात हुआ। [यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मीलित अलंकार में उत्कृष्ट गुण से निकृष्ट गुण का तिरोधान होता है और सामान्य में दोनों की गुणसमानता होने से भेद का आग्रह। यही दोनों में अन्तर है।] उन्मीलित—दे० टि० पृ० १३०।

विशेषक—दो वस्तुओं में सादृश्य के कारण उत्पन्न हुआ भ्रम जहाँ किसी तीसरी विशेष वस्तु से दूर हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होता है। जैसे

खेल के बहाने केलि मंदिर में आने 'बृज'
गहतै छबीली छूटि छपी छैल उर से।
आरसी अवास मैं दुराइ द्वार बैठी जाइ,
देह प्रतिबिंब के न भेद फुर वर से।
हेरिबे को बारि दीप मिली दीप सिखा जोति,
मंद होत प्रात प्यारे गात जानि परसे ॥५५॥

टीका—यह नायिका नवोढा को सुरतारंभ। सोन भूषन सलोनी अंग में नहीं जानि परत है। कौन भूषन कौन अंग है, यातें मीलित। दोहा—"मीलित[1] जो सादृश्य ते भेद न जबै लखाय। अरुन बरन तिय चरन में जावक लखी न जाय ॥" कोमल कठोर, कर ते छुये जानि परत की यह अंग है, यह भूषन, यातें उनमीलित। दोहा—"उनमीलित[2] सादृश्य ते भेद फुरै तब मानि। कीरति आगे तुहिन गिरि छुये परत है जानि ॥" दोऊ भिन्न जाति होइ कोई तरह सों मिलि गये होहिं कोई तरह भेद होय, तिय के देह की जोति औ दीप सिखा को भेद फुर नाहीं जान्यो, यातें सामान्य। "सामान्य[3] जु सादृश्य ते, जानि परै न विशेष। नाहि फुरत श्रुति कमल अरु, तियलोचन अनिमेष ॥" श्रुति कान के कमल और लोचन के भेद फुर नहीं। और प्रातः होत दीप के दुति मन्द देखि देह को जानि प्यारे पकरे, यातें विशेषालंकार। "इहै विशेष[4] विशेष है, फुरै जु समता माँझ। तिय मुख अरु पंकज लखे, ससि दरसन तें साँझ ॥"॥५५॥

(गूढोत्तर[5]-सूक्ष्म-पिहित-व्याजोक्ति)

सवैया—मनमोहन गाइ चरावैं वहाँ सुख लायक है बन कुंज थली।
हरि हेरि हरे हिए आरसी लाइ देखाइ तबै मुसुकाइ चली ॥

उक्त पद में "प्रातःकाल होने पर दीप की द्युति मन्द पड़ने लगी तब नायिका की देह पहिचान में आयी" यहाँ प्रातःकाल ने दोनों की विशेषता को स्पष्ट किया अत: विशेषक है। [यहाँ यह स्मरणीय है कि विशेष, विशेषक और विशेषोक्ति ये तीनों पृथक् अलंकार हैं। इनमें अन्तर लक्षणों से स्पष्ट हो जाता है।]

नेकु = थोड़ा भी। सोन भूषन = सोने के आभूषण। करकस = कठोर। छपी = छिपी। छैल उर = चतुर नायक की छाती से। आरसी अवास = दर्पण लगे हुए महल ॥५५॥

१—भा० भू० ४।१७४।

२—भा० भू० ४।१७६। ३—भा० भू० ४।१७५। ४—भा० भू० ४।१७७।

५—गूढोत्तर—किसी प्रश्न का जो उत्तर दिया गया है, उसमें यदि कोई गुप्त रहस्य छिपा हो तो वहाँ गूढोत्तर अलंकार होता है। जैसे उक्त पद में

लखि केसरि के रंग सों लिखि कै कर द्वैज के इंदु देखाइ चली।
मुख चंद्र को जानि चकोर चले चल चंगुल चोंच चलाइ दली ॥५६॥

टीका—मन मोहन पूछें तब ग्वालि कहो, बन कुंज को भलो है। वहाँ चलो गाइ चराबो सुख लायक ते बिहार करिबो ठौर है, याते गूढ़ोत्तर। दोहा—"गूढ़ोत्तर[1] कछु भावते, उत्तर दीन्हे होत। उन वेतस तरु मैं पथिक उतरन लायक सोत"॥ पथिक उत्तरन को घाट पूछे, तासो कामिनि को उत्तर। वहाँ निर्जन बन बिहार करि है। और आरसी हिय लगाय, हरि को देखाइ चली, यह क्रिया तें सूक्ष्म। दोहा—"सूछम पर आसै लखे, करै क्रिया कछु भाय। मैं देखी वह सीसमनि केसन लई छपाय॥" और सखी केसरि के रंग कर पर द्वैज चंद लिखो जो नखक्षत नायिका के वोठन में देखो। छपी बात को प्रगट, ताते पिहित। दोहा—"पिहित[2] छपी पर बात को, प्रगट जो कहै जताइ। प्रातहि आये सेज हरि हँसि हँसि दाबति पाइ"॥ ग्रंथान्तरे दोहा—"रमी तिया विपरीति रति, सखि लखि गई सयान। कुंकुम सो कर कंज पै, हँसि कै लिखो कृपान"॥ तरवारि कर मैं पुरुष राखत है सो तू आज तरवारि के काम किये, और यह मुख चन्द्र चकोर जानि चोंच चलाये आकार को दुराये, यातें व्याजोक्ति। "व्याजोक्ति[3] कछु और बिधि, कहै दुरै आकार, सखि सुक कीन्हें कर्म ए, मानिक जानि अनार"॥ और पहिले पद में बचनबिदग्धा* दूसरे में क्रियाबिदग्धा, तीसरे में लक्षिता, चौथे पद में गुप्ता नायिका है॥ ५६॥

(गूढोक्ति-विवृतोक्ति-जुक्ति-लोकोक्ति-छेकोक्ति)

दंडक—कालिह अली जाउँगी मैं बृज बरसाने हाट,
बाट जनि रोको सुनै बातैं राधारौन है।
सैन करि कहै बैन गोरस जो चाहौ लेन,
गाइ को भजाइ लावो इतै कुंज भौन है।

श्रीकृष्ण के पूछने पर ग्वालिनि गाय चराने का जो स्थान बताती है उसमें एकान्त बिहार की क्षमता रूप रहस्य गूढ़ है, अतः गूढोत्तर अलंकार है।

सूक्ष्म, पिहित—दे० टि० पृष्ठ ८३ और ४३।

व्याजोक्ति—अपने आकार को छिपाने के लिये जहाँ हेतु बदल दिया जाय वहाँ व्याजोक्ति होती है (व्याज = बहाने की + उक्ति = कथन)

कुंजथली = लतागृह। द्वैज = द्वितीया का। चल = चंचल। चंगुल = पंजा। दली = क्षत-विक्षत कर दी ॥५६॥

१—भा० भू० ४।१७८। २—भा० भू० ४।१८१। ३—भा० भू० ४।१८२।
* इन भेदों के लक्षण आगे नायिका प्रकरण में देखिये।

इतनो कहत कर काँपि उठे कामिनी के,
कहौ बिलखाइ कंप बाय किए गौन है।
चोर होइ सोई जानै चोरन की चाल जोई,
'कर न तो डर कौन' कहै 'बृज' कौन है ॥५७॥

टीका—यह नायिका पहिलो पद में बचन चातुरी और दूसरे में गुप्त, ताके बचन। कालिह मैं बरसाने को जाऊँगी, अली सों कहै, पै बाट कान्ह न रोकै, यह पर उपदेश ते गूढ़ोक्ति। "दोहा—"गूढ़ उक्ति मिसि और के, कीजे पर उपदेश। कालिह सखी हौं जाउँगी पूजन देव महेश" ॥ और सैन करि बैन कहै की जो गोरस को लैन चाहत हो तो गाइ उतै कुंज भौन को गई लै आवो। श्लेष छिपो पद कहत है गोरस दही-दूध, गो इन्द्री रस याते विवृतोक्ति, दोहा—"श्लेष छपो परगट कियो, विवृतोक्ति है ऐन। पूजन देव महेश कों कहति दिखाए सैन" ॥ इहाँ कुच के वोर सैन करि कहै, और यतने में कंप भयो ताहि कहो कंप बयारि को छिपाई, याते युक्ति। "यहै युक्ति[1] कीन्हे क्रिया, कर्म छिपायो जाइ। पीय चलत आँसू चले, पोछति नैन लजाइ" ॥ मर्मगोप्य बात छपाइवे के लिये क्रिया कोई करै, पराये को ठगै और तब सखी कहो चोर की बात चोरै जानत, यातें लोक उक्ति। "लोक उक्ति[2] कछु बचन सों, लीजै लोक प्रवाद। नैन मूँदि षटमास लौं सहिए बिरह बिषाद॥" यह लोक की कहनी की कर न तो डर का है, चोर चोर की बात जानै। यह अर्थ भयो की जे पर पुरुष से रमत होइ सो यह जानै, याते छेकोक्ति। "लोक उक्ति[3] कछु अर्थ सों छेक उक्ति है जानि। सखी भुजग के चरन को, भुजग होय सो जानि ॥" साँप के पाँव को साँप जानै, दूसरे भुजंग नाम कामी का भी, कामी हो सो जानै इति ॥५७॥

(वक्रोक्ति[4]-उदात्त-सुभावोक्ति-भाविक)

दंडक—बड़े हौ रसिक लाल कहै को गँवार ग्वालि,
हौं कहौ गोपाल अस कीजै अनचाही सों।

बृज = कवि का उपनाम। हाट = बाजार। सैन = संज्ञा, इशारा। गोरस = दही, दूध। कुंजभौन = लतागृह। बिलखाइ = रोकर। कंपबाय = वायुजन्य रोग जिसमें अंग कांपते हैं ॥५७॥

१—भा० भू० ४।१८५। "नैन जँभाय" पाठान्तर है।

२—भा० भू० ४।१८६। ३—भा० भू० ४।१८७। "जो गायन को फेरिहैं, ताहि धनंजय मानि।" पाठान्तर है।

४—वक्रोक्ति, उदात्त, स्वभावोक्ति—दे० टि० क्रमशः पृ० १५७,१०३,४६।

रूप की दिवार जातरूप के केवार जहाँ,
मनि को प्रकाश सो अवास देखे ताही सों।
तामैं चौंकि चलै चितै चारों ओर दौरि दार,
कर धरि देखे उर धकधकी वाही सों।
फेरि छुऐ पावों वाँही छैल चलि छुवौं छाँही,
आवौ कहै नाहीं नाह पेखि परछाहीं सों ॥५८॥

टीका—यह नायिका नवोढा की सुरतांत, ताको सखी उपालंभ करि नायक सों कहै है। बड़े हौ रसिक लाल, या सुनि दूसरी सखी व्यंग्य सुरफेरि कही कहै—को गँवार कहत, सुर फिरे सों यह अर्थ भयो कहत ही है, याते बक्रोक्ति। "बक्रउक्ति[1] स्वरश्लेष सों, अर्थ फिरै तब होइ। रसिक अपूरब हौ पिया, बुरो कहत नहिं कोइ ॥" जहाँ कोई स्वर के फेर सों किं वा श्लेष सों और ही अर्थ करि तहाँ कहिए। पिय अपूरब रसिक है याको कोई बुरो नाहीं कहत, नायिका स्वर सों फेरि कहत ही है। और चाँदी की दिवार, सोन के केवार, मनि के प्रकास, तामैं ताहि को देखो है। चारों दौरि चौकि चलै, यह नवोढा को सुभाव है, याते सुभावोक्ति। "सुभावोक्ति[2] तहँ जानिये बरनै जाति सुभाय। हँसि हँसि देखति फिर हँसति मुँह मोरति सतराय"। जहाँ जाति गुन क्रिया को बरनन होइ, भाषा मैं याको जाति अलंकार कहत। उदात्त दोहा—"है उदात्त सम्पति चरित, श्लाघ्य चरित अति अंग। संगर सिब अर्जुन कियो, जाके सिष अभंग ॥" जहाँ अति संपत्ति चरित को बरनन, किंवा श्लाघ्य जो स्तुति करिबे लायक, ताकी क्रिया जहाँ और को अंग होय तो उदात्त। पहर के बरनन मैं श्लाघ्य जो सिब अर्जुन जुद्ध किए हैं। "रतननि के थंभानि प्रति, प्रतिबिंबित दशशीस। निश्चय राबन है इहै, नीदि जु लखो कपीश ॥" और अब फेरि बाहीं छुवै यै है, यह भविष्य। सो चलो छाँह तौ छुइ लेहु, यह बर्तमान, याते भाविक। और जो तुमारे केलि समै नाहीं मुखते कढ़त रहो सो भूत, सो

भाविक—जहाँ भूतकाल या भविष्यत्काल की (बीती हुई या होनेवाली) घटनाओं का प्रत्यक्ष (वर्तमानवत्) वर्णन किया जाय, वहाँ भाविक अलंकार होता है। विशेष टीका में स्पष्ट है।

रूपकी = चाँदी की, स्वरूप की। जातरूप = सुवर्ण। केवार = द्वार, दरवाजे। अवास = गृह। दार = नायिका। नाह = नाथ। परछाहीं = छाया ॥५८॥

१—भा० भू० ४।१८८। २—भा० भू० ४।१८९।

नाहीं अबौ देखि परछाँही कहत यह वर्तमान, ताते भाविक। "भाविक[1] भूत भविष्य जो, परतछ कहत बनाय। वृन्दावन में आजु वह लीला देखी जाय ॥" भूत जो होनहार अर्थ सो प्रतक्ष कहैं और जो आगे होनहार है सो प्रतक्ष कही जाय इति ॥५७॥

(अत्युक्ति[2]-निरुक्ति-प्रतिषेध-विधि-हेतु)

दंडक—राधानाथ राधा नैन नीर के निहारे नद,
हेरि हारे हद को न पाए वारपारे को।
दोषाकर बंस स्याम क्यों न करै कूर बाम,
लिखो नाहीं पाती काती ऊधो मोहिं मारे को।
दीन के दयाल सोई दीन पै दयाल होइ,
'गोकुल' बखानै यह गाथ बूढ़वारे को।
कही जोग बातैं बतरातै कढ़ी आह अंग,
पीर पियराई चढ़ी राई लोन वारे को ॥५९॥

इति श्री दिग्वजयभूषणे अलंकारसंसृष्टिक्रमवर्णनं नाम
दशमः प्रकाशः ॥११॥

टीका—यह ऊधो बृज के हाल कृष्न सों कहत। हे राधानाथ राधा के नैन नीर के नद के हद हेरि पाए, सो न मिलो, यह अदभुत बात से अत्युक्ति। दोहा—"अदभुत[3] झूटी बात जहँ, बरनै अतिशय रूप, जाचक तेरे दान ते भए कल्प तरु भूप ॥" जहाँ अद्भुत झूठी बात करि बरनै, उदारता सूरता

१—भा० भू० ४।१९० ।

२—अत्युक्ति—जहाँ किसी के शौर्य औदार्यादि का अद्भुत और अतथ्य वर्णन किया गया हो, वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है। उदाहरण टीका में स्पष्ट है। [यहाँ यह ज्ञातव्य है कि चन्द्रालोककार आदि ने अत्युक्ति को पृथक् अलंकार माना है किन्तु वास्तव में सम्बन्धातिशयोक्ति से अनुप्राणित उदात्त अलंकार ही अत्युक्ति है।] दे० टि०—निरुक्ति पृ० २०८, प्रतिषेध पृ० ७२, विधि पृ० ९७ हेतु—यह दो प्रकार का होता है। १. जब कारण और कार्य का एक साथ वर्णन हो। २. जब कारण—कार्य एक ही में रहें। उदाहरण टीका में स्पष्ट है।

हद = सीमा। दोषाकर = चन्द्रमा। पाती = पत्रिका, चिट्ठी। काती = छुरी, कैंची। गाथ = गाथा, कहानी। बूढ़वारे को = बुड्ढों की। जोगबातें = योग की बातें। बतरातै = बातचीत करते हुए। पियराई = पीलापन ॥५९॥

३—भा० भू० ४।१९२ ।

मैं। जथा-मतिराम-दोहा—"बारि बिलोचन बारि को, बारिध बढ़ै अपार। जारै जवन बियोग की बड़वानल की झार"॥ और दोषाकर बंस स्याम, क्रूर कुबरी बाम क्यों न करै, दोषाकर अर्थ दोष को खानि, तौ ऐसी बाम क्यों न करै, यातैं निरुक्ति। दोहा—"सो निरुक्ति[1] जब जुक्ति सों अर्थ कल्पना आन। ऊधौ कुबिजा बस भये निरगुन बहै निदान॥" जोग सो शब्द को अर्थ करि यह जानिए निर्गुन ब्रह्म जामैं सत, रज, तम ए तीन गुन नहीं। यहाँ निर्गुन जो अज्ञान, जाको रूप शील को पारिख नहीं। कूबरी सों कौन गुन जानि बश भये। और दीनदयाल सोई जो दीन पै दयाल होइ अर्थ फेरि साधन ते बिधि अलंकार। "अलंकार बिधि[2] सिद्ध जो, अर्थ साधिये फेरि। कोकिल है कोकिल जबै रितु मैं कहिये टेरि॥" इहाँ कोकिल तौ सिद्ध है, ताको फेरि साध्यौ। इहाँ दूसरी को कोलिल मधुर ध्वनि बकता की कही। यह अर्थ स्याम पाती नाहीं लिखे काती मारिबे को पाती के अर्थ को निषेध, ताते प्रतिषेध। "सो प्रतिषेध[3] निषेध जो, अर्थ निषेधो जाय। मोहन कर मुरली नहीं, यह कछु बड़ी बलाइ॥" जहाँ एक बस्तु प्रसिद्ध ही निषेधो है, सब जानत, ताको निषेध प्रसिद्ध करिकै और अर्थ भाषै। और जोग की बातैं कही। जोग बात कारन, आह बढ़ी मुख ते कारज। और पियराई अंग चढ़ी—पीर कारन, पियराई कारज, एकता को प्राप्त भयो हेतु अलंकार। दोहा—"हेतु अलंकृत दोइ है, कारन कारज संग। कारन कारज ए जबै, लहै एक ही अंग॥" कारन को कारज के लिये बरनैं क्रिया जहाँ कारन कारज एकता को प्राप्त होय। यथा-दोहा—"उदित भयो शशि मानिनी मान मिटाये जानि। मेरे रिधि समिद्धि ए तेरी क्रिया बखानि॥" उदय चंद्र कारन, मान छूटो कार्ज, रिद्धि समिद्धि को कारन, क्रिया रिद्धि समृद्धि कार्ज, तो एकता। मतिराम—"दरपन मे निज छबि लखै; नैननि मोद उमंग। तिय मुख पिय बसि करनसी, चढो गरब को रंग॥" निज छबि देखबो कारन, मोद उमंग कार्य, पिय बस करनो कारन, मुख मैं गरब को रंग बढ़िबो कार्य एकता सों इति॥ ५९॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायाम् अलंकारसंसृष्टिक्रम-
बर्णन नाम दशमः प्रकाशः॥१०॥

१—भा० भू० ४।१९३। २—भा० भू० ४।१९५।
३—भा० भू० ४।१९४। ४—भा० भू० ४।१९६।
५—भा० भू० ४।१९७।

एकादशः प्रकाशः

दो०—अब दोहन में रचत हौं, अलंकार एक रूप।
बिगरो बरन सुधारि पढ़ि, सुनहु कबिन के भूप ॥१॥
ग्रंथ नाम धरि दिग्विजय भूषन रूप बिशाल।
भूषन हैं बहु भाँति के, बड़ो ताहि में माल ॥२॥

टीका—अलंकार संसृष्टि वर्णनोपरि दोहन मो अलंकार वर्णन करत है। इस हेतु कविवरन सों विनय ग्रन्थकर्ता करै है और ग्रन्थ को दिग्विजय भूषण नाम धरयो, सो भूषण अनेक प्रकार के हैं, कौनों बड़ो कौनो छोटो, तामें माला सबसों श्रेष्ठ है ॥१, २॥

सो माला द्वै भाँति के, मनमाला मनिमाल।
मनिमाला गर मैं रहै, अरु सुमिरै हरि हाल ॥३॥
तामें दाने एक सै आठ, भाँति अभिराम।
अहै काह यहि ग्रंथ में, समुझि कहौ परिनाम ॥४॥
अलंकार यहि ग्रंथ मैं, यक सै आठ ललाम।
सो सब दोहन मैं लिखे, भूप दिग्विजय नाम ॥५॥
पूरन उपमा आदि मैं, हेतु अलंकृत अंत।
क्रम सों बरनन करत हौं, नृपति नाम मतिवंत ॥६॥

टीका—सो माला द्वै प्रकार को—एक मनमाल, दूसरो मणिमाल। मणिमाल कंठ में शोभित होवै है अरु वासों हरि को नाम लियो जाय है। तामें एक सौ आठ दाने होय है। इसी हेतु इस प्रस्तुत ग्रन्थ में एक सौ आठ अलंकार माला गत दाने के स्थान में नियुक्त कियो है। पूर्णोपमा से लै हेतु अलंकार पर्यंत क्रम पूर्वक महाराज बहादुर दिग्विजय सिंह के नाम में अलंकार निकरैगो ॥३—६॥

(पूर्णोपमा)

चौपाई—वाचक धर्म जहाँ उपमान। लहि उपमेय चारि यक ठान ॥७॥

दो०—कवि कोबिद कुल कमल बन, प्रफुलित निरखि बिलास।
भूप दिग्विजै सिंह को, रबि लौं तेज प्रकास ॥८॥

टीका—लक्षण—जहाँ उपमान, उपमेय, बाचक शब्द लौं-सों-जिमि-यथा जैसो-तुल्य-सदृश-सम इत्यादि और साधारण धर्म, चारयों को उपादान होय तहाँ

उपमालंकार जानिये। उदाहरण–कवि कोविद०—इहाँ तेज उपमेय, रवि उपमान, लौं वाचक, कवि कोविद कुल कमल बन को बिकसिबो साधारण धर्म को उपादान, यातें पूर्णोपमा अलंकार ॥७–८॥

(लुप्तोपमा)

चौपाई–वाचक धर्म उपमानोपमेय। यक द्वै त्रै बिनु लुप्तमसेय ॥९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, कीरति चंद बिचारि।
सो कित कायर कोकनद, मोद चकोर निहारि ॥१०॥

टीका—लक्षण–उपमेयादि चारों के मध्य एक वा द्वै अथवा तीन्यों के उपादान न रहिबे के कारण आठ प्रकार की लुप्तोपमा होय है। १—वाचक-लुप्ता, २—धर्मलुप्ता, ३—धर्मवाचकलुप्ता, ४—उपमेयलुप्ता, ५—उपमानलुप्ता, ६—वाचकोपमान लुप्ता, ७—धर्मोपमानलुप्ता, ८—धर्मोपमानवाचक लुप्ता। उदा०—कीरतिचंद पद में धर्म वाचक को लोप, कायरकोकनद पद में वाचक को लोप, मोद चकोर निहारि पद में वाचक उपमेय को लोप जानिये ॥९,१०॥

(उपमानोपमेय)

चौपाई–उपमा लगै परसपर रेखे। उपमानो उपमेय अलेखे ॥११॥

दो०—भूप दिग्विजै सिंह को, पुंज प्रताप बखानि।
तेज तरनि सों मानिए, तरणि तेज सों जानि ॥१२॥

टीका—लक्षण–जहाँ परस्पर उपमानोपमेयभाव होय अर्थात् एक बार वह उपमान और दूसरो उपमेय, एक बार दूसरो उपमान वह उपमेय, तहाँ उपमेयोपमा अलंकार जानिये। उदाहरण–तेज तरणि सों तरणि तेज सो पर्य्यास करि उपमानोपमेयभाव, यातें उपमेयोपमा अलंकार ॥ ११,१२ ॥

(अनन्वय)

चौ०—उपमेई उपमान बखानौ। ताहि अनन्वय कविमति ठानौ ॥१३॥

दो०—परम धरम दाया बिनय, दान कृपान बखानि।
भूप दिग्विजय सिंह सम, भूप दिग्विजय मानि ॥१४॥

टीका—ल०—जहाँ एकै को उपमान उपमेय करि बर्णन कीजिये तहाँ अनन्वय अलंकार जानिये। उदा०—भूप दिग्विजय के तुल्य भूप दिग्विजय ही, तात्पर्य्य कि उपमान नहीं देखाय परै है, यातें अनन्वय अलंकार ॥ १३,१४ ॥

कोकनद = लाल कमल ॥१०॥ तरनि = सूर्य ॥१२॥

(प्रतीप प्रथम)

चौ०—उपमा कहँ उपमेय करै जहँ। प्रथम कहत परतीप लोग तहँ॥१५॥
दो०—भूप दिग्विजय पानि वै, फेरै मुद्गर चंड।
ता भुज दंडन सों लसत, दंती शुंडादंड ॥१६॥

टीका—ल०—जहाँ उपमान को उपमेय करि वर्णन कीजे तहाँ प्रथम प्रतीप। उदा०—भूप दिग्विजय जा भुज सों अति गुरु मुद्गर फेरै है वा भुज सम दंती कहै हस्ती को शुंडादंड लखियतु है। इहाँ शुंडादंड उपमान को उपमेय करि वर्णन कियो, यातें प्रथम प्रतीप अलंकार॥ १५, १६॥

(दूसरो प्रतीप)

दो०—उपमे को उपमान तें, आदर जबै न होइ॥१७॥
अरि तिय कहि निज तेज लखि, जनि गुमान अवरेखि।
भूप दिग्विजय सिंह को, तेज तरणि उत देखि॥१८॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय को उपमान करि वर्णन करिबेहू पै उपमेय को अनादर लक्षित होय, तहाँ दूसरो प्रतीप। उदा०—वैरी बधू अपने तेज लखि जनि गुमान करै, तैसाई भूपदिग्विजयसिंह को तेज तरनि को लखै। इहाँ तेज उपमेय, तेज तरणि उपमान को उपमेय पायबे हू पै अपनो अनादर ठहरावे है, यातें दूसरो प्रतीप अलंकार॥ १७,१८॥

(तीसरो प्रतीप)

चौ०—अन आदर उपमेय तें पावै। उपमानै प्रतीप त्रय गावै॥१९॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, बाजी बेग बिशाल।
मंद लगै गति पौन की, जबहिं चलै रवहाल॥२०॥

टीका-ल०-जहाँ उपमेय को उपमेय लाभ होयबे हू पै उपमान को अनादर होय, तहाँ तीसरो प्रतीप अलंकार। उदा०-भूप दिग्विजय के बाजी के आगे पवन की गति मंद लगै है। उपमान पवन, बाजी उपमेय को उपमेय पायबे पर अपनो अपमान सूचित कियो कि मेरी बराबर बाजी कहाँ चलैगो, यातें तीसरो प्रतीप अलंकार॥१९, २०॥

(चौथो प्रतीप)

चौ०—उपमे तें उपमानहिं देखा। सम लायक नहिं चौथ बिसेखो॥२१॥

पानि = हाथ। भुजदंड = बाहु, भुजायें। दंती शुंडादंड = हाथी की सूंड॥१६॥
अवरेखि = करें या मानें॥१७॥ बाजी = घोड़े। रवहाल = ध्वनिवत्॥१९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, पील पुंज समताहि।
लखि कारे रंग मेघ से, कहे कौन बिधि जाहि ॥२२॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय के साथ उपमान की उपमा की असिद्धि ठहरै, तहाँ चौथो प्रतीप। उदा०—भूप दिग्विजय के गजन को लखि स्याम मेघ के समान यह कैसे कह्यो जाय है। इहाँ गज उपमेय के साथ उपमान श्याम घन की समता की अनिष्पत्ति, यातें चौथो प्रतीप ॥ २१, २२ ॥

(पाँचवाँ प्रतीप)

चौ०—बृथा होइ उपमान जहाँ लहि। पचवाँ सो प्रतीप कविता कहि ॥२३॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, नीति को करै बखान।
कीरति आगे चंद्र कर, मंद कहै मतिमान ॥२४॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय के आगे उपमान व्यर्थ ठहरायो जाय, तहाँ पाँचवाँ प्रतीप अलंकार। उदा०—भूप दिग्विजय सिंह की नीति को को बखानि सकै। कीति के आगे चन्द्रमा के किरण को बुधजन मन्द ठहरावै हैं। कीर्ति उपमेय के समक्ष उपमान चंद्रकिरण की व्यर्थता देखायो, यातें पंचम प्रतीप अलंकार ॥ २३, २४ ॥

(षट् रूपक)

चौ०—रूपक द्वै बिधि कवि कुल भाषे। करि तद्रूप अभेदहि राखे।
अधिक न्यून सम भेद तीनि करि। मिलि अभेद तद्रूप छइउ धरि ॥२५

टीका—ल०—तद्रूप और अभेद करि रूपक द्वै प्रकार को, अधिक न्यून सम बर्णन सों प्रत्येक अर्थात् तद्रूप और अभेद दोऊ तीनि प्रकार, यातें षट् भेद रूपक को जानिए ॥ २५ ॥

(तद्रूप अधिक रूपक)

दो०—वा रबितै हैं छबि अधिक, द्यौसनिसा यक रूप।
भानु समान प्रताप अति, उदै दिग्विजय भूप ॥२६॥

टीका—उदा०—प्रसिद्ध सूर्य सों दिग्विजय भूप के प्रतापतपन को दिनोराति उदित रहिबे के कारन अधिक तद्रूप अलंकार ॥२६॥

(समतद्रूप)

भूप दिग्विजयसिंह के, गज गिरि सदृश बिचारि।
मंजु नीर मद झरत है, झरना पुंज निहारि ॥२७॥

पीक पुंज = हाथियों का झुंड ॥२२॥

टीका—उदा०—भूप दिग्विजय के गज को पर्वत करि बरनन कियो। मदधारा और झरना झरिबे कारण समानता देखाय सम तद्रूप अलंकार ॥२७॥

(न्यूनतद्रूप)

दो०—कवि कोविद कुल कमल को, दुख न देत करि दौर।
भूप दिग्विजय सिंह को, सुयस चंद कछु और ॥२८॥

टीका—उदा०—कवि कोविद कुल कमल को नहीं दुःख देय है। भूपति के यश चंद्र को न्यून ठहरायो, यातें न्यून तद्रूप अलंकार ॥ २८ ॥

(अभेद सम रूपक)

दो०—मंजु पुंज छबि छाजई, रंग परम अवरेखि।
भूप दिग्विजय सिंह को, कर है कंज बिशेखि ॥२९॥

टीका—उदा०—भूपति के कर को कमल के समान सौन्दर्य और सुगंध युक्त होयवे के कारण समाभेद रूपक अलंकार ॥ २९ ॥

(अधिक अभेद रूपक)

दो०—नीतिमान दिग्विजय नृप, दया सिंधु सरसाइ।
निशि दिन कीरति चंद्रमा, बिनु अकलंक लखाइ ॥३०॥

टीका—उदा०—भूप की कीर्ति चन्द्रमा को निशिदिन प्रकाशमान रहिबे के कारन अधिक अभेद रूपकालंकार ॥ ३० ॥

(न्यून अभेद रूपक)

दो०—रतनाकर दिग्विजय नृप, नीति नीर अधिकात।
बिनु मद माहुर के लखे, औरै कहि अवदात ॥३१॥

टीका—उदा०—नृप दिग्विजय की नीति समुद्र को बिना मद माहुर के न्यून अभेद रूपक अलंकार ॥ ३१ ॥

(उल्लेख द्विविध)

चौ०—एकहि बहुत अनेकहि जानै। बहुत अनेकन भाँति बखानै ॥३२॥

दो०—प्रथम-भूप दिग्विजय को कहैं, अरि उलूक आदित्य।
जाचक जानै करन कलि, प्रजा बिक्रमादित्य ॥३३॥

टीका—लक्षण—जहाँ एक को बहु मिलि बहु प्रकार वर्णन करै अथवा एक ही को विषय भेद तें बहु विध में वर्णन कीजिये, तहाँ द्वै प्रकार को उल्लेख

द्योसनिसा = दिनरात ॥२६॥ कंज = कमल ॥२९॥

मद माहुर = मद्य और विष। अवदात = प्रकाशमान ॥३१॥

जानिए । उदाहरन--भूपदिग्विजय को अरिउलूक आदित्य करि जान्यो, याचक कर्ण, प्रजा विक्रमादित्य जानै है । एक भूप को अरिउलूक आदि आदित्यादि करि जान्यो, यातें प्रथम उल्लेख अलंकार ।। ३२, ३३ ।।

द्वितीय—जस मैं शशि रबि तेज मैं, गुन मैं गुननिधि जानि ।
भूप दिग्विजय सिंह को, केहि सम कहौं बखानि ।।३४।।

टीका-एक भूप दिग्विजय सिंह को यश मैं शशि सम, तेज मैं रवि सम, गुग मैं गुगनिधि सम, बिषय भेद करि बर्णन कियो, यातें दूसरो उल्लेख ।।३४।।

(परिणाम)

चौ०—करै क्रिया उपमान होइ करि । बरननीय परिनाम नाम धरि ।।३५
दो०--भूप दिग्विजय नित करै, न्याय प्रकट प्रछन्न ।
कर पंकजबर तें लिखत, पय पानी करि भिन्न ।।३६।।

टीका—लक्ष०—जहाँ उपमान उपमेय ह्वै क्रिया करै, तहाँ परिणाम अलंकार । उदाहरन–भूपति प्रकट गुप्त न्याय करि कर कमल सों नीर छीर भिन्न करि लिखै है । कमल उपमान, उपमेय कर ह्वै क्रिया लिखबे में कार्य्य-कारी भयो, यातें परिणामालंकार ।। ३५, ३६ ।।

(स्मृति)

चौ०—लखि अबर्न्य सुधि बर्न्य कि आवै । अलंकार सुमिरन कवि गावै ।
दो०—अरि नगरीन के नारि नर, जेठ तरनि को देखि ।
समुझत नृप दिग्बिजै के, पुंज प्रताप बिशेषि ।।३८।।

टीका—लक्ष०—जहाँ वर्णनीय के तुल्य को बिलोकि सुधि लावै, तहाँ स्मृतिमान् अलंकार । उदा०—अरि नगरी जेठ के महीने के सूर्य को देखि अरि नगर के बासी समुझत कहै सुधि करत हैं कि भूप को प्रताप ऐसो है ।।३७, ३८।।

(भ्रम)

चौ०—सदृश रूप लखि अनियत ज्ञान । भ्रम उपजै भ्रम कहै सयान ३९
दो०—भूप दिग्बिजै सिंह की, कढ़त जबै करबाल ।
अरि सैना तड़िता कहैं, तड़पै तेज कराल ।।४०।।

टीका—लक्ष०—सदृशरूप अवलोकि के अनियत ज्ञान होय तहाँ भ्रान्ति अलंकार । उदा०—करबाल तरवारि चमकती देखि अरि की सैन तड़िता कहै बिजुली होय ।।३९, ४०।।

प्रछन्न = गुप्त रूप से ।।३६।। जेठतरनि = ज्येष्ठमास का सूर्य ।।३८।।
कढ़त = निकलती है । करबाल = तलवार । तड़िता = बिजली ।।४०।।

(संदेह)

चौ०—नियत ज्ञान जहँ होत नहीं है। अलंकार संदेह तहीं है ॥४१॥

दो०—किधौं वृषादित तेज यह, दुष्टन के हिए ताप।
किधौं दिग्विजय भूप के, राजै पुंज प्रताप ॥४२॥

टीका—लक्ष०—जहाँ नियत ज्ञान एक वस्तु पर न होय तहाँ संदेहालंकार। उदा०—वृषादित्य कहै वृष के सूर्य होय की भूप को प्रताप ॥४१, ४२॥

(शुद्धापह्नुति)

चौ०—धर्म दुरै आरोपहि ते जहँ। शुद्धापह्नुति कबि बरनै तहँ ॥४३॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, यश कवि करै प्रकाश।
कीर्त्तिकौमुदी होइ नहिं, यह दिवि दारा हाँस ॥४४॥

टीका—लक्ष०—जहाँ आरोप तें धर्म छपि जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार। उदा०—यह कीरति की कौमुदी कहै चन्द्रिका न होय दिव कहै आकाश में देवदारा कहै देवतन की स्त्रियों की हाँस होय ॥४३, ४४॥

(हेतु-अपन्हुति)

चौ०—बस्तु दुरावै जुक्ति बात करि। हेतु अपह्नुति कबित माह धरि ॥४५॥

दो०—नीति चंद तीछन लखे, नहि रबि रैन में होइ।
तेज दिग्विजै भूप को, दुष्ट लोग कहि सोइ ॥४६॥

टीका—ल०—जहाँ वस्तु जुक्ति से छपावै तहाँ हेतु अपन्हुति। उदा०—नीति के चन्द तीक्षन कहै प्रचण्ड, अरि लोग अवलोकि कह्यो, पर शत्रु सुनि रवि कह्यो, नाहीं रैनि रबि कहाँ उदै होय, है यह भूप को तेज है ॥४५, ४६॥

(छेकापह्नुति)

चौ०—करै कलपना भय से मिथ्यै। छेकापह्नुति कहि समरथ्यै ॥४७॥

दो०—भूपदिग्विजै दल अदल, दुष्ट कँपै सुनि कान।
पूँछे काहू सों कहै, कंप बयारि सयान ॥४८॥

टीका—ल०—जहाँ कलपना भय कहै डर सों होय। तहाँ छेकापह्नुति।

वृषादित = वृषराशि का (ज्येष्ठ का) सूर्य ॥४२॥

दुरै = छिपता है ॥४३॥ दिविदारा हाँस = देवाङ्गनाओं की हँसी ॥४४॥

समरथ्यै = समर्थ कविगणों ने ॥४७॥

उ०-दल अदल सुनि दुष्ट काँपै, कोउ पूछो तासों कहै यह कंप बयारि कहै रोग है ॥४७, ४८॥

(भ्रांतापह्नुति)

चौ०—औरन भय मेटै कहि साँच। भ्रांतापह्नुति छंदहि बाँच ॥४९॥
दो०—दाह करत अति आगि नहिं, यह तप तेज दिनेस।
बदकारी नर यह कहै, लखि दिग्विजय नरेस ॥५०॥

टीका—ल०-बचन रचना से औरन के भय मिटै कहै भ्रम मिटै तहाँ भ्रान्तापह्नुति। उ०-दाह कहै जलन करत अगिन होय, नहीं भूप के तेज होय सूर्य ॥४९, ५०॥

(कैतवापह्नुति)

चौ०—कैतवपह्नुति मिसि करि आनै। बरनै कैतवपह्नुति ठानै ॥५१॥
दो०—तुरँग चढ़े दिग्विजै नृप, यह न कहो लखि प्रात।
रबि राजत है रँथहि पर, बाजी मिसि महि जात ॥५२॥

टीका—लक्षन—मिसि कहै बहानो करि जहाँ अन्य को बरनै तहाँ कैतवापह्नुति। उ०—तुरंग कहै घोड़ा पर सवार प्रात समै देखि यह न कहो कि भूप होय, यह रबि कहै सूर्य होय घोड़ा के मिसि पृथ्वी पर जात है ॥५१, ५२॥

(पर्यस्तापह्नुति)

चौ०—औरहि के गुन औरहि माँही। आरोपित परजस्त लखाहीं ॥५३॥
दो०—भूप दिग्विजै सिंह को, करन कहो यह दोय।
कल्पवृक्ष की डार है, झरत दान फल सोइ ॥५४॥

टीका०—लक्ष०-और के गुण और में होय तहाँ परजस्तापह्नुति। उ०-भूप के यह करन कहो दान देत मैं, कल्प की डार कहै साखा है, दान फल को झरते है ॥५३, ५४॥

(उत्प्रेक्षा)

चौ०—उत्प्रेक्षा संभावना करिए। बस्तु हेतु फल त्रैबिधि धरिए।
सिद्धअसिद्ध विषय दुई भाँती। दुइ तै तीनि गुने षट् जाती ॥५५॥

टीका—लक्ष०-उत्प्रेक्षा तीनि बस्तु, हेतु, फल। बस्तु में दो भेद उक्तास्पद, अनुक्तास्पद। हेतु में दो भेद-सिद्धविषय, असिद्ध विषय। फल में दो भेद-असिद्ध विषय, सिद्धविषय। जाकी सम्भावना की, जैसो सम्भाव्यमान, जाहि विषय

बदकारी = कुकर्मी ॥५०॥ मिसि = बहाने ॥५२॥

सम्भावना कीजै सो आस्पद, जहाँ क्रिया आगै-मानौ-किधौं-निश्चै, लौं इत्यादि इत्यादि बाचक आवै सो अनुक्तास्पद ॥५५॥

(वस्तु उत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजै सिंह सिर, मुकुट रतन नवकांति।
रवि मंडल मंडित किए, मनहु नवग्रह पाँति ॥५६॥

टीका—उदा०–मुकुट के रतन। नव मानौ नवग्रह की पाँति होय रहत सँभाव्यमान बस्तु, तातें बस्तूत्प्रेक्षा ॥५६॥

(हेतूत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, कीरति कांति निहारि।
मंद प्रभा यातें भए, दिन मैं चंद बिचारि ॥५७॥

टीका—उ०–कीरति निहारि दिन मैं चंद मंद भये। चन्द्रमा तौ स्वतः कहै सदा ही दिन मैं मलिन रहत, अहेतु को हेतु मान्यो, तातें हेतूत्प्रेक्षा सिद्धि ॥५७॥

(फलोत्प्रेक्षा)

दो०—भूप दिग्विजै सिंह की, कीर्ति कला सम होन।
भयो न मानै हानि ससि, साच स्यामता तान ॥५८॥

टीका—कीर्त्ति कला सम होन शशि चन्द्रमा के ग्लानि आयो। स्याम कहै कारे भये। सम होन फललेबो, तातें फलोत्प्रेक्षा ॥५८॥

(रूपकातिशयोक्ति)

चौ०—केवल जहँ लखिए उपमान। तासौं उपमेयहि को ग्यान ॥५९॥
दो०—कढै सोन के बिवर तें, बक्र साँपिनी स्याम।
भूप दिग्विजय शत्रु को, शिर काटै परिनाम ॥६०॥

टीका—लक्ष०–जहाँ केवल उपमान तहाँ रूपकाति०। उदा०–कढै सोन० सोन के बिवर कहै मियान उपमेय, बक्र रूप कहै टेढ़ साँपिनि कहै तरवारि उपमेय, तातें अतिशयोक्ति रूपक ॥५९, ६०॥

(संबंधातिशयोक्ति)

चौ०—देइ अजोगहि जोग जहाँई। संबंधातिशयोक्ति तहाँई ॥६१॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, द्विरद अनंत निहारि।
सुंड सीकरन नीर को, नीरद पियहि पियारि ॥६२॥

सोन के बिवर = सुवर्ण के छिद्र। वक्र = टेढ़ा। सोने की मियान से निकलती हुई तलवार का, विवर से निकलती हुई सर्पिणी रूप में वर्णन किया गया है ॥६०॥

टीका—लक्ष०—जहाँ अयोग को योग में कथन होय तहाँ संबंधातिसयोक्ति। उ०—द्विरद कहै हाथी, सुण्ड के सीकरन कहै बूँद को, नीरद कहै मेघ पियै है। अयोग यह योग में कथन ॥६१, ६२॥

(असंबंधातिशयोक्ति)

चौ०—जोग अजोग बखानै जहँ कबि। असंबंधि सै उक्ति तहाँ फबि ॥६३॥

दो०—भूप दिग्विजै सिंह के, कलि मैं दान बखानि।
नृपति करन सम होइ नहिं, करन भए जो दानि ॥६४॥

टीका—ल०—योग अयोग जहाँ बखानै तहाँ असंबंधाति०। उदा०—भूप के करन कहै कर सम जो करन नृप पूर्व हो गए, न है है ॥६३, ६४॥

(अक्रमातिशयोक्ति)

चौ०—कारन कारज संग जहाँ लहि। अक्रमातिसै उक्ति तहाँ कहि ॥६५॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, लहत सिकार प्रसंग।
बान सरासन सेर शिर, लागत एकहि संग ॥६६॥

टीका—ल०—जहाँ हेतु कार्य्य साथ ही होय तहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार। उदा०—भूपति जबही आखेट को व्यवहार अर्थात् शिकार खेलिबे जाय हैं तब बाण धनुष में लागत ही व्याघ्र के शिर छिन्न ह्वै के भूमि में गिरि परै है। इहाँ धनुष बाण संयोग हेतु काल व्याघ्र शिरश्छेद कार्य को साथ ही वर्णन कियो, यातें अक्रमातिशयोक्ति अलंकार ॥६५, ६६॥

(चपलातिशयोक्ति)

चौ०—कारज हेतु प्रसंग ज्ञान जहँ। चपल शयोक्ति बखान करै तहँ ॥६७॥

दो०—बैरी बनिता श्रवन सुनि, भूप दिग्विजय नाम।
जेहरि ढीली जंघ चढ़ि, छला चढ़ी भुज बाम ॥६८॥

टीका—ल०—जहाँ हेतु कहैं कारण के प्रसंग सों कार्य्य की उत्पत्ति होय तहाँ चपलातिशयोक्ति अलंकार। उदा०—यहाँ भूपति के नाम श्रवण मात्र

सुंड सीकरन नीर को = सूँड़ से निकलती जलबिन्दुओं को। नीरद = बादल। पियारि = प्रेम से ॥६२॥ करन = हाथों के ॥६४॥ लहत = जाते हैं। शरासन = धनुष ॥६६॥ जेहरि = नूपुर, पाजेब। छला = छल्ला, चूड़ी ॥६८॥

ही सों शत्रुवनितान की जेहरि लंक चढ़ी और चूरी भुज पै चढ़ी। नामश्रवण हेतु प्रसंग, तातें जेहरि और चुरी को ढील ह्वै लंक भुज चढ़िबो कार्य्य की उत्पत्ति यातें चपलातिशयोक्ति अलंकार ॥६७, ६८॥

(अत्यंतातिशयोक्ति)

चौ०—पूरब पर क्रम है जहँ नाहीं। अत्यंतातिशयोक्ति लखाहीं ॥६९॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, द्वार दीन जो जाइ।
सनोमान पीछे लहै, पहिले बिपति नसाइ ॥७०॥

टीका—ल०—जहाँ पौर्वापर्य्य व्यतिक्रम होय अर्थात् पूर्व को पछारी होय वा पाछे को पहिले होय सो अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार। उदा०—इहाँ दीन की दीनता कहै विपत्ति को नाश पहिले बर्णन, पश्चात् सन्मान कहै दान देबो कह्यो, यातें अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार ॥६९, ७०॥

(भेदकातिशयोक्ति)

चौ०—औरै और भेद गुन बरनै। भेदकातिशयोक्ति अचरनै ॥७१॥
भूप दिग्विजय सिंह सों, कपट करत जो आइ।
औरै औरै अंग रंग, औरै वह ह्वै जाइ ॥७२॥

टीका—ल०—जहाँ प्रसिद्ध बर्णनीय सों प्रस्तुत बर्णनीय को और ही कछू भेद बर्णन होय तहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार। उदा०—इहाँ भूपतिसों कपट करिबे वारे को प्रसिद्ध अंग रंग को ततकाल और ही ह्वैजायबो बर्णन, यातें भेदकातिशयोक्ति अलंकार ॥७१, ७२॥

(तुल्यजोगिता)

चौ०—बर्न्य अबर्न्यहि एकधर्म धरि। तुल्यजोगिता प्रथम नामकरि ॥७३॥
दो०—भूपदिग्विजय सिंह के, न्याय भानु को देखि।
पावत पुंज प्रकाश को, पंकज सुकबि बिसेषि ॥७४॥

टीका—ल०—जहाँ वर्ण्य कहै प्रस्तुत, अवर्ण्य कहै अप्रस्तुत को गुण क्रिया रूप एक धर्म में अन्वय होय तहाँ तुल्ययोगिता अलंकार। उदा०—इहाँ भूपति के न्याय भानु को देखि पंकज कमल सुकवि के बिकाश को कह्यो। पंकज अप्रस्तुत सुकवि प्रस्तुत को बिकाश रूप एक क्रिया में अन्वय, यातें तुल्ययोगिता अलंकार ॥७३, ७४॥

(दूसर तुल्यजोगिता)

चौ०— गुन सों जहँ उतकृष्ट बराबरि। तुल्य जोगिता दूसर को धरि॥७५॥

सनोमान = सम्मान, आदर ॥७०॥

दो०—शिबि दधीच हरिचंद बलि, करन भोज की रीति।
भूप दिग्विजय सिंह सदै, करत बराबरि नीति ॥७६॥

टीका—ल०–जहाँ उत्कृष्ट गुण करि वर्ण्यावर्ण्य की समानता देखावै तहाँ दूसरी तुल्ययोगिता। उदा०—इहाँ भूपति की समानता शिबि दधीच आदि की रीति के साथ बर्णन कियो, यातें दूसरी तुल्ययोगिता अलंकार ॥७५, ७६॥

(तीसर तुल्यजोगिता)

चौ०—शत्रु मित्र पैं वृत्ति जहाँ सम। तुल्यजोगिता के तीसर क्रम ॥७७॥

दो०—हित अनहित को करत हैं, मान दिग्विजय भूप।
ज्यौं जवास दै चातकहि, बारिद बारि अनूप ॥७८॥

टीका—ल०–जहाँ हित अहित में वृत्ति तुल्यता बर्णन कीजिए वहाँ तीसरी तुल्ययोगिता। उदा०—इहाँ हित अनहित को मान करिबो अर्थात् हित को मान कहैं प्रतिष्ठा और अहित को मा न कहै लक्ष्मी नहीं रखै है, इस हेतु वृत्तितौल्य, यातें तीसरी तुल्ययोगिता अलंकार ॥७७, ७८॥

(दीपक)

चौ०—वर्ण्य अबर्ण्य हि एकइ धर्म। दीपक ताहि कहैं कवि पर्म ॥७९॥

दो०—भूप दिग्विजय सिंह कौ, देखे राज समाज।
बुद्धिमान ते छबि महा, शुभ सुरते सुर राज ॥८०॥

टीका—ल०–जहाँ वर्णनीय अरु अबर्ण्य के धर्म येकई होइ तहाँ दीपक अलंकार। उदा०—भूप को राज समाज कहै सभा बुद्धिमान ते शोभित तैसे सुर कहैं देवतन सें सुरराज ॥७९, ८०॥

(दीपकावृत्ति)

चौ०—पद की आवृत्ति पहिलो कहिए। धरि अर्थहि सों दूजो लहिए।
पदहि अर्थ सों तीजे कहिए। त्रिबिधि दीपकावृत्तिहि गहिए ॥८१॥

टीका—ल०–दीपकावृत्ति तीन, प्रथम में पद की आवृति, दूसरे में अर्थ की आवृति, तीसरे मे पद और अर्थ दुहुन की आवृति ॥८१॥

(पद आवृत्ति)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, तानि सरासन तीर।
सर सोहै सिर सेर के, सरसो घाय अधीर ॥८२॥

जवास = कण्टकी, एक काँटेदार वृक्ष। वारिद = मेघ ॥७८॥ पर्म = परम ॥७९॥
सर = बाण। सेर = सिंह। सरसो = फैल गया। घाय = घाव ॥८२॥

टीका–उदा० प्रथम–भूप ने तीर को छोड़े, सर सोहे०—शर कहै तीर सौहै कहै शोभित है। सेर के सिर सो घाय कहै अधिक घाय है ।।८२।।

(दूसर अर्थ आवृत्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, निरखे बाग विशाल।
फूली लतिका फूल की, बिकसे बिशद रसाल ।।८३।।

टीका—दूसरो अर्थ की आवृत्ति, फूली लतिका, बिकसे रसाल। फूलब बिकसब एकई अर्थ ।।८३।।

(तीसर पद अर्थ हूँ की)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, दल औ अदल निहारि।
अरि बिलखै बिलखै कुटिल, बिलखै दुष्ट बिचारि ।।८४।।

टीका—तीसर पद अर्थ की आवृत्ति, अरि बिलखै, दुष्ट बिलखै। बिलखै कहै व्याकुलताइ, एकै शब्द अर्थ एकै ।।८४।।

(प्रतिवस्तूपमा)

चौ०—उपमेयो उपमान बाक द्वै। धर्म एक प्रति बस्तुपमाख्यै ।।८५।।
दो०—रबि भ्राजै कर तेज करि, शशि राजै करि काँति।
छाजै छबि नृप दिग्बिजय, यश प्रताप कर ख्याति ।।८६।।

टीका—ल०–प्रतिवस्तूपमा उपमेयवाक्य अरु उपमान वाक्य दोऊ को धर्म एक, पै भिन्न २ दरशनीय होय, तहाँ प्रतिवस्तूपमा। उदा०–जैसे रबि भ्राजै, शशि राजै, कांति करि छाजै छवि यह। रबि ससि उपमान, भ्राजै राजै पद, छाजै छवि नृप उपमेय बाक्य। भ्राजै राजै को एक अर्थ भयो, तातें प्रतिवस्तूपमा ।।८५,८६।।

(निदर्शना)

दो०—जहँ उपमेय सुबाक्य में, उपमा बाक्य सुजोग।
जो सो करि सुनिदर्शना, कहै सबै कवि लोग ।।८७।।
मंगन सें मीठे बचन, कहि दिग्बिजै नरेस।
उपमा केहि सम दीजिए, सोन सुगन्धित बेस ।।८८।।

टीका—ल०–जहाँ उपमेय बाक्यार्थ में उपमान बाक्यार्थ को जो सो शब्द करि कै सुजोग को अर्थ एकता करै तहाँ निदर्शना। उदा० प्रथम—मीठे बचन मैं सोन सुगन्ध जो सो करि आरोप ते प्रथम निदर्शना ।।८७, ८८।।

दल = सेन। अदल = अदलनीय, शक्तिशाली। बिलखै = रोते हैं ।।८४।।
भ्राजै = शोभित होते हैं ।।८५।। मंगन = याचक ।।८७।।

दो०—राखै जहँ उपमेय में, उपमा धर्महिं आनि।
उपमा में उपमेय को, धर्म धरै कवि ठानि ॥८९॥
भूप दिग्विजय सिंह के, बाजी बेग निहारि।
गही सदागति सीघ्रता, देखे द्रिगन बिचारि ॥९०॥

टीका—दूसरी—जहाँ उपमेय में उपमान को धर्म अरु उपमान में उपमेय को धर्म तहाँ दूसरी। उदा०—बाजी के बेग, समीर धारन कियो बाजी उपमेय, ताकों धर्म बेग कहे गति पवन उपमान घोड़ा के है सो धारन कियो, यातें दूसरी ॥८९, ९०॥

(तीसरमत निदर्शना)

चौ०—जहाँ असत सत क्रिय उपदेसै। करिकै तृतिय निदरशन वैसे ॥९१॥
दो०—लाल दिग्विजय भूप के, लड़ै न पछरै पाँव।
भलो लखावत समरहित, छत्री सूर सुभाव ॥९२॥

टीका—ल०—जहाँ क्रिया करि असत आनि को अर्थ समुझावै किंवा सत भलो को समुझावै तहाँ तीसरी निदर्शना। उदा०—दिग्विजय भूप के लाल कहे पक्षी लड़त में भागते नहीं, यह क्षत्री रन को शूर को सुभाव दरसावत है। पछरै नहीं, यह क्रिया सों उपदेश प्रकाशित है ॥ ९१, ९२ ॥

(असत निदर्शना)

दो०—द्विरद दिग्विजय भूप के, झुँकत भूमि अड़ि जात।
नवल नारि पिय पै चलब, दरसावत सब बात ॥९३॥

टीका—झूमि झुकत अड़ि जात सो यह नवल नारि कहे नवोढा नायिका के प्रथम समागम की बात दरसावै है ॥९३॥

(दृष्टांत)

चौ०—जहाँ बिंब प्रतिबिंब बाक्य द्वै। बर्न्याबर्न्य दृष्टांत नाम स्वै ॥९४॥
दो०—तेजवान रबि छबि बनो, सेतबान शशि चाल।
भूप दिग्विजय सिंह के, जस परताप बिशाल ॥९५॥

टीका—ल०—जहाँ उपमेय बाक्य अरु उपमान बाक्य भिन्न भिन्न धर्म होय अरु बिंब प्रतिबिंब को भाव देखायो होय, बिंब प्रतिबिंब को अर्थ—एक बात की छाया एक बात मैं परै तहाँ दृष्टांत। उदा०—तेजवन्त रबि, शशि शीतवन्त त्यों ही यश प्रताप भूप के बिशाल, यह बिंब प्रतिबिंब एक है ॥९४, ९५॥

बाजी बेग = घोड़े की गति। सदागति = वायु ॥९०॥
लाल = पक्षी। पछरै = पिछड़ते हैं ॥९२॥ द्विरद = हाथी ॥९३॥

(व्यतिरेक)

चौ०—उपमा ते उपमेय अधिक गुन । कहत ताहि बितरेककबित सुन ॥९६॥
दो०—पंकज तें गुन पुंज है, बूज यह किए बिवेक ।
भूप दिग्विजय सिंह के, कर करि काज अनेक ॥९७॥

टीका—ल०-जहाँ उपमान ते उपमेय में कोई गुण अधिक होइ । उदा०- कै कंज उपमान कर के हैं, कर मैं अनेक गुण, यातें अधिक रूपवान् ॥९६,९७॥

(सहोक्ति)

चौ०—बरनै साथ दुहूँ रस सरसै । है सहोक्ति कारज सुभ दरसै ॥९८॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह जब, जीतै रन मयदान ।
अरि प्रताप यक साथ हीं, चढे जाय असमान ॥९९॥
टीका—ल०-जहाँ दुइ बात को साथ ही बरनन होय सहोक्ति ॥९८,९९॥

(विनोक्ति)

चौ०-प्रस्तुत कछु बिन छीन प्रथम कहि । सोभा अधिक हीन प्रस्तुत लहि१००
टीका—ल०-बिनोक्ति प्रस्तुत वर्णनीय तें कछु हीन होइ तहाँ प्रथम, अरु वर्णनीय कछु हीन होय अरु शोभा अधिकी लहै तहाँ दूसरी ॥१००॥

(प्रथम विनोक्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, नीति सभा सुभ रीति ।
राजत बिना अनीति के, करै काज करि प्रीति ॥१०१॥
टीका—नीति सभा बिना अनीति के सब लोग प्रीति जुत कार्य्य करै हैं, प्रस्तुत कछु छीन ॥ १०१ ॥

(दूसर विनोक्ति)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, राजै रूप बिलास ।
रोष रुखाई के बिना, सब गुन सरस प्रकास ॥१०२॥
टीका—उदा०-रोष कहै क्रोध, रुखाई कहै उदासीनता बिना सब सोभा-मान् है, कछु बिना अधिक गुन ॥ १०२ ॥

(समासोक्ति)

दो०—समासोक्ति अप्रस्तुतै, प्रगटै प्रस्तुत माँझ ।
चकई हूँ बिलखी लखे, यशशशि अरितिय साँझ ॥१०३॥
भूप दिग्विजै सिंह की, तरनि प्रताप अमंद ।
अमल अंबु फूले कमल, चकहूँ लहै अनंद ॥१०४॥

टीका—ल०—जहाँ कोई प्रस्तुत बर्णन मैं अप्रस्तुत को धर्म प्रगट करै तहाँ समासोक्ति। उदा०–तरनि कहै सूर्य प्रताप है सो कमल ऐसे प्रजा लोग फूले कहै अनंद है, यह अप्रस्तुत प्रसंग ॥ १०३, १०४ ॥

(परिकर)

चौ०—जहाँ बिशेषन आसै लीन्हे। परिकर अलंकार कवि कीन्हे॥१०५॥

दो०—प्रजापुंज आनंद मय, यह कहि बारंबार।
नीति मान नृप दिग्विजय, हेरि हनै बदकार॥१०६॥

टीका—ल०–जो भेद जतावे सो बिशेषण, जाको भिन्न करै सो बिशेष्य, जहाँ आशै को लिये बिशेषण होय तहाँ परिकर। उदा०–नीति आशै बिशेषण है, बद को दंड देहै, जे नीतिमान् होइ है ते अनीत नहीं राखै है ॥१०५, १०६॥

(परिकरांकुर)

चौ०—साभिप्राय बिशेष्य नाम जहँ। परिकर अंकुर अलंकार तहँ १०७

दो०—करहु कपट दुरभाव जनि, सिखवै बैरी बाम।
जाहिर चारौं दिशन मैं, भूप दिग्विजय नाम॥१०८॥

टीका—ल०—सहित अभिप्राय के बिशेष्य होय तहाँ परिकरांकुर। उदा०–दिग्विजय नाम सहित अभिप्राय कहै, दिग कहै दिशा बिजै कहै जे जीते तौ, बैरिन की स्त्री कहै है की कपट न करो चारों दिशा में न बचि हो ॥ १०७,१०८ ॥

(श्लेष)

चौ०—एक शब्द मैं होत अर्थ बहु। बर्ण्याबर्ण्य दुहूँ मिलि श्लै लहु॥१०९॥

टीका—ल०—अनेक अर्थ जहाँ शब्दनि मैं रहै, एक बार बर्ण्य में लागै, एक बार अबर्ण्य में लागै, तहाँ श्लेष। तीनि भाँति बर्ण्य, अबर्ण्य, बर्ण्याबर्ण्य ॥ १०९ ॥

(बर्ण्य श्लेष)

दो०—हित पंकज प्रफुलित करै, तुरँग तेज परकाश।
भूप दिग्विजय सिंह है, कैधौं भानु बिलास॥११०॥

टीका—ल०–भूप पक्षे, हित पंकज हित कहै मित्र जे कमल ऐसे है, प्रफुल्लित आनंद करै है, तुरंग कहै घोड़ा पर जब देखै तेज को प्रकाश। सूर्य पक्षे

तरनिप्रताप = सूर्य का तेज ॥१०४॥ बदकार = अपयश ॥१०६॥
जाहिर = प्रकट ॥१०८॥

हित जो पंकज ताको प्रफुल्लित करै, तुरंग जो बाजी रथ में लगे हैं, तेज जो दीप्ति प्रकाश है ।। ११० ।।

(अवर्ण्य श्लेष)

दो०—लसै शिलीमुख बास जुन, झरैं मंजु मधु मंद ।
बाग दिग्विजय भूप की, की यह मत्तगयंद ।।१११।।

टीका—बाग पक्षे–लसै शिलीमुख शिलीमुख कहै भौंर, बास कहै सुगन्ध फूलन के मकरंद करै है । पतंग पच्छे–शिलीमुख नाम मृग या शिलीमुख तीर । जो हाथी मतवारे होते हैं । भौंर जो मद बहत ताको पान करिबे को आस-पास मँडराते हैं । *अथवा शिलीमुख तीर, जो हाथी मस्त हैं छोड़ा कर भागते हैं* मारे जाते मस्तक में गड़े रहते हैं । मधु कहै मद बहै है ।।१११।।

(वर्ण्य अवर्ण्य)

दो०—पानी बरनि पुरान गुन, शिर बारन करि भंग ।
तेग दिग्विजय भूप की, की तिरबेनी गंग ।।११२।।

टीका—तरवारि पक्षे–पानी बरनि पुरान गुन० पानी कहै आबदारी, पुरान कहै बहुत दिनों की, गुन डोरादिक जौहर । शिर बारन०—शिर कहै मूँड़, बारन कहै हाथी को, भंग कहै काटती है । त्रिवेनी पक्षे–पानी कहै जल, बरनि कहै बखानत है, पुरान कहै शास्त्रादि, गुन कहै तीन प्रकार के जल हैं । स्याम स्वेत रतनार । बार० शिर के बारन कहै केशन को जाते ही सब लोग मुँड़ा डारते इति ।।११२।।

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—अप्रस्तुत प्रसंस ते, प्रस्तुत ही को ज्ञान ।
अप्रस्तुतप्रशंस कहि, ताहि सबै मतिमान ।।११३।।
साल दुसाले माल हय, गज पावेहिं करि काज ।
धन्य सभा के लोग हैं, भूप दिग्विजय राज ।।११४।।

टीका—ल०–अप्रस्तुत प्रशंसा एक तौ जहाँ अप्रस्तुत ही को बर्णन होइ, और पर कहै और पर लागै, सो अप्रस्तुतप्रशंसा । उदा०—धन्य वै लोग हैं प्रस्तुत, और उनके समता अन्य नृप के सभा से कोय नहीं, यह अप्रस्तुत इति ।।११३, ११४।।

(प्रस्तुतांकुर)

चौ०—प्रस्तुत मैं प्रस्ताव जहाँ है । प्रस्तुत अंकुर नाम तहाँ है ।।११५।।

दो०—स्वच्छ दिग्विजय भूप की, तजि सेवा जो कोइ।
जो शुक सेवै सेमरै, त्यागि रसालहि सोइ ॥११६॥

टीका—ल०-गोप प्रसंग में प्रधान प्रसंग निकरै, तहाँ प्रस्तुतांकुर, अथवा प्रस्तुत वर्णन में अन्य उपदेशिक भाव होइ। उदा०—स्वामी आछे को सेवा सेवक छाड़ि कोई बुरो स्वामी को सेवा करै, यह प्रस्ताइ कहै उपदेशिक भाव है ॥११५,११६॥

(पर्य्यायोक्ति)

चौ०—कछु रचना की बात प्रथम कहि। मिसि करि कारज साधि द्रुतिय लहि ॥११७॥

दो०—जाहि तेज तें होत है, कैरव कमल बिलास।
सो दिग्विजै महीप को, देहि पुंज परकाश ॥०१८॥

टीका—ल०-जहाँ रचना की बात सुधे कहनावति त्यागि कोई और तरह से कहै तहाँ प्रथम, अवर जहाँ मिसु करि कार्य्य साधै तहाँ दूसर। उदा०-कैरव कमल जेकरे तेज ते बिलास करते हैं। अर्थ चन्द्र देखे कैरव, सूर्य्य देखे कमल ते भूपको सो पुंज प्रकाश देहि, यह रचना की बात ॥११७, ११८॥

(व्याजस्तुति)

चौ०-निंदा सें जहँ अस्तुति जानहिं। निंदा अस्तुति प्रथम बखानहिं ॥११९॥

दो०—कोढ़ी पंगुल आँधरहिं, असन बसन सुख देत।
भूप दिग्विजयसिंह के, कहाँ कहौ यह हेत ॥१२०॥

टीका—ल०-निंदा किए तें अस्तुति निकरै, तहाँ प्रथम कोटि। उदा०—पंगुलन को असन बसन देत, सुंदर लोगन को नहीं यह निंदा। अस्तुति काइ निकरै ऐसे नृप दयावान् हैं अंधर पंगुलन को देत हैं, जिन तें कुछु स्वार्थ नाहीं, यह स्तुति है ॥११९,१२०॥

(व्याजनिंदा)

चौ०—व्याजनिंद निंदहिं सों निंदा। अलंकार यह कहै कबिंदा ॥१२१॥

दो०—पर सुख देखन हरषि हिय, नृप दिग्विजै प्रवीन।
परसंतापी सों कहै, क्यों न अंध बिधि कीन ॥१२२॥

टीका—ल०-एक निंदा से जहाँ दूसरे को निंदा होइ तहाँ व्याजनिंदा। उदा०—पर सुख० पर औरन को सुख देखि भूप हर्षत है। परसंतापी कहै जे

सेमरै = सेमल को। रसाल = आम ॥११६॥

पर सुख देखि बिलखात, तासों कहत है कि बिधि आँधर तुम क्यों नाहीं किए, क्यों कि जेहि नेत्र ते सम्पति देख तुम्हैं दुःख होत, तौ तुम्है नेत्र न चाहिये। यह परसंतापी के निंदा से ब्रह्मा को निंदा भयो, इति ॥१२१,१२२॥

(व्याजस्तुति)

दो०—धन्य नीति तूँ निज गुनन, भई जगत मैं ख्याति।
भूप दिग्विजय सिंह के, बसति हिये दिन राति ॥१२३॥

टीका—ल०-जहाँ एक की स्तुति से दूसरे की स्तुति होय। उदा०—धन्य नीति है, तैं अपने गुनन करि जगत् में ख्यातिवाली भई, सो भूप के हिय दिन राति बसै है, नीति की अस्तुति ते भूप की अस्तुति इति ॥१२३॥

(निषेधाभास)

चौ०-कहिकै करै निषेध प्रथम कहि। करि निषेध ठहराइ द्विविधि लहि।
दुरि निषेध बिधि बचन बनाए। तीनि निषेध कबिन ठहराए॥१२४॥

टीका—ल०-निषेधाभास, निषेध नाम मना करना, ताको आभास नाम झलक होइ, सो प्रथम निषेध ॥१२४॥

(प्रथम निषेध)

दो०—भूप दिग्विजय नीति लखि, खल नर कहै अँधेस।
जाइ देखावहु दोष अबु, नतरु जाहु तजि देश ॥१२५॥

टीका—उदा०-जाइ देखावहु० जाय कै आपन दोष कहौ, नाहीं देस तजि कहूँ जाहु यहाँ न बचिहौ, यह आभास को मूलक है ॥१२५॥

(दूसर निषेध)

दो०—जाचक जन यह कहत है, मिटै दरिद्र कलेश।
कल्पवृक्ष पै है प्रगट, कर दिग्विजय नरेश ॥१२६॥

टीका—ल०-पहिलो कहि कछु फेरै। पहिले आप कहै फेरि बिचारि कै निषेध करिबे को कहै, तामैं करनो नहीं निकरै, तहाँ दूसरो निषेधाभास। उदा०—जाचकजन कहै है को दरिद्र कलेस मेटिहै कल्पवृच्छ पैहै, इहाँ प्रगट कर कहै हाथ कल्पवृच्छ, भूप के कल्पवृक्ष को चाह्यौ फेरि नृप कर को कह्यौ ॥१२६॥

(तीसर निषेध)

दो०—क्रूर कपट तजि छपि रहौ, बन में बसौ अदोष।
नीति निपुन दिग्विजय नृप, बूझि कीजिए दोष ॥१२७॥

टीका—ल०—जहाँ कोई रचना के बात सों निषेध छपा होइ। उदा०—क्रूर कपट० कपट त्यागि बन में छपाइ रहो। अदोष कहै बिन दोष, नीति

निपुन नृप है समुझिकै दोष कहै अपराध को करो, यह कहत है कि समुझि कै अपराध करो यह मना करिबो छपा अर्थात् अपराध न करो। भूप नीति मैं निपुन है, बदकारन को हेरि कै मारि है ॥१२७॥

(बिरोधाभास)

चौ०—भासै जहाँ बिरोध नहीं लहि। कहत बिरोधाभास कवित महि।१२८।

जब भूषन नहिं है तऊ, भूष न है मणि केरि।
दो०—भूप दिग्विजय सिंह तन, सो अद्भुत छबि हेरि ॥१२९॥
चरचा देश बिदेश मैं, हित अनहित के धाम।
कबहूँ भजब न भजब लखि, भूप दिग्विजय नाम ॥१३०॥

टीका—बिरोधऽभासै बिचारे बिरोध न होइ तहाँ बिरोधाभास। उदा०—पहिने भूषन एक नहिं भूख न है लालसा मणिहूँ की न है, ऐसी आभा है। भूषन पहिले एक नहि भूषन कोटि भावत, यह बिरोध। कबहूँ भजब न भजब भूप के नाम, भजब न भजब बिरोध कहत है कि कबहूँ भजब कहै भागब न, लखिकै नाम भजब कहै जपब, यह बिरोध को मूल कहै शब्द मैं बिरोध अर्थ में अबिरोध ॥१२८-१३०॥

(विभावना प्रथम)

चौ०—कारण बिना काज होइ जाइ। बिभावना प्रथम दरसाइ ॥१३१॥

दो०—गहत न बान कमान कर, अबसि दिग्विजय भूप।
द्वेषी दुशमन महि गिरै, बिलखित ह्वै लखि रूप ॥१३२॥

टीका—जहाँ कारण बिना कार्य्य तहाँ प्रथम बिभावना। उदा०—गहत न० अबसि कहै हमेशा बान कमान नहीं गहते पै दुशमन लखते ही गिर जाते हैं महि में, बिना बान कारण गिरजाबो कार्य्य ते प्रथम ॥१३१,१३२॥

(दूसर)

चौ०—हेतु अपूरन तें कारज करि। दूसर कहै बिभावन कविधरि १३३।

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, पंकज पानि बिचारि।
जाहि इसारे जात गिरि, गिरि गढ़ बाध निहारि ॥१३४॥

टीका—जहाँ कारण अपूरण न होइ तहाँ दूसर। उदा०—पंकज पानि के इसारे कहै डोलाइए पहाड़ गिरै है, हाथ कंज पहाड़ गिराइबे को समर्थ नहीं, सो इसारे से गिरे, अपूरण हेतु ते कार्य्य पूरणभयो ॥१३३,१३४॥

(तीसर)

दो०—प्रतिबंधक के होत ही, कारज पूरन होइ ॥

भजब न = भागैंगे नहीं। भजब = सैवा करैंगे ॥१३०॥

जिन सेरन के पानि पग, हति दिग्विजय नरेस।
चले जात सो बिनु श्रमहिं, अँगरेजन के देस ॥१३५॥

टीका—तीसर, प्रतिबंधक जहाँ कार्य्य कारण होइ। उदा०—जेहि बाघन के हाथ पाय सिकार में काटे गये हैं सो चमड़ा अंगरेजन के देश कहै मुलुक को गये, हाथ पाय कटब प्रतिबन्धक चलब कार्य्य भयो ॥१३५॥

(चौथी)

दो०—जबै अकारन बस्तु सों, कारज प्रगटै सोइ।
भूप दिग्बिजयसिंह के, बाजत जबहिं सितार।
तासों कोकिल कल कढ़त, सुर सातौं यक तार ॥१३६॥

टीका—ल०—जहाँ अकारण कहै हेतु न होय कार्य ह्वै जाय तहाँ चतुर्थ। उदा०—सितार सों कोकिल कल कहै बोल कढ़ै, अर्थ कोकिल के बैन की पञ्चम सुर में गिनती है। सितार बाजब कारन, कोकिल कार्य्य भयो ॥१३६॥

(पंचम)

चौ०—काहू कारन तें जब काज। होइ बिरुद्ध पाँचवाँ साज ॥१३७॥

दो०—कीर्ति दिग्विजयभूप की, चन्द्र समान प्रकाश।
खल उलूक के दहन को, प्रगटै तरनि बिलास ॥१३८॥

टीका—ल०—कौनेहु कारण ते कार्य्य को बिरोध होइ, तहाँ पंचम। उदा०—कीर्ति चन्द्रमा समान प्रकाश, खल कहै दुष्ट के दहन करिबे को तरनि कहै सूर्य्य से बिलास कहै जोति प्रगटै है, सूर्य्य चन्द्रमा के बिरोधी ते कार्य्य भयो ॥ १३७, १३८ ॥

(छठयीं)

चौ०—कछु कारज तें जहँ उतपत्य। कारन रूप कहै कबि सत्य ॥१३९॥

दो०—भूप दिग्बिजै नीति लखि, खल तिय बिलखि अपार।
नैन कंज तें कढ़त हैं, कालिंदी की धार ॥१४०॥

टीका—ल०—जहाँ कार्य्य ते कारण उत्पन्न होइ तहाँ छठयीं। उदा०—कालिंदी के धार कमल तें कढ़त, धारा कहै जल ते कमल उपजत यह कार्य्य, ताते जमुना की धारा कढ़ी यह कारण ॥१३९, १४०॥

जात गिरि = गिर जाते हैं। गिरि = पर्वत। गढ़ = दुर्ग, किले ॥१३४॥
सेरन = सिंहों। हति = नष्ट किये ॥१३५॥

(विशेषोक्ति)

चौ०—जहाँ हेतु सों कार्य न उपजै। बिशेषोक्ति कहि कवि बुध सुभजै ॥१४१॥

दो०—पार जान को अरि सजे, बोहित दल बहु जोरि।
भूप दिग्विजयसिंह तिन्हैं, बल बारिधि मैं बोरि ॥१४२॥

टीका०—ल०—जहाँ हेतु कहै कारण, ताते कार्य्य नहीं उपजै। उदा०—पार जान० पार कहै जीतिबे हेतु बैरी दल साजि कै आये, पै भूप बल बारिधि मैं बोरे। दल कारण [ते] जीतब कार्य्य न भयो ॥१४१,१४२॥

(असंभव)

चौ०—कहै असंभव होत जहाँई। बिन संभाबन काज तहाँई ॥१४३॥

दो०—भूप दिग्विजय से बचो, दुरै दुष्ट बन धार।
को जानै कर कंज तें, हतै सेर बरियार ॥१४४॥

टीका—ल०—कहत मैं असंभव, बिना संभावन के कार्य्य होय। उदा०—को जानै कर कंज ते बरिआर कहै बली सेर मारि है। कर कंज असंभव वाक्य है सिद्धि भयो ॥१४३,१४४॥

(असंगति प्रथम)

चौ०—कारन और ठौर है कारज। देश बिरुद्ध प्रथम कहि आरज ॥१४५॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, दुष्टहिं दै बँदिखान।
छूटै भय सब देश के, आनँद लहै अमान ॥१४६॥

टीका—ल०—देश बिरुद्ध कारण, कार्य्य विरुद्ध। उदा०—छूटै भय सब देश के यह कार्य, बंदिखान कहै बधुआ, दुष्ट लोग भये सो दुष्टन को छूटै को चाही जे बाँधे जात तेई छूटत, इहाँ देश के लोगन को भय छूटै ॥१४५,१४६॥

(असंगति द्वितीय)

चौ०—और ठौर के काज अवर थल। करै असंगति दूसर है भल ॥१४७॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, तरनि तेज यह चार।
उदै चाहिए व्योम मैं, उदै दुवन के द्वार ॥१४८॥

बोहित = बड़ी नौका, जहाज। बोरि = डुबो दिये ॥१४२॥

दुरै = छिपा। बनधार = जंगल के कँगारों में। कर कंज = कमल तुल्य हाथ। सेर = सिंह। बरियार = बलशाली ॥१४४॥

बँदिखान = बंदीखाना, जेल। अमान = अपरिमित, अत्यन्त ॥१४६॥

दुवन = शत्रु, दुर्जन ॥१४८॥

टीका—ल०–दूसर, और ठौर के कार्य्य और ठौर। उदा०—उदै आकाश में चाहिये सो अरि द्वार पर ॥१४७,१४८॥

(असंगति तृतीय)

चौ०—जौन काज को चाहै कीन्हे। तासु बिरुद्ध अरंभहि दीन्हे ॥१४९॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह की, 'बृज' यह बानि लखाइ।
मान करत आए सरन, पहिले मान मिटाइ ॥१५०॥

टीका—ल०–तीसर, जौन कार्य्य को चाह है तासों बिरुद्ध आरंभ होइ। उदा०—मान करत कहै आदर करत, मान मिटाइ मान कहै अभिमान मिटाइ कै तब प्रतिपालै। मान कार्य्य आरंभ बिरुद्ध मान मिटाबनो ॥१४९,१५०॥

(तीनि विषम)

चौ०–अनमिल के संग प्रथमहि सचरै। कारन रंग कारज कछु अवरै॥
भल उद्दिम कर तै अनभल लहि। तीनिउ बिषम बिचारि कबिन कहि।१५१

(प्रथम विषम)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, राजै तेज दिनेश।
जुगुनू सें दरसात है, जो जग अहित नरेस ॥१५२॥

टीका—ल०–अनमिल के साथ प्रथम। जुगनू से और नृप कहा भूपति तेज भानु, यह अनमिल ॥१५१, १५२॥

(दूसरो विषम)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह को, लखि खल उर मैं ताप।
देखो स्याम कृपान तें, प्रगटै अरुन प्रताप ॥१५३॥

टीका—ल०–दूसर, कारण ते कार्य्य को रंग अवर होय। उदा०–स्याम कृपान ते अरुण प्रताप ॥१५३॥

(तीसरो विषम)

दो०—परधन पचवन को रिनी, कागद जाल बनाय।
भूप दिग्विजय जानि तेहि, कैदहि देत कराय ॥१५४॥

टीका—ल०—तीसर, उद्यम ते इष्टि की हानि। उदा०—परधन पचवन कहै हरि लेबे को जाल कहै कपट के कागज बनायबो उद्यम, पचाइबो इष्ट, ताकी हानि भयो, कैद है जाते हैं ऐसी नीति नृप करत है ॥१५४॥

पचवन = पचाने के लिये। रिनी = ऋणी, कर्जदार ॥१५४॥

(तीनि सम)

चौ०—जोग संग सम प्रथम कहावै। कारन मैं कारज अंग पावै।
श्रम बिनु कारन सिद्धि जु होई। अलंकार सम यह त्रै सोई।१५५।

(प्रथम सम)

दो०—हेरि थकी सब नृपन को, अपने लायक देखि।
नीति दिग्विजय भूप के, चित मैं बसी बिशेषि ॥१५६॥

टीका—ल०-जथा जोग्य को संग प्रथम। उदा०—हेरि थकी० हेरि ढूँढ़ि हारी अपने लायक नहीं पायो तब नीति भूप के हिए बिशेष करि बसी, अपने लायक जानिकै ॥१५६॥

(दूसर सम)

भूप दिग्विजय सिंह की, बुद्धि बिमल दरसात।
जाते बिद्या गुन उपजि, नीति निपुन अवदात ॥१५७॥

टीका—ल०-दूसर, जहाँ कारन में कारज को अंग होइ। उदा०—बुद्धि० बुद्धि बिमल कारन, जाते बिद्या उपजी यह कार्य्य ॥१५७॥

(तीसर)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, निरखि नीति की साज।
छमा करत अरि देश पर, छमा लेन के काज ॥१५८॥

टीका—ल०-तीसर श्रम बिन कारज सिद्धि होइ। उदा०—छमा करत अरि के देश पर छमा कहै पृथी लेन के हेतु। यह श्रम बिन कारज साध्यौ ॥१५८॥

(बिचित्र)

चौ०—इच्छा फल बिपरीति की होई। कहत बिचित्र कबित कवि सोई॥१५९॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह को, बानि लखौ अभिराम।
पाय परत अरि आइ कै, पाय जात धन धाम ॥१६०॥

टीका—ल०—इच्छा फल बिपरीत को जतन होय। उदा०—पाय० पाय परत अरि फल बड़ो पाइनि धन धाम ॥१५९, १६०॥

(अधिक)

दो०—अधिकाई आधार ते, जब आधेय की होय।
जो अधार आधेय सो, अधिक अधिक है दोय ॥१६१॥

अवदात = प्रकाशमान ॥१५७॥ छमा = क्षमा। छमा = पृथ्वी ॥१५९॥

(प्रथम)

दो०—भूप दिग्विजयसिंह की, लखि पुर नीति निवाह।
हरष प्रजन के उर बढ़यौ, नहिं अमाय उर माह ॥१६२॥

टीका—ल०—रहनेवाला आधेय, जामें रहै सो आधार, आधार तें आधेय अधिक प्रथम। उदा०—हरष० हरष कहै आनंद ऐसो बाढ़यौ कि हिय में नहीं अमान्यो। हिय आधार आनंद आधेय ॥१६१, १६२॥

(दूसर)

दो०—जेहि जगदम्बा की सुजस, जग में नहीं अमाय।
भूप दिग्विजयसिंह के, हिए बसी सो आय ॥१६३॥

टीका—ल०—दूसर, आधेय से आधार अधिक होय। उदा०—जेहि० कहै जेहि देवी की यश जग में नहीं अमाय है सो भूप के हिय में बसी। जग आधार, यश आधेय, जग में नहीं अमान्यौ यह आधेय की अधिकाई ॥१६३॥

(अल्प)

दो०—अल्प अल्प आधेय तें, सूक्षम होइ अधार ॥१६४॥
भूप दिग्विजय दल अदल, खलतिय हिए विचारि।
किंकिनि ह्वै छिगुनी छला, कटि मैं कांति निहारि ॥१६५॥

टीका—ल०—जहाँ आधेय तें आधार सूक्ष्म होय तहाँ अल्पालंकार। उदा०—छिगुनी के छला किंकिनि भई यही भाँति कटि खीन देखि परो। ॥१६४, १६५॥

(अन्योन्य)

चौ०–आपुस मैं उपकार करै जहँ। अन्योन्यालंकार कहै तहँ ॥१६६॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह मैं, लखी परसपर प्रीति।
नीति सो लागत नीक नृप, नृप तें लहि छबि नीति ॥१६७॥

टीका–ल०–जहाँ आपुस में परोपकार होइ तहाँ अन्योन्यालंकार। उदा०–नीति से नृप सोहै, नृप से नीति ॥१६६, १६७॥

(विशेष प्रथम)

चौ०–बिनु अधार के जहाँ अधेय। प्रथम बिशेष तहाँ कवि लेय ॥१६८॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, खल नर समुझि उपाय।
हिए रहै सुधि त्रास की, हियरो गयो हेराय ॥१६९॥

प्रजन = प्रजाओं के। अमाय = अटता है ॥१६२॥ अदल = न्याय ॥१६५॥
त्रास = भय। हियरो = हृदय ॥१६९॥

टीका—ल०-जहाँ बिना आधार के आधेय तहाँ प्रथम । उदा०—हियरो हेराय गयो औ सुधि बनी रहै हो। हिय आधार बिना आधेय सुधि बनी रहै है ॥१६८, १६९॥

(दूसर विशेष)

चौ०—येक बस्तु बहु ठौर बखानौं । कहो बिशेष दूसरो जानौ ॥१७०॥

दो०—भूप दिगविजय रूप लखि, अरि दिशि बिदिशि बिचारि ।
चित मैं चख मैं भौन मैं, भागै भीति निहारि ॥१७१॥

टीका—ल०-दूजो भेद, एक बस्तु जहाँ अनेक ठौर होय । उदा०—चित मैं, चख मैं, भौन मैं यह अनेक थल है ॥१७०, १७१॥

(तीसर विशेष)

चौ०-लघु अरंभ तें बड़ी बस्तु लहि । है बिशेष तीसरो कबित कहि ।१७२।

दो०—भूप दिगविजय सिंह की, महि मंगन कहि पेखि ।
करन नृपति देखो सही, करन रावरो देखि ॥१७३॥

टीका—ल०-थोरे आरंभ ते बड़े पदार्थ को प्राप्त होयबो तहाँ तीसरो । उदा०—करन नृपति को देखे जो तुमारे करन कहै कर दोनों दान देत हैं ॥१७२, १७३॥

(व्याघात)

चौ०-और ते कारज औरै करिए । प्रथम कहौ ब्याघात जो लहिए ।१७४।

दो०—भूप दिगविजय अरि कहैं, बैर कियो बिनु हेत ।
जेहि अवलोके सुख मिलै, ते देखे दुख देत ॥१७५॥

टीका—ल०-और ते और कार्य्य करो तहाँ प्रथम । उदा०—जाहि अवलोके सुख मिलत ताहि देखि अब दुःख होत है ॥१७४, १७५॥

(दूसर व्याघात)

चौ०-काज बिरोधी ते जब लावै । दूसर है ब्याघात बतावै ॥१७६॥

दो०—भूप दिगविजय से कहैं, जाचक बचन रसाल ।
जो जानहु यह दीन है, तौ है दीनदयाल ॥१७७॥

टीका—ल०-कार्य ते जहाँ क्रिया बिरोधी होइ तहाँ दूसर । उदा०—जो जानहु दीन है तौ दीन दयाल होहु, दीन कहै जे दुःख से पीड़ित होय तापर दया कीजै ॥१७६, १७७॥

चख = चक्षु, नेत्र । भीति = भय, दीवार ॥१७१॥

करन = कर्ण (राजा) । करन = हाथों को ॥१७३॥

(कारणमाला)

चौ०—कारण कारज परम्परा है। कारणमाला नाम धरा है ॥१७८॥
दो०—महाराज दिग्विजय सिंह, सदै निबाहै नीति।
नीति हि ते परजा बढ़ै, प्रजा ते बित अरिजीति ॥१७९॥

टीका—ल०—जहाँ कारण कार्य कै परम्परा होइ तहाँ कारणमाला। उदा०—नीति ते प्रजा बढ़ै, नीति कारण, प्रजा की वृद्धि कार्य। प्रजा ते वित्त बढ़ै, वित्त अरि को जीतै, फेरि प्रजा कारण वित्त कार्य, फेरि वित्त कारण अरि को जीतब कार्य ॥१७८, १७९॥

(एकावली)

चौ०—ग्रहित मुक्त एकावलि होई। अलंकार यह भल है सोई ॥१८०॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह के, मृग जब सुने सितार।
बन सें आए नगर लौं, नगर से चलिगे द्वार ॥१८१॥

टीका—ल०—जहाँ ग्रहन और त्यागन होय तहाँ एकावली। उदा०—बन से नगर आए, नगर ते द्वार पर बैठे मृग लोग, जब नृपति के सितार बजै है। बनत्याग नगर ग्रहन ते एकावली ॥१८०, १८१॥

(मालादीपक)

चौ०—दीपक एकावलि मिलि जामैं। माला दीपक कहि परिनामै ॥१८२॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, बुद्धि बिमल अवगाह।
नीति बसी नृप के हिए, नृप हिय धरमै माहँ ॥१८३॥

टीका—ल०—जहाँ दीपक एकावली मिलि जाय तहाँ मालादीपक। उदा०—नीति बसी नृप के हृदय में और नृप हिय धरम में। नीति त्याग, धर्म ग्रहन एकावली, बसी क्रिया एक अन्वय ते दीपक ॥१८२, १८३॥

(सार)

चौ०—एक एक ते अधिक जहाँ है। सार अलंकृत कहै तहाँ है ॥१८४॥
दो०—बुधि सों बिद्या है बड़ी, तासों बड़ो बिचारे।
तासों दाया धरम रुचि, भूप दिग्विजय प्यारे ॥१८५॥

टीका—ल०—जहाँ एक ते एक अधिक तहाँ सार। उदा०—बुद्धि सों विद्या बड़ी है, विद्या से बिचार, तासों दया ॥१८४, १८५॥

बित = वित्त, कोश। अरिजीति = शत्रुओं पर विजय ॥१७९॥ अवगाह = अथाह ॥१८३॥

(यथासंख्य)

चौ०—जथा अनुक्रम संग बिचारो। जथासंख्य सब्दहि निरधारो १८६॥
दो०—भूप दिग्विजय सिंह की, नीति अहित हित देखि।
बहु बिलखै हरषै हिए, अँचल चपल चित पेखि॥१८७॥

टीका—ल०—जहाँ क्रम से संगी कै बर्णन होय। उदा०—नीति अहित हित देखि बिलखै, हरषै अँचल चपल। अहित देखि बिलखै हित देखि हरषै॥१८६, १८७॥

(पर्य्याय)

चौ०—बहु को क्रमते आश्रय येक। क्रम से आश्रय धरै अनेक॥१८८॥

टीका—ल०—बहुतन को क्रम से एक आश्रय तहाँ प्रथम, जहाँ क्रम ते अनेक आश्रय होय तहाँ दूसर पर्य्याय॥१८८॥

(प्रथम पर्य्याय)

दो०—भूप दिग्विजय अदल को, केहि बल कहै सराहि।
त्यागि आगि को तेज रबि, बसो प्रतापहि माहिं॥१८९॥

टीका—उदा०—आगि को तेज त्यागि रबि को याते प्रताप में बसी, यह एक आश्रय॥१८९॥

(दूसर पर्य्याय)

दो०—भूप दिग्विजय सिंह ढिग, दीन दुखी जे जात।
रहै बिपति के बिबस में, सुखद भरे दरसात॥१९०॥

टीका—उदा०—बिपति के बश रहे अब सुखद दरशात॥१९०॥

(परिवृत्ति)

चौ०—थोरो दै बहुतै जे लेइ। परिवृत्ति अलंकार सुख देइ॥१९१॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, निरखे दान बिबेक।
आदर दै लै कबिन तें, कीरति कबित अनेक॥१९२॥

टीका—ल०—जहाँ थोरो दैकै बहुत को लेय। उदा०—आदर दै कबिन ते यश के कबित लेत॥१९१, १९२॥

(परिसंख्या)

चौ०—यक थल बरजि ठौर दूजे महँ। परिसंख्यालंकार कबित कहँ।१९३।
दो०—महाराज दिग्विजय सिंह, करै नीति निरबाह।
दंड जोतिषी पत्र में, बैर बाग बन माह॥१९४॥

टीका—ल०—एक थल बरजि दूसरे ठौर होइ तहाँ परिसंख्या। उदा०—दंड जोतिषी पत्र कहै पत्रा में दंड कहै घरी, दण्ड राज में नहीं। बैर कहै बद्दरि बाग बन में रही, बैर कहैं दुसमनगी नहीं रही ॥१९३, १९४॥

(विकल्प)

चौ०—समबल को जु बिरोध जहाँ है। कबिन बिकल्प बखानि तहाँ है।१९५।

दो०—दुख पाए नर आइ कहि, भूप दिगविजय गाथ।
की शिर दुष्ट नवाइहौं, की धनु लेहौं हाथ ॥१९६॥

टीका—ल०—जहाँ समबल को बिरोध होय। उदा०—की दुष्टन के सिर नवाइहौं की धनु हाथ में लेहौं ॥१९५, १९६॥

(समुच्चय)

चौ०—बहुत भाव येकहि मैं उपजै। प्रथम समुच्चय कबिवर सुभजै ॥१९७॥

दो०—भूप दिगविजय के लखै, चारिउ नीति उपाय।
भागै खल भू मैं गिरै, उठि भागै सतराय ॥१९८॥

टीका—ल०—जहाँ बहुत भाव एक साथ उपजै। उदा०—भागै, गिरै, सतराय, अनेक भाव संग मैं ॥१९७, १९८॥

(सर समुच्चय)

चौ०—अहं पूर्विका कारज बोलै। दुतिय समुच्चय भाव अडोलै ॥१९९॥

दो०—भूप दिगविजय सिंह की, मति गति तीनिउ माहिं।
बिद्या दान कृपान जग, यश उपजावत ताहि ॥२००॥

टीका—ल०—जहाँ अहं शब्द बोलै तहाँ दूसरो। उदा०—बिद्या, दान, कृपान यश जग में करत हैं, बिद्या कहै हम पहिले करैं, दान कहै हम करैं, कृपान कहै हम करैंगे ॥१९९, २००॥

(कारक दीपक)

चौ०—यक मैं क्रम ते क्रिया अनेक। कारक दीपक अर्थ बिबेक ॥२०१॥

दो०—भूप दिगविजय नाम सुनि, खल लोगन उर त्रास।
भजै थरहरै फिरि चलै, चलै सघन बन बास ॥२०२॥

टीका—ल०—एक क्रम ते क्रिया अनेक। उदा०—भजै थरहरै गिरै ॥

दंड = घड़ी (२४ मिनट का प्रमाण), राजदंड। बैर = बदरीफल, द्वेषभाव ॥१९४॥ गाथ = गाथा, वर्णन। नवाइहौं = झुका दूँगा ॥१९६॥

सतराय = नाक भौं सिकोड़ कर ॥१९८॥

भजै = भागते हैं। थरहरै = काँपते हैं, ठहरते हैं ॥२०२॥

(समाधि)

चौ०—अवर हेत मिलि काज सुगम जहँ। कहत समाधि कवीश कवित्त महँ ॥२०३॥

दो०—भूप दिगविजय घेरि बन, हेरे मिले न एक।
भये पियासे तब कढ़े, मारे बाघ अनेक ॥२०४॥
भूप दिग्विजय सिंह ढिग, रहो अरज को चाहि।
अरजी देने को हुकुम, भयो गरज है जाहि ॥२०५॥

टीका—ल०—जहाँ अवर हेत कार्य सिद्ध होय। उदा०—हेरे पर न मिले जब पियासे भे तब मिले, यह पानि पिआव सिकार कहावै है॥ अरजीते ह्वै जात, ताको जौन गरज है, यातें बांछित अधिक फल ॥२०३–२०५॥

(प्रत्यनीक)

चौ०—दुख दै अरि पक्षन पर जबहीं। बत्री शत्रु अवलोकै तबहीं ॥२०६॥

दो०—भूप दिगविजय तेज रबि, निरखि चंद हियहारि।
मुकुलैबो कमलन करै, निशि मैं यही बिचारि ॥२०७॥

टीका—ल०—जहाँ अरिके पच्छ पै दुःख दीबो होइ तहाँ प्रत्यनीक। उदा०—तेज रबि चन्द्रमा देखिहारि मान्यौ, सूर्य के हित कमल पै जोर करि निशि दुःख देने लगे ॥२०६, २०७॥

(काव्यार्थापत्ति)

दो०—काव्यार्थापति यह कियो, तिनको यह कहि जात ॥२०८॥

दो०—भूप दिगविजय सिंह के, लखि प्रताप बरिआर।
तेज जीति अरि तरणि को, कहाँ चँद बदकार ॥२०९॥

टीका—ल०—यह कियो तौ वह करब कौन बात है, तहाँ काव्यार्थापत्ति, उदा०—तेज सूर्य को जीतौ तौ चन्द्रमा जीतिबे को कौन बड़ी बात है ॥

(काव्यलिङ्ग)

चौ०—जुक्ति सो अर्थ समर्थन कीजै। काव्यलिंग तहँ कबि कहि दीजै।२१०।

दो०—है बदकार उलूक खल, दुरो विवर थल देखि।
भूप दिग्विजय सिंह के, तेज तरणि इत देखि ॥२११॥

अरज = निवेदन। अरजी = प्रार्थनापत्र। गरज = चाह ॥२०५॥

मुकुलैबो = मुकुलित हो जाना ॥२०७॥ बरियार = बली। बदकार = कुकर्मी ॥२०८॥ दुरो = छिपगया। विवर थल = बिल, छिद्र ॥२१०॥

टीका—ल०-जहाँ जुक्ति सों अर्थ समर्थन तहाँ काव्यलिंग। उदा०—तेज तरणि देखि उलूक दुरत है यह अर्थ को समर्थन है ॥२१०, २११॥

(अर्थान्तरन्यास)

चौ०—जो बिशेष सामान्य द्रिढावे। तौ अर्थान्तरन्यास बतावै ॥२१२॥
दो०—पूज्यौ सुर दिग्विजै नृप, चारिउ धामन माँह।
यह अचरज की बात नहिं, बड़े करैं नहिं काह ॥२१३॥

टीका—ल०-जहाँ बिशेष से सामान्य द्रिढ होइ। उदा०-नृप नाम बिशेष, बड़े करैं नहिं काह, यह सामान्य ॥२१२, २१३॥

(विकस्वर)

चौ०—धरि बिशेष सामान्य बिशेष। बिकसर कहत कवित अवरेख॥२१४।
दो०—भूप दिग्विजय के सदै, त्यान एक रस देखि।
सिपुरुष त्यागै धर्म नहिं, बलि हरिचन्दहि पेखि ॥२१५॥

टीका—ल०-जहाँ बिशेष, फिरि सामान्य, फिरि बिशेष होइ। उदा०—नृप नाम विशेष, सिपुरस नर सामान्य, हरिचन्द नृप विशेष ॥२१४, २१५॥

(प्रौढोक्ति)

दो०—प्रौढउक्ति उतकरष को, धरै अहेतहि हेत ॥२१६॥
मंजुल मोती माल बहु, हीरा हरमिनिकेत।
भूप दिग्विजयसिंह की, कीरति याते सेत ॥२१७॥

टीका—ल०-जहाँ उत्कर्ष को धारन अहेतु में हेतु होइ। उदा०—हीरा, मोती ते यस सेत भयो, यह अहेतु को हेतु है ॥२१६, २१७॥

(संभावना)

दो०—है यौ जौ यौं होय तौ, संभावना विचार ॥२१८॥
भूप दिग्विजय सिंह की, निरखि नीति अवदात।
रसना होती नैन के, तौ कहती कछु बात ॥२१९॥

टीका—ल०-है यौ जौ यौ होइ०। उदा०—जौ नेत्र के रसना कहै जीभ होती तो गुण कहती ॥२१८,२१९॥

अवरेख = कल्पना ॥२१४॥ सिपुरुष = सुपुरुष, सज्जन ॥२१५॥
हरमि निकेत = घरके अन्तःपुरमें ॥२१७॥
अवदात = चमकती हुई ॥२१८॥

(मिथ्याऽध्यवसित)

चौ०-एक झूठ के लिए झूठ कहि । मिथ्याध्यवसित अलंकार लहि।२२०।
दो०-दुरजन बानी माधुरी, संत बचन बिष भूरि ।
महाराज दिग्विजय सिंह, कीन्हो दोऊ दूरि ॥२२१॥

टीका—ल०-जहाँ एक झूठ के लिये दूसरो झूठ । उदा०—दुरजन की बानी मधुर यह झूठ, सज्जन वचन विष, यह दूसर झूठ ॥२२०, २२१॥

(ललित)

चौ०-प्रतिबिंब वाक्य सदृश जहँ होई ।
ललित अलंकृत कबि कहि सोई ॥२२२॥
दो०-भूप दिग्विजय से बयर, करिजे चहै सहाय ।
इत उत बाँधै बाँध ज्यौं, सरिसैं भौन बनाय ॥२२३॥

टीका—ल०-जहाँ प्रस्तुत बर्ण्य बाक्यार्थ को प्रतिबिंब बर्णन होइ, उदा०—सरिता बाँध यह बाक्यार्थ प्रस्तुत यह की सरिता भौन बनाइबो अर्थ यह नृप से बयर करिबो ताको सहायता कोई काम न ऐहै ॥२२२, २२३॥

(तीनि प्रहर्षण)

चौ०-जतन बिना बाँछित फल पावै । बाँछित ते अधिकी फल लावै ॥
लाभ जतन करतै वह आवै । तीनि प्रहर्षण कबि कुल गावै॥२२४॥

टीका—ल०-जतन बिना बाँछित फल प्रथम, बांछित ते अधिक फल दूसरो जतन करतै लाभ तीसरो ॥२२४॥

(प्रथम)

दो०-दुख पाये नर आवही, लखि दिग्विजय नरेश ।
देत रुचै फरिआद को, दुष्ट निकारहि देश ॥२२५॥

टीका—उ०-फरियादी को फरिआदि, दुष्ट पै दण्ड प्रथम ॥२२५॥

(दूसर)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह की, लखि बकसीस विशाल ।
चाहेत पाँच पचास लहि, पट रुचि साल दुसाल ॥२२६॥

टीका—पाँच को आस करि पचाश पाये, दूसरो ॥२२६॥

बयर = बैर । सरि = नदी । ॥२२३॥
फरिआद = फर्याद, प्रार्थना ॥२२५॥

(तृतीय)

दो०-भूप दिग्विजय बिपिन में, हेरै बाघ बिचारि।
हेरत ही मिलि द्वै गये, बेर एक ही मारि ॥२२७॥
टीका—हेरत ही दुइ ब्याघ्र मिले, तीसरो ॥२२७॥

(विषाद)

चौ०-चित्त चाहते उलटो होई। कहत विषाद ताहि सब कोई ॥२२८॥
दो०-भूप दिग्विजय सिंह ढिग, चुँगुल कहै परदोष।
मानहिं चहै अमान लहि, सहै कोटिसह रोष ॥२२९॥
टीका—ल०-चित चाहते उलटो होय। उदा०—चुगुल चुगुली करि मान चाहै अपमान भयो ॥२२८, २२९॥

(उल्लास)

दो०-एकहि गुण तै गुण लहै, दोषहि ते गुण मानि।
गुण ते दोषहि दोष ते, दोषहि होत बखानि ॥२३०॥
टीका—ल०-प्रथम जहाँ एक के गुण ते गुण, दोष ते गुण दूसरो, गुण ते दोष तीसरो, दोष ते दोष चतुर्थ ॥२३०॥

(प्रथम)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह के, यह चित बसत बिलास।
आवै कवि कोविद सभा, कीरति करहि प्रकास ॥२३१॥
टीका—उदा०—कवि को आइबो गुण, कीरति प्रकाश करिबो प्रथम ॥२३१॥

(द्वितीय)

दो०-भूप दिग्विजय सिंह के, कोमल चित परवीन।
बैरिहु को मारै नहीं, शरन जो होइ अधीन ॥२३२॥
टीका—सरन आये जीव बचो ॥२३२॥

(तृतीय)

दो०-लखि बाँधे हथियार अरि, बली बाहु बलबेस।
ताहि हतै आए समर, श्री दिग्विजय नरेश ॥२३३॥
टीका—हथियार बाँधब गुण, मारे जाहि दोष ॥२३३॥

शरन = बाणों से, आश्रय में ॥२३२॥

(चतुर्थ)

दो०–भूप दिग्विजय सिंह से, भागै धरि भयभार ।
नख कठोर तरवा मृदुल, बिधि निंदै बदकार ॥२३४॥

टीका—भूप की भय से अरि तिय को भागिबो दोष, बिधि को निंदा करिबो दोष ॥२३४॥

(अवज्ञा)

दो०–गुण ते गुण होवै नहीं, नहीं दोष ते दोष ।
होत अवग्या भाँति द्वै, कहत कबिन मतिचोष ॥२३५॥

टीका—ल०–जहाँ गुण ते गुण न होइ, दोष ते दोष न होइ ॥२३५॥

(प्रथम)

दो०–भूप दिग्विजय सिंह की, नीति कलाधर देखि ।
बदकारी बारिज बदन, बिकसै नहीं बिशेषि ॥२३६॥

टीका—उदा०–गुण ते गुण जहाँ नहीं, नीति कलाधर देखि बदकारन के बारिज बदन बिकसै नहीं ॥२३६॥

(दूसर)

दो०–अपने दोषन ते सदै, दुष्ट लहैं बिपरीति ।
नीति दिग्विजय भूप की, केहि बिधि कहैं अनीति ॥२३७॥

टीका—जहाँ दोष ते दोष न होइ, दुष्ट अपने दोष तें बिपरीति कहै दुःख पावै है, भूप को नीति मैं दोष नहीं ॥२३७॥

(अनुज्ञा)

चौ०–जहाँ दोष को गुण करि मानै । ताहि अनुग्या कबिन बखानै ।२३८।
दो०–भूप दिग्विजय सिंह के, सेवक सम ह्वै सेय ।
हय हाथी हथियार धन, धरा रीझिकै देय ॥२३९॥

टीका—ल०–दोष को गुण मानै । उ०—सेवा करिबो दोष, संपदा पाइबो गुण ॥२३८, २३९॥

(लेश)

दो०–गुण ते दोषरु दोष गुण, मानै कवि तहँ लेश ॥२४०॥

टीका—ल०–गुण ते दोष अरु दोष ते गुण ॥२४०॥

कलाधर = चन्द्रमा । बदकारी = दुष्कर्मी । बारिज = कमल ॥२३६॥

(प्रथम)

दो०-जे पच्छी बोलत मधुर, लड़त लड़ाई बेश ।
पकरि मँगावै ताहि को, श्री दिग्विजय नरेश ॥२४१॥

टीका—उ०-गुण ते दोषालंकार, जे पच्छी बोलत वा लड़त है गुण, पकरि आवै है दोष ॥२४१॥

(दूसर)

दो०-जे गुनही अपनो गुनह, छल तजि कहै निदान ।
ताहि भूप दिग्विजयसिंह, माँफ गुनह करि मान ॥२४२॥

टीका—दोष ते गुण, जे आपन गुनह कहै दोष कहि देत ताको नृप दोष माफ करि मान कहै आदर करत है ॥२४२॥

(मुद्रा)

चौ०-प्रस्तुत पद में अवरै अर्थ । मुद्रा ताहि कहै समर्थ ॥२४३॥
दो०-दान मान हरद्वार में, सुभग लहाउर चाल ।
भूप दिग्विजय 'बृज' लखे, पुरी दिली नैपाल ॥ २४४॥

टीका—ल०-प्रस्तुत कहै वर्णनीय अर्थ में, पद में अवर अर्थ होय। उदा०—दान मान०—दान कहै पुन्यार्थ, मान कहै आदर सहित हरद्वार में दिये हैं, अवर लहाउर देश बृज कहै मथुरा, पुरी कहै जगन्नाथ, दिली कहै दिल्ली, नैपाल देखे हैं, यह प्रस्तुत अर्थ पद है। औरै अर्थ दानमान दान दातव्य मान-सनो मान, हर द्वार कहै सब दरवाजे पर है। सुभग लहाउर चाल—सुभग कहै सुंदर, लहा कहै प्राप्त है, उर कहै हृदय में, चाल कहै रति बृज लखे—बृज कवि कै नाम है सो कहै है कि पुरी दिली नैपाल—पुरी कहै पूरन, दिली कहै जीव ते अर्थात् मन ते, नैपाल नै कहै नीति पाल कहै प्रतिपालत है ॥२४३, २४४॥

(रत्नावलि)

चौ०-प्रस्तुत अर्थ क्रमहिं ते नाम । अलंकार रत्नावलि दाम ॥२४५॥
दो०-भानु भानुमय कलानिधि, करै कला निधि वित्त ।
भूप दिग्विजयसिंह के, मंगल मंगल चित्त ॥२४६॥

टीका—ल०-जहाँ क्रम ते वर्णन होय। उदा०—भानु चन्द्र मंगल क्रम ते हैं ॥२४५, २४६॥

(तद्गुण)

चौ०—अपनो गुण तजि संग के लावै। अलंकार तद्गुण कवि गावै २४७॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, उज्जल यस अभिराम।
पढ़त कबित कवि के लखो, भये धवल धन-धाम ॥२४८॥

टीका—ल०-अपनो गुण तजि संगति गुण लेय। उदा०—भूप के कीरति के कबित कवि पढ़तेही धवल धाम पावते हैं ॥२४७, २४८॥

(पूर्वरूप)

दो०—पूर्ब रूप लै संग गुण, तजि फिरि निज गुण लेत।
दूजे गुण जो ना मिटो, कियो मिटन को हेत ॥२४६॥
बाग तड़ागु पुरान जे, गिरे पटे पुर पाइ।
भूप दिग्विजय फेरि सो, दिये तिन्हैं बनवाइ ॥२५०॥
अरि तिय दीप बुझाय निशि, भागि जात जेहि धाम।
दीपति देह मशाल सम, करत प्रकाश ललाम ॥२५१॥

टीका—ल०-पूर्व रूप लै संग गुण प्रथम, मिटाइबे को हेतु करै पै गुण न मिटै दूसर॥ उदा०—बाग तडाग जे पुराण रहे सो गिरिगे पटिगे ताहि भूप फिरि वैसही बनवाए॥ दीप बुझाइ जहाँ भागती है राति को तहाँ देह की दीपति मशाल अैसे प्रकाश ह्वै जाती है ॥२४६, २५१॥

(अतद्गुण)

चौ०—संगति के गुण गहैं न संगी।
कहत अतद गुण, कवि रस रंगी ॥२५२॥
दो०—हय हाथी हथियार दल, राज काय पद पाइ।
भूप दिग्विजयसिंह के, मद उपजो नहिं आइ ॥२५३॥

टीका—ल०-संगति के गुण जहाँ ग्रहन संगी न करै। उदा०—राजा मद पाइ मन में मद नही उपजो ॥२५२, २५३॥

(अनुगुण)

चौ०—संगति से पूरब गुण सरसै।
अलंकार अनुगुण रुचि परसै ॥२५४॥

दीपति = चमकती है। ललाम = सुन्दर ॥२५१॥

दो०—भूप दिग्विजय मुकुट में, मानिक मंजु बिसाल।
लहि आभा तन तेज के, होत अधिक छवि लाल ॥२५५॥

टीका—ल०-संगति ते पूर्व गुण सरसै कहै अधिक होय। उदा०—मुकुट में मानिक अंग के तेज से अधिक अरुण भयो ॥२५४, २५५॥

(मीलित)

चौ०—सादृश ते जहँ, भेद न लखिए।
तहँ मीलित कवि कहत, विशेषिए ॥२५६॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, तेज तरनि अवरेख।
रूप एक नहिं भेद कछु, कहिए काह बिशेखि ॥२५७॥

टीका—मीलित। तरनि कहै सूर्य्य अरु भूप तेज भिन्न नहीं ॥२५७॥

(सामान्य)

चौ०—सादृस्य ते नहि जानि परत है।
कौन विशेष बिचारि धरत है ॥२५८॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह की, कोठी दरपन धाम।
रूप अंग प्रतिबिंब की, भेद न लखि सरिनाम ॥२५९॥

टीका—ल०-जहाँ सादृस्य ते न जानि परै। उदा०-रूप कहै तन। प्रतिबिंब कहै परछाँही न जानि परो, कौन है दर्पन के धाम में ॥२५८,२५९॥

(विशेष)

चौ०—फुरै बिशेष जो समता माँह। कहै विशेष कविन करि चाह२६०॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह को, सुजस सेत शशि सेत।
जानि परै गरहन परे, कीरति निशिपति हेत ॥२६१॥

टीका—ल०-जहाँ सादृस्य में विशेष प्रगटै। उदा०-सुयस सेत चन्द्रमा सेत, ग्रहन परे पर जानि परै कि यह कीर्ति होइ यह चन्द्र ॥२६०,२६१॥

(गूढोत्तर)

चौ०—कछु भावन उत्तर गूढ़ो कहि। गूढ़ोतर तेहि कविन लोग लहि२६२

दो०—जो निज गुण को ऐगुनी, तुम्हैं गरब मन माँहु।
तौ महीप दिग्विजय के, चलि समीप अब जाहु ॥२६३॥

तरनि = सूर्य। अवरेख = समझना ॥२५७॥

दरपनधाम = आदर्श जुड़े हुए भवन। सरिनाम = प्रसिद्ध ॥२५९॥

गरहन = ग्रहण (पर्व)। निशिपति = चन्द्रमा ॥२६१॥

टीका—ल०-कुछ भाव गूढ कहै गुप्त होय। उदा०-हे गुणी पुरुष जो तुम्हैं गुण को गर्व होइ तौ नृप ढिग जाहु। अर्थ यह कि नृप ऐसे गुनी हैं कि तुम्हारो गर्व न रहिहै ॥२६२,२६३॥

(चित्रोत्तर)

चौ०—जहाँ प्रश्न के उत्तर दीजै। चित्रोत्तर कवि भाव भनीजै ॥२६४॥

दो०—करै नीति को शंभु के, सोहै पट अभिराम।
समर माह लहि कौन फल, भूप दिग्विजय नाम ॥२६५॥

टीका—ल०-जहाँ प्रश्नके उत्तर होय। उदा०-करै नीति०—नीति को करै, सम्भुके काह पट है, समरमें जीति कै कौन फल मिलत है, यह तीनि प्रश्न के—भूप दिग्विजय के नाम उत्तर है। नीति भूप करै है, सिव के दिग् कहै दिशा पट है। समर में काह चाहिए विजय कहै जीति ॥२६३,२६५॥

(सूक्ष्म)

चौ०—पर आसै लहि क्रिया कछू करि। अलंकार कवि सूक्षम चित धरि ॥२६६॥

दो०—भूप दिग्विजय बिपिन में, लखि कै बाघ विशाल।
और सिकारिन बीर असि, सिपर देखाए ढाल ॥२६७॥

टीका—ल०-पर आसै जानि जहाँ कृपा करै। उदा०-भूप ने बन में सेर को देखि अन्य सिकारिन की ओर असि कहै तरवारि, सिपर कहै ढाल देखाए। अन्य सिकारी की आसै यह की गोली से न मारो तरवारि से मारो, ढाल से यह अर्थ अड़ि रहै जाहु, वा रोके रही, आगे न जाइ पावै ॥२६६,२६७॥

(पिहित)

चौ०—छपी बात को परगट कीजै। पिहित अलंकृत कबि मन दीजै २६८

दो०—भूप दिग्विजयसिंह जब, निमक हरामहि देखि।
नीति दंड के ग्रंथ धरि, आगे पढ़ो बिशेषि ॥२६९॥

टीका—ल०-जहाँ छपी वस्तु को प्रकट कहै। उदा०-निमकहरामिन के आगे नीति ग्रन्थ धारिबो छपी बात को प्रकट यह की पढ़े ते जानि लेहै ॥२६८,२६९॥

पट = वस्त्र, द्वार ॥२६५॥

आसै = आशय। बोर = ओर, तरफ। असि = खड्ग। सिपर = ढाल ॥२६७॥

निमकहरामहिं = कृतघ्न को। नीतिदण्ड के = कानून के ॥२६९॥

(व्याजोक्ति)

चौ०—काहू डर ते गोप अकार।
करै ताहि व्याजोक्ति विचार ॥२७०॥
दो०—आवत लखि दिग्विजय नृप, हिए खलन के भीत।
कर कंपै पग नहि परै, कहै सतायौ शीत ॥२७१॥

टीका—ल०-काहू के भय ते आकार के गोपन होय। उदा०-भूप को देखि खल नर को कर कंपै है, ताको छपाइ कहै है यह शीत सतायो है ॥२७०,२७१॥

(गूढोक्ति)

दो०—औरे कों उद्देश करि, कहै और की बात ॥२७२॥
काहू से काहू कहै, जहाँ दुष्ट बद्‌कार।
यहि बन खेलन आइहैं, नृप दिग्विजय सिकार ॥२७३॥

टीका—ल०-और से अवर उपदेश करि अवर की बात कहै। उदा०-काहू ते काहू कहै की यहि बन में भूप शिकार खेलन ऐहै, गूढ़ बात यह है की तुम यहाँ ते भागि जाहु ॥२७२,२७३॥

(विवृतोक्ति)

चौ०—श्लेष छप्यौ प्रगटै कवि ताके।
व्यंग सहित विवृतोक्ति प्रभाके ॥२७४॥
दो०—मन दै जे पावन परम, प्रेम अतोल सुवेश।
भाव बराबरि ताहि सो, करि दिग्विजय नरेश ॥२७५॥

टीका—ल०—जहाँ श्लेष छप्यौ प्रगट व्यङ्ग ते होय तहाँ। उदा०-मन दै० मन कहै जीव प्रेम ते अतोल कहै तौलने लायक नहीं, तासों नृप भाव बराबरि के तुल्य राखै है। श्लेष छप्यौ यह है की मन चालीस सेर के होय है, अतोल कहै जिनकी गिनती नाहीं तिनते बराबरि भाव राखै है, भाव कहै दरि जो बजार में बिकाय है ॥२७४,२७५॥

उद्देश = लक्ष्य। बदकार = अपयश ॥२७३॥

मन = चित्त, ४० सेर का प्रमाण। पावन = पवित्र, पाव (सेर का चौथा भाग) नहीं। अतोल = असीम। भाव = अभिप्राय, दर ॥२७५॥

(युक्ति)

चौ०—गोपन मर्म करै निज परसों।
　　क्रिया करै कहि युक्तिहि वर सो ॥२७६॥
दो०—भूप दिग्विजय दल अदल, खल नर सुने अचेत।
　　थर थर कंपै देखि पर, वोढि शीत पट लेत ॥२७७॥

टीका—ल०-जहाँ निज मर्म अवर सों गोपन करै। उदा०-नृप के दल अदल दुष्ट नर सुनि काँपै है और लोगन को देखि वोढते सीत पट कहै रजाई आदिक ॥२७६,२७७॥

(लोकोक्ति)

चौ०—जहँ कहनाँवति लोक बात की।
　　लोक उक्ति कहि कबिन ख्यात की ॥२७८॥
दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, जे तजि सेवा ठाट।
　　कूकर धोबी के सदृश, घर के भयो न घाट ॥२७९॥

टीका—ल०-जहाँ लोक की कहनावति होय। उदा०-जे भूप की सेवा त्यागि चले सो धोबी के कूकर, लोक की कहनावति है ॥२७८,२७९॥

(छेकोक्ति)

दो०—लोक उक्ति कछु अर्थ सों, छेकोक्ती कहि सोइ ॥२८०॥
　　भूप दिग्विजयसिंह कों, के करि सकै बखान।
　　नृपति नीति की रीति को, नृपति होइ सो जान ॥२८१॥

टीका—ल०-जहाँ लोक की उक्ति अर्थ सों होय तहाँ छेकोक्ति। उदा०-नृपति की नीति को नृपति कहै राजा होय सो जानै ॥२८०,२८१॥

(वक्रोक्ति)

चौ०—स्वर श्लेष सों अर्थ फिरै जब।
　　वक्र उक्ति प्रश्नहिं में कहि तब ॥२८२॥
दो०—पट दै याचक द्वार फिरि, रुचि भूषन कवि गाथ।
　　भूप दिग्विजय सुनि कहै, लोभी नर के साथ ॥२८३॥

दल = सेना। अदल = न जीत सकने योग्य। वोढि = ओढ़ना, ढकेलना ॥२७७॥

कहनावति = कहावत ॥२७८॥

टीका—ल०-जहाँ स्वर श्लेष करि अर्थ को फेरै कहै दोसर करै। उदा०-लोभी नर पट माँगै है नृप ते, नृप कह्यौ पट दै, अर्थ यह की पट नाम केवार को है सो न देहु जाचक द्वार तें फिरि जाइ है, फेरि भूषन माँगै है नृप यह कह्यौ की भूषन कहै अलंकार कवि के कविताई में है ॥२८२,२८३॥

(सुभावोक्ति)

चौ०—बरनै जाति सुभाव जहाँ है।
सुभावोक्ति कवि कहत तहाँ है ॥२८४।

दो०—जेठ दुपहरी मैं करै, कानन कठिन बिहार।
भूप दिग्विजयसिंह सदै, खेलै सेर सिकार ॥२८५॥

टीका—ल०-जहाँ जाति सुभाव होय। उदा०-जेठ की दुपहरी में बन में शिकार खेलिबो यह जाति सुभाव है ॥२८४,२८५॥

(भाविक)

चौ०—भूत भविष्य प्रतच्छ बखानै।
अलंकार भाविक तहँ ठानै ॥२८६॥

दो०—दया धरम नृप करन की, सिबि दधीच की नीति।
भूप दिग्विजयसिंह के, अजौ लखी बहु रीति ॥२८७॥

टीका—ल०-भाविक भूत जो बीते होय ताहि प्रतक्ष कहै। उदा०-सिबि दधीचि की नीति भूप करत अजों कहै अबहीं लखो ॥२८६,२८७॥

(उदात्त)

चौ०—संपति चरित जहाँ ई अति लहि।
कहत उदात्त अलंकृत कविमहि ॥२८८॥

दो०—हय हाथी हथियार लहि, भूषन बसन अपार।
भूप दिग्विजयसिंह जब, जेहि चितवै यक बार ॥२८९॥

टीका—ल०-जहाँ सम्पति ऐश्वर्य अति बर्णन होय। उदा०- हय घोड़ा, हाथी भूषनादि जाके ओर निहारै कहै क्रिपा करै भूप, ताके है जाय ॥२८८,२८९॥

पट दै = वस्त्र, द्वार। भूषन = अलंकार, आभूषण। कविगाथ = कवियों की गाथा (कविता) ॥२८३॥

करन = कर्ण ॥२८७॥

चितवैं = देख दें ॥२८९॥

(अत्युक्ति)

चौ०—अद्भुत झूठी बातै अतिसै ।
बरनै तेहि अत्युक्ति सुमति सै ॥२६०॥

दो०—भूप दिग्विजयसिंह के, अरि की यह गति देखि ।
तेज अगिनि करि दिनहि जरि, जियै कंद यस पेखि ॥२६१॥

टीका—ल०–अति झुठाई जहाँ होय । उदा०–दिन मैं तेज के अगिनि ते जरै है, रात्रि को यशचन्द्र देखि जियै है कहै शीतल होय ॥२६०,२६१॥

(निरुक्ति)

चौ०—सो निरुक्ति जब जुक्ति करै कबि ।
अर्थ कलपना आन धरै फबि ॥२६२॥

दो०—चारिउ दिशि मैं नहिं बचै, करै दोष बिन काम ।
सदल असल करि प्रबल है, भूप दिग्विजय नाम ॥२६३॥

टीका—ल०–जहाँ जुक्ति ते अर्थ की और कल्पना होय । उदा०–चारौं दिशान में न बचिहै, क्यों कि दिग्विजय नाम है नृप के । दिग् कहै दिशा, विजय कहै जे जीते, यह अर्थ अपर भयो ॥२६२,२६३॥

(प्रतिषेध)

दो०—सो प्रतिषेध निषिद्ध जो, अर्थ निषेधो जाय ॥२६४॥
भूप दिग्विजय सों न छल, किए कूर तैं जाइ ।
मिटि जैबे को सत्यता, कीन्ही आप उपाइ ॥२६५॥

टीका—ल०—जहाँ अर्थ को निषेध होइ । उदा०–कोई काहू ते कहै है की तैं भूप से छल नाहीं कियो है, तैं अपने मिटि जाइबे को सत्य उपाय आपही कियो है ॥२६४,२६५॥

(विधि)

दो०—अलंकार बिधि सिद्ध जो, अर्थ साधिए फेरि ॥२६६॥
भूपति है भूपति जबै, राज नीति करि स्वच्छ ।
भूप दिग्विजयसिंह मैं, दूनौ देखि प्रतच्छ ॥२६७॥

टीका—ल०–सिद्ध जो अर्थ ताहि फेरि साधे तहाँ । उदा०–भूपति है भू नाम पृथ्वी के पति कहै स्वामी है जब राजनीति करिहै ॥२६६,२६७॥

भूपति = राजा, भूपति = पृथ्वी का स्वामी ॥२६७॥

दीह = दीर्घ । अनूप = जिसकी उपमा न हो सके ॥२६६॥

(हेतु)

दो०—हेतु अलंकृत होय है, कारन कारज संग ।
कारन कारज ही जबै, लहत एक ही अंग ॥२९८॥
उदै तेज रवि दरिद तम, दीह मिटावन रूप ।
भूप दिग्विजय की कृपा, 'बृज' सुख पाइ अनूप ॥२९९॥

टीका—ल०-जहाँ कारण कार्य संग ही होय, दूसर जहाँ कारण कार्य एक ही होय। उदा०-तेज उदय कारण दरिद्र तम मिटिबो कार्य, भूप कृपा सुख बृज को मिलिबो ॥२९८,२९९॥

लिखे अलंकृत क्रमहि तें, गति मति की अनुसार ।
अब विन क्रम वर्णन करौं, युक्ति अनेक प्रकार ॥३००॥

टीका—अब अक्रम अलंकृत लिखों हौं प्रचीनों के मत देखि ॥३००॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(रूपकातिशयोक्ति)

दो०—आजु अपूरब हौं लखी, छवि छहरै 'बृज' बृंद ।
मदनकदन के शीश पर, पाँच दुइज के चंद ॥३०१॥

टीका—मदन कहै काम, ताको कदन कहै मिटावनहार महादेव, ताके शीश पै पाँच द्वैज के चन्द्र केवल उपमान है, महादेव उपमान उरोजके है, चन्द्रमा द्वैज के उपमान नखक्षत के है। नायिका के रति समय में पाँचों अंगुरी के नखक्षत उरोज पै लगे हैं, ताहि सखी अतिशयोक्ति अलंकार करि लक्षित कियो, ताते लक्षिता [नायिका] ॥३०१॥

(असंगति)

दो०—जेठ जलाकनि मैं सबै, चले छोड़ि बन छाँह ।
करि केहरि मृग आदि खग, नारि निरखि कहि आह ॥३०२॥

टीका—जेठ जलनि में बन छाँह छोड़ि मृगादि भागे, नारि निरखि आह कियो, याते असंगति। जेठ में दवा ते बन जरै है, संकेतनाश जानि नायिका आह कियो, ताते अनुशयाना ॥३०२॥

मदनकदन = शिव ॥३०१॥

जलाकनि = गर्मी, लू। केहरी = सिंह ॥३०२॥

(समासोक्ति)

दो०—छिति छहराइ छटा लखो, छिति छ्वै छीरद नाथ।
छैल न छोड़ै यहि समै, छिनक छबीली साथ ॥३०३॥

टीका—छीरद कहै मेघ, छिति छाय रहे कहै उनै रहे, ऐसे में छैल कहै रसिक लोग नायिका को नहीं छिनो भर छोड़ै, तुम बड़ो मूर्ख हौ छोड़िकै जात हौ ॥३०३॥

(विभावना)

दो०—श्याम गहे बृज बाम कर, बोली चाकित बोल।
मंजु मीन उगिलै लगी, मोती पुंज अमोल ॥३०४॥

टीका—चकित बोल बोली अर्थ पी कहाँ रहे। मीन मोती उगिलने लगी, मीन आँखि मोती आँसुन के बुंद उपमान है, जहाँ अकारण ते कार्य होय। नायिका धीरा ॥३०४॥

(पिहित)

दो०—हाव भाव आदर अदब, जगर मगर दुति दीप।
केलि धाम किन लै धरे, शारी सेज समीप ॥३०५॥

टीका—केलिधाम मैं शुक कहै सुगा, सारी कहै मैना धरि राख्यो। सेज के समीप यह छुपी बात है, जाको प्रकट कियो की रति तें रूपी कै रति न करौंगी, याते प्रौढा धीरा ॥३०५॥

(यथासंख्य)

दो०—चख चकोर अलि खंजनै, चितै चलै हरखाय।
चंद चमेली मुख प्रभा, हाँस फाँस बगराय ॥३०६॥
नृप बुध बारिध नैन नित, चित न चाह घटि देत।
पर पुहुमी बिद्या सलिल, प्रिय दरसन के हेत ॥३०७॥

छिति = पृथ्वी। छहराइ = घिरी है। छीरद = बादल। छैल = चतुर नायक। छिनक = क्षणभर। छबीली = सुन्दरी नायिका ॥३०३॥
मंजु = सुन्दर। अमोल = बहुमूल्य, कीमती ॥३०४॥
हाव-भाव = कामसूचक आकृति और चेष्टायें। जगर-मगर = झलमल। केलिधाम = क्रीड़ागृह। शारी = मैना ॥३०५॥
चख = चक्षु। फाँस = जाल। बगराय = फैला रही है ॥३०६॥
पर पुहुमी = पर-पृथ्वी, शत्रुभूमि ॥३०७॥

गुनह गुनाही लोग के, गुनी गूढ़ गुन भाषि।
एक निकासै आँखि सों, एक लाख दै राखि ॥३०८॥

टीका—चख चकोर, अलि खंजन के ओर चितै कै हरखि चलै, यह अर्थ की जाके नेत्र चकोर ऐसे टक लगाए हैं तिनकी ओर और जिनके नैन खंजन ते चंचल ह्वै रहे हैं तिनके ओर। चन्द चमेली फाँस तीनों के ओर तीनि भाँति देखाये चलती, यातें कुलटा नायिका। जथा नृपबुध बारिध नैन० पृथ्वी विद्या सलिल प्रिय दरशना। जथा गुनाही, गुनी, गूढ एक को आँखितें निकारैं कहै नेत्र के सन्मुख न आवै, एक को लाख दै कै राखै ॥३०६–३०८॥

(उल्लास)

दो०—हुती मायके में सवति, पिय बोलो मुसुकाय।
गवनो लेनो चाहिये, नारि कह्यो हरषाय ॥३०९॥

टीका—सौति मायके में रही, ताहि लाइबे को नायक कही तौ नायिका ने हरषाय कही, सौति को हरष होनो सौति आइबे में असंभव। दोष ते गुण, याते उल्लास, सौति के साथ नायक रहैगो मैं मित्र से मिलौंगी, यातें मुदिता नायिका ॥३०९॥

(लेश)

दो०—एक एक शिर बार में, जो गुण होइ हजार।
एको फल दायक नहीं, जो दिन होइ बिकार ॥३१०॥

टीका—एक एक सिरवार मैं० सुगम ॥३१०॥

(अनुगुण)

दो०—जो पै संगति नीच की, दोष न लहै प्रबीन।
डार डार अहि गहि मलय, तऊ न विषमैं लीन ॥३११॥

टीका—जौ पै संगति० सुगम ॥३११॥

(व्यतिरेक)

दो०—मनि मानिक मुकुता अधिक, भये भाव सहताइ।
विद्या धन ज्यों ज्यों बढ़ै, त्यों त्यों मँहँग बिकाइ ॥३१२॥

टीका—मनि मानिक० अधिक भए अधिक बिकाय, बिद्या अधिकहोने ते बड़ी आदर है, याते वितरेक ॥३१२॥

गुनह = अपराध। गुनाही = अपराधी ॥३०८॥

भाव = दर। सहताइ = सस्ता ॥३१२॥

(रूपक)

दो०—करनधार बरबुद्धि नर, बिद्या बोहित पाइ ।
सनोमान-मुकुता लहै, सभा-सिन्धु में जाइ ॥३१३॥

टीका—करनधार० सुगम ॥३१३॥

(व्यतिरेक)

दो०—बिद्यावान बराबरी, नहि करि सकत नरेश ।
गुन को आदर ठौर सब, राजा को निज देश ॥३१४॥

टीका—विद्यावान० सुगम ॥३१४॥

(उल्लास)

दो०—नृप ऐगुन जो आदरै, गुन गनिए भल सोइ ।
बक्र चंद्र शिव शीश लहि, सब बिधि बंदित होइ ॥३१५॥

टीका—बक्र कहै टेढ़ चन्द्र को सब जग बन्दन करत है। जाको नृप आदरै सोई गुनी है ॥३१५॥

(दीपक)

दो०—दान समय तीरथ गमन, विद्या पढब अपार ।
यामें बिलँब न कीजिए, करि 'बृज' बेगि बिचार ॥३१६॥
पंचाइति पर तिय गमन, बंध बिरोध निहारि ।
जिय मारत हित कलह में, कीजै बिलँब बिचारि ॥३१७॥

टीका—दान समय, तीरथ जावे को, विद्या में, भोजन करने में बिलम्ब न करै ॥ पंचाइति मैं० सुगम ॥३१६, ११७॥

अन्य प्राचीन कविन के कवित्त

(दीपक अलंकार)

दो०—चंदन चाउर चून तिय, बंक लंक सन सूत ।
ए नव पतरे चाहिए, तुला राग रजपूत ॥३१८॥
पय पानी अरु पानहीं, पान दान सनमान ।
ए नव मोटे चाहिए, राजा और दिवान ॥३१९॥
कस्तूरी कदली तुरै, मोती उपवन धाम ।
ए नव उत्तमै चाहिए, काम दाम अरु बाम ॥३२०॥

करनधार = कर्णधार, नाविक । बोहित = जहाज ॥३१३॥

दया भक्ति अरु तरुनि कुच, ऊख जु सिंधुर बाम ।
ए नव दाबे गुन करैं, रहुआ महुआ आम ॥३२१॥

साहेब साँचे गेह पुनि, परन बिछौना खाट ।
ए नव सुकुते चाहिये, हाट बाट अरु खाट ॥३२२॥

बस्ती बयद तपेस्वरी, प्रोहित तंदुल बान ।
ए नव जूठन चाहिए, तेग नरेश दिवान ॥३२३॥

टीका—चंदन चाउर आदि नव पातर की अन्वय ते दीपक। पय पानी पानही पान दानादिक मैं मोट अन्वय, ताते दीपक। कस्तूरी मैं अन्वय दीपक। दया भक्ति में सुगम। साहेब साँचे आदि सुगम। बस्ती बयद में सुगम ॥३१९–३२३॥

कवि—मतिराम

(पंचम प्रतीप)

दो०—पाहन जनि जिय गरब धरि, हौं हिय कठिन अपार ।
चित दुरजन को देखियत, तो सों लाख हजार ॥३२४॥

टीका—पाहन जन मन में गरब न करो ॥३२४॥

(न्यून रूपक)

दो०—विप्रनके मंदिरन तजि, अवर आँच सब ठौर ।
भाव सिंह भुवपाल के, तेज तरनि कछु और ॥३२५॥

टीका—रूपकहीनोक्ति। विप्रन के मंदिर में आँच नहीं बरै है, तेज तरणि कहै और है अतः न्यून रूपक ॥३२५॥

(तीसरो निषेधाभास)

दो०—हौं न कहति तुम जानि हौ, लला बाल की बात ।
अँसुवन उडगन गिरत हैं, होन चहै उतपात ॥३२६॥

टीका—हौं न कहति मैं नहीं कहती, निषेध को मूलक ॥३२६॥

(चौथी विभावना)

दो०—हँसत बाल के बदन मैं, लहि छबि कछुक अतूल ।
फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल ॥३२७॥

टीका—चंपक बेलि नायिका, चमेली फूल हाँस, अकारण ते कार्य ॥३२७॥

(प्रत्यनीक)

दो०—तो मुख छबि सों हारि बिधु, भयो कलंक समेत ।
सरद इंदु अरबिंद मुख, अरबिंदन दुख देत ॥३२८॥

टीका—मुख ते इंदु हारि अरबिंद मुख को दुःख देत, हित पच्छ जहाँ बल करै ॥३२८॥

(विशेष)

दो०—सुन्दरता की शोभ तिय, बोलत बानी बंक ।
गुण में अवगुण दबत है, ज्यौं शशि माँह कलंक ॥३२९॥
भावी बड़ी प्रचंड है, तजत न अपनो अंग ।
रामचन्द्र धावत भए, कनक हरिन के संग ॥३३०॥

टीका—विशेष गुण ते ऐगुण दबत है, जैसे शसि में कलंक ॥ भावी बड़ी प्रचंड, रामचन्द्र धावत भए कनक मृगा देखि यह ज्ञान नहीं भयो, कहूँ सोनौ के मृगा होत ॥३२९, ३३०॥

(मिथ्याध्यवसित)

दो०—खल बचनन की मधुरता, सुने साँप निज श्रौन ।
रोम रोम पुलकित भए, कहत 'बोध' गहि मौन ॥३३१॥

टीका—खल बचन में मधुराई झूठ, साँप के कान, यह एक झूठ के लिये दूसरो झूठ ॥३३१॥

(अवज्ञा)

दो०—मेरे द्रिग बारिध बृथा, बरषि बारि परवाह ।
होत न अंकुर नेह को, तो उर ऊसर माँह ॥३३२॥

टीका—जल अंकुर नहीं करत यातें गुण नहीं लग्यौ ॥३३२॥

(अत्युक्ति)

दो०—बारि बिलोचन बारि को, बारिध बढ़ै अपार ।
जारै जौन बियोग की, बडवानल की झार ॥३३३॥

टीका—नेत्र ते बारिध की धार आँसू निकसे ॥३३३॥

बंक = टेढ़ी । भावी = होनी, भविष्य । कनकहरिन = स्वर्णमृग ॥३३०॥
झार = लपट ॥३३३॥

कवि—तुलसीदास

(पूर्णोपमा)

दो०—नीच गुडी लौं जानिए, तौ लौं तुलसीदास ।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचे चढ़त अकाश ॥३३४॥

टीका—नीच उपमेय, गुडी पतंग उपमान, लौं वाचक, गिरियो चढ़िबो धर्म ॥३३४॥

(दीपकावृत्ति)

दो०—भले भलाई को लहैं, लहैं निचाई नीचु ।
सुधा सराही अमरता, गरल सराही मीचु ॥३३५॥

टीका—[भले] भलाई लहै, नीच निचाई लहै, सुधा सराही, गरल सराही, लहै को अर्थ सब्द एकई है ॥३३५॥

(यथासंख्य)

दो०—उत्तम मध्यम अधम नर, पाहन भू जल रेख ।
प्रीति अनुक्रम से कहौ, बैर बितिक्रम पेख ॥३३६॥

टीका—पाहन, भू , जल रेख प्रीति क्रमते उत्तम प्रीति पथरलीक, मध्य कै भूमि रेख, अधम कै जल रेख । बैर बितिक्रम—अधम के बैर पत्थर की लीक, मध्यम कै भूमि रेख, उत्तम ते बैर जल रेख ॥३३६॥

(प्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—गंगा जमुना सरस्वती, सात समुद भरि पूरि ।
तुलसी चातिक के मते, बिना स्वाति सब धूरि ॥३३७॥

टीका—चातिक गंगादिक के जल को निरादर कियो, एक स्वाति बिना, ऐसे जे नर सिपुरिस है एक अपने स्वामि सेवाइ और को नहीं जानै है ॥३३७॥

गुडी = गुड्डी, पतंग ॥३३४॥

लहैं = पाते हैं । सुधा = अमृत । अमरता = देवत्व, मृत्युको जीतना ।
गरल = विष । मीचु = मृत्यु ॥३३५॥

अनुक्रम = सीधा क्रम । व्यतिक्रम = उलटा क्रम, ॥३३६॥

समुद = समुद्र । स्वाति = एक नक्षत्र ॥३३७॥

(उल्लास)

दो०—हित हूँ अनहित होत है, तुलसी दुरदिन पाय ।
　　बधिक बधै मृगबान तें, रुधिरै देत बताय ॥३३८॥

टीका—रुधिर गिरब दोष, ताते फेरि मारेंगे, यह दोष ते दोष ॥३३८॥

(अप्रस्तुतप्रशंसा)

दो०—संगबासी काची भखै, पुरजन पाक प्रवीन ।
　　कालछेप केहि मिलि करै, तुलसी खग मृगमीन ॥३३६॥

टीका—खल नरन संग क्यों निबाह होइगो ॥३३६॥

(निदर्शना)

दो०—गुण सरूप बल बित्त को ,प्रीति करै सब कोय ।
　　तुलसी प्रीति सराहिए, इनते बाहर होय ॥३४०॥

टीका—गुण, स्वरूप, बल, धन देखि सबै प्रीति करैहै ॥३४०॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—बड़ो छोट सों छल करै, जनम कनौडो होय ।
　　श्रीपति सिर तुलसी लसी, बलि बावन गति सोय ॥३४१॥

टीका—बड़े छोट यह सामान्य, श्रीपति बलि बावन बिशेष ॥३४१॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दो०—मीन काढ़ि जल धोइए, खाये अधिक पियास ।
　　तुलसी प्रीति सराहिए, मुयेहु मीतकी आस ॥३४२॥

टीका—मीन जलते निकासि जलै में धोईए, खाय फेरि पियास जलै को, ऐसे ही मित्रता चाहिये ॥३४२॥

बधिक = ब्याधा, कसाई ॥३३८॥
कनौडो = एहसानमंद । श्रीपति = विष्णु ॥३४१॥
मुयेहु = मरे हुए ॥३४२॥

(निदर्शना)

दो०—खल उपकार बिकार फल, तुलसी जान जहान ।
मेंडुक मरकट बनिक पिक, कथा सत्य उपखान ॥३४३॥

टीका—मेंडु मर्कट बनिक त्रिक यह कथा उपाख्यान है, ताते लोकोक्ति, अथवा सत को उपदेश ते निदर्शना ॥३४३॥

(उल्लास)

दो०—नीच निरादर ही सुखद, आदर दुखद बिसाल ।
कदली बदरी बिटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥३४४॥

टीका—नीचनिरादर दोष, ताते सुख गुण भयो ॥३४४॥

(सधर्म दृष्टांत)

दो०—प्रभु सनमुख गे नीच नर, होत अधिक बिकराल ।
रबि रुख लखि दरपन फटिक, उगिलत ज्वाला जाल ॥३४५॥

टीका—रवि को देखि दरपन ते आगि झरै है, तैसे प्रभु के सन्मुख नीच नर करालता पावै है ॥३४५॥

(दृष्टांत)

दो०—प्रभु सनमुख गे सुजन जन, होत सुखद सुखकारि ।
लोन जलधि जल ज्यों जलद, बरषत सुधा सुबारि ॥३४६॥

टीका—प्रभु सन्मुखगे सुजन सुख पावै है जैसे लोन जलधि जलद सुधा बरषै है ॥३४६॥

(उपमा)

दो०—बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोय ।
तुलसी भूपति भानु सो, प्रजा भागबश होय ॥३४७॥

टीका—बरसत-करषत धर्म, भूप उपमेय, भानु उपमान, सो वाचक ॥३४७॥

जहान = संसार । मेंडुक = मेंढक । मरकट = बंदर । बनिक = बनिया । पिक = कोयल । उपखान = उपाख्यान, वर्णन ॥३४३॥
कदली = केला । बदरी = बेर । पनस = कटहल । रसाल = आम ॥३४४॥
लोन = लवण, खारा । ॥३४६॥
करषत = खींचते हुए । भागबश = भाग्यवशात् ॥३४७॥

(रूपक)

दो०—सूम कोठरी श्वानि भग, ए द्वै एक समान ।
डारत ही दुख होत है, काढ़त निकरत प्रान ॥३४८॥

टीका—सूम कोठरी उपमान उपमेय ॥३४८॥

(काव्यलिंग)

दो०—बार बार जहँ जाइए, बिना काज धरि लोभ ।
तुलसी तहँ अपमान को, कहा कीजिए छोभ ॥३४६॥

टीका—लोभते आदर निरादर होवों सामर्थ्य है ॥३४६॥

(अवज्ञा)

दो०—बरषत बसु हरषित करै, हरै जगत की त्रास ।
तुलसी निज गुण दोष तें, जल तें जरै जवास ॥३५०॥

टीका—जगत हरष जवास जरै अपने स्वभावते ॥३५०॥

कवि—शोभनाथ

(प्रतिवस्तूपमा)

दो०—सुख बिलसो नंदलाल सों, तजो अटपटे तेह ।
लसति नारि मनि मान सों, लसत नारि पिय नेह ॥३५१॥

टीका—लसत नारि, लसत पिय नेह, याते प्रतिवस्तूपमा ॥३५१॥

(निदर्शना प्रथम)

दो०—फैलि रह्यो मनि सदन मैं, आनन अमल प्रकास ।
अलकनि चंचलता लखो, नागिनि गमन बिलास ॥३५२॥

टीका—अलक के चंचलता नागिन की गमन ते निदर्शना ॥३५२॥

छोभ = क्षोभ, दुख ३४६॥
बसु = जल । जवास = कण्टकी ॥३५०॥
अटपटे = अंडबंड । तेह = क्रोध ॥३५१॥
मनिसदन = मणिमय गृह । अलकनि = केशोंमें ॥३५२॥

(पिहित)

दो०—बिथुरे कच रति रंग मैं, समुझि सखी मुख मोरि ।
दई तरुनि को बिहँसि कै, अरुन पाट की डोरि ॥३५३॥

टीका—बार बिथुरे देखि सखी अरुण पाट की डोरी दई, यातें बारन को बाँधि लीजै, यह छपी बातको प्रगट कियो, यातें पिहित ॥३५३॥

(अतद्गुण)

दो०—सिगरी निसि नव कंज मैं, कीन्हैं रह्यौ निकेत ।
निरख्यौ तऊ भयो नहीं, स्यामल मधुकर सेत ॥३५४॥

टीका—कंज मैं सिगरी निशि रह्यो भौंर, पै सेत न भयो, संगति के गुन न लग्यौ, यातें अतद्गुण ॥३५४॥

(लेश प्रथम)

दो०—सुनहु सयाने छीरनिधि, बचन चारु चितलाइ ।
रतन संग्रहन ते सुरन, उदर मथ्यो तौ आइ ॥३५५॥

टीका—रतन राखे ते उदर मथ्यो गयो है समुद्र, तातें लेष ॥३५५॥

(अवज्ञा)

दो०—निशि बासर तरुनीन मैं, बिहरै परगट गोय ।
सूर बीर नर नेकहूँ, कबहुँ न कायर होय ॥३५६॥

टीका—सूर बीर तरुनी के संग बिहार करत, तरुनी को धर्म ग्रहण करना चाहिए सो न लग्यौ, तातें अवज्ञा ॥३५६॥

(प्रत्यनीक)

दो०—तो पर जोर चलै न कछु, निबल अपनपौ मानि ।
केदली को तोरत करी, जंघन के सम जानि ॥३५७॥

टीका—तो पर जोर गयंद को नहीं चल्यो तो केदरी को तोरन लगे जाँघ सम जानि, अरि पक्षी पै जोर किये प्रत्यनीक ॥३५७॥

बिथुरे कच = बिखरे केश ॥३५३॥

निकेत = निवास । मधुकर = भ्रमर । सेत = श्वेत ॥३५४॥

संग्रहन = संग्रहण, एकत्रित करना ॥३५५॥

गोय = गुप्त ॥३५६॥

अपनपौ = आत्मीयता, अपनापन ॥३५७॥

कवि-मुकुंद (लेश)

दो०—हौं देखौं सब जगत कों, देखै कोइ न मोहि ।
तुव प्रसाद हौं सिद्ध भो, नमो दरिंद प्रभु तोहि ॥३५८॥
काहू न ह्वै सतसंग में, देखो, तिल अरु तेल ।
मोल तोल सब बढ़ि गये, पायो नाम फुलेल ॥३५९॥

टीका—हौं सब जग को देख्यो अर्थात् सब ते जाचना किये, पै मोको कोई नहीं देखि पायो, सिद्धि भयो, सो हे प्रभु दरिद्र ! तुमहि मेरे नमो०, याते लेश । सतसंग ते काहू नही ह्वैहै ॥३५८, ३५९॥

(प्रत्यनीक)

दो०—घन डरपै घनस्याम से, इतै आइ दुख देत ।
रबि सों चलै न चंद्र की, कंज प्रभा हरि लेत ॥३६०॥

टीका—रवि सों चंद को बल नहीं चलैहै, रवि के हित कंज, ताको चंद दुःख देय है, याते प्रत्यनीक ॥३६०॥

(विनोक्ति)

दो०—रूप अनूप प्रकास तन, भूप भूमि में लीन ।
सब गुण सहित प्रबीन हौ, बिना नम्रता हीन ॥३६१॥

टीका—बिना नम्रता हीन, यह प्रस्तुत, कछु बिना छीन, यातें विनोक्ति ३६१

(विरोधाभास)

दो०—हस्त बस्त जै नृपति है, योगी लिप्त बिभूति ।
हरि सुमिरत ते भगत है, तीनिउ गए बिगूति ॥३६२॥

टीका—हस्त बस्त जे नृपति कहै जे नृप हस्त कहै हाथ बस्त कहै मूठी बाँधे है । अर्थ यह कि कुछु दातव्य नहीं, अरु योगी बिभूति लिप्त कहै बिभूति ऐश्वर्य में पगे है, हरि सुमिरत ते भगत कहै हरि के सुमिरन ते भागते, यह शब्द विरोध अर्थमें नहीं, अर्थ अविरोध यहि भाँति है हस्त कहै हाथी, वस्त कहै जे नृप बाँधे है, जोगी जे बिभूति राखिमें लिप्त कहै लगाए है, हरि सुमिरत ते भगत है कहै भक्त, याते विरोधाभास ॥३६२॥

फुलेल = इत्र ॥३५९॥
बिगूति = ॥३६२॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—नीच बड़ाई लहत है, लहे बड़ेन के साथ।
ढाक पात सँग पान के, चढ़ै छत्रपति हाथ ॥३६३॥

टीका—नीच सामान्य, ढाक पात विशेष ते अर्थान्तरन्यास ॥३६३॥

(यथासंख्य)

दो०—रंक लोह तरु कीट अरु, परसि न पलटैं अंग।
कहाँ नृपति पारस कहाँ, कँह चंदन कँह भृंग ॥३६४॥

टीका—रंक, लोह, तरु, कीट—नृपति, पारस, चंदन, भृंगी यह चारिउ चारि में लगे ते अंग पलटै है। जैसे राजा के पास गये ते दरिद मिटि जाय, लोह पारस परसि सोना होत, तरुमलया चंदन परसि चंदन होत, कीट भृंगी परस ते भृंगी होत, यातें जथासंख्य ॥३६४॥

कवि—रसलीन

(रूपक)

दो०—भ्रू डाँडी काँटा तिलक, पल चख पुतरी बाँट।
तौलति मूरति मित्र की, नेह नगर की हाट ॥३६५॥

टीका—भ्रू डाँडी भ्रू कहै भृकुटी डाँडी, काँटा तिलक, ते रूपक ॥३६५॥

(शुद्धापह्नुति)

दो०—अरुन माँग पटिया नहीं, मदन जगत को मारि।
असित फरी पर लै धरी, रकत भरी तरवारि ॥३६६॥

टीका—यह अरुण सेंदुर माँग में नहीं है मदन जगत को मारिकै स्याम ढाल पर रकत लगी तरवारि धरी, धर्म दुराये ते शुद्धापह्नुति ॥३६६॥

(समस्तविषयी रूपक)

दो०—जाल घुँघुर अरु डाँड भ्रू, नैनन मुलह बनाइ।
खींचत दृग खग जग त्रिया, तिल दाने दिखराइ ॥३६७॥

टीका—जाल घुँघरु, डाँड भृकुटी, नेत्र मुलह, ताते रूपक ॥३६७॥

पल = पलक। चख = चक्षु। पुतरी = कनीनिका। बाँट = बटखरा। हाट = बाजार ॥३६५॥

मदन = कामदेव। असित = काली। फरी = ढाल। रकत = रक्त,खून ॥३६६॥

(विरोधाभास)

दो०—सब जग पेरत तिलन को, को न ठग्यौ यह हेरि ।
तव कपोल के एक तिल, सब जग डारे पेरि ॥३६८॥

टीका—तिल को कोलू पै पेरत । तिल कोलु कौन कहै सब जग पेरै, यह विरोध शब्द ॥३६८॥

(अत्युक्ति)

दो०—लिखन चहत 'रसलीन' जब, तुव अधरन की बात ।
लेखन की बिधि जीभ बँधि, मधुराई ते जात ॥३६९॥

टीका—लेखनी कहै कलमके जीभ पर मधुराई आवै ॥३६९॥

(उत्प्रेक्षा)

दो०—स्याम दसन अधरान मधि, सोहत है यहि भाँति ।
कमल बीच बैठी मनो, अलि छौनन की पाँति[1] ॥३७०॥

टीका—कमल बीच अलि छौना बैठो, याते उत्प्रेक्षा ॥३७०॥

(गम्योत्प्रेक्षा)

दो०—चंद्रमुखी जूरो चितै, चित लीन्हो पहिचानि ।
शीस उठायो है तिमिर, शशि के पीछे जानि ॥३७१॥

टीका—शीश उठायौ, तिमिर, शशिको पीछे डारि, वाचक नहीं याते गम्योत्प्रेक्षा ॥३७१॥

(अपह्नुति सुद्धा)

दो०—दई न बाम लिलार पर, बेंदी स्याम सुधारि ।
माँग स्यामता उरग लहि, बैठो कुंडल मारि ॥३७२॥

टीका—दई न बामलिलार पट यह बेंदी कुंडल करि साँपिनि बैठी धर्म दुरे ते अपह्नुति ॥३७२॥

दसन = दाँत । मधि = मध्य, बीच । अलिछौनन = भौंरों के बच्चों की ॥३७०॥
जूरो = जूड़ा (केशों का) ॥३७१॥

बाम = सुन्दरी स्त्री । लिलार = मस्तक । उरग = सर्प । कुंडलमारि = कुंडल की तरह गोलाकार होकर ॥३७२॥

१—मिस्सी लगाने से दाँत काले हो गये हैं अतः श्याम दशनों की यह उत्प्रेक्षा है । वस्तुतः यह कविसमय-प्रसिद्धि के विरुद्ध है, दाँतों का वर्णन सर्वथा श्वेत रूप में ही कवियों ने किया है ।

(श्लेष)

दो०—मुक्त भए घर खोइ कै, बैठे कानन जाइ ।
अब घर खोवत और के, कीजै कौन उपाइ ॥३७३॥

टीका—मुक्त भये घर खोय कहै घर छोड़ि कै तब मुक्त भये । कानन कहै बन में बसे, यह एक अर्थ। मुक्त भए घर खोइ कहै जब मोती निकसै है तब सीपी की छाती फाटि जाती है । कानन कहै कान में पहिनी जाती, याते श्लेष ॥३७३॥

(अतद्गुन)

दो०—ठगत सकल श्रुति सेइ करि, लहत साधु परिमान ।
यह खुटिला श्रुति सेइ करि, खुटिलै रह्यौ निदान ॥३७४॥

टीका—श्रुति सेए ते ठग साधु होत । यह खुटिला श्रुति सेय खुटिलै रह्यो । संगति गुण न लग्यौ, ताते अतदगुण ॥३७४॥

कवि—दास

(उन्मीलित)

दो०—जमुना जल मैं मिलि चली, उत अँसुवन की धार ।
नीर दूरि ते ल्याइयतु, जहाँ न पैयत खार ॥३७५॥

टीका—जमुना जल स्याम, आँसू स्याम मिलो खार ते जान्यो ॥३७५॥

(लेश)

दो०—ललित लाल मुख मेलि कै, दियो गँवारन फेरि ।
लील न लीन्हो यह बड़ो, लाभ जौहरी हेरि ॥३७६॥

टीका—लीलि न लीन्हो, फेरि पायो, जौहरी तेरी बड़ी भाग है, ताते लेश ॥३७६॥

मुक्त = विरक्त, मोती । कानन = वन, कानों में । खोवत = नष्ट करते हैं ॥३७३॥

श्रुति सेइ करि = शास्त्रों का मनन कर । लहत = प्राप्त करते हैं । परिमान = प्रमाण (प्रत्यक्षादि) । खुटिला = कान का एक आभूषण । श्रुति = कान ॥३७४॥

लाल = रत्न । गँवारन = असभ्यों ने । लील न लीन्हो = निगल न लिया ॥३७६॥

(विभावना)

दो०—चंद निरखि सकुचत कमल, नहि अचरज नँद-नंद ।
यह अचरज तिय मुख कमल, लखि कै सकुचत चंद ॥३७७॥

टीका—यह अचरज तिय मुख कंज देखि चंद सकुचै, यह कार्य ते कारण, ताते बिभावना ॥३७७॥

(व्याघात)

दो०—'दास' सपूत सपूत ही, गथ बल होइ न होइ ।
यहै कपूतहुँ की दशा, भूलि न भूलै कोइ ॥३७८॥

टीका—सपूत सपूती किये होइ गथ बल से सपूत नहीं ॥३७८॥

(विरुद्ध)

दो०—लोभी धन संचै करै, दारिद की डर मानि ।
'दास' वही डर मानि कै, दान देत हैं दानि ॥३७९॥

टीका—लोभी धन संचै करै है दारिद डर ते ॥३७९॥

(व्याज निंदा)

दो०—नहिं तेरो यह बिधिहि को, दूषन काक कराल ।
जिन तोहूँ कलरव हुकी, दीन्हो बास रसाल ॥३८०॥

टीका—हे काग ! तेरो दोष नहीं, यह, जिन जौ तोको कलरव शब्द दियो है । कागकी निंदा ते पैदा करणहारे की निंदा ॥३८०॥

(सम तीसरा)

दो०—जो कारन तें उपजि कै, कारन देत जराय ।
ता पावक सों उपजि घन, हनै पावकहि पाय ॥३८१॥

टीका—जो आगि कानन ते उपजि कानन को जरावै ताही पावक सो घन होत । वही घन अगिनि को बुझाइ देत है, याते सम ॥३८१॥

गथ = पूँजी ॥३७८॥

बिधि = विधाता, ब्रह्मा । दूषन = दोष । कलरव = मधुर शब्द । रसाल = आम ॥३८०॥

कवि—राम सहाय

(मुद्रा)

दो०—पटना देरी लखनऊ, कासमीर सुखदेत।
करनाटक नैपाल की, चढ़ि चलु कंत निकेत ॥३८२॥

टीका—पटना देरी लखनऊ कासमीरादिक सहर नाम निकस्यो। अथ सूच्यार्थ—पट ना कहै पट दरवाजा न देरी सखी। लखनऊ कहै लख देखु, नऊ कहै नवा। कासमीर कहै का सुन्दर समीर सुख देत है। करनाटक कहै कर न अटक कहै देर न कर। नैपालकी कहै नई पालकी पर चढ़ि चलु, यातें मुद्रा ॥३८२॥

(समुच्चय)

दो०—प्रथमहि पारद मैं रहो, फिरि सौदामनि माहँ।
तरलाई भामिनि दृगन, अब आई बृज माहँ ॥३८३॥

टीका—पहिले पारा में रही, सौदामनि कहै बिजुलीमें, अब तरुनाई भामिनि में आई। क्रमते एक आश्रय, ताते समुच्चय ॥३८३॥

(विभावना)

दो०—शशि लखि जगत विदित्त हौ, जात कमल कुँभिलाय।
यह शशि कुँभिलानो कहो, कमलहि लखि केहि भाय ॥३८४॥

टीका—यह शशिकमल देखि सकुचानो, ताते विभावना ॥३८४॥

(पर्य्यस्तापह्नुति)

दो०—श्याम रंग के पास तें, उपजो पुलक शरीर।
आली बनमाली मिले, नहि जमुना के तीर ॥३८५॥

टीका—आली बनमाली, नहिं जमुनाको नीर स्यामल होय, ताते पुलक भयो ॥३८५॥

समीर = वायु। कंत निकेत = प्रियतमके भवन ॥३८२॥
पारद = पारा। सौदामनि = बिजली। तरलाई = चंचलता ३८३॥
कुँभिलाय = मुरझा जाता है। केहिभाय = किसे अच्छा लगता है ॥३८४॥
पुलक = रोमांच। बनमाली = श्रीकृष्ण ॥३८५॥

कवि—प्रवीनराय

(संबंधातिशयोक्ति)

दो०—कुच उतंग सुर बश कियौ, नगर नृपति बश कीन ।
अब बश करन पताल को, लचटि पयानो कीन ॥३८६॥

टीका—कुच ता ऐसे उतंग की सुर लोक बसि कियो । अजोग जोग ते असंबंधाति० ॥३८६॥

(पूर्णोपमा)

दो०—जोबन सरक्यौ अंग ते, बदन चटक केहि हेत ।
मन मथ बोरि मशाल ज्यौं, सैति सिहारे लेत ॥३८७॥

टीका—मनमथ उपमान, मशाल उपमेय, ज्यौं बाचक, सेहारिबो धर्म, यातें पूर्णोपमा ॥३८७॥

(पिहित)

दो०—बिनती 'राय प्रबीन' की, सुनिए साहि जहाँन ।
जूठ पतौआ द्वै भखैं, कौआ औरौ स्वान ॥३८८॥

टीका—जूठ पतरी दो खाते हैं, एक काग अरु एक कूकुर । यह छुपी बात को जतायो प्रवीन राय, पतुरिया इन्द्रजीत राजा की होय बादशाह से कहै है की मैं तुम्हारे लायक नहीं हौं, याते पिहित ॥३८८॥

कवि—नवाब खान खाना

(दीपकावृत्ति)

दो०—नैन सलोने अधर मधु, कहि 'रहीम' घटि कौन ।
मीठो चहिए लोन पै, मीठे हू पै लोन ॥३८९॥

टीका—मीठे मीठे, लोन लोन शब्द अर्थ एकई है ॥३८९॥

उतंग = उत्तुङ्ग, ऊँचे । पयानो = प्रयाण, प्रस्थान ॥३८६॥

चटक = कांति, चमक । सिहारे लेत = ढूँढ़े लेता है ॥३८७॥

साहि जहाँन = संसारके राजा । पतौआ = पत्तल । भखै = भक्षण करते हैं ॥३८८॥

सलोने = सुन्दर, नमकीन । लोन = नमक ॥३८९॥

(असंगति)

दो०—'रहिमन' वोछ प्रसंग तें, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावत संपुटी, मार सहत घरियार ॥३६०॥

टीका—नीर सम्पुटी चोरावै, मार घरियार सहै। कार्य कारण ते विरुद्ध, ताते प्रथम असंगति ॥३६०॥

(दीपकावृत्ति)

दो०—'रहिमन' पेटै सों कहै, क्यों न भई तुम पीठि।
भूखे मान बिगारहू, भरे बिगारहु दीठि ॥३६१॥

टीका—भूखे मान को बिगारै है, भरे पर दीठि बिगरब पद ते दीपकावृति ॥३६१॥

(उल्लास)

दो०—अमी पियावै मान बिन, 'रहिमन' मुहि न सोहाय।
मान सहित मरिबो भलो, बरु बिष देइ बुलाय ॥३६२॥

टीका—विष मान सहित पियावै, सो भलो है, दोष को गुण मान्यौ, ताते उल्लास ॥३६२॥

(दीपक)

दो०—'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून ॥३६३॥

टीका—मोती, मानुस, चून में एक पानी के अन्वय ते दीपक ॥३६३॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—बड़े बड़ाई ना तजै, लघु 'रहीम' इतराइ।
राय करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥३६४॥

टीका—बड़े बड़ाई लघु यह सामान्य, राय करौंदा विशेष, यातें अर्थांतरन्यास ॥६६४॥

वोछ = ओछा। संपुटी = छोटी डिबिया। घरियार = घड़ियाल, मगर ॥
अमी = अमृत। मुहि = मुझे। बरु = भलेही ॥३६२॥
पानी = जल, ओज, प्रतिष्ठा। सून = शून्य ॥३६३॥
इतराइ = घमण्ड करते हैं ॥३६४॥

(अप्रस्तुत प्रशंसा)

दो०—फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर ।
'रहिमन' सीधी चाल तें, प्यादे होत उजीर ॥३६५॥
टीका—सीधी चालते प्यादा उजीर होत, अप्रस्तुत प्रशंसा ॥३६५॥

(उत्प्रेक्षा)

दो०—करत निपुनई गुन बिना, 'रहिमन' निपुन हजूर ।
मानो टेरत बिटप चढ़ि, यहि प्रकार हम कूर ॥३६६॥
टीका—मानो० मानो बिटप चढि टेरत है की हम ऐसे कूर हैं ॥३६६॥

(प्रथम असंगति)

दो०—'रहिमन' खोटे संग मैं, साधु बाँचते नाहिं ।
नैना धैना करत हैं, उरज उमेठे जाहिं ॥३६७॥
टीका—नैना लगालगी करे हैं, उरज उमेठे जाय हैं, याते असंगति ॥३६७॥

(दृष्टांत)

दो०—खीरा शिर धरि काटिए, मलिए लोन लगाइ ।
करुए मुख को चाहिए, 'रहिमन' एही सजाइ ॥३६८॥
टीका—करुए मुख को यही दण्ड है, जैसे खीरा में लोन लगाइ कै तब काटते हैं, यातें दृष्टान्त ॥३६८॥

कवि-चन्द

(अत्युक्ति)

दो०—सीक बान पृथुराज की, तीनि बाँस गज चारि ।
लगत चोट चौहान की, उड़त तीस मन गारि ॥३६९॥
टीका—तीस मन माटी तीर लागे उड़ि जाती है, याते अत्युक्ति ॥३६९॥

फरजी = कल्पित, शतरंजका एक मोहरा । साह = राजा । तासीर = प्रभाव । प्यादे = पैदल सिपाही । उजीर = वजीर, मंत्री ॥३६५॥

निपुनई = चतुरता । टेरत = पुकारता है । बिटप = वृक्ष । कूर = क्रूर ॥३६६॥

बाँचते = बचते । धैना = धन्धा, काम । उरज = स्तन । उमेठे = मरोड़े या मसले ॥३६७॥

लोन = नमक । कड़वे = खोटे । सजाइ = सजा दण्ड ॥३६८॥

गारि = मिट्टी ॥३६९॥

(पिहित)

दो०—धर पलट्यौ पलटी धरा, पलट्यौ हाथ कमान ।
'चंद' कहै पृथुराज सों, दिन पलटै चौहान ॥४००॥

टीका—दिन पलट्यो है, हे पृथुराज वही कमान तुमारे कर में आई, शत्रु को मारो, यही छपी बात को जतायो ॥४००॥

(पर्यायोक्ति)

दो०—बारह बाँस बतीस गज, अंगुल चारि प्रमान ।
यतने धर पतसाह है, मति चूको चौहान ॥४०१॥

टीका—बारह बाँस बतीस गज चार अँगुल, इतने ऊँचाई पर है, निशाना के बहाने ते पातसाह इतने ऊँचे पर बैठा है मारो, मिसुकरि कार्य, यातें दूसर पर्य्यायोक्ति ॥४०१॥

(असत निदर्शना)

दो०—फेरि न जननी जनमिहै, फेरि न खैंचि कमान ।
सात बार तुम चूकियौ, अब न चूकु चौहान ॥४०२॥

टीका—सात बार चूक्यौ, अब न चूको, फेरि तुमारो जन्म न है है जो करिबे को होय सो करि लेहु ॥४०२॥

कवि—सुखदेव (स्वभावोक्ति)

दो०—खेलनवारिन संग अजौं, करत धूरि की गेह ।
वेई खेलति खेल पैं, रहत बचाए देह ॥४०३॥

टीका—खेल वही खेलत जो आगे खेलती रही पै धूरिते देह बचाये रहती है, क्यों की अंग मैल है जै है यातें ज्ञातजोवना ॥४०३॥

धर = पर्वत । धरा = पृथ्वी । कमान = धनुष ॥४००॥

पतसाह = बादशाह, राजा ॥४०१॥

खेलनवारिन = खेलनेवाली सखियोंके। अजौं = आज भी। धूरिकी गेह = मिट्टी का घरोंदा ॥४०३॥

(पर्य्यायोक्ति)

दो०—कत हँसती ह्याँ है कहाँ, हँसिबो को मजकूर ।
कान्ह बतावत गहि गरो, यों मार्‍यौ चाणूर ॥४०४॥

टीका—कान्ह को गरव करि कहती है कि यही भाँति चाणूर को मार्‍यो, यह मिसु करि कार्य साध्यौ, यातें बर्त्तमान गुप्ता ॥४०४॥

(स्वभावोक्ति)

दो०—तौ मैं तुम्हैं न राखिहौं, नेकु आपने ठौर ।
केलि कथा छिन छोड़ि जो, चलन चालि हौ और ॥४०५॥

टीका—केलि कहै रतिप्रसंग के कथा छोड़ि और चरचा करिहौ तौ अपने ठौर न राखिहौं, काम केलि ते तृप्ति नहीं है, याते कुलटा ॥४०५॥

(निषेधाभास)

दो०—भली भई पिय सों मिली, अब दुरावती काहि ।
बीस बिसे येह बीजुरी, बादर ही की आहि ॥४०६॥

टीका—यह बिजुरी बादरहीं की, यह लच्छित किये ते लक्षिता ॥४०६॥

(काव्यलिंग)

दो०—कियो होय जो मैं कहूँ, और तरुनि सों साथ ।
तो तेरे कुच ईश के, सीस धरत हौं हाथ ॥४०७॥

टीका—तेरे कुचईश के शीस पै हाथ धरि कहत हौं । मीठे बचन ते सठ, ईश उपमान, कुच के कसम के समर्त्थन काव्यलिंग ॥४०७॥

(उल्लास)

दो०—पिय बिछुरे के पीर मैं, पीछे जाने जाइ
घरी द्वैक लौं मूरछा, लीन्ही मोहि जिआइ ॥४०८॥

टीका—मूरछा लियो जियाइ, मूरछा दोष ते जियन गुण उल्लास ॥४०८॥

कत = क्यों । मजकूर = विवश । कान्ह = कृष्ण । गहिगरो = गला पकड़कर । चाणूर = एक दैत्य (जिसे कृष्णने बचपनमें मारा था) ॥४०४॥

नेकु = थोड़ा भी । ठौर = जगह ॥४०५॥

दुरावती = छिपाती । बीसबिसे = पूर्णरूप से ॥४०६॥

कुचईश = स्तनरूप शिव । सीस = मस्तक ॥४०७॥

कवि—बिहारीलाल (विशेषोक्ति)

दो०—चितवत जितवत हित हिए, किए तिरीछे नैन।
भीजे तन दोऊ कँपै, केहूँ जप निबरै न ॥४०६॥

टीका—चितवत है हित हिए करि तिरीछे नैन कहै बंक, दोऊ काँपते, जप कहै जपत्र नहीं पूर करते, पर अवलोकिबे को ॥४०६॥

(पर्यायोक्ति)

दो०—मुँहु धोवति एड़ी घँसति, हँसति अनँगवति तीर।
धसति न इन्दीवर नयनि, कालिंदी की नीर ॥४१०॥

टीका—मुँहु धोवती है, एडी घँसती, हँसती, अनँगवति कहै अनंगमई, तीर कहै तट पर यह भाव करि रही, पै नीर में पाँय नहीं धरती यातें पर्यायोक्ति ॥४१०॥

(पूर्णोपमा)

दो०—दीठि बरत बाँधी अटनि, चढ़ि आवत न डेरात।
इत उत ते चित दुहुनके, नट लौं आवत जात ॥४११॥

टीका—दीठि उपमेय, बरत नाम रसरा उपमान, अपने अपने अटा पर से दोऊ देखि रहे हैं, यह नट लों चित दुहुन के आवत जात हैं, याते पूर्णोपमा ॥४११॥

(संभावना)

दो०—तूँ मत माने मुकुत ई, किए कपटवत कोटि।
जो गुनहीं तौ राखिए, आँखिन माँह अगोटि ॥४१२॥

टीका—जो गुनही तौ आँखि में अगोटि कहै छपाइ राखौ, यातें सम्भावना ॥४१२॥

चितवत = देखते हैं। जितवत = जीतनेके लिये। निबरै न = समाप्त नहीं होता ॥४०६॥

अनँगवति = कामिनी। कालिन्दी = यमुना ॥४१०॥

दीठि = दृष्टि। बरत = जलती हुई। अटनि = अटारियोंमें। इत उत ते = इधर उधर से ॥४११॥

मुकुत = मुक्त, निरपराध। कपटवत = छलकी बातें। गुनही = अपराधी। अगोटि = रोककर ॥४१२॥

(प्रहर्षण-प्रथम)

दो०—खिंचे मान अपराध तें, चलिगे बढ़े अचैन ।
जुरत दीठि तजि रिसिखिसी, हँसे दुहुन के नैन ॥४१३॥

टीका—मान ते नायिका को मन खिंचे है, आपने अपराध ते नायक को मन खींचे है, तौ मिलाप कहा होय । जुरत दीठि कहै मिलत है नेत्र, दोनों के रिसि त्यागि, हँसे दुहूँ के चित्त, अपनी अपनी रीति बूझि जतन बिन मिले, याते प्रहर्षण ।।४१३।।

(काव्यलिंग)

दो०—ढीठ परोसिनि ईठि ह्वै, कहै जु गहै सयान ।
सबै सँदेसो कहि कह्यौ, मुसुकाहट में मान ।।४१४॥

टीका—जाहि नायिका ते नायक हसत रहो, ताहि देखि निज प्रिय मान कियो, वही नायिका जासों नायक हँसि रहो सो मनावन आई, कैसी वह ढीठ परोसिनि सब संदेश नायिका को कह कर कह्यौ की यतने मुसुकानि पर मान कियो, यातें काव्यलिंग ।।४१४।।

(प्रहर्षण)

दो०—अरी खरी सट पट परी, बिधु आधे मग हेरि ।
संग लगे मधुपन लई, भागन गली अँधेरि ।।४१५।।

टीका—आधे मग में बिधु कहै चन्द्रमा देखिपरो तौ नायक के पास कौन भाँति ते जाय । प्रकाश अंग सुबास ते भौंर संग लगे, गली अंधेर ह्वै गई भागन ते, याते प्रहर्षण ।।४१५।।

(पूर्णोपमा)

दो०—बिरह बिथा जल परस बिनु, बसियत मो जिय ताल ।
कछु जानत जलथंभ बिधि, दुरजोधन लौं लाल ।।४१६।।

जुरत = जुड़ते हैं । दीठि = दृष्टि । रिसिखिसी = क्रोध और खीझ ॥४१३॥

ढीठ = धृष्ट । ईठि = प्रेमयुक्त ॥४१४॥

खरी = अत्यन्त । सटपट परी = घबराहट हो गयी । बिधु = चन्द्रमा । मधुपन = भौंरों को । भागन = भाग्य से ।।४१५।।

परस = स्पर्श । बसियत = रहा जाता है । जलथंभ = जलस्तम्भन । दुरजोधन = ज्येष्ठ कौरव । लाल = नायक ॥४१६॥

टीका—बिरह बिथा को जो जल, सो हे लाल तुम्हरे अंग में नहीं छुइ जात है, क्योंकी मेरे जिय ताल में तुम रातौं दिन बसते हौ, कछु जलथंभन की विधि जानत हौ, दुरजोधन जो जानते रहे। उपमान दुरजोधन, लौं वाचक, विधि तुम उपमेय, नहि लगै धर्म ते पूर्णोपमा ॥४१६॥

(दीपक)

दो०—बालम बारी सौति की, सुनि पर नारि बिहार।
भो रस अनरस रंगरली, रीझि खीझि यक बार ॥४१७॥

टीका—बालम कहै नायक की बारी कहै बोसरी, परनारी के साथ बिहार को सुन्यौ, भो रस अनरस रस अनरस दूनौं के रंग में रंगी रीझि खीझि येक ही बार, याते दीपक ॥४१७॥

(पूर्णोपमा)

दो०—हरि छबि जल जबतें परे, तबतें छिन बिछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तरत, रहत घरी लौं नैन ॥४१८॥

टीका—छबि के जल उपमान-उपमेय, भरत-ढरत धर्म, लौं वाचक, घरी उपमान, नैन उपमेय, ते उपमा ॥४१८॥

(अधिक)

दो०—बिधि बिधि कै निकरै टरै, नहीं परै हूँ पान।
चितै कितै ते लै धरयो, इतो इतै तन मान ॥४१९॥

टीका—बिधि कहै उपाय किये ते निकर जाय है। चितै कहै ताकि कितै कहै कहाँ ते धरो इतने प्रान तन पै मान ॥४१९॥

(विषम)

दो०—साजे मोहन मोह को, मो हिय करत कुचैन।
कहा करों उलटे परे, टोने लोने नैन ॥४२०॥

बालमबारी = स्वकीया नायिका। अनरस = (दे० टि० पृ०······)। रीझि = प्रसन्नता। खीझ = क्रोध ॥४१७॥

रहटघरी = कुएँ पर का घड़ा ॥४१८॥

बिधि-बिधि = विविध उपाय। पान = पैरांसें। चितै = खोजकर। कितै ते = कहाँ से ॥४१९॥

साजे = अलंकृत किये। कुचैन = व्याकुलता। टोने = जादू भरे। लोने = सुन्दर ॥४२०॥

टीका—मोहन के मोहिबे को साजे साज सों, मेरे हिये में कुचैन कहे दुःख भयो, काह उलटो भयो मैंही मोहि गई, याते विषम अलंकार ॥४२०॥

(असंगति)

दो०—दृग अरुझत टूटत कुटुँब, जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥४२१॥

टीका—द्रिग अरुझत टूटत कुटुम्ब, जो अरुझै वुही टुटिबो चाहिए, कारण ते कार्य भिन्न, ताते असंगति ॥४२१॥

(विशेषोक्ति)

दो०—नेकु न झुरसी बिरह झर, नेहलता कुँभिलात।
नित नित होत हरी हरी, खरी झालरति जात ॥४२२॥

टीका—झुरसी विरह झरते नेहलता कुँभिलात नेकु न कहै रंचहूँ नाहीं, यातें विशेषोक्ति ॥४२२॥

(लेश)

दो०—मानो बिधि तन अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोंछन को कियो, भूषन पायनदाज ॥४२३॥

टीका—यह नायिका के अंग में भूषन नहीं होय, यह ब्रह्मा पायनदाज बनावा जो फरस पर पाँव पोंछने के हेतु राखै हैं सो है, क्यों दृग पग के मैल भूषन पर परै देह में न लगै याते बस्तूत्प्रेच्छा ॥४२३॥

(अत्युक्ति)

दो०—मैं लै दयौ लुलयौ, कर, छुअत छनक गो नीर।
लाल तिहारे अरगजा, उर ह्वै लगो अबीर ॥४२४॥

टीका—हे लाल तुम्हारे अरगजा मैं नायिका के कर में दये ते सही नीर जरि गयो, अबीर उधी सास ते उड़ि गयो ऐसे ताप तन में है, याते अत्युक्ति ॥४२४॥

झुरसी = झुलसी। झर = ज्वाला, लपट। नेहलता = स्नेहरूप लता। कुँभिलात = मुरझाती है। झालरति = फैलती जाती है ॥४२२॥

अच्छ = सुन्दर। पायन्दाज = पैर पोछने का पायदान ॥४२३॥

छनक = छिनमें। अरगजा = चन्दन, अंगलेप ॥४२४॥

(रूपक)

दो०—कालबूत दूती बिना, जुरै न आन उपाउ।
फिरि वाके टारे बनै, पाके प्रेम लदाउ ॥४२५॥

टीका—कालबूत नाम जो पक्का मकान जा पर लादा जाता है, ताको रंग चाभी कहते हैं फिरि नव मकान बनि जाइ है तब वह साँचा निकासि डारते हैं। कालबूत दूती रूपक ॥४२५॥

(दृष्टांत)

दो०—पिय मन रुचि होबो कठिन, तन रुचि होइ सिंगार।
लाख करौ आँखि न बढ़ै, बढ़ै बढ़ाये बार ॥४२६॥

टीका—पिय मन की रुचि होनो कठिन है और सिंगार तौ तन रुचि ते है, आँखि नहीं बढ़ती बढ़ाये ते बार बढ़ै है, याते नायक को मिलै ॥४२६॥

दो०—पति-रितु ऐगुन-गुन बढ़त, मान माँह को शीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदुल, तरुनी मन नवनीत ॥४२७॥

टीका—पति रितु, औगुन गुण, पति है रितु, पति कै ऐगुन सोई है रितु कै गुन, निज गुन ते बढ़त सीत, पति ऐगुन ते बढ़त मान, याते रूपक ॥४२७॥

(लोकोक्ति)

दो०—वाही दिनते नहि मिटो, मान कलह को मूल।
भले पधारे पाहुने, ह्वै गुडहर को फूल ॥४२८॥

टीका—भले पधारे कहै भले पाहुने आए, वाही दिन ते मान न मिट्यौ गुडहर के फूल ह्वै कै, यह लोक उक्ति है की जहाँ गुडहर कै फूल रहै तेहि घर कलह होय ॥४२८॥

दो०—गहिली गरब न कीजिए, समै सुहागहि पाइ।
जिय की जीवनि जेठ सो, माँह न छाँह सुहाइ ॥४२९॥

टीका—गहिली कहै जाहिर गर्व न करो, समय सोहाग कहै पति पाइ को जिस की जीवनि है जेठ के महीने की छाँह को सो माघ के मास में नहीं प्यार लागै है ॥४२९॥

कालबूत = ढाँचा (जो छत वगैरह की जुड़ाई मजबूत होने तक काम में आता है) पाके = परिपक्व या प्रौढ़ होने पर। लदाउ = लदाव, बोझ ॥४२५॥
ऐगुन = अवगुन। मान = गर्व। माँह = माघ। नवनीत = मक्खन ॥४२७॥
गुडहर = अड़हुल ॥४२८॥ गहिली = अत्यन्त, गहिरा ॥४२९॥

(अत्युक्ति)

दो०—सीरे जतन न शिशिर निशि, सहि बिरहिनि तनताप।
बसिबे को ग्रीसम दिवस, परै परोसिनि पाप ॥४३०॥

टीका—सीरे कहै शीतल जतन ते शिशिर निशिमें बिरहिनि ताप को सही अब बसिबे कहै रहिबे को ग्रीषम के दिवस मैं परोसिन पर पाप कहै दुष्य ह्वै है ॥४३०॥

(व्याघात)

दो०—पावक झर ते बिरह झर, दाहक दुसह विशेखि।
दहै देह वाके परस, याहि द्रिगन ही देखि ॥४३१॥

टीका—पावक झरते बिरह को झर विषम है, देह दहत है पावक छुये ते, यह द्रिगन के देखतै दाह होत ॥४३१॥

(अर्थान्तरन्यास)

दो०—वोछे बड़े न ह्वै सकै, लगि सतरोहे बैन।
दीरघ होइ न नेकहूँ, फारि निहारे नैन ॥४३२॥

टीका—वोछे कहै छोट बड़े नहीं ह्वै सकते हैं, यह सामान्य दीरघ कहै बड़े नहीं होते हैं, जो नैन को फारि निहारिए यह विशेष ते अर्थान्तर ॥४३२॥

(मालादीपक)

दो०—सम्पति केश दुदेश नर, नवल दुहुन यक बानि।
बिभव सतर कुच नीच नर, नरम बिभव की हानि ॥४३३॥

टीका—सम्पति केश सुन्दर देश नर नवत विभव पाइ सतर कहै डेढ़ कुच नीच नर नरम कब होत जब बिभव कहै धन की हानि ह्वै जाइ है, अवर्ण्य वर्ण्य ते दीपक ॥४३३॥

सीरे = ठंढे। बसिबे = रहने के लिये ॥४३०॥ झर = लपट, लौ ॥४३१॥ वोछे = ओछे, छिछोर, सतरोहे ॥४३२॥

(श्लेष)

दो०—दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निरगुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल ॥४३४॥

टीका—पतंगपच्छे–चंग कहै पतंग दूरि भजत कहै उड़त, प्रभु कहै जे उडावत है, गुण बिस्तारन काल गुण कहै डोरी, बिस्तारन कहै बढाइबे को समय, प्रगटत निरगुन निकट आवत है निकट निरगुन कहै जब डोरी खींचते ही ऐसो चंग है। भूपालपच्छे–जे गुण आपन बिस्तार करत, की हमें बड़े गुणी, तासों प्रभु जो परमेश्वर सों पीठि दै दुरि जात है, प्रगटत निरगुन निकट प्रगट होत है निकट जब निरगुन ह्वै जात कि हम कुछ नहिं जानै है ऐसे भुव जो पृथ्वी ताको पालनहार परमेश्वर ॥४३४॥

कवि—पद्माकर (अतिशयोक्ति)

दो०—कछु गज गति की आहटनि, छिन छिन छीजत सेर।
बिधु बिकास बिकसित कमल, कछू दिनन के फेर ॥४३५॥

टीका—मुग्धा नायिका के कछु गज गति आवन लगी ताहि देखि सेर कहै सिंह, कटि खीन, बिधु कहै मुख प्रकाश, कमल कहै नेत्र, बिकास यातें अतिशयोक्ति ॥४३५॥

(दृष्टांत)

दो०—तिय तन लाज मनोज की, अब यौं दसा देखाति।
ज्यौं हेमंत रितु में लखो, घटत बढ़त दिन राति ॥४३६॥

टीका—लाज मनोज ते मध्या, ज्यौं हेमरितु घटत बढ़त है राति दिन।४३६।

(पूर्णोपमा)

दो०—करति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अवरेखि।
बिमुद कुमुद लौ ह्वै रही, चंद मंद दुति देखि ॥४३७॥

टीका—बिमुद कहै बिना मुद कुमुद लोके रही चंद मंद देखि, याते प्रौढा रतिप्रीता ॥४३७॥

गुन बिस्तारनकाल = गुणों का विस्तार करते, तागा बढ़ाते समय। चंग = पतंग, गुड्डी ॥४३४॥

आहटनि = पैर की ध्वनि। छीजत = क्षीण होता है। सेर = सिंह ॥४३५॥

कोककलनि = काम अथवा चन्द्रमा की कलाओं से अवरेखि = खींचकर। बिमुद = अविकसित ॥४३७॥

(लुप्तोपमा)

दो०—निरखि नयन मृग मीन सें, उठी सबै मिलि भाषि ।
पर घर जाइ गँवाइ रिसि, हौं आई रस राषि ।।४३८।।

टीका—नयन मृग मीन से, नेत्र उपमेय, मृग उपमान, से बाचक ते लुप्तोपमा और यह कहते ही रिस भयो की मेरे नेत्रको ऐसो कहौ, याते रूप-गर्विता ।।४३८।।

(असंबंधातिशयोक्ति)

दो०—बरसत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि ।
पथिक तऊ तव गेह तें, उड़त धँधूरन धूरि ।।४३९।।

टीका—पथिक तिहारे भौन ते धूरि उड़त आगिनि की, ऐसे वर्षा के समय अजोग जोग असंबंधातिशयोक्ति ।।४३९।।

दो०—घन घमण्ड पावस निसा, सरवर लग्यौ सुखान ।
निरखि प्रान पति जानि गो, तज्यौ मानिनी मान ।।४४०।।

टीका—प्रान पति जान्यौ की मानिनि ने मान को त्यागौ, जब कलह करी तब तौ कुछ बियोग नहीं रहो, जब नायक गयो, पछितान लागी, बिरहागि ते मंदिर के सरवर सुखान लागे, यातें कलहांतरिता ।।४४०।।

(उन्मीलित)

दो०—जुबति जुन्हाई सो न कछु, अवर भेद अवरेखि ।
तिय आगम पिय जानिगो, चटक चाँदनी पेखि ।।४४१।।

टीका—जुन्हाई में मिली भेद न रहो, पै नायक चटकीली चाँदनी देखि जान्यौ की नायिका है ।।४४१।।

(सूक्ष्म)

दो०—अमल अमोलि कलाल मय, यहि बिधि भूषन भार ।
हरखि हिये पर तिय धर्‌यौ, सरुष सीप को हार ।।४४२।।

टीका—तिय धर्‌यौ सुरुष सीप को हार अर्थात् प्रातःकाल अरुणोदय है है तब मिलि है ।।४४२।।

अछेह = निरन्तर । धँधूरन = धू-धू करती हुई ।।४३९।। पावस = वर्षा ४४०।।
जुन्हाई = जून, चाँदनी । अवर = दूसरा । अवरेखि = समझ पड़ता ।।४४१।।
अमल = स्वच्छ । अमोलि = बहुमूल्य । सरुष = सक्रोध ।।४४२।।

कवि—पखाने (लोकोक्ति)

चौ०—जो पति रस सो ठयौ न बाम। कहा सुकी है उपपति काम॥
कहै 'पखानो' जग सुख दाइ। ओसन चाटे प्यास न जाइ॥४४३॥

टीका—ओसन के चाटे प्यास नहीं बुझाइ अर्थात् एक पुरुष से भोग किये ॥४४३॥

सखी सुनी उपपति रसपागी। सुकियन दोस लगावन लागी॥
लोक 'पखानो' चित नहि धरै। यक मछरी जल गंदा करै॥४४४॥

टीका—सुकिया, परकिया की बात सुनि कही एक मछरी सारे ताल के जल परे पर गंदा करती है तैसे कुल के धर्म परपुरुष देखते नसाय जाय है ॥४४४॥

(मुग्धा नायिका)

दो०—सुंदरताई अकह तन, बतिया सुख सरसात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥४४५॥

टीका—होनहार बृच्छ के पात चीकने होय है तैसे मुग्धा की तरुनाई ॥४४५॥

(मध्या)

चौ०—लाज काम दोऊ दुख दाई। चलौ कौन के कहे समाई॥
कहै 'पखानो' सुनु नव तूँ घर। भई मोहि गति साँप छछूँदर ४४६॥

टीका—साँप छछून्दर की गति लाज काम ते मध्या ॥४४६॥

(प्रौढ़ा आनंदात्मसम्मोहा)

चौ०—रसिक कवन यह केलि अदेह। जामैं सुधि बिसराई देह॥
यह तौ रस है कहत सयानै। काया राखे धर्म बखानै॥४४७॥

टीका—रस में मोही केलि समय तिस्से देह की सुधि न रही ॥४४७॥

(परकीया)

देखि घटा तम सुन्दर नारि। करी केलि दुरि पिय सुख सारि॥
सखि लखि कहो 'पखानो' अपनो। निशि कारी परसैआ अपनो४४८

टीका—निसि कारी परसैआ अपनो, अर्थ अंधेरी राति औ आपुहि ते मित्र मिलै, याते परकीया ॥४४८॥

ठयौ = समझा। ओसन = ओस के ॥४४३॥
सुकियन = स्वकीया नायिकाओंको ॥४४४॥
अकह = अकथनीय। बिरवान = वृक्ष ॥४४५॥

दो०—फेरि मिलो नहिं देहि दुख, चहो जु नंदकुमार ।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥४४६॥

टीका—हे नंदकुमार तुम्हैं हम मिलैं, फेरि हमको दुःख न देहु अर्थ अन्य तीर न जाहु, जैसे काठ की हाँडी फेरि काम लायक नाहीं येक ही बार मैं जरि जाय तैसे हमारो कुल को धर्म एक ही मिलन मैं नसि जैहै ॥४४६॥

चौ०—सुरति करी पिय परबस काम । अब बूझत रसिया को नाम ॥
लोक उक्ति मन में नहि सूझै । पानी पिये जाति का बूझै ॥४५०॥

टीका—पानी पी कै जाति का बूझै, रति करि कै पीछे नाम ॥४५०॥

दो०—छाड़ सुपति पति हित तिया, जानत है जेनिद्धँ ।
घर को जोगी जोगड़ा, आन गाँव को सिद्ध ॥४५१॥

टीका—घर को जोगी कुछ काम को नहीं याते परकीया, या घर कै पति कुछ रसिक नाहीं ॥४५१॥

(वागविदग्धा)

दो०—कहै परोसिनि सों तिया, निरखि सखी सुख दैन ।
चारि दिना की चाँदनी, फिरि अँधियारी रैन ॥४५२॥

टीका—चारि दिन की चाँदनी है फेर अंधेर पक्ष ऐहै तब मिलैगो ॥४५२॥

(अनुशयाना)

गई न बदि संकेत को, बिलखै व्याकुल बाल ।
औसर चूकी डोमिनी, गावै ताल बेताल ॥४५३॥

टीका—औसर चूकी नायक गयो संकेत, आपु न गई, यही औसर चूक है ॥४५३॥

(धीरा)

दो०—लग्यौ डंक मुख जाइए, जहाँ कुटिल अलि जान ।
ज्यौं मधि काजर कोठरी, लागै रेख निदान ॥४५४॥

टीका—जैसे काजर के कोठरी मैं गये रेख लगिहै । सह भौंरन को काटा होय लग्यौ है, याते धीरा ॥४५४॥

चौ०—लाल बाल सजि साज सिंगार । चलो चहत ढिग तिय पर वार ॥
कहो कहाँ उ 'पखानो' हल्ली । पंच कहै बिल्ली तौ बिल्ली ४५५॥

टीका—पंच कहै, जो नायक तुम कहते हौ वही मति है ॥४५५॥

पिया बिदेस संदेस न पाऊँ। सजि सिंगार हौं काहि देखाऊँ॥
सुनो 'पखानो' नहिं बिधि चाहा। नाँगी न्हाइ निचोरै काहा ४५६

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रन्थे एक-अलंकारवर्णनं
नाम एकादशः प्रकाशः ॥११॥

टीका—संदेस बिदेस ते नहीं आयौ सिंगार किनको देखावों, जैसे नङ्गी नहाय तौ क्या निचोरै ॥४५६॥

इति श्री दिग्विजयभूषणनामग्रन्थे टीकायाम् एकअलंकारवर्णनं नाम
एकादशः प्रकाशः ॥११॥

द्वादशः प्रकाशः

चित्रालंकार-वर्णन[1]

(प्रश्नोत्तर[2])

दो०—प्रश्न शब्द में अर्थ जो, उत्तर निकसत जाहि।
प्रश्नोत्तर यक भाँति यह, कवि जन बरनै ताहि ॥१॥

टीका—प्रश्न शब्द के अर्थ में जो बात होय वही उत्तर है ॥१॥

छप्पै—केसहि बंधन बेस लहै आभा अधिकारी।
कामहि मोहन हार रहत जेहि बस नरनारी ॥
गिरि पै केकी गिरा सुभग बरषा रितु सोहै।
कालखाहि जग जोर हानि हित की करि को है ॥

१—जिस कविता में कवि की प्रतिभा से उत्पन्न कुछ ऐसी विचित्रताएँ हों जिन्हें समझने में साधारण बुद्धि काम नहीं देती, वहाँ चित्रालङ्कार होता है। इसके भेद कोई निश्चित नहीं होते, कवि की अपनी प्रतिभासम्पन्नता पर निर्भर करते हैं। खड्गबन्ध आदि भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। पर्वतीय श्रीविश्वेश्वर पाण्डेय का 'कवीन्द्रकर्णाभरण' और धर्मदास का 'विदग्ध-मुखमण्डन' संस्कृत में ऐसे विषय की उत्कृष्ट रचनाओं से भरे हैं। प्रकृत ग्रन्थ-कार ने जो भेद लिखे हैं उनका विवेचन आगे किया जाता है।

२—प्रश्नोत्तर—प्रश्नवाचक वाक्य के शब्दों में ही जहाँ उस प्रश्न का उत्तर निकल आये अथवा सभङ्ग-श्लेष से प्रश्नवाचक शब्द के अर्थ में ही उत्तर हो, वह प्रश्नोत्तर चित्र कहलाता है।

के सहि = कौन सहकर (प्र०), केसहि = केश ही (उ०), कामहि = कौन पृथ्वी को (प्र०), कामहि = कामदेव ही (उ०), वर्षाऋतु में केकी = किसकी, गिरा = वाणी, अच्छी लगती है (प्र०), केकी = मयूर (उ०), का लखाहि = कौन देख पड़ता है जगत्में जोरदार बली (प्र०)। काल = यमराज या मृत्यु (उ०) हितकी हानि को करि है—(प्र०) कोहै-क्रोध ही (उ०) रति भवन में कला को कहै = कौन कही जाती है (प्र०), कोक = कामकला (उ०), शूर होता हुआ भी मैदान में युद्ध नहीं करता, ऐसा का दरसै = कौन दीखता है? (प्र०) कादर = डरपोक (उ०) ॥२॥

कोकहै कला रति भौन में कौन है नारि नवोढहर।
कहि 'गोकुल' कादरसै समर, करत नहीं रन सूर नर ॥२॥

टीका—के बंधन लहि कै शोभा पावत, केशहि कहै बार, कामहिमोहन कहै के है महि कहै पृथ्वी में मोहनहार, कामहि अर्थ काम कहै मनोज यही भाँति सब पदन में है ॥२॥

कवि—दास

सवैया—कौन परावन देव सतावन को लहै भार धरे धरनीको।
कोदसही में सुन्यौ जनि ठौरनि कीन्हो दसौं दिगपालन टीको॥
जानत आपक बूंद समुद्र मैं कामैं सरूप करी हिए नीको।
कादरबारन सोहत सूरन, कोपजरावत पुन्य तपीको ॥३॥

टीका—कहै कौन भगावत है देवतन को, कौन परावन कौनप कहै राक्षस रावन देवन को सतावै है, कोदश हीमें कोद सही को दस है कोद कहै साँप दसों दिशन मे हैं, जानत आपक जानत हौ आप कहै जल है समुद्र में कादरबारन का कहै काह दरबारन कहै दरबार में सोहन सूर न, कादर कहै भगें आ दरबारन में नहीं सो है। बारन कहै हाथी सोहै, कोपजरावत कोप जरावत पुन्य तपी को कोप कहै रिसि जरावत पुन्यको ॥३॥

कवि—गोविन्द

सवैया—कोपकरै शसि को लखि राहु सुकोकिल बोलत है मृदु बानी।
कोकहिए दुखिया नित जामिनि, कोकलहै सु महा रस जानी॥
कामधुरो सखिया बृज में बृज चंद 'गोविंद' कहै मन मानी।
फागुन में तिय आपनी लाज रखै घर कोनमें बैठि सयानी ॥४॥

कौन ? परावन = भगानेवाला, कौनप = राक्षस, रावन। को लहै = कौन शोभा पाता है ? कोल = वराहावतार। को दसहींमें = कौन दशोंमें ? कोद = सर्प। जानत आपकबृन्द = जानते हैं जल समूह। जा नत आपक बृन्द = नीचे की ओर बहता हुआ जल समूह। कामैं = किसमें ? कामैं = कामदेव ही। कादरबारन सोहत सूरन (इसमें दो प्रश्न और उनके पृथक्-पृथक् उत्तर हैं १—दरबार सूरन का न सोहत ?) = दरबारमें शूरोंको कौन अच्छा नहीं लगता ?, कादर = डरपोक २—दरबारन सूरन का सोहत ? = दरबारोंमें शूरोंको कौन अच्छा लगता है ?, बारन = हाथी ॥३॥

टीका—को पकरै कहै को गहत ससि को, कोप करै कहै रिसि करै है राहु। को किल बोलत को कहै किल अच्छा बोलत, कोकिल कहै पिक। का मधुरी काह है मधुर बृज मैं, कामधुरो काम कै धुरो कहै धूरा बृज मैं गोविंद है ॥४॥

कवि—केशवदास

दो०—कोदण्ड ग्राही सुभट, कोकुमार रतिवंत।
कोकहिए शशि ते दुखी, कोमल मनके संत ॥५॥

टीका—कोदण्ड कहै धनु गहत है सुभट। को कुमार रति कोक शास्त्र मार काम की कहि दुःखित कोक चक्रवाक ॥५॥

दो०—कालिह काहि पूजै अली, कोकिल कंठहि नीक।
को कहिए कामी सदा, काली काहै लीक ॥६॥

टीका—कालिह काहि पूजो कालिका देवी जी को। कोकिल कंठ कहै कोकिला को कहि कामी सदा कोक हिए कहै कोकशास्त्र जाके हिय में बसत ॥६॥

(एकोनेकोत्तर)

दो०—बहुत शब्द के प्रश्न को, एक जो उत्तर धारि।
एकोनेकोत्तर वही, कबि जन कही बिचारि ॥७॥

टीका—बहुत शब्दन के एक उत्तर ताहि एकोनेकोत्तर कही ॥७॥

दंडक—[1]कौन के कुमार जो उजारि दसशीस बाग,
[2]कौन हेत प्रान त्यागे दसरथ ख्यात है।
[3]तन धन दे कै काहि राखत सयान लोग,
[4]कौन रोग भए काँपै पानि पाय गात है ॥

कोप करै = क्रोध करता है अथवा कौन पकड़ता है? राहु (उ०)। को किल = निश्चय ही कौन, कोकिल (उ०)। को कहिए = किसे कहा जाता है, जामिनि = रात्रिमें, कोक = चक्रवाक, अथवा कोकहिए = कोक-कामदेव है हिए = हृदयमें जिसके अर्थात् कामी पुरुष। को कल है = कौन कला है?, कोक = काम कला (उ०) अथवा महारस = श्रृङ्गारका ज्ञाता ही, सु = अच्छी प्रकार, कोक लहै = कामको प्राप्त करता है। कामधुरो = कौन मधुर है अथवा काम = कामदेवका धुरो = धूरा (अग्रसीमा) है। घरकोनमें = घरके कोनेमें अथवा फागुनमें को = कौन सयानी स्त्री अपनी लाज बचा पाती है? को नमे बैठि = जो अपने घरमें नमे बैठि = लुककर बैठी है ॥४॥

५-अहि के अहार काह ६-को है बैरी दीप ध्वार,
७-अनल के मित्र को है बड़ो दरसात है।
'गोकुल' अनेक बात पूछे है प्रवीन लोग,
पावन परम कहि दीजे येक 'बात' है ॥८॥

टीका—कौन पुत्र दश शिर आग उजारे, दशरथ प्रान कौन हेत त्यागे, धन तन दै कै का राखत सुजन, कौन रोग भए देह काँपत, साँप के का भोजन है, अगिनि के कौन मित्र है, येते प्रश्न, उत्तर एक बात है ॥८॥

कवि—दास

दो०—बरो जरो घोरो अरो, पान सरो क्यौं दार।
हितू फिर्‌यौ क्यौ द्वार तें, हुतो न फेरनहार ॥९॥

टीका—बरो जरिगो क्यों, घोड़ा अरो क्यौं, पान सरो क्यौं, हितू फिरो क्यों, ऐते प्रश्न को उत्तर एक, फेरनहार नहिं रहो ॥९॥

कारो कियो बिशेष कै, जावक हाँस सभाग।
काहे उड़िगो भौंर पर, पंडित कहैं पराग ॥१०॥

टीका—बिशेष जावक हास सभाग और उड़िगो, एते प्रश्न को उत्तर पराग ॥१०॥

कैसी नृप सेना भली, कैसी भली न नारि।
कैसी मग बिन बारि की, अतिरजवती बिचारि ॥११॥

टीका—नृपसैन कैसी भली, कैसी नारि नहीं भली, कैसी मग बिना पानी की, एते प्रश्न के उत्तर एक अतिरजवती ॥११॥

कवि—अज्ञात

दो०—बर बरषा माकंद खत, बनिता बचन प्रबाह।
ए बिन मोर न सोहहीं, कहैं कविन के नाह ॥१२॥

इस पद्यमें प्रश्न १, ५, ६, ७ का उत्तर—बात = वायु, प्र० २, ३ का बात = कथन, ४ का बात = वातरोग ॥८॥

बड़ा क्यों जला ? घोड़ा क्यों अड़ा ? पान क्यों सड़ा ? मित्र द्वारसे वापस क्यों गया ? इन ४ प्रश्नोंका एक उत्तर है—फेरने (लौटाने) वाला न था ॥९॥

नृपसेना-अतिरजवती = अधिक पराक्रम शालिनी, नारी—अधिक रक्तस्राव-वाली, मग—अत्यन्त धूलभरी ॥११॥

टीका—बर, बरषा, माकंद, खत, बनिता, बचन, प्रवाह एते प्रश्न के उत्तर एक मोर, माकंद नाम श्राम के बर नाम दुलहा को ॥१२॥

कवि—चतुर विहारी

दंडक—'चतुर बिहारी' पै मिलन आई बाला साथ,
माँगत है आज कछू हम पै देवाइए।
गोद लेहु[1], फूल देहु[2], नीकें पहिराय मोती[3],
[4]पानन की पातरी, हुताशन लै आइए[5]।
[6]ऊँचे से अवासकै झरोखे चढ़ि बैठिए जू,
[7]सेज स्याम चलिए सुरति पति ध्याइए।
ग्वालि समुझाइबे को उत्तर जो दीन्हे एक,
उकति बिशेष भाँति वारी नहीं पाइए ॥१३॥

टीका—बिहारी पै मिलन आई गोद लेहु फूल देहु पानन की पतरी हुतासन रति पति ध्यान एते प्रश्न को एक उत्तर, वारी नाहीं ॥१३॥

(सासनोत्तर)

दो०—त्रै प्रश्नन को जानि कै, यक यक उत्तर होय।
सासन उत्तर उक्ति है, कविजन बरनै सोय ॥१४॥

टीका—तीनि प्रश्न के जहाँ एक उत्तर होइ सोवन उत्तर है ॥१४॥

इन ७ में क्रमसे मोर पदके निम्न अर्थ हैं—

मौर (मुकुट), मयूर पक्षी; मञ्जरी, मोड़ (हाशिया), आत्मीय (पति), बदलाव ॥१२॥

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है 'वारी नहीं।' प्रश्नके अनुसार वारी शब्द के विभिन्न अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. बालिका, २. क्यारी (फुलवारी), ३. बाली (नथ, नाक का आभूषण जिसमें मोती गुँथे रहते हैं), ४. पत्तल बनानेवाली, ५. जलायी, ६. वारि (वरषा), ७. नायिका ॥१३॥

कवि—चित्र कलाधर

दंडक—हारत जुआरी काह[1] बाहन दिनेश को है[2],
मोहैं कब बाँसुरी[3] पै गोपी तजैं होस है।
काहि सो बजाज[4] नापै पट, को बँदूख[5] भरै,
ग्राह सो बचाये केहि[6] कृस्न करि रोस है॥
पूँछै पथ पथी[7] कहाँ कंज[8] मैं भ्रमत भौंर,
आखर अरथ[9] कौन करै मेदि दोस है।
काह नर नाह[10] नित चाह सो चहत चित,
'गोकुल' बिचारि कह्यौ बाजी गज कोस है॥१५॥

टीका—जुआरी का हारै बाजी कहै दाँव को, वाहन दिनेश के बाजी घोड़ा, गोपी काहें मोही जब बाँसुरी बाजती है, यह तीनि प्रश्न के एक बाजी उत्तर है, बजाज पट कासों नापै, बंदूख कासों भरी जाय है, ग्राह ते कृस्न काको बचाए तीनि प्रश्न उत्तर गज, पथिक काहू पूछै कंज मैं भौंर कौने थल भ्रमै, आखरके अर्थ कौन करै तीन प्रश्न के उत्तर कोश, बाजी गज कोश सब प्रश्न के उत्तर है॥१५॥

कवि—केशवदास

छप्पै—चौक चारु करु कूप ढारु घरि आर बाँधु घर।
मुक्त मोल करु खड्ग खोल सींचहुँ निचोलवर॥
हय कुदराउ दै सुरत दाउ गुन गाउ रंक को।
जानु भाव सुर धाम धाउ धन लाउ लंक को॥
यह कहत मधुकर साहि नृप रह्यौ सकल दीवान दबि।
तब उत्तर 'केशव दास' दिय पानी जानु कवि॥१६॥

१—प्र० १. २. ३. का उत्तर है बाजी, जिसका अर्थ क्रम से दाँव, घोड़े और बजना होता है। ४. ५. ६. का उत्तर गज है जो क्रम से गज (३६ इञ्च का परिमाण), बन्दूक में बारूद भरने का गज और गजराज (हाथी) का वाचक है। ७. ८. ९. का उत्तर कोश है जो २ मील, कमलमुकुल और शब्दों के पर्याय बतानेवाले ग्रन्थको सूचित करता है। १० वें प्रश्न का उत्तर पूरा बाजीगजकोस = घोड़े, हाथी और खजाना, है।

टीका—चौकपूर, कूप ढारु, घरिआर गांध तीनि के उत्तर घरीन, मोती को मोल करु, खड्ग खोलु, निचोय निचोल तीन के उत्तर पानीन, हय कहै घोड़ा कुदाउ, सुरत करि, गुननाउ रंक को तीनों को उत्तर जानन जानु भाव को सुर धामधाउ, घनलंक कर लाउ, कविन ॥१६॥

(कमलोत्प्रश्नोत्तर)

दो०—आदि बरन तजि क्रमहि ते, अंत बरन गहि एक ।
पद उत्तर करि लीजिए, कमलोत्तर[1] बिबेक ॥१७॥

टीका—आदि के अच्छर क्रम ते, त्यों अन्त को अच्छर एक में मिला कर प्रश्न के जबाब देय ॥१७॥

छप्पै—[2]काह भृत्य को कहै ? काह भोगत नर तन में ।
किहि बल फिरै तुरंग ? अन्न उपजै को बन में ॥
केहि बस सूर-सुतपी ? सूम मंगन लखि का कहि ?
पवन बाजि से बेग बड़ो का को जग में लहि ?
भ्रम भीर भूरि भय भूतभव भेद भाव मिटि रुचि कवन ।
कहि 'गोकुल' कलिमल दलत दुख जो जप राधारँवन मन ॥१८॥

टीका—भृत्य को काह कहै, तन मैं को भोगवै है, तुरंग केहि बल फिरै, अन्न कहा, वन पानी में, कहा बस सूर तपी तप करै, सूम मंगन लखि का कहै है, पवन ते बेग का को बड़ो है, सब प्रश्न के उत्तर जप राधा रँवनमन आदि में जकार अंत में नकार जन पन रान धान रन वन नन मन ॥१८॥

कवि—दास

छप्पै—[3]कह कपीस सुभ अङ्ग कहा उछलत बर बागन ?
कहा निशाचर भोग ? माह मैं दान कौन भन ? ।

१—इसमें अन्तिम एक वर्ण ज्यों का त्यों रहता है और आदि से क्रमशः एक एक वर्ण उसमें मिलाने से प्रश्न का उत्तर हो जाता है ॥१७॥

२—इन प्रश्नों का उत्तर क्रमशः—जन, पन = अवस्था (बचपन आदि) रान = जंघा, धान, रन = युद्ध, वन = जंगल, न न = नहीं-नहीं, मन = चित्त, राधा रँवन = श्रीकृष्ण ॥१८॥

३—इन प्रश्नों का उत्तर क्रमशः—गल = गला, नल = डंठल, पल = मांस, तिल, जल, नल = एक बानर, नील = बानर, नाल = डण्डी, मल = मैल, बल = बलदेव जी ॥१९॥

काह सिन्धु में भर्‌यौ ? सेतु किन कियो ? को दुत्तिय । ?
सरसिज किते सकंट ? कहा लखि घिना होत हिय ?
किहि 'दास' हलायुध हाथ धरि मार्‌यौ महा प्रलंब बल ।
क्यों रहत सुचित शाकत सदा गनपतिजननीनामबल ॥१६॥

टीका—कपीश सुभ अंग कौन, छवि कहा उछलत, निशाचर के भोजन काह, माघ में कौन दान, सिंधु मे काह भए, सेतु को कियो, हलायुध को धारन करै, प्रश्न के उत्तर गनपतिजननीनामबल । गल, नल, पल, तिल, जल, नल, नील, नाल, मल, बल ॥१६॥

कवि—केशव

[1]का नहिं सज्जन बोवत ? काह सुनि गोपी मोहित ? ।
काह दास को नाम ? कबित में कहियत को हित ॥ ?
को प्यारो जग माहिं ? काह छिति लागे आवत ।
को बासर को करत ? काह संसारहि भावत ? ॥
कहि काह देखि कायर कँपत ? आदि अंत काके शरन ? ।
सुनि उत्तर 'केशव दास' दिय सबै जगत शोभा धरन ॥२०॥

टीका—सज्जन का भकोतत, गोपी कासों मोहत, दास के काह नाम, कवितमें को हित, जग में का प्यार, काह छिति लागै आवत, दिन को को करत, संसार में को भावत, का को देखि कायर डरत, सब प्रश्न के उत्तर सबै जगत सोभा धरन, सन बैन जन गन तन सोन भान धन रन ॥२०॥

(शृंखलोत्तर)

दो०—प्रथमहि गत चलि जात है, अगत चलै पुनि न्यस्त ।
कहो शृंखलोत्तर वही, गत अरु अगत समस्त ॥२१॥

टीका—प्रथमहि गत चलै फेरि अगत वही शृङ्खलोत्तर कहावै ॥२१॥

१—इन प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः—सन = सनई, बैन = वीणा (वेणु), जन, गन = गण (मगण आदि मात्रा सूचक), तन = शरीर, शोन = रक्त, भान = (भानु), सूर्य, धन, रन ।

२—जिस प्रकार शृंखला (जंजीर) की एक कड़ी को दूसरी कड़ी में जोड़ने के लिये पहिले सीधे ले जाकर फिर उलटा मोड़ना पड़ता है उसी प्रकार प्रश्नों के अक्षरों की व्यस्त और समस्त गत-अगत द्वारा एक शृंखलासी जिसमें बन जाती है वही शृङ्खलोत्तर चित्रालङ्कार है । अर्थात् इसमें एक-एक अक्षर पहिले

कवि—गोकुलदास 'बृज'

सवैया—[1]बस कौल कहा ? सुख नारी कबै ?
शिव को अरि ? का पै लला नग आने ?
संग का करि शत्रु औ मित्रहु ते ?
'बृज' हाजिर बाचक काह भने ?
करि काह बड़े ? भुइ जोत बिना कस ?
भाव सहायक काहि गने ॥ ?
बिरही को सतावत ? नैन लगावत,
काह कहौ सर मैन हने ॥२२॥

टीका—बसकं जहाँ इत्यादि प्रश्न के उत्तर सक मैन हने जानिए, कौल कै बस कहा, सुख नारि कब है, शिव को अरि को, कापर लला कृस्न जी नग पर्वत धारे, सत्रु संग काकरी, यहि प्रश्न के उत्तर सर रमैं मैन नह हने। अगत मित्रते काह कीजै, हाजिर बाचक कौन है, बडो जनका करत है, भूमि जोते बिना कस होत, भाव सहायक कौन के है, यहि प्रश्न के उत्तर प्रथम उत्तर उलटि कर कह्यौ जैसे सर, मैन, हने, उलटि लिखो नेह, नमै, रस, मित्रते नेह, हाजिर वाचक, नेहन नमै, मैरस समस्त विरही को कौन सतावत है सर मैन हने नैन के लगाए काह होत है नेह कहै प्रीत उत्तर नेहन मै रस ॥२२॥

छप्पै—[2]कौन बरन रति समै बोलि बाला पिय मोहे ? ।
रामचंद्र दश कंठ समर किहि कारन जोहे ? ।

उत्तर का लेकर अगले अक्षर से जोड़ने से दूसरे प्रश्न का उत्तर बनता है—यह गत हुआ। इसी प्रकार उलटा अर्थात् अन्तिम अक्षर से करने पर अगत होगा। अलग-अलग पदों से व्यस्त और समग्र पद में समस्त कहलायेगा। अगले उदाहरण से स्पष्ट है।

१—इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः गत से (सीधे)—सर = तालाब, रमै = रमण करे, मैन = कामदेव, नह = नख, हने = मारे। अगत (उलटे)–नेह = प्रेम, ह न = हाँ या ना नमै = नम्र होते हैं, मैर = मैल (खादयुक्त), रस, (ये व्यस्त में उदाहरण हैं, अब समस्त में–) सर मैन हने = काम द्वारा मारे गये बाण, नेह में रस = प्रेम में रस की उपलब्धि, कौल = कमल॥२२॥

२—इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः—सी = सी-सी शब्द, सीता, तारा, राम, महि = पृथ्वी, हित = मित्र, सीतारामहित = सीताराम का शुभ-चिन्तक ॥२३॥

बाम बालि की कवन ? ताहि को कोपन मारे ? ।
अति गँभीर लहि पीठ कौन को अहिपति धारे ? ।
दुख सुख मैं शिक्षक परम हित ह्वै सहाय कहि कौन नित ।
को असरन कँह राखत शरन 'गोकुल' सीता राम हित ॥२३॥

टीका—कौन अच्छर रति समै तिय बोलै, रामचन्द्र औ रावन ते समर के हित, बालि की तिय को, बालि को को मारो, अहिपति काको पीठि पर धरे, सब प्रश्न के सीता राम हित । सी, सीता, तारा, राम, महि, हित ॥२३॥

कवि—दास

सवैया–[1]छबि भूषन को ? जन को हर को ?
सुर को घर कौन ? को सो भरती ?
किहि पाए गुमान बढ़ै ? किहि आए घटै ?
जग में थिर कौन दुती । ?
शुभ जन्म को 'दास' कहा कहिए ?
बृषभान की राधिका कौन हुती ?
घटिकानि सु आजु सु केती अली,
किहि पूजती हैं नगराजसुती ॥२४॥

टीका—भूषन कौन को बनै है, हर को जन को है, सुर का घर को, सुर कासो भरत है, किहि पाये गुमान, काह आये छीन, जग मै थिर काह, कौन दुति है, सुन्दर जन्म को काह कहै, बृषभान की राधिका को होंय । एते प्रश्नके उत्तर नगराजसुती में है—नग गन राज जरा गरा राग जस रुज सुती तीसु । दोनों अच्छर उलटि पलटि कर उत्तर है ॥२४॥

कवि—केशवदास

दंडक–कहै रस ? कैसे लई लंक ? काहे पीत पट,
होत ? 'केशौदास' कौन शोभिए सभा में जन ?
भोगन को भोगवत ? कौने गाए भागवत ?
जीतै को जतीन ? कौन है प्रनाम के बरन ?

१—इन प्रश्नों के उत्तर अक्षर उलट पुलट कर क्रम से इस प्रकार है—नग = रत्न, गन = गण, गरा = (कंठ) गला, राग = अलाप, राज = राज्य (सम्पत्ति, अधिकार), जरा = बृद्धावस्था, जसु = यश, सुज = सु (सुन्दर) + ज (जन्मवाला), सुती = पुत्री, नगराजसुती = पार्वती ॥२४॥

कौन करी सभा ? कौन जुवती अतीत जग ?
गावै कहा गुनी ? काहे भरे हैं भुजंग गन ?
काहे मोहे पशु ? कहाँ करै अति तपी तप ?
इंद्र जू बसत कहाँ ? नव रँग राइ मन ॥२५॥

टीका—केशव कवि, रस कै, रावन लंका केसे पाई, पीत पट क्यों इत्यादि पदन को उत्तर उलटि पलटि करि नव रंग राइ मन में है। अथ गत कै उत्तर नव वर गरा गइ इम मन। अगत जथा नम मइ राक्षस इरा राग रव गर वन ॥२५॥

(व्यस्तसमस्त उत्तर[1])

दो०—यक यक बरन बढाइए, आखर अंत समस्त।
यह प्रश्नोत्तर सुभग कहि, लै क्रम व्यस्त समस्त ॥२६॥

टीका—व्यस्त समस्त उत्तर क्रमते एक एक बरण आगे के लै कर प्रश्न उत्तर है ॥२६॥

छप्पै—[2]सुभ अच्छर है कवन ? बडे संग का भल ठाने। ?
दोइ बरन मिलि गये काह कवि लोग बखाने। ?
को बैरी रस बीर धीर मति कौन बिरागत। ?
त्रिपुरासुर जरि मर्यौ छिनक मैं काके लागत ॥ ?
दुख दारिद दीरघ दरद को दलनहार काके चरन ?
कहि 'गोकुल' बेद पुरान जग असरन लहि शंकर सरन ॥२७॥

टीका—सुभ अच्छर कौन है, बडे संग काह करि भला है, दो बरन मिले ते काह है, बीर रस को को बैरी है, त्रिपुरासुर का सों जर्यौ, सब प्रश्न के उत्तर संकर सरन शंशंक शंकर सरन ॥२७॥

इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—(गत से) नव = नौ, वर = वरदान में, रंग, गरा = सुन्दर कंठस्वर से युक्त, राइ = राजा, इम, मन। (अगत से) नम = नमस्कार, मइ = मय दैत्य, इरा = वारुणी, राग, गर = विष, रव = शब्द, वन = जंगल ॥२५॥

१—व्यस्त समस्त उत्तर में प्रथम प्रश्न के उत्तर में एक एक वर्ण (अक्षर) आगे का जोड़ने से क्रमशः अगले प्रश्नों के उत्तर होते हैं।

२—इन प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—शं = शुभ या सुख। शंक = शंका, जिज्ञासा। शंकर = संकर, मिश्रित। शंकरस = शङ्का (सञ्चारीभाव), शंकरसर = शिवजी का बाण। शंकर = शिव, सरन = शरण ॥२७॥

कवि—दास

सोरठा–[1]कौन बिकलपी बर्न ? कहा बिचारत गनक गन । ?
हरि ह्वै कै दुख हर्न काहि बचायो ग्रसत छन । ? ॥२८॥
कै वा प्रभु अबतार ?, को बारै राई लवन ? ।
कवन सिद्धि दातार ? 'दास' कह्यौ बारनबदन ॥२६॥

टीका—कौन बिकल्पी वर्ण, इत्यादि प्रश्न के उत्तर बारनवदन । वा, बार, बारन, बारनव, बारनबद, बारनबदन ॥२८॥

कवि—केशवदास

छप्पै—का सुभ अच्छर ? कौन जुबति जो धन बस कीन्हीं ? ।
बिजै जुद्धि संग्राम राम कौने कँह दीन्ही ? ॥
कंस राज जदु बंस बसत कैसे कै वै पुर ।
बट सो कहिए कहा नाम समुझौ अपने उर ॥
कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि सूक्षम बरनि
सुनि बेद पुरानन में कही सनकादिक शंकरतरुनि ॥३०॥

टीका—का शुभ अच्छर, को जो धन को वश कीन, बिजै कौन पाए इत्यादि प्रश्न के उत्तर शंकरतरुनि, शं शंक शंकर शंकरत शंकरतरु शंकर-तरुनि ॥३०॥

(अंतादिवर्ण प्रश्नोत्तर[2])

दो०—आदि अंत के बरन यक, क्रमते गहिबो त्याग ।
दुइ अच्छर लै उत्तरहि, देइ सो कबि बड़भाग ॥३१॥

टीका—अंतादि प्रश्नोत्तर में एक वर्ण आदि के अरु एक अंत के, दुइ वर्ण मिलाकर प्रश्न के उत्तर है ॥३१॥

१—बिकलपी = विकल्प (अथवा का) सूचक (वा), बार = दिन, बारन = गज, बारनव = नौबार, बारनवद = बद (बुराई) के बारन (निवारण) के लिये, बारनवदन = गणेश जी ॥२८, २६॥

शं = सुखका वाचक, शंक = (शंकु) कामुकी, वेश्या, शंकर = शिव, शंकरत = शंकायुक्त, शंकरतरु = वटवृक्ष, शंकरतरुनि = पार्वती ॥३०॥

२—अंतादिवर्ण प्रश्नोत्तर में क्रम से एक-एक अक्षर आदि और अंत का लेने से प्रश्न का उत्तर बनता है ।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

छप्पै—बीति[1] जात जो बात समय वह कौन कहावै ।
किहि बिनि बिहँग मलीन जाहि बिन उड़ब न आवै ॥
दैंत कौन के बंश नाम तेहि बिषद बखानौ ।
बितबल जाके हाथ पुरुष वह कौन प्रमानौ ॥
रन भए काह नर यस लहै, दान दया नय को करत ।
प्रति उत्तर 'गोकुल' यह दिये भूप दिगबिजै नीतिरत ॥३२॥

टीका—जो बात बीती वह समय कौन कहावै, बिहग काह बिन बिहीन, दैत्य कौन के वंश हैं, बित बल जाके हाथ वह कौन पुरुष है, रन में काह भए यस लहत, सब प्रश्न के उत्तर भूप दिग्विजयनीतिरत, भू अच्छर आदि में अंत में तकार दोनों, यही क्रमते मिलावै भूत पर दिति गनी बिजै ॥३२॥

छप्पै—लच्छिमी[2] किन की चेरि बखानत कवि कोबिद जन ।
काम अगिनि का करै बियोगी नर नारी तन ॥
ताल तान सुर ग्राम गुनी जन किन में गावत ।
बात गये पर उचित काह परबीन बतावत ।
नित भूप भलाई के लिये को सब दिन चितते चहत ।
प्रति उत्तर "गोकुल" नीति नव सदा राम संकर गहत ॥३३॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे चित्रालंकार-वर्णनं
नाम द्वादशः प्रकाशः ॥

टीका—लच्छिमी कौन की चेरी, काम अगिनि काह करै, ताल सुर कामैं गावा जात, बात गए पर काह होत, एते प्रश्न के उत्तर सदा रामसंकर गहत आदि में सकार अंत में तकार यही भाँति दोऊ ओर के अच्छर मिला कर उत्तर है सत दाह राग मर संकर ॥३३॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां चित्रालंकारवर्णनं नाम
द्वादशः प्रकाशः ॥१२॥

१—इन प्रश्नों के उत्तर क्रम से इस प्रकार हैं—भूत = बीता हुआ काल, पर = पंख, दिति = दैत्यों की माता, बिजै = विजय, भूपदिग्विजै नीतिरत ॥३२॥

२—इन प्रश्नों के उत्तर क्रम से—सत = सत्वगुणप्रधान विष्णु, दाह = जलन, राग = आलाप, मर = मृत्यु । संकर = शिव ॥३३॥

त्रयोदशः प्रकाशः

(अनुप्रास[1] लक्षण)

दो०—स्वर बिन समता बर्ण की, अनुप्रास लंकार ।
कोमल कानन की लगै, चित्र कवित्त बिचार ॥१॥

टीका—स्वरबिन०–जहाँ स्वर बिना बर्ण की समताई होय तहाँ अनुप्रास, ॥१॥

(अनुप्रास गणना)

हरिपद०—छेका दुइ वृत्त्या कहि त्यौंही यक अंत्या की जानि ।
श्रुत्या एक एक लाटा कहि एक यमक पहिचानि ॥
पुनरुक्तापदभास एक कहि सातौं भाँति बखानि ।
अनुप्रास यह शब्द अलंकृत काव्य कला मैं जानि ॥२॥

टीका—अनुप्रास संख्या—छेकानु०, वृत्त्या०, अंत्या०, श्रुत्या०, लाटा०, जमका०, पुनरुक्तवदाभास ॥२॥

(छेकानुप्रास[2] लक्षण)

दो०—दुइ दुइ अक्षर की जहाँ, पद में आबृति होइ ।
शब्द दोइ खग छेक को, छेक देश में सोइ ॥३॥

१—अनुप्रास—(अनु + प्र + आस) रसादि के अनुकूल प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं अर्थात् जहाँ वर्णों में समानता होती है, चाहे स्वर में समता हो या न हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। अनुप्रासयुक्त कविता सुननेमें अच्छी लगती है। यही इसकी विचित्रता है। अनुप्रास ५ होते हैं, १—छेकानु०, २—वृत्त्यनु०, ३—अन्त्यानु० ४—श्रुत्यनु०, ५—लाटानुप्रास, इनके लक्षण आगे यथास्थान वर्णन किये गये हैं, केवल शब्दालंकार होनेसे ही यमक को भी कुछ आचार्यों ने (प्रकृत ग्रन्थकार ने भी) अनुप्रासमें ही गिना है। वस्तुतः यह स्वतन्त्र अलंकार है। इसी प्रकार पुनरुक्तवदाभास भी पृथक् अलंकार है।

२—छेकानुप्रास—["छेकस्त्रिषु विदग्धेषु गृहासक्तमृगाऽण्डजे" रभसकोश]

टीका—जहाँ दुइ वर्ण की आवृत्ति होय छेकानु०। पक्षी कोई देश में होत है दुइ बोल बोलै है ॥३॥

(आदिपद छेका०)

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक—आपगा अगम नद नारे नैं नहरि मिली,
सरिता सरोबर मैं कूप मैं कियारी है।
बिटप नबेली 'बृज' लपटी लतान लोनी,
मोर सो मुरैली काम कला किलकारी है।
छनक न छोडै देखो दामिनि घनेरे घन,
रमनीरमन प्रेम पुंज सो पियारी है।
सुरी आँसुरीन मैं न नरी किन्नरीन मैं न,
कोऊ नारी न्यारी बात तेरी तीय न्यारी है ॥४॥

टीका—आपगा अगम, नद नारे, सरित सरोवर, कूप कियारी, आपगादि अकार, नकार, सकार, ककार, दुइ अक्षर के शब्द हैं याते छेका० ॥४॥

कवि—दास

दो०—बर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुहाय।
दुखी दाख मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय ॥५॥

टीका—बर तरुनी के बैन० बकार चकार के आवृति ॥५॥

(अंतपदवर्ण छेका०)

दो०—जन रंजन भंजन दनुज, मनुज रूप सुरभूप।
बिश्व बदर बर्धित उदर, जोवत सोवत सूप ॥६॥

टीका—रंजन भंजन, नकार जकार अंत पद छेका० ॥६॥

छेक शब्द के दो अर्थ हैं—चतुर और घौंसले में बैठा हुआ पक्षी, चतुर व्यक्ति श्रवणसुखदता के लिए जिसका प्रयोग करते हैं अथवा घौंसलेमें बैठे पक्षीके रवकी भाँति जिसमें अक्षरों (व्यञ्जनों) की पुनः आवृत्ति होती है उसे छेकानुप्रास कहते हैं। यहाँ भी यह स्मरणीय है कि व्यञ्जनोंके साथ स्वरसाम्य आवश्यक नहीं है।

कवि—पदुमाकर

दंडक—बैठी बनि बानिक से मानिक महल बीच,
अंग अलबेली के अचानक थरकि परे।
कहै 'पदुमाकर' तहाँई तन तापन तें,
हारन तें मुक्ता हज़ारन दरकि परे।
जात छतिया पै धक धक ना सुनत कौन,
बक ना कढत कर कँकना सरकि परे।
पाँसुरी पकरि रही साँसुरी सम्हारै कौन,
बाँसुरी सुनत वाके आँसुरी ढरकि परे ॥७॥

टीका—बैठी बनि बकार आदिक दुइ दुइ अक्षर के शब्द हैं ॥७॥

(अंतपद छेका०)

सवैया—बोलनि कोकिल काम कलोलनि बृंद मलिंद लखे सुख पाय।
मोर करै नृत सोर असंक मयंक मुखी नित ही चित चाय ॥
सोचिबे जोग न लोग जहाँ लखि लोचिबे लायक नीक निकाय।
बंजुल मंजुल पुंज निकुंज चितै हरषाय उतै जब जाय ॥८॥

टीका—बोलनि कलोलनि, बृन्द मलिन्द, लखै सुख, बकार, नकार, दकार, यकार, दुइ दुइ अक्षर के शब्द अन्त में है और जहाँ तेरी ससुरारि वहाँ यहि भाँति के कुंज, याते अनुशयाना नायिका ॥८॥

सुरभूप = देवोंके स्वामी। बदर = बदरी, बैर ॥६॥

बानिक = सजधजकर। मानिक महल = मणिजटित केलिगृह। थरकिपरे = काँपने लगे। दरकिपरे = फट गये। बक = बैन, वचन। कँकना = कंकण, वलय। पाँसुरी = पसली। साँसु = श्वास। आँसुरी = आँसू ॥७॥

बोलनि = वचनों में। कामकलोलनि = काम क्रीड़ाओं में। बृन्द मलिन्द = भौरोंके झुण्ड। नृत = नृत्य। मयंकमुखी = चन्द्रमुखी। लोचिबे लायक = रुच्युत्पादक। निकाय = घर। बंजुल = अशोक, बैंत। मंजुल = मनोहर ॥८॥

(वृत्यनुप्रास[1] लच्छन)

दो०—बरन एक बहु बारही, आवृत आवै लेखि।
आदि अंत दुइ वृत्ति करि, वृत्या है अवरेखि ॥९॥

टीका—जहाँ एक वर्ण अनेक बार आवै तहाँ वृत्यनुप्रास आदि अन्त दुइ भेद ॥९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज' (आदिपद वृत्यनु०)

दंडक—अमल अमोल ऐसे अंगन मैं अंगराग,
अमित अतोल आभरन आने बृंद हैं।
आँखि अरबिंद अभि अंजन को आँजे 'बृज',
अलबेली बाल के अनंग के अनंद है ॥
आली अवलीन में अवास ते अलेख आई,
औनि ते अकास लौं प्रकास सुख कंद है।
आभा अभिराम अवलोकिये अमंद रूप,
आनन अनूप आगे मंद लागै चंद है ॥१०॥

टीका—अमोल आदिक चारयौ पदन में अकार है, यातें वृत्या० नायिका अभिसारिका ॥१०॥

चाँप सी चढ़ी है भौंह चख है चलाक सान,
चोंच कीर नासिका चिबुक छबि केरे सों।
चामीकर चंपक ते रंग चटकीले अंग,
चौका चमकनि चल चपल निबेरे सों।
चंदन चमेली चारु चंद्रक ते बास 'बृज',
चहुँघा से चंचरीक चले मग घेरे सों।
चंद्रमुखी मुख छबि मंद मुसुकान आगे,
चेरी लागै चंद्रिका औ चंद्र लागै चेरे सों ॥११॥

१—रसविषयव्यापारवती अर्थात् रसका व्यञ्जन करनेवाली वर्णरचना को वृत्ति कहते हैं, यह तीन प्रकारकी होती है—उपनागरिका, परुषा और कोमला, इसी को ग्रन्थान्तरों में वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली नाम से कहा गया है, इसी वृत्तिके अनुकूल प्रकृष्ट वर्णविन्यास वृत्यनुप्रास कहलाता है। इसमें एक ही वर्ण की बहुत बार आवृत्ति होती है। छेकानुप्रास मैं स्वरूपतः और क्रमशः वर्णों आवृत्ति होती है किन्तु वृत्यनुप्रासमें केवल स्वरूपत हीः।

अवास=आवास, गृह। अलेख=अलचय, एकाएक। औनि=अवनि, पृथ्वी ॥१०॥

टीका—चाप ते चढ़ी है भौहैं, चख चलाक दान चोचादिक चकार चारों पदन में है ॥११॥

चोज मामिले के जानै चापलोसी को बखानै,
चतुर चलाक चेत राखै स्वामिकाम तैं।
चूकत न हेत निज चाहैं कौड़ी में हक्क,
चीन्हैं नेक बद चोखी बुद्धि सबै ठाम कै।
चलन चाहत बात चार कैसे करैं खोज,
चाल चलैं चोज दृढ दरबार आम मैं।
चारुता चलन सार 'गोकुल' बिचारि नीके,
चौदहों चकार ही ते चौधरी के नाम हैं ॥१२॥

टीका—चोज मामिलाके जानै चापलूसी आदि चकार सब पदन में है ॥१२॥

चंचल सुभाव चोज चुनिहा चबाव खोजै,
चुपरी चलावै चल बात अधरम जे।
चंट महा चकी मति सब सों रहत नित,
चाटकी चुगुलखोर चोप अधरम मे।
चाहैं पर हानि चित लंपट लबार मानि,
चाव करै देखै पर दुख बेसरम ते।
'गोकुल' बिचारि यह चौदहों चकार क्रूर,
करै नव धरी नाम चौधरी अधम के ॥१३॥

टीका—चंचल सुभाव चोजादिक चकार है ॥१३॥

चाप = धनुष। चख = चक्षु, नेत्र। सान = शाण, अस्त्रों को पैना करने का एक पत्थर। चामीकर = सुवर्ण। चौका = आँगन। चन्द्रक = कपूर। चहुँघा = चारों ओर। चंचरीक = भौंरे। चेरी = दासी। चेरे = दास ॥११॥

चोज = दूसरोंको प्रसन्न करनेवाली बातें। चापलोसी = चाटुकारिता। नेकबद = अच्छा बुरा। ठाम = जगह। चार = ग्रह। दूत ॥१२॥

चोज = सूक्ति। चुनिहा = चुने हुए। चबाव = परनिन्दा, बदनामी। चकी = आश्चर्यकारक। चाटकी = विश्वासघाती। चोप = उत्साह। चाह = इच्छा ॥१३॥

कवि—नरहरि (आदिपद वृत्त्यनुप्रास)

छप्पै—कबहुँ ध्वार प्रतिहार कबहुँ दरदर फिरंत नर ।
कबहुँ देत धन कोटि कबहुँ करतर करत कर ॥
कबहुँ नृपति मुख चहत कहत करि रहत बचनबर ।
कबहुँ दास लघुदास करत उपहाँस जिभ्यरस ॥
कछु जानि न संपति गर्बिए बिपति न ग्रह उर आनिए ।
हिय हारि न मानत सतपुरुष 'नरहरि' हरिहि सँभारिए ॥१४॥

टीका—कबहु ध्वार प्रतीहार कबहूँ आदिक ककार अनेक बार आवृत्ति ते हैं ॥१४॥

न कछु क्रिया बिन बिप्र न कछु कादर जे छत्री ।
न कछु नीति बिन नृपति न कछु अच्छर बिन मंत्री ॥
न कछु बाम बिन धाम न कछु गथ बिन गुरुआई ।
न कछु दान सनमान न कछु मुख आप बड़ाई ॥
न कछु मान आदर बिना नष्ट कुभोजन जासु दिनु ।
यह कबित सो 'नरहरि' कहि यथा बृथा जन्म हरि भक्ति बिनु ॥१५॥

टीका—न कछु क्रिया बिन न बिप्रन कछु आदि ककार नकार अनेक बार ॥१५॥

कवि—श्रीपति (आदिवर्ण वृत्त्यनुप्रास)

दंडक—झूमत झुकत उझकत फिरि झूमत हैं,
झूमि झूमि झूमै मानौ कज्जल ते कारे हैं ।
ऐड़ायल ऐड़ भरे ऐड़त अड़त अति,
अगड परे ते कहूँ टरत न टारे हैं ।

प्रतिहार = द्वाररक्षक । दर-दर = घर-घर । करतर = हाथ के नीचे ॥१४॥
क्रिया = कर्म, अनुष्ठान । कादर = डरपोक । बाम = स्त्री । धाम = घर । गरुआई = गुरुता, महत्त्व ॥१५॥

गुनन गहीले गरबीले जरबीले पेखि,
'श्रीपति' सुजान भये परम सुखारे हैं।
प्रीय प्रान प्यारे भाँति भाँतिन सँवारे प्यारी,
लोचन तिहारे किधौं गज मतवारे हैं ॥१६॥

टीका—झूमत झुकत उझकि फिरि झूमत, झकार प्रथम पद में अनेक बार आवृत्ति ॥१६॥

दंडक—उन्नत उरोरुह की वोप उपटति अति,
अँगिया अनूप अलबेली आला अलकैं।
दीप दुति दबत दहत दुख देखत ही,
देह दुति कामिनी की दामिनी की दलकै।
पोखराज खचित है पैजनी परम पाँय,
पल पल पेखि प्रेम परत न पलकैं।
लहलही ललित लता सी लहकत लखि,
लाल ललकत लोने लोयन की ललकैं ॥१७॥

टीका—उन्नत उरोरुहकी दुइ पदतें छेका, अति अँगिया अनूप अलबेली अलकैं अकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्त्यनु० छेका०, कै संकर है ॥१७॥

दंडक—कोकिल कलाप कल कूजत कदम्बन पै,
अंबन पै कोकिल कलाप वाह वाढ़ की।
घरी घरी घेरि घोर घोरै घन घूमि घूमि,
घटत न घुमड़त घने घन गाढ़ की।
'श्रीपति' सयान मनि सीतल समीर धीर,
झरप लता की मनो बह्नि बन डाढ़ की।
दहै देह दामिनि बिरह जनु भामिनि की,
आई काल कामिनी की जामिनी असाढ़ की ॥१८॥

उझकत = उछलते हैं। ऐंड़ायल = ऐंठ दिखाने वाले। ऐंड़भरे = गर्वभरे। ऐड़त = ऐंठते हैं। अँगड़ाई लेते हैं, अगड = जंजीर। गहीले = गहरे, भरे हुए, जरबीले = शोभायुक्त ॥१६॥

उरोरुह = स्तन। वोप = आभा। उपटति = उभड़ती है। अनूप = अत्यन्त। आला = श्रेष्ठ। अलकै = केश। दामिनी = बिजली। दलकै = चमकती है। पोखराज = एक रत्न पीले वर्ण का। पैजनी = नूपुर। पलकैं = आँखों की पलकें। लहलही = प्रफुल्ल। लहकत = लहराती या झोंके खाती है। ललकत = ललचता है। लोने = सुन्दर। लोयन = लोचन ॥१७॥

टीका—कोकिल कलाप कूजत कदम्बादिक ककार अनेक बार आवृत्ति ॥१८॥

कवि—महाराज पं० उमापति

दंडक—जाकी काम शोभा सुरधाम लखि लोभा पुन्य,
धन्यताई देखि छोभा सर्व मन छाई है।
नीरधि गभीरताई कल्प की उदारताई,
भव्यताई नव्य गुण गणप की पाई है।
गुरुताई मेरु सी धनेस कैसी धनताई,
दधिच्च नरेश कैसी उपकारताई है।
कोविद कविन्द्र महाराज दिगविजैसिंह,
वेधा निज मेधा दै आपको बनाई है ॥१९॥

टीका—अन्त पद वृत्य० पंडित उमापतिजी के, जाकी काम शोभा सुरधाम लखि लोभा पुन्य धन्यताई देखि छोभा सर्व मन भाई है। सोभा कै लोभा छोभा, भकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनु०। पुन्य धन्य नकार दुइ पद की आवृत्ति तै वृत्त्यानुप्रास है और अर्थालंकार में अर्थ गम्भीर है। विस्तार पूर्वक अन्य ग्रन्थ में कहैंगें ॥१९॥

(वृत्त्यनुप्रास)

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक—सत्य गुन सार सी है सारदा सिंगार सी है,
नारद उदार सी है सुरधुनि धार सी।
हंस के अगार सी है हीरा के भण्डार सी है,
हिमि पारावार सी है घने घनसार सी।
कीरति तिहारी राम 'गोकुल' निहारी लोक,
चारु चंद्रिका सी सोहै हाँसी देव दार सी।
पय पारावार सी है पाला के पहार सी है,
कल्पवृक्ष डार सी है हराहर हार सी ॥२०॥

कलाप = झुंड। अंबन = आम के वृक्षों। धुमड़त = गरजते हैं। झरप = बूँदाबाँदी। काल जामिनी = मृत्यु। जामिनी = रात्रि ॥१८॥

सुरधाम = स्वर्ग। धन्यताई = भाग्यवत्ता। छोभा = क्षोभ। नीरधि = समुद्र। कल्प = कल्पवृक्ष। भव्यताई = सुन्दरता। गणप = गणेश। धनेस = कुबेर। वेधा = विधाता। मेधा = बुद्धि ॥१९॥

टीका—अंतपद एक वर्ण अनेक बार आवृत्ति सत्य गुन सार सी है, सारदा सिंगार सी है, नारद उदार सी है, रकार सकार अनेक बार अन्त में आये, याते अंतपद वृत्य० ॥२०॥

दंडक—आनंद के कंद नँदनंद ते मिलाप बदि,
साजे छंद बंद औ सिंगार जो पसंद है।
आभरन बृंद 'बृज'चंद्रमनि चंद्रकांति,
तरके तनीके बंद उमगै अनंद है।
नैन अरबिंद अस राजै रद कली कुंद,
लपटे मलिंद जो सुगंध सुख कंद है।
कुंज भौन गौन कै गयंद कैसे मंद मंद,
आनन अमंद आगे मंद लागै चंद है ॥२१॥

टीका—आनंद कंद नंदनंद ते दकार आदिक अनेक वर्ण अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनु० अलंकार ॥२१॥

कवि—घनसिंह

दंडक—मोसो कै करार गयो लंपट लबार मन,
मानि यतबार तौ सिंगारऊ बनायो री।
छोड़ि गृह काज छोड़ि सखिन समाज आज,
छोड़ि कुललाज बृजराज मन लायो री।
कंज निशि जागी 'घन सिंह' प्रेम पागी भय,
नेकऊ न लागी अब सूर उइ आयो री।
सेइ बन माली घेरि आए बनमाली लागे,
भरै बन माली बनमाली क्यों न आयो री ॥२२॥

टीका—लबार यतबार रकार कै अनेक बार आवृत्ति ते वृत्यनुप्रास और करार करि नहीं आयो, याते परकीया उत्कंठिता। सेइ बनमाली जो कृस्न आये बनमाली कहै वगवानादिक पदन ते यमक वृत्य संकर ॥२२॥

कंद = मूल। छंद-बंद = इच्छित पदार्थ। तरके = तड़क गये। तनीके बंद = अंगिया (चोली) के बन्धन। उमगै = उमड़ता है। रद = दाँत। मलिंद = भौंरे। कुंज भौन = लतागृह। गौन = गमन। गयंद = हाथी ॥२१॥

यतबार = विश्वास। पागी = रमी हुई। सूर उइ आयो = सूर्य उदय हो गया। बनमाली = वृक्षों का झुण्ड, वाग का रक्षक, मेघ, कृष्ण ॥२२॥

कवि—अनुनैन

दंडक—सुंदर मजीले पर लंग सहजीले राधे,
परम लजीले सुभ काजन कजीले हैं।
बेलिन वसीले अलि बोलिन हँसीले आदि-
रस में रसीले रूप यस मैं यशीले हैं।
नेह सरसीले पर तेह परसीले "अनु-
नैन' चहकीले चटकीले मटकीले हैं।
तेरे कच नीले लूटि छबि से छबीले मानो,
पन्नग रँगीले मैन मंत्र बतकीले हैं ॥२३॥

टीका—मजीले सहजीले, लजीले, लकार अनेक बार आवृत्ति ते वृत्य०॥२३॥

कवि—अज्ञात

दंडक—पंपा के सलिल मध्य झंपा करि ताही छिन,
चंपा कुसुमनि कै लपट लूटि लायो है।
काशमीर देश की कुरंगनैनी कुचबेश,
केसरि जो लेश भेश देश दरसायो है।
माधुरी लता को परिरंभ कंप ताको देत,
धरै मदता को जनता को सरसायो है।
धीरनि अधीर किये नीरज को नीर लिये,
बीर पंचतीर को समीर आज आयो है ॥२४॥

टीका—पंपा झंपा अनेक आवृत्ति ते वृत्य०। यह समीर पंचतीर जो है काम को होय अर्थात् बसंत रितु की बयारि है ॥२४॥

मजीले = मँजे हुए, स्वच्छ। सहजीले = मनोहर। कजीले = घुँघराले। बेलिन वसीले = लताओं की तरह। आदिरस = शृङ्गार। तेह = रोप। कच = केश। मैनमंत्र बत कीले = काम के द्वारा मंत्र की तरह जिनका कीलन किया हुआ है ऐसे ॥२३॥

पंपा = सरोवर। झंपाकरि = कूदकर। लपट = गंध। परिरंभ = आलिंगन। पंचतीर = काम। समीर = वायु ॥२४॥

(अन्त्यानुप्रास[1])

दोहा—कहि अंत्यानुप्रास को, जो पदांत में होइ ।
एक चरन में बाक्य द्वै, तहाँ अंत्य कहि सोइ ॥२५॥

टीका—अंत्यानुप्रास लक्षण—जो पदान्त में वर्ण की समता होय ॥२५॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दुमिला–बँधिगो अति बाँधत नारन मैं 'बृज' तेरे सिवार से बारन मैं ।
दबिगो चल भौहँ के भारन में फिरि दौरे फिरे दृग तारन मैं ।
परिगो मुख पानिप धारन में वहि लागो उरोज किनारन मैं ।
तहाँ हेरि थक्यौ बहु बारन मैं मन मेरो हेराइ गो हारन मैं २६॥

टीका—बाँधत नारन मैं बारन मैं भारन मैं तारन मैं एक पाद में दुइबार आयो है, नारन बारन मैं, याते अंत्या० । हेरि थक्यौ नाहीं पायो अपनो आसक्तता कहै है याते स्वाधीनपतिका ॥२६॥

(श्रुत्यनुप्रास[2])

दोहा—एक वर्ग के बर्न जहँ, क्रम से आवैं सोय ।
सो श्रुत्यानुप्रास है, बरनै कबि मति जोय ॥२७॥

टीका—लक्षण—जहाँ एक वर्ग के वर्णक्रम ते होय ॥२७॥

मत्तगयंद छन्द—

कुंदन कांति खरे द्रिग खंजन गौरि सी गौरी घटा घन केश ।
चाल चलै छबि छाजै जगै जहँ भूमि रहे झुमके श्रुति देश ॥

नारन में =   , चल = चंचल । तारन में = आँख की पुतली में, पानिप = शोभा, जल ॥२५॥

१. अन्त्यानुप्रास—यथासंभव अपने आद्य स्वर और अनुस्वार, विसर्ग आदिसे युक्त वर्णकी ज्यों का त्यों अन्तमें आवृत्ति हो तो उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं । यह दो प्रकारका होता है—१—पदान्त्यानुप्रास, २—पादान्त्यानुप्रास ।

२. श्रुत्यनुप्रास—दन्त, कण्ठ, तालु आदि एक ही स्थान से उच्चार्यमाण वर्णों का जहाँ एक साथ प्रयोग किया जाय वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है, अत्यन्त श्रुतिसुखद होनेसे इसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

टोने सी ठीक वै डीठि डुरै तन के थल दीपति धाम हमेश।
पानि हैं पंकज फूले फबै 'ब्रज'बाल भली मन मोहनी वेश ॥२८॥

टीका—कुंद० खेरखंजा, गौरि सी गोरी, घटाघन केश, कखगघन इत्यादि वर्ण है कवर्ग के प्रथम। मदमें चलै छबि जगै भूमि चछजझ चकार वर्ग वर्ण याही चारौं पदन में है ॥२८॥

(लाटा अनुप्रास)

दो०—भाव सहित जहँ पद फिरै, अर्थ भेद कछु होइ।
सो लाटा अनुप्रास है, एक शब्द द्वै सोइ ॥२९॥

टीका—लक्षण—जहाँ भाव सहित पद फिरै अर्थ में कछु भेद होय ॥२९॥

सवैया—नेह जरावत दीपक ज्यौं रिसि त्यौंही है नेह जरावन को।
पावन लोग चलै नयकै नय नेक बड़ावन पावन को॥
बाम रसील जसील जे है बलि बाम सुभाव नसावन को।
मान के दीप बढावत मानिनि मंजुल मान बढ़ावन को ॥३०॥

टीका—नेह नाम तेल को, जरावनहारो दीप, तैसे नेह नाम प्रीति को जारत रिसि, पावन कहे पवित्र लोग नयकै चलै है, नय कहै नीति बड़ापन। पावन कहै पाइबेको, बाम रसील जे बाम कहै नायिका रसीली है। बाम सुभाव बाम कहै टेढ़ स्वभाव नसावती है। मान दीप बढ़ावत कहै बुतावत है। मानिनि मान कहै आपन आदर को बढ़ावत कहै मिटावत है। मान बढावनको मान वृद्धि करै को ॥३०॥

कवि—कुलपति (लाटानुप्रास)

दंडक—बोलत मधुर होत मधुर सुयस यह,
नीको जानि नीको मन मोद ही सों भरिये।
करिए सो डरिए न करिए तौ डरिए न,
सब ही भलाई जो भलाई उर धरिये।

कुंदन = सुवर्ण। गौरी = पार्वती। गौरि = गोरेवर्ण की। टोनेसी = जादू-सी। डुरै = झलकती है। तनके थल = देह से। पानि = कर, हाथ। फबै = शोभित हैं ॥१३७॥

नेह = तेल, प्रेम। रिसि = रूठना। पावन = पवित्र, पाना। नय = नीति। बाम = सुन्दरी, वक्र ॥३०॥

जैसे सीत भान मान प्रभा प्रभाकर त्यौंही,
जान जानपन्यौ फल यह जिय धरिये ।
कीजै नित नेह नंदनंदन के पाँयन सों,
पाँयन सों तीरथ के पथ अनुसरिये ॥३१॥

टीका—बोलत मधुर ताको सुयश मधुर होत, नीको जानि नीको मन मोद करिये, करिए तौ डरिये और न करिये तौ न डरिए, सबही भलाई सबै भलाई करै जो अपना भलाई को धारन करिय, शीतभान चन्द्रमा, भान सूर्य्य, प्रभाकर प्रभाकर जान कही जानौ जानपन्यौ कहै जन्मको कलह जिय धरिए, नित नेह नँदनंद के पगन कहै चरण करिये । पायन कहै पग ते तीरथ जैए ॥३१॥

कवि—मुकुंद

दो०—जिन[1] सों मित्त मिले नहीं, तिन्हैं बजार उजारि ।
जिन से मित्त मिले नहीं, तिन्हैं बजार उजारि ॥३२॥

टीका—जिनसों मित्त कहै मित्र मिलो नाहीं तिनको बजार उजारि लागत । जिनसो मित्र मिले बजार उजारि तिनको नहीं लागै है ॥३२॥

कवि—सोमनाथ

दो०—रन में जे हारत नहीं, पैने जिनके बान ।
रन में जे हारत नहीं, पैने जिनके बान ॥३३॥

टीका—पैन जिनके बान हैं जे रन में हारत नहीं रन में जे हारत हैं ताके बान पैन नही हैं ॥३३॥

लाटानुप्रास—जहाँ शब्द को उसके अर्थ सहित पुनरावृत्ति होती है केवल तात्पर्य (अन्वय) मात्र में भेद रहता है वहाँ लाटानुप्रास होता है । इसके ५ प्रकार हैं—पद की आवृत्ति, पदों की आवृत्ति, एक समास में आ०, भिन्न समास में आ०, समासासमास में आवृत्ति । लाट देश के लोगों द्वारा इस प्रकार की भाषा का अधिक प्रयोग होने से इसे लाटानुप्रास कहते हैं ।

१. ३२, ३३, ३४ में एक 'नहीं' पद पहिले पादके साथ और दूसरा 'नहीं' पद चतुर्थपाद के साथ पढ़ना चाहिये ।

पैने = तीक्ष्ण ॥३३॥

कवि—राजा जसिवंत सिंह

दो०—पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि ।
पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि ॥३४॥

टीका—पीय कहै पति जाके निकट नाहीं है ताहि चाँदनी घाम ऐसो लागै है पिय निकट जाके है, नहीं घाम ताको चाँदनी है अथवा नहीं घाम चाँदनी है ॥३४॥

कवि—बेनी

दंडक—बाँधे द्वार काकरी चतुर चित्त काकरी सो,
उमिरि बृथा करी न राम की कथा करी ।
पाप को पिना करी न जानै नाक ना करी सो,
हारिल की नाकरी निरंतर ही नाकरी ।
ऐसी सूमता करी न कोऊ समता करी सो,
'बेनी' कबिता करी प्रकास तास ताकरी ।
न देव अरचा करी न ग्यान चरचा करी,
न दीन पै दया करी न बाप की गया करी ॥३५॥

टीका—बाँधे द्वार पर काकरी, का कहै कंचन के जेवर युत करी कहै हाथी, चतुर चित का करी, चतुर कहै प्रवीन चित है का करी कहै काह किहिनि, उमिरि बृथा करी न राम कै कथा करी कहै नाही किहिनि। पाप कोपि ना करी पापको पिया करै न जानै नाक नाकरी नाही जानते हैं नाक कहै स्वर्ग कहै परलोक की ना करी नाही करते हैं पाप को त्यागन, हारिल की नाकरी हारिल एक पक्षी होत नकरी कहै लकरी को दिनौं राति पकरे रहते तैसई पाप को पकरे हौ, निरंतर ही नाकरी निरन्तर कहै कुछ अन्तर नाहीं। ना करी कहै नाहीं करी है ऐसी सूमता करी जाको कोई समानता नाहीं करी है सोतिन प्रकाशता सता कहै सत्य ही बेनी कविता करी है जो सूम है न देव को अरचा कहै पूजा, न ज्ञान कै चरचा करी इत्यादि, करी पद ते लाटा ॥३५॥

कवि—इंदु

दंडक—ऊँचे धौल मंदिरके अंदर रहनवाली,
ऊँचे धौल मंदिरके अंदर रहाती है ।
कंद पान भोग वारी कंद पान भोग करैं,
तीनि बेर खानवाली तीनि बेर खाती हैं ।

मैननारी सी प्रमान मैननारी सी प्रमा न,
　　बिजन डोलाती ते वै बिजन डोलाती हैं ।
कहै 'कवि इंदु' महाराज आज बैरी नारि,
　　नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ॥३६॥

टीका—ऊँचे धौल नाम सपेद मन्दिर कहै पहाड़के कंदरमें रहती हैं कंद पान भोंग वारी कहै कंद जो मिश्री आदि पान कहै तमोल खान वारी अरु कंद के सरबत पियन हारी सो कंद पान भोग करैं कंद कहै जीवन वृच्छन को, पान कहै खाती पियती हैं, तीनि बेर खान वारी कहै तीनि बार भोजन करनहारी सो तीनि बइरि खाइ कै रहती हैं । मैन नारी सी प्रमान मैन कहै काम के नारि ते जिन नारिन को तुल्यता रही सो मैन नारी सी प्रमान मैन कहै काम के नारी सी प्रमा कहै शोभा न रह्यौ । बीजन कहै पंखा जाके हाँका जात रहो सो बिजन कहै बिना जन कहै दास के डोलतीं बनमें । इन्दु कवि कहै महाराज तिहारो त्रास ते बैरीन की बधू जो नगन जड़ित भूषन पहिने रहीं सो नगन जड़ाती कहै कुछु वस्त्र नहीं है नंगी है जड़ाती हैं इति ॥३६॥

(यमकानुप्रास)[1]

दो०—यमक शब्द सोई रहै, अर्थ भिन्न ह्वै जाय ।
　　अनुप्रास यमका कहै, कवि मति मंजुल पाय ॥३७॥

टीका—लक्षणः—लाटा में दुइ पद के अर्थ और यमक में अनेक पद वही भाँति अर्थ अनेक भिन्न जहाँ होय ॥३७॥

---

१. यमक—स्वरसहित व्यञ्जन समूह की, अर्थ रहते हुए जहाँ पुनरावृत्ति हो किन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न होता हो वहाँ यमक अलंकार होता है, यहां यह स्मरणीय है कि अनुप्रासमें केवल वर्णों की आवृत्ति होती है उसमें भी स्वरसाम्य आवश्यक नहीं किन्तु यमक में स्वरसहित वर्ण समूह की आवृत्ति होती है । इसी प्रकार लाटानुप्रासमें सस्वरसति वर्णसमूह की आवृत्ति होती है किन्तु उनका अर्थ भिन्न नहीं होता केवल तात्पर्यमें भेद होता है और यमक में अर्थ भी भिन्न-भिन्न होते हैं । यही अन्तर यमक और अनुप्रासमें है । आकर ग्रन्थोंमें यमक के ११ भेद कहे गये हैं—देखिये साहित्यदर्पण की छाया टिप्पणी ।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक—पल कल पावत न पलक लगावत न,
काम कल पावत न कल करै प्यारे सो ।
जात न तियाके तीर जा तन मदन तीर,
लागे कहि जात न यौ जात ना विचारे सो ।
नारिको नवाइ बैठी 'बृज' बृजनारिन मैं,
नारी-नारी छूटि गई कियो नेह न्यारे सो ।
मोह न तिहारे मनमोहन तिहारे मन,
रूप मनमोहन तिहारे मैं निहारे सो ॥३८॥

टीका—पल कल नाहीं पावत, पलक नाहीं लगावै है । काम कलपावत कहै मदन तरसावत, नकल करै प्यारे सो जात न कहै जाते नहीं तिया के ढिग जा तन मदन तीर लागे, कहै जाके तन में मदन के बान लागे हैं । कहि जात न मोसो नहीं कहि जात है ऐसो जात ना कहै विथा बिचार हो । नारि को नवा० नारि कहै ग्रीवाँ नवाइ कहै शिर नीचे करि बृज नारिन में बैठी है, नारी नारी छूटी कहै कर की नारी नहीं चलती है । मोहन तिहारे० मोह तिहारे मनमें नहीं है, हे मोहन कृष्न तिहारे रूप मन को मोहनहार है, मैं निहारे हैं ॥३८॥

कवि—माखन

दंडक—ऐसे मैं न काहू के न ऐसे मैंन काहू के न,
ऐसे मैं न काहू के सँवारे दीह दौर के ।
भौंर हैं न कारे ऐसे भौंर है नकारे ऐसे,
भौंर हैं नकारे कंज मंजुल मरोर के ।
सर से सुषमा के हैं सरसे सुषमा के हैं,
सर से हैं 'माखन' कटाच्छ पैन कोरके ।
देखे हरि नीके नैन देखे हरिनी के नैन,
देखे हरिनी के नैन नीके हैं न ओर के ॥३९॥

पल = क्षणभर । कल = चैन, आराम । कलपावत = तड़पाता है । तीर = समीप । मदनतीर = कामबाण । नारि = ग्रीवा, गर्दन । नवाइ = झुकाकर । नारी-नारी = स्त्री की नाड़ी । मोह = अज्ञान । मोहन = कृष्ण । निहारे = देखे ॥३८॥

टीका—ऐसे मैन कहै काम काहू के कहै को हो के नाहीं, सँवारे कहै बनाए हैं, ऐसे मैनकाहू के न ऐसे मैनकाहू कहै अपसरा के नहीं हैं ऐसे मैं न काहू के न ऐसे मैं काहू के नाहीं सवारे कहै सुधारे हैं। भौंर हैं न कारे ऐसे भौंर कहै भौंरा कारे अस नहीं हैं, भौंर नकारें हैं कहै नकारे बुरा हैं जे ऐसे हैं, भौं रहैं नकारे ऐसे भौं कारे होत है ऐसे कंज कारे नहीं। सरसे सुषमा के हैं कहै अधिकात है सोभा ते सरसे सुखमाके है सर कहै तलावा हैं सौन्दर्य्य ताके सर से कहैं बान ते पैने हैं। देखे हरि नीके नैन, हे हरि देखे नीके नैन ते हरिनी जो है मृगी के नीके नैन ताके देखे हौ हरिनीके नेत्र ऐसे नीके नैन तीके और के नहीं ॥३६॥

कवि—अनुनैन

दंडक—धूम उपजाए उपजाए धूमध्वज हिए,
धूमरे जो घर्घरात धाई पुरवैया है।
चमकत बीजुरी सो बीजु री बियोग कैसी,
कौन 'अनुनैन' हिए दुख को दवैया है।
पीवन चहत यह जीवन सो कौन भाँति,
जीवन बचैगो पार जैबे को न नैया है।
नैहर लेवाइ जैबे आयो जेठ भैया है न,
आयो जेठ भैया है न आयो जेठ भैया है ॥४०॥

टीका—धूम उपजाए, कहै धुवाँते उतपन्न भये मेघ सो मेघ उपजाए

मैन = कामदेव। मैनका = एक अप्सरा। सँवारे = सुधारे। भौंर = भौंरे, भँवर। नकारे ऐसे = तिरस्कार किये। भौं रहैं = भृकुटि हैं। सरसे = शोभित हैं, सुषमा = परमशोभा। सर से = तालाब से। सर से = बाण जैसे। पैन = तीखे। हरि = हे कृष्ण। नीके = सुन्दर। हरिनी के = मृगी के। तीके = नायिका के ॥३९॥

धूमध्वज = अग्नि। धूमरे = धूसर वर्ण के। घर्घरात = गरज रहे हैं। बीजुरी = बिजली। बीजु = बीज (जो बोया जाता है)। पीवन = पीना। प्रियतम। जीवन = जल, जीवन = जिन्दगी। जेठभैया = बड़ाभाई, जेठके भैया अर्थात् पति, जेठ के बाद का महीना अर्थात् आषाढ़ ॥४०॥

हिए में धूमध्वज कहै अगिनि औ धूमरे कहै धूमिल, घरघरात कहै गरिजै हैं पुरवाई बहि रही। चमक बिजुरी सो, बीजुरी कहै बीज कहै बिया होइ बियोग केरी हे सखी, पीवन चहत कहै पिया चहत है, जीवन कहै जल जीवन कहै जीवन बचैगो। नैहर लैजैगो को न आए जेठ भइया कहै जेठ भाई और न मेरे जेठ के भाई कहै पति परदेश ते नाहीं आयो, जेठ भइया कहै जेठ क महीना ते करै भैया असाढ़ आइ गयो ॥४०॥

कवि—भूषन

दंडक—जेते मनि मानिक हैं ते ते मनमानिक हैं,
धरा में धरा है धरा धूरि ही मिलायबी।
देह देह देह फिरि पाइ ऐसी देह कौन,
जाने कौन देह कौन योनि जिय ज्यायबी।
भूख एक राखि भूख राखै मति 'भूषन' की,
भूषन की भूषन है भूखन न पायबी।
गगन के यमगन गंग न गनन देहैं
नग न चलैगा साथ नगन चलायबी ॥४१॥

टीका—जेतने कहै मनि मानिक रतन है तेते मन मानि कहै कहत है ॥ धरा जो भूमि में धरा है सो धूरि में मिलि जैहै, देह देह ० देह देह ऐसी देह कहै तन फिरि न पैहै, कौन जानै कौन देह कौन जोनि में जिव होवै। भूख एक राषि० भूख कहै एक छुधा को राखै मनि भूख कहै लालसा भूषन कहे जेवरादि का को राखै भूषन की भूषन है० कहै भू जो पृथ्वी खनकी कहै खनिबे की भूख कहै लोभ ते न पैहै। गगन के यमगन गंगन गनन कहै गंगा को सुमिरन न करन देहै, नगन कहै नंगा चलैगो साथ नग कहै रतनादिक साथ न जैहै ॥४१॥

मनिमानिक=मणिरत्नादि। धरा=पृथ्वी, धरा= रक्खा। धराधूरि= पृथ्वी की मिट्टी। देह (देहु)=दे दो। देह=शरीर। जिय=जीव। भूख= क्षुधा, लालसा। भूषन=अलंकारों की। भूखनकी भूषन=भूख से व्याकुल व्यक्तियोंके योग्य। भूखनन=पृथ्वी को खोदना, खेती करना। गगन= आकाश। यमगन=यम के दूत। गनन=स्मरण करने। नग=रत्न। नगन=नंगा, वस्त्रहीन ॥४१॥

कवि—लाल

दंडक—मेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि,
यह बरसाने वर मुरली बजावैगो।
साजि लाल सारी लाल करै लालसारी आज,
देखिबे को 'लाल' सारी लाल सुख पावैगो।
तुही उरबसी नाहि उर बसी आन तिय,
कोटि उरबसी तजि तो सों चित्त लावैगो।
सेज बनवारी बन वारी तन आभूषन,
गोरे तनवारी बनवारी आज आवैगो ॥४२॥

टीका—यह नायिका मानिनि ते सखी कहै है, मेह कहै जल बरसत देखि तेरै नेह वर कहै श्रेष्ठ सनेहै यह बरसाने नगर में मुरली बजावैगो, साजि कै लाल सारी लाल के लालसा कहै अभिलाष आज पूर करै। देखिवे को लाल कबि की उक्ति उसकी सारी सुख पावैगे। तुही उरबसीं कहै, अपसरा उरबसी तुही है नाहिं उर बसी आन तिय है कोटि उर बसी को तजि तूही सों चित्त लागै है। सेज बनवारी० सेज कहै बन वाली बनवारी कहै वनितन आभूषण हे गोरे तन वारी बनवारी कहै कृस्न जी आजु मिलै ॥४२॥

कवि—नीलकंठ

तन पर भार तीन तन परभारतीन,
तन पर भारती न तन पर भार हैं।
पूजे देवदार तीन पूजे देवदार तीन,
पूजे देवदार ती न पूजे देव दार हैं।
'नीलकण्ठ' दारुण दलेलखान तेरे धाक,
देहरी न नाँघती सो नाँघती पहार हैं।
आँधरो न कर गहे बावरो न संग लहे,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं ॥४३॥

मेह = मेघ। बरसाने = बरसते। नेहवर = उत्तम स्नेह। बरसाने = बरसाना नगर में। वर = श्रेष्ठ। लालसारी = लाल रंग की साड़ी। लाल = नायक। लालसा = इच्छा। उरबसी = हृदय में बसी हुई। उरबसी = उर्वशी नाम की अप्सरा। बनवारी = बन में जो बनाई थी। बनवा = सजा। बनवारी = श्रीकृष्ण ॥४२॥

टीका—नीलकंठ कवि भनै की हे दारुण कहैं भयानक दलेलखान तेरे धाक ते ऐसी रिपुनारिन्हको ऐसी बिपत्ति है। कैसी है की जिनके तनपर भारती न केश भार,[1] कुच भार,[2] नितम्ब भार[3] फिरि कैसी है तनपर भारती कहै अंग में परम श्रेष्ठ भा शोभारती भाग्य है फिरि कैसी है न तनपर भारती कहें जिन्हके तन ते परभा कहे उत्तम शोभा वाली रती कहे काम स्त्री न है अथवा न तन पर भारती न कहें तन पर भाते रती न कहें दृढ़ कैके रति है। अब ऐसी विपत्ति है की तन पर भार है कहें भय से तन परम भार ह्वै रहो है अथवा न तनपर भा शोभा रहै फिर कैसी है पूजै देवदार तीनि कहे तीनि जो ब्रह्मादि वृक्ष है पलाश[1], पीपर[2], वट[3], तिन्हैं पूजती हैं फिरि पूजै देवदार तीन दार कहे नारी सरस्वती[1], लक्ष्मी[2], गौरा[3] इन्हैं पूजैं फिरि पूजै देवदारती० ती कहै स्त्री देवह्न में दार कहे श्रेष्ठ के हैं ब्रह्मादिक तिन्है पूजै अथवा पूजै कहैं पूजित देव कहैं राजा तिन्ह की दार ती के हैं उत्तम नारी यह सब करती हैं अब बिपत्ति है कौ न पूजै देवदार है कहे देव पूजा दार न है सिद्ध न है अथवा देवदार कहें कल्प होने को चाही सो नहीं है। भाव यह है कि पूजा इन्ह का इष्ट नहीं देति तीसर पाद स्पष्ट है आगे अति भय कहै है कोई आँधर को लै चलै को हाथ न धरो फिरि घर के बावरे जन केहूँ को संग न पायो फेरि वार कहे बालक छूटे फेरि वार छूटे, वार कहै द्वार पर आपने जनको वार कहे समूह छूटे फेरि छूटे वार है वार कहे केश छूटे हैं ॥४३॥

कवि—केशवदास

दूषन दूषन के यश भूषन भूषन अंगनि 'केशव' सोहैं ।
ज्ञान सँपूरन पूरन कै परिपूरन भावनि पूरन जोहैं ॥
श्री परमानँद की परमा परमानँद की परमा कहि को हैं ।
पातुरसी तुरसी जिनके अवदा तुरसी तुरसी पति मोहैं ॥४४॥

टीका—साधुन को वर्णन—जिन को यश दूषन कहै दोष दूषन करन हारो है और यश जो है वही भूषन है ऐसे भूषन अंग मोहै श्री परमानन्द कहै परमेश्वर की जो परमा कहै शोभा तामें पर कहै तत्पर है, पर आनन्द की परमा

भार = बोझ। परभारतीन = उत्तम शोभा और भाग्ययुक्त। भारतीन = कामदेव की स्त्री रति की भा (शोभा) फीकी है। परभार = अत्यन्त भारी। देवदार = देवताओं के वृक्ष, देवताओंकी स्त्रियां, देवताओं में श्रेष्ठ। ती = स्त्री। बावरो = पागल। वार = बालक, स्वजन, द्वार, केश ॥४३॥

को कहिबे लायक है। ज्ञान सँपूरन० ज्ञान जो है ताको पूरण करि परि पूरण भावनि करि तिन को देखत है, अवर पातुरसी तुरसी० और पातुर की सुहाती शोभा ताते पार है पातुर सी जुहै तुरसी की शोभा सोऊ तुरसी कहै खटाई बराबरि है जिनकी मति मोहै है ॥४४॥

कवि—श्रीपति

दंडक—सारसी सुबास माती सार सी करत कूकैं,
सार सी भई है छाती नाहीं दरकत है।
हार सी जोन्हाई देखि हार सी परी विशेखि,
हारसी परेखि मति 'श्रीपति' भँवत है।
वारसीत लागत ही वारसीत दहै देह,
बारसी को पलकारी वार सीररत है।
आरसी भयेरी कौंध आरसी भँवर धुनि,
आरसी बिलोकि मोहि आरसी लगत है ॥४५॥

टीका—सार कहै फूलन को रस ताके सुबास से माती है, सारसी करत कूकै सार बाजा लड़ाई में बाजत है तैसोई बोलत है सारसी भई है छाती नाही दरकत इत्यादि पदन के अर्थ ऐसे ही जानि लीजै ॥४५॥

कवि—सरदार

दंडक-सुन्दर सती को बसती को असती को नाँव,
सुनि हाल कीन्हों सो न होत अस नीको है।
खंजपतिनी को पतिनी को पति नीको कौन,
सुनि पतिनी को पति नीको हत ही को है।
'कवि सरदार' गोरे सामरे किसोर देखि,
देखिबो न चाहै होत देखि हारी ही को है।
मन्द मत नीको मत नीको तौ निहारिए री,
कौन अति नीको पतिनीको पति नीको है ॥४६॥

टीका—कहै सुघर सती को बसती कहै नगर है वासती को बसती को नाव सुनि सो न होत अस ती को है इत्यादि पदन में जानिए ॥४६॥

सारसी = सारसपत्नी। रणभेरी-सी = ठोस पदार्थ जैसी। हारसी = धवल। जोन्हाई = चांदनी। हारसी = शिथिलतासी, नाशक-सो। आरसी = आलस्ययुक्त।

कवि—अज्ञात

आई हौं निबेदन को बनिता के बेदन को,
क्यों न होहु बेदन को बेद भरि राती है।
क्यौं न होहु बारिजात क्यौं न होहु बारि जात,
वारि वारि जात तौ तू कैसही सिराती है।
लेहु हरि कीरति न लेहु हरि की रति न,
लेहु हरि कीरति उनीदौ निअराती है।
ज्यौं ज्यौं पियराती आवै त्यौं त्यौं पिय राती आवै,
ज्यौं ज्यौं पियराती आवै त्यौं त्यौं पियराती है ॥४७॥

टीका—आई निवेदन कहै मिटाइबे को बनिता के बेदन कहै बिथा को बेद भरि कहै चारि याम राति है ऐसे ही और जानिए ॥४७॥

कवि—दास

दंडक—छपती छपाइ ही छपाइ गन सोर तच्छ,
पाइ ज्यौं अकेली ह्याँ छपाई ज्यौं दगति है।
सुखद निकेत की या केतकी लखे ते पीर,
केतकी हिए मैं मीनिकेत की जगति है।
लखि कै सशंक होती निपटै सशंक 'दास',
शंकर मै साचकास शंकर भगति है।
सरसी सुमन सेज सरसी सुहाई सर-
सीरुह बयारि सीरी सरसी लगति है ॥४८॥

टीका—छपती छपाइही कहै छपि जाती ही मैं छपाइ गन सोर कहै प्रगट जो अकेली त्यौं छपती यही रीति जानिए ॥४८॥

कवि—पदुमाकर

दंडक—सोभित सुमन वारी सुमन सुमन वारी,
कौन हूँ सुमन वारी यौं नहीं निहारी है।
कहै 'पदुमाकर' त्यों बाँधनू बसन वारी,
वहै ब्रज बसन वारी ह्यो हरन हारी है।
सुबरन वारी रूप सुबरन वारी सजै,
सुबरन वारी काम करकी सवारी है।
सीकरन वारी खेद सी करन वारी रति,
सी करन वारी सो बशीकरन वारी है ॥४९॥

टीका—सोभित सुमन कहै शोभामान सुमन कहै फूल की वारी कहै फुलवारी कौनहू कहै कोई सुमन कहै सन्देह मन को वारि कै निहारी है ऐसे ही और जानिए ॥४६॥

पुनरुक्त पदाभास अनुप्रास अलंकार

दो०—भास जहाँ पुनरुक्त के, नहिं पुनरुक्त लखाइ।
पुनरुक्ता पद भास कहि, कवि मति मंजुल पाइ ॥५०॥

टीका—भास कहै जहाँ पुनरुक्त को झलक होय कुछ अर्थ पुनरुक्त न होय ॥५०॥

सवैया—सुरतालहिं बाँधि बजावत बीन बँधै सरके जल देव विमोहै।
'बृज' बानी मनोहर राग रँगे अनुराग गिरा करि कै सकुचो है॥
रस राग बिलास अनंत कला कहि जात न सेष की बुद्धि हरो है।
मनमोहन गोपसुता सँगगो परतच्छ दुरे मनमोहन जो है ॥५१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे चित्रालंकारादि अनुप्रास
वर्णनं नाम त्रयोदशः प्रकाशः ॥१३॥

टीका—सुरताल बाँधि कै गुनी गायन बीन बजावत जासो सर कहै ताल के जल विधि, जात ताल सर शब्द पुनरुक्त को झलक है। अर्थ दोसर है बृज में बानी मनोहर ते राग गावै गिरा कहै सरस्वती सकुचाती है बानी गिरा आभास रस रास में अनन्त जाको अन्त नहीं ऐसो कला करि रहे। कहि जात नहीं शेष की बुद्धि हरीगै अनन्त शेष आभास मन मोह गोप सुता गोप गुप्त परतच्छ लीला करि रहे गोप गोप आभास ॥५१॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां अनुप्रास
वर्णनं नाम त्रयोदशः प्रकाशः ॥१३॥

१—जहाँ शब्दों की पुनरुक्ति जैसी प्रतीति हो वस्तुतः पुनरुक्ति न हो, अर्थात् पर्यायवाची होने पर भी प्रयुक्त शब्द कविता में भिन्न अर्थ रखते हों, वहां पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है, भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' का निम्न उदाहरण अधिक स्पष्ट है—

अली भँवर गुञ्जन लगे, होन लग्यो दल पात।
जहँ-तहँ फूले वृच्छ तरु, प्रिय प्रीतम कित जात॥

[यहां यह ज्ञातव्य है कि यमक में भिन्नार्थक एक ही शब्द की आवृत्ति होती है किन्तु पुनरुक्तवदाभास में भिन्नार्थक पर्यायवाची शब्द की।]

चतुर्दश प्रकाश

अथ ग्रंथान्तरे— (वीप्सालंकार)

दो०—वीप्साश्लेष समेत कवि, बक्रोक्तिक कहि स्वच्छ।
कहूँ कबिन तीनिउ लिखे, शब्द अलंकृत लच्छ ॥१॥

टीका—वीप्सादि वर्णन—वीप्सा, श्लेष, बक्रोक्ति तीनिउ शब्दालंकार कोई कोई कवि बरणन किए हैं ॥१॥

(वीप्सा लच्छन)

दो०—आदर भय उद्वेग करि, एक शब्द बहुबार।
बोलि उठै न विचार कछु, तहँ वीप्सा निरधार ॥२॥

टीका—जहाँ आदर वा भय कहै शंका होय वा उदवेग, एक शब्द बहुत बार आवै तहाँ वीप्सा ॥२॥

(आदर करि)

दो०—आवो आवो छाँह यहि, बैठो बैठो श्याम।
बोलहु बोलहु बोल बलि, कहाँ चलेहु केहि काम ॥३॥

टीका—आदर तेः—आवो आवो, बैठो बैठो, बोलो बोलो इत्यादि ॥३॥

(भय करि)

दो०—हाय हाय कहि हायको, ब्रजपर मेघ निहारि।
भागहु भागहु नारि नर, सुमिरौ श्याम सँभारि ॥४॥

टीका—भयकरि हाय हाय भागो भागो ॥४॥

(उद्वेग करि)

दंडक—गुंजरत मंजुल मलिंद जहाँ मंद मंद,
कोकिल कलापी कीर कहाँ को भगायो है।
सघन तमाल पर लतिका ललित तहाँ,
निरखो निकट नीर नहरि बहायो है।

१—वीप्सा का अर्थ है पुनरुक्ति अर्थात् आदर भय आदि कारणोंसे एक ही शब्दको एकाधिक बार कहा जाय तब वीप्सालंकार होता है जैसा कि उदाहरणमें स्पष्ट किया है। कलापी = मोर ॥५॥

आवो आवो आवो दौरि बेर न लगावौ 'बृज'
पाछे पछिताउ फेरि बनै न बनायो है।
धावो धावो धावो हेरि बाँधकी बँधावो घेरि,
कालिंदीकी धार कुंजधाम परधायो है ॥५॥

टीका—उद्वेग करि यथाः—आवौ आवौ, धावो धावो कुंजको धाम बचावहु याते अनुप्रास ॥५॥

(श्लेष)

दो०—एक शब्द मैं अर्थ बहु, जहाँ कहत सो श्लेष।
बर्ण्यावर्ण्य अबर्ण्य कहि, वर्ण्य सहित भै लेष ॥६॥

टीका—श्लेष जहाँ एक शब्द से अनेक अर्थ तीनि भाँति ॥६॥

दो०—सो तीनौं विधि लिखत हौं, दूतिन मैं पद सोधि।
उत्तम मध्यम अधम है, तीनि बात परबोधि ॥७॥

टीका—तीनिउ विधि कहै विधान ते लिषत है ॥७॥

रस राजा सिंगार रस, प्रजा चाहिए ताहि।
सर्ब जाति ताते लिखे, दूती दूत सराहि ॥८॥

टीका—रसन के राजा सिंगार ताको प्रजा चाहि दूतादिक ॥८॥

जौन धर्म जिन जाति को, कहै बात रुचि सोइ।
निकसै तामैं दूतपन, तब दूती वह होइ ॥९॥

टीका—जो धर्म जेहि जाति को होय वह कहै तामे दूत पन को बात निकरै ताहि दूती कहिए ॥९॥

जग मैं कौम छतीस हैं, तामें भेद अपार।
दूती दरपन में लिखे, सबके मैं ब्यौहार ॥१०॥

टीका—जग मैं कौम छतीस हैं तामें अनेक भेद तासो छतीस जातिके ॥१०॥

तामें सो मैं काढ़ि कछु, लिखे इहाँ अनुमानि।
रचना रुचिर निहारि कवि, छमहु ढिठाई जानि ॥११॥

टीका—कवित्त दूतीदरपन ग्रंथ निकारि कहै इहाँ लिखो है ॥११॥

काज सबन के सधत है, कौम छतीस विचारि।
त्यौं नायक अरु नायिका, दूती काज निहारि ॥१२॥

टीका—जैसे कार्य्य छतीसौ कोम ते सबके होत है तैसो दूती ते सिगार रस मैं नायक नायिका के होते हैं ॥१२॥

बिरहि निबेदन एक है, संघट्टन है एक।
देत मिलाइ छोड़ावही, मान उपाय अनेक ॥१३॥
टीका—विरह निवेदनादि तीनि दूती है, मिलवत छोड़ावत ॥१३॥

कवि—दास—(दूती लच्छन, रस निर्णय)

दो०—पठई आवै अवर की, दूती कहिए सोइ।
अपनी पठई होइ सो, बानदूतिका जोइ ॥१४॥
टीका—पठई अवर की आवै दूती, अपनी पठाई बानदूतिका ॥१४॥

(दूती-भेद)

अनसिखई सिखई मिली, सिखई पै कहि जाइ।
उत्तम मध्यम अधम जो, तीनि दूतिका आइ ॥१५॥
टीका—उत्तम मध्यम अधम ॥१५॥

(उत्तम दूती)

हिय हजार मोहि लाभ री, बहै अमा तिन श्याम।
करति जाति छामोदरी, देह छमा ते छाम ॥१६॥
टीका—हिय में हजार लाभ ॥१६॥

छामोदरी=कृष्णोदरी, पतली कमरवाली। छाम=कृष ॥१६॥

दूती—लक्षण ग्रन्थकारों के अनुसार, नायिका लेख्य, प्रस्थान, स्निग्ध-वीक्षण, मृदुभाषण और दूती संप्रेषण द्वारा नायक के प्रति अपने भावों को अभिव्यक्त करती है। दूती कौन हो सकती है? इस विषय में साहित्यदर्पणकारका कथन है—सखी, नटी, दासी, छात्री, पड़ोसिन, बालिका, भिक्षुणी, कारु और शिल्पिनी आदि दूतियां बनाई जाती हैं, कभी-कभी स्वयं नायिका भी दूतकर्म कर लेती हैं। प्रकृत ग्रन्थकार ने जिन ३६ दूतियों का वर्णन किया है वे 'कारु शिल्पिनी आदि' की श्रेणी में ही आती हैं। ग्रन्थकार के दूसरे ग्रन्थ 'दूती दर्पण' में निश्चय ही इस विषय का विशद विवेचन रहा होगा किन्तु प्रयत्न करने पर भी यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध न हो सका। यों तो दर्पणकार प्रभृति ने उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन ही प्रकार सभी दूतियों के माने हैं किन्तु प्रकृत ग्रन्थकार ने (मूलतः) दो प्रकार कहे हैं। १. दूती, २. बानदूती, इनमें अन्तर यह बताया है कि जो दूसरे की भेजी हुई अपने पास आये वह दूती और अपनी भेजी हुई जो दूसरे के पास जाये वह बान

(मध्यम)

दो०—कहत मुखागर बालके, रहत बन्यौ नहि गेह।
जरत बाँचि आई ललन, बाँची पाती लेहु ॥१७॥

टीका—जरत रही बाचि आई हौं यह पाती लेहु ॥१७॥

(अधम)

लाल तुमै मनभावती, दीन्हो समैं पठाइ।
माग्यो जरकी औषधी, कहौ कहौ त्यौं जाइ ॥१८॥

टीका—जर की औषधी मागी है सो कहौ कहौ जाइ ॥१८॥

(बानदूतिका)

हित की अरु हित अहित की, अरु अहितै की बात।
कहै बान दूतीन के, गुन तीनों गति जात ॥१९॥

टीका—हित, हित-अहित, अहितै की बात कहै सो बान दूती है ॥१९॥

(हित)

कियो चहत बन माल तौ, आज रहो यहि धाम।
फूल माल को आइ है, फूल माल सो बाम ॥२०॥

टीका—जो बनमाल कहै माल सदृश्य कीन चाहौ यहि धामको फल और माला लेन को आइ है ॥२०॥

(हित अहित)

पहिरि श्याम पट श्याम निसि, क्यों आवै वर बाल।
होहि कितौ उत निबिड़ तम, दुरत न बरत मशाल ॥२१॥

टीका—अहित हित—स्याम पट पहिनि स्याम निशा में क्यों आवै वर सुन्दर बाल, कितौ उत्तम निविड है तौ आवै तन मशाल ऐसे प्रकाशमान तो न ऐहै पहिले आवन कह्यो हित, क्यों ऐहै यह अहित ॥२१॥

दूती है, दूती तीन प्रकारको बताई हैं—उत्तम मध्यम और अधम। बान दूतिका भी तीन प्रकार की कही हैं—हितभाषिणी, अहितभाषिणी और हिताहित भाषिणी। शेष ग्रन्थ में ही स्पष्ट है।

जरत बाँचि आई = जलनेसे से बच गई (कामाग्निमें) ॥१७॥

मनभावती = प्रिया। जर = काम ज्वर ॥१८॥

(अहित)

पावत बंदन हीन अरु, दावन घेरु विशाल।
है नवरी अस्तीन की, चहत यकतही लाल॥२२॥

टीका—पावत—पावत बंदन हीन अरु दावन घेरे अस्तीन कहै बाँही एकतही मिरजाई यकहरी यह अर्थ आँगा पक्षे, अब नायिका पक्षे पावत बंदन कहै घात नाहीं पावत या दावन कहै फ़ुरसति या जतन घेरू विशाल कहै घेरे है सब घर के लोंडा, है नवरी०—कहै अस और को तिय बड़ी नहीं जैसी वह है, चहत एक तुही कहै चाहत है येक तुही को यह लाल॥२२॥

त्यों ही सकुल कवित्त में, सब दूतिन की रीति।
कहत यथामति बूझि करि, उदाहरन करि प्रीति॥२३॥

टीका—तैसे ही सब कवित्तन श्लेषकरि वर्णन है॥२३॥

(दूतीगणना)

मालिनि, बरइनि, ग्वालिनी, बारिनि, नाइनि मानि।
पनिहारी, धोबइनि तिया, बढ़ै, लोहार बखानि॥२४॥
रंगरेजिनि, दरजिनि सहित, बेस बिसातिनि रीति।
कबरिनि, कुरमिनि, गंधिनी, सहित पसारिनि प्रीति॥२५॥
बरतन बेचन हारिनी, चारु चितेरी ठान।
तरकी बेचन हारिनी, चिरै मारिनी मान॥२६॥
तेलिनि, अरु हलवाइनी, और बजाजिनि होइ।
धुनैन अरु मल्लाहिनी, कलवारिनि कहि सोइ॥२७॥
कमरो बेचन हारिनी, रतन पारखी बाम।
सिकिल दारिनी, भरिनि कहि, और सोनारिनि काम॥२८॥
पटहारिनि, चुरिहारिनी, डोमिनि तिरगर नारि।
कहौ कुम्हारिनि छत्तिसौ, और अनेक बिचारि॥२९॥

॥ इति ॥

टीका—यथा संख्या—मालिनि[१], तमोलिनि[२], ग्वालिनि[३], बारिनि[४], पनिहारिन[५], नाइनि[६], धोबइनि[७], बढइनि[८], लोहारिनि[९], रंगरेजिनि[१०], दरजिनि[११], विसातिनि[१२], कचिरिनि[१३], कुरमिनि[१४], गंधिनि[१५], पसारिन्हि[१६], बरतनबेचनेहारी[१७], चितेरी[१८], तरकिहारी[१९], चिरैमारिनि[२०], तेलिनि,[२१], हलवाइनि[२२], बजाजिनि[२३], धुनिनि[२४], मलाहिनि[२५], कलवारिनि[२६], गड्डरिनि[२७], रतनपारषीवाम[२८], सिकिलदारिनि[२९], सोंनारिनि[३०], भरिनि[३१], पटहारिनि[३२], चुरहेरी[३३], डोमिनि[३४], तिरगरिनि[३५], कुभरिनि[३६]॥२४–२९॥ यही प्रकार छतीसो दूती वरणो है।

अथ श्लेषमें छतीसों दूती—

(मालिनी दूती)

दंडक—सेवती है आलिन की अवली जो आस पास,
बगरै, सुगंध मंद वृंद सुखधाम है।
सुंदर सिंगार हार मंजु मौलशिरी सोहै,
चारु चंपकली कहि जात न ललाम है।
केतकि निवारी मान सुंदरी विलोकि 'वृज',
कुंदन वरन जाहि जपा करै नाम है।
आजु यहि बेला माहि श्यामा को मिलाइ देहौं,
माल है अनेक भाँति भावै सोई श्याम है ॥३०॥

टीका—फूल पक्षे सेवती—सेवतीको आली कहैं भौंर घेरे है और सिंगार हार फूल और मौलशिरी और चंपकली कहै चंपा और केतकी नेवारी कुंदन जपाकर जूही कनइल आदि वहि बेला के फूल में श्यामलक फूल को मिलाइ कै माला बनाइ लैहौं, हे श्याम जो तुमको भावै इति। नायिका पक्षे सेवती पद० सेवती कहै सेवा करती है आली कहैं सखीजन और सुगंध जो अंगरागन की फैलत है धाम में सुन्दर सिंगार, सिंगार करिकै हार आदि भूषन, मंजु मौल-शिरी कहै सुन्दर मौल कहै माथ शिरी कहै शोभा जेकरे भाल में है, चारु चंपकली चारु कहै रमनीय चंपकली कहै चंपा कैसे रंग, जा तन कहै जेकरे तन में छाइ रहै है केतक नेवारी केतक कहै कितनी सुन्दरी आपने रूपको मान निवारी करै है,

न्यून मानती है वह कुंदन जो सोनाको वरन कहै रंग अवलोकि कै हे कृस्न जेकर नाम तुम जपा करत कहै रटा करते हौ ताहि को आज वाहि बेला कहै वहि घरी में श्यामा कहै राधिका को मिलाइ देहौ। माल है अनेक-मा कहै शोभा जाकी अनेक प्रकार की जो तुमै भावती है ॥३०॥

(बरइनि दूती)

सवैया—चारिहुँ ओर निहारि सँभारि उपायन सो कतरो है रसालहि।
लाइहौं मैं बरजोरिकै पावन तोहित प्रेम लगाइ बिशालहि ॥
पुंज प्रकाश करै सुख जो कहि जात न जैसे है लेसे मशालहि।
धै अधराधर सारस पानहि लाल करो मन भावत ता लहि ॥३१॥

टीका—पान पच्छे—चारिहु ओर कहै धोइ करि कतरो कहै तरासे है, लाईहौं बरजोरी कहै सुंदराई से जोरि कहै लगाइ लाई हौं, पुंज प्रकाश कहै

बहुत शोभा मुख में करिहै जैसे लेसे मशालहि कहै जस मसाला खैरसुपारी आदि लेसे कहै लगे है। धै अधराधर कहै ओठ धै सारस ताकर रसपान कहै बीरा खाइ कर लाल कीजै ॥

टीका—नायिका पक्षे—चारिहु वोर पदः—चारिहु वोर कहै सब वोर देखि कै कतरो कहै कितनो जतन करिहै रसाल कहै रस के धाम। लाइ हौ पद—लाइहौ बरजोरी कहै बरजस पावन कहै पैदर तो हित कहै तिहारे हेत प्रीति को प्रेम बड़ो लगाइ लाई हौं पुंज प्रकास पद० पुंज कहै अनंत प्रकाश है जाके मुख में कहि जात न० कहै जे करे तन मे ऐसी दुति जैसे मशाल की ज्योति लेसे कहै वारे है, धै अधराधर कहै ओठन पर ओठ धरि सारस कहै अधर को रस पान करो हे लाल जो तुम को भावत है ता लहि तौने को लीजै ॥३१॥

(अहिरिनि दूती)

सवैया—मेल सो पावन कै पहिले फिरि तामे धरे पय कौन बखानी।
सीरे करे हरे बातन सो परे लाल कराही मैं देखि सयानी ॥
जामन दै तेहि वाम कहै अब मान तजो मन माखन आनी।
देहौं दही अजौ मैनविकार बिचारि कहो बृजराधिका रानी ॥३२॥

टीका—दही पक्षे-मेल सो—मेलसो कहै मेलसा जामें दूध दुहावै है ताको पहिले पवित्र करि कै पय जो दूध धरे, मंद सीरे करै पद० सीरे कहै धीरे धीरे बात कहै बयारि करि कै जब कराही मे लाल परे जामन दै० जामन दै जमाये हैं माखन जो मन चाहत और दही मै निकारन देउँगी इति ॥

नायक पक्षे-मेल सो पावनः—मेल सो कहै प्रथम मिलाप जो किये सो पावन कहै पवित्र फिरि तामें धरे पय कौन फिरि का पनी तामे कहै तिनमै पय कहै दोष कौन लगाए सो कहै, जामन दै पद०—जामन कहै जेका मन दिए तेहि वाम कहै टेढ़ कहती है। अब मानत जो अर्थ मन ते मान छोटो माखन आनी माखन लावो।

देहौं दही पद०—देहते सरीर दही कहै जारे है अजौ मैन विकार अजौ कहै अजही मैन कहै काम विकार कहै कलोल चाह आदि हे राधिका रानी इति ॥३२॥

(वारिनि दूती)

सवैया—काज करो निज वारी भलो यह तौ हित हेत किये श्रम जे है।
कोरि उपायन सो खरिका कँह लाई है बैठि किए छवि गेहै ॥

दोनों विलोचन दै इत देखत मंजुल चोप तियामे लसे है।
बूझिहौ वै पनवारो विलोकत रीझिहौ जो लहि पातरी देहै ॥३३

टीका—वारी पक्षे—काज करो काज कहै यह वारी हमारो बनायो तिहारे हेत श्रम करि कै ॥ कोरि उपायन०—कोरि कहै तरासिक खरिका जासो दाँत खोदते हैं और बैठकी औ दोना चोपती चारि पत्ते कै औ पनवार देखि मोहिहौ और पतरी देहै तौ रीझिहौ इति ॥

नायिका पक्षे—काज करो निज पद०—काज कहै आपन हेत वारी कहै समैं भली है करो तिहारे हित के बदे बड़ो श्रम किए है, कोरि उपायन सो०—कोटि जतन से खरिका कहै जो गऊ गाँव के बैठाते हैं तहाँ लै आई, बैठि किए छवि गेहै कहै बैठि अहै छवि गेह में प्रकासित किये है, दोनों विलोचनन पद—दोनों नेत्र देखि रही है, मंजुल चोप पद०—चोपतिया मेल से चोप कहै चाह तिया कहै स्त्री में बसे है, बूझिहौ०—वैपनवारो कहै चोपि होवै कहै अवस्था जुवा वारिहौ लहि पातरी देहै अर्थ पातरि है। देखि मन वारिहौ कहै वस होइहौ इति ॥३३॥

(नाइनि दूती)

सवैया—जावक हेरी वहै मन भावन स्वच्छ सिंगार रसै बरसै।
लाईहौं लाख उपायन सों मन मानत जो रुचिको सरसै ॥
नेकु मलीन न होय कबौं कहुँ पानि ते पायन को परसै।
लाल है मंजु महाउर हाल लगाइले बाल न तो तरसै ॥३४॥

टीका—जावक हेरि पद० जावक है महावर को हेरि वही है जो तेरे मन मैं भावत है रसै बरसै कहै रस को प्रगटत है क्यौं की सोरह सिंगार में जावक प्रथम बरने हैं। लाइहौं लाख पद—लाख कहै लाह जो रंग बनत है सो उपाय सो लाई हौं, जो मन हमारे मानत कहै चाहत है, नेकु मलीन पद०—नेकु कहै रंचहु मलीन न ह्वैहै कहतौ पाँय पानि ते पखारि कै लगावै, औ लाल कहै अरुन है हे बाल लगाइले नहीं तौ तरसैगी ऐसो न मिलि है, नायक पक्षे—नाइनि दूती मान छुटावन गई। जावक हेरि पद०-जावक हेरि जाव कहै जाउ जहाँ हरि है कहेरी कहैरी सखी कहे हमसो वहै मन भावन कहै वोई मन भावन जो तुमारे मन भावत कहै जिसको पियार करती रही। स्वच्छ सिंगार पद०—स्वच्छ अच्छा सिंगार रस को बरसन हारे कहै पूर करन हारे हौ। लाख उपाय पद०—लाख कहै अनेक जतन करि लाई हौं, मनमान तजो० कहै मनके मान को त्यागो, नेकु मलीन पद०—कहै रंचहु

मलिनाई कबहुँ न होइहै कहौ तौ हाथ ते तेरे पायन कौं परसै कहै तेरे पाइ परैं पानि धरैं याते प्रनत उपाय, लाल है मंजु—लाल जो श्री कृस्न बहुत शोभमान है, हाल ही गरेमें लगाइ ले नहीं तो फेरि पछिताइगी जो रूठि जाइहै ॥३४॥

(पनिहारी दूती)

सवैया–वह ह्वै गई बावली जोबन मंजु मलीन महा केहि भाँति बखानी।
कहि जात न पानिप छीन भए चलि पास बसै तेहि पूछि पिछानी॥
यहि औसर काज बिचारि किये बनि है मन मान तजो हित जानो।
'बृज' मैन बिकार सो देहै घटो भरि बारि बिलोकत नैन सयानी॥३५॥

टीका—बावली पक्षे—वह ह्वै गई—वह बावली कहै कुआ जो बन के जल मंजु कहै सुन्दर हुते सो मलीन कहै काई लगि गई। कहि जात न–कहो नहीं जात पानिप कहै सो प्रकासता छीन भई, यहि समै काम सँभारि कै करो। बृज मैन बिकार० मैनही विकार घट कहै गगरी भरि देउगी॥

नायिका पक्षे—वह पद—वह नायिका जासो प्रीति रही सो तुमारे बिना बावली कहै बौरही है गई, जोबन कहै तरुनाई मलीन है। कहि जातन० कहै जाके तन के पानिप जो सोभा छीन भई यहि औसर कहै यहि घरी मन मान तजो कहै मनके मान त्यागो हित जानि कै, बृज मैन बिकार पद० बृज कवि की उक्ति मैन विकारसे देह घटो कहै कृशताई आई, भरि वारि कहै जल भरे नेत्रसे मग हेरि रही है॥३५॥

(धोबइनि दूती)

सवैया—यह काज करै कहु के सहजे अतुराइ किये न कछू बनि आवै।
तरवा कर धूरि चढ़ै शिर पै शिरस्वेद कनी तरवा तरै जावै॥
दुति सारी ये स्याम मलीन भई केहिते केहि नेह लगे हैं छोड़ावै।
'बृज' बाल उपाय को हाल करै जेहिते वह लाल लली कलपावै॥३६॥

टीका—धोबी पक्षे दुति सारी पद—कहै दुपट्टा श्यामरंगके मलीन है, कै हितपद-कौन नेह कहै तेल लगो है ताहि छोड़ावै, बृजबाल पद—ए बृजबाल, उपाय करि जेहि ते वह लालपट कलपावैगी ताहि हम करैंगी, नायिका पक्षे–यह काज पद-यह काज कहै यह बात सहजो को करै, तरवा पद-शिर के पसीना तरवा तर जाइ है और यह एक लोकोक्ति है अर्थात् यह की बहुबार जब इतै उतै जायगी तब ह्वैहै, दुति सारी पद—दुति कहै जोति सारी कहै सब स्याम कहै कृस्न की

मलीन कहै मंद है, केहि पद—केहिते कहै कौनै कारन यह गति भई, नेह कहै प्रीति लगी तू छोड़ावती है, बृजबाल पद-हे बृजबाल उपाय कहै जतन ऐसो करै जेहि ते लाल कहै नायक फल पावै कहै सुख लहै ॥३६॥

(बढ़इनि दूती)

स०—जाहि की चाह लला सत सालहि सोधि बनाइ लै आइहौं ताको ।
पावन रंग सुरंग महावर पाटी परी छबि है सिर वाको ॥
ता परबीनी बरो गुन सुंदर मंजुल सो कहिहै सुषमा को ।
या पलका मैं विहार करो 'बृज' लाई तिहारे कि सो सुखदा को ॥३७॥

टीका—पलका पक्षे—जाहि की चाह हे लला जाको चाह हतो सो सत साल कहै लकरी सोधि कहै सालिकर लै आईहौं ताको कहै ताहि को, पावन रंग पद–पावन कहै मचवन मैं रंग लाल बर कहै श्रेष्ठ पाटी और सिरई लगी है, तापर बीनि पद–तापर कहै तेहि पर बीनो है बरो गुन कहै भाँजी रसरी मंजुल सोकाहि कहै शोक शोभा मान है, या पलका पद–या कहैं यह पलका कहै पलंगा पर विहार करो ॥ नायिका—जाहिकी चाह ललासत–जाहि कहै जेहि की चाह कहै अभिलाष ते सत साल कहै सब साल है कसक रहा सो लै आई हौ ताको कहै देखो । पावन रंग सुरंग पद—पावन कहै पगन मैं रंग महावर पाटी परी कहै केस पास गुहे हैं छबि सिर कहै माथ में वाके है । तापर बीनी पद—ता कहै तौनि परबीनी कहै नागरी बरो कहै बड़ो गुन कहै निपुनता जामे भरे हैं या पलका मैं विहार करो या पल कहै यहि घरी कामै कहै मनोज बिहार कहै रति प्रसंग करो ॥३७॥

(लोहारिन दूती)

सवैया—मंजु लसै दुति पावन पानि भलो कटि है सिर वार नकारे ।
सोन ही रंग बखानिबे जोग है तेज बड़ी मुहँ की रुचिधारे ॥
है यहि बानक बेस बनी 'बृज' सान किए छबि बाढि निहारे ।
स्वच्छ सनेह सनी असि सुंदरि काल्हि लै आइहौं तीर तिहारे ॥३८॥

टीका—तरवारि पक्षे—मंजु लसै०—मंजु कहै बड़ी स्वच्छ दुति कहै चमक पावन कहै विमल पानि कहै पानी भलो है कटिहै कहै दो खंड करैगी, सिरवारन कहै माथ हाथी के। सो नहीं पद—सो कहै वह रंग बखानिबे जोग नहीं है । तेज बड़ै मुह० मुह की बड़ी तेज है, रुचि धारे धार चोखी है,यहि बानक कहै यहि भाँति से बनी है, सान कहै खरसान पर चढ़ाइ कै बाढ़ि कढ़ी है, स्वच्छ

सनेह—स्वच्छ कहै अच्छा सनेह कहै तेल में सनी लगाई है असि—सुन्दरि असि कहै तरवारि सुन्दरि तीर कहै पास दूसर अर्थ तीर कहै बान काल्हि लै आइहौं इति ॥

नायक पक्षे—मंजु लसै पद—मंजु कहै कोमल दुति कहै रंग पावन कहै पग, पानि कहै हाथ, कटिहै कहै करिहाँउ सिरवारन कहै केस, कारे कहै स्याम हैं। सोनही रंग बखानिबे०—सो न कहै सो नाही कहै निश्चै करि देह के रंग बखानिबे जोग्य है, तेज कहै प्रकाश मुह कहै मुख के बड़ी है, बानक कहै यहि भाँति से बनी है, तासो सान कहै गुमान किए है, अपनी छवि बहुत देखि कै स्वच्छ सनेह सनी असि०-स्वच्छ कहै सुन्दर सनेह कहै प्रीति सनी कहै पूरित असि कहै यहि भाँति सुन्दरि कहै नायिका तीर कहै पास तिहारे लै आवौंगी इति ॥३८॥

(रँगरेजिनि दूती)

तब तो कहे लाल पै चित्त चुभै अब तो क्यौं कहै जनि वै जनि लावै।
फिरि आनि अरोपहि रोसो सनी असमानी निके कहि मोहि बतावै ॥
'बृज' आनै पिया जी सी नेह लगे यह बात किए न कछू बनि आवै।
मैं न रँगो पियरो रँग साँवरे ऐसो न बाम कलाम सुनावै ॥३९॥

टीका—रंग पक्षे—तब तो पद०ताहि छिन कहो लाल रंग पै चित्त चुभे हैं, अब क्यौं कहती है बैजनी लावो फिरि आनि कै अड़ी कहै देती है कि मैं सोसनी पहिरोंगी और असमानी और पियाजी। मैनपद—मै न रंगो मैं अब न रंगो, पियरो अवर साँवरो रंग को ऐसी बातैं बाम कहै न सुनावै इति।

नायिका पक्षे–तब तो पद०–तब कहती रही की लाल जो कृस्न जी हैं तापै चित्त चुभे हैं, अब तो पद—अब क्यौं कहती है जनी वै जनि लावै कहै है जनी हे सखि वैजनि उनको जनि लावै, फिरि आनि पद—फिरि कै घूमि कै आनि कहै आ करि अरोष किये हिये में रोस कहै रिस सनी, असमानिनि पद—अस कहै ऐसी मानिनि को है बृज आनै पद—बली कहै बलाइ लेउ अनै पिया जी से औरे पति से नेह तासो इतनो मान, मैन रंगो पद मैन कहै काम रँगो है श्याम को पियर रंग ऐसो कलाम कहै बात बाम कहै टेढ़ न कहै इति ॥३९॥

(दरजिनि दूती)

दंडक—राज सो नपैहै बड़े चाल हैं तरह दार,
नीके तनजेब जामैं छबि छावै बूंद है।

अरज मैं कीन्हे 'बृज' ब्योत सो अनेक भाँति,
मिलिबे को मगजी सो कतरो कै बंद है।
कमर पतील सोहै केतक कली बगल,
मंजु असतीन और देखे सुख कंद है।
आगा अरु पीछे हेरि परदा से लाइ घेरि,
बाला बर बेस जौन आपको पसंद है ॥४०॥

टीका—जामा पक्षे—गज सो नापैहै बड़े गजन से नापै है, कपड़ा तनजेब है जामा बनायो है। अरज पद—अरज कहै चौड़ाई में अनेक ब्यौंत लेबे को मगजी की है कतरो कितनो बंद लगाये हैं, कमर पतील पद—कमर पट्टी लगी है, केतक कहै कितनी कली और बगल और अस्तीन कहै बाँही देखो आगा अरु पीछा परदा घेर कै सिलाई और बाला बर सुन्दर वेश जौन आपको पसन्द है ॥

नायिका पक्षे—गजसो नपै है:—गज कहै हाथी सो कहै बड़े मतंग है चाल तरहदार यह नायिका कीन पैहै, नीके तन जेब नीके कहै आछे तन जेब कहै तन मैं शोभा छाइ रही वृंद है। अरज मैं कीन्हे—अरज कहै विनती बृज ब्यौत बृज कहै कवि की उक्ति ब्यौत कहै उपाय अनेक कहै बहुत, मिलबे को मग०—मिलबे को कहै यकठा होनो को मग कहै राह में जी सो कहै जीव लगाइकै, कतरो बंद० कतरो कहै कितनो बंद कहै घात कीह है, कमर पती०-कमर कहै कटि सूक्ष्म केतक कली कहै केतकी के फूल के कली कैसे बगल है, मंजु अस्तीन पद० मंजु कहै सुन्दर अस्तीन कहै अस्तीन और कहै दूसरी देखे है, हे सुख कंद आगा पीछा पद—आगे और पीछे देखि कै परदा से घेर लाई हौं, बालावर—बाला कहै नायिका वर कहै श्रेष्ठ जो सुन्दरी है जो आपको पसन्द है ॥४०॥

(बिसातिनि दूती)

स०—'बृज' मंजुल काम किनारी चितै चित चारु चुभै रमनी सुरमोहै।
अलि काह बखान करो अब रेसम को है नेवार बड़े अरजो है॥
सुखमा सुख देखि परै मुकरे तिलरी हम जानी है लालरि सोहै।
नग है अस रोसनी कीमतिदार अजो मन मानत जो कहि सोहै ॥४१॥

टीका—बिसातिनि पक्षे—काम किनारी—काम है किनारी में, सुरमे है, रेसम के नेवार है, मुकुर कहै ऐना और तिलरी हम जानी है लालरी है नग है जो तुमार मन चाहै सो लेइ इति ॥

नायक पक्षे—बृज मंजुल पद—बृज कवि की उक्ति—मंजुल कहै सुन्दर काम कहै मनोज की नारी रती चितै चित्त और रमनी सुन्दर मोहै कहै रमनी

स्त्री सुर कहे देवतन को मोहती है। सुखमा पद०—सुखमा कहे शोभा मुकरे कहे मलीन है। तिलरी कहे तिय लरी कहे झगरी है तूँ लाल रिसोहै कहे लाल जो नायक सो रिसो कहे रिसिहा है। नग है पद—न गहै कहे नहि पकरै रोसनी कीमति दार रोस कहे रिसि नीकी कहे अच्छी मति, हे दार। अजो पद०—अब मान को तजि दे इति ॥४१॥

(कबारिनि दूती)

स०—तूति अमार पियारि कै सेव रसालहि आमिलि लै रस भारी।
गाजरि मूरि बोये सुख पालक सेमि लै सुंदरि है यहि बारी॥
लीजिये मेरसो कै चित चाह करेलहि केलि घरी सुखकारी।
काकरि फूटि है बैर बड़ो अब लासुन आन पियाजू कियारी॥४२॥

टीका—कबारिनि पक्षे—तूति—तूति है अमार सेव रसाल कहे आम है अमली गाजरि मूरी पालक सेमि है यहि बारी में मेरसा करेला केरा घुरी काकरि बैरि लासन पियाज लीजे॥

टीका—नायिका पक्षे—तूति अमार पद—तू तिअ मार कहे काम, प्यार करि सेवै, रसालहि कहे जे रस के घर है आ मिली रस भारी आइकै मिलु रस ले, गाजरि मूरिबो—कहे गाइ जरि मूरिबो कहे ऐसो रूठिबो सुख पालक है सुखके देन हार है। मिले तो सो मिलै यहि बारी कहे यहि साइति, लीजिये पद० मेरसो कहे मिलाप चित चाह से करि ले या घरी ही सुखकारी कहे सुखकी देन हारी, का करि पद०—का करि कहे काह करिहै फूटि कहे भिन्न ह्वैकै बैर कहे दुरभाव, अबला सुन० हे अबला नायका सुन आनै कहे और पति से यारी कहे प्रीति है॥४२॥

(कुरमिनि दूती)

दंडक—लहै शुभ धान कैसे जोधरी निरस भाव,
सोचन बिछोह कर अकसै विकार है।
'गोकुल' केराव आछे सरसवै नेह भरे,
तासो अरसी ले बोलै तिलो तो विचार है।
लावहि को दोसरी बतावै ताहि जो खरीतै,
मासुरी समान प्रिय गेहू में अपार है।
बड़े रिझवार खड़े बरदै है वारि ग्वालि,
आरहरि आजु मिलै सान तजै प्यार है॥४३॥

टीका—अन्न पक्षे—लहै पद—लहै कहै लेईं सुभ कहै सुन्दर धान जोधरी भाव निरस है सो चना बिछो है कर यह बिछे है अकसै कहै अकसा निकारि डारे गोकुल केराव० कवि की उक्ति केराव सरसौ अरसी लीजै तिल जो विचार होइ लावहि कोदौ खरी बतावैं और जव मसुरी गोहू जो प्रिय होइ। बड़े रिझवार पद—बड़े कहै बहुत रीझत है खड़ा उरद और अरहरि जो मन तुमार चाहत हो सो लेइ इति ॥

नायक पक्षे—लहै सुभ पद०लहै सुभ धान कहै सुभ स्वच्छ निहचिंतई जो निरसोच कैसे हो है जो यह निरस बिना रस के भाव धारन किए है। सोचन बिछोह कर—सोच कहै चिंता बिछोह कहै वियोगकर नहीं है यह अकसै कहै बयर बिकार है। गोकुल केराव पद०—गोकुल कहै नगर विशेष तेकर राव कहै राजा कृस्न हैं तासो अरसी ले कहै तिन सो निरस बोलै है तिलौ तो कहै तनिको विचार तेरे नहीं है। लावहि या—लावहि कहै को लगावत है दोष ताहि बतावैं जो खरी कहै सच्ची। होइ तू मासुरी समान पद—मा कहै लछिमी सुरी कहै देवतन की इस्त्री के समान जिहिके गेह प्रिय अपार कहै सो हजार नायिका है। यह मध्यम दूती की उक्ति है बड़े रिझवार बड़ कहै बहुत रिझवार कहै रीझनेहारे खड़े कहै ठाढ़े तेरे आस उर कहै मन अपना वारि देहैं आर हरि कहै मित्र कृस्न मान तबो मान कहै गर्व मन ते त्यागो प्यार कहै प्रीतम ते इति ॥४३॥

(गंधिनी दूती)

सवैया—रीझि हौ छ्वै कर सीसी भरै मुँह लोचो वै देखत रंग विमोहै।
के सकै श्याम बखानि प्रभा अतरो रुचिरो कहि जात न जो है॥
दै है जो चंपक तेल है मंजुल जाके सुगंध मनोहर मोहै।
सीरे सिताब कै ताप बड़ो 'बृज' पावन पानि गुलाब तौ सोहै॥

टीका—गंधिनी पक्षे—रीझिहौ पद—रीझिहौ कहै खुश होगे सीसी भरे है मुहु लोचो वा केस कै स्याम हे स्याम अतर कै सोभा को बखानि सकै देहै चंपक देइगी चंपक कहै चंपा के तेल और सीरे सिताब कहै शीघ्रही ताप को हरै है ऐसे गुलाब के पानी ॥

नायक पक्षे—रीझिहौ पद०—रीझिहौ कहै मोहि जैहौ कर कहै हाथ से छुए पर जब वह सीकार मुँह से भरैगी। केस कै केस कहै बार कै शोभा अतरो अतना रुचिर है कहि जा तन जो है देहै जो० देहै कहै तन चंपक है चंप के रंग सुगन्ध मनोहर है। सीरे पद०—सीरे कहै सीतल सिताब कहै सिघ्र ही करत है पावन कहै पाव पानी कहै कर गुलाब के फूल से हैं ॥४४॥

(पसारिन्हि दूती)

स०-कसतूरी अहै करियारी मुरी कछु सोचर लोन लहै मन भावै।
धनिया 'बृज' तूतिया केसरि है बलि पीपर सेंदुर भाव सुनावै॥
तज नागरि जो अँवरो सह तो रजनी है भली सजनी हरे लावै।
चित चाह जो है करपूर अजो बनि आवै कहे सबके न बतावै॥४५॥

टीका—पसारी पक्षे—कस्तूरी०—कस्तूरी है करियारी सोचरलोन है मन भावै कहै जो चाहती होइ। धनिया पद०—धनिया तूतिया पीपर सेंदुर के भाव सुनावै है। तज-पदः—तज पाता है नागरि कहै सोंठिहै अवरा सहत रजनी कहै हरदी हरा कहौ लै आवै। चित चाह पदः—चीत है चाह है करपूरक है कपूर है बनिया के सब यह केन कहावत है मसाला आदिक इति॥

नायक पक्षे—कस्तूरी०—कस्तूरी कहै तू री सखी कैसी है करियारी मुरी यारी कहै प्रीति मुरी कहै मुख मोरी रही है कछु सोच कछु कहै थोरहू सोच कहै चिंता नहीं है लहै मन भावै कहै जासो मन भावत है। धनिया०—धनि कहै धन्य है या कहै यहि बृज मैं केसरी है कहै तेरे सम को है बलि पीपर-बलि कहै तेरी बलैया लेऊँ पीपर कहै पराये पी सो दुरभाव कहै दुष्ट भाव सुनाती है। तज नागरि०—तज कहै त्यागु ये नागरि जो अाव रोसहतो कहै जौन न रोस कहै रिसि हतो कहै हुतो रजनी है राति भली है तेरे पास लै आवै चित चाह जो है०—जो चाह कहै अभिलाष होइ पूर कर अजो कहै अबही सबते न सुनाव कहै कोई यह बात न जानै॥४५॥

(बरतन बेचन हारिनी दूती)

दंडक—माल है अनेक भाँति अमल अनूप सो है,
फूलन के बासन बरनि बृज आइ है।
जो है मुह कर भलो सुभ गगरै की छवि,
लोटहि बिलोकि 'बृज' आप ही बिकाइ है॥
तामन की तौली रुचि कलित कराही रही,
पीतरि बरन रंग है मैं देखाइ है।
लहति मद्दा निहारि मानत जो मानवारि,
मिलिहै परात गोडेदार की लै आइहै॥४६॥

टीका—बरतन पक्षे—माल०—माल कहै धातु अनेक भाँति के हैं तामे फूलन के बासन नहीं बरनिबे जोग है—सोहै मुह कर :—मुह कर मुह गगरे कहै गगरा के सोहत है। लोटा कहै जल पात्र देखि आप ही बिकाइ कहै

रीझिहौ तामन की तामन कहै तामौ की तौली है रुचि कहै जो चहै औ कराही पीतरि की देहौं देखाइ मैं लहि तमहा लहि कै कहै लखि कै तमहा निहारि बो मन मानि है तौ वारि देहौं मन मिलि है। परात गोड़ेदार को लै आई हौं इति ॥ नायिका पक्षे—माल है अनेक०—मा कहै शोभा अनेक है लहै कहै लखै। फूलन के वासन पदः—फूल कहै प्रसूनन के वास कहै सुगंध नहीं वरनि जाइ है ऐसे अंगन मे है जो है मुह कर भलो जोहै कहै देखै मुह कहै मुख कर कहै कला भलो है सुभग गरे की छवि सुभग कहै सुन्दर गरे कहै ग्रीवां की छवि लोटहि कहै त्रिबली को देखि बिकाइ कहै मोहि जाइ। तामन पद—ता मन कहै तेहि मन की तौली कहै परखी है रुचि कहै चाह कलित कराहि कलित कहै कै रही है आहि पीतरि बरन न दे है पीतरि कहै पियर बरन कहै रंग देहै कहै तन मे देखाति है। लहि तमहानि हारि लहि कहै पाइ तम कहै अँधेर हानि कहै मिटि जाइबो देखि मान तजो कहै मान त्यागो मन वारि मिलिहै। परात गोड़ेदार—प्रात कै प्रात काल गोड़े कहै पैहरे दार कहै स्त्री को लै आइ हौं इति ॥४६॥

(चितेरिनि दूती)

सवैया—परभा न लहै घनकुंतल नील कला अछराज मुखी छवि छाजै।
'बृज' सोहै सुकंठ भुजा बर अंगद जे हरि पायक मंजु बिराजै।
युत लक्षन भावय देही लसै रुचि रंगभरी दुति सुन्दरि साजै।
बिरचे बिधि सो अपने करसो दरसो चलिचित्र के मंदिर राजै ॥४७॥

टीका—चित्र पक्षे—परभा न लहै०—प्रभा कहै शोभा न लहै कुंतल नील ऋछराज कहै जामवंत बृज सोह-सुकंठ सुग्रीव अंगद जे हरि पायक कहै हनोमान युत लछन कहै सहित लछिमन बयदेही कहै जानकी की दुति सुन्दरि विरचे रचे है चित्र के मंदिर देखो चलि इति ॥

नायिका पक्षे—परभान लहै०—प्रभा कहै आभा घन कहै मेघ कुंतल कहै बार के नही लहते हैं कहै पातरे हैं कला रिछराज कला कहै परकास। रिछ-राजमुखी कहै चन्द्रमुखी नायिका की छवि छाइ रही है बृज सोहै बृज कवि की उक्ति सुकंठ कहै सुंदर ग्रीव भुजा कहै बाहु अंगद कहै बिजायठ जे हरि कहै पैजनी पायक कहै पाय के राजत है जुत लछन जुत कै सहित लछन कहै सुभ मा कहै शोभा वैदेही वहि देह में राजत है बिरचे विधि सो बिरचे कहै रचे है विधि कहै ब्रह्मा मानो आप इति ॥४७॥

(तरकिहारिनि दूती)

सवैया—पावन पुंज प्रभा दरसै सरसै कहि जात न दीपति वारै।
भारी धरे नग सोहै सुनी कर वै 'बृज' राजै लखे मनहारै॥
आजु लै आई बनाइ भले विधि जो रंग साँवरे तोहि पियारै।
कानन में बिलसै छवि मंजुल तारन के तरकी जो बिहारै॥४८॥

टीका—तरकी पक्षे—पावन पुंज—पावन कहै विमल प्रभा है दीपति-वारे कहै चमकवारे भारी धरे भारी कहै दामवारे रवै कहै रवा जो तरकी मै होते हैं। आजु लै—तिहारे हेत लाइ विधि सो रंग दिये हैं साँवर कहै श्याम जो तुम्हें पियारो है। नायिका पक्षे—पावन पुंज—पावन कहै पवित्र पुंज कहै बहुत जातन कहै जे करे दीपति के जोति दरसै है भारी धरे नग भारी कहै गंभीर नग कहै परबत गोबर्धन सोहै सुनीकर कहै सुनाकर पर राधे वै बृज राजै कहै वोई बृज के राजा है आजु लै आजु कहै अबही लाई हौं साँवर रंग श्यामल रंग जो तुम्है पियार है कानन मै विलसै कानन कहै बनमै छवि विलसत है। तारन को तरकी पद—कहै तालकै बृक्ष तर कहै नीचे विहारै कहै भोग की जो कहै करो॥४८॥

(चिरैमारिनि दूती)

सवैया—मंजुल कोक कलापी में है पर काक है कोइल है रंगवारी।
हारिल लावै अजो सुन कानन तूती बड़ी मुख बोलनिहारी॥
जो मन माह कुही है कहै करवानक सारो भले मिलै प्यारी।
तोते करार बटेर कहौ 'बृज'लाल लै आइहौं जाल पसारी॥४६॥

टीका—पच्छी पक्षे—मंजुल कोक० मंजुल कोक कहै चकई चकवा कलापी कहै मजोर काक कहै कागा कोइल कहै कोकिला हारिल तूती बड़ी बोलनहारी कहै बहुत बोलती है, बाज करवान सारो कहै मैना तोते कहै सुआ करार बटेर लाल को जाल पसारिकै लावोंगी।

नायिका पक्षे—मंजुल पद० कहै सुन्दर कोक कलापी में है कहै कोक की रीति जाने है परका कहै पर कहै दूसर को काह कहै की कोइल है रंग-वारी कोई वह रंग कहै भाव को न पाइ है। हारि लला० कहै हारिकै वै लला तेरे बोल सुनिकै तूती बड़ी तूती कहै तै ती बड़ी मुखकी बोलनहारी है जो मनमाह कही जो मन में कही कहै सोच होइ करवानक कहै सब कजकर मिलै तोते करार कहै तोसो अवधि करती हौं बृजलाल कहै बृज के लाल को जाल कहै छलबल करिकै लावोंगी इति॥४६॥

(तेलिनि दूती)

मानत जो चित तेल है सुंदरि आजु तयार मिलै मनभाई ।
बोलै कहा अरसी ले अजो तिय तेरे बिचार तिलो ठहराई ॥
जो अब लाही करू कहि बातहि प्यार किये मनही सो मिठाई ।
और सुनै सरसौ कै सनेहहि तो हित सो अब देहैं पिराई ॥५०॥

टीका—तेलपक्षे—मानत पद–मानत कहै जो चित चाहत होइ सो तेल सब मिलि है, बोलै कहा० कहै अरसीलै कहै अरसी कै और तिलकै जो अब लाहीक है जो लाही कै करू चाहती होइ या मिठा चाहती होय या सरसो के चाहती सो पिराइ देऊँगी इति। नायिको पक्षे—मान तजो० कहै मानको त्यागो, चित ते लहै सुन्दरि मिलै ऐ सुन्दरि आजु तै यार कहै मित्रको जो मनभावत होइ। बोलै कहा पद कहै काह अरसीले कहै अनरस बोलती हैं, तिय तेरे हे तिय तेरे तिलौ-विचार कहै तनको विचार नहीं है जो अबलाही करू० कहै जो अबला कहै नायका करू कहै और सुनै० और कहै फेरि सुनै सरसौ कहै अधिक सनेह से देह में परी है ॥५०॥

(हलवाइनि दूती)

दंडक–प्रीति करि लहै अनरसै अलबेली बाल,
चाह बरफी की नीकी रसमे रसाल को ।
लई मुरबा लै कहा बेगि दे बतासो वही,
कौन मिसिरी लै मनमानै जो विसाल सो ।
'गोकुल' बखानै बलि माखनहि आनै प्रिय,
सबै सुख सेवन मै पाई है निहाल हो ।
मोद करि मिलै बरसोलहि अनन्द कन्द,
मंजुल मिठाई खोवै खई 'बृज' बाल तो ॥५१॥

टीका—मिठाई पक्षे—प्रीतिकरि लहै प्रीति कहे नेह करि अनरसै कहै अनरसा औ चाह बरफी कहै अभिलाष से बरफी लेई मुरबाले कहै लीजै मुरब्बा को बेगि बतासो कहै शीघ्र ही बतासो की लीजै मिसरी लै माखनहि कहै लौ माखन और सेव में रावरी रुचि है, मोदक पद–मोदक कहै लड्डू बरसोलहि कहै बरसोला आनंदकंद कहैं सुख देन हारे है कंद औ खोवा आदि इति ।

नायिका पक्षे—प्रीतिकरि पद—प्रीति कहै सनेह करि अनरसै कहै निरस बोलती है । हे अलबेली बाल चाह वर फीकी कहै अभिलाष वर कहै श्रेष्ठ फीकी

कहै अनचाह रसमें ह्वै जैहै, लई मुर० लई मुर बात कहा कहै लीन्हें कहा कहै कौन रूसिबे की बातै कहै, बात को बेगि सो बतावो कौन मिसि री कहै री सखी कौने बहाने से मान ठानै है। बलि माख नहि आवै—बलि है मैं तेरी बलि जाउँ कहै बलाइ ले माख नहि कहै माख न है अमरख न मन आनै सबै सुख सेवन संग कहै सारे सुख सेवन कहै सेवकाई सो मिलत है, मोद करि कहै आनन्द करि मिलै, बर सो लहि बर कहै पति सो आनंद के कंद है मंजुल कहै स्वच्छ मिठाई कहै चाह, खोवै खई कहै विनासै खई कहै कलह हे बृज बाल ॥५१॥

(बजाजिनि दूती)

दण्डक–सोहै गुल बदन अमल के सकै बखानि,
चीकन है चारु मखतूल जो बिसाल बर।
सुभग अधर सोहै मारकीन ऐसो प्रिय,
नीकी लगै सारी दुति सुन्दर प्रकास घर।
मंजु उर माल पुंज प्रभा राजै तनजेब,
देखत नयन सुख सुषमा उजास कर।
जौन है गरज लाल तूल कै अरज बड़ो,
लाई हौं उपाइ करि मिलिहै दुकान पर ॥५२॥

टीका—कपड़ा पक्षे—गुलबदन चीकन मखतूल और अधर मारकीन सारी उरमाल तनजेब नयनसुख लालतूल इति ॥

नायक पक्षे—सोहै गुलबदन० सोहै कहै शोभामान है गुलबदन कहै फूल कैसे मुख केस कै बखानि कहै केश जो बार ताको बखान चीकन मखतूल कहै रेसम कैसे है, सुभग अधर सुन्दर अधर कहै ओठ है, मार की न ऐसो प्रिय कहै मार जो काम ताकी प्रिय कहै रति सो नहीं है, नीकी लगै सारी दुति० कहै आछी लगति है सारी कहै सबै दुति ऐसी सुन्दरि प्रकाश किये घर में, मंजु उरमाल पद० मंजु सुन्दर उरमें माला है पुञ्ज प्रभा तनजेब पुञ्ज कहै बहुत प्रभा कहै आभा तन कहै देह जेब कहै सुघराई है देखत नयन सुख देखत कहै देखे ते नयन को सुख ह्वै है, जाहि की गरज कहै अर्थ चाह हे लाल तूल कहै दुरुस्त कियो है, अरज बड़ो कहै बिनती करि लाई हौं सो मेरे दुकान पर है मिलिहै इति ॥५२॥

(धुनिनि दूती)

सवैया–अस मंजु महान रमै बृज कौ न बखान करौं सुषमा छबि छावै।
तिहि तूलहि आजु उपायन सो 'बृज' हेरि कै आपने धामहि लावै॥

परदे करि बातन सो धुनिके मति संचि सखी करि प्रेम लगावै।
अति जो मन भावतो सो पिउरी मिलि है निशि आवते आवते आवै ॥५३

टीका—रूई पक्षे—अस मंजु० अस कहै ऐसो मंजु कोमल नरमे कहै नरमा अर्थात् जिन्हे कपास कहते हैं। छबि छावै है तिहि पद० तेहि कहै ताहि तूल कहै रूई अपने घरको लै आइहौं, परदे पद० परदे कहै बोट बातन कहै बयारि सो धुनि कहै धुनिकै मति थिर करि, अति जो मन पद० अति जो मन-भावतो कहै जो अति मनभावत है सो पिउरी कहै बाती के सदृश होती है, निशि आवते कहै साँझ होत ही आवै तौ पावै इति। नायिका पक्षे—अस मंजु कहै ऐसे सुंदर नर मे बृज कहै बृज के नरन में ऐसो गोप लोगन में कौन है, बखान करि कहती है, शोभा को छाइ रहे है तिहि कहै ताहि तूलहि कहै तू आज लहि कहै मिलि है, अपने घर लै आइहौ, परदे पद० परदे कहै गुप्त बात न कहै बचन सो धुनि कै कहै समुझि बूझिकै मति संचि कहै बुद्धि थिर करि प्रेम को लगावै, अति मन कहै जो मनभावत है सो पिउ री कहै री सखी सो पिउ निश आवते आवते आवै कहै निशि होत ही आवते कहै आवै कहै आवैंगे इति ॥५३॥

(मल्लाहिनि दूती)

सवैया—भावत भौंर है केशकै जानि बड़े 'बृज' लोयन मीन समानै।
नीक है नाक लहै मुह सो मगरो दरसै बिलसै कछु आनै॥
जोबन मंजुल सो कहि जात न सुंदरि केसरि काहि बखानै।
आइहौं लै कर बोहित देत परो रहै घाट वै छूछ छिपानै॥५४॥

टीका—नदी पक्षे—भावत भौंर है—भावत कहै राजत है भौंर कहै जहाँ जल घूमत है, के सकै जानि बड़े है लोयन कहै सुन्दर मीन कहै मछरी है नीक है नाक अच्छी है, नाक लहै कहै देखे मगर कहै घरियार कछु आनै कहै कछू और भाँति के हैं, जो बन मंजुल जो बन कहै जल है के कहै बरनि नहिं जात, सरि कहै नदी ऐसी है काह बखान करौं, आइहौ लैकर० कहै ले आई हौं बोहित कहै नाव तब हित हेत हीको यहि घाट पर छूछ छिपाने कहै लुकाने परे रहत हैं, या हेत उतरै लायक नाहीं है, इति। नायिका पक्षे—मल्लाहिनि दूती नायका की बात कहै है—भावत भौंर कहै भौंर मलिन्द ऐसे केस कहै बार भावत है। नयन मीन० लोयन कहै नेत्र मीन कहै मछरी से चंचल हैं, नीक नाक० कहै नासिका सुन्दर मुहुँ कहै मुख सोम कहै चन्द्रमा गरो दरसै ग्रीवा देखायमान हैं, जोबन पद० जो बन कहै तरुनाई मंजुल कहि जा तन कहै जाके तन में सुन्दरि

केसरि कहै नायिका के सरि कहै केकरे बराबर बखान करौं, आइहौं लैकर लै कै आइहौं, करबो हित० अर्थ हित की हिताई करिहौ परे रहै घाट कहै वहि घाट परो रहै छूछ कहै सुन्य जहाँ कोई नहीं जात छिपानो कहै गुप्त है रति ठौर जोग जानो। इति ॥५४॥

(कलवारिनि दूती)

सवैया-माते हैं मंजुल पान रले मुख जाहि बिलोचन रंग लुनाई।
है सुखदायक देखे चुभै चित आजु कहा 'बृज'कीजे बड़ाई॥
सोहै सुहावन जो बनो है मद देहै मनो हरतो मन भाई।
फैलत जामें सुगंध है फूल सो छैल छिपाइ दुकूल में लाई॥५५॥

टीका—मद पक्षे—माते हैं मंजुल—माते हैं कहैं मतवारे हैं पानरले कहै जे पिये है तिनके नेत्र में अरुनाई है, सुखदा० कहै देखै चितै प्रसन्न है सोहै सुहावन कहै सुन्दर जो बनो है यह कहै जस बना है मद देहैं कहै देउँगो फैलत जामे सुगन्ध कहै सुवास फैलत है फूल सो कहै फूर जो अगिनि में डारे बरि उठै तिन्हैं फूल कहत हैं सो हे छैल लै आइहौ इति॥ नायिका पक्षे—यह कलवारिनि दूती कहै है। माते है पद० मा कहै लच्छिमी ते कहै तेहि ते मंजुल कहै सुंदरि है जाहि कहै जिहि बिलोचन कहै नेत्र लोनाई कहै शोभा है, है सुखदायक० कहै वह सुखदेन हारी देखतै लोभि जाइहौ। सोहै सुहावन कहै सोभावान जोबनो कहै जवानी मद कहै तरुनाई कै मद देहै कहै देह में मनोहर कहै मन हरै या फैलत जामें, फैलत कहै बगरत है सुगन्ध फूल कैसे छैल छिपाइ कहै छैल ताहि छिपाइ दुकूल कहै बसन वोढ़ाइ कै लै आई हौं इति ॥५५॥

(कमराबीननहारी दूती)

स०-अति चीकन चारु सँभारिकै बार बरो मृदु मै मखतूल से मानो।
'बृज' भाल है मंजुल पाटी रली रुचि सुन्दर तापर बीनी है जानो॥
बिरचे बिधि सो निज पानि भले छबि जात नहीं कहि काहि बखानो।
कमरो पतरो रुचिरो रँग पावन मै मन भावन तो हित आनो॥५६॥

टीका—कमरा पक्षे—अति चीकन०—अति चीकन कहै अति चीकन बार जो है मृदु कहै कोमल बरो कहै बरा, मखतूल कहै पाट कैसे हैं बृजभाल कै कहै भा सोभामान कहै है पाटी रली कहै कमरा में पाटी कै जोर लागत है सो रली कहै जोरी है, सुन्दरता कहै तापर बीनी है बिरचे बिधि कहै रचे हो बिधि कहै जतन से कमरो पतरो कहै कमरा पातर कहै महीन तुम्हारे हेत लाई हौं है

मन भावन इति। नायिका पक्षे—यह गड़रिनि दूती नायिका की शोभा कृष्ण से बरनत है अति चीकन चारु कहै अति चीकन है सुहावन चारु कहै रमनीय बार है मखतूल कहै रेसम है मानो बृजभाल है० बृज कवि की उक्ति की भाल पर पाटी गुहे है रुचि सुन्दर है ता परबीनता कहै तौनि परबीनि कहै नागरी है बिरचे बिधि सो कहै रचै है बिधि कहै ब्रह्मा निज कहै अपने हाथ सो छबि जात नहीं कहै छबि नहीं कहि जात है, कमरो पतरो कहै करिहाँउ की पातरि रुचिर कहै सुंदर रँग पाउन में कहै महाउर जुत है मन भावन ताहि लाई हौं इति ॥५६॥

(जवाहिरिनि दूती)

स०—केश कै नीलम आभा विलोकि भलो दुति मानि कहैं छबि भारे।
हैं अति सुन्दरता मुकता कहि जा तन रीझिहौं हीरा निहारे॥
सारी चुनी रंग रूरे लसै मनि भाल हैं पुंज प्रभा उजिआरे।
जो मन भाई हैं लाई हौं सो पर बाल अहैं घर लाल हमारे॥५७॥

टीका—रतन पक्षे—के सकै कहै के देखि सकै ऐसी आभा नीलम केहै औ मानिक के है। अति पद० कहै सुंदरता मुकता कहै मोती कहि जात नहीं सारी चुनी पद० सारी कहै सब चुनी रंग लसै मनि प्रकाश वारे है जो मन भाई० कहै जो मन चाहत है सो लाई हौं और परबाल कहै मूँगा सो मेरे घर है इति॥

नायिका पक्षे—जवाहिरिनि दूती नायक से कहै। केश कै पद० केश कहै बार कै आभा नीलम कहै स्याम मनि कैसे दुतिमानि कहै दुति कहै दीप्ति भलो मानि कहे है अति सुन्दरता० कहै सुन्दरता मुकता कहै बहुत जा तन कहै जेकरे तन मा हीरा कहै हृदय देखि रीझि हौ, जो मन भाई पद० जो कहै जाहि मन को भावत है सो पर बाल कहै पराई नारि मेरे घर है इति॥५७॥

(सिकिलिदारिनि दूती)

दण्डक–जगमगै जोति जो मै वोपनी कसीस रंग,
फँसे बहुबार श्याम सोहैं धारि सानो मैं।
पावन परम छबि मखमल कैसे लाल
दीह दुति मंजुल सी राजै का बखानो मैं।
'बृज' अवलोकि मुँह की है अति आबदार,
कटिकै कठोर छाती छैल छुइ जानो मैं।
सुभग सनेह सनी बनी हैं सलोनी असि,
सुन्दरि चढ़ाइ लाई मंजुल मिआनो मैं॥५८॥

टीका०—सिकिल पक्षे—जगमगै कहै झलकत है वोपनी औ कसीस के रंग कसे हैं बहुत बार स्याम है रंग और धारि पावन परम कहै विमल रंग है छवि देखत मखमल कैसे लाल है और सिराजा के कौन बखान करौं बृज दुति पद०मुँह की है अति आबदार कटि है कठोर छाती कहै हे छैल मुँह की बड़ी आबदार कठोर छाती को कटि है सो छुइ कै देखि लई है, सुभग पद०कहै सुन्दर सनेह कहै तेल सनी कहै विनसाई असि कहै तरवारि मिआनो कहै मियान को चढ़ाइ कहै बनाइ लाई हौं। यह सिकिलदारिनि दूती नायक सो नायिका को मिलाप करायो चाहति। नायिका पक्षे—जगमगै पद० कहै जगर मगर जोति दीपति वोपनी कहै सुहावन स्वच्छ है, ससिरंग कहै ईंगुर आदिक से बहुबार कहै केश को बाँधे है स्याम कहै नील सोहै धारि कहै धारन किये है। सानो कहै गुमान को पावन कहै पाव दूनौ मखमल ऐसे लाल दीह कहै बड़ी दुति लसी रहै। राजै का बखानौ मे राज रही है मैं काह बखानौं कहै बरनन करौं बृज अवलोकि० कहै देखि मुँह की अति आबदार कहै मुह की अति चटकीली है। कटि है कठोर छाती० कटि है कहै कमर कठोर कहै करें है। छाती कहै स्तन हे छैल छुइ हौ तब जानि हौ। सुभग सनेह पद कहै स्वच्छ सनेह कहै प्रीति सनी कहै लगी है असि कहै यहि भाँति सुंदरि नायिका मिआनो कहै पालकी पर चढ़ाइ लै आई हौं ॥५८॥

(किरातिनि दूती)

दण्डक—कारे बिषधर ऐसे केस कै विलोकि आभा,
लोयन चलाक मृग लोने छबि छावतो।
द्विजन की पाँति बड़ी कांति मुँह रीछराजै,
भ्राजै सुग्रीव जैसे हरि दरसावतो।
'बृज' कमनीय करिहाऊ केहरी लौ खरी,
नेउर दबाय पाय चलै चित चावतो।
देहौं मै देखाइ अस यौवन ललित लाल,
कीजियै बिहार जो शिकार मनभावतो ॥५९॥

टीका—बनपक्षे—कारे कहै स्याह बिषधर कहै साँप ऐसे हैं की कौन देखि सकै। लोयन कहै सुन्दर, चलाक कहै भगैआ, मृग कहै हरिनाद्विजन की पाँति, द्विज कहै पच्छी, पाँति कहै श्रेनी, कांति कहै सोभा, मुँह कहै मुख के रीछ राजैं रीछ कहै भालु राजत हैं। सुग्रीव कहै सुकंठ ऐसे हरि कहै बाँदर है। बृज कमनीय०—कमनीय कहै रमणीय, करि कहै हाथी, हाऊ कहै भेड़िया, केहरी कहै

सिंह औ लोखरी नेउर पाय दबाय को चलते हैं। देहौं मैं देखाइ०—कहै बनाइ देऊँगी जो बन कहै जौन बन है, बिहार कहै बिचरौ, जो सिकार खेलै के होइ सो खेलौ, यह किरातिनि कहै भीरनि है दूती नायिका की शोभा नायक से बरनत है।

नायिका पक्षे—कारे कहै स्याम, बिषधर कहै पन्नग ऐसे, केस कहै बार, तेकर आभा कहै या भा है, लोयन कहै नेत्र, मृगा कैसे हैं, दिजन०—दिज कहै दाँतों की, पांति कहै अवली, बड़ी कहै बहुत, कांति कहै आभा, मुँह कहै मुख, रीछ कहै नक्षत्र, राजै कहै चंद्रमा कैसे मुख सुग्रीव के सुंदर ग्रीव है, हे हरि कहै कृष्ण ऐसे देखे हैं, बृज कमनीय०—कमनीय कहै रमनीय है, करिहाँउ कहै कमर, केहरी कहै सिंह कैसे है लोखरी, लो बाचक, खरी, नेउर कहै रसना, रसना कहै क्षुद्रघंटिका, दबाइ को पाय धरति अर्थात् परकीया है, देहौ मैं० देहौ कहै सब अंगन में, अस यौवन कहै ऐसी तरुनाई, ललित कहै सुहावन कीजै बिहार को जो सिकार कहै जौन सिकार सी सी रतिसमै में करती है जो तुम्हारे मनमें भावत सो आजु मैं देखाइ देऊँगी इति ॥५९॥

(सोनारिनि दूती)

सवैया–दिय भाग सोहाग भलो बिधि सों तिहि बातन ते पिघलाइ रसै।
कहि जात न राजत हैं मुकुता दुति सोन प्रभा बहु बार कसै॥
यहि बानक सो सुषमा छबि चन्द कलै दुति मानि कहै जो लसै।
'बृज' बेसरि आजु मिलै वह सुंदरि जे हरि जीय तिहारे बसै॥६०॥

टीका—बेसरि पक्षे—दियभाग कहै दिये है भाग जितनो चाहिए सोहाग कहै सोहागा बिधि कहै जतन ते सोना में पघिलाइ कहै गलाए है, कहि जात० कहि जात नाहीं वही सोनामें मुकुता लैकर कसै है, यहि भाँति से छबि चंदक है और मानिक लगे, बृज बेसरि कहै आजु बेसरि कहै बुलाक, जेहरि कहै पैजनी मिलैगी इति। **नायिका पक्षे—**यह सोनारिनि दूती नायिका की भा बरनत है, दिय भाग० दिये कहै दीजै, भाग कहै कर्म सो पघिलाइ कहै हिको, बहुबार कहै बहुतबार, जातन कहै जेकरे तनमा मुकता कहै बहुत दुति कहै दीपति सोना कहै कंचन कैसे राजत है, यहि बानक कहै यहि भाँति से, सुषमा कहै कांति, चंदकला कहै शशि कैसे प्रकाशमनि कहै मानत है, बृज बेसरि कवि की उक्ति, बेसरि कहै बिना श्रम ही वह सुंदरि कहै वही नायिका जेहरि जीय कहै हे हरि जे तिहारे जी में बसती सो आजु मिलैगी ॥६०॥

(पटहारिनि दूती)

स०–जो कछु गाँठि मुरी की परी सुरझाइ भले विधि सो हरि हाल है ।
काह बखान करो अब रेसम है दुति सुन्दरि रंग बिसाल है ॥
पुञ्ज प्रभा नख ले शिखरो मन लाइ गुहे वह बार रसाल है ।
पाइ हौ लाल वही परबाल को जो मन भावत मंजुल माल है ॥६१॥

टीका—पाटपक्षे—जो कछु कहै गाँठि औ मुरी परि रही सो छोड़ाइकै बिधिसों हे हरि काह बखान कहै रेसम को काह बखान करौं, पुंजप्रभा कहै बहुत प्रभा कहै आभा नखलेसि कहै लगाइ खरो कहै आछे भाँति मन लाइ गुहे, पाइहौं० कहै पावोगे परबाल कहै मूँगा को माला जो तुमारे मन भावत है, इति।

नायिका पक्षे—यह पटहारिनी दूती को बचन है, जो कछु गाँठि कहै अकसमुरीं कहै मान के समै की ताहि बिधि सों छोड़ाई है हे हरि हालि कहै सीघ्र ही, काह बखान० काह कहै कौन, बखान कहै बरनन, करौ कहै कीजै, अव-रेसम कहै औरे के समता दुति कहै दीपति सुंदरि कहै सुहावनि रंगबरन बिशाल कहै बड़ो है । पुंज प्रभा० पुञ्ज कहै समूह प्रभा कहै आभा, नख कहै पायनते, शिख कहै सिरतक है । रोमन कहै नारा, बहु कहै स्त्री, गुहे कहै बाँधे, बार कहै केश को, पाइहौ कहै मिलैगी, लाल कहै हे कृष्ण, वही कहै सोइ, पर बाल पराई बाल जो मन भावत चाहि जहैं, मा लहै कहै लक्ष्मी कहै शोभा को प्राप्त है इति ॥६१॥

(लहेरिनि दूती)

वै रंग नायक जोरती है कहि जाइ न श्याम प्रभा छवि छावै ।
जा चित चाह ते जात चुरी तिहि आजु मिलै मन मोद बढ़ावै ॥
लाइहौं लाख उपायन कै 'बृज' देखिय लाल जो तो मनभावै ।
बंदहि बंदहि बाह मिलाइ ले साध जो होइ तौ साध बतावै ॥६२॥

टीका—चुरिया पक्षे—वैरंगनायक० कहै चुरिया में वैरंग ना होत, यक जोरती है कहै जो रहै है तिय स्याम प्रभा जामैं है, जाच्वित कहै जाहि चित चाहते जात रही सोईं चुरी कहै चुरिया मिलि है, लाइहौं लाख उपाइ लाख कहै लाह उपाइ कहै जतन से लाइहौ जो यह लाल लाह रंग कहै । बंद-बंद जोर जोर बाँह में पहिन जो साध होइ तौ साध कहै इच्छा पूर करै ।

नायिका पक्षे—यह लहेरिनि दूती नायिका की प्रशंसा करि मिलावती है, वै रंग नायक ० वै कहै अवस्था रंग नायक जो रती कहै है काम के ऐसे प्रभा

स्याम कहि नहीं जातौ। जाचित० कहै जाहि चाहते चुरी कहै गरी जात रही तिहि को आजु मिलै, लाइहों० कहै लाख, उपाय कहै तदबीर से लाइहौं, देखु जो लाल मन भावत होइ, बंदहि बन्द-बन्द कहै घातै घात बाँह कहै अंक भरि ले साध कहै जो हौसिला होय सो बतावै कहै पूर करिले इति ॥६२॥

(डोमिनि दूती)

सवैया—हेरिहौं पावन बागे बने बृज आजु तिहारे हिते हित माने।
चीरो भलो बिधि सो है सखी सिरकी छबि कामै बिलोकि बखाने
देहै मै सूपन ये री सुनै लखि मोहि रहै बृज की बनिताने।
तै फटकी है दिनै बहुते तेहि बाँधि अनेक उपाइ ते आने ॥६३॥

टीका—सूपपच्छे—हेरि हौं० हेरि कहे हूँदै है, पावन कहै, पवित्र, बागे कहै बगिया, बनै कहै बिपिन में चीरो भलो कहै चीरा है, बिधि कहै जतन से सिरकी कहै जासों सूप बनत है, देहमैं० देह कहै देउँगी सूप नवा जाहि देखि बृजनारी मोहि रहै, तै फटकी० तू बहुत दिन तक फटकिहै कहै पछोरिहै, ताहि बाँधि कहै बनाइ लाइहौं। नायिका पच्छे—यह डोमिन दूती कृष्ण की बड़ाई करिकै मिलायो चाहती है, हेरि हौ कहै देखि हौ, पावन कहै पाँयन में, बिमल बागे कहै जोड़ा जामा पेन्हे बने है, तिहारे हेत चीरो भलो कहै पगरी, सिरकी कहै माथ की, छबि कामै कहै छबि काम कैसी है, देहै में सूपन कहै देह में सू कहै सुंदरपन कहै अवस्था, येरी कहै ये सखी, जेहि देखि बृज की बनिता मोहि रही हैं, तैं फटकी है तू फटकी कहै बिकल बहुत दिन ते रही है, सो ताहि उपाय कहै जतन बाँधि कहै करिकै आने है कहै लाइहौं ॥६३॥

(तिरगरिनि दूती)

मंजु सुबास भरे कहि जात न पातरे हैं मनो साँच के ढारे।
सुन्दर सो नहि रंग बखानिबे योग अहै बिधि सों दए सारे॥
गोसे मैं गासि कै गाढ़े गहौ कर कीजिए जो चित चाहत प्यारे।
लोचन सो अनियारै लगै 'बृज' कालिह लै आइहौं तीर तिहारे॥

टीका—तीरपक्षे—मंजु० कहै स्वच्छ, सुबास कहै सुन्दर बास भरे कहै भरत् कहिजात नहीं मानो साँचेके ढारे हैं, सुंदर कहै अच्छा रंग दिये हैं। बिधि सो बखानिबो जोग नाहीं, गोसे में कहै धनुहा के रौदा में गासि के मिलाइ कर गहै, लोचन सो अनिआरे कहै नेत्र से नुकीले लखो तीर कहै बान तिहारे कालिह लै आवोंगी।

नायिका पक्षे—यह तिरागरिनि दूती है नायिका की प्रशंसा करती है, मंजु सुबास कहै सुभग, सुगन्ध है जाके तन में, पतरे कैसे हैं तन जैसे साँचे के ढारे, सुंदर सोन कहै स्वच्छ सोना ही कहै बहिरंग बखानिबे योग विधि कहै बह्मा सारो कहै सब दई है। गोसे० गोसे कहै एकान्त गासि कहै अंक भरिकै जो चितमा चाहै है सो करो लोचन सो० लोचन कहै नेत्र अनिआरे कहै नुकीले, ऐसी सुंदरि कालिह तीर कहै पास तिहारे लै आइहौं इति ॥६४॥

(कुँभारिनि दूती)

न घटो मन भावतो कै कछु चाह कहै रुचि साँच कहौ करिकोलै।
तिय देहु कै मेलसो मंजुल पावन ग्वालिनि जाहि चहै चित सोलै॥
'बृज' और चहै तौ धरै धर धीरज आजु औ कालिह कै धोस न बोलै।
परसों कर वादे हैं आवै लगे बलि छोड़ि कराहि दिली मिलै तोलै॥

टीका—बरतन पक्षे—न घटो० न कहै नाहीं घटो कहै घट गगरी नहीं भवरत है कहै रुचि अर्थ आपन अभिलाष कहै साँचा बनावै, तिय है तिय मेल सो कहै मेलसा जामें दूध दुहावै है, परसों कहै परो, करवा दे कहै करवा देहै, आवौ लगै कहै आँवा लागि है भछोड़ि और कराहो दिली कहै दिअरी और कराही मिलि है इति। नायिका पक्षे—यह नायिका कुँभारिनि दूती है। न घटो कहै नाहीं कम, मनभावतो कहै नायक कै चाह कहै प्रेम, साँच कहै सत्य कहती हौं, करि कोलै कहै यकरार, तिय देहु० कै मेलसो कहै मेर, मंजुल कहै स्वच्छ, जाहि चाहै है। परसो० परसों कहै तीनि दिन करवादे है वा अवध आवैं लगै कहै आवै लग कहै ढिग छोड़ि कराहि कहै आहि करब, त्यागि दिली कहै मन से मिलै इति ॥६५॥ इति श्लेष ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(वक्रोक्ति अलंकार)

दंडक—बारन को बाँधै खुले पील पीलवान बाँधै,
सारी को सँभारि खेलि चौपरि न जात है।
नेह के लगाये सुख केश मै की देही ही मैं,
यह कौन दशा दीप बारे दरसात है॥
भूषन सँवारि चलै पढ़े कबिताई नाहिं,
मिलै नँदलाल "काह हाट मैं बिकात है।

कोप तरुनी के नाहि नीके कब देखे बाग,
बात को बिचारि कहौ वहै कौन बात है ॥६६॥

टीका—प्रीतिपक्षे—बारन कहै केश को बाँधै, बक्र उक्ति, बारन कहै हाथी को पीलवान बाँधै है, नायिका कहो सारी को सँभारि लै नायिका कह्यौ सारी नाम चौपरि की गोट कहै हम नहीं खेलती, नेह कहै प्रीति के लगाए सुख नायिका कहै नेह कहै तेल बार में लगाए सुख की देह में कह्यो यह कौन तेरी दशा कहै हाल कही दशा नाम बाती दिया में देखि परी है, कह्यो भूषन जो गहना पहिनि चलै कह्यौ भूषन कहै अलंकार हम नहीं पढ़ो है। कह्यो मिले नँदलाल कहै दलाल नाहीं मिलते हैं। कोप तरुनीके कहै कोप क्रोध तरुनी कहै नायिका को नीक नाहीं होत कहै कोप नाम अंकुर तरु कहै वृक्ष नीके में कब देखे। कह्यो बात बिचारि कहै कह्यो बात नाम कौन बयारि बहै है ॥६६॥

दंडक—जावरी बन्यौ है बृजराज आज कौन काज,
किए पूरी कौन बात कहिए प्रमान को।
भली बेरही में रुचि धरी है कवन वह,
कढ़ी छवि आगे काह कीजिये बखान को ॥

वक्रोक्ति—वक्ता के भिन्नार्थक कथन का श्रोता श्लेष या काकु द्वारा भिन्न ही अर्थ में उत्तर दे तब वक्रोक्ति होती है। वास्तव में उक्ति की विलक्षणता ही वक्रोक्ति है। कुछ आलंकारिकों ने अतिशयोक्ति में ही इसका अन्तर्भाव किया है। अन्य अलंकारों की अपेक्षा इसका प्रभाव साहित्य शास्त्र पर अत्यधिक रहा है। यहां तक कि आचार्य श्री कुंतक ने "वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्" कहकर इसे ही काव्य का आत्मा सिद्ध करने का प्रयास "वक्रोक्तिजीवित" नामक ग्रन्थ द्वारा किया है। प्रसिद्ध आलंकारिक श्री भामह ने भी इसकी प्रशंसा इन शब्दों में की है—

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना ॥"

बारन = केशों को, हाथी। पील = हाथी। पीलवान = महावत। सारी = साड़ी, चौपड़ की गोटी। चौपरि = चौपड़ (एक खेल)। नेह = प्रेम, तेल। दशा = अवस्था, बत्ती। भूषन = गहने, अलंकार (उपमादि)। नँदलाल = नँद के कुँवर कृष्ण, दलाल नहीं। कोप = क्रोध, कोंपल। तरुनीके = युवती के, अच्छे वृक्ष। बात = वार्ता, वायु ॥६६॥

बड़े रिझवार उर देहैं कौन ग्वालि कहँ,
भा तन विलोकि शोभा किन रूपवान को।
लहै बराबरी तोसो को है घटिअरी बाम,
बिसद रसोई नव रस मे सयान को ॥६७॥

टीका—रसोईपक्षे—जाउरी री सखी जाउ कहै जहाँ ब्रजराज बन्यो है। कह्यो जाउर जो दूध की बनत सो बन्यो है। कह्यो पूरी करै कहै पूरी नाम लुचुई बनी है भली देरही में मिले कहै बेर नाम समै भली है कह्यो बेरही रोटी चना के दालि की बनती है। कह्यौ कढ़ी कहै निकसी है छवि, कह्यौ कढ़ी नाम दही को बनत है तौन है। कहै बड़े रिझवार हैं कृष्ण उर देहै कहै हिय देहैं, कह्यो बड़े रिझवार कहै चुरन हारे उरद हैं। भा तन कहै भा शोभा तनमें कहै भातन के चाउरन के लहै बराबर कहै समताई को पावै बराबरी बरियाबरी कहै बिसद रसोई नवरस है ॥६७॥

सवैया—लहि सुंदर जोबन जाइ भजै हरि नाहिं अबै बिरधापन है।
निज प्रेम करै लछिमी पति है रति मैं रुचि वारवधू धन है ॥
कहि 'गोकुल' साजिकै कीजे सँयोग करै यह योगी यती जन है।
निज बात विचारि कह्यो कहती उपचारते जात बिथा तन है ॥६८॥

टीका—लहि कहै पाइकै सुन्दर यौवन कहै जवानी, भजै हरिको कहै कृष्ण ते विहार करै कह्यौ अबही बिरधापन नहीं है जो सुन्दर बन में जाइकै हरिकै भजन करै निज प्रेम करै। लछिमी कहै रमा के पति विष्णु होइं कह्यो लछिमी नाम सम्पदा की रुचि रति वारबधू की है, साजिकै संयोग कहै नायक ते मिलाप करै। कह्यौ सँयोग कहै सुन्दर जोग करै। बात बिचारि कहौ कहै बात रोग की बिथा औषध से जात है ॥६८॥

कवि—परमहंस दीनदयाल गिरि

सवैया—हम तो बिलखाहिं कदम्ब तरे तुम हो कुलटा यह बैन कहावै।
तुम तो नर हो नागी नाहिं लखो कित जाहिं चले निज रूप लखावै॥
हम तो न चहैं तुम पै हठ जू भली बातन चोकहि को नहिं भावै।
हरि अम्बर देहु हमैं करमैं गहिए किन सुंदरि जो कर आवै ॥६९॥

टीका—गोपी लोग कह्यौ हम बिलखाती कदम्बके नीचे कह्यौ तुम कुलटा हो कदम्ब कहै बहुत के तरे रहती हो, तुम तो नर हो नागी न देखौ कहो हम न रहैं कहाँ चले जाहिं, हरि अम्बर देहु कह्यौ अम्बर जो आकाश करमें आवै गहि लेहु ॥६९॥

दंडक—लाल फूल वारी यह कापै कौन मुद पाइ,
नाहीं जू निवारी है करत कहाँ हे प्रिये ।
माधवी है माधव दहति क्यौं न सौति देखि,
सेवती है सुने स्याम काको अपने हिये ॥
जाप कहै यदुनंद कौन को जपै है जाप,
जपा है जसोदा सुत केते जप को किये ।
कुंद है मुकुंद अहे तीक्षण कै लीजै किन,
बेला वर 'दीनद्याल' कौन तीन मैतिये ॥७०॥

टीका—लाल फुलवारी—कहो कौने हेतु यह फूली फिरै है नाहीं जू यह निवारी है, कह्यौ का करत है, माधवी है माधौ तौ सवति को देखि क्यौं नहीं जरतो है, सेवती है कह्यौ कौन को सेवा करती है, जापक है कह्यो कौन को जपती है, जपा है कह्यो केतने जप किए है, कुंद है कह्यौ कुंद गोठिल है तौ चोख करि लीजै बेला है कह्यो बेला नाम समै तीनिउ मैं कौन है ॥७०॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे श्लेषवक्रोक्ति आदि वर्णन नाम चतुर्दशः प्रकाशः ॥१४॥

पञ्चदश प्रकाश

अथ नखशिख

दो०—अलंकार मैं चाहिए, उपमेई उपमान।
तातें नख शिख बरनिबो, उचित प्रबंध प्रमान ॥१॥

टीका—अलंकार के ग्रन्थन में नख शिख वर्णन उचित है क्योंकि बिना उपमान उपमेय जाने अलंकार न जानि परैगो ॥१॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

दंडक—दोष दुख तम न सताइ सकै केहूँ काल,
भानु ते अमंद तेज राजत घनेरे हैं।
अंगुरी अनूप दस पाँखुरी बिमल कर,
आभा अधिकात अरुनारे छबि चेरे हैं॥
'गोकुल' बिलोकि शुभ शोभा के तड़ाग मध्य,
करै अनुराग जाग सुरमुनि चेरे हैं।
राम पदपंकज पराग पुंज राजै मंजु,
जन मन मंजुल मलिंद के बसेरे हैं ॥२॥

टीका—राम पद पंकज पराग कहै पायके धूरि वा पराग तीर्थराज ॥२॥

कवि—नृप शंभु

सवैया—कोहर कौंल जपादल बिद्रुम क्या इतनी जो बँधूक मैं कोत है।
रोचन रोरी रची मँहदी 'नृप शंभु' कहै मुकुता समपोत है॥
पाय धरै ढरै इंगुर सों तिन मैं मनि पायल की घनी जोत है।
हाथ द्वै तीनिलों चारिहु वोरते चाँदनी चूनरीके रंग होत है।३।

दोष = दोषा, रात्रि। सताइस = २७ नक्षत्र। पाँखुरी = पंखड़ियाँ। अरुनारे = लाल। चेरे = सेवक। पराग = मकरन्द, प्रयाग तीर्थ। मलिंद = भौंरे ॥२॥

टीका—चाँदनी चूनरी के रंग सम होत है ॥३॥

कवि—शंभु

बिंब प्रबाल बँधूक जपा गुललाल गुलालहि आभा लजावत।
'शंभु जू' कंज खुले टटके किसलै बटके भटकी गिरि गावत।
पाय धरे एक वोर तऊ बहु छोर ललाई की लीक सी धावत।
मानो मजीठिको माठ ढर्‌यौ इक वोर ते चाँदनी बोरत आवत ॥४॥

टीका—मनो मजीठिको माठ कहै बरतन ढरकि परो है ॥४॥

कवि—चिंतामनि

दंडक—प्यारी के पगनि पर एती अरुनाई जामैं,
मुगध बधून दिन साँझ करि भाख्यौ है।
नाग ह्वै कढ़ति जाके सिसिर लतान हूँ कै,
किसलय तारिबे को मन अभिलाख्यौ है॥
'चिंतामनि' आए जाके चाँदनी बिछौना पर,
लाल मखमल को बिछौना जनु नाख्यौ है।
चरन धरत जाके आँगन फटिक चंद,
मानो लाल बिद्रुम दलान बाँधि राख्यौ है ॥५॥

टीका—मानो बिद्रुम कहै मूँगा के लाल दन्त बाँध्यो है,दसन नाम पाता॥५॥

कवि—मुरली

अरुनता एँड़िन की रबि छबि छाजत है,
चारु छबि चंद आभा नखन करे रहैं।
मंगल महावर गुराई बुध राजत है,
कनक बरन गुर बनक धरे रहैं॥

कौल = कमल। जपादल = जवा (अड़हुल) पुष्प की पंखुड़ियाँ। बिद्रुम = मूँगा। बंधूक = दुपहरिया का फूल। कोत = शोभा, कांति। रोचन = गोरोचन। मनिपायल = नूपुरों में जड़े रत्न ॥३॥

टटके = ताजे। भटकी = भ्रान्त। लीक = रेखा। मजीठि = मेंहदी। माठ = मिट्टी का बड़ा सा हंडा। बोरत = डुबाती ॥४॥

अरुनाई = लालिमा। नाख्यौ = लाँघ दिया, पराजित किया ॥५॥

सुक्र सम जोति सनि राहु केतु गोदना है,
'मुरली' सकल सोभा सौरभ भरे रहैं।
नवो ग्रह भाइन ते सेवक सुभाइन ते,
राधा ठकुराइनि के पाइन परे रहैं ॥६॥

टीका—अरुन एड़ी रवि, नखसित चंद्र, महावर मंगल, गुराई बुध, सोना के सम तन गुरु बृहस्पति, जोति शुक्र, गोदना शनि राहु केतु यह नवग्रह हैं ॥६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(पगतल वर्णन)

दंडक—कलुष कलेस कोटि बिमुख उलूक ऐसे,
कोकसे असोक सुख सेवक असेखते।
जन मन मंजुल प्रकास पुंज पंकजसे,
कैरौ सी कुमति कुँभिलाई अवरेखते॥
'गोकुल' बिलोकि रूप राजत अनूप छबि,
अंत न अनंत पाये गाइ गुन लेखते।
तम से भरम भागै तामस तुषार तैसे,
तरवा तरनि तेज राम पग पेखते ॥७॥

टीका—तम कहै तिमिर ऐसे भ्रम भागै, तामस कहै क्रोध ऐसे तुसार कहै पाला ॥७॥

कवि—प्रताप

दंडक—गहगहे अवध गलीन के गुलाब ये न,
आब देन मही महिमा के अवतार हैं।
कोमल अमल मखमल से विमल मंजु,
माखन ते मृदुल मनोरथ बिहार हैं॥

अरुनता = लालिमा। महावर = आलता। गुराई = गोरापन। बनक = बानक, स्वरूप ॥६॥

कोक = चक्रवाक। अशोक = शोक (वियोग) रहित। कैरो = कैरव, कुमुदिनी। गुनलेख = गुणवर्णन। भरम = भ्रम। तरनि = सूर्य। पेखते = देखते ही ॥७॥

पावन प्रसिद्ध पुरुषोत्तम के पाय तल,
कीन्हे कमला जे करतल के सिंगार हैं।
रंगभूमि धारैं निरधूम रंग पावक के,
जावक के जन जपाकर जैतवार हैं ॥८॥

टीका—जावक जपा करके जितैआ है ॥८॥

कवि—भरमी

(अंगुरी वर्णन)

दंडक—अरुन कमल पग पाँखुरी की पाँति लसै,
सरस सघन शोभा मन के हरन की।
दीरघ न लघुताई पातरी सुहावती है,
देखे दुति होति जाति बिद्रुम बरन की ॥
नख की निकाई नीकी आरसी सी सोहति है,
जामें देखि जाति शोभा सौति के सरन की।
'भरमी सुकवि' कहि आवत न मेरी मति,
पाँगुरो भई है लखि आँगुरी चरन की ॥९॥

टीका—मेरी मति पाँगुरी भई कहै पंगु कहै लूली भई, री सम्बोधन है ॥९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(नख वर्णन)

सवैया—मानिक विद्रुम जोति जपाकर रंग मजीठि के लाजत है।
भानु समान दशौ दिशि दायक पुंज प्रकाश बिराजत है ॥
राम के पायन की अँगुरी नख 'गोकुल' यौं छबि छाजत है।
पंकज की पँखुरी पै मनो कमनीय नछत्र बिराजत है ॥१०॥

गहगहे = खिले हुए। आबदेनहारे = शोभाप्रद। महिमा = गौरव। अमल = स्वच्छ। मंजु = मनोहर। पुरुषोत्तम = रामचन्द्र। कमला = लक्ष्मी। रंगभूमि = क्रीड़ास्थल। जावक = महावर, लाक्षा। जपा = पुष्प। जैतवार = जीतनेवाले ॥८॥

पाँखुरी = पंखड़ियाँ। पातरी = पतली। दुति = द्युति, शोभा। निकाई = सुन्दरता। पाँगुरी = पंगु, लँगड़ी ॥९॥

टीका—कमल की पँखुरी पै नक्षत्र बिराजै हैं ॥१०॥

कवि—मनीराम

दंडक—राधे के चरन युग अरुन अरुन रूप,
लाल मनि बलि ऐसी लाल में न होती है।
कोमल सुमन हूते शोभा भरे शोभित हैं,
दाहन मरत जपा भयो मानो गोती है॥
तामैं सुधाधर से विविध भाँति राजत हैं,
कहैं 'मनीराम' नख मिले बनी जोती है।
याते एक उपमा अधिक भासी मेरे जिय,
पंकज दलन अग्र धरे मानो मोती है॥

टीका—पंकज कहै कमलके दल पर मोती धरो है ॥११॥

कवि—रसलीन

दोहा—दुतिया उचित न नखन की, भनै कौन कवि ईश।
पाइ परत छत जाहि को, भयो चंद पिय सीस ॥१२॥

टीका—दुतिया के चन्द उचित नहीं है नखके नायिका के नायक पगे लागो ताको छत नखको नायक के चंद्र सदृश भयो है ॥१२॥

कवि—प्रताप

(गुल्फ वर्णन)

दंडक—गहगहे गहक गुलाब गुल आबवारे,
गौन गुटिका हैं मुनि मानस अराम के।
चरन सरोज भौंर भीरन के भूपा कैंधौं,
रूपसर बीज बये बिधि अभिराम के॥

जपा = जवापुष्प। पंकज = कमल। पंखुरी = दल। कमनीयनक्षत्र = सुन्दर तारे ॥१०॥

बलि = शोभा। गोती = सजातीय। सुधाधर = चन्द्रमा ॥११॥

दुतिया = दूज, दूसरी ॥१२॥

जन मन मोदक विनोद कर कंदुक है,
सुमन समाज अवलंब विसराम के।
जगमगे जेवर, जवाहिर कुलुफ ऐसे,
सुलुफ सुढार सोहैं गुलुफ सुराभके ॥१३॥

टीका—जवाहिर कुलफ ऐसे गुलुफ ॥१३॥

कवि—दिनेश

चरण कमल करि हाटक की शोभा देत,
पूरी मनि मानो लट नागिनि वलफ की।
रंभा तरु उलटि कपूर पूर राखिबे की,
कोठी है जुगल कम काम के कुलफ की।
साजत सुदेश गाँठि गोरी है 'दिनेश' कीधौं,
रेसम रसे की रूप भूप के सुलफ की।
एँड़िन सो आइ राजै पायन दुहूँ बिराजै,
अति छबि छाजै लाल गोरी के गुलफ की ॥१४॥

टीका—यह काम के कोठी को कुलुफ होइ गुलुफ नहीं ॥१४॥

(जाँघ वर्णन)

मोहन के मन के हैं अवलंब आली लखि,
चित्र में लिखे न जात चकित चितेरे हैं।
कंचन के खंभन के दंभ दूरि करिबे को,
कीन्हें करतार ऐसे कहू काहू हेरे हैं॥
रूप ही के इँडुरी पै पींडुरी 'दिनेश' जामैं,
लघु न बिशाल लाल चाहि भए चेरे हैं।
सूखो सब सौति मन सोचन संकोचन ते,
सोचु मद मोचन जुगल जानु तेरे हैं ॥१५॥

गहगहे = खिले हुए। गुल = फूल। आब = शोभा। अराम = बगीचा। रूपसर = रूप का तालाब। मोदक = प्रसन्नकारी। कंदुक = गेंद। अवलम्ब = आसरा, सहारा। विसरा = विश्राम। जेवर = गहना। जवाहिर = दान। कुलुफ = ताला। सुलुफ = कोमल,लचीले। सुढार = अच्छे ढले हुए। गुलुफ = गुल्फ, एड़ी के ऊपर की गाँठ ॥१३॥

रंभा तरु = केले का वृक्ष। कुलफ = ताला, ढकना। सुलफ = मृदुल ॥१४॥

टीका—मोहन के मन के०—रूप के ईंडुरी पै यह पिंडुरी होइ जंघ तेरे सोच के मोचनहार हैं ॥१५॥

कवि—प्रताप

जगत बितान के उतान युग खंभ अव-
लंब अवनी के जन जीके रखवारे हैं।
सब के अधार बल बिक्रम के पारावार,
सार मय सरस सुढार निरधारे हैं॥
कहै 'परताप' कलधौत के उदंड कला,
भाई जुग दंड काम करन सँवारे हैं।
बरनै सु कबि सदा जिन के प्रबंध राम,
सागर उलंघ जंघ जुगल तिहारे हैं ॥१६॥

टीका—जगतवितान०—जगतवितान के उतान कहै उलटे दुइ खंभ होइं, कलधौत सोना के भाई कहै खरादे दुइ काम के करके दंड होइ ॥१६॥

कवि—दास

(नितम्ब वर्णन)

दण्डक–तोतन मनोज ही के फौज है सरोजमुखी,
हाव भाव सायकै रहे हैं सर सायकै।
तापर सलोनी तेरे बस हैं गोविन्द प्यारे,
मैनहूँ के बश भए तेरे ढिग आयकै॥
तिनहूँ गोबिंद लै सुदरशन चक्र एक,
कीन्हो बस भुवन चतुर्दश बनायकै।
काहे न जगत जीतिबे को मन राखै मैन,
दुर्लभ दरश द्वै नितम्ब चक्र पायकै॥१७॥

टीका—तोतन०—गोविन्द सुदर्शन चक्र लैकै जगत को जीते तो मैन जो काम जगत जीतने को क्यों न मन राखै तेरे दोय नितम्ब चक्र पाय कै ॥१७॥

अवलंब = आसरा। चितेरे = चित्रकार। पीडुरी = पिंडली ॥१५॥

बितान = चंदोवा। उतान = उलटे। अवलम्ब = सहारे। अवनी = पृथ्वी। पारावार = समुद्र। सुढार = अच्छी प्रकार ढले हुए। कलधौत = सुवर्ण। कलाभाई = सुन्दर खरादे हुये ॥१६॥

तोतन = तुम्हारे शरीर में। मनोज = कामदेव। सरोजमुखी = हे कमल-वदनि। हावभाव = कामजनित विकार और तज्जन्य चेष्टायें। सायकै = बाण ही। सलोनी = प्यारी। गोविन्द = श्रीकृष्ण। मैन = कामदेव ॥१७॥

अंगनि मै कैधौं जंघ अजब अनंग रचे,
गाढ़ कुच गिरि हित हेत मद चाल के ।
अमृत सो सानी कैधौं सोने की सरसपिंडी,
सोहत है सुन्दर सुभग सेनी बाल के ॥
विपरीति मंडित जघन खंभनिम्ब कैधौं,
लाह को गिरद गादी मैन महि पाल के ।
कटि रथ चक्र की आकृत यामे पाइयत,
केलि कला बैठक ए रसिक रसाल के ।।१८।।

टीका—यह जघन खंभे के नेइ होइ कि मैन के गादी के गिरदा होइ कि कटिरथ के चक्र कहै पहिया होइ ।।१८।।

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कटि वर्णन)

सबैया–रंचक डीठि के भार लहै बहु बार बिलोकनि ईठि अनैसे ।
टूटिहै लागिहै लोक अलोक तबै हठ छूटिहै जूटिहै कैसे ॥
पौन बहै 'बृज' देहमैं लागत देखि परै नहिं आँखिन जैसे ।
तैसे है सूछम छामोदरी कटि केहरि केहरि लंकन ऐसे ॥१६॥

टीका—रंचक डीठि परे ते भार को लहै है, बहुत ताकव अनैस है क्यों जब टूटि जैहै तो अलोक कहै कलंक लगि है, पौन बहत अंग में लागत पै देखि नहीं परत तैसे कटि है, केहरि केहरि पद० केहरि कहै सिंह के हे हरि ऐसो लंक नहीं ।।१६।।

कवि—मदन गोपाल

हारी हार धार उर भार त्यौं उरोज भार,
जोबन मरोर जोर दाबे दलियतु है ।

कुचगिरि = स्तनरूप पर्वत । सानी = मिलाई या लपेटी हुई । खंभनिम्ब = नीम का खंभा । लाह = लाभ, लाख । गिरद = तकिया । गादी = गद्दी । मैन = काम । केलि-कला बैठक = काम क्रीड़ा का आसन ।।१८।।

डीठि = दृष्टि । ईठि = प्रेम, रति । अनैसे = अनिष्ट । अलोक = कलंक । जूटिहै = जुड़ेगी । पौन = हवा । सूछम = सूक्ष्म । छामोदरी = कृशोदरी । केहरि = सिंह । लंकन = कटि ॥१६॥

परग परग पर यहै जिय होत शंक,
टूटि न परत कौन पुन्य फलियतु है ॥
कोऊ कहै खरी खीन कोऊ कहै कटि हीन,
'मदन गोपाल' ऐसे चित धरियतु हैं ।
काहू की न मानौ साँक कहत ही आई नाँक,
ऐसे खीने लाँक पै उलाँक चलियतु है ॥२०॥

टीका—कहत ही आई नाक० यह लोक की कहनावति है कि नाकन माहन सो ऐसे खीन लंकपर उलाँक कहै कूदत हौ ॥२०॥

कवि—हरिकेश

दंडक—लरकी लरक पर भौंह की फरक पर,
नैन की ढरक पर भरि भरि ढारिए ।
'हरिकेश' अमल कपोल बिहँसनि पर,
छाती उकसन पर बेसक निहारिए ॥
गहिरो ही गति पर गहिरो ही नाभि पर,
हौं न बरजत प्यारे नेक निरबारिए ।
एक प्रान प्यारी जूके कटि लचकीली पर,
ढीली ढीली नजरि सँभारे लाल डारिए ॥२१॥

टीका—कटि लचकीलो पर ढीली कहै हलुकी नजरि कहै दीठि परै जाते भार न होइ लचकि परै ॥२१॥

कवि—रसलीन

दो०—सुनियत कटि सूक्षम निपटि, निकट न देखत नैन ।
देह मध्य यौं जानिए, ज्यौं रसना में बैन ॥२२॥

टीका—जैसे जिह्वा में वचन है देखि नहीं परै तैसे कटि है ॥२२॥

हारी = मनोहर । उरोज = स्तन । दलियतु = दमन करना । परग परग = डग डग पर । खरीखीन = अत्यन्त क्षीण । साँक = शंका । लाँक = लंक, कटि । उलाँक = उछल कर ॥२०॥

लर = हार । लरक = चंचलता । अमल = स्वच्छ । उकसन = उभार, औन्नत्य । बेसक = निस्सन्देह । निरवारिये = हटाइये ॥२१॥

निपटि = अत्यन्त । रसना = जिह्वा । बैन = वचन ॥२२॥

कवि—केशव दास

दंडक—भूत की मिठाई जैसी साधु की झुठाई तैसी,
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहरित है।
धीरा कैसो हास 'केशौदास' दास कैसे सुख,
सूर कैसी शंक अंक रंक कैसो चित है॥
सूम कैसो दान मति मूढ़ कैसो ज्ञान गोरी,
गौरा कैसो मान मेरे जान समुदित है।
कौन धौं सँवारी वृषभानकी कुमारी यह,
तेरी कटि निपटि कपट कैसे हित है॥२३॥

टीका—भूतकी मिठाई—झूठ है कहिबे को साधुकी झुठाई कहिबे को स्यार की ढिठाई नहीं है कहिबे को इत्यादि पदन में ऐसो जानो॥२३॥

(छुद्रघंटिका वर्णन)

रागिनी को मंडल रची है कामदेव कीधौं,
रागिनी समेत रचना है चित चोरी की।
कैधौं नाभि कूप की रहट धरी रूप भरी,
ढरी अनढरी है विचित्र भाँति भोरी की॥
कैधौं है 'दिनेश' अलि बेश कोऊ मोहिनी को,
मोहन को मोहे मन बैन धुनि थोरी की।
कैधौं बर बाजन बिराजत नितम्ब ढिग,
छाजत छबीली छुद्र घंटिका किशोरी की॥२४॥

टीका—यह छुद्रघंटिका नहीं होइ रागिनी को मंडली है की नाभी कूप की रहट होइ कैधौ बाजन होर नितम्ब के ढिग॥२४॥

कवि—रसलीन

दोहा—उदर सुधा सर बुंद बिधि, लसत कमल की पाँति।
ता पाछे किंकिन परी, कमल भँवर की भाँति॥२५॥

धीरा = नायिका विशेष। रंक = दरिद्र। सूम = कंजूस॥२३॥

रहट = कुएँ से पानी निकालने का एक यंत्र। ढरी अनढरी = गिरी या भरी हुई। भोरी = भोली। अलिवेश = भौंरे के रूप में॥२४॥

किंकिन = क्षुद्रघंटिका॥२५॥

टीका—सुधा सरमें कमल पर भँवर होइ ॥२५॥

कवि—मनिकंठ

(नाभी वर्णन)

दंडक—कैधौं यह परम अनूप रूप सरिता को,
भ्रमत भँवर जोर भँवै पिय मान है।
सहज सिंगार की गुफा है जहाँ मैन बैठि,
ऐसे मंत्र जपै शंभु दंभ दै बिकान है॥
कैधौं 'मनिकण्ठ' यह आनँद भवन वेह,
जाहि देखिबे ही प्रन सौति को निदान है।
वारी हौं तिहारी बड़े भाग मैं निहारी सुनि,
कैधौं प्रान प्यारी तेरी नाभी निरमान है ॥२६॥

टीका—यह सिंगार की गुफा होइ जहाँ मैन महादेव जीतिको मंत्र जपै है कि यह आनंद भवन को वेह कहे द्वार होइ ॥२६॥

कवि—कालिदास

राजत गँभीर रोमावली बन तीर मन,
तीर पहुँचे ते भूले त्रिबली डबर मैं।
भूरि भीर भारी छबि छलक सिंगार पानी,
'कालिदास' देखत भँवर क्यौं न भरमैं॥
ऊबी नेक ही मैं डूबी गई लरिकाई ताते,
रहिये छपाय सखी बाहिर नगर मैं।
चंचल गोपाल खेलै गोकुल की गली बीच,
बड़ी करवर तेरे नाभी सरवर मैं ॥२७॥

टीका—गोपाल चंचल या गली में खेलै है, तेरो नाभी सर में न परि जाइ बड़ो करवर कहै कराल है ॥२७॥

अनूप = अत्यन्त सुन्दर। भँवै = घूमता है। वेह = द्वार, दरवाजा। वारी = निछावर ॥२६॥

त्रिबली = पेट पर की तीन बलें। डबर = कुंड। भँवर = जल का आवर्त। भरमै = घूमै। ऊबी = उद्विग्ना, परेशान। लरिकाई = बालपन। करवर = कुलबुलाहट, कलरव ॥२७॥

कवि—दास

(उदर वर्णन)

कैसी अरी एती ए ती अद्भुत निकाई भरी,
छामोदरी पातरी उदर तेरो पान सों।
सकल सुदेस अंग बिहरि थकित ह्वै कै,
कीबे को मिलान मैं रमन को अमान सों।
उरज सुमेर आगे त्रिबली बिमल सीढ़ी,
सोभा सर नाभि सुभ तीरथ समान सों।
हारन की भाँति आवागौन की बँधी है पाँति,
मुकुत सुमन बृंद करत नहान सों ॥२८॥

टीका—उरज सुमेर आगे त्रिबली सीढ़ी सोभासर में नहाइ हारन की भाँति आवागौन की पाँति मुकुत कहै मुक्त है जाइ, मुकुल कहै मोती हारन में है ॥२८॥

कवि—भरमी

कोमल बिमल काम भूप की सुरंगभूमि,
पान को सो दल चलदल को सो पात है।
मोहन के मन की मनोरथ की मोहनी कै,
सौति के सतायबे को सोभा सरसात है॥
नाभि रस कूप की सुघाट मिळि सीढ़ी डारी,
टरत न डीठि नीठि नीठि दरसात है।
'भरमी सुकवि' रोम राजीकी बिराजी छबि,
उरज अनूप ऐसे सुभग सुहात है ॥२९॥

टीका—काम भूप की सुरंगभूमि होइ ॥२९॥

एती = इतनी। एती = स्त्री। निकाई = सुन्दरता। छामोदरी = कृशोदरी। पातरो = पतला। अमान = मान छोड़कर। उरज सुमेर = मेरु पर्वत के समान स्तन। आवागौन = आना जाना। मुकुत = विरक्त, मोती। नहान = स्नान ॥२८॥

सुरंगभूमि = सुन्दर क्रीडास्थली। दल = पत्ता। चलदल = पीपल। डीठि = दृष्टि। नीठि नीठि = थोड़ा थोड़ा ॥२९॥

(त्रिवली)

दण्डक-कैधौं मैन भूपति के रथ के सुचक्र चलैं,
तिनही की लीकैं उर भू मैं जान तौन हैं।
कैधौं मन ठग की गली ये भली ठगिबे की,
कीधौं रूप नदी ह्वै तिधारा कियो गौन है॥
ऐसी छबि देखिये री मोहे मनमोहन जू,
यातें मैं हूँ जानी येई मोहिबेको मौन हैं।
येक बली सबही को बस करि राखत है,
त्रिबली जो करै बस अचरज कौन हैं॥३०॥

टीका—रूप नदी त्रिधारा करि चली है, एक बली तौ सबको बस करि सकत है त्रिवली कहै जहाँ तीनि बली होइ तौ बश करै तौ कौन अचरज है॥२०॥

कवि—मनिकण्ठ

अमल अनंग के अनंद की उदित भूमि,
जीति पिय बाजी दगाबाजी सी पसारी है।
कनक के पान से उरज मैं उदित दुति,
त्रिबली तिहारी मैं निहारि मनिहारी है॥
रूप गुन चातुरी सो सुर नर नागन को,
जीते 'मनिकण्ठ' बिधि सोहै रेख सारी है।
सौति सुख उतरे को पिय प्रेम चढ़िबेको,
कुंदन की प्यारी पैरकारी सी सँवारी है॥३१॥

टीका—पैरकारी कहै चढ़ै उतरै की सीढ़ी होय॥२१॥

मैन भूपति = काम नृप। लीकैं = रेखायें। उरभू = स्तन। तिधारा = तीन धाराओं वाला। मोहिबे को मौन = जादू गर। बली = बलवान॥३०॥

उदितभूमि = उदयस्थल। बाजी = दाँव। कुन्दन = सुवर्ण। पैरकारी = सीढ़ी॥३१॥

(रोमराजी वर्णन)

सवैया-बैठी मलीन अली अवली कि सरोज कलीन सो है बिफली है।
शंभुगली बिछुरो ही चली किधौं राग लली अनुराग रली है॥
तेरी अली यह रोमावली की सिंगार लता फल फैलि फली है।
नाभि थलीते जुरे फल द्वै कि भली रसराज नली उछली है॥३२॥

टीका—यह रोमावली न होय, शंभुगली कहै उरोज के बीच, राग रली कहै रागन की कुमारी होय की नाभी थल ते जुरे है द्वै फल की रसराज की नली होइ॥३२॥

कवि—अज्ञात

कैधौं यह पान पै बसीकरन मंत्र लिख्यौ,
देखि छबि मोहे कोऊ बिद्या पंचसर की।
हृदय सरोबर सिंगार जल भर्यो कैधौं,
उमड़ि चल्यो है नाभि कुंडिका गहर की॥
छोटे छोटे आखरन अबला लिखायो याते,
आपनी सफलताई सुरत समर की।
जिन्हैं देखे नैनन की गति मति भाजी यह,
तेरी रोमराजी कैधौं बाजी बाजीगर की॥३३॥

टीका—यह रोमराजी न होय वशीकरन मंत्र की सिंगार को जल होय हृदय सरोवर में की अक्षर होय सूरति रति कहै समर कामके की बाजी होइ बाजीगर की॥३३॥

कवि—दिनेश

यौवन सरोवर मैं अलक झलक कैधौं,
नेह नवबेली नाभि कूपते बिराजी है।
खंजन नयन हरि बाँधिबे की बद्धी कैधौं,
राजत सुदेश महाबाँकी छबि छाजी है॥

अली अवली=भौंरों की पंक्ति। विफली=निराश। शंभुगली=दो स्तनों के मध्य का भाग। अनुरागरली=प्रेम में पगी। जुरे=जुड़े हुए। रसराज=श्रृंगार॥३२॥

पान=ताम्बूल। पंचसर=कामदेव। गहर=गाढ़ा। आखरन=अक्षरों से। बाजी=खेल। बाजीगर=मदारी॥३३॥

उदर अभूत निकसत श्याम सूर्ज मुख,
महा अभिराम कामकीनी कैधौं बाजी है।
राखी अवरेख हिये मोहनी 'दिनेश' देखि,
रोम रोम राजी ताते नाम रोमराजी है ॥३४॥

टीका—की खंजन नेत्र के बाँधिबे की बळी होइ, रोम-रोम राजी है याते रोमराजी है ॥३४॥

कवि—मुकुन्द

सवैया—कनकाचल कंदर अंदर ते निरबात सिंगार लता लटकी।
तिय रोमवली किधौं संकर द्वै लखि बाल भुजंगिनि है ठटकी ॥
चकवातकि कै 'कवि लालमुकुन्द जू' मीर सिकार दई फटकी।
मनु मैन मलंग चढ़्यौ थकि तुंग जँजीर अरीन परै झटकी ॥३५॥

टीका—कनकाचल०—कनक के गिरि अन्दर में सिंगार की लता होइ लटकी है की उरोज महादेव द्वै के बीच भुअंगिनि होय, की कुच चकवा देखि मीर सिकार फटकी दियो, की मैन मलंग ऊँचे चढ्यो थकि परे जंजीर होय यह रोमावली नहीं ॥३५॥

कवि—आलम

(उरोज वर्णन)

दंडक—मौनी विधि गंग तीर करत तपस्या किधौं,
काम के तुका से लागे उठन उठौना के।
जोबन नरेश चौगान के निशान कैधौं,
श्रीफल ते सरस खिलौना फूल दोना के ॥
'आलम' कहै हैं कलधौत के कलस कैधौं,
आनन्द के कन्द की मनोज रस होना के।
स्वेत कंचुकी में कुचखपे नन्दनन्द प्यारी,
फटिक के सम्पुट में द्वै सरोज सोना के ॥३६॥

अलक झलक = बालों की चमक। नवबेली = नई लता। बळी = रस्सी। अभिराम = मनोहर। बाजी = खेल। अवरेख = चित्रित करना ॥३४॥

कनकाचल = सुमेरुपर्वत। कंदरा = गुफा। निरबात = वायुरहित, निश्चल। संकर द्वै = दो शिव (दो स्तनों से अभिप्राय है)। बालभुअंगिनि = छोटी सर्पिणी। ठटकी = रुक गई। मैन = कामदेव। मलंग = मचान। तुंग = ऊँचे। अरी = अड़ गई ॥३५॥

टीका—की दुइ मौनी तप करै हैं की काम के तुका के लग उठे हैं की जोबन नृप के निसाना होयँ, फूल के दोना हैं की कंचुकी फटिक के संपुट तामैं कुछ द्वै सरोज होय सोना के ॥३६॥

कवि—तारा

कैधौं विवि नीलकंठ बसत सुमेरु पर,
मधुकर मति कैधौं संपुट सरोज हैं।
उलटे अछिद्र ताल श्रीफल रसाल कैधौं,
यौबन के बाले कैधौं जने इक रोज हैं॥
पिय चवगान के निशान कैधौं 'ताराकवि',
तूँबा तरुनाई सिंधु तरिबे को बोज हैं।
कुंजर के कुम्भ की कलस युग कंचन के,
मदन के मठ कैधौं कठिन उरोज हैं ॥३७॥

टीका—की दुइ नीलकण्ठ कहै महादेव होइ, की कुचपर *श्यामता* सो मधुकर होइ याते सरोज कहै कमल पर की उलटे तालफल होइ, की जोबन के बालक होय दुइ एकै दिन जनमे हैं की तरुनाई सिन्धु तरिबे के तूँबा होइ, की कुंजर के कुंभ होइ ॥३७॥

कवि—रतन

सोहत सुरंगु मुख रंग मैं दुरंग सोहैं,
जिन रंग सोहैं रंग को हैं नारँगी पके।
'सुकवि रतन' सरबसी भरे उर बसी,
तरबसी करै उरबसी के समीप के॥

मौनी = अबोल। विवि = दो। तुका = हूँठे तीर। निशान = पताका। श्रीफल = बेल या नारियल। कलधौत = सुवर्ण। कंचुकी = चोली। खपे = ढँके हुए। संपुट = डिब्बा। सरोज = कमल ॥३६॥

नीलकंठ = शिव। मधुकर = भ्रमर। ताल = ताड़ के फल। रसाल = आम। बाले = बच्चे। जने = उत्पन्न हुए। तूँबा = तुम्बे, लौवे। बोज = बल। कुंजर = हाथी। कुंभ = हाथी के सिर के दोनों ओर उभड़े हुए भाग। कंचन = सुवर्ण। मठ = स्थान ॥३७॥

चमकत चीकने कपूर मनि कैसे वोप,
लोकत बिलोकत बिबेक ज्ञानदीप के।
सरस सरोजमुखी तेरे ए उरोज मूँगा,
मीर मसनदी मानो मदन महीप के ॥३८॥

टीका—रतन सरबसी कहै सरबस भरे हैं, उरबसी कहै उर में बसे हैं, तरबसी करै कहै नीच बसावत हैं, उरबसी कहै इन्द्र की अप्सरा के ढिग जे रहत हैं, वातर कहै कीचे बसावत है, उरबसी कहै हार को, तेरे उरोज मूँगा मीर मसनदी होइ की मदन महीप के ॥३८॥

कवि—जीवन

महा मंजु नाभी सर सरूप के सलिल वर,
रोमावली नाल पर लसै भाँति भली है।
उदर रुचिर याते सोई बरनी न जात,
सिर पर स्यामता मधुप दुति रली है॥
बासना बलित अति ललित परसबे को,
पियमन मोहन की मनसा हू चली है।
'जीवन' नवीन दृग देखे होत लीन नव,
नागरी के कुच कैधौं कंजन की कली है॥३९॥

टीका—नाभी सर रूप जल रोमावली नाल पर लसै सिर श्यामता भौंर कुच कौंल कली है ॥३९॥

लाल लाल रेसम की डोर सो बनाए जाल,
बाँध्यौ तकसीर बंद जानि के सरासरी।
फटिक के भूमि माइ दै दै मारथौ बार बार,
ज्यौं ज्यौं वे उछारे त्यौं त्यौं सीस पै परापरी।

सुरंग=सुन्दर रंगीन। दुरंग—दो रंगों वाले। नारंगी=संतरा। सरबसी=सर्वस्व। उरबसी=हृदय में स्थित। तरबसी=नीचे रहनेवाली। उरबसी=अप्सरा। वोप=प्रकाश। उरोज=स्तन। ॥३८॥

सरूप=स्वरूप। लसै=शोभित हैं। मधुप दुति=भौंरे की कांति। रली=पगी। बलित=युक्त। परसबे=स्पर्श करने। कंजन=कमलों की। कली=कोंपल ॥३९॥

तऊ ऐसो निलज बिचारै नहीं हारि जीति,
कुच के समान तनि नजर खराखरी।
नैननि सो हेरि हेरि कहत हैं बेर बेर,
गेंद दई मारे फेरि करिहै बराबरी ॥४०॥

टीका—फेरि गेंद ऐसो मेरो बराबरी करि है ॥४०॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कर की अंगुली वर्णन)

सवैया—की सुषमा सर कंज सनाल फुलाने हैं पुंज प्रभा परसैं।
की करि सावक सुंड दलै कदली दुख दीनन के सरसैं॥
राम लला कर औ अंगुरी कहि 'गोकुल' यौं छवि को बरसैं।
पाँचई पात की पल्लव द्वै कलपद्रुम डारहि में दरसैं ॥४१॥

टीका—यह अँगुरी न होइ पाँच पात की दुइ पल्लव कल्पवृक्ष के डार की है ॥ ४१ ॥

कवि—सेनापति

(मेंहदीयुत अंगुरी वर्णन)

दंडक—कोमल कमल कर कमल विलासिनि के,
रचि पचि कीन्ही बिधि सुन्दर सुधारी है।
राजत जराऊ अँगुरीन मैं अँगूठी पुनि,
द्वै द्वै छला दुति राखि पोर यौं सँवारी है॥
मेंहदी की बूंद यौं बिराजति है बीच लाल,
'सेनापति' देखि पाए उपमा बिचारी है।
प्रात ही अनन्द ते अरुन अरबिन्द मध्य,
बैठी इन्द्र गोपिन की मानो पाँत बारी है ॥४२॥

तकसीर = अपराध। बंद = बंधन। परापरी = पट पट पड़ता रहा। खराखरी = एकटक ॥४०॥

सुषमा = अत्यन्त शोभा। करिसावक = हाथी का बच्चा। कलपद्रुम = कल्पवृक्ष ॥४१॥

बिधि = विधाता, ब्रह्मा। जराऊ = रत्न जड़े हुए। छला = अंगूठी। पोर = अंगुली की गाँठ। अरुन अरबिन्द = लाल कमल। इन्द्रगोपिन = बीर-बहूटियों की। पाँत = पंक्ति। बारी = छोटी सी ॥४२॥

टीका—अरविंद के मध्य इंद्रवधू कहे बीरबहूटी बरखा में होत तिनकी पतवारी होइ ॥४२॥

(नख अंगुली वर्णन)

दंडक—मानो अधि गुञ्जिका से चंचुक चकोर चख,
चावक चमकचीज बिद्रुम तमाल के।
चेटक के चिन्ह कैधौं नाटक के सुन्न कैधौं,
हाटक के हुन्न देश दच्छिनके चाल के॥
जड़ित जराय मधु नायक अमोल मोल,
गोल गोल मोती मानों मनि हैं नृपाल के॥
अँगुरी अनीकी नीकी कनक कनी सी कैधौं,
कामिनी के नख कै नगीना काम लाल के ॥४३॥

टीका—काम के लाल को नगीना है ॥४३॥

कवि—दास

सवैया—पत्र महारुन एक मिलायके लाइ छिमी तरुनी रंग दीन्हे।
पाँखुरी पंचको कंजकी भानु मैं बान मनोजके शोणित भीने॥
पंच दशानके दीपक सोकर कामिनिके लखि 'दास' प्रबीने।
लालकी बेंदुली लालरीकी लरी यौं युत न्याय निछावरि कीने ॥४४॥

टीका—पाता लालमें मिलाइ कै छिमी होइ, की पाँच पँखुरी कंज की की पाँच बान शोणित लगे काम के, की पंचदशा कहै पाँच बाती दीप की होइ ॥४४॥

कवि—दिनेश

(भुजा वर्णन)

दंडक—कंचन लता सी चपला सी नाह नेह फाँसी,
मदन बिलासी काम केलि बेलि बाढ़ी है।
परसत कोमल अमल मखमल हू ते,
दरसत लागत 'दिनेश' दुति गाढ़ी है॥

चंचुक=मृग। चख=चक्षु, नेत्र। चेटक=टोना। नृपाल=राजा ॥४३॥
पाँखुरी पंच=पाँच पंखड़ियाँ। कंज=कमल। मनोज=कामदेव। शोणित भीने=रक्त से सने। पंचदशान=पाँच बत्तियों के ॥४४॥

हीरामनि लाल की अंगूठी अँगुरीन राजै,
मोहन के साथ मन मोहन सी ठाढ़ी है।
भुजन निहारि अनुमान कै मृनाल मंजु,
सुघर सँवारी मानों काम कूट काढ़ी है ॥४५॥

टीका—सुगम ॥४५॥

कवि—प्रताप

दंडक—सील की छमा हैं अनिमा हैं द्विज दीननकी,
सुयश जमा हैं कै उमा हैं देन वर की।
रच्छक सदा हैं बल विक्रम अदा हैं भीम,
गदा कै ददा हैं सिच्छदा हैं कवि कर की ॥
समर उजा हैं दुज दोष विरजा हैं सदा,
पूजी जे कुजा हैं अनुजा हैं हिमकर की।
धरम धुजा हैं देन शत्रुन सजा हैं पुन्य-
पालन प्रजा हैं द्वै भुजा हैं रघुबर की ॥४६॥

टीका—धरम की पताका होइ ॥४६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(पीठि वर्णन)

सवैया—मानो मनोज की पाटी लिखे हित मंत्रनकी परिपाटी बसीठि है।
जात उनै उनै कांतिके भारन जात दुनै दुनै जो परै दीठि है ॥
'गोकुल' बालके अंग बिलोकिहो औरन को तब प्रीति उबीठि है।
कंचन केदलि के दल ऊपर सोवत साँपिनि बेनी न पीठि है ॥४७॥

टीका—कंचन केदली के दल पर साँपिनी होय ॥४७॥

कंचन = सुवर्ण। चपला = बिजली। कामकेलि = काम क्रीड़ा। बेलि = लता। दुति = कांति। मृनाल = कमलकी नाल। काढ़ी = बनाई गई ॥४५॥

छमा = क्षमा, पृथ्वी। अनिमा = सिद्धि। दिज = ब्राह्मण। जमा = पूँजी। उमा = पार्वती। अदा = चुकता। ददा = श्रेष्ठ, बड़े। सिच्छदा = सीख देने-वाली। उजा = बलवान्। विरजा = शून्य। कुजा = पृथ्वी से उत्पन्न, सीता। अनुजा = बहिन। हिमकर = चन्द्रमा। धरमधुजा = धर्म की पताका ॥४६॥

मनोज की पाटी = कामदेव की तख्ती। परिपाटी = क्रम। उनै उनै = झुक झुक। दीठि = दृष्टि। कंचन केदलि = सुवर्ण केला। दल = पत्ता। बेनी = चोटी ॥४७॥

कवि—दास

'दास' प्रदीप शिखा उलटी कि पतंग भई अवलोकत दीठि है।
मंगल मूरति कंचन पत्रकी मैन रच्यौ मन आवत नीठि है॥
काटि किधौं केदली दल गोफ को दीन्हों जमाइ निहारि अँगीठि है।
काँधते चाकरी पातरी लंक लों सोभित मानों सलोनी की पीठि है ४८

टीका—काँधते चाकरी, सुगम ॥४८॥

कवि—भरमी

आरसी बिमल पर नारी की सँवारी किधौं,
रूप के प्रवाह काम भूप चल्यौ जात है।
कैधौं कलधौत कैसी भूमि सुरमारग है,
मानको सुभाव कैधौं केदली को पात है॥
कैधौं यह भोडर के तबक तिलोछि धरे,
'भरमी सुकवि' कोऊ उपमा न गात है।
सरस सुघाट सुख आनन्दकी बाट कैधौं,
प्यारी तेरी पीठि देखि डीठि न समात है॥४९॥

टीका—की यह भोडर को तबक होइ, भोडर नाम अबरक ॥४९॥

कवि—रसलीन

दो०—यक तरु घेरु लह्यो इतै, यह अचरज की बात।
द्वै तरु कदली जाँध मैं, पीठि एक दुइ पात ॥५०॥

टीका—द्वैतरु केदली जाँध तामैं एक पत्र पीठि है ॥५०॥

जोरि रूप सुबरन रची, विधि रचि पचि तव पीठि।
कीन्ही रखवारी तहाँ, ब्याली बेनी ढीठि ॥५१॥

टीका—सुबरनकी पीठि तहाँ बेनी साँपिनि रखवारी किए ॥५१॥

मैन = कामदेव। नीठि = अरुचि। गोफ = नया निकला हुआ मुँह बँधा पत्ता। काँध = कन्धा। चाकरी = चौड़ी। पातरी = पतली। लंक = कटि। सलोनि = सुन्दरी ॥४८॥

आरसी = दर्पण। कलधौत = सुवर्ण। सुरमारग = देवपथ। भोडर = अभ्रक। तबक = पत्तर को पीटकर बनाया हुआ पतला वरक। तिलोछि = तेल लगाकर ॥४९॥

घेरु = घेर; गोलाई। सुबरन = सुवर्ण, सुन्दर स्वरूप। ब्याली बेनी = लटरूपी सर्पिणी ॥५१॥

कवि—मनिकंठ

(ग्रीवा वर्णन)

सुख को सदन देखि मदन मुदित होत,
बारिज बदन सुभ नाल सी बिसेखिए।
चारौं रीति नवों रस ❀ हावभाव की प्रतीत,
छबि सो लपेटि हेम पिंडी कै उरेखिए ॥
कैधौं 'मनिकंठ' तीनि लोक की तरुनि जीति,
दुति तेही भाँति भाँति तीनौं रेखा लेखिए।
कनक के कंबु कमनीयता के अंबु भेंटे,
आनंद के सींव की अमोल ग्रींव देखिए ॥५२॥

टीका—कनक के शंख ताते अंबु भेंट ग्रीव ॥५२॥

कवि—मंडन

तेरे मुख गावत गुपाल जू के गुनगन,
सारदा जो रहति है उर मैं उरेखिए।
जिनके वै 'मंडन' फटिक माल हार हाँस,
हिए पर तेई वै सिंगार करि लेखिए ॥
तेरे नेक बोल सों तौ सुर को सुहाग कोऊ,
मीठो राग सुनि रीझि रीझि करि तेखिए।
तोरि डारी तीनों ताँत मेरे जान बीन की तैं,
प्यारी तेरे गर मैं ये तीनों लोक लेखिए ॥५३॥

❀ काव्य के आत्मस्वरूप रसकी परिपोषक पदसंघटना 'रीति' कहलाती है इसके ४ प्रकार हैं—

१—वैदर्भी, २—गौड़ी, ३—पाञ्चाली, ४—लाटी।

नौरस ये हैं—१ शृंगार, २—हास्य, ३—करुण, ४—वीर, ५—रौद्र, ६—भयानक, ७—अद्भुत, ८—बीभत्स, ९—शान्त।

सदन = गृह। मदन = काम। मुदित = प्रसन्न। हेमपिंडी = सुवर्णका गोला। उरेखिये = अंकित कीजिये। दुति = द्युति, कांति। कंबु = शंख। अंबु = जल। सींव = सीमा। ग्रींव = ग्रीवा, गरदन ॥५२॥

सारदा = सरस्वती। मंडन = अलंकार। हाँस = हँसी। सुहाग = सौभाग्य। तेखिये = बिगड़ना, क्रुद्ध होना। ताँत = तन्तु, तार ॥५३॥

टीका—तोरि डारी बीन की तीनौं तानि तेरे गर में तीनौं लोक लेखिये ॥५३॥

कवि—प्रताप

निदर निकाई कल कंबु औ कपोतन की,
सरस सुढार पारावार छबि पाथ की।
त्रिभुवन जीतिबे को त्रिगुन त्रिरेखा युत,
करन सदा जो सुभ सुजन सनाथ की ॥
कहै 'परताप' बुद्धि बल की अमाय त्रयी,
ताप हर प्रबल प्रताप गुन गाथ की।
भीमा अरि कुल की अतुल बल थीमा एक,
सीमा सुख सिन्धु की कि ग्रीमा रघुनाथ की ॥५४॥

टीका—अरिकुल मारिबेको भीम है ॥५४॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(मुख वर्णन)

सवैय—राम लला मुख की सुषमा दुरि जात है दर्पन दीह बिलासै।
आनन के उपमान है आनन ज्यौं लखिये त्यौं निकाई निकासै ॥
कैसे कहौं अरबिंद से हैं कुँभिलात लगे 'बृज' भान के भासै।
द्यौस न मंद अमंद निशा महँ इंदु कहाँ दिन रैन प्रकासै ॥५५॥

टीका—द्योस में मंद नहीं रैनि में अमंद अस चन्द्रमा नहीं है ॥५५॥

कवि—धुरंधर

सुधा के पयोधि करि मज्जन अरुन अंग,
केशर के रंग की बनक जब गहैगो।
'सुकवि धुरंधर' सकल रूप सागर की,
सोभा को सकेलि काम केलि पुन्य लहैगो ॥

निकाई=सुन्दरता। सुढार=अच्छी प्रकार ढाले (बनाए) गये। पारावार=समुद्र। पाथ=जल। अमाय=कोष। भीम=भयंकर। ग्रीमा=ग्रीवा, गरदन ॥५४॥

सुषमा=परमशोभा। दुरि जात=छिप जाता। दीह=देह। उपमान=जिससे उपमा दी जाती है। निकाई=सुन्दरता। कुँभिलात=मुरझा जाते हैं। भान=भानु, सूर्य। द्यौस (द्यौस)=दिवस, दिन ॥५५॥

सोरहौं कलानि पूरि पूरन कलंक बिन,
निसि दिन सदा एक रूप जब रहैगो ।
येरे चंद सरद के राधिका बदन सम,
तब तोसो कोऊ कबि कहैगो तौ कहैगो ॥५६॥

टीका—एरे चन्द तब कोऊ कहैगो, सुगम ॥५६॥

कवि—भंजन

कोऊ कहै है कलंक कोऊ कहै सिंधु पंक,
कोऊ कहै छाया यह तमोगुन के भास की ।
कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहै मृग मद,
कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की ॥
'भंजन जू' मेरे जान चन्द्रमा को छलि बिधि,
राधे को बनायो मुख कान्ह के बिलास की ।
ता दिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के,
देखियत वार पार नीलता अकास की ॥५७॥

टीका—कोऊ कहै कलंक पंक छाया तमोगुन की राहु रद लग्यो है, मृगमद है, नीलगिरि की आभा है, चन्द्रमा को छलि कै बनाए मुख राधे के वाही दिन ते छाती में छेद भयो चन्द्रमा के ताही के मग नीलता होइ देखि परत अकाश की ॥५७॥

सूर मैं न नील होत उगत नवीन ह्वै कै,
कुहू मैं न छीन होत सोभा दई दियो है ।
कालिमा की अंक नाहीं पूरण कलंक बिनु,
रहत निशंक अमी अमरन पियो है ॥
बिनु पग मृग रथ अचरज की है हद,
लाग्यो नहीं राहु रद ऐसो रमनियो है ।
'भंजन जू' इन्दु एक अचरज देखियत,
कनक के लता पर उदै आनि कियो है ॥५८॥

सुधा=अमृत । पयोधि=समुद्र । मज्जन=स्नान । बनक=शोभा । केलि=क्रीड़ा ॥५६॥

पंक=कीचड़ । राहुरद=राहुका दाँत । मृगमद=कस्तूरी । नीलगिरि=पर्वत विशेष । छलि=छलकर । छपाकर=चन्द्रमा ॥५७॥

सूर=सूर्य । दई=विधाता । कालिमा=कलंक । अङ्क=चिह्न । अमी=अमृत । अमरन=देवताओं ने । राहुरद=राहु का दाँत ॥५८॥

टीका—इन्दु कनक के लता पर कहै है, कनकलता तन मुख चन्द्रमा ॥५८॥

कवि—चिंतामनि

सुन्दर बदन राधे सोभा को सदन तेरो,
बदन बनायो चारि बदन बनाय कै।
ताकी रुचि लेन को उदय भयो रैनपति,
राख्यो मति मूढ़ निज कर बगराय कै॥
कहैं कवि 'चिन्तामनि' ताहि निसि चोर जानि,
दियो है सजाय पाकसासन रिसाय कै।
याते निसि फेरैं अमरावती के आस पास,
मुख मैं कलंक मिसि कारिख लगाय कै ॥५६॥

टीका—राधा के बदन चारि वदन बनायो, ताहि देखि चन्द्रमा अपनो कर बगरायो रुचि लेन हेत, चोर जानि पाकशासन इन्द्र पकरि अमरावती के आसपास मुख में कारिख लगाइ फिरावै है ॥५६॥

कवि—दास

आवै जित पानिप समूह सरसात नित,
मानै जलजात सो तौ न्याय ही कुमति होय।
'दास' या दरप को दरप कन्दरपको है,
दर्पन समान ठानै कैसे बात सति होय।
और अबलानन मैं राधिकाको आनन,
बरोबरी को बल करै कबिकूर अति होय।
पैये निसिबासर कलंकित न अंक ताहि,
बरनै मयंक कबिताई की अपति होय ॥६०॥

टीका—चन्द्रमा सम कहै राधे के बदन तौ कविताई को खराबी है या दरप को दरप कहै तेज काम को दरप का होइ ॥६०॥

चारिवदन = ब्रह्मा। रैनिपति = चन्द्रमा। बगरायकै = फैला कर। पाकसासन = इन्द्र। अमरावती = इन्द्र की नगरी। मिसि = बहाने से ॥५६॥

पानिप = द्युति, कांति। जलजात = कमल। दरप = दर्प, अहंकार। कंदरप = काम। सति = सत्य। कूर = दुष्ट। मयंक = चन्द्रमा। अपति = अप्रतिष्ठा ॥६०॥

कवि—प्रताप

सोभा सुख सागर को सुखद सरोज अति,
ओजमय परम प्रकास लहियतु है ।
सुमद कुजा को सुख कुमुद विकासवारो,
पूरन कलाधर बखान बहियतु है ।
कीबे को बदनको समान उपमान आन,
सुमुख सुकवि जीहा कोरि चहियतु है ।
करि न सकत सहसानन बखान राम,
रावरे सुआनन अनूप कहियतु है ॥६१॥

टीका—सहसानन नहीं बखान करि सकत ॥६१॥

कवि—नाथ

(शीतला दाग वर्णन)

दण्डक-पूरण मयंक कैधों मेटि कै कलंक कियो,
अंक मैं समेटि कै नखत बड़ भाग है ।
कैधौं रंगरेज मैन बाँधनू बिचित्र बाँध्यौ,
कैधौं रूपछीर मैं उफनि आयो झाग है ॥
कैधौं नए सोभाके बये हैं बीज रचि रचि,
कंचन के भूमि मैं जड़ित पुष्पराग है ।
'नाथ' अनुराग है की फूल्यो मैन बाग है की,
सौति को सुहाग है की शीतला को दाग है ॥६२॥

टीका—पूरन चंद्र में नखत होय की मैन रंगरेज चूनरी बँधुनू कहै बूटेदार बाँधे है, की बीज कंचनके भूमि पर बोये हैं की सोन पर पुष्प-राग मनि जड़े हैं, रूप छीर कहै दूध में झाग कहै फेना उफलान है, अनुराग की मैन बाग है ॥६२॥

ओजमय = शोभा संपन्न । कुजा = सीता । कलाधर = चन्द्रमा । जीहा = जिह्वा । सहसानन = शेष । रावरे = आपके ॥६१॥

मयंक = चन्द्रमा । अंक = चिन्ह । नखत = नक्षत्र, तारे । मैन = कामदेव । बाँधनू = नई डिजाइन बनाने के लिए बाँधा गया साड़ी का बँधान । बये = बोये । पुष्पराग = पुखराज । मैन बाग = काम का बगीचा ॥६२॥

कवि—रसलीन

दो०– दाग शीतला को नहीं, मृदुल कपोलन चार।
चिन्ह देखि इन ईठि के, परो डीठि के भार ॥६३॥

टीका—दागशीतला०—यह दाग नहीं है मित्र के दीठि की भार है ॥ ६३ ॥

(स्वेदकन वर्णन)

अमल कपोलन स्वेदकन, दुगन लगत यह रूप।
मानहु कंचन कम्बु पै, मोती जड़ी अनूप ॥६४॥

टीका—अमल कपोल०—कंचन के शंख पर मोती होइ ॥६४॥

कवि—बलभद्र

(चिबुक वर्णन)

दण्डक–कनक बरन कोकनद के बरन और,
झलकत झाँई तामैं बसन रदन की।
कीनी चतुरानन चतुर ऐसी रचि पचि
अलप-सी चौकी चारु आसन मदन की ॥
अंगुल सें बान उपमान की अवधि सब,
सुमिल सोपान मानो श्रीयके सदन की।
सुन्दर सढार है चिबुक नव नायिका को,
मानो 'बलिभद्र' बादसाही है बदन की ॥६५॥

टीका—कनक बरन०—बसन रदन नाम वोठ, यह मदन की चौकी होइ, सोपान नाम सीढ़ी श्रीय के सदन कहै शोभा के घर की ॥ ६५ ॥

ईठि = इष्ट, प्रियतम। डीठि = दृष्टि, नजर ॥६३॥

अमल = स्वच्छ। कंचन कम्बु = सोने का शंख ॥६४॥

कोकनद = लाल कमल। बसनरदन = दंताच्छादन, ओठ। चतुरानन = ब्रह्मा। अलप = अल्प, थोड़ी। मदन = कामदेव। सोपान = सीढ़ी। श्रीय = श्री, शोभा। सुढार = सुन्दर ढली हुई। बदन = मुख ॥६५॥

कवि—दिनेश

(चिबुकन मै बुन्द वर्णन)

प्यारी के ठोढ़ी को बिन्दु 'दिनेश' किधौं बिसराम गुबिन्द के जी को।
चारु चुभ्यौ कनिका मनि नील को कैधौं अमाव जम्यौ रजनी को॥
कैधौं अनंग सिंगार को रंग लिख्यौ बर मन्त्र वशीकर पी को।
फूले सरोज मैं भौंर लसै किधौं फूल शशीमें लसै अरसी को॥६६॥

टीका—प्यारी के चिबुक०—यह चिबुक न होय शशी में फूल कहै चन्द्रमा में अरसी के फूल फूलो है॥ ६६॥

ज्ञान भयो जबते तबते तिय येक लखी मनि आप अतूल मैं।
दामिनि त्यौं यमुना प्रतिबिंबित यौं झलकै तन नील दुकूल मैं॥
देखत ही सुख देखे बिना दुख जाय परी कितते उत भूल मैं।
ठोढ़ी पै श्यामल बुंद गोपाल मनो अलिबाल गुलाबके फूलमें॥६७॥

टीका—ज्ञान भयो०—दामिनि की परछाहीं जैसे यमुना जल में देखियत तैसे नील दुकूल में चिबुक के बुन्द झलकै हैं॥ ६७॥

कवि—दास

छाक्यौ महामकरंद मलिंद परयौ किधौं मंजुल कंज किनारे।
चंद में राहु को दंत लग्यौ कि गिरी मसि भाग सुहाग लिखारे॥
'दास' रसीली है ठोढ़ी छबीली की लाली की बिन्दु पै जाइए वारे।
मित्तकी दीटि गड़ी किधौं चित्तको चोरी गिरयौ छबिताल गड़ारे॥

टीका—छविरूपी ताल, गड़ारे कहै गहिरमें चित्त चोरी होय या मित्र की दीठि गड़ी है॥६८॥

बिसराम=विश्राम। गुविंद=गोविन्द, श्रीकृष्ण। कनिका=कण, टुकड़ा। नील=नीलमणि। जमाव=ओस। अनंग=काम। पी=प्रिय, नायक। अरसी=अलसी, तीसी॥६६॥

अतूल=अतुलनीय। दामिनि=बिजली। नीलदुकूल=नीला रेशमी वस्त्र। श्यामलबुंद=गोदने का चिन्ह। अलिबाल=भौंरा का बच्चा॥६७॥

छाक्यो=तृप्त हुआ। मकरंद=पुष्परस, पराग। मलिंद=भौंरा। मसि=स्याही। सुहाग लिखारे=सौभाग्य लिखने वाले। मित्त=मित्र। गड़ारे=गढ़े में॥६८॥

(अधर वर्णन)

दंडक—बंधुजीव जपाकर के हैं बर बंधु जीव,
अति कम लहैं काँति कमल है मंदकर।
लालमनि विद्रुम मजीठि फल बिंबन के,
समता न पावै प्रतिबिंब है अमंदकर॥
दसन बसन दुति असन विलोकि जग,
'गोकुल' पियूष पारावार सुख कंदकर।
अबल अचल ह्वै कै रहिगो अधर मन,
आभा धर अधर विलोकि रामचन्द्र कर॥६६॥

टीका—बन्धुजीव नाम दुपहरीके बंधुजीव कहै भाई और प्रान होय अति-कम लहै कहै थोर लहत है आभा कमल लाल मनि मूँगा बिंबफल प्रतिबिम्ब के तात है। दसन बसन कहै वोठ अबल अचल ह्वै कै अधरमें रहिगो कहै अध बीच में ही रहिगो॥६६॥

कवि—हरिलाल

केसर निकाई किसलय की रताई लिये,
झाँई नाहीं जिनकी धरत अलकतु है।
दिनकर सारथी ते देखियत एते सैन,
अधिक अनार के कलीन अरकतु है॥
लीला सी लसन जहाँ हीरासी हँसन राजै,
नैन निरखत अलकत असकतु है।
जीते नग लाल 'हरिलाल' लाल अधरन,
सुघर प्रबाल के रसाल झलकतु है॥७०॥

टीका—केसरि किसलय कहै केसरि के नये दल दिनकर सारथी अरुन जीते नगलाल हरिलाल कवि कहै है॥७०॥

बंधुजीव = दुपहरिया। बंधुजीव = भाई बन्धु। विद्रुम = मूँगा। दशन-बसन = दन्तच्छद, ओठ। पियूष = अमृत। पारावार = समुद्र। अधर = बीच ही में। आभाधर = शोभाधारी॥६६॥

निकाई = सुन्दरता। रताई = लालिमा। दिनकर सारथी = सूर्य के सारथी, अरुण। अरकतु = टकराते। लसन = शोभा। हसन = हँसी। असकतु = आलस्य करते। प्रबाल = मूंगा। रसाल = रसभरे।७०।

कवि—मनिकंठ

अमल अरुन अरविन्द बिम्ब आभा देत,
सहज सुबास रीझे माधुरी समर हैं।
सोत कोतवारी पिय मतवारी होत पूजे,
नय बारी सो सँवारी शोभा शुचिधर हैं॥
'मनिकंठ' सूलम सुरेब है बँधूक फूल,
बरनी के चिन्ह पिय लोचन डगर हैं।
कैधौं लीक शीस गनि दीन्हें बिधि कोक कला,
सुन्दरी सुलच्छनी के शोभित अधर हैं ॥७१॥

टीका—अमल अरुन—सोत कोतवारी कहै लाल रंग की सोता होय। पियको मतवारी कहै मस्त करै अधर मधु छाकि के ॥७१॥

कवि—परशुराम

जपा के कुसुम ताकी छबि के चतुर मानि,
मानिक के मीत अति रोचक कलीब के।
बिद्रुम के दल द्वै बिराजैं हेमसम्पुट मैं,
राजत अनूप बहू जन के नसीब के॥
भावती के अधर मयूख के धरन हार,
कहैं 'प्रसाराम' रस दानी प्रान पीव के।
बिंबन के बादी अनुराग कैसे प्रतिबिंब,
रजोगुन नायकी कि बंधु बंधुजीब के ॥७२॥

जपा के कुसुम०—रजोगुन के नायक की बंधुजीव जो दुपहरिया ताको बंधु होय ॥७२॥

अमल = स्वच्छ। अरुन = लाल। समर = भरे हुए। सोत = स्रोत, प्रवाह। बंधूक = दुपहरिया। बरनी = आँख के रोंए, बरौनी। डगर = मार्ग। लीक = लकीर। कोककला = चन्द्रकला ॥७१॥

बिद्रुम = मूंगा। हेमसम्पुट = सोनेका ढकना। नसीब = भाग्य। भावती = प्रिया। मयूख = किरण। प्रानपीव = प्राणप्रिय। बादी = प्रतिस्पर्धी। बंधु = भाई, बराबर ॥७२॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(दशन वर्णन)

सवैया—निसि ही में नछत्रन की छबि छाजत सद्यो भये दुति मंद रली।
दरक्यौ उर दाड़िम दीपति देखि दुरै दबि दामिनि कांति भली॥
रघुनायक के अधराधर मैं दशनावलि यों अवलोकि अली।
कुरबिंद के पल्लवमें 'बृज' बृन्द बिराजत मंजुल कुंदकली॥७३॥

टीका—निशि ही मैं—कुरबिंद कहे लालमनि तामें कुंदकली पल्लव॥७३॥

कवि—रूप कवि

दंडक—कैधौं कली बेला की चमेली की चमक चारु,
कैधौं कीर कमल में दाड़िम दुरायो है।
कैधौं दुति मंगल की मंडल मयंक मध्य,
कैधौं बीजुरी को बीज सुधा में सिरायो है॥
कैधौं मुकताहल महावर मैं रोष राखे,
कैधौं मैन मुकुर में सीकर सुहायो है।
'रूपकवि' राधिका बदन मैं रदन छवि,
सोरहीं कला को काटि बत्तिस बनायो है॥७४॥

टीका—मैन मुकुर कहे कामके ऐना में सीकर कहे स्वेद कनी है॥७४॥

कवि—चतुर

कैधौं मित्र मित्र मैं बसाई है किरिनि ताते,
फूल्योई रहत अनुमान यह पायो है।
कैधौं शशि मंडल में झाँई उड़ मंडल की,
कैधौं हासरस निज नगर बसायो है॥

नछत्रन = तारें। द्यौस = दिवस, दिन। रली = हो गई। दरक्यौ = फटने लगा। दीपति = दीप्ति, कांति। दुरै = छिप गई। अधराधर = निचला ओठ। दशनावलि = दंतपंक्ति॥७३॥

कीर = तोता, सुग्गा। दुरायो = छिपाया। मंडल मयंक = चन्द्रमंडल। सिरायो = ठंढा किया। मैनमुकुर = कामरूप दर्पण। सीकर = बूँद॥७४॥

मित्र = सूर्य। मित्र मित्र = सूर्य का मित्र, कमल। उडुमंडल = नक्षत्र-समूह। हासरस = हास्यरस। दशन = दाँत। बानी = बाणी, जिह्वा। दो लरकै = दो लड़ों वाला॥७५॥

दसन की पाँति कुंदकलिन की भाँति आछी,
सोहत है ठाँति गन कोविदन गायो है।
मानहु विरंचि तेरी बानी को 'चतुर' रानी,
दोलर कै मोतिन को हार पहिरायो है ॥७५॥

टीका—मित्र कहैं सूर्य ताको मित्र कमल तामें किरिनि बसायो है की शशि के समीप में नक्षत्र के मंडल होइ की हासरस नगर बसायो, हास के रंग सफेद की कुंदकली पाँति होय की बानी कहै जीभ तेरी रानी होय ताको विधि दोलर करि मोतिन के हार पहिरायो है ॥७५॥

कवि—गंग

(मीसी वर्णन)

सवैया—को बरनै उपमा 'कवि गंग' सो तोही मे है गुन ऊरबसी के।
जादिन ते दरसो मुसकानि सो कान्ह भये बस तेरे हँसी के॥
चंद से आनन में तिल राजत ऐसे बिराजत दाँत मिसी के।
फूलन के फुलवारिन मैं मनो खेलत हैं लरिका हबसी के ॥७६॥

टीका—यह दाँतमें मीसी लगी है सो मानो फुलवारी में हबसिन के लरिका होइ ॥७६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(रसना वर्णन)

सवैया—की निगमागम आखर अर्थ प्रकाशक भेद कोऊ अस ना है।
की सुर सातहु की जननी सब मंत्रनको सुषमा वसना है॥
की 'बृज' बानी के बीन के तार सुधाकर धारन की ससना है।
की रसनाह की सैन सुहावन कै रघुनंदन की रसना है ॥७७॥

टीका—निगमागम वेदशास्त्र के अक्षर प्रकास करनहारी होइ अस कोऊ नहीं है, की सातों स्वरन की माता होय की रसनाह कहै सिंगार रस ताकी सेज होय ॥७७॥

निगमागम = वेदशास्त्र। आखर = अक्षर। अस ना = ऐसा नहीं। सुर = स्वर। सात स्वर ये हैं—१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गान्धार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषाद, इन्हीं के वाचक शब्द संगीत में क्रमशः 'सा रे ग म प ध नि' माने गये हैं। बानी = सरस्वती। बीन = वीणा। रसनाह = रसनाथ, शृङ्गाररस। सैन = शयन, शय्या। रसना = जिह्वा ॥७७॥

कवि—भरमी

दंडक—गूढ़ गुन ग्रंथ को प्रकाश की करन हारी,
झूठ साँच कहे देत सबके मनस की।
नाद बेद भेद को उघारि देत आखरन,
कोमल रसाल जात बसुधा के बस की॥
'भरमी' सुकवि पिय मन की हरन हार,
सुधा सो सुधारी जान गान हार यश की।
रसना की उपमा न होत कोटि रसना सो,
मन की सचौटी की कसौटी बतरस की॥७८॥

टीका—मनकी सचौटी कहै साँची बात की मूल की कसौटी कहै बतरस की होय जामें खोट खरा प्रगट होत ताकी कसौटी कहिये॥७८॥

कवि—बलभद्र

कमल बदन माँझ कमला के काज छवि,
राखी है कमल दल तलप सँवारी है।
कैधौं 'बलिभद्र' खट तंत्रनकी लेखनी है,
कैधौं खटस्वादन की परखन हारी है॥
ललित तमोरा रंग गुनकी कसौटी मानो,
मंत्रन की मूरि परमारथ की प्यारी है।
रसिक रसीली प्यारी तेरी मृदु रसना की,
पद पद हसन की रसानंद कारी है॥७९॥

टीका—कमलदल कै तलप कहै बिछौना होय, की षट्तंत्र की लेखनी कहै कलम होइ की षट्स्वादन कै मधुर तिक्त लोना खार कटुक भाकस की जाननहारी है, रसानंद कारी कहे रसा नाम पृथ्वी हो आनन्द की॥७९॥

नाद=प्रणव संगीत की वह ध्वनि योगी लोग नाभि से ऊपर जिसका प्रत्यक्ष करते हैं। बेद=वेद शास्त्र। रसाल=रस से भरी हुई। सचौटी=सत्यता। कसौटी=खरे-खोटे की सूचक। बतरस=बातचीत में मिलनेवाला आनन्द॥७८॥

कमला=लक्ष्मी। तलप=तल्प, शय्या। षट्तंत्र=षट्तंत्र। षट्शास्त्र ये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द। लेखनी=कलम। मूरि=मूल, जड़। हसन=हास्य॥७९॥

कवि—सूरति

कैधौं विधि रसना की रची है कसौटी यह,
अरुन बरन अचरज मन मैं गह्यौ।
कैधौं तेरी बानी मनमानी ठकुरानी ताकी,
राती सेज फूल रंग जात न कछू कह्यौ॥
'सूरति' सु कैधौं बोल रतन अमोल दान,
दै दै सब ही को सुख दुख सबही दह्यौ।
नेकहूँ बखानि सकै काहू को सो बस ना जो,
रस तेरी रसना सो रस ना कहूँ लह्यौ ॥८०॥

टीका—कैधौं बिधि०—विधि रसना को कसौटी रची, अरुन बरन यह अचरज है कसौटी श्याम बरन होत बोल जो रतन अमोल है तासों बोलै ताको मोल लेत, काहू के बस नाहीं है जो रस तेरे रसना में है सो रस कहूं नाहीं लह्यौ ॥८०॥

कवि—बलदेव

(बानी वर्णन)

दंडक—सुधा के समुद्र की लहरि सी कढ़त रहै,
याही को सुनाय लाल कीने तै अधीन है।
बन उपबन बैठि आय कै दुराय याते,
मेरे जान यहै कलकंठी कंठ ही रहै॥
'बलदेव' ऐसी न रची है न रचैगो विधि,
मोतिन की उपमा करन लागी छीन है।
कमल के कोस पैठि गुंजरत भौंर कैधौं,
बानी माँझ बानी जू बजाई आनि बीन है ॥८१॥

टीका—सुधा के समुद्र०—कलकंठी कहै कोकिला, कमल के कोश कहै कमल ऐसो मुख तामें जीभ जो बोलत है सोई मानो कमल के कोश में भँवर गुंजरत है, की बानी में बानी कहै सरस्वती बीन बजायो ॥८१॥

बिधि = विधाता, ब्रह्मा। कसौटी = खरे खोटे की परीक्षक। राती = लाल। अमोल = अनुपम; बिना मूल्य। रसना = जिह्वा ॥८०॥

कलकंठी = कोकिल। कोस = भीतर, मध्यभाग। बानी = वचन। बानी = सरस्वती। बीन = बीणा ॥८१॥

कवि—सूरति

जाके एक अंस हंसबाहनी प्रसंसति है,
किन्नरी सुकौन जाकी कहो सर करिहै।
और कोकिला सो को कलाहू एक जाने नाहिं,
'सूरति' सुकवि गनती में कौन धरिहै॥
बीना बेन तबलै बजाइ लीजै प्यारे लाल,
फेरि तुम्हैं उनहूँ की चरचा बिसरिहै।
सुधि बुधि सकल हिराय जैहै जानो यह,
जबै मेरी रानी जू की बानी कान परिहै॥८२॥

टीका—हंसबाहिनी कहे सरस्वती जाको प्रशंसा करती है किन्नरी काइ सरि कहे बराबरी करैगी। और कोकिला सो को कलाहू पद० अरु कोकिला सो कला एकौ नाही जानि पाए जो बानीमें गुन है प्रिय के बीना कहे बीना बेनु कहे बाँसुरी॥८२॥

कवि—अज्ञात

(मुसक्यान वर्णन)

सिव सिर गंग जैसे जल की तरंग जैसे,
उडगन भंग जैसे करत पयान है।
मोतिन की हार जैसे दामिनिकी धार जैसे,
वोपी तरवारि जैसे तजत मियान है॥
दीपक की माल जैसे पावक की ज्वाल जैसे,
मोहिबे को लाल मन निपट सयान है।
तार जरजरी कैसे फूल फुलझरी कैसे,
जुगुनू ज्यों जरी कैसे तेरी मुसक्यान है॥८३॥

टीका—उडगन भंग नछत्रन कै गिरत मोतिन की हार तैसे दीपन की माल तार जरजरी कहे जरकसी फूल फुलझरी जुगुनू जरी कहे जड़े कैसे मुसकान है॥८३॥

अंस=अंश, भाग। हंसबाहनी=सरस्वती। किन्नरी=एक देव जाति विशेष। कला=अंश, चातुरी॥८२॥

उडगन=तारे। वोपी=चमकीली। मियान=म्यान, कोश। पावक=अग्नि। सयान=चतुर, अनुभवी। जरजरी=सोने की जरी। जरी=जड़ी हुई॥८३॥

कवि—भरमी

कोकनद कली जैसे खिलत बयारि लागे,
मंद मुसकान उसकान है चमेली की।
आरसी में भानु को प्रकास के उजास होत,
जैसे दीपमाल दीपै दीपति हवेली की॥
'भरमी' सुकवि दुति दामिनी सी कौंधति है,
चाँदनी सी चहूँवोर बात में सहेली की।
चंद की चमक चकचौंधति दसन दुति,
पियमन बसनि हँसनि अलबेली की॥८४॥

टीका—चन्द्रमा कै चमक चकचौंधत दशनमें पिय के मन को बसन कहै वस्त्र या वसन कहै बसीकरन है हसनि कहै हाँस नायिका की ॥८४॥

कवि—केशवदास

कीधौं मुख कमल मैं कमला की जोति होति,
कीधौं चारु मुख चंद्र चंद्रिका चुराई है।
कीधौं मृग लोचन मरीचिका मरीचि कीधौं,
रूपक रुचिर रुचि-रुचि सो दुराई है॥
सौरभ की शोभा की सदन घन दामिनी के,
'केशव' चतुर चित हूँ की चतुराई है।
ऐसी गोरी भोरी तेरी थोरी-थोरी हाँसी मेरे,
मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥८५॥

टीका—की मुखकमल में कमला कहै लछिमी या शोभा की जोति है की मृगलोचन की मरीचिका है कहै जासो मृगतृष्णा कहत है तेरी हासी थोरी गिरा कहै सरस्वती की गुराई होय ॥८५॥

कोकनद = लाल कमल। उसकान = खिलना। उजास = उजाला, चमक। दीपति = दीप्ति, कांति। हवेली = महल। कौंधति = चमकती ॥८४॥

चन्द्रिका = जुन्हाई। मृगलोचनमरीचिका = नेत्र रूपी मृगों की तृषा। मरीचि = किरणें। सौरभ = सुगन्ध। दामिनी = बिजली। भोरी = मुग्धा। सीधीसादी। मोहिनी = मोहित करने वाली। गिरा = वाणी। गुराई = गोरापन ॥८५॥

कवि—ग्वाल

(मुखवास वर्णन)

दंडक—पारिजात जातिं हूँ न नारंगी सख्यात हूँ न,
चंपक पुलात हूँ न सरसिज ताब मैं।
माधवी न मालती मैं जूही मैं न जोहियत,
केतकी न केवड़ा की लपट सिताब मैं॥
'ग्वाल कबि' ललित लवंग मैं न एलन मैं,
चंदन न चंद्रिका न केसरहि ताब मैं॥
सेवती गुलाब मैं न अतर अदाब मैं न
जैसी है सुबास कान्ह मुख महताब मैं॥८६॥

टीका—कान्ह मुख महताब कहे चन्द्रमा ॥८६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(नासिका वर्णन)

दंडक—तिलौ न समान तुलैं तिलके प्रसून पुंज,
सोभा सरि सेत बिधि बाँधी हैं सुलाँक की।
किंसुक अगस्त कली हूँ मे न सुगंध रली,
स्वास मैं सुबास खुलै कोठरी मृगाँक की॥
'गोकुल' बिलोकि लागै कीर भीर हूँ हकीर,
छहरत छबि ऐसी मुकुत बुलाँक की।
नाक नर नाग लोक नाकहूँ निहारे अस,
निखरी निकाई नीकी नागरी के नाँक की॥८७॥

पुलात = विकसित होना। सरसिज = कमल। ताब = आभा। जोहियत = देखी जाती। सिताब = तुरन्त। एलन = इलायची। मुखमहताब = मुखचन्द्र ॥८६॥

तिलौ न = रंचमात्र भी नहीं। तुलै = समता कर सकते है। सरि = नदी। सुलाँक = सूराख, बेध, छिद्र। मृगाँक = कस्तूरी। कीरभीर = सुग्गों की पाँति। हकीर = तुच्छ। मुकुत = मोती। बुलाँक = नासिका का आभूषण। नाक = स्वर्ग। ना कहूँ = न कहीं। निकाई = सुन्दरता। नाक = नासिका ॥८७॥

टीका—शोभासरि कहै नदी में सेतु द्वै सुलाक कहै छिद्र है, स्वास में ऐसा सुवास है मानो मृगांक की कोठरी खुली है कहै कस्तूरी की या चन्द्रमा की कीर-भीर इकीर कहै छोटे लागत है, नाक नर नागलोक नाक कहै स्वर्गलोक नरलोक में ना कहूँ नाहीं कहूँ अस देखै जैसो सोभा नागरी के नाक की है ॥८७॥

कवि—बलभद्र

सोभा को सकेलि ऊँची बेला बाँधी 'बलिभद्र',
राख्यौ समलोचन कुरंगन को रोस है।
दीपति को दीपमुख दीप को सुमेर वह,
मृदुमुख सारस को सिफाकंद जोस है॥
कलप सरोवर की कलिका सुगंध फूली,
उपमा अनूपम को बिबुधन सोस है।
तिल को सुमन है की नासिका तरुनि तेरी,
सुरन की सरन की सौरभ को कोस है ॥८८॥

टीका—सोभा को सकेलि ऊँच बेला कहै गोलधूरा बाँधो है, मुखदीप जो है ताको सुमेरु होय की दीपति को दीप होय, सारस कहै कमल को सिफाकन्द कहै जो कमलके भीतर पियर होत जामें फल लागत है सुरन की सरन कहै सुर सात पाइ गल पिंगलादि के सरन होय या सुगंध के कोस ॥८८॥

कवि—सेख

(नासिकावेह वर्णन)

सुनि चित चाहै जाके कंकन की झनकार,
करत है सोई बात होत जो बिदेह की।
'सेख' भनि आजु है सुकाल्हि नाही कान्ह जैसी,
निकसी है राधे की निकाई जैसे नेह की॥
फूल की सी आभा सब सोभा लै सकेलि धरी,
फूलि ऐहौ लाल सुधि भूलि जैहौ गेह की।
कोटि कबि पढ़ै तऊ बरनी न बनै कबि,
बेसर उतारे छबि बेसर के बेह की ॥८६॥

सकेलि = एकत्र करके। बेला = सीमा। कुरंगन = मृगों का। सिफाकंद = कमल की जड़। जोस = कांति, वेग। कलप = कल्प। बिबुधन = देवताओं को। सोस = अफसोस, चिंता। सुरन की सरन की = देवताओं के तड़ागों की। सौरभ = सुगन्ध। कोश = भण्डार ॥८८॥

बिदेह = देहरहित। सकेलि = इकट्ठा कर। फूलिऐहो = प्रसन्न हो जाओगे। बेसर = नाक का एक आभूषण। वेह = वेध, छिद्र ॥८६॥

टीका—फूल की सी आभा देखि कहै फूलि ऐहो बेसरि उतारे जैसी छवि बेसरि की वेह को देखि करि ॥८६॥

(बेसरि वर्णन)

बदन सुराही मैं छबीली छबि छाक्यौ मद ,
अधर पियाले छिन छिन मैं गहत है ।
अलसाय पौढ़त कपोल परयंक पर ,
कबहूँ गजक जानि चाखन चहत है ॥
प्रेम नग साथी ये तो सदा रहैं अंक भरें ,
छक्योई रहत कोऊ कछु न कहत है ।
झुकि परै बात के कहे ते अनखात न्यारो ,
बेसरि की मोती मतवार सो रहत है ॥९०॥

टीका—यह बेसरि की मोती या बेसरि मतवार को रूपक है,बदन सुराही कहै जामें मद भरत है छवि छाक कहै मदिरा है अधर जो पियाला है ताको छिन छिन ओठमें लगावत है। अलसाय कै मतवार सेज पर पौढ़त तैसे बेसरि कपोल सेज पर परत गजक खटाई मिठाई जानि चाखत है जो नग बेसरि में है सोई साथी है, झुकि परै बात के कहत मस्त बात के कहत झुकत तैसो बात बोलत ही बेसरि झुकत है तैसे जानिए ॥९०॥

छक्यौ जल सागर बिंधायो तन आप आप ,
अधर के बीच रह्यौ और न चहत है ।
बिधि के संयोगवस आनि परो बेसर में ,
बन्यो है बनाव मनि कंचन सहित है ॥
पूरन प्रताप चंद पायो है मुखारबिंद ,
एतो कहाँ लहै कंत जेतो तूँ लहत है ।
प्यारी के बदन पै मदन जू को मंद पियै ,
मोती मतवारो सदा झूमतै रहत है ॥९१॥

परयंक=पर्यंक, पलंग। गजक=वह वस्तु जो शराब पीने के बाद जायका बदलने के लिए खाई जाती है, चाट। नग=रत्न। अनखात=क्रुद्ध होकर। मतवार=मतवाला ॥९०॥

बिंधायो=विद्ध किया गया, छेदा गया। अधर=ओठ, आकाशमध्य। मनिकंचन=रत्न और सोना। कंत=नायक। मदनजू=कामदेव ॥९१॥

टीका—वदन पै मदन जो काम अधर पर छकिकै मानो मतवार ऐसो झूमै है ॥६१॥

कवि—किशोर

लगी जब आस तब उतरो अकाश ही ते,
सिन्धु जलजंतु ग्रास कीन्ह्यौ सुख चीन्ह्यौ है।
बड़ो हितकार वाको उदर विदारि कढ़्यौ,
चढ़्यौ मोल भारी बास संपुटन लीन्ह्यौ है॥
कहत 'किशोर' भ्रम्यौ देस देस वोर लह्यौ,
ब्रज चितचोर जिय वारिफेरि दीन्ह्यौ है।
उर कै सुलाक मोती नासिका बुलाक भयो,
बड़ोई चलाक पै हलाक मन कीन्ह्यौ है॥६२॥

टीका—लगी जब आस आकाश तें उतरो स्वाति बुंद ताहि सिन्धु के जलजंतु सीपी पियो ताको उदर फारि निकरो बड़ो मोल भयो संपुट में बसो उर में सुलाक कहै छेद भयो नासिका बुलाक मोती हलाक करतु है ॥६२॥

कवि—केशवदास

'केशौदास' सकल सुबास को निवास यह,
कैधौं अरबिंद माँहि बिंदु मकरंद को।
कैधौं चंद्रमंडल मैं सोहत असुरगुर
कीधौं गोद चंदहू के खेलै सुत चंद को॥
बाढ़ो गुन रूप काम दिन-दिन दूनौ किधौं,
सूँघत हैं चंद्र फूल आनंद के कंद को।
नासिका निकाई हूते नीको नाक मोती बनी,
मानो मन उरझ रह्यौ है नँद नंद को ॥६३॥

टीका—चन्द्रमा के मंडल मैं असुर गुर नाम शुक्र होय की चन्द्रमा अपने पुत्र बुधको गोदमें लिए है अवर सुगम ॥६३॥

हितकार=हितैषी। उदरविदारि=पेट फाड़कर। संपुटन=डिब्बे में। वोर लह्यो=पार किया। वारिफेरि=अदला बदली। सुलाक=छिद्र, बेध। हलाक=क़त्ल करना ॥६२॥

सुबास=सुगन्ध। अरबिंद=कमल। मकरंद=पराग। असुरगुर=शुक्र। सुत चंद को=चंद्रमा का पुत्र, बुध। नँदनंद=श्रीकृष्ण ॥६३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(कपोल बर्णन)

दंडक—कैधौं नेह हाटक सरूप तौलिबे को तुला,
पला द्वै अनूप रस भूप जानि कियो है ।
कीधौं सोभासिंधु ही में सुबरन शंख कीधौं,
सोन सम्पुटी में दाँत मुकतानि कियो है ॥
राम के कपोल गोल नैन नृतकारी भूमि,
'गोकुल' मुकुर मैन कीधौं मानि कियो है ।
राजत अमंद कीधौं राका परिवा के इंदु,
कोऊ एक मंडल मैं उदै आनि कियो है ॥६४॥

टीका—कीधौं राका कहै पूरनमासी को चन्द्रमा और परिवा के चन्द्रमा एक मंडल कहै एक ठाम भये ॥६४॥

कवि—केशवदास

कीधौं हरि मनोरथ पथ की सुपथ भूमि,
मीन रथ मन हूँ की मनि न सकति छ्वै ।
कैधौं रूप भूपति की आसन रुचिर चारु,
मिली मृगलोचन मरीचिका मरीचि ह्वै ॥
कीधौं श्रुति कुंडल मकरसर 'केशौदास',
चितए ते चित चकचौंधि कै चलत च्वै ।
गोरे गोरे गोल अति अमल अमोल तेरे,
ललित कपोल कैधौं मैन के मुकुर द्वै ॥६५॥

टीका—मीनरथ कहै कामको रूप भूपको सेज होय की कुंडलमकर होइ सर कहै ताल के की यह मैन के मुकुर दुइ होइ ॥६५॥

हाटक = सुवर्ण । तुला = तराजू । पला = पलड़े । रसभूप = श्रृङ्गार । सोनसंपुटी = सोने की डिबिया । मुकुरमैन = काम दर्पण । राका = पूर्णिमा ॥६४॥

सुपथ = सुन्दर रास्तों वाली । मीनरथ = कामदेव । मृगलोचन-मरीचिका = नेत्ररूप मृगों की तृष्णा । मरीचि = किरण । श्रुति = कान । अमल = स्वच्छ ॥६५॥

कवि—कालिदास

चपला के ऐसे चार चमकै हैं छबि पुंज,
छेदि निसरत झीने घूँघुट निचोल हैं।
'कालिदास' आसपास तरनि तरौनन की,
जोति किरनावली ललित अति लोल हैं॥
कान्ह अवलोकत बदन प्रतिबिंब निज,
कनक सरूप मानो मुकुर अमोल हैं।
लेत मन मोल करैं दृगन की तौल ऐसे,
गोरे गोरे गोल बने प्यारी के कपोल हैं ॥९६॥

टीका—की चपला कै चमक होइ की तरनि कहै सूर्य होइ तरयौना कहै वीर की कनकस्वरूप के मुकुर कहै ऐना होइ ॥९६॥

कवि—परसराम

कैधौं रूप धरनी मैं राजत युगल खंड,
कैधौं मीनकेतन के आरसी सुढारे हैं।
कैधौं हरिलोचन तुरंगन के लीला थल,
कैधौं सरसीरुह के दल द्वै निहारे हैं।
'प्रसराम' कोमल मधूकन से चंपक से,
चारु चंद्रमा की कोनि कोरि कै निकारे हैं।
प्यारी गोल गोल अति ललित कपोल तेरे,
नीठि नीठि रचि करतार कर झारे हैं ॥९७॥

टीका—की रूप कोऊ वस्तु ताको दुइ खण्ड होय की कामके ऐना होइ की हरिलोचन तुरंग ताके फिरबेकी भूमि होय की कमल के द्वै दल होइ ॥९७॥

चपला = बिजली। झीने = महीन, पतले। निचोल = ओढ़नी। तरनि तरौनन = पद्मराग के तरिवनों (कान के आभूषण विशेष, ताटंक)। जोति = ज्योति। लोल = चंचल ॥९६॥

धरनी = पृथ्वी। मीनकेतन = कामदेव। सुढारे = अच्छी प्रकार ढाले हुए। हरिलोचन तुरंगन = कृष्ण के नेत्ररूपी घोड़ों के। लीलाथल = क्रीड़ा-भूमि। सरसीरुह = कमल। दल = पंखुड़ी। मधूक = महुवा। कोनि = कोना। नीठि नीठि = कठिनाई से। झारे = झाड़े, पोंछे ॥९७॥

कवि—श्रीपति

(तिल वर्णन)

दंडक—फूले वारिजात में लखात है मधुप कैधौं,
सुषमा सरोवर में रसराज पैठ्यौ है।
रति के मुकुर पै धरी है नीलमनि कैधौं,
कामिनी के बदन परम छबि जेठ्यौ है॥
'श्रीपति' रसिकराज सुंदर गुलाब बीच,
मृगमद बूँद रूप परम परेठ्यौ है।
ललित कपोलन में तिल छबि देत मानो,
पूरन मयंक में निशंक सनि बैठ्यौ है ॥९८॥

टीका—वारिजात में भौंर की शोभा सर में रसराज शृङ्गार पैठो है की रती के पैना में नीलम धरो है की गुलाब के बीच मृगमद बुंद होय की पूर्ण शशि में शनैश्चर होइ ॥९८॥

कवि—रसलीन

दो०—जाल घुघुरु अरु दंड भ्रू, नयनन मुलह बनाइ।
खींचत खग दृग जग त्रिया, तिल दाना देखराइ ॥९९॥

टीका—कपोल में तिल यह न होइ यह बधिकरूपी नायिका दाना बिथराइ कै खगरूपी मनको बझावै है ॥९९॥

सब जग पेरत तिलन को, के न ठग्यौ यहि हेरि।
तुव कपोल के एक तिल, सब जग डार्यो पेरि ॥१००॥

टीका—सुगम ॥१००॥

वारिजात = कमल। मधुप = भौंरा। सुषमा = अत्यन्त शोभा। रसराज = शृङ्गार। मुकुर = दर्पण। जेठ्यौ = बड़ा है। मृगमद = कस्तूरी। पूरनमयंक = पूर्ण चन्द्र। सनि = शनैश्चर ॥९८॥

मुलह = मुह्हा, धोखे की चिड़िया ॥९९॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(श्रवन वर्णन)

सवैया—की मन भूप के द्वै दरबान की कुंडल भानु के भौन भला।
की जन दीन के बंधु प्रबीन किधौं मन मोतिय सीप कला॥
सत्य असत्य की बात को तौलनि हार विचार तुला के पला।
की श्रुति बानी के पानी के कूप अनूप किधौं श्रुति राम लला।१०१।

टीका—की मन भूपके कान दुइ चोपदार होइ क्योंकि चोपदार नृप ते खबरि करत तैसे कान जो सुनत सो मनमें प्रगट होत की कुण्डल भानु के घर होइ, की दीनजन के बन्धु होइ की मनरूपी मोती के सीप होइ की सत्य झूठ तौलहार विचार के तुलाके पलरा होय की श्रुति कहै वेद के बानी जो पानी है ताके रहिबे के कूप कुँआ होइ ॥१०१॥

कवि—अज्ञात

पिय गुन आसन सरोज के सिंघासन हैं,
कैधौं बिबि बासन सनेह रस भरे हैं।
साँच झूँठ तौलिबे को तुला के पला हैं कैधौं,
किंसुक के पात से लपटि पाछे परे हैं॥
कैधौं बिबि चक्र सहचक्र के सुधारे कैधौं,
कुंडल कलानिधि बिधि करि धरे हैं।
करन के छिद्र कै अछिद्र छबि ताए कवि,
कंचन समीप मानो मुकुता से जरे हैं॥१०२॥

टीका—की दुइ बासन होइ सनेह के की दुइ चक्र कहै पहिया होइ चन्द्ररथ के की कान के छिद्र अच्छिद्र किये कंचन के बीर पहिनाय के ॥१०२॥

दरबान = द्वारपाल। तुला के पला = तराजू के पलड़े। श्रुतिबानी = वेद-वाक्य। श्रुति = कान ॥१०१॥

बिबिबासन = दो पात्र। किंशुक = टेसू। बिबिचक्र = दो चक्र। कलानिधि = चन्द्रमा। करन = कान। कंचन = सुवर्ण। मुकुत = मुक्ता, मोती ॥१०२॥

कवि—दास

स०-'दास' मनोहर आनन बाल को दीपति जाकी दिपै सब दीपै।
श्रौन सुहाए बिराजि रहे मुकुताहल संयुत ताहि समीपै॥
सारी महीन सो लीन बिलोकि बिचारत हैं कवि के अवनीपै।
सोदर जानि शशीहि मिली सुत संग लिये मनो सिंधुमें सीपै॥१०३॥

टीका—दीपति जाकी सब दीप मै जाहिर है जो मुकता कान मैं ताकी उपमा सोदर कहै मानो भाई जानि चन्द्रमा को सीपी पुत्र लै कै मिली॥१०३॥

कवि—बलभद्र

रूप के अटान की कि राखी हैं धुजा उतारि,
सारि कामयंत्र की कि कंचन के पोत हैं।
पियके बचन स्वाति बुंदन की सीप कैधौं,
सुनत ही मोद मुकुताहल से होत हैं॥
लोचन कुरंगन की कीन्हें हैं परिख घर,
'बलिभद्र' झाँकत झुकत लोल होत हैं।
सुखन के स्वर हैं श्रवन तेरे सुंदरी की,
दरी हैं सोहाग राग सागर की सोत हैं॥१०४॥

टीका—रूप के अटान के धुजा होय कामके यन्त्र होय की कंचन के पोत होय वचन स्वाती बुंद के सीप होय की नैन कुरंग के परिख घर होय सुखन के स्वर है यह श्रवन की दरी होय गिरि कै खोहा सोहाग की राग सागर को सोत जानि॥१०४॥

दीपति = दीप्ति, कांति। दिपै = चमकती है। दीपै = द्वीपों में। श्रौन = कानों में। मुकुताहल = मुक्ताफल, मोती। सारी = साड़ी। अवनीपै = राजा को। सोदर = सहोदर भाई। सिंधु = समुद्र॥१०३॥

अटान की = अटारियों की। धुजा = ध्वजा। सारि = पासा। कंचन के पोत = सोने के दाने। मुकुताहल = मोती। कुरंगन = मृगों। परिख = परीक्षा। दरी = गुफा॥१०४॥

कवि—गोकुलदास 'वृज'

(नेत्र वर्णन)

दंडक—कोऊ कहै भृकुटी कमान ही के मैन बान,
मन महिपाल के दिवान वर जोर हैं।
कोऊ कहै खंजन कुरंग मन रंजन हैं,
सोभा के सरोवर सरोज फूले भोर हैं॥
कोऊ कहै छबि सरिता के मीन मंजु सोहैं,
जन मन मानिक के चल चित चोर हैं।
'गोकुल' बिलोकि चारु चितै राम चंद ओर,
मेरे जान जानकी के चख द्वै चकोर हैं॥१०५॥

टीका—रामचन्द्र चन्द्र लोचन, अवर सुगम ॥१०५॥

भृकुटी कुटिल राजै मूठि सी बिराजै बर,
पलक मियान पुंज पानिप रसाल हैं।
कज्जल कलित दोऊ कोर मे दुधार वर,
डोरे रतनारे जेब जौहर के जाल हैं॥
'गोकुल' बिलोकि निज नायक सनेह सनी,
स्वच्छ हैं कटाच्छ काट करती कराल हैं।
कमनीय कामिनि के रमनीय नैन कैधौं,
कामिन के मारिबे को काम करबाल हैं॥१०६॥

टीका—कामिनि के मारिबे को काम की करबाल कहै तरवारि ॥१०६॥

कमान = धनुष। मैनबान = कामबाण। महिपाल = राजा। दिवान = मंत्री। सरोज = कमल। सरिता = नदी। मीन = मछली। मानिक = माणिक्य। चख = चक्षु, नेत्र ॥१०५॥

मूठि = पकड़ने का स्थान, मूठ। मियान = म्यान, तलवार की खोल। पुंजपानिप = शोभा के समूह। रसाल = रसभरे। दुधार = दोनों ओर धारवाले। रतनारे = लाल लाल। जेब जौहर = सुन्दर प्रभा। करबाल = तलवार ॥१०६॥

कवि—तारा

गुंजा गिले खंजन की भौंर भरे कंजन की,
वारि विधु मंजन औ अंजन समेत हैं।
नेह भरे सागर सनेह भरे दीपक से,
मेह भरे बादर सलोने लखि खेत हैं॥
तरल त्रिबेनी के तरंगनि मैं 'ताराकवि'
मानो सालिग्राम असनान के निकेत हैं।
मृगमद लागे साखा मृग दृग दागे मैन,
छाजन मे पागे नैन ऐसे सोभा देत हैं ॥१०७॥

टीका—गुंजा खाइनि घुँघुची की खंजन होइ की कंज पर भौंर होइ, अवर सुगम ॥१०७॥

कवि—गंग

दीरघ ढरारे महा डोरे रतनारे लागे,
कारे तहाँ तारे अति भारे जे सुरंग हैं।
कहै गुनि 'गंग' जनु दूध ही से धोये पुनि,
कोये बिकसित सित असित सुरंग हैं
पारद सरस चीर थिर में थिरकि जात,
तिरछे चलत मानों कूदत कुरंग हैं।
खैंचे न रहत अनुराग हूँ के बाग बर,
मानिनी के नैन कैधौं मैन के तुरंग हैं ॥१०८॥

टीका—अनुराग के बाग ते खैंचे नाहीं रुकत, तिरछे चलत मानों काम के तुरंग ॥१०८॥

गुंजा = रत्ती। गिलै = निगलता हुआ। नेह = प्रेम, तेल। मेह = जल। सलोने = सुन्दर। सालिग्राम = काले रंग की वह शिला जो गंडकी नदी के किनारे मिलती है और जिसे विष्णु का स्वरूप माना जाता है। निकेत = स्थान। मृगमद = कस्तूरी। शाखामृग = बन्दर। छाजन = वस्त्र। पागे = अनुरक्त।१०७।

दीरघ = दीर्घ। रतनारे = लाल लाल। सुरंग = सुन्दर रंगवाले। सित-असित = श्वेत और काले। पारद = पारा। थिरक जात = नाच जाते हैं। कुरंग = मृग। मैन के तुरंग = कामदेव के घोड़े ॥१०८॥

कवि—नबी

मृग कैसे मीन कैसे खंजन प्रबीन कैसे,
अंजन सहित सित असित जलद से।
चर से चकोर से की चोखे काँड कोर से की,
मदन मरोर से की माते रति मद से॥
'नबी कबि' नै ना से की और नैन बै ना से की,
सी पड़े सलोना मध्य राखे मृग मद से।
पय से पयोधि से की और सोधे सौध से की,
कारे भौंर के से अनियारे कोकनद से॥१०९॥

टीका—मृग मीन खंजन से अंजन युत स्यामसेत जलद कहैं मेघसे चर से चकोर से चोखे कांड बाण के नोक से मदन मरोर की माते हैं मदते। नैना से कहै नै नाम नीति जे मनाही अनीति से हैं की और नैन बै ना० और नैन वै ऐसे नहीं हैं इत्यादि सुगम जानो॥१०९॥

बंधु बिधु कीर मैं चकोर को सो जोरा बैठ्यो,
कैधौं मृगमीन बाल हित कै बढ़ाए हैं।
कैधौं मीनराज के जुगल मीन जंग जुरे,
खंजरीट टेक मानो पिंजरा पढ़ाए हैं।
मिलत जियाइबे को बिछुरत मारिबे को,
बानिक पियूष बिष बोरि कै कढ़ाए हैं।
कैधौं बिधि पूरन मयंक मुख पूजा करी,
अलिन सहित मानो नलिन चढ़ाए हैं॥११०॥

टीका—की विधि पूरन मयंक मुखको पूजा करि अलिन कहै भँवर सहित नलिन कहैं कमल चढ़ायों जो अंजनयुत नेत्र हैं॥११०॥

प्रवीन = चतुर। सितअसित = श्वेत और काले। जलद = मेघ। कांड-कोर = बाण की नोक। मदनमरोर = काम की ऐंठन। राते = लाल। मृगमद = कस्तूरी। पयोधि = समुद्र। सोधे = सुनिर्मित। सौध = प्रसाद। कोकनद = लाल कमल॥१०९॥

विधु = चंद्रमा। कीर = सुग्गा, तोता। मीनराज = महामत्स्य। जंग = युद्ध। खंजरीट = खंजन पक्षी। बानिक = शोभा। पियूष = अमृत। पूरनमयंकमुख = पूर्ण चन्द्रमा रूपी मुख। अलिन = भौंरों के। नलिन = कमल॥११०॥

कवि—भंजन

कमल लरी के हैं सँवारे सुघरी के हैं जु,
सुंदरता सीके हैं सती के हैं रती के हैं।
खंजन अनी के हैं की गंजन मनी के हैं की,
रंजन धनी के हैं की 'भंजन' अमी के हैं॥
ऐसे हरि नीके हैं न ऐसे हरिनी के हैं न,
राज रमनी के हैं न काम कमनी के हैं।
नैन मैन जी के हैं की बैन बैन जीके हैं की,
शोभा मूल ही के हैं की प्यारी प्रान पी के हैं॥१११॥

टीका—नैन मैन के तीर होइ की बैन बैन के जीव इत्यादि सुगम॥१११॥

कवि—परबत

खंजन खिजात जलजात की लजात हेरो,
हिरनो हेरात मुकुता न ठहरात हैं।
पंचसर कीने रद भौंरन के भूले मद,
नट से बिचित्र चित्र हिये हहरात हैं॥
दीपक मलीन छीन मीन लागे मेरे जान,
तीने तीन रंग ताते अति इतरात हैं।
'परबत' प्यारे मकसूदन तिहारे द्दग,
मारत निशंक ना कलंक ही डेरात हैं॥११२॥

टीका—खिजात कहै खिसात है, पंचसर काम मारत निशंक कहै कछु डर नाहीं॥११२॥

लरी = श्रृंखला। सुघरी = अच्छी घड़ी। सती = शिवपत्नी। रती = कामपत्नी, रति। अनी = पंक्ति, सेना। गंजन = तिरस्कार करनेवाले। मनी = मणि। रंजन = प्रसन्न करने वाले। भंजन = नष्ट करने वाले। अमी = अमृत। हरि नीके = हे कृष्ण! अच्छे। हरिनी के = मृगी के। राजरमनी = रानी। कामकमनी = कामपत्नी। मैन जी = कामदेव। बैन = वचन॥१११॥

खिजात = खिसियाता है। जलजात = कमल। हिरनो = हरिण। पंचसर = कामदेव। रद = दाँत। हहरात = काँपता है। इतरात = घमंड करती। मधुसूदन = कृष्ण॥११२॥

कवि—अज्ञात

काजर ते कारे अनियारे डोरे मतवारे,
कमल ढरारे कैधौं अमृत के दौना हैं।
खंजन सँवारे कैधौं खंज खर सान धारे,
कैधौं मन मोहनके मन के हरौना हैं॥
रूप जल वारे रस वारे डगमगत हैं,
नवल दुलारे कैधौं मृगन के छौना हैं॥
मदन निहारे पच्छी सीख देनहारे आली,
तेरे मैन ऐन मानो मैन के खिलौना हैं॥११३॥

टीका—अमृत के दौना कहै दौना होय, पच्छी खंजन के सीख देनहारे हैं ऐन कहै घर या यही मैन के खिलौना होय ॥११३॥

कवि—नाथ

झूमत झुकत भरे मद के अरुन नैन,
मानो मैन तून हैं कढ़त जाते सर हैं।
हाव किलकिंचित सरूप धरे 'नाथ' कैधौं,
मोहन बसीकर उचाट के अमर हैं॥
कैधौं मीन पैरत सहाब के सरोवर में,
मानिक जड़ित भूमि खंजन सुढर हैं।
कैधौं अनुराग के लपेटि कै सिंगार बैठ्यो,
कैधौं कौंल पाँखुरी मैं डोलत भँवर हैं॥११४॥

टीका—सहाब कहै अरुन रंग मानिकलाल मनि के भूमि में यह पुतरी खंजन होय की कौलपाखुरी पै भँवर ॥११४॥

अनियारे=तिरछे। ढरारे=शीघ्र प्रवृत्त होने वाले। खंज=खांडा। खर=तीक्ष्ण। सानधारे=सान लगे हुए। छौना=बच्चे ॥११३॥

मैनतून=कामदेव का तूणीर (तरकस)। हाव=काय जनित चेष्टाएँ। किलकिंचित=विभिन्न चेष्टाओं का मिश्रण। उचाट=उदासीनता। पैरत=तैरता है। कौंलपाखुरी=कमल की पंखुड़ी ॥११४॥

किलकिञ्चित—नायक के संगम जनित हर्ष से नायिका में जो स्मित, शुष्क-रुदन, हास्य, त्रास, क्रोध और श्रम आदि का सांकर्य (मिश्रण) होता है उसे किलकिञ्चित कहते हैं। नायिका के सात्विक २८ अलंकारों में यह भी गिना जाता है॥

कवि—नन्दन

राजै रतनारे दृग ऊपर उजारे भारे,
प्रेम मतवारे पिय मैन सुखदैन हैं।
गंजन कमल मृग मीन मद भंजन हैं,
अंजन लखे ते न रहत उर चैन हैं।।
'नंदन सुकवि' नँद नंदन पै ढुरे नेंक,
रोस भरे देखे याते कहे कछु बैन हैं।
ऐसे देखे मैं न मैनबान से बिराजे ऐन,
आज तेरे अजब गुलाबी रंग नैन हैं ॥११५॥

टीका—अस मैं नहीं देखे ऐन कहै येई मैन के बान होय ॥११५॥

कवि—रघुनाथ

सवैया—आई हौं देखि सराहि न जात है या बिधि घूँघट मैं फरके हैं।
मैं तौ हौं जानी मिले दोऊ पीठे रहे कान लख्यौ की उन्हैं हरके हैं।
रंगन ते रुचि ते 'रघुनाथ' विचार कर्यौ करता करके हैं।
अंजनवारे सही दृग प्यारी के खंजनवारे बिना पर के हैं ॥११६॥

टीका—अंजनवारे दृग प्यारी के पै ऐसे हैं की मानो बिना पर के खंजन होय ॥११६॥

कवि—मुबारक (ममारख)

पानिप के पानिप सुघरताई के सदन,
शोभा के समुद्र सावधान मन मौज के।
लाजन के बोहित परोहित प्रमोदन के,
नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के।।
दया के निदान पतिव्रत के प्रधान युग,
नैन ए 'मुबारक' प्रधान नवरोज के।
मीनन के सिरताज मृगन के महाराज,
साहिब सरोज के मुसाहिब मनोज के ॥११७॥

रतनारे=लाल लाल। उजारे=प्रकाशमान। अंजन=काजल ॥११५॥

हरके हैं=रोके हैं। करताकर=ब्रह्मा के हाथ के बनाये हुये। खंजनबारे=खंजन के बालक। पर=पंख ॥११६॥

टीका—पानिप कहै शोभा के शोभा होय, लाजके बोहित कहै नौका, नेह के नकीब कहै चोपदार, सुगम ॥११७॥

कवि—रसलीन

दो०—भ्रू डाँड़ी काँटा तिलक, पल चख पुतरी बाँट ।
तोलत मूरत्ति मित्र की, नेह नगर की हाट ॥११८॥

टीका—भौंह डाँडी काँटा तिलक पलरा पलक पुतरी बटखरा तौलत मित्र की मूर्ति नेह के बजार में ॥११८॥

कवि—बलभद्र

(तारे वर्णन)

दंडक—पय भरे भाजन मैं पैरत मधुप कीधौं,
कीधौं छीरनिधि मध्य मंजु दीप कारे हैं।
बिसद बसन बीच चोवा के चुगुल युग,
मैन मुख देखिबे को दर्पन सँवारे हैं ॥
कमल दलनि पर मनिमय देव कीधौं,
पिय मन द्विज पूजिबे को पाय धारे हैं।
छाती धरे छिति जीतिबे के काज 'बलिभद्र',
तम की तुरस की तरुनि तेरे तारे हैं ॥११९॥

टीका—पय कहै दूध के बर्तन में भँवर होय की छीर कहै दूध के समुद्र में दीपक होइ कारे बसन में चोत्र के छीट की मैन मुख देखिबे को दर्पन सँवारे है की कमल के दल पै मनि रूपी देवता की तम छाती पर धरे छिति जीतिबे छिति धर कहै राजा होइ ॥११९॥

पानिप के पानिप = शोभा की शोभा । सदन = घर । बोहित = माल ढोने वाले जहाज। परोहित = पुरोहित । प्रमोदन = प्रसन्नता से । नकीब = बंदीजन । चोज = चमत्कार पूर्ण उक्ति । नवरोज = मुसलमानों और पारसियों में वर्ष का प्रथम दिन । सिरताज = सर्व प्रमुख । साहिब = पूज्य । सरोज = कमल । मुसाहिब = दरबारी । मनोज = काम ॥११७॥

द्विज = विप्र । छिति = पृथ्वी । तम = अन्धकार ॥११९॥

कवि—अज्ञात

फटिक के संपुट मैं सोई शालिग्राम शिला,
कमल दलनि पर भौंर से निहारे हैं।
मृगमद बिंब के लसत प्रतिबिंब कीधौं,
दीपत दृगन पर कज्जल के बारे हैं॥
कैधौं मरकत मनि मुकत सुकत पर,
कैधौं रतिनायक के सायक बिसारे हैं।
पियमन तारिबे को अवतारे तारे भारे,
बरुनी के बार मानो तरुनी के तारे हैं॥१२०॥

टीका—पियमन तारिबे को अवतारे कहै अवतार लिहिनि वारुनी के बार या तरुनी के तारे हैं॥१२०॥

सवैया—पंकज के दल द्वै पर द्वै भँवरी रस लालच हेत खँगी है।
कै नटनी सुरनायक की निरतै कल हाव सोभाव पगी है॥
बाल के नैन की पूतरिया निसिबासर लाल के ही में लगी है।
कंचन की झषरूप डबीन में खोलि धरी मनो नील नगी है॥१२१॥

टीका—पंकज के दुइ दल पर मानो भौंरी कहै अलिनी होय की नटनी सुरनायक की कलहावते नृत्य करै है की सोने के मछरी रूप कहै चांदी के डिबिया में मानो खोलि कै धरी है नील नगी होइ॥१२१॥

कवि—नीलकंठ

(कटाक्ष वर्णन)

तेरी भौंहैं धनुष धरत कर कोप आप,
चंपक के चाप के हूँ खैंचत खटात हैं।
तेरियै अलक तामें ललित कलित गुन,
मधुकर भये गुन कथत डरात हैं॥

फटिक के संपुट=स्फटिक की डिबिया। मृगमदबिंब=कस्तूरी का गोला। मुकुत=मुक्ता, मोती। सुकुत=शुक्ति, सीप। रतिनायक=कामदेव। सायक=बाण। बरुनी=आँख की पलक, बरौनी। तरुनी=नक्षत्र विशेष॥१२०॥

नटनी=अप्सरा। सुरनायक=इन्द्र। निरतै=नाचती है। पूतरिया=पुतली। ही में=हृदय में। झषरूप=मत्स्याकार। डबीन=डिबियों में। नीलनगी=नीलम रत्न॥१२१॥

कहै 'नीलकंठ' सब तेरे अंग अंग हेरि,
नातर अनंग ते सरम समुहात हैं।
जग जैतवार कोटि तेरि यै कटाक्ष ना तौ,
पाँच पाँच बान सो जहाँन जीते जात हैं ॥१२२॥

टीका—तेरियै कटाक्ष ते काम जग जैतवार है पाँचों बान ते कहूँ जहान जीति जात है। काम के पाँच बान हैं ॥१२२॥

कवि—ममारख (मुबारक)

कान्ह के बाँकी चितौनि चुभी झुकि,
काल्हि की ग्वालिनि झाँकि गवाछन ॥
देखि अनोखी सी चोखी सी कोर,
अनोखी परी जित ही तित ताछन।
मारैई जात निहारे 'ममारख'
ए सहजे कजरारे मृगाछन।
काजर दे री न ए री सोहागिन,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन ॥१२३॥

टीका—गवाक्ष नाम झरोखा ते देखे तेरे नैन मृग कैसे ऐसे तेरे कटाक्ष हैं। काजर न दे अंगुरी कटि जायगी ॥१२३॥

कवि—अज्ञात

अबलक अंग अंग सुंदरता जीन तामें,
काजर ब पाखर सु आप हाथ साजी हैं।
लाज है लगाम चितवनि गाम चाल मानो,
भृकुटी कुटिलता में कलँगी से छाजी हैं ॥

खटात = जाँच में पूरे उतरते हैं। अलक = केश। गुन = डोरी। मधुकर = भौंरे। गुन = गुण। अनंग = कामदेव। जैतवार = जयशाली। जहान = संसार ॥१२२॥

बाँकी = तिरछी। चितौनि = चितवन, दृष्टि। गवाच्छन = खिड़की से। कोर = कोना। ताछन = उसी क्षण। सहजे = एक साथ उत्पन्न, यमल। कजरारे = काजल लगे हुए ॥१२३॥

पूतरी सवार शुभ लिये चाह चाबुक को,
देखि कै कटाक्ष खुरी भए लाल राजी हैं।
नाचे सुख कंजन की थारी मैं सुभारी अति,
प्यारी तेरे नैन मैन भूपति के बाजी हैं ॥१२४॥

टीका—अबलक रंग सुधराई जीन काजर पाखर लाज लगाम चितवनि चाल भृकुटी कलंगी पूतरी सवार चाह चाबुक कोड़ा कटाक्ष खुरी सुख थारी पै नाचत कहै फिरत है तेरे नैन काम के घोड़ा हैं ॥१२४॥

कवि—अज्ञात (रसलीन ?)

दो०—अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत, जेहि चितवत यक बार ॥१२५॥

टीका—अमी माहुर मद अमी श्वेत माहुर श्याम मद लाल अमी पिये जियै माहुर खाये मरै मद पिये झूमै जाके वोर ताकति है ॥१२५॥

स०—कोरन लौं दृग काजर देति है कारी घटा उमड़ी घन घोरन।
घोरन आली चढ़ी मानो सुंदरि बाग नहीं कहूँ देति है मोरन ॥
मोरन की धुनि बादति है अरु यौं बरजो बरजो बर जोरन।
जोर न देव सखी पलकै अँगुरी कटि जैहै कटाक्ष की छोरन ॥१२६॥

टीका—दृगमें काजर कोरनलौं देन सो मानो कारी घटा होइ, घोरन आली चढ़ी० घोरन कहै मानो घोड़ा पै चढ़ी बाग मोरन कहै फेरति नाहीं, मोर की धुनि कहै मजोर की बोली वरजो कहै मना करती है बरजो कहै श्रेष्ठ प्रौढ़ा मना करती है, वरजोरन कहै वरहै जेवरे जो जोरन देव सखी पलक जोर न देउ हे सखी अंगुरी कटाक्ष की कोर ते कटि जैहै ॥१२६॥

अबलक = कबरा, दोरंगा। जीन = घोड़े की पीठ पर की गद्दी। पाखर = झूल। साजी = सजाई हुई। लगाम = रास, बागडोर। चितवनि गाम = दृष्टि समूह। कलँगी = पक्षियोंके रोयें अथवा रत्नों का बना एक गुच्छा जो राजाओं के मुकुट में रहता है। पूतरी = पुतली। बाजी = घोड़े ॥१२४॥

अमी = अमृत। हलाहल = विष। चितवत = देखते हैं ॥१२५॥

कोरन लौं = कोनों तक। घोरन = घोड़ोंमें। बाग = रस्सी। मोरन = मोड़ने। मोरन = मयूरों की। बरजो = रोको। बरजोरन = जबर्दस्ती, हठात् ॥१२६॥

कवि—बीरबर

सवैया—बेनी फुलेल चुचात खरी पट भीजत सीस ते रूप अन्हैयत ।
आनन बीर घरे छबि पोत सोवा छबि का ललचो ललचैयत ॥
'ब्रह्म' कहै सब छोड़ि कै काहे न प्यारे के रूप को देखन जैयत ।
कानन से तो कटाक्ष लगे कलधौत कटोरन दूध पिऐयत ॥१२७॥

टीका—कानन तक दृग है कलधौत सोना के कटोरा में मानो दूध पियत है । मानो मृग सोनाके कटोरामें दूध पीवै ॥१२७॥

कवि—शिरोमणि

लाल लखे ते 'सिरोमनि' आप लखाय फिरी जस जान न पावै ।
पाछे परे तब वाही घरी चित चोरि चली फिरि कौन छुड़ावै ॥
लागे कटाक्ष गिरे हरि घायल घूमत नेक सँभार न आवै ।
ऐसे दई मुरि कै दृगकोर ज्यों चोर चपे पर चोट चलावै ॥१२८॥

टीका—कटाक्ष लागे ते हरि गिरे कौन भाँति कटाक्ष लगो जैसे चोर जब दबे पर मारत है ॥१२८॥

कवि—ठाकुर

एई हिय द्वार के कदीम रखवार दोई,
इनको छपाइ काहू ऊपरी लयो है री ।
मैं तो इन द्रोहिन के पहरे रही ती सोइ,
बारी खेत खायो बड़ो उलट भयो है री ॥
'ठाकुर' कहत बूझै भरि भरि आँसू देत,
तनक न सोध देत कौन को दयो है री ।
मेरे मन मेरी आली मोहिं यह जान परी,
दृग बटपारन के भेद में गयो है री ॥१२९॥

फुलेल = इत्र से । चुचात = चपचपी है । अन्हैयत = नहलाया जाता है । छबिपोत = सौन्दर्य समूह । कलधौत = सुवर्ण ॥१२७॥

मुरिकै = मुड़कर । दृगकोर = कटाक्ष, नेत्रकोण । चपे = लज्जित, दबे हुए ॥१२८॥

कदीम = पुराना । बारी खेत खायो = रक्षक ही भक्षक हो गया । सोध = पता । बटपार = लुटेरे ॥१२९॥

टीका—एई दो दृग हिये द्वार के दरबान कहे रखवार रहे इनही के भरोसे रही इन्हें सेवाइ मोरे मन को कोऊ दूसर नाहीं लिए है। इनहींके भेद में मेरो मन गयो है अर्थात् यही कृष्णके रूप पर रीझे मन वहीं लग्यौ है याते ऊढ़ा नायिका ॥१२६॥

(नेत्र तिल वर्णन)

राजै बाम लोचनी के तिल बाम लोचन मैं,
ताकी छबि कहिबे को कौन धौं सयान हैं।
जहाँ तिल तहाँ नेह यह न सनेह जानि,
चित्त चिकनाई को बिचार्यो अनुमान है॥
शिशुता के भाव ते रुखाई दरसाय ताकी,
एकै युक्ति आई जिय प्रीतम प्रमान हैं।
नाहक चतुर मन दीन छीन लेत नैन,
तिल न लग्यौ है ताको पातक निशान है॥१३०॥

टीका—नाहक चतुर लोगन के मन को दीन और छीन करत है ताहि पाप कै यह निशान कहे चिह्न होय। यह नेत्र में तिल नहीं है ॥१३०॥

(कज्जल वर्णन)

सवैया—प्रान पियारी सिंगार सँवारि लिये कर आरसी रूप निहारै।
चंद से आनन की दुति देखत पूरि रह्यौ उर आनंद भारै॥
अंजन लै नख सो रमनी दृग अंजित यौं उपमान बिचारै।
चीरि कै चोंच चकोरन की मानो चोपते चंद चुगावत चारै॥

टीका—चकोर की चोंच चीरिकै चंद्रमा चारा चुँगावै है यह काजर नहीं देति है ॥१३१॥

बाम=सुन्दर। बाम=बाँया। सयान=सयाना, चतुर। नेह=तेल। पातक निशान=पाप का चिह्न ॥१३०॥

चीरि कै=खोलकर। चोपते=प्रसन्नता से। चुगावत=चुगा रहा है। चारै=दाना ॥१३१॥

कवि—बलभद्र

दंडक—कंजन के फंद परे खंजन तरफ कैधौं,
बाँधे जुगमीन नाग फाँसी सो मदन हैं।
काम कसेरुन के फूलन की कीच कीधौं,
कीधौं अहितूल की सिंगार के सदन हैं॥
बिसिख पुलिन मैन माजे हैं प्रदीपन सों,
'बलि भद्र' मुनिन के मन के कदन हैं।
काजर की रेख अवरेखी लोचननि कैधौं,
कीन्हें चित चोरन के मेचक बदन हैं॥१३२॥

टीका—कंजन के फंदे में परे हैं खंजन तरफराय कहै डोलत हैं की दुइमीन फाँसी में बँधे हैं विसिख जो बान ताके मैन माजे हैं, काजर की रेख ऐसो है कि चित्त के चोरन के मेचक कहै बार होइ ॥१३२॥

(बरुनी वर्णन)

छुवत ही कोमल सिरस की सी पाँखुरी है,
खिन खिन खरी सरकति जाति छाती है।
निपटि अन्यारी नेक होत न हिये ते न्यारी,
अजौं नटमाल की अनी सी अहटाती है॥
मंडल तिलौछी असिकाच्हर करोछी अति,
अंकुश सिंगार की जई सी उलहाती है।
नैन मैन तीरन की फोंक सी तरेरी तीखी,
तरुनी की बरुनी ए बरनी न जाती है॥१३३॥

टीका—तिलौछी तिलते वासी है असिकाच्हर करोछी० असि कहै तरवारि के सिकिलि ऐसी साफ है अंकुश सिंगार ते प्रकट है यह नैन मैन के तीर के फोंक हैं नोक से बरौनी हैं ॥१३३॥

कसेरुन=एक प्रकार का मोथा। विसिख=बाण। पुलिन=तट, किनारा। कदन=दुःखद। अवरेखी=लगी हुई, अंकित। मेचक=श्यामल ॥१३२॥

सिरस=शिरीष पुष्प। खिन खिन=क्षण क्षण में। अन्यारी=काली। अनी=सेना, नोक। तिलौछी=तेल लगी हुई। असिकाच्हर=तलवार की सी। करोछी=कुरेदी हुई। जई=अंकुर। उलहाती=उगती, अङ्कुरित होती। फोंक=नोंक। तरेरी=घिसी हुई। बरुनी=पलकों के बाल, बरौनी ॥१३३॥

कवि—कालिदास

नजर परेत उलहत उर आनन्द है,
लसत समूह सो कटाछन सपेद है।
'कालिदास' लोचन पियाले अवलोकत ही,
प्रीतम के अंग अंग पसरत सेद है॥
दोऊ हितकारी करि मोहत मुरारीजी को,
छकेई रहत लेखे बिरत अखेद है।
चरन मैं एक गुन भेद ना तो तरुनी के,
बरुनी औ बारुनी मैं और कछु भेद है॥१३४॥

टीका—बरुनी और बारुनी में कछु भेद है काकु व्यंग तें बरुनी और बारुनी में कछु भेद नाहीं है॥१३४॥

कवि—सूरति

कैधौं दृग नगर के आसपास श्यामताई,
ताही के ए अंकुर उलहि दुति बाढ़े हैं।
कैधौं प्रेम क्यारी जुग ताके ए चहूँधा रची,
नील मनि सरनि की बार दुख डाढ़े हैं॥
'सूरति सुकवि' तरुनी के बरुनी न होयँ,
मेरे मन आए ए विचार चित गाढ़े हैं।
जेई जे निहारै मन तिनके पकरिबे को,
देखो इन नैनन हजार हाथ काढ़े हैं॥१३५॥

टीका—यह बरुनी नहीं होय यह सब के मन पकरन के हेत नेत्र अनेक हाथ काढ़े हैं॥१३५॥

सेद=स्वेद, पसीना। छकेई=तृप्त ही। अखेद=प्रसन्न। बरुनी=बरौनी। बारुनी=सुरा॥१३४॥

श्यामताई=कालिमा। उलहि=उगकर। चहूँधा=चारों ओर। सरनि=मार्ग॥१३५॥

कवि—अज्ञात

लिख्यौ मननायक बनाय रसराज मसी,
कैधौं महा मोहनी के मंत्र के बरन हैं।
कैधौं नैन चोरन के हाथ की अनूप असी,
कैधौं श्याम अंगन के रंगन के कन हैं॥
कैधौं ए पचास टूक सीवन की सार सुई,
कैधौं कारे तारन को किरनै को गन हैं।
कैधौं रूप पंकज के ऊपर ए पंक रेख,
कैधौं नैन तरुनी के बरुनी सघन हैं॥१३६॥

टीका—मननायक रसराज सिंगार ताके रंग श्याम ताको मसि कहै रोसनाई बनाय करि मंत्र के अच्छर लिखे हैं की नैन चोर के हाथ की असी होइ कहै तरवारि वा सबरी जाते चोर सैंध देत है, की पचास टूक के सिये की सूई होइ की रूप पंकज पर पंक कहै कीच की रेख है की बरुनी होय॥१३६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(भृकुटी वर्णन)

दंडक—कैधौं चन्द्रहास रसराज की कुटिल राजै,
काटै है कठिन हाव भावन की सैन है।
कैधौं नीलमनि तार कसी कलधौत धनु,
काम महिपाल कर जाके बान नैन है॥
'गोकुल' बिलोकि बंक अवली मलिंदन की,
आँखि अरबिंद लोभ बसी दिन रैन है।
सीय भृकुटी मैं श्रीय मैन कामिनी के मैन,
मैनकाहूँ में न काहूँ मैं न कहीं बैन है॥१३७॥

नायक=शृंगार का आलंबन। रसराज=शृङ्गार। मसी=स्याही। बरन=वर्ण, अक्षर। असी=तलवार। टूक=टुकड़े। सीवन=सीने। पंकरेख=कीचड़ की रेखा॥१३६॥

चंद्रहास=तलवार। सैन=सेना। कलधौत=सोना। बंक=टेढ़ी। अवली=पंक्ति। मलिंदन=भौंरे। श्रीय=शोभा॥१३७॥

टीका—चन्द्रहास तरवारि रसराज सिंगाररसकी की नीलमनि तारते बनी है धनु की आँखि अरबिन्द रस के लोभी भौंर होय सीय भृकुटी में श्रीय कहै सोभा मैन कामिनी में नहीं है ऐसो मैनकाहूमें न कहै मैनकाहू जो अप्सरा में नहीं ऐसी शोभा काहू मैन कहो बैन काहू कहै किसी में नहीं है ॥१३७॥

कवि—प्रताप

मरकत मनि की जुगल रेख राजै कीधौं,
मधुकर श्रेनी मकरंद लेन वारी है।
कीधौं कामधनु की बिराजै जुग जेहैं किधौं,
तामरस दाम अभिराम अनियारी है॥
कहै 'परताप' आभा जिन की निहारि उर,
उकति निबेरि हेरि हेरि हिय हारी है।
उपमा लुटी है काम कलित कुटी है कैधौं,
भृकुटी ललित रघुनायक तिहारी है ॥१३८॥

टीका—जे है राम रोदा के तामरस कमल दाम नाम सूत के, सुगम ॥१३८॥

कवि—ग्वाल

कैधौं रमनीय रूप ऊपर बकारी बेस,
कीन्हीं महराज कामदेव बलवंत की।
कीधौं परिपूरन पियूख की पियालनि मैं,
बैठे अहिनंद करि बकताई कंत की॥
'ग्वाल कवि' कैधौं दग द्वारे हैं बहारदार,
तापै मेहराब स्याम मीना ते लसंत की।
कैधौं सतरोहैं न तरोहैं होत जोहैं जैसी,
सोहैं मनमोहैं बंक भौहैं भगवंत की ॥१३९॥

टीका—अहिनंद साँप के बच्चा अवर सरल ॥१३९॥

मधुकर श्रेनी = भौंरों की पंक्ति। मकरंद = पुष्परस। तामरसदाम = कमलतन्तु। अभिराम = सुन्दर। अनियारी = बंक, तिरछी। निबेरि = चुनना। कुटी = झोपड़ी ॥१३८॥

बकारी = शब्द। पियूख = अमृत। अहिनंद = सर्प के बच्चे। कंत = भोग, शरीर। बहारदार = रमणीय, आनन्द दायक। मेहराब = द्वार के ऊपर का अर्द्ध मंडलाकार बनाया हुआ भाग। सतरोहैं = टेढ़ी। तरोहैं = नीची। बंक = टेढ़ी ॥१३९॥

कवि—दास

स०-भावती भौंह के भेदनि 'दास' भले यह भारती आप गई कहि।
कीन्ह्यौ चहै निकलंक मयंक जबै करतार विचार हिये गहि॥
मेटत मेटत ह्वै धनुषाकृति मेचकताई की रेख गई रहि।
फेरि न मेटि सक्यौ सविता कर राखि लियो अति ही फबिता लहि १४०॥

टीका—करतार ब्रह्म मयंक को बिनु कलंक कीन चाहै। तब वह कलंकी श्यामता धोवत धोवत ह्वै धनुष के आकृति श्यामता रहि गयी फेरि नाहीं धोइ सके वही रेख होइ ॥१४०॥

कवि—मनिकंठ

अमल कमल पर गुंजत भँवर युग,
प्रेम की तुला की सुभ डाँड़ी जोहियतु है।
कैधौं 'मनिकंठ' हाव भाव के उकील ए हैं,
काम की कमान पिय मन मोहियतु है।
तनक मयंक अंक लोचन चपल राति,
ऊरध की अंजन की आड़ रोहियतु है।
सोभा रस भासन सिंगार रस आसन की,
कैधौं मनभावती कै भौहैं सोहियतु है ॥१४१॥

टीका—प्रेम के तुला के डाँड़ी होइ की हाव भाव के वकील अवर सुगम ॥१४१॥

स०—गोरी किसोरी सु होरी सी देहु मो दामिनि की दुति देत बिदारै।
नारि नवै सब नारिन की तब नारि के रूप अनूप निहारै॥
भौंर सी भौंह न सोहि रही मुरकी उर ते न टरै पल टारै।
भीजे मनो मुख अम्बुज के रस भौंर सुखावत पंख पसारै ॥१४२॥

टीका—मुख कमल पर भौंर आपन पंख पसारि सुखावत है सब नारिन कहै स्त्रीन की नारि नवै कहै खींचत है ॥१४२॥

भावती = प्यारी की। भारती = सरस्वती। मयंक = चन्द्रमा। मेचकताई = कालिमा। सविता = सूर्य। फबिता = शोभा ॥१४०॥

तुला = तराजू। उकील = वकील, वैधानिक प्रतिनिधि। कमान = धनुष। मयंकअंक = चन्द्रमा की गोद में। ऊरध = ऊर्ध्व, ऊपर। रोहियतु है = चढ़ा जा रहा है ॥१४१॥

नारि = नाड़ी। नवै = झुकाता है। नारिन की = स्त्रियों की। मुरकी = रेखा। मुख अम्बुज = मुखरूप कमल ॥१४२॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(भाल वर्णन)

दंडक—कैधौं मनि मुकुट तरनि के मवास मंजु,
कीरति लतान की ललित आल-बाल है।
कैधौं सीय नैन नटनागर के नृत्य थल,
कैधौं रसराज आलै अजिर रसाल है॥
चंदन तिलक मलयाचल के शृंग कैधौं,
दिगविजै पत्रिका है 'गोकुल' विशाल है।
कैधौं भागि भूमि आभा लहै अध चंदभाग,
भाल है अमंद कैधौं रामचन्द्र भाल है ॥१४३॥

टीका—मनि तरनि कहै सूर्य के मवास कहै उदय के थल कीरति लता के आलबाल कहै थाल्हा। नैन नट के नर्तन की भूमि की रसराज के मंदिर के अजिर नाम आँगन चंदन के तिलक की उपमा मानो मलय के शृंग की यह दिगविजैपत्र होय की भाग्य की भूमि आभा लहत है की अर्द्धभाग चंद्रमा को भा लहै कहै भा नाम शोभा को प्राप्त है की रामचंद्र के भाल कहै माथ होइ ॥१४३॥

कवि—मंडन

रूप की नदी मैं पार पाइबे को पारो है की,
काम को अखारो है की रति को भंडार है।
लाज को महल प्यारे 'मंडन' की आँखिन के,
पैठिबे को पैंड़ो है की प्रेम रस सार है॥
राहु जानि बारन के भारन डेरानो यातें,
चंद्रमा को मानो अधखंड अवतार है।
यौवन के द्वार कै निकाई के निकास धौं री,
गोरी को लिलार कैधौं शोभा को सिंगार है ॥१४४॥

टीका—यौवन के द्वार होइ की निकाई कहै सुन्दरताई के निकास होइ ॥१४४॥

तरनि = सूर्य। मवास = घर। आलबाल = थाला। नटनागर = चतुर-नायक। आलै = आलय, घर। अजिर = आँगन। रसाल = रसपूर्ण। अमंद = विशाल ॥१४३॥

पारपाइबेको = थाह लेने को। पारो = पाल, बंधा। अखारो = अखाड़ा, अड्डा। पैठिबे = घुसने। पैंड़ो = मार्ग। लिलार = ललाट ॥१४४॥

कवि—बलभद्र

थापी कैधौं यश की जनम भूमि शशिवत,
उपजत जहाँ सब सुकृत को जाल है।
तिलक तरोवर की छाया है कलप तरु,
रस के अगारन को अजिर रसाल है॥
भाग कैसे वासन सुहाग कैसो आसन है,
मोहनी को शासन कर्‌यौ तौ बल लाल है।
काम के तुरंगन की धापिका धरनि यह,
कैधौं 'बलिभद्र' भोरी भामिनी को भाल है ॥१४५॥

टीका—काम के तुरंगन के फिरिबे की भूमि होय की भाल ॥१४५॥

कवि—कालिदास

(भालबिंदु वर्णन)

करत उच्चाट पाट मंत्रन को मंत्र मानो,
ललित ललाट तेरे हरत हियान है।
'कालिदास' बिलसत सेंदुर के बिंदु चारु,
सुंदर गोविंद मन मोहन जियान है॥
सोने ते सलोने भाल झलक में सुन्दरी के,
जगमगी दियो लै तिलक सखियान है।
राहु पै चलायो है मयंक यमधर सोतौ,
रहि गयो मेरे जान उर में मियान है ॥१४६॥

टीका—राहु पै चलायो कहै मार्‌यो है चन्द्रमा यमधर कहै तरवारि ताको मियान होइ रहि गयो है ॥१४६॥

थापी = स्थापित की। सुकृत = पुण्य। अगार = घर। अजिर = आँगन। वासन = पात्र। धापिका = दौड़ने की ॥१४५॥

उचाट = उच्चाटन। हियान = हृदयों को। जियान = जीवित रखनेवाले। यमधर = तलवार। मियान = तलवार रखने का स्थान ॥१४६॥

कवि—ब्रह्म

स०—ऐन सुरा बिंदुली बिधु भाल मैं नाहिन मो मन तैं टहलैं।
चंद के बीच मैं कीच अमी अलि बालक आनि परयौ चहलैं॥
'ब्रह्म' भनै अलकैं घुँघरी अलिके कुल काटन को कहलैं।
बैठि मयंक के कूल चिते पर कोऊ न पैठि सकै पहलैं॥१४७॥

टीका—ऐन कहे घर सुरा कहे मदिरा बिंदुली बिधि कहे चन्द्रमा के भाल में चंद्र में अमी के कीच ताते अलिबालक, अधर सहज॥१४७॥

कवि—मनिकंठ

(लट वर्णन)

दंडक—एक सीस संकित कलंक रेख छीन ह्वै कै,
बदन ससी में हग देखे अटकतु है।
कैधौं अलिबाल पाँति चलि थकी कंज ढिग,
अधर अमी को नागिनी सी छटकतु है।
पति मिलिबे को भुज यामिनी पसारी एक,
सौति चित चाहकी चटक चटकतु है।
नैन नट नागर लकुट 'मनिकंठ' कैधौं,
कारी भ्रपकारी प्यारी लट लटकतु है॥१४८॥

टीका—नैन नट के लकुट कहे टनी होइ॥१४८॥

कवि—प्रसाद

हग मीन बाझिबे को बंसी यह सखी कैधौं,
नागिन की बच्ची पीवै अमृत अमंद है।
प्रेम के कपाट खोलिबे को आँकुसी है कीधौं,
कैधौं 'परसाद' मन फाँसिबे को फंद है।

टहलै=हटता है। अमी=अमृत का। चहलै=कीचड़ में। अलकैं=केश। घुँघरी=घुंघराली॥१४७॥

यामिनी=रात्रि। चटक=गहरा रंग। नटनागर लकुट=नायक की छड़ी। भ्रपकारी=बखरी हुई॥१४८॥

बाझिबे=फँसाने को। बंसी=मछली फँसाने की कटिया। आँकुसी=कांटा। लंगर=नाव रोकने के लिए जंजीरों से बँधा हुआ लोहे का बड़ा काँटा। कमंद=रस्सी॥१४९॥

रूप के जहाज बीच लंगर लग्यौ है कैधौं,
मोहनी महल पर लसत कमंद है।
चंद की चटक पै राहु की सटक परी,
रही है लटकि लट साहेब पसंद है ॥१४६॥

टीका—चंद पर राहु को पाप परो है ॥१४६॥

कवि—परसराम

(पाटी वर्णन)

दंडक—कैधौं रसनायक विहंगम के पक्ष युग,
कैधौं प्रति पक्ष सौति जन के समोद के।
कैधौं तम पूरि द्वै कलाधर ते छप्यौ आय,
कैधौं विप्र बालक दिवाकर के गोद के ॥
'प्रसराम' कैधौं सामवेद के अनूप खंड,
कैधौं काम नट के खेलौना मन मोद के।
पाटी के विभाग सो है पिय के अटल भाग,
नीर भरे मानो चार पटल पयोद के ॥१५०॥

टीका—नीर भरे मानो मेघ होइ ॥१५०॥

कवि—दिनेश

कैधौं बेनी पन्नगी के फन्न दुहुँ ओर राजै,
मृग दृग रोकिबे को रूप भूप घाटी है।
मुख विधुतान के वितान जुग मेरे जान,
कमल के ऊपर सिवारन की टाटी है ॥
कैधौं करतल रसराज राखे माथ दोऊ,
दीपति 'दिनेश' ताते ललित लिलाटी है।

रसनायक विहंगम = श्रृङ्गार रूप पक्षी। प्रतिपक्ष = विपक्षी। कलाधर = चन्द्रमा। विप्रबालक = चंद्र। दिवाकर = सूर्य। पटलपयोद के = मेघ के समूह ॥१५०॥

पन्नगी = सर्पिणी। वितान जुग = दो चँदोवे। सिवारन की = सेवार, जलकाई। टाटी = आड़ के लिये पर्दा। लिलाटी = मस्तक। घनपटली = मेघसमूह ॥१५१॥

येरी आगे मोहन मयूर से निरखि नाचै,
सघन कै घन पटली के परिपाटी है ॥१५१॥

टीका—सघन घनकी पटली होय ॥१५१॥

कवि—जगत सिंह

कैधौं यह बधू ब्याधी पाटी ठाटी माँग लागी,
पिय चख खंजन बभाये लाय लासा वर।
कैधौं मुख सरि सोऊ फनि काढ़ी सरि छबि,
आयो प्यासो जूरो काग पाटी द्वै पसारे पर ॥
कैधौं काम कानन मै सात्विक की लीक लागी,
की अमी बदन पर देवतन को डगर।
चाँदनी बिछाय आछे बैठो द्विजराज मुख,
आगे धरे सामुहें हैं सैफल सिपर पर ॥१५२॥

टीका—सिपर नाम ढाल होय ॥१५२॥

कवि—कालिदास

(मांग वर्णन)

दंडक—पहिले ही ललना नवेली अलबेली रची,
रचना सिमंत की सहेलिन के संग है।
'कालिदास' कैसी पाटी पारत बनी है घनी,
अलकैं अनूप बन्यौ बदन को रंग है ॥
देखि मन सुंदर गोविंद को आनन्द भयो,
कैसी बनि आई मनमोहनी की मंग है।
लै चल्यौ दुसाखा सुनि दीपक जगाइबे को,
जोबन महीपति के आगे है अनंग है ॥१५३॥

टीका—दूनों तरफके पाटी दुसाखा दीपक होय मसाल जोबन नरेशके आगे अनंग मसालची ॥१५३॥

ठाटी = सजाई हुई। चख = चक्षु। बभाये = फाँसे। लासा = गोंद। सरि = सरिता, नदी। जूरो = बालों का जूड़ा। सात्विक = सतोगुणीभाव। लीक = रेखा। अमी = अमृत। दिजराज = चन्द्रमा। सामुहें = सामने। सैफल = तलवार। सिपर = ढाल ॥१५२॥

सिमंत = सीमंत, माँग। अलकैं = केश। मनमोहनी = सुंदरी। मंग = माँग। दुसाखा = मशाल। अनंग = कामदेव ॥१५३॥

कवि—अज्ञात

रेसमरसम सम सिररुह सुन्दरी के,
सघन घटा की स्यामताई अहटात है ।
तापै दुहूँ वोर करतलन सँवारि पाटी,
पिय मन पारिबे को घाटी दरसात है ॥
गूँथित गुननि गजमोतिन सँवारि माँग,
ताकी उपमा को मति मेरी अकुलात है ।
तमक चमक तमपुंज के चमून चीरि,
मानो चारु चन्द्रमा की चौकी चली जात है ॥१५४॥

टीका—जो बारन में मोती गुहे हैं ताकी उपमा तम को फारि चन्द्रमा की चौकी होय ॥१५४॥

कवि—दास

सवैया—चीकनी चारु सनेह सनी चिलकैं दुति मेचकताहि अपार सो ।
जीति लियो मखतूलके तार तमीतम तार दुरेफ कुमार सो ॥
पाटी दुहूँ बिच माँगकी लाली बिराजि रही यौं प्रभा बिसतार सो ।
मानो सिंगारकी पाटी मनोभव सींचत है अनुरागके धार सो ॥

टीका—दुरेफ कुमार कहे भँवर मानो सिंगार की पाटी को काम अनुराग के जल से सींचै है ॥१५५॥

कवि—रसलीन

दो०—माँग लगो ते बधिक तिय, पाटी टाटी वोट ।
दोऊ द्रिग पच्छीन को, हनत एक ही चोट ॥१५६॥

टीका—यह माँग नहीं बधिक की स्त्री पाटी की वोट दृगपच्छी औरन के मारत है ॥१५६॥

रेसमरसम = रेशम के तागे । सिररुह = केश । अहटात = पता लगता है । घाटी = पर्वतों के बीच का सकरा मार्ग, दर्रा । चमून = सेनाओं को । चीरि = फाड़कर ॥१५४॥

चिलकै—आभा । मेचकताहि = श्यामलताको । मखतूल = काला रेशम । तमीतम = रात्रि का अन्धकार । दुरेफ कुमार = भ्रमर बालक । मनोभव = कामदेव ॥१५५॥

बधिक = व्याध । वोट = पर्दा, आड़ ॥१५६॥

अरुन माँग पटिया नहीं, मदन जगत को मारि ।
असित फरी पर लै धरी, रकत भरी तरवारि ॥१५७॥

टीका—अरुन कहै लाल पाटी न होय मदन जगत को मारि स्याम ढाल पर रकत भरी तरवारि धरी ॥१५७॥

कवि—रतन

(सीसफूल वर्णन)

जगर मगर होत यमुना के जल कैधौं,
कोकनद कमनीय पूरन प्रभनि को ।
सुकवि 'रतन' कैधौं राजत रतनबर,
कारी कुण्डलीस फनि ऊपर फबनि को ॥
कैधौं सुरभान पर भान भोर ही को कैधौं,
उग्यौ भौन उत्तर दै तनूभू तरनिको ।
कैधौं प्रान प्यारी की सँवारी पारी पाटिन मैं,
सोहत सुभग सीसफूल लालमनि को ॥१५८॥

टीका—सुरभान नाम राहु पर भोर के सूर्य होय की भौम नाम मंगल की तरनि नाम सूर्य के तनूभव कहै पुत्र ॥१५८॥

कवि—दिनेश

अंग अंग भूषन जराऊ के जगमगात,
चौकी चमकति छबि छाजै भाल गंड की ।
कारी जरतारी की किनारी सुकुमारी की है,
पसरी किरिनि रुचि राजत प्रचंड की ॥

असितफरी = काली ढाल ॥१५७॥

जगर मगर = चमचमाहट । कोकनद = लाल कमल । कुण्डलीश फनि = सर्प का फण । फबनि = शोभा । सुरभान = राहु । भान = भानु, सूर्य । भौम = मंगल । तनूभू = तनय, पुत्र । तरनि = सूर्य । पाटिन = माँग के इधर-उधर के भाग ॥१५८॥

जराऊ = रत्नजटित । जरतारी = सुनहरे तारों से बनी हुई । पसरी = फैली हुई । मारतण्ड = सूर्य ॥१५९॥

भाग ते तखत बैठ्यौ सोहत सुहाग ताको,
छत्र है छबीले लट लागे दुति दंड की।
सीस फूल सीस देश राजत 'दिनेस' केस,
घन घन ऊपर उदै जो मारतंड की ॥१५६॥

टीका—की भाग तखत पर बैठो है, लट छत्र को दंड होय की घन के ऊपर मारतण्ड कहै सूर्य उदै है ॥१५६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(केश वर्णन)

दंडक—श्याम मखतूल कैधौं काम के दुकूल कैधौं,
रसराज मूल कैधौं सोभा निरधार है।
चौंर काम भूप के हैं घटा घन से अनूप,
तमोगुन रूप कैधौं नीलमनि हार है॥
'गोकुल' बिलोकि मृग मद ते समोये लोये,
कारे लहकारे भारे कुहूके कुमार हैं।
ब्याल के हैं बार छबि ताल के सेवार कीधौं,
सोहैं शनि बार कैधौं सीय शिरबार हैं॥१६०॥

टीका—ब्याल के बार कहै साँपके बच्चा है छबि तालके सेवार की शनिबार कहै दिन या बालक की सिर बार कहै केश ॥१६०॥

कवि—घासीराम

कवित्त—कारे कजरारे सटकारे घुँघुरारे प्यारे,
मनि फनिवारे भौंर पायन लौं ऊटे हैं।
वासे फूल तेल से नरम मखतूल ऐसे,
दीरघ दरारे ब्याल ब्यालन लौं जूटे हैं॥

मखतूल = काले रेशम का कीमती वस्त्र। दुकूल = रेशमी वस्त्र। रसराज = शृङ्गार। मृगमद = कस्तूरी। समोये = सने हुए। लोये = लोचन। कुहू = अमावस्या। ब्याल = सर्प। सेवार = जल की काई ॥१६०॥

कजरारे = काजल लगे से। सटकारे = चिकने और लम्बे। बासे = सुगन्धित। ऊटे = उमंग भरे। जूटे = सटे हुए। चौंर = चँवर। तिमिर = अन्धकार। रैनि = रात्रि ॥१६१॥

'घासीराम' चारु चौर सरिता सेवार वारौं,
ऐसी स्यामताई पै गगन घन लूटे हैं ।
छाइ जैहै तिमिर निहाय रैनि आइ जैहै,
झारि बाँधु अजहूँ सँभारु बार छूटे हैं ॥१६१॥

टीका—नायिका के बार छूटे ताको देखि सखी कहै है तिमिर छाय जैहै राति आय जैहै या ते जल्दी बाँधु ॥१६१॥

कवि—शंभु

हठि माँगत बाट किधौं लछिमी की सरोज सो आनि सेवार अरे ।
किधौं आरसो के घर तें उत 'शंभु' समूह फनी छबि को बगरे ॥
इमि राधिका के मुख के चहुँ वोर बिराजत बार महा सुथरे ।
भजि चंद चल्यौ बिचल्यौ रन ते तमबृन्द मनो जुरि पाछे परे ॥१६२॥

टीका—नायिका के मुख पर बार परो है की सरोज सेवार में परो ताको लक्ष्मी राह माँगती है कि आरसी में साँपन के फन होय, चंद्रमा रनते भागे पाछे तम घेरै है ॥१६२॥

कवि—कासीराम

कारे सटकारे फटकारे चटकारे नेक,
धूप दै सँवारे सुषमा समूह बसिगो ।
कोकिला कुहू को सो दुहूँ को कियो मैलो मन,
'कासीराम' भौंरन की भावनी की नसिगो ॥
सावन के बन घन सघन तमाल तरु,
तरनि तनूजा ताहि हेरि हिये हँसिगो ।
तेरे तन रूप की तरंगिनि तरन मन,
पैरि वारपारन सेवारन मैं फँसिगो ॥१६३॥

टीका—रूप तरंगिनि कहै नदीमें वार सेवारमें मन फँसिगो ॥१६३॥

बाट = रास्ता । फनी = सर्प । बगरे = फैलाता है । सुथरे = स्वच्छ । भजि = भागकर । बिचल्यौ = घबरा कर ॥१६२॥

चटकारे = चमकीले । कुहू = अमावस । दुहू = दोनों । तरनि-तनूजा = यमुना । पैरि = तैर कर ॥१६३॥

कवि—जगत सिंह

मरकत तार कीधौं काली के कुमार कीधौं,
तम गुन हार कीधौं लतिका सिंगार हैं।
कुहू की किरिनि धार कैधौं कोक कला चारु,
सनि के कितार कीधौं उठ्यौ धूमधार हैं ॥
श्याम मखतूल तार शोभित सेवार कीधौं,
चमर सिंगार कैधौं मोहको पसार हैं।
खींचि मृगमद सार डोरी बटी कैधौं मार,
मार अवतार कैधौं दार तेरे बार हैं ॥१६४॥

टीका—मृगमद के काम डोरी बरी है अवर सरल ॥१६४॥

कवि—श्रीपति

(बेनी वर्णन)

दंडक-कंचन की पाटी पर काजर की धार मानो,
रूप माल पर अलि माल लटकति है।
कैधौं रति नायक के पीठि पै सिंगार लीक,
देखि कबितान की सुमति अटकति है ॥
'श्रीपति' भनत कैधौं केसर के खंभ पैस,
दंभ भये मरकत लरी लटकति है।
कारी लहकारी बेनी पीठि पै सजत मानों,
रँगी रंग पाटी पै भुजंगी सटकति है ॥१६५॥

टीका—मानो रंगी पाटी पर भुजंगी कहे साँपिनि लोटति है ॥१६५॥

मरकत = पन्ना। चमर = चँवर। पसार = प्रसार, फैलाव। मृगमद = कस्तूरी। दार = स्त्री (सम्बोधन है) ॥१६४॥

रूप = स्वरूप, चाँदी। अलिमाल = भौंरों की माला। लहकारी = लटकने-वाली। पाटी = तख्ती। भुजंगी = सर्पिणी। सटकति = सरकती है ॥१६५॥

कवि—आलम

लाँबी लहकारी बहु पेचन की भारी औ,
गरक सोंधे सारी न्यारी अतिसय झोंक की।
बरनौं कहा लौं वोप मदन की धोप कीधौं,
इन्द्र करि कोप तररानी एक ओक की॥
नटुवा की साटि कैधौं 'आलम' सधायबे को,
कहाँ लौं बखानौं हौं पढ़्यौ न बिधि कोक की।
नागिनी की तिमिर छपाकर में छाय रही,
कटि पर बेनी की निसेनी सुरलोक की ॥१६६॥

टीका—नागिनि की तिमिर छपाकर में छाय रही की सीढ़ी होइ सुर-लोककी ॥१६६॥

कवि—भगवंत

रैनि की उनींदी राधे सोवत सकार भये,
झीनो पट तानि परी पायन ते मुखते।
सीस तें उलटि बेनी कंठ ह्वै कै उर ह्वै कै,
जानु ह्वै छवान ह्वै कै लागी सूधे रुखते॥
सुरत समय रति यौवन के महा जोर,
जीति 'भगवंत' अरसाय राखी सुखते।
हार को हराय मानो माल मधुकरन की,
राखी है उतारि मैन चंपा के धनुख ते ॥१६७॥

टीका—हारको हराय वह बेनी जो शीश ते पलटि मुख ह्वै कै एड़ी तक आइ परी है सो मानो मधुकर जो भँवर ताको माल मैन चंपा के धनुष ते उतारि धरी है ॥१६७॥

लहकारी = लहराने वाली। पेचन = लपेट, चक्कर। झोंक = वेग। वोप = शोभा। धोप = तलवार, खड्ग। तररानी = अकड़, ऐंठ। ओक = घर। नटुवा = नट। साँटि = छड़ी। कोक = कामशास्त्र। छपाकर = चन्द्र। सुरलोक = स्वर्ग ॥१६६॥

उनींदी = जागनेसे अलसायी। सकारे = प्रातःकाल। झीनो = महीन। छवान = एड़ी। अरसाय = आलस्य युक्त होकर। मधुकरन = भौंरों की। मैन = काम। धनुख = कमान ॥१६७॥

कवि—ब्रह्म(बीरबल)

सवैया—राख्यौ मयंक के पाछे फनी फन रूप बखानत याको हितू पर।
नेहसनी बनी बेनी गुलाब निसेनी कोऊ सुख की नहि दू पर॥
पीठि मैं देखत दीठि धँसै न उपाय बिलोकिए या बृज भू पर।
अमृत पीवत पूँछ डुलै मनो कंचन के कदली दल ऊपर।१६८॥

टीका—यह बेनी जो डोलत मानो मुख चंद्रमा में अमी पीवति है ताते पूँछि डोलत है साँपिनि होइ॥१६८॥

कवि—दत्त

मृगनैनीके पीठि पै बेनी बिराजै, सुगंध समूह समोय रही।
अति चीकन चारु चुभी चित मैं रविजा समता सम जोय रही॥
'कविदत्त' कहा कहिए उपमा जनु दीपशिखा सम जोय रही।
मनो कंचनके कदली दल ऊपर साँवरी साँपिनि सोय रही॥१६९॥

टीका—रविजा नाम यमुना सम जनु दीपकसिखा कंचन सोना केरा कै पात तामें साँपिनि होय बेनी नहीं॥१६९॥

कवि—मनिकण्ठ

कै मधुपावलि मंजु लसै अरबिंद लगी मकरंद नयो है।
की रजनी 'मनिकंठ' रिसाय के पाछे कै गौन कियो अरिसोंहै॥
बेनी किधौं एक लंक चुकै किधौं रूप मशाल को धूम करो है।
कंचन खंभ के कंध चढ़ी थकि चंद गह्यो मुख साँपिनि सोहै।१७०।

टीका—यह बेनी न होय कंचन के खंभ पर चन्द्र थकि बैठ्यो है अमृत के लोभ साँपिनि होइ पकरै है॥१७०॥

मयंक=चन्द्रमा। फनी=सर्प। हितू=मित्र। नेह=तेल, प्रेम। निसेनी=सीढ़ी।॥१६८॥

समोय रही=सन गई। रविजा=यमुना। समजोय रही=सजा रही, इकट्ठा कर रही। मधुपावली=भ्रमर पंक्ति। अरबिंद=कमल। मकरंद=पराग॥१६९॥

अरिसोहैं=आलस्य युक्त। लंक=कटि॥१७०॥

कवि—अज्ञात

(जूरा वर्णन)

कैधौं साँप गीडुरी दै फन उकसाय बैठ्यौ,
कैधौं काम अंकुश सँवारिबे को पूरा है।
कंचन को गुटिका सो पाटी पारिबे को राख्यौ,
कैधौं सालिग्रामको सरूप रूप सूरा है॥
कैधौं शनि करत तपस्या तीर कालिंदी के,
वृंदा कैसे फल देखियत मन रूरा है।
चीकने चटक मटकत कारे श्याम हूँ ते,
ऐसो सीस प्यारी के विराजमान जूरा है॥१७१

टीका—की साँप की गीडुरी की काम कै अंकुश की सोन कै गुटिका की सनि कहै शनैश्चर यमुना के तट तप करत सुगम ॥१७१॥

अचरज कला कलाधर धरि राखी पीछे,
कैधौं सुरभानु जानि कर बैर बाँध्यौ है।
कैधौं कंजकोश ढिग अलि मंजु गुंजत है,
मंजुल मनोज मग जानि सर साँध्यौ है॥
कैधौं अहि कारे लहकारे ते लहरि बारे,
सुधाकर जानि कै नवीन नेह नाँध्यौ है॥
चीकने चिकुर चारु चहचह्यौ जूरो स्याम,
ऐंठि गैठि लटनि लपेटि मन बाँध्यौ है॥१७२॥

टीका—यह अचरज है कलाधर के पीछे राहु बैठ्यो है की कंज कोश के ढिग अलि भौंर की अहि जो साँप मुख चन्द्र जानि आयो सुगम ॥१७२॥

गीडुरी = मंडल। अंकुश = प्रतिबन्ध, हाथीको वश करने का एक अस्त्र। गुटिका = गोटी। पारिबे को = बाँधने के लिये। कालिंदी = यमुना। वृन्दा = तुलसी। रूरा = रुचिर, सुन्दर ॥१७१॥

कलाधर = चन्द्रमा। सुरभानु = राहु। कंजकोश = कमलमुकुल। मनोज = काम ॥१७२॥

कवि—जगत सिंह

(सुकुमारता वर्णन)

दण्डक—कैसे कै बखान करै कविता 'जगत सिंह',
सॉंस लेत पिय के न पास ठहरात है।
मूठी कैसी मारि गिरै डीठि के परे ते नेक,
सुषमाके भारते न चलो जात गात है॥
उपमा धरत न धरत धीर धरनी पै
लचकि लचकि लंक लचि लचिकात है।
हिय के गिलिम वाले कोमल अमल आले,
बानी के निकाले पग छाले परि जात है॥१७३॥

टीका—कैसे कै बखान०—सुकुमारी ऐसी जाके पायन में छाले परिजात, बानी कहै बोलतै कहै जो चलै को कोई कहत है वह बात बोलतै पाय में छाले परि जात॥१७३॥

कवि—बलिभद्र

पलिका तें पाय जो धरत धाय धरनी पै,
छाले परै मग माँझ पैडक गवन ते।
लीलै जो तमोल तौ तौं ताप आवै 'बलिभद्र'
होत है अरुचि पान पीक अचवन ते॥
बारन के भार और चीरहू के तन भार,
याते नहि होती बाम बाहेर भवन ते।
लागै जो समीर तौ तौ पूरो परै सौतिनके,
फूल ज्यौं उड़त अलि पंखके पवनते॥१७४॥

टीका—पालिकतें पाय०—जैसे फूल अलि के पंख के लागे उड़त तैसे वह बयारिलागे उड़त॥१७४॥

गिलिम=मुलायम गद्दे। अमल=स्वच्छ। आले=उत्तम॥१७३॥

पलिका=पलँग। पैडक=पैदल। लीलै=निगल जाय। तमोल=ताम्बूल, पान। पीक=पान का थूक। अचवन=कुल्ला करना। चीर=वस्त्र। बाम=सुन्दरी॥१७४॥

कवि—जगतसिंह

(सर्वाङ्ग वर्णन)

कमल पै चम्पकली तापै मुकता की फली
तापै केदली को खंभ तापै है भृङ्गीवर।
तापै भरी पानिप सरोवर लहरि लेत
तापै एकनाल कंज दोय कलीसे निकर॥
तापै हेमशाखा दोय पल्लव प्रबाल लीन्हे
ता बिच कनक कंबु तापर रसाल फर।
तापै बिंब तापै कीर तापै अरबिंद धनु
तापै इंदु तापै घन तापै सात्विकी डगर॥१७५॥

टीका—कमल पै चंपकली०—कमल पग चंपकली गुलफ मुकुताफली घुटना की गाँठि केदली खंभ जाँघ तापै हेम भृङ्गी छुद्रघंटिका सरोवर नाभी एक नाल कंज दोय कली सोन के उरोज हेम कहै सोने कै शाख कहै डार दुश्री भुजा पल्लव प्रबाल पाँच अँगुरी युत हथेली हाथ कंबु शंख ग्रीवँ रसाल आम फर चिवुक बिंब श्रोष्ठि कीर नाक अरबिंद नेत्र धनु भृकुटी तापै इन्दु भाल घन बार सात्विकी डगर माँग मुक्तायुत॥१७५॥

कवि—संतन

(सौरभ वर्णन)

यमुना के आगमन मारग में मारुतन भौंरनि के भीर निपटे से लखि पाए हैं।
'संतन सुकवि' सुखखानि पदुमिनी तेरो रूपको तरंगिनी अनंग दरसाए हैं।
बाहर कढ़न कहै तो सों ते अयानी कौन लेहै बदनामी घेर घर घर छाए हैं।
पट की लपट लपटति ता दिना से आजु मानो उन गलिन गुलाब छिरकाए हैं

टीका—यमुना के आगमन०—जादिन ते तूँ वहि गली ते आई है ता दिन ते वहिगली में सुगन्ध ऐसो आवै है की मानो गुलाब वहि गली छिरकायो है॥१७६॥

कवि—बिहारी लाल

दोहा—न जक धरत हरि ही धरे, नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै, घन चन्दन बनमाल॥१७७॥

॥ इति श्री दिग्विजयभूषणे गोकुलकायस्थविरचिते अनेककविमत-
नखशिख वर्णनं नाम पञ्चदशः प्रकाशः॥१५॥

टीका—नजक धरत०—भाजत कहै भागती है डेराय कै चन्दन और कपूर के लगाए॥१७७॥

इति श्री दिग्विजयभूषणे टीकायां नखशिखवर्णनं नाम पंचदशः प्रकाशः।

षोडश प्रकाश

ऋतु वर्णन

दोहा—अलंकार में रहत है, देश काल की बात।
ताते ऋतु वर्णन करौं, समै सुभाव बिभात ॥१॥

बसंत वर्णन

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दंडक-देश बन बागन के दल बदकारन को,
राजते निकारि पतझार कियो अंत है।
शीतल समीर चलै दूत सब ठौर भले,
कोकिला पुकारै अर्ज बेगी मतिवंत है॥
पल्लव नवीन ज्यौं खिलति पाए खैरख्वाह,
प्रजा प्रफुलित फूले फूल जो अनंत है।
मान अनरीति की न रीति रहि जैहै 'बृज'
भूपदिगविजय नीति बिलसै बसंत है ॥२॥

टीका—मान अनरीति की रीति न रहि जैहै ॥२॥

(दानी बसंत रूपक)

पल्लव नवीन पट मंगन विटप पाए,
मृदुल चलावै बात फैली है दिगंत लौं।
प्रभुता प्रसून पाय विटप लौं नै चलत,
गुंजरत भौंर द्वार भीर गुनवंत लौं।

बदकारन=दुराचारियों। अर्ज=प्रार्थना। खिलति=राजाओं द्वारा सम्मानार्थ प्रदत्त पहनावा। खैरख्वाह=हितचिन्तक। अनरीति=अनुचित व्यवहार, कुचाल। बिलसै=शोभित। विटप=वृक्ष। बात=वार्ता, वायु ॥२॥

फूल मकरंद लौं झरत दान नीर कर,
बन्दी जन गावैं यश पिक किलकंत लों ।
दानवंत रूप जग भूप दिगविजै सिंह,
'गोकुल' अनूप रीति बिलसै बसंत लों ॥३॥

(सिकार रूपक)

हरे तरु पात तैसे पहिने सिकारी पट,
फूल ऐसे प्रफुलित मुख तेजवन्त है ।
चलैं मंद मारुत लौं हलका मतंगन के,
गुंजैं अलि मद मकरंद लौं झरत है ॥
शिशिर के शीत सम सेरन को हेरि मारे,
हँकवा हँकारे पुंज पंछी किलकंत है ।
'गोकुल' बिलोकि महाराज दिग विजय सिंह,
खेलत सिकार कैधौं बन मैं बसंत है ॥४॥

(नृपति आगमन रूपक)

देश वेश वृच्छन के खल दल पीरे भए,
भागन झरन लागे जानि बल अंत ओ ।
बहे पौन मंद मानो पुर के बहारैं पंथ,
फूलै लगे फूल प्रफुलित हितवंत भो ॥
पल्लवित बौर सिर कलँगी रँगीन पट,
बोढ़े कल गान करै पिक किलकंत सो ।
बाग बन धाम धाम आभा अभिराम 'ब्रज',
आवन की धूम धाम नृपति बसंत को ॥५॥

मकरन्द = पराग, पुष्परस । दाननीर = दान के समय लिया जाने वाला जल, हाथी का दान वारि । पिक = कोकिल । किलकन्त = किलकारी, टेर ॥३॥

सिकारीपट = शिकार के समय पहनने योग्य वस्त्र । हलका = झुण्ड । मतंगन के = हाथियों के । सेरन = सिंहों को । हेरि = खोज कर ॥४॥

बहारै = साफ कर देते हैं । बौर = मञ्जरी । कलंगी = पक्षियोंके कोमल रोयें से बनी वस्तु जिसे राजा लोग अपने मुकुट में लगाते हैं । बोढ़े = ओढ़कर । अभिराम = सुन्दर, मनोहर ॥५॥

(ब्याह बसंत रूपक)

पीत करि दिए पाती न्यौत बन पाँतिन को,
पल्लव नवल पुंज पहिरावा पायो है।
द्विज गन बोलैं शुभ आलीगन गान करैं,
भेरि सहनाई कीर कोकिल बजायो है॥
फूली बहु बेली फूल फबत रँगे दुकूल,
आमन के बौर मौर मंजुल बनायो है।
लता बनिता सी बनी बर सो बिटप 'बृज',
ब्याह बिधिवंत सो बसंत बनि आयो है॥६॥

(फौज रूपक)

फूले हैं पलास लाल लहरै निशान सोई,
बौरे हैं रसाल बरछी सो धार साने की।
गुंजरत मंजुल मलिंद बृंद आस पास,
मंद गति मारुत गयंद है पयाने की॥
'गोकुल' पराग रज उड़ै पंथ फूलन के,
कोकिला विरद बर बोलै बीर बाने की।
मान बलवंत गढ़ कटा करिबे को अंत,
आयो न बसंत सैन मैन मरदाने की॥७॥

(नृत्त रूपक)

बागन में चारु चटकाहट गुलाबन के,
ताल देत तालिया तुलान तुक तंत की।
गुंजत मलिन्द बृन्द तान की उपज पुंज,
कलरव गान कोकिलान किलकंत की॥

पात = चिट्ठी, पत्ते। बन पाँतिन = बन पंक्तियों को। नवल = नये। पहिरावा = पुरस्कारस्वरूप प्राप्त पहनने का वस्त्र। द्विजगन = ब्राह्मण लोग, पक्षीवृन्द। आलीगन = सखीगण, भ्रमरसमूह। बेली = सुन्दरी, लताएँ। फबत = शोभित हैं। दुकूल = रेशमी वस्त्र। मौर = मुकुट। वर = दूल्हा॥६॥

पलास = टेसू। निशान = पताका। बौरे = मञ्जरियाँ। साने = तेज की हुई। मलिन्द बृन्द = भौंरों का झुण्ड। गयंद = हाथी। पयाने = प्रयाण किया। रज = धूलि। विरद = उपाधियाँ। बीरबाने की = वीरों की रीति की। गढ़ = दुर्ग। मैन मरदाने की = बीर कामदेव की॥७॥

'गोकुल' अनेक फूल फूले हैं रँगे दुकूल,
झूमैं आम बौर हाव भाव रसवंत की।
लहरैं तरुन तरु छहरैं सुगंध मंद,
नाचत नटी लौं आवै बैहर बसंत की ॥८॥

(संत रूपक)

झरे तरु पात त्यौं ही पातक पतन करि,
कोमल चलावै बात प्रेम रसवंत हैं।
माधव मधुर रस पान करि गुंजरत,
प्रफुलित सुमन प्रकाश जो दिगंत हैं॥
बौरे हैं रसाल त्यौं ही छाप है तिलक भाल,
कोकिल सो गावै हरि कीरति अनंत हैं।
'गोकुल' बिलोकि बन बाग तीरथन बीच,
संत की समाज सो बसंत बिलसंत हैं ॥९॥

(गज पवन रूपक)

बिहरै बिपिन मैं बिटप की हलाइ डार,
कियो पतझार जाकी गति है दिगंत लौं।
महकै सुगंध मधु फूलन कपोलन के,
माते मधुकर गुंजरत रसवंत सो॥
सिंह सम सिसिर के सीत को सिसिर करि,
दीन्हो है भगाइ 'बृज' बड़े बलवंत जो।
मंद मंद चलत झरत मकरंद मद,
मदन मतंग कैधौं मारुत बसंत को ॥१०॥

तालिया = मजीरा या झाँझ बजाने वाले। तुकान = मिलाकर। तान = आलाप। किलकन्त = किलकारी मारकर। लहरैं = शोभित हैं। तरुन = तरुण, युवा। छहरैं = फैलती है। बैहर = बयार, वायु ॥८॥

पातक = पाप। बात = वार्ता, वायु। माधव = भौंरे, श्रीकृष्ण। सुमन = पुष्प, हर्षित मन। रसाल = आम, रसयुक्त। तिलक = तिलक नाम का वृक्ष, टीका। हरि = मनोहर, श्रीकृष्ण। तीरथन = तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों ॥९॥

सिसिर करि = ठंढा (समाप्त) करके। मद = मस्त हाथी की कनपटी से झरनेवाला जल। मदन मतंग = कामदेव का हाथी ॥१०॥

रंग बहु भाँतिन के पातिन के भाँतिन की,
देखि कै सनेह कली कढ़िहै बढ़ंत की।
फूले बहु फूल पर गुंजत मलिन्द देखि,
फूलै मन चाह चित मित्र रसवंत की॥
'गोकुल' कलोल कल कोइलि के बोलन मैं,
थिर मति लोल होय परदेसी कंत की।
बौरी बन बेली लखि होइगी नबेली बौरी,
बहुत सुगंध बोरी बैहर बसंत की ॥११॥

मंजु मंजरीन पर गुंजत मलिन्द रिन्द,
पुंज परसून 'बृज' रस बरसै लगे।
ठौर ठौर कोकिला कलोल करि बोलै खग,
जलज थलज परकास परसै लगे॥
बहै गंधवाह मन्द भरे हैं सुगन्ध भार,
परसत अंग मैं अनंग सरसै लगे।
विटप लतान मैं सरन सरितान मैं,
नरन बनितान मैं बसंत बिलसै लगे ॥१२॥

पाय कै प्रसून रस मंजु गुंजै अलि पुंज,
अहित कपाली के विशिष हिय हूले हैं॥
यमकी जमाति जैसी जगत परान चल्यौ,
हरे हरे हरिबेको प्रान प्रतिकूले हैं॥
कूजै कल काकपाली त्यागे हित हेत आली,
ऐसे ऋतुराज मैं उपाय 'बृज' भूले हैं।
सोहै सहकारन में किंशुक की डारन में,
जो है कचनार में अंगार फूल फूले हैं ॥१३॥

पातिन = पत्तियाँ। सनेह कली = प्रेम की बोंड़ी। बढ़ंत = वृद्धि। कलोल = आमोद-प्रमोद, क्रीडा। लोल = चंचल। बौरी = मंजरी युक्त। बनवेली = बनलता। नबेली = नववधू। बौरी = पागल, विक्षिप्त ॥११॥

रिन्द = स्वच्छन्द। परसून = प्रसून, पुष्प। गंधवाह = वायु। अनंग = कामदेव ॥१२॥

प्रसूनरस = पराग, मकरंद। अहित कपाली (अहित = शत्रु, कपाली = शिव) = कामदेव। विशिख = वाण। हूले हैं = भोंक दिया है। जमाति =

कवि—शेख

दंडक—सघन अखंड पूरि पंकज पराग पग्र,
अद्यर मधुप सद घंटा घहनात है।
बिरमि चलत फूली बेलिन के बासरस,
सुख के संदेसे लेत सबनि सुहात हैं॥
'सेख' कहैं सीरे सरबरन के तीर नीर,
पीवत न परसत ही हीरे सियरात हैं।
आवन बसंत मन भावन मनोज तन,
पवन परेवा जनु पाती लिये जात हैं॥१४॥

कवि—मुबारक (ममारख)

स॰—संग सखी के गई अलबेली महासुख सोवन बाग बिहारन।
बाढ़े बियोग बिलास गये सब देखत ही वै पलास की डारन॥
जानि बसंत औ कंतु बिदेश सखी लगी बावरी सीवै पुकारन।
च्वै चलिहैं चुरिया चलि आव री अंगुरि अंजनु लाव अंगारन॥१५॥

टीका—उद्दीपन ते भ्रम भयो है यह अंगार चुरियाँ लाह की गलि जैहै॥१५॥

किंसुक भार कुसुम्भित डार है सीरी बयारि बहैं जो बगारन।
आगि लगी हैं कहू बिन काज न मैंहूँ सुनी समुझी ऋतु राजन॥
तेरी सौं तोहि डरौं मैं 'ममारख' सीरी करौ सखी लै जलधारन।
च्वै चलि है चुरिआ चलि आव री आँगुरि अंजनु लाव अंगारन॥१६॥

समुदाय। परान चल्यो = भागने लगा। काकपाली = कोयल। ऋतुराज = बसंत। सहकारन = आमों में। किंशुक = टेसू। कचनार = एक सुन्दर फूलों वाला पेड़ विशेष॥१३॥

सघन = घने। पंकज पराग = कमल का मकरंद। मधुप = भौंरे। घहनात है = बजता है। बिरमि = रुक रुककर। बेलिन = लताओं के। सबनि = सबको। सीरे = ठंढे। हीरे = हृदय को। सियरात = शीतल करते हैं। पवन परेवा = वायुरूप कबूतर। पाती = पत्री, चिट्ठी॥१४॥

च्वै चलिहैं = गलकर टपकने लगेगी। चुरिआ = चूड़ियाँ॥१५॥

किंसुक भार—टेसू की भाड़ियों में। कुसुम्भित = फूली हुई। सीरी = ठंढी। बगारन = घाटियोंमें। सौं = सौगन्ध, शपथ॥१६॥

कवि—कविंद

दंडक—तारे जहाँ सुभट नकारे पिक नाद जहाँ,
पैदल चकोर कोर बाँधै बंद बेस की।
गुंजरत भौंर पुंज कुंजरत मोर जहाँ
पौन झकझोर घोर घमक हमेस की॥
भनत 'कविंद' सर फौज है बसन्त आली,
मिलै तंत कंत सो मनोज मन पेस की।
मानवारी गढ़पै गुमान ढाहिबे को आज,
चढ़ी असवारी है निशाकर नरेस की॥१७॥

कवि—किशोर

धावैं तकि धावनि सबैर तजि काम काम,
धायो कर धनुष सुधा कर धराधरी।
हहरि उठे हैं सब लोग लोक सोर करि,
कल बिरहिनि को न परत जरा भरी॥
कहत 'किसोर' भौंर झौंर ठौर ठौरन मैं,
दौरनि मची है अति भोरन तरातरी।
तेहवंत तरुन गुमान गुन गेहवंत,
नेहवंत निरखि बसंत की भराभरी॥१८॥

टीका—तेहवन्त कहै तेजवन्त या बलवन्त॥१८॥

सुभट = अच्छे योद्धा। नकारे = नगाड़े, वाद्य विशेष, नौबत। बंदवेश = पेटी। कुंजरत = कूजते हैं। मनोज = काम। मानवारी = मानिनी। गुमान = घमंड, गर्व। निशाकर = चन्द्रमा॥१७॥

धावनि = जल्दी-जल्दी चलना, शीघ्र गति। काम = कामना। काम = कामदेव। सुधाकर = चन्द्रमा। धरा = पृथ्वी। हहरि उठे हैं = काँप उठे हैं। लीक = मार्ग। कल = चैन, आराम। झौंर = समूह। तेहवंत = क्रोध भरे, बलवान्। नेहवंत = प्रेमी॥१८॥

मलैगिरि मारुत के मिसि बिरहाकुलनि,
दिसि दिसि ब्यालन को बिष बगरायो है।
तापर 'किसोर' तैसे पंचमन बल राग,
कोक की कलान भीनी कोकिलन गायो है॥
को न सुनि मोचै मान लोचै कान्ह मिलन को,
सोचै कौन स्याम देखि नभ घन छायो है।
आमन के भौंर लागे अंकुरन मौर लागे,
भौंर लागे भ्रमन बसंत अब आयो है॥१९॥

टीका—आगमन वसन्त ॥१९॥

अवनि अकास अम्बु अनिल अनल आभा,
औरै भाँति भई जो मनोज महिमंत की।
करि जनि मान या दिसान ह्वै गई है मंद,
मति ह्वै गई है सब जानु जगजंत की॥
कहत 'किसोर' जोर जरब कुयोगिन को,
भोगिन को भावती बियोगिन के अंत की।
उलही उमंगन ते लखो लसि रही तैसे,
लहलही लौंदन पै लहरि बसंत की॥२०॥

टीका—वसंत सुभाव वर्णन ॥२०॥

मिसि = बहाने। ब्यालन = सर्पों। बगरायो = फैलाया। पंचम = पंचम स्वर से। नवल = नया। कोक = चन्द्रमा। भीनो = सना हुआ। मोचै = छोड़ दे। भौंर = समूह, झुण्ड। मौर = बौर॥१९॥

अवनि = पृथ्वी। अम्बु = जल। अनिल = वायु। मनोज = काम। महिमंत = महिमावान्। जोर जरब = भीषण आघात। भावती = रुचिकर। उलही = उल्लसित। लहलही = हरी-भरी। लौंदन = गुच्छों॥२०॥

कवि—कृष्णलाल

आगे आगे दौरत वकील गंधवाह ऐसे,
पाछे पाछे भौंरन की भीर भट भीम है।
बाजे राजे किंकिनी मँजीर कल गाजे जबै,
घूँघुट धुजा मैं मैन सीमधुज सीम है॥
'क्रस्न लाल' सौरभ यौं चन्दन पै जाकी जीति,
ऐसो कौन भूतन मैं गब्बर गनीम है।
मदन महीप बाज सदन सु सिरताज,
मदन बहादुर की कापर मुहीम है॥२१॥

टीका—वकील गन्धवाह पौन ॥२१॥

कवि—मंडन

स०—बीतन लागे बसंत के बासर औधि की आस अजौं अभिलाखौं।
छीन भई तन भो तन अंतर दाह निरंतर कौन सो भाखौं॥
'मंडन' ए इतने सँग राखि पियारे की सीख न तीखन नाखौं।
दारुन भार अंगार की आगि रुई में लपेटि कहाँ लगि राखौं॥२२॥

टीका—अतिविरह ते व्याकुल कहै है की रुई में आगि कवलों छुपाइए॥२२॥

कवि—प्रहलाद

सूर सहकार सीस बौरन के तोर करे,
भौंरन की बानी बेस बाजे रतिनाह की।
परभृत बंदीजन बेहद बिरद बोलैं,
झंझा पौन ढाढ़ी लखि बाढ़ी पीरदाह की॥

गंधवाह = वायु। किंकिनी = करधनी। मंजीर = नूपुर। मैनसीम धुज = कामदेव की सीमा ध्वजा। सीम = चिह्न, निशान। गब्बर गनीम = शक्तिशाली शत्रु। कापर = किसपर। मुहीम = चढ़ाई, आक्रमण॥२१॥

बासर = दिन। औधि = अवधि, समय। अजौं = आज भी। सीखन = शिक्षाओं को। तीखन = तीक्ष्ण। दारुन = प्रचंड॥२२॥

सहकार = आम। तोर = वंदनवार। बेस = बढ़कर, अधिक। रतिनाह = कामदेव। परभृत = कोयल। बंदीजन = स्तुतिपाठक, भाट। बिरद = स्तुति। झंझा = बूँदाबाँदी युक्त। किंसुक = टेसू।॥२३॥

कहै 'प्रहलाद' कवि किंसुक कि सूल फूल,
सूल उपजावै गति कहाँ है निबाह की।
बिरही बचैगी कैसे चाहकनि अंत हेत,
चढ़ी फौज प्रबल बसंत बादसाह की ॥२३॥

टीका—बसंत फौज रूपक ॥२३॥

कवि—मान

मोरे मोरे मोर तरु मंजीरन मिलि आली,
गंधगुन मई मंद मारुत झकोरे लेत।
नवल किसोरी लोनी कम्पयुत लतिकानि,
लपटि लपटि रस आनन्द अथोरे लेत ॥
गरल की गाँठ से गठे से गठे सेर कढ़े,
किरन अमान 'मान' गढ़ हठि छोरे लेत।
काम कैसे चार ऋतु राज कैसे सहचर,
चचर करत चंचरीक चित्त चोरे लेत ॥२४॥

सवैया—आयो बसंत तमालन ते नव पल्लव की इमि जोति जगी है।
फूलि पलास रहे जित ही तित पाटल रातहि रंग रँगी है ॥
मौरि के आवन सार भई तेहि ऊपर कोकिल आनि खँगी है।
भागन भाग बचो बिरहीजन बागन-बागन आगि लगी है ॥२५॥

टीका—बागन में आगि लगी फूल को देखि कहै है ॥२५॥

मोरे मोरे = नीलम-सी आभावाले। मंजीरन = नूपुरों। लोनी = सुन्दर। गरल = विष। गठेसे = बने हुए से। सेर कढ़े = जिसमें शेरका चित्र बना हो। अमान = अपरिमित। गढ़ = दुर्ग, किला। चार = दूत। सहचर = मित्र। चचर = एक राग, चाँचरी। चंचरीक = भौंरे ॥२४॥

तमालन = एक सदाबहार वृक्ष। इमि = इसप्रकार। पाटल = रक्त, गुलाब। मौरि = मंजरी। सारमई = गौरवयुक्त। खँगी = दुख दे रही ॥२५॥

कवि—देव

को बचिहै इन बैरी बसंत के आवत जोबन आगि लगावत ॥
बौरत ही करि डारत बौरी भरे विष बौरी रसाल कहावत ॥
व्है है करेजन की किरचैं कवि 'देव' जू कोकिल बैन सुनावत।
बीर कि सों बलबीर कि सों उड़ि जाइहै प्रान अबीर उड़ावत ॥२६॥

बैरी बसंत के आवत ही बन बीच दवागिनि सी पजरैगी।
जोगिनि सी बनि है बन माल बियोगिनि कैसे कै धीर धरैगी ॥
गुंजन वै अलि पुंजनके सुनि कुंजन कोइलि कूक करैगी।
सूल से फूले पलाशन की डरिया डरपावन डीठि परैगी ॥२७॥

टीका—पलास देखि डर पावती हौ ॥२७॥

कवि—अज्ञात

दंडक—कोऊ कह्यो जाय कान्ह आई है बसंत ऋतु,
कोकिल के बोलन को बृज मे बखाने हैं।
हिये सुलगति आगि ऊधो फूँक दई आइ,
मरत बनै न जे वै बचन सुजाने हैं ॥
ये हू पर काम कमनैत ने गही कमान,
नेही गोपि नैनन के तारिका निसाने हैं।
खिले अनखिले अधखिले हैं पुहुप नाहीं,
एक बान मारे एक छाँड़े एक ताने हैं ॥२८॥

टीका—यह फूल जो अधखिले हैं सो न होइ यह काम के बान जो फूले हैं फूल वह बान छाड़े जो कली है वह फूल को कामबान ताने है ॥२८॥

बौरत=बौर आते ही। बौरी=पागल। विषबौरी=जहरीली लता, बछनाग। रसाल=रसभरे आम। करेजन=कलेजों। किरचै=सीधी नुकीली तलवार ॥२६॥

दवागिनि=बनकी अग्नि। पजरैगी=प्रज्वलित होगी। बनमाल=वनपंक्ति। डरियाँ=डालैं। डरपावन=भयानक। डीठि=दृष्टि ॥२७॥

ऊधो=उद्धवजी। कमनैत=धनुधारी। कमान=धनुष। तारिका=आँखकी पुतली। पुहुप=पुष्प ॥२८॥

कवि—कालिदास

दंडक—मधुकर माल बन बेलिन के जाल पर,
कोकिला रसाल पर कुहुक अमंद की।
मंद पौन शीतल सुबास नई बागन,
विलास भई 'कालिदास' रास मकरन्द की ॥
देखिए सयान बैसाख मे पयान करै,
कान्ह को दया न होत गोपिन के बृंद की।
कैसे देखि जीहैं चढ़ि चाँदनी महल पर,
सुधा की चहल बसुधा की चार चंद की ॥२६॥

टीका—कैसे जीवैगी सुधा की चहल देखि ॥२६॥

कवि—अज्ञात

तरु पतझारन मैं रमित पहारन मैं,
किसलित डारन मैं दीपति दिगंत है।
त्रिबिध समीरन मैं जमुना के तीरन मैं,
उड़त अबीरन मैं झलाझलकंत है ॥
छाय रह्यो गुंजन में अलि पुंज कुंजन में,
गान मैं गोपाल ऐसे रूप दरसंत है।
फूल मैं दुकूल मैं तड़ागन मैं बागन मैं,
डगर में नगर मैं बगरो बसंत है ॥३०॥

टीका—तरुपतझारिनादिक वसंत प्रकाश ॥३०॥

मधुकरमाल=भौंरों की पंक्ति। बनबेलिन=बन की लताओं। अमंद=तीव्र। रास=ढेर। मकरंद=पराग। सयान=चतुर, नायक। पयान=गमन। सुधा=अमृत। वसुधा=पृथ्वी। ॥२६॥

रमित=बसी हुई। किसलित=पल्लव युक्त। दीपति=दीप्ति, कान्ति। त्रिबिध=तीनप्रकार की (शीतल-मन्द-सुगन्ध)। समीर=वायु। झला=शोभा। झलकंत है=झलकती (दीखती) है। दरसंत=दीखता। डगर=मार्ग ॥३०॥

कवि—किशोर

सवैया—सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सुहात सुयोगिनि भोगिनि हूँ को मनोहरता है॥
संग अली अवली रवि राजत अंग रसीली बसी करता है।
कोमलता जुत बीर बसंत की बैहर की बनिता की लता है॥३१॥

टीका—यह बैहर है कि बनिता की लता है॥३१॥

मलयज गिरि तरु कोपते कढ़ी है चढ़ी,
मंजु मकरंद पुंज पानिप अपार सी।
कहत 'किसोर' चारि बोरन विषम वेष,
प्रबल प्रचंड पेखि सिर पतझार सी॥
अलि बिष बूड़ी बलि करत कहा है जापै,
सौरभ की लहर धरी है खरी धार सी॥
रहत न रोकी बेर चहत बियोगिन पै,
बैहर बसंत की तिरीछी तरवार सी॥३२॥

टीका—यह बयारि वसन्त की तरवारि सी है, वियोगी को मारो चाहौ है॥३२॥

अवनि ते अम्बर ते द्रुमनि दिगम्बर ते,
अपर अडम्बर ते सखि सरसौ परै।
कोकिल की कूकन ते हियन की हूकन ते,
अतन भभूकन ते तन तरसौ परै॥
कहत 'किसोर' कंज पुंजन ते कुंजन ते,
मंजु अलि गुंजन ते देखु दरसौ परै।
बसन ते बासन ते सुमन सुबासन ते,
बैहर ते बनते बसंत बरसो परै॥३३॥

टीका—बसन्त सब ठौर प्रकाश॥३३॥

अभंग=अनाशवान्, शाश्वत। अनंगकला=कामकला। ललिता=सुन्दर। वशीकरता=वश में करनेवाली। वनिता=स्त्री॥३१॥

मलयज=चन्दन। कोश=मध्यभाग। कढ़ी=निकली। पानि=शोभा। बूड़ी=डूबी हुई। सौरभ=सुगन्ध। खरी=तीक्ष्ण॥३२॥

कवि—हरिजन

आए ऋतुराज महराज महिमंडल मे,
तिस की दपट आगे सिसिर हेमंत को।
कबि 'हरिजन' कहैं प्यारी परबीन सुनो,
याको तो बचाव है मिलन एक कंत को॥
दुंदुभि धुकार यकताल हूँ को झनकार,
मेरे जान घटा है मदन मयमंत को।
पूरन प्रताप दिन प्रभुता बढ़ति आवै,
कोकिल पढ़ति आवै बिरद बसंत को॥३४॥

टीका—ऋतु धर्म॥३४॥

कवि—गुलाल

गौन हद होन लागे सुखद सुभौन लागे,
पौन लागे बिषद बियोगिनि के हियरान।
सुभग सवादिले सुभोजन लगन लागे,
जगन मनोज लागे जोगिन के जियरान॥
कहत 'गुलाल' बन फूलन पलास लागे,
सकल बिलासन के समय सुनियरान।
दिन अधिकान लागे ऋतु पति आन लागे,
भान लागे तपन वो पान लागे पियरान॥३५॥

दपट = भय, डाँट। दुंदुभि = एक बाजा। धुकार = ध्वनि, गर्जना। यकताल = एक तार वाला छोटा बाजा। बिरद = यशोगान॥३४॥

गौन = गमन, यात्रा। हद होन लागे = समाप्त होने लगे। सुभौन = सुन्दर भवन। । बिषद = जहरीले। हियरान = हृदयों को। जियरान = जीवों (चित्तों) को। सुनियरान = अच्छी प्रकार निकट आने लगे। अधिकान = बढ़ने। पान = पत्ते। पियरान = पीले॥३५॥

कवि—संगम

भौंरन के पुंज गुंजरत आवैं कुंजर ले,
कोकिला नकीब तेई कुहुक सुनावैंगे।
लाल लाल किंसुक पै लसैं आसमान छ्वै छ्वै,
बौर बरछीन की अधिक रूप छावैंगे॥
'संगम' कहत काम कारीगर कोप कै कै,
त्रिविध समीर सोई सुरँग चलावैंगे।
मानिनी गनीमन के मान गढ़ तोरिबे को,
सकल समाज सो बसंत राज आवैंगे॥३६॥

टीका—बसंत कौ समाज॥३६॥

कवि—मनसाराम

प्यारे के बियोग आली उठी आगि बृन्दाबन,
जरती सहेठ कुंज सुन्दरी महा महा।
बौरे कचनार आँच उठति पलासन ते,
कुसुम करील डीठि परत जहाँ जहाँ॥
'मन्साराम' तिन्हैं भेंटि आवत समीर बीर,
तयो जात तन ताली लगति तहाँ तहाँ॥
मृग अधमरे बिललात हैं भँवर कारे,
कोइलिया कोप कै पुकारती कहाँ कहाँ॥३७॥

टीका—बसन्त में बियोग कथन॥३७॥

कवि—मधुसूदन

सवैया—आयो बसंत हसंत सखी सुनि आए न कंत न पाए सँदेसे।
कूकत कोकिल चारि दिशा हिय हूक परी तिय लूक के लेसे।

कुंजर=हाथी। किंसुक=टेसू, पलाश। बौर=आम की मंजरी। गनीमन=शत्रुओंको। गढ़=किले॥३६॥

सहेठ=प्रेमी-प्रेमिका के मिलनेका संकेत स्थल। महामहा=बड़ी बड़ी। बौरे=खिलने लगे। करील=एक कँटीली झाड़ी जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं। समीर=वायु॥३७॥

याहि चितै डरपै 'मधुसूदन' जात नहीं बन याहि अनेसे।
फूलि रहे पतझार सुकिंसुक लोहू भरे नख नाहर जैसे ॥३८॥

टीका—यह फूलि रहे पलास सो न होय यह नाहर कहे सेर नखन में भरे हैं लोहू को ॥३८॥

कवि—हरिकेश

दंडक—मलय समीर धीर करि ले अधीर मोहिं,
नेसुक उसीर नीर धीरन उधार लै।
कहै 'हरिकेस' चंद जारि लै घरीक तूँही,
साँची बिष कंद चारु चाँदनी पसार लै॥
अब ही मिलत मोको नंद के दुलारे प्यारे,
तौलौं तूँ उतार कारी कोइल कल्हार लै।
गार लै गरब गरबीले तूँ अनंग किन,
मेरे इन अंगन अनंग बान झार लै ॥३६॥

टीका—मेरे अंग में ए अनंग बान को झारिले ॥३६॥

॥ इति बसंत बर्णनं समाप्तम् ॥

कवि—गोलकप्रसाद 'बृज'

ग्रीष्म ऋतु वर्णन

दंडक—सूखे बन बाग रूख आपगा तड़ाग कूप,
लूक से लगत मारतंड के बिलास हैं।
केहू थल मिलै जल खोलै ताते तेल कैसे,
बहै परचंड पौन प्यारी की बिलास हैं।

हूक = टीस। लूक = ज्वाला। अनेसे = आशंका से। नाहर = सिंह ॥३८॥

नेसुक = थोड़ी देर। उसीर = खस। जारिलै = जला ले। घरीक = घड़ी भर। उतार = बुला ले। कल्हार ले = भून ले। गारले = निकाल ले। गरब = घमण्ड। अनंग = काम। अनंग बान = काम बाण। झार लै = चला कर खाली करले ॥३६॥

जगत के जीवन को जीवन है जीवन मैं,
'गोकुल' बिलोकि जग जेठ प्यास आस है।
आँवा से अकास लागै धरा धावा तावा ऐसे,
महल पजावा ऐसे आँवा से अवास है ॥४०॥

टीका—जीवन नाम जल जगजीवन नाम मेघ पौनप्यारी अर्थ कहै पौन को मित्र आगि ॥४०॥

कवि—भूधर

सीरे तहखाने तामें खासे खसखाने सोधे,
अतर गुलाब का बखानैं रपटत है।
'भूधर' सँवारे हौज छूटत फुहारे और,
बारे भरि ताबदान धूप दपटत है॥
ऐसे समै गौन कहूँ कैसे कै बनै तो प्यारे,
सुधा को तरंग प्यारो अंग लपटत है।
चंदन किवार घनसार के पगार दई,
तऊ आनि ग्रीषम की झार झपटत है ॥४१॥

टीका—चंदन के किवार घनसार कहै कपूर की पगार कहै दीवार ॥४१॥

कवि—कृष्णलाल

खासे खस खाने खासेखाने तहखाने नल,
छूटत सरोज को सुगंध रपटी रहै।
अँतर अरगजेसो केसरि गुलाब नीर,
छिरक किवार द्वार झार झपटी रहै॥

रूख = वृक्ष। आपगा = नदी। लूक = आग की लपट। मारतंड = सूर्य। ताते = गरम। पौनप्यारी = अग्नि। जीवन को = प्राणियों का। जीवन = प्राण। जीवन = जल। आँवा = भट्ठी। धरा = पृथ्वी। धावा = आक्रमण। पजावा = भट्ठा। अवास = घर ॥४०॥

सीरे = ठंढे। तहखाने = तलगृह, भुँइधरा। खसखाने = खस से घिरी कोठरी। रपटत = फैलती। ताबदान = प्रकाश पात्र, दीपक। दपटत = डराती है। गौन = गमन, यात्रा। किवार = द्वार। घनसार = कपूर। पगार = दीवाल। झार = ज्वाला ॥४१॥

'कृस्नलाल' जेठ मैं गमन कैसे कीजै प्यारे,
चंदन मलै के संक अंक दपटी रहै।
ज्वाल उदभटी कुचबटी कामगटी तटी,
हटी मरहटी नटी लटी लपटी रहै ॥४२॥

टीका—ज्वाल उदभटी कहै प्रबल कुचबटी कहै भट्टा कामगटी कहै समूह तटी कहै तट पर सीतल थल के मरहटी लपटी रहै ॥४२॥

कवि—सुमेर

दंडक—जीवन को त्रास कर ज्वाला को प्रकास कर,
भोर ही ते भासकर आसमान छायो है।
धमका धमक धूप सूखत तलाव कूप,
पौन कौन गौन भौन आगि मैं तपायो है।
ताकि थकि रहे जकि सकल 'सुमेर कवि',
ग्रीषम अचर चर खचर सतायो है।
मेरे जान काहू वृषभान जग मोचन को,
तीसरो त्रिलोचन को लोचन खोलायो है ॥४३॥

टीका—वृषभान कहै वृषराशि के सूर्य ॥४३॥

चंडकर झारन झकोर लख रोष पौन,
तोरत तमाल मनु मंद द्विन भारो सो।
धर्ष कै धरनि गिरि तम कै प्रताप जाके,
देखत मजेज रेज जगत निन्दारो सो ॥
तरु छीन छाया सर सूखत समुद्र बन,
करनि बिचारि देखो आतप अँगारो सो।
छावत गँगन धूरि धावत धधात आवै,
चाँप चढ़ो ग्रीषम गयंद मतवारो सो ॥४४॥

टीका—ग्रीषम गयंद रूपक ॥४४॥

त्रासकर = डरानेवाला। भासकर = भास्कर, सूर्य। गौन = गमन, संचार। तपायो = तपाया, गरम किया। जकि = हठपूर्व कहकर। अचर चर = स्थावर जङ्गम। खचर = सूर्य। वृषभान = वृषराशि का सूर्य। त्रिलोचन = शिवजी ॥४३॥

चंडकर = सूर्य। झारन = आँच से। भारो = बड़ा। मजेज = अहंकार। अँगारो = जलता हुआ कोयला। चाँप = दबाव। गयंद = हाथी ॥४४॥

कवि—श्रीपति

अमल अटारी चित्रसारी बारी रावटी मैं,
बारह दुवारी मै किवाँरी गंध सार की।
कामानल छाइ रह्यौ चाँदनी बिछौना पर,
छबि फबि रहीं छीरसागर कुमार की ॥
'श्रीपति' गुलाब वारे छूटत फुहारे प्यारे,
लपटैं चलत तर अतर बयार की।
भूषननिवारी घनसार भीजी सारी झरि,
तऊ न बुझानी नेक ग्रीषम के झार की ॥४५॥

टीका—ग्रीषम के तपनि ॥४५॥

कवि—बेनी

जेएँ बिना जीरन सो जल की जिकिरि जीभ,
जर्‌यौ जात जगत जलाकनिके जोरते।
कूर सर सरिता सुखाइ सिकता मैं भई,
धाइ धूरि धौरनि धराधर के वोरते।
'बेनी कवि' कहत अनातप चहत सब,
अगिनि सो आतप प्रकास चहुँ वोरते ॥
तवा सो तपत धरामंडल अखण्डल सो,
मारतंड मंडल दवा सो होत भोरते ॥४६॥

॥ इति ग्रीष्म ऋतु वर्णनं समाप्तम् ॥

टीका—बिना खाए जीरन जल त्रिखा सब काल में बनी रहै ॥४६॥

अटारी=अट्टालिका, कोठा। चित्रसारी=चित्रशाला, चित्रों से सजा हुआ सोने का कमरा। रावटी=बारहदरी। गंधसार=चन्दन। फबिरही=शोभित हो रही। छीरसागर कुमार=चन्द्रमा। घनसार=कपूर ॥४५॥

जेंए=पिये। जीरन=त्रस्त। जिकिर=चर्चा। जलाकनि=तेज धूप। सिकतामै=बालूमय। धौरनि=श्वेत। धराधर=पर्वत। अनातप=छाया। आतप=धूप। मारतण्डमण्डल=सूर्यमण्डल। दवा=वनाग्नि ॥४६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(पावस ऋतु वर्णन)

दंडक—धाए हैं धुँधारे 'बृज' धाराधर धूर वारे,
कौधौं चखचौंधौं नौधानेह जग ह्वै रह्यौ।
छपे मारतंड चंड बगरे बलाक झुंड,
चले हैं प्रचंड पौन झंझा झरि वै रह्यौ॥
आसन असीन एक किए जोग भोग वीर,
काम के संयोग में मयूरी मोर कै रह्यौ।
ललित ललाम ऋतु पावस प्रकाश पेखि,
पथिकबधू के धाम धूम-धाम ह्वै रह्यौ॥४७॥

कवि—महाकवि

उमड़ि घुमड़ि घन घेरि कै घमंड कीन्हो,
चपला समेत चहूँ वोरन ते झूमरे।
निशि दिन जापी तापी बोलत पपीहा पापी,
क्रूर हैं कलापी ऐसे थोर सोर घूमरे॥
जियैगी वियोगी कैसे ऐसे समै 'महाकवि',
जोगीते वै भोगी भए फोरि फोरि तूमरे।
देखु मेरी आली अब मैन के मतंग छूटे,
धाए जावैं धुरवा ये धौरै धौरै धूमरे॥४८॥

धुँधारे = मटमैले। चखचौंधौ = चकाचौंध। नौधा = नवधा, सब प्रकार। छपे = छिप गये। मारतंड चंड = प्रचंड सूर्य। बगरे = फैले हैं। बलाक = बगले। झंझा = वर्षायुक्त पवन। वैरह्यो = प्रसार कर रहा है। पावस = वर्षा। पथिक बधू = विरहिणी॥४७॥

चपला = बिजली। झूमरे = झूलते हुए। जापी = रटनेवाला। तापी = संतप्त करनेवाला। कलापी = मोर। तूमरे = तुम्बे। मैन के मतंग = काम के हाथी॥४८॥

कवि—सिंह

स्याम घटा नाहीं एतो धूमन की छटा छाहीं,
दामिनि कहाँ है एते चोखा उठें धुरमैं।
गरज कहाँ है एतो घोर फूटे थंभन के,
जूगनू कहाँ है ए चिनग उड़े सुरमैं॥
मेघ बूँद नाहीं ए बुझावत फिरत देव,
तिनहीं के छाटे आइ परैं भूमि फुर मैं।
'सिंह' कहै दावानल आय कै बुझावै कौन,
एरी आगि लागी है पुरंदर के पुर मैं॥४६॥

टीका—यह पावस न होय। यह दावानल पुरन्दर इन्द्रपुर में आगि लगी है कौन बुझावै॥४६॥

कवि—मुबारक

धाराधर भूमि ऋतु धरा से धधाय धाये,
धौर हरधमकाए धाय धका देत हैं।
झंझा पौन झकझोर झूकन झकोंर झोंक,
झिल्ली गन झाल जाल झझकत प्रेत हैं॥
बिरह बलाय ते 'मुबारक' कही न जाय,
तो बस सहाय हेत चढ़े खल खेत हैं।
दादुर दिवार चढ़े चातिक तमार चढ़े,
गिरि चढ़े मोर सिर चढ़े मीनकेत हैं॥५०॥

टीका—पावस सुभाव॥५०॥

कवि—शिवनाथ

ऐसी झिर बूँदन मैं दूँदनै उठायो काम,
मूँदै मुख प्यारी बेनी गूँथै नव हरि कै।
कहै 'कवि शिवनाथ' झिल्ली गन गाजत हैं,
सावन में बहै रस लहरी छहरि कै॥

चिनग = चिनगारी। पुरंदर = इन्द्र॥४६॥

धाराधर = मेघ। धरा = पृथ्वी। धौरहर = ऊँची अटारी। झंझापौन = सवृष्टिक वायु। झूकन = झोंका। झाल = झाँझ नामक बाजा। झझकत = भड़कता है। दादुर = मेंढक। तमार = सूर्य। मीनकेत = कामदेव॥५०॥

ऊनरी सुकंज दुति दूनरी द्दगन बाढ़ी,
झूनरी कहत खौरि दैनरी गहरि कै।
ऊनरी घटा मैं गोरी तू न री अटा पै बैठु,
खून री करैगी लाल चूनरी पहिरि कै ॥५१॥

टीका—नायक सखी ते कहै है, ऊनरी पद ऊनरी कहै उनये घटा में तू अटा पर चढ़ि कै खून करैगी लाल चूनरी पहिरि ॥५१॥

कवि—बृजचंद

सघन घटान छबि जोति की छटान बीच,
पिक बर ठान जोति जी गन जुई परै।
हार हिय हरित नवीन नद भरित,
भरीन भूर भूरित सो धरनि धुई परै ॥
ऐसे में किसोरी गोरी भूलत हिंडोरे झुकि,
झकन झकोरे केलि कुलनि कुई परै।
कीजिये दरस नँदनंद 'बृज चंद' प्यारे,
आजु मुख चंद पर चूनरी चुई परै ॥५२॥

टीका—सघन घटा में छबि सकाम है ॥५२॥

कवि—किशोर

ऊमड़त भूमड़त धूम घन आयो घेरे,
कोरै देत निनद नगारन की धूम को।
कहत 'किसोर' चारों ओरन ते जोरा वरी,
थोरे देत जर बिजुरिन वारी धूम को ॥
झमकर भंभा तैसी झुकि झुकि भोरे देत,
झालरैं तमालन की झाप झाप झूम को।
जलज को जोरे देत जलद को फोरे देत,
जलन कों ठोरे देत बोरे देत भूम को ॥५३॥

टीका—ऋतुरीति कथन ॥५३॥

ढूँदनै = उत्पात। झिल्लीगन = झींगुर। ऊन = कम, न्यून। दून = दुगुनी। द्दगन बाढ़ी = आँखों में बढ़ गई। झूनरी = कलात्मकता से। खौरिदैन = स्नान करना। ऊनरी = उमड़ती हुई। अटा = छत, अटारी ॥५१॥

निनद = शब्द। जर = जल। भंभा = वर्षा सहित वायु। जलज = कमल, जलद = मेघ। भूम = भूमि, पृथ्वी ॥५३॥

कवि—पूखी

झूर की झरन झार झर सी झरन अंग,
झंझा की झकोर झार झपटी झरीन मैं।
छटा की उछट छवि छपत छपाकर की,
छाइ रही छनदा सुहाई दिन दीन मैं।
चातिक चिहार चखचौंधि चारु चहूँ दिसि,
चच्छुन चकोर चकवान के विहीन मैं।
ता बस परे हैं 'पूखी' का बस पराए देस,
पावस मैं तामस रह्यो न बिरहीन मैं ॥५४॥

टीका—झंझा नाम बयारि की झंकोर, छटा के चमकते छपाकर की छपन चातिक पपीहा को सोर, चकवा न देखि परे ता बस कहै केकरे बस परे हैं, का बस कौन बस परदेस में पावस में तामस कहै क्रोध विरही में न रहि गये ॥५४॥

अंबर ठठान फेन फूटत फटान जैसे,
चढ़े नटवान छबि छाजत छटान की।
वोढ़ि दुपटान बुंद चुअत लटान 'पूखी',
तन लपटान मानो मंदन कटान की ॥
चातक रटान नदी नद उपटान जग,
जंगल बहान मुर बाद ज्यौं बटान की।
पीय के तटान परे कुसुम पटान ठाढ़ी,
ऊपर अटान लेत लहरैं घटान की ॥५५॥

टीका—अंबर कहै आकाश मेघ के जमाव है जैसे नट बाँसे पै चढ़त ॥५५॥

झर = बूँदा बाँदी। झरन = गिरना। झार = सारे, सब। झरी = वर्षा की झड़ी। छपाकर = चन्द्रमा। छनदा = बिजली। चिहार = पुकार। चखचौंधि = आँखों की चमक। पावस = वर्षा। तामस = क्रोध ॥५४॥

ठठान = समूहों में। फटान = फटाओंसे। नटवान = अभिनय के लिये। लटान = लटों से। रटान = फुकारना। उपटान = उमड़ने, बाढ़ आने। अटान = अटारियों में ॥५५॥

कवि—गुरुदत्त

सवैया—पीव कहाँ कहि देव तो सावस पावस में रस बीच कहाँ है।
जीवन नाथ के साथ बिना 'गुरुदत्त' कहै तुम जीव कहाँ है॥
बानी सुनी जब से तब ते यह जानी न जात सखीब कहाँ है।
पीव कहाँ कहिके पपिहा केहिसो तुम पूछत पीव कहाँ है॥५६॥

टीका—पीव कहाँ है कहि देव कासो तुम पूछत ॥५६॥

गरजी घन घोर घटा घुमड़ी जब ते बिरहा जु भयो सरजी।
सरजीव भये मृगदादुर चंद लिए रति नागर की मरजी॥
मरजी जो उठी पिक की धुनि लै चपला चमकै न रहै बरजी।
बरजी बरजी जिय को सजनी भयो चातक मो जिय को गरजी॥
॥ इति पावस ऋतु वर्णन समाप्तः॥

टीका—गरजी कहै बोली है जब ते विरह सरजी भये, सर कहै बान भयो, दादुरादिक काम के मरते जी उठे, पिक की धुनि लै चपला चमकै, बरजे नहीं माने बरजी कहै डेरवाइ डेराव मेरे जी को लेनवारे भये ॥५७॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

शरद ऋतु वर्णन

दंडक—ह्वै गये बिमल जल आपगा तड़ाग थल,
अवनि अकास में प्रकास पुंज ह्वै रहे।
सूखे पानि पेखि किए पथिक पयान पेखि,
आए खंजरीट कंज प्रफुलित ह्वै रहे॥
भूप मनोभव के अभूत दूतराजै 'बृज',
पंचभूत मैं प्रभूत सारदी के ह्वै रहे।
कान अँखियान मुख घ्रान निज चाहै रुचि,
चह चही चाँदनी अमंद चंद बै रहे॥५८॥

सरजीव = चञ्चल। रतिनागर = कामदेव। मरजी = मरकर जीवित। चपला = बिजली। बरजी = रोकी हुई। बरजी = छोड़ी हुई, विरहिणी। गरजी = इच्छुक ॥५७॥

आपगा = नदी। अवनि = पृथ्वी। पानि = जल। पयान = गमन। खंजरीट = खंजन। कंज = कमल। मनोभव = कामदेव। पंचभूत = पाँचो तत्त्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।) प्रभूत = बहुत ॥५८॥

टीका—भूप मनोभव कहै काम के दूत होय पंचभूत कहै पौन पानी आगि पृथ्वी अकास में प्रकास ऋतु को है ते पाँचों अंग में रुचि आपनी है रही ॥५८॥

कवि—मुरारि

आई ऋतु सरद गगन बिमलाई छाई,
खंजन की राजी पुंज कुंजन बसै लगी।
हरित हरित पंथ पथिक निवारे पंथ,
अकथ 'मुरारि' बोय जग बिलसै लगी ॥
सुमन सरासन के सुमन सरासन ते,
छूटि कै सुमन सर आली ही ग्रसै लगी।
तालन कमल फूले कमल बितूले अलि,
अलि पर पीतिमा पराग की लसै लगी ॥५६॥

टीका—सुमनसरासन कहै काम, सुमन सरासन कहै धनुषै ते सर कहै बान छूटि कै ग्रसै लगे ॥५६॥

कवि—किशोर

हरत 'किसोर' जो चकोर जो चकोर निसि,
ताप कलि कुमुदिनि कंज कली छन्द भो।
मानिनीनिहू के मन दरप दलित करि,
कद्रिपु कदलित करि जगबन्द भो ॥
मुद्रित कमल अवलीकर तिमिर कव,
लीकर दिसान धवलीकर अमन्द भो।
अंबुध अमित करि लोकन मुदित करि,
कोक अमुदित करि समुदित चंद भो ॥६०॥

टीका—लोक के जीवन को मुदित कोक चक्रवाक को विरह चन्द्रमा को प्रकाश ॥६०॥

राजी = पंक्ति। हरित = हरे। अकथ = अवर्णनीय। बोप = शोभा। सुमनसरासन = कामदेव। सुमन = पुष्प। शरासन = धनुष। सर = बाण। बितूलै = फूलते हैं। अलि = भौंरा। पीतिमा = पीलापन ॥५६॥

कुमुदिनी = कमलिनी। कंजकली = कमल की कली। छंद = उपासनार योग्य। दरप = घमंड। जगवंद = संसारका वन्दनीय। अवली = पंक्ति। तिमि-

कवि—सेनापति

बिबिध बरन सुरचाप के न देखियत,
मानो मनि भूषन उतारि धरे भेस हैं।
उत्तम पयोधर बरसि रस गिरि रहे,
नीके न जगत फीके सोभा को न लेस हैं।
'सेनापति आए ते सरद ऋतु फूलि रही,
आस पास कास खेत खेत चहूँ देस हैं।
जोबन हरन कुम्भ योनि उदये ते भई,
बरषा बिरधि ताके सेत मानो केस हैं ॥६१॥

टीका—जीवन हरन कुंभयोनि अर्थ जल के हरन कुंभयोनि अगस्त उदै भो ॥६१॥

आस पास पुहुमि प्रकास के पगार सोहैं,
बनन अगार डीठि ह्वै रही बिबरसे।
पारावार पारद अपार सो दिसन बूड़ी
चंद सूर दोऊ दिन राति बिधि बरसे॥
सरद जुन्हाई जन्हु धाई धार सहस सु—
धाई सोभा सिंधु नभ सुभ्रगिरिबरते।
उमड्यो परत जोति मंडल अखंड सुधा—
मंडल मही में बिधु मंडल बिचरते ॥६२॥

टीका—उमड्यो कहै बरसो है जोति सुधामंडल चन्द्रमा ते ॥६२॥

कवलीकर = अन्धकार को निगलता हुआ। धवलीकर = सफेद करता हुआ। अंबुध = समुद्र। अमित = असीम। मुदित = प्रसन्न। अमुदित = अप्रसन्न। समुदित = उदय ॥६०॥

सुरचाप = इन्द्रधनुष। पयोधर = मेघ। रस = जल। जीवन = जल। कुंभयोनि = अगस्त्य। बिरधि = वृद्ध। सेत = श्वेत ॥६१॥

पुहुमि = पृथ्वी। पगार = परकोटा। अगार = घर। बिबर = बिल। पारावार = समुद्र। पारद = पारा। सूर = सूर्य। सुधाई = अमृतमय। बिधु = चन्द्र ॥६२॥

स०—सेत पहार अगार भए अपनी जनु पारद भा पर वारी।
होत ही इंदु उदोत लसै चहुँ वोर मे सोर चकोर के भारी॥
फूली कुमोद कली निकली अवली अलि की बलि मैं निरधारी।
कोपि कै चंद तियान के मान पै आजु मियान ते तेग निकारी॥६३॥

॥ इति सरद ऋतु वर्णन समाप्तः॥

टीका—तिय के मान पै चन्द्र कोपि कै तरवारि काढ़ी है॥६३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

हेमन्त ऋतु वर्णन

दण्डक-मंद तमहर के किरिनि ते अहर लघु,
द्रौपदी दुकूल सो बढ़न लागी राति है।
पानी की कहानी कहे काँपि उठै काय 'बृज'
जोग भोग वारे सेवैं पौनप्यारी ख्याति है॥
सीत ते सभीत जग देखो अचरज यह,
पजरै प्रबल उर आगि अधिकाति है।
प्रान करै अंत क्रूर काल बिना अंत रितु,
होय न हिमंत किरतंत की जमाति है॥६४॥

टीका—तमहर सूर्य पौन प्यारी अगिनि किरतंत यमराज॥६४॥

कवि—गोविन्द

दाबे चारों कोर राजै नूपुर निसान बाजै,
छाजै छबि कर कुच भट भिरबो करै।
सिंहासन सेज सोहै सीस सीसफूल छत्र,
अलख अनोखे चारु चौंर ढरिबो करै॥

अगार=घर। पारदभा=पारेकी शोभा। वारी=न्यौछावर। उद्योत=प्रकाश। कुमोद=कुमुद (कमलकी एक जाति विशेष) तेग=तलवार॥६३॥

तमहर=सूर्य। अहर=दिन। दुकूल=वस्त्र। पौनप्यारी=अग्नि। पजरै=जलती है। किरतंत=कृतान्त, यम। जमाति=सेना॥६४॥

मैन मंत्र मंत्री देत भावन बढ़त भूरि,
बंदीजन भूषन बिरद ररिबो करै ।
हिमि की हिमाई सुखदाई सी 'गोविंद' दोऊ,
एक ही रजाई सुदजाई करिबो करै ॥६५॥

टीका—एक ही रजाई कहै राजी दोनों मुद से रहे हैं ॥६५॥

कवि—देव

कंपत हियोन हियो कंपत हिए क्यों हँसी,
तुमैसी अनोखी नेक सीस मे ससन देहु ।
अम्बर हरैया हरि अम्बर उज्यारो होत,
हेरि कै हँसौ न कोई हँसै तो हँसन देहु ॥
'देव' दुति देखिबे को लोयनिमै लागी रहै,
लौयन मैं लाज लागै लोइन लसन देहु ।
हमरो बसन देहु देखत हमारो कान्ह,
अबहूँ बसन देहु ब्रज मै बसन देहु ॥६६॥

टीका—हमरो बसन कहै वस्त्र देहु बृज में बसन कहै बसै देहु बसन कहै बस नाहीं ॥६६॥

कवि—राम

परत तुसार भार काँपै हिय हार हार,
रजनी पहार दिन आगि जैसे फूस की ।
द्वार द्वार परदे परे हैं भरे तूलन के,
भीतर सँवारि धरे पलंग जलूस की ॥
'राम कवि' कहत हनत सीत अब तब,
आवरे सुजान तेरी छाती आबनूस की ।
जैसे तैसे कान्ह खट मास लौं बितीत करयौ,
निपटि जवाल भई काल रैनि पूस की ॥६७॥

टीका—तूलनाम रूई आबनूस काष्ठ विशेष ॥६७॥

कोर = कोने । छबिकर = शोभायुक्त । भट = योद्धा । अलख = अदृश्य । चौंर = चँवर । मैनमंत्र = कामकला । भावन = वासना । बिरद = उपाधि । ररिबो = रटा । हिमाई = शीतलता । मुदजाई = आनन्द ॥६५॥

हियोन = हेमन्त । अम्बर हरैया = वस्त्र हरनेवाला । लोयनिमैं = लावण्यमय । लोयनमें = आँखोंमें । लोइन = वस्त्रों । बसन = वस्त्र, रहना ॥६६॥

कवि—बीठल

परत तुसार झार उठत अपार भार,
द्वार भो पहार पूस आँगन सुहात है।
बीछी कैसे छौना भरे मानहुँ बिछौना माँझ,
दिस हू बिदिसि लागे घेरे घर घात है।
'बीठल' सुहित अति गति मति भूलि जात,
चातिक करात जब बोलै आधी राति है।
बिरह ते रही राति पिय बिन रही राति,
आवै नियराति तिय जाति पियराति है ॥६८॥

टीका—राति नियराति आवति तिय पियराति आवै है ॥६८॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

दण्डक-द्योस मै दिवाकर के कर हिमकर कर,
निकर निवास हिमि गिरि ते हिमंत की।
'गोकुल' बिलोकि पेट सिमिटि कै पीठि होत,
पानी कहे काँपि उठै काया बलवंत की॥
खचर सचर भूमिचर के सताइबे को,
काम दूत पौन बहै दूती राति तंत की।
दोहर उरोज में गरम को दुरावै रोज,
दोहर ह्वै दोऊ देह कामिनी औ कंत की ॥६९॥

टीका—दोहर उरोज अर्थ दोहर कहै दो महादेव में गरम को छपावै रोज दोहर ह्वै दोऊ देह कहै दोहर नाम गिलेफ को है तैसे नायिकानायक के देह एक में ऐसे मिलि रहे हैं ॥६९॥

हियहार=मनोहर। पहार=बड़ी भारी। तूल=रूई। आबनूस=एक काली ठोस लकड़ी। जबाल=झंझट, भार रूप। रैनि=रात्रि ॥६७॥

बीछीं=बिच्छू। छौना=बच्चे। करात=कराहता हुआ। नियराति=निकट आती है। पियराति=पीली पड़ जाती है ॥६८॥

द्योस=दिन। दिवाकर=सूर्य। हिमकर=चन्द्रमा। करनिकर=किरण-समूह। सिमिटि=सिकुड़ कर। खचर=पक्षी। सचर=जंगम। भूमिचर=पृथ्वीचर=पृथ्वी के प्राणी। दोहर=दोहरे, दोनों के। उरोज=स्तन ॥६९॥

कवि—पद्माकर

अगर की धूप मृग मद की सुगन्ध बर,
बसन बिसाल जाल अंग ढकियतु है ।
कहै 'पदमाकर' सुपौन को न गौन जहाँ,
ऐसे भौन उमँगि उमंगि छकियतु है ॥
भोग औ सँजोग हित सु ऋतु हिमंत ही मैं,
एते और सुखद सुहाये बकियतु है ।
तान की तरंग तरुनापन तरनि तेज,
तेल तूल तरुनी तमाल तकियतु है ॥७०॥

॥ इति हेमन्त ऋतु वर्णन समाप्तः ॥

टीका—तान तरुनापन तेज सूर्य तेल तूल रुई तरुनी तमोल सुख दायक है हिमंत में ॥७०॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

शिशिर ऋतु वर्णन

दंडक—आई लैन डोरी पाँच पंचमी बसंत जग,
बदली बयारि रीति बैरी बलिवंत की ।
'गोकुल' प्रबल बल हिमि हिमि कर खल,
सहमि अबल होन लागे गति अंत की ॥
दिन लागे बढ़न बिपल पल मित्रकर,
अबिनै घटन लागी रजनी हिमंत की ।
सिसिर के सीत भीत सीसर लगन लागे,
आगमन जानि आगे नृपति बसंत की ॥७१॥

टीका—यह बसंत की लैन डोरी होइ काम नृपति की आई ताहि देखि बैरी बलवंत बयारि की रीति बदली, मित्रकर सूर्य के कर कहै किरिनि बढै लगी, मित्र कहै हित के कर कहै हाथ बढै लागे अबिनै राति की अधिकाई घटन लागी, सीसर कहै सीत कम लागन लागे ॥७१॥

अगर = सुगन्धी द्रव्यविशेष । मृगमद = कस्तूरी । बसन = वस्त्र । सुपौन = हवा । गौन = गमन, प्रवेश । छकियत = खेले जाते हैं । तरुनापन = यौवन । तरनि तेज = सूर्य की धूप । तूल = रुई । तमाल = तम्बाकू ॥७०॥

हिमि = हिम, तुषार । हिमिकर = चन्द्रमा । सहमि = काँपते हुए । मित्रकर = सूर्य किरण ॥७१॥

कवि—सेनापति

अब आयो माह प्यारो लागत है नाह,
रवि करत न दाह जैसे अवरेखियतु है ।
जानि जो न जात बात कहत बिलात दिन,
छिन सो न तातो तन को विसेषियतु है ॥
कलप सी राति सौ तो क्यौंहू न सिराति सोये,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियतु है ।
'सेनापति' मेरे जान दिन हू में राति होति,
दिन मेरे जान सपने में देखियतु है ॥७२॥

टीका—दिन की छोटाई अति बरनो है ॥७२॥

धायो हिम दल हिम भूधर ते 'सेनापति',
अंग अंग पर परजंगम विरत है ।
पैये न बताई भागि गई है तताई सीत,
आयो आततांई छिति अंबर घिरत है ॥
करतु है जारी भेष करि कै उज्यारी ही को,
घाम बार बार बेरि बेरि सुमिरत है ।
उत्तर में भागि सूर ससि को सरूप करि,
दच्छिन के छोर छिन अधिक फिरत है ॥७३॥

टीका—उत्तर दिशि में सूर्य शशि को रूप धारन कियो ॥७३॥

कवि—कालिदास

बाग के बगर अनुराग भरी खेलै फागु,
बाल अलबेली मनमोहनी गुपाल की ।
'कालिदास' ललित ललो है छबि छलकत,
नथ मुकतान के कपोलन के भाल की ॥

माह=माघ । नाह=नाथ, स्वामी । अवरेखियतु है=देखा जा सकता है । बिलात=समाप्त होता है । तातो=गरम । कलप=कल्प । सिराति=समाप्त होती ॥७२॥

हिमिदल=बरफ का समूह । तताई=गर्मी । आततांई=दुष्ट । जारी=ठंढा, जाड़ा । उज्यारी=सफेदी । घामबार बार=गर्मी के दिन, धूपवाला दिन । सूर=सूर्य ॥७३॥

राज करो चंद अरविंद ते न काज आज,
देखिबे को बाँकी छबि बदन रसाल की ।
बरुनी पलक पर भृकुटी तिलक पर,
बिथुरी अलक पर झलक गुलाल की ॥७४॥

टीका—होरी बरनन ॥७४॥

कवि—हिरदेस

चंदन चहल चित्र महल 'हृदेस' मोहे,
रसन तिवान सो प्रमोद सखियान में ।
खूब खस फरस फुहार फुही फैलि रही,
भरे अति सीतल समीर छतियान में ॥
गोरे गात सोहैं गरे गजरा चमेलिन के,
गहे बर सुघर सहेली अतिसान में ।
गोद लै उरोज कर परस गुलाब आब,
छिरकत लाड़िलो लली के अँखियान में ॥७५॥

टीका—गोद में लैके गुलाब छिरके ॥७५॥

बसन बगीचे सींचे केसर उलीचे कीचे,
अतर सुगंधन के परस फुहारे हैं ।
राजत 'हृदेश' फागु मस्त मन मोहन पै,
उड़त गुलाब जनु जलधर भारे हैं ॥
बाल भाल मोतिन की माल पै गुलाल धूरि,
भासत रसाल छबिजाल चटकारे हैं ।
मानो पंचबान के सिंगारे रूप कारे भारे,
तारे आसमान में गुलाबी रंग धारे हैं ॥७६॥

॥ इति श्रीदिग्विजय भूषणे ऋतुवर्णनं नाम षोडशः प्रकाशः ॥

टीका—पंचबाण काम के रूप धारे हैं ॥७६॥

बगर = महल । ललो हैं = लाली लिये हुए । नथमुकता = नासिका की बाली के मोती । बाँकी = मनोहर । रसाल = रसभरे । बरुनी = बरौनी । बिथुरी = बिखरी हुई, खुली हुई । चंदनचहल = चंदन की कीच । चित्रमहल = रंग भवन ॥७४॥

खस = उशीर । फरस = फर्श । फुही = पानी की महीन बूँदें । गर = गले में । गजरा = हार । गुलाब आब = गुलाबजल ॥७५॥

उलीचे = गिराये हुए । कीचे = कीचड़ । छबिजाल = छवि के समूह । चटकारे = चमकीले । पंचबान = कामदेव ॥७६॥

नायिका वर्णन

दो०—अलंकार को कहत हैं, भूषन अंग बिहार।
तातें नायक नायिका, बरनन कियो विचार ॥१॥

कवि—मतिराम

उपजत जाहि बिलोकि कै, चित्त बीच रति भाव।
ताहि बखानत नायिका[1], जे प्रबीन कबिराव ॥२॥

कबि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

कुंभ कुसुंभ ढरैं मगमें पग मंजु धरैं बिहरैं गजगामिनि।
जात उनै उनै केहरि लंक मयंकमुखी तन दीपति दामिनि॥
आँखिन में अलसौनि चितौनि हितौनि की हाँस है जोन्हकी जामिनि।
जाहि बिलोकि रहे हरि रीझिके होयगी ऐसी न कामकी कामिनि ॥३॥
टीका—जाको देखि हरि रीझि रहे ॥३॥

स्वकीया[2]—

चौ०—जो निज प्रेम लाज जुत होई। स्व किया ताहि कहैं कबि सोई ॥४॥

१—जिसके दर्शनमात्र से नायक के हृदय में रति का प्रादुर्भाव होता है उसे नायिका कहते हैं। वह मुख्यत: तीन प्रकार की होती हैं—(१) स्वकीया, (२) परकीया और (३) सामान्या (वेश्यादि)।

२—शास्त्र एवं परम्परानुसार विवाहिता अपनी पत्नी 'स्वकीया' नायिका कहलाती है और उसमें उत्पन्न रति भावको ही ग्रन्थकारों ने उत्तम रति माना है, साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण यों किया है—

"विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मकरा पतिव्रता स्वीया।"

(सा० द० ३।५७)

कुंभकुसुंभ = कुसुंभी रंग के घड़े। उनै उनै = झुक झुक। केहरिलंक = सिंह की सी (पतली) कटि। मयंकमुखी = चंद्रबदनी। दीपति = चमक रही है। अलसौनि = आलस्य का भाव। चितौनि = दृष्टि। हितौनि = हितकारिणी, प्रेयसी। जोन्ह की जामिनि = चाँदनी रात। काम की कामिनि = रति ॥३॥

सौति सरमात हरषात गुरजन गेह,
लखि सुख सात सखी सुन्दरी सिहात हैं ।
निकर निकाई की निकास ते प्रकास होत,
आस पास आभा अभिराम दरसात हैं ॥
'गोकुल' बिलोकि वृषभान की कुमारि भाव,
भानु कैसे भाव सब भाँति ठहरात हैं ।
चंद दुति मंद ज्यौं अनन्द चकईके वृन्द,
आभा अरविंद ज्यौं उलूक त्यौं लुकात हैं ॥५॥

टीका—भान कैसो भाव चंद सम सौति चकई सम गुरुजन अनंद सखी अरविंद को सुख यथासंख्य ते स्वकीया ॥५॥

कवि—देव

सौतिन के महा दुख सखिन के सुख सने,
होत गुरजन के गुन को गरूर हैं ।
'देव' कहैं लाख भाँति भाँति अभिलाष पूरि,
पति उर उमगत प्रेम रस पूर हैं ॥
तेरो कल बोल कला भामिनि हैं स्वाती बुंद,
जहाँ जाइ परैं तहाँ तैसई सपूर हैं ।
ब्याल मुख बिष ज्यौं पियूष ज्यौं पपीहा मुख,
सीपी मुख मोती मुख कदली कपूर हैं ॥६॥

टीका—व्यालके मुखमें विष पपीहा के मुखमें अमृत और सीपी मुख मोती औ केदली में कपूर स्वातिबुंद एते थल परे ते यह उत्पन्न होत तैसे तेरे बचन है ॥६॥

निकर = समूह । निकाई = सुन्दरता । निकास = खुलना, निकलना । अभिराम = मनोहर । वृषभानु की कुमारि = राधा । भाव = चेष्टाएँ ॥५॥

उमगत = उमड़ता है । रसपूर = रस का समुद्र । कल बोल कला = मधुर बोलने की कला । ब्याल = सर्प । पियूष = अमृत ॥६॥

दोहा—स्वकिया में है चारि विधि, मुग्धादिक के भाव।
ज्ञात अज्ञात बिश्रब्ध अरु, कहौ नवोढ़ सुभाव ॥७॥

टीका—स्वकीया में चारिभेद ज्ञात जोबना, अज्ञात जोबना, विश्रब्ध-नवोढा, नवोढा ॥७॥

नहिं जानै अज्ञात है, जानै जोबन ज्ञात।
चाह न चाह बिस्रब्धकहि, डरि नवोढ़ सकुचात ॥८॥

टीका—ना जाने अपने तरुनाई को अज्ञात, जानै ज्ञात इत्यादि ॥८॥

कवि—देव

सवैया—भारी भरो विवि भौंहन रूप सुआरु दुहू लचि छोरन डोलै।
नीको चुनी को लिलाट में टीको सुखैंचि खेलार खरे गुन खोलै॥
बालपनो तरुनापन बाल को 'देव' बराबरि के बल बोलै।
दोऊ जवाहिर जौं हरी मैन ज्यौं नैन पलान पला धरि तोलै ॥९॥
टीका—नैन के पलरा में तोलै है ॥९॥
अवलोकन में पलकौ न लगै पल को अवलोके बिना पलकै।
पति के परि पूरन प्रेम पगी मन और सुभाय लगे ललकै॥
तिय की बिहँसी ही बिलोकनि मैं मन आँखिन आनन्द यौं छलकै।
रसवन्त कवित्तन को रस ज्यौं अखरान के ऊपर ह्वै झलकै ॥१०॥

२—स्वीया के तीन भेद हैं—(१) मुग्धा, (२) मध्या और (३) प्रौढ़ा। प्रथमा (मुग्धा) को ग्रन्थकारने चार प्रकार की माना है—(१) ज्ञात यौवना। (२) अज्ञात यौवना। (३) विश्रब्ध नवोढ़ा और (४) नवोढ़ा।

यहाँ पर विचारणीय है कि आकर ग्रंथों में मध्या एवं प्रौढ़ाकी तरह मुग्धा के भेद नहीं माने गये हैं केवल वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतौवामा और मृदुःक्रोधे ये चार स्वरूप मुग्धताके माने गये हैं। भानुदत्त की 'रस मंजरी'के आधार पर प्रकृत ग्रन्थकारने जिनका उक्तरूपमें रूपान्तर कर दिया है। अत्यन्त लज्जादिसे अनुराग का संवरण आदि और भी भावविभेद इसके कुछ लोगों ने माने हैं।

विविभौंहन = दोनों भौंहों में। सुआरु = सुचारु, अत्यन्त सुन्दर। दोऊ = दोनों (बाल्य और यौवन)। जवाहिर = रत्न। मैन = कामदेव। पलानपला = पलक रूप तराजू ॥९॥

पलक = आँखोंके पचम। पल = क्षण। पगी = सनी हुई। सुभाव = स्वभाव। ललकै = ललचाते हैं। अखरान = अक्षरों के ॥१०॥

टीका—जैसे रसवंत कवित्त के भाव अच्छर में झलकै हैं तैसे नायिका के अंग में ॥१०॥

कवि—चतुर्भुज

कबहूँ सुचि दीपकली सी लगै कबहूँ वर चंपक माल नवीनी ।
भौंहन में सब सौंह करै पुनि नैनन खंजन की छबि छीनी ॥
बोठ निछावर विद्रुम है री 'चतुर्भुज' या उपमा लखि लीनी ।
केसर की रुचि कंचन रंग सिंगार के रूप की मंजरी कीनी ॥११॥

टीका—सिंगार के रूप की मंजरी नाम और है ॥११॥

कवि—पद्माकर

(ज्ञात यौवना[1])

सवैया—चौक में चौकी जराय धरी तेहि पै खरी बाल बगार के सोंधे ।
छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान्ह को अँगन ते जगे जोति के कौंधे ॥
छाई उरोजन की छबि यौं 'पदुमाकर' देखत ही चकचौंधे ।
भागि गई लरिकाई मनो करि कंचन के दुइ दुन्दुभी औंधे ॥१२॥

टीका—कंचन के दुंदुभी नाम उलटे नगारे दोय ॥१२॥

कवि—दास

(अज्ञात यौवना[2])

सखी तैं हूँ हुती निसि देखत ही जिन पै वे भई निवछावरियाँ ।
जिन्ह पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाइ उठीं भुज छावरियाँ ॥

१—जो अपने यौवन के आगमन को समझ लेती है, वह ज्ञात यौवना है यही काममुग्धा है क्योंकि अपनी युवावस्था का ज्ञान तो इसे हो जाता है किन्तु रतिकला में अनभिज्ञ है ।

२—जो यौवन के आगमन को नहीं समझ पाती वह अज्ञात यौवना कहलाती है, यह वयोमुग्धा है जिसे अपने यौवनोद्गम का ही ज्ञान नहीं रतिकला तो दूर की बात है ।

सुचि=स्वच्छ । दीपकली=दीपक की लौ । सौंह=इशारे, शपथ । बोठ=ओठ ॥११॥

चौक=आँगन । जराय=जड़ाऊ । न्हान=नहाने को । औंधे=उलटे, नीचे को मुख किये ॥१२॥

अँसुवा भरि आवत मेरे अजौं सुमिरे उनकी पग पाँवरियाँ।
कहि को हैं हमारे वै कौन लगैं जिनके सँग खेलि हैं भाँवरियाँ ॥१३॥

टीका—जिनके संग भाँवरी घूमी हैं वै हमारे कौन लागै यह बात मुगधई को है ॥१३॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

चित चौंकि चकी मति मेरी ठगी लखि आजु अचंभव एक अली।
यक संग मैं भूरि भुवंगम भीर चढ़ी धनु ह्वै सब भाँति भली॥
'बृज' राजै तहाँ जुग मीन मनोहर कीर कला फल बिंब बली।
अलि आरसी मैं अवलोकि अबै अरबिंद में फूली है कुंद कली॥१४॥

टीका—चित चौंकी मति मेरी ठगी गई, यह नायिका सखी ते कहती है, कि मैं आज आरसी में यह देखो याते भ्रम भयो ताते अज्ञातयौवना, अपने प्रतिबिंब अंगन को नहीं जान्यों ॥१४॥

कवि—लाल

(ज्ञात यौवना)

दण्डक-आली अलबेली संग आपसी सहेली लीन्हे
राजति नवेली रूप बेली सी लुनाई सों।
उरज दुरावै तानि आँगी तनी बार बार
गोवै रोम राजी चारु चित चतुराई सों॥
चलि बलि देखो अति आनँद उरेखो उर,
राँची तिय प्राची सी तरुनि तरुनाई सों।
लाल रंग अधर गुलाब रंग अंग भए,
कौल की सी पाँखैं भई आँखैं अरुनाई सों॥१५॥

टीका—कौल की पंखुरी ऐसी अरुनाई आँखि में भई ॥१५॥

पानि=हाथ। बृज बावरियाँ=बृज की लड़कियाँ। पाँवरियाँ=जूतियाँ। भाँवरियाँ=विवाह की परिक्रमाएँ ॥१३॥

चकी=चकित-सी। अचंभव=आश्चर्य। भुवंगम=सर्प ॥१४॥

आपसी=अपने सदृश। रूपबेली=रूप की लता। लुनाई=सुन्दरता। उरज=स्तन। आँगीतनी=चोली के बन्द। गोवै=छिपाती है। रोमराजी=रोमावली। बलि=प्रियसखि। उरेखो=मानो। राँची=रची है। प्राची सी=पूर्व दिशा सी। तरुनाई=यौवन। कौल=कमल। पाँखें=पंखुड़ियाँ। अरुनाई=लालिमा ॥१५॥

कवि—दास

(विस्रब्ध नवोढ़ा[1])

सवैया—हौं तो कह्यो कछु बातैं करैगो प्रवीन बड़े बलदेव के भैया।
पैशुन जानती तौ यह सेज हौं भूलि न सोवती बीर दुहैया॥
'दास' हतै पर फेरि बुलावत यौं अब आवत मेरी बलैया।
आवौं तौ जौ तौ कहौ करि सौंह की आजु करैंगे न कालिह की नैया।१६।

टीका—आज तो वैसो न करि है, जस कालि कियो है, कछु चाह कछु अनचाह भयो याते विश्रब्ध नवोढ़ा ॥१६॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

सुठि सूधे सुभाव सुहाय प्रभाउ कसो उर जात सरोज कली।
छबि छाय रही उलही दुलही केहि भाँति कही 'बृज' रूपरली।
निसि चोरमिहीचनि खेलत मैं बृजचंद मिलापकी बात चली।
अरबिंद से आनन मंद भयो तन काँपत दीपसिखा से अली[2] १७॥

टीका—खेलत मैं बृजचंद के मिलन की बात कहि चरचा चली, अरबिंद से मुख मंद भयो, क्योंकि बृजचंद के सुनते ही तन दीपसिखा से कंपमान क्योंकि बात नाम बयारि, ताते नवोढ़ा ॥१७॥

१—विश्रब्ध नवोढ़ा वह नायिका है जिसे यौवनोद्गम एवं रतिकला का अनुभव तो हो जाता है किन्तु संकोच या भय के कारण उससे अनिच्छा प्रकट करती है, यही "रतौ वामा" है।

२—यह नवोढ़ा का उदाहरण है नवोढ़ा वह नायिका है जिसे प्रथमतः रति का अनुभव होता है।

इस प्रकार 'स्वकीया मुग्धा' के ४ स्वरूप हुए।

प्रवीन = चतुर। पैशुन = अवगुण, बुराई। दुहैया = अहीर। सौंह = शपथ। नैया = तरह ॥१६॥

सुठि = सुन्दर। सूधे = सीधे। उरजात = स्तन। सरोजकली = कमल का गोफा। उलही = उमड़ती। दुलही = दुलहिन। चोरमिहीचनी = आँखमिचौनी ॥१७॥

(मध्या)

जाके लाज मनोज समान। मध्या[1] ताहि कहैं मतिमान १८॥

कवि—ऋषिनाथ

खेलन को बन कुंजन में सुनि मंजु सखीन के संग गई।
सामुहें भेंट भयो 'रिषिनाथ' लखे मन मोहन प्रेममई॥
छोड़ी न लाज छपाय कै अंचल घूँघट ओट पिछोड़ी भई।
मींजत हाथ हिये पछितात सुपीठि में दीठि दई न दई॥१९॥

टीका—कामते पिछोड़ी भई लाजते कहत पीठि में आँख न भई॥१९॥

कवि—बृजचन्द

ललना लजीली उर कामहूँ ते कीली नीली
सारी में लसै ज्यौं घटा कारी बिच दामिनी।
कहैं 'बृजचन्द' हुती संग मैं सहेलिन के,
हेरत हँसत बतरात हंस गामिनी॥
तौलौं तहाँ गेह में सनेह भरो आयो नाह,
बैठि गयो ताको लखि बैठि गई भामिनी।
कंत हेरे सामुहे तौ अन्त हेरै इंदु मुखी,
अन्त हेरै कंत तौ न अन्त हेरै कामिनी॥२०॥

टीका—कंत सन्मुख ताकै तौ वह अनत॥२०॥

---

१. मध्या वह नायिका है, जिसमें लज्जा एवं (काम) भावना ये दोनों समान रूप से हों। यह तीन प्रकार की होती है—(१) धीरा (२) अधीरा (३) धीराधीरा, जैसा कि आगे उदाहरणों में स्पष्ट किया गया है। दर्पणकार ने इसका लक्षण यों दिया है—

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढ़स्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता॥" (सा० द० ३।५९)

सामुहें=सामने। प्रेममई=स्नेहभरी (दृष्टि से)। वोट=ओट, आड़। पिछोड़ी भई=पीछे को लौट गई। दीठि=दृष्टि। दई न दई=दैव ने नहीं दी॥१९॥

कीली=भरी हुई। दामिनी=बिजली। बतरात=बातचीत करती। नाह=स्वामी, नाथ। सामुहे=सामने। अन्त=अन्यत्र। न अन्त= न अन्यत्र अर्थात् सामने॥२०॥

(प्रौढ़ा)

रति अति प्रीति जाहि चित होई। प्रौढ़ा ताहि कहत सब कोई ॥२१॥

कवि—दास

दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।
'दास' न कौंलकली बिकसी निजु मेरी गई मिलि आँगुरिया है॥
सीरी लगै मुकुतावलि तेउ कपूर की धूरि नसी पुरिया है।
पौढ़े रहो पट वोढ़े लला निसि बोलै नहीं चिरिया चुरिया है॥२२॥

टीका—यह चिरिया नाहीं बोलै है मेरी चुरिया की खनक, भोर को छिपावै ताते प्रौढ़ा ॥२२॥

कवि—नेवाज

छतिया छतिया सों लगाये दोऊ दोऊ जी में दुहूँके समाने रहे।
गई बीति निसा पै निसा न भई नए नेह में दोऊ बिकाने रहे॥
पट खोलैं 'नेवाज' न भोर भए लखि द्यौस को दोऊ सकाने रहे।
उठि जैबे को दोऊ डेराने रहे लपटाने रहे पट ताने रहे॥२३॥

टीका—उठि जावै को डर दूनों के मनमें है ॥२३॥

(धीरादि)

मान समै मध्या त्रिविध, प्रौढ़ा हू त्रै भाँति।
धीरा बहुरि अधीर गनि, धीरा धीरा जाति ॥२४॥

१—प्रौढ़ा वह नायिका है जो कामकला में निपुण हो और नायक पर अत्यन्त अनुरक्त हुई सर्वदा रति की चाह करती हो। यह रतिकला में इतनी अभ्यस्त हो जाती है कि नायक को आक्रान्त कर लेती है अर्थात् उससे जो चाहे सो करवा सकती है। दर्पणकार ने इसका लक्षण यों किया है—

"स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरत कोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका॥" (सा० द० ६०)

यह तीन प्रकार की होती है—(१) धीरा (२) अधीरा (३) धीराधीरा।

आतुरिया = अधिकता। कौंल कली = कमल का गोफ। निजु = निश्चय ही। सीरी = ठंढी। पुरिया = सनी हुई। पौढ़े रहो = सोये रहो। चिरिया = पक्षी। चुरिया = चूड़ियाँ ॥२२॥

समाने रहे = घुसे रहे। निसा = रात्रि। द्यौस = दिन। सकाने = हिचकते ॥२३॥

(मध्याधीरा[1])

कोप जनावै व्यंग बचन कहि ॥२५॥

कवि—हरिजन

दण्डक-मेरे नैन अंजन तिहारे अधरन पर,
शोभा देखि गुमर बढ़ायो सब सखियाँ।
मेरे अधरन पै ललाई पीक लाल तैसे,
रावरो कपोल गोल नोखी लीक लखियाँ ॥
कवि 'हरिजन' मेरे उर गुन माल तेरे,
बिनु गुन माल रेख सेख देख भँखियाँ।
देखौ लै मुकुर दुति कौन की अधिक लाल,
मेरी लाल चूनरी तिहारी लाल अँखियाँ ॥२६॥

टीका—मुकुर लेकर देखो अर्थ यह जैसी तुमारी आँखि लाल है ॥२६॥

(मध्या धीराधीरा[2])

धीर बचन कहि कै तिय रोवै ॥२७॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सवैया-जैसे मिले बृषभान कुमारि मुरारि निहारि गहे कर तैसे।
तैसे तहाँ तिल फूलन ते बगराइ बयारि दवानल कैसे ॥
कैसे भयो हरि हेरि कहो 'बृज' बोली हरे मुख चातिक ऐसे।
ऐसे ढरे अरबिंदन ते मकरंद घने घनबुंदन जैसे ॥२८॥

१—जो अपराधी (परकीयादि संसर्गरत) पति के प्रति अपने क्रोध को परिहास पूर्वक व्यङ्ग्य वचनोंसे व्यक्त करती है वह 'मध्या धीरा' नायिका है अर्थात् केवल व्यङ्ग्योक्तियों द्वारा उसके अपराध को जताकर धैर्य धारण कर लेती है।

२—'मध्याधीराधीरा' वह नायिका है जिसके वचनों से तो क्रोध व्यक्त नहीं होता किन्तु रोने आदिसे प्रकट हो जाता है।

नैन = नेत्र। गुमर = गर्व, अभिमान। नोखी = अद्भुत। लखियाँ = दिखती हैं। गुनमाल = गुणों की पंक्ति, सूतमें गुँथी माला। बिनुगुन माल = अवगुण, बिना सूत की माला। रेख = रेखा। मुकुर = दर्पण ॥२६॥

वृषभान कुमारि = राधा। मुरारि = कृष्ण। बगराइ = फैलाकर। अरबिंदन = कमलों से। मकरंद = पराग। घनबुंद = वर्षा की बूंदें ॥२८॥

टीका—तैसे तिलफूल जो नाक ताते ऊभी साँस कढ़ी तब हरि यह कहीं कि काह भयो तब बोली चातिक ऐसे पी कहाँ रहे यह कहते ही अरविंद ऐसे नेत्र ते आँसू गिरे ताते मध्या धीराधीरा ॥२८॥

(मध्या अधीरा[1])

करै अनादर पति को रिसि करि ॥२९॥

कवि—मीरन

नैन रँगे सब सैन जगे ते लखे ते लगे मन को ललचावन।
मेरियौ रीझ किधौं पिय प्यारे को रूप खरो लगे रीझि रिझावन॥
'मीरन' आज की आवन ऊपर भावन ह्वै करिए कर पावन।
आए कहूँ अनतै बसिकै मनभावन लागे तऊ मन भावन॥३०॥

टीका—अनतै बसिके आए तऊ मन भावत ॥३०॥

(प्रौढ़ा धीरा)

वर उदास रति ते करि आदर। प्रौढा धीरा[2] मानत सादर ॥३१॥

दो०—हाव भाव आदर अदब, मुख सुषमा करि चंद।
आवत ही ब्रज चंद के, तनी तनी के बंद ॥३२॥

टीका—ब्रजचंद को आवत देखि तनी के बन्द तनी कहै कसि बाँधी रति ते रूखी ताते प्रौढा धीरा ॥३२॥

(प्रौढ़ा अधीरा)

तरजन ताड़न फूल से मारै। प्रौढ़[3] अधीरा कवि सुविचारै ॥३३॥

१—'मध्या अधीरा' वह नायिका है जो नायक की इस प्रवृत्ति को नहीं सह सकती और परुषोक्तियों द्वारा अपने क्रोध को व्यक्त कर देती है।

२—'प्रौढा धीरा' वह नायिका है जो अपराधी पति के दिखाऊ आदर-सूचक कार्यों में व्यस्त रह कर रति में उदासीन-सी रहती है।

३—'प्रौढ़ा अधीरा' वह नायिका है। जो अपने कोपको छिपा नहीं सकती और नायक को सुरतादि में पादप्रहारादि से खूब ताड़ित एवं तर्जित करती है।

सैन = संकेत। रीझ = अनुराग। भावन = भावना। पावन = पवित्र। अनतै = अन्यत्र। मनभावन = प्रियतम (नायक)। मनभावन = मनोहर ॥३०॥

हावभाव = काम जनित चेष्टाएँ और विकार। अदब = लज्जा। ब्रजचन्द = श्रीकृष्ण। तनी = कस गये। तनी के = अंगिया के। बन्द = ताने ॥३२॥

कवि—देव

पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं सुभले भुज खोजन की।
छाइ रही छबि छैल की छाती में छाय है छोट उरोजन की॥
ताहि चितै कै तबै अँखियाँ तिरछी चितई अति ओजन की।
लाल की ओर बिलोकि कै बाल सुखैंचि सनाल सरोजनकी ॥३४॥

टीका—सनाल कमल खैंचि मारिबे को प्रौढ़ा अधीरा ॥३४॥

(प्रौढ़ा अधीरा धीरा)

रति ते रूखी डर देखरावै। प्रौढ़ अधीरा[1] धीरा गावै ॥३५॥

दो०—बाल लखे नँद लाल को, लाल नयन खरदंड।
नैन तिरीछन बान मनु, भौहैं चढ़ी कोदंड ॥३६॥
टीका—नैन बान भौंहैं कोदण्ड कहै धनु ऐसी चढ़ी ॥३६॥

(जेष्ठा कनिष्ठा)

प्रथम पियारी बहु घट प्यारी। जेष्ठ[2] कनिष्ठा कह्यो बिचारी ॥३७॥

१—'प्रौढ़ाऽधीराधीरा' वह नायिका है जो उत्क्रोश पूर्वक कही गई उक्तियों द्वारा अपराधी नायक को खिन्न कर देती है और रति के प्रति रूक्ष बन जाती है।

२—'स्वकीया' नायिका के, 'मुग्धा' भेद को छोड़कर शेष 'मध्या' और 'प्रौढ़ा' प्रत्येक 'धीरा, अधीरा, धीराधीरा', भेद से छः प्रकार हुए, ये छहों भेद भी प्रत्येक (१) ज्येष्ठा और (२) कनिष्ठा नाम से दो दो प्रकार के होते हैं ज्येष्ठा = उत्तम, कनिष्ठा = साधारण। यह नायिका के स्वभावपर निर्भर करता है। यदि वह उत्तम स्वभाव की हुई तो उसके इस कोप में भी उत्तमता रहेगी अर्थात् शिष्टतापूर्वक कोपप्रदर्शन होगा यदि स्वभाव में अधमता हुई तो कोपप्रदर्शन में भी अशिष्टता रहेगी।

इस प्रकार मुग्धा ४, मध्या ६ और प्रौढ़ा ६, सब मिलाकर 'स्वकीया' नायिका के १६ भेद हुए।

पीक = पानका थूक। अलकैं = केश। छैल = चतुर (नायक)। छोट = छोटे। उरोज = स्तन। चितई = देखी ॥३४॥

कोदंड = धनुष। तिरीछन = तीक्ष्ण, टेढ़े ॥३६॥

कबि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

परसे न कहे बनि आवै कछू अवलोकि प्रिया परभा बरसो।
बरसो घन ता समै घेरि घटा यह देखो छटा ललिता दरसो।
दरसो है त्रिलोचन पाछे परे मुख आछे बिलोकि छपा करसो।
करसो बृषभान कुमारि मुरारि सबै अंग हेरि हरे परसो ॥३८॥

॥ इति स्वकीया ॥

टीका—ताही समै घन बरसो हरि ललिता से कह्यो की यह देखो जब ललिता के नेत्र पीछे परे तब हरि बृषभानु सुता को अंग छुए ॥३८॥

(परकीया[1])

दो०—बिन ब्याही पर पुरुष सौं, प्रीति अनूढ़ा नारि।
ब्याही पति तजि पर पुरुष, प्रीतिहि ऊढ़ा धारि ॥३९॥

कबि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

जग मैं बड़े जाहिर माहिर हैं परबीन कुलीन सिरोमनि हैं।
गुन आगर रूप उजागर वै 'बृज' सील के सागर मैं गनि हैं॥
परि पूरन पुन्य कहाँ इतनो मन ही को मनोरथ को जनि हैं।
सखि सूरति साँवरी मूरति मैन निहारत नैन कहा बनि हैं ॥४०॥

१—अपनी विवाहिता पत्नी के सिवा किसी अन्य स्त्री से कोई पुरुष प्रेम करे तो वह 'परकीया' नायिका कहलाती है, जो दो प्रकार की होती हैं (१) अनूढ़ा (अविवाहिता = कन्या), (२) ऊढ़ा (जिसका अन्य पुरुष से विवाह हो चुका है किन्तु प्रेम इस नायक से कर रही है।)

प्रस्तुत ग्रंथकार ने परकीया (ऊढ़ा अथवा अनूढ़ा) के पाँचभेद किये हैं—(१) गुप्ता, (२) लक्षिता (३) मुदिता, (४) अनुशयाना और (५)कुलटा। 'गुप्ता' वह नायिका है जो अपने प्रेम को छिपा लेती है।

पुनः इसको तीन प्रकार की माना है १—भूतगुप्ता, २—वर्तमानगुप्ता, ३—भविष्यगुप्ता अर्थात् जो भूतकालिक नायकरति को छिपा लेती है वह भूतगुप्ता, वर्तमानकालिक प्रेम का गोपन करनेवाली 'वर्तमानगुप्ता' और भविष्यकालीन सभी भावों की गोपिनी 'भविष्य गुप्ता' कहलाती है।

परसे = स्पर्श कर। ललिता = सखी का नाम। दरसो = देखो। दर = कुछ। छपाकर = चन्द्रमा ॥३८॥

जाहिर = प्रसिद्ध। माहिर = दक्ष। परवीन = प्रवीण, चतुर। गुन आगर = गुणों के घर। उजागर = प्रकाशमान ॥४०॥

टीका—सखी साँवरी सूरति मूरति मैन की देखत कहा बनि है ॥४०॥

(ऊढ़ा)

कवि—मकरन्द

गाइ कै तान बजाइ कै बाँसुरी मोहि कै मोहनी मो सिर दीनी ।
ऐंठि कै पाग उमेठि कै पेंचन टेढ़ी सी चाल चले रस भीनी ॥
रीझ रिझारे कै जात भए मकरन्द कह्यौ सुकहा गति लीनी ।
जाँव री का पर नाउँ री बूझन साँवरी मूरति बाउरी कीनी ॥४१॥

टीका—कासो नाँव बूझौं ॥४१॥

(परकीया)

षट्भेद

गुप्ता तीनि भाँति करि जानो । भूत गोप ब्रतमान बखानो ॥
सुरत गोप जो भविष कहावै ॥४२॥

कवि—देव

(भूतगुप्ता)

घर भीतर बाहेरहूँ बन बागन बैरिनि बीर बयारि बही ।
झँझरी के झकोरनि ह्वै कै झकोर बढ़े हिय में नहिं जात कही ॥
'कवि देव' कहो कहि के सकै आइए जीकी बिथा नहीं जात कही ।
अधरानि को फोरति अंग मरोरति हारन तोरति जोर बही ॥४३॥

टीका—यह बयारि झँझरीन के मग आइ हार तोरो अंग मरोरत याते भूत गुप्ता ॥४३॥

कवि—अमरेश

(वर्तमान गुप्ता)

एक छिन एक दिन जनम दूहूँ को भयो,
उमगे अनंद बाजे बाजन बधाई के ।
एक सो सँवारे बिधि रूप रंग अंग सब,
मिलत सुभाइ भरे बल जू के भाई के ॥

पाग = पगड़ी । उमेठिकै = मरोड़कर । पेच = मोड़ । नाँउ = नाम । बाउरी = पागल ॥४१॥

झझरी = झाँकी । झकोरनि = झोंकों से । झकोर = तेजवायु । अधरानि = ओठों को ॥४३॥

भनै 'अमरेश' सुख संपति समान आन,
भेद है न कोऊ भेद लोग औ लुगाई के।
माई यह कैसो री कही को तन ओरी तन,
ओरी नापबे में होत गरे लौं कन्हाई के ॥ ॥४४॥

टीका—एक ही घरी हमारो कृष्ण को जनम भयो पै जो मैं नापती हौं तो उनके गरे तक हौं, याते वर्तमान ॥४४॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(भविष्यगुप्ता वर्णन)

सवैया-डरिहौं भुज पास गरे उनके 'बृज' आवत धायक मैं भरिहौं।
धरि हौं उर धीर न बीर की सौंह अहीर गरूरन को हरिहौं ॥
हरि हौं नहिं कैसे हूँ मेरी गली जनि आवैं करार यही करिहौं।
करि हौंसन ते लड़िहौं भिड़िहौं अड़िहौं छड़िहौं न कछू डरिहौं ॥४५॥

टीका—हरिहौं न कैसे हू उनते जो यहि गली फेरि आइ हैं, याते भविष्य ॥४५॥

(विदग्धा[1] वचन-क्रिया)

फल फूल सपल्लव आम के बौर,
अबै अलि जाइ बिहानहिं लावै।
घर पावन पुंज बहारि करौं,
सजि सेज सुगन्ध महा छबि छावै ॥
'बृज' राखि हौं खोलि केवार सबै,
निसि काजनी कौन घरी हरि आवैं।
पिय पाती हिमंत की अंत में आई हैं,
आइहैं कंत बसंत मनावै ॥४६॥

उमगे = उमड़ आये। आजन = आजे। सुभाई = स्वभाव ॥४४॥

डारिहौं = डालूँगी। भुजपास = बाहुबन्ध। धायक = दौड़कर। बीर = भाई। हौंसनते = शौकसे ॥४५॥

१—'भूत-वर्तमान-भविष्य गुप्ता' नायिकायें जो अपनी प्रीति को छिपाती हैं वे या तो उक्तियों द्वारा या क्रियाओं द्वारा। उक्तिचातुर्य से इस रति भाव का गोपन करनेवाली 'वचनविदग्धा' और क्रियाचातुरीसे छिपानेवाली 'क्रिया विदग्धा' कहलाती है।

पावनपुंज = अत्यन्त स्वच्छ। बहारि = झाड़ू लगाकर ॥४६॥

टीका—हिमंत के अंत में अह है यह पाती जो परदेशतें आई है, तामें यह लिखो है यह अपने मित्रको सुनावत है ॥४६॥

(क्रिया चातुरी)

संग सखीजन के सजनी नव नागरि नीर के जात है कारन।
पाँय पखारत ढारत पानि निचोरत बोरत चीर औ बारन॥
बंजुल मंजुल पुंज निकुंज ते आइ गयो हरि प्रेम पगारन।
भानुजा मैं वृष भानुजा लै 'बृज' फूल जपाकर लागी बगारन ॥४७॥

टीका—भानुजा कहै यमुना वृषभानुजा राधाजी जपाकर कहै दुपहरिया को फूल बगारै कहै छोड़ै अर्थ यह की जलनाम वन में दुपहरी में मिलिहि ॥४७॥

(लक्षिता[1])

पर पति रति लक्षित सखि करई ॥४८॥

कवि—कवि गोकुल प्रसाद 'बृज'

आइ हौं खेलन होरी बिमोहन सोहन गोहन भाव भरी।
छाँड़ि दे संक मयंक मुखी 'बृज' कीजिये रंग उमंग भरी॥
मूठि अबीरन सों भरि कै हरि ऊपर घात अनेक करी।
देखति हौं कब की मैं खरी अब काहे न जात उड़ाय अरी ॥४६॥

टीका—अबीर मूठी भरि उड़ाइबे को मित्र को देखि सात्विक भाव स्वेद भए, यातें पंक ह्वै गयो, याते लक्षिता ॥४६॥

कवि—बोधा

तुम जानती हौ कै अजान सबै करि आगे को ऊतरु धावती हौ।
बतराती कछू की कछू हित के अनुराग की आँखें छपावती हौ॥

पाँय पखारत=पैर पोछती है। ढारत पानि=पानी गिराती है। निचोरत=निचोड़ती, कचारती है। बोरत=डुबाती है। चीर=वस्त्र। बारन=बालों को। बंजुल=झाड़ी। पगारन=घरों में। भानुजा=यमुना। जपा=जवा ॥४७॥

१—बहुत छिपानेपर जिसका पर-पुरुष प्रेम सखी आदि के द्वारा लक्षित हो जाता है वह 'लक्षिता परकीया' नायिका है।

बिमोहन=मोहित करनेवाले। गोहन=साथ। मूहि=मुझे ॥४६॥

इसें काहू परी जो मने करिबे 'कबि बोधा' काहे दुख दावती हौ।
बदनामी की गैल बचाइ रहौ कुलें काहे कलंक लगावती हौ ॥५०॥
टीका—बदनामी के गैल बचाओ ॥५०॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

(मुदिता)

निज चाही बातैं सुनि मोद ॥५१॥

ब्याहु भयो जबते तबते निज नायके में सुभ सौति यही।
नागर नारि ते पूछो हरे हँसि गौनो बनो अब लेन चही ॥
सो सुनि सोच सँकोच कियो 'बृज' बूझि कछू हित हेत सही।
लावहु वेगि न बेर लगावहु हेरि हरे हरखाइ कही ॥५२॥

टीका—नायक कहो साइति बनो नायिका कहो हरषाइ की लावो अर्थ यह कि सौति को आइबो सौति हरषाइ कहै यह असंभव है उत्तर यह नायिका मुदिता की नायकसों सौतिके वस्य रहैगो तो मैं मित्र ते मिलोंगी याते हरष भयो ॥५२॥

(अनुसयनौ प्रथम)

कहि संकेत विनाश ॥

सवैया—कामिनी कंत बसंत बहार बिहारन बाग गई निज गेह की।
रोस न रोसन रोसनी रोसन छाइ रही कबि फूल अछेह की ॥
हेरि हरे हिय हूल उठी 'बृज' जानि परयो लखि ओछे अनेह की।
फूली फली कदली अवलोकि अली बदली दुतिद्वार के देह की ॥५३॥

१—ग्रन्थकार के अनुसार 'मुदिता' नायिका वह है जो मनचाही बातें सुनकर प्रसन्न हो। वास्तवमें मुदिता वह कहलाती है जिसे नायक के संकेत-स्थल पर आनेका निश्चित विश्वास रहता है।

२—अनुशयाना वह परकीया नायिका है जिसकी नायक मिलन की इच्छा पूर्ण न हो सके। यह तीन प्रकार की होती है (१) जिसका वर्तमान संकेत स्थल ही नष्ट हो जाय। (२) जिसे यह चिन्ता हो कि हमारा भावी संकेतस्थल रहेगा या नहीं। (३) जो उचित समय पर संकेत स्थल में न पहुँच सके और पश्चात् व्याकुल हो। अनुसयना शब्द संस्कृत के 'अनुशयाना' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है पश्चात्ताप करती हुई।

ऊतर = उत्तर, आगे। गैल = मार्ग ॥५०॥

नागर नारि = चतुर नायिका। गौनो = गौना। हितहेत = भलाई के लिये। हरे = कृष्ण को, पति को ॥५२॥

टीका—कदली को फरी देखि दुःख भयो अर्थ यह कि जब कदली फरत तब काटि डारि जात कटे पर संकेत विनाश ताते अनुसैना ॥५३॥

(दूसरा संकेत अभाव)

गौने के द्यौस छ सात हुते गई बाग बिलोकन प्रेम बढ़े ।
लोनी लता लवली अवली लहरैं छहरैं छबि छाह मढ़े ।।
रोसन रोसनी मंजुल पुंज मनोहर कोकिल कीर पढ़े ।
ओई हैं ताल तमाल तहाँ 'ब्रज' काह बिलोकत आह बढ़े ।।५४।।

टीका—वई ताल तमाल देखि दुःख भयो ऐसो मेरे ससुरारि में है है कि नाहीं संकेत अभाव ते ताते दूजी ।।५४।।

कवि—पद्माकर

(तीसरी अनुसयना संकेत पर न जाय)

चारिहु ओर ते पौन झकोर झकोरनि घोर घटा घहरानी ।
ऐसे समैं 'पदुमाकर' कान्ह की आवत पीतपटी फहरानी ।।
गुंज की माल गुपाल गरे ब्रज बाल बिलोकि थकी थहरानी ।
नीरजते कढ़ि तीर नदी छबि छीजत छीरज पै छहरानी ।।५५।।

टीका—कृष्ण के गरे में गुंजमाले देखि क्योंकि नायक संकेत के चिन्ह लायौ हौ न गई याते तीसरी ।।५५।।

कवि—गोकुलप्रसाद 'ब्रज'

(कुलटा)

॥ जो बहुनायक ते रति मानै ॥

नद सो रस नागर को तजिकै गुन आगर सागर को न पत्यानी ।
रतिवंत तड़ागन त्यागि दई धनवंत अनूपम कूपन मानी ।।

१—जिसकी काम वासना तृप्त न हो और उसके लिये बहुत पुरुषों का संसर्ग करे वह कुलटा कहलाती है (कुलेषु = बहुषु, अटति = भ्रमति इति कुलटा) ।

['परकीया नायिका' के प्रथमतः ऊढ़ा—अनूढ़ा भेद से दो, पुनः गुप्ता आदि भेदों से प्रत्येक के ५।५ इस प्रकार १० भेद हुए]

रोसनी रोसन = प्रकाश फैल रहा है । अछेह = निरन्तर । हूल = पीड़ा ॥५३॥

लवली = प्रफुल्लित । छहरै = फैल रही ॥५४॥

पीतपटी = पीला दुपट्टा ॥५५॥

नर नारन जो नहि नेह न है 'बृज' पावन नीर बिहाय अयानी ।
सुख घातकी है यह चातकी नारि सहै दुख सेवै सेवाती को पानी ॥५६॥

॥ इति परकीया ॥

टीका—नद ऐसे रसनागर गुन के सागर ऐसे पुरुषन को त्यागि एक स्वाती पानी को सेवै यह स्वकीया नारि सुख की घातकी व्यंगते कुलटा । स्वकीया नारि निंदा करि आपने सुभाव की बड़ाई करती है ॥५६॥

(अन्य संभोग दुखिता)

निज पति रति पर तिय तन देखै ।
दुखित अन्य संभोग विसेखै ॥५७॥

कवि—श्रीधर

तार किनारिन की झलकै पलका पै मनोजन वोज उँभात है ।
चूरी चुनी वो चुनौती के ढेरन बीरी बना कर को इत खात है ॥
'श्रीधर' सो अफसोस महा यह रोस कछूक सो जानो न जात है ।
रात को यौं उतपातन कै मेरे लाल को आन छला छलि जात है ॥५८॥

टीका—मेरे लाल को कौन छला छलिकै लिहौ, नायिका परोसिनि को देखि कहै है ॥५८॥

(प्रेम गर्विता)

निज पति प्रेम तिया जो भाखै ॥५९॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

मनमोहन को कहनावति यौं मनमोहनी है हम हेरि हिए ।
भल भूषन अंग में लागत दूषन भूषित कै केहि हेत लिए ॥
निज नैन निरन्तर चाहै न अन्तर बीच बड़ो दुइ देह दिए ।
'बृज' दो तन मैं मन एक अली बिधि काग के गोलक लौन किए ॥६०॥

टीका—दो तनमें प्रान एक काग के गोलक लौं बिधि क्यों न दिये, यह बात नायिका अपने नायक को कहती ताते प्रेम गर्विता ॥६०॥

पत्यानी = विश्वास किया । सुख घातकी = सुखनाशिनी ॥५६॥

अनछला = दूसरी नायिका ॥५८॥

कहनावति = कहावत । काग के गोलक = कौवे की आँख का गोला जो दोनों आँखों के मध्य में होता है और जिससे वह दोनों ओर देखता है । लौन = सुन्दर ॥६०॥

(रूप गर्विता)

जो निज रूप गरब की बातैं।
कहि बोलै तिय गरब अदातैं ॥६१॥

कवि—महाराज

लाल लेउ बात न अपानो करो घात न,
लगाय लेउ गात न भुलावो सुधि खान की।
भींजि मारो मान तें चकित अभिमान तें सु,
तान तेजि पाइ बीरी देहौं मुख पान की ॥
'कवि महाराज' ब्रजराज हूँ पलक माँझ,
चेरो करो ठेलौ तौ दुहाई पंचबान की।
बेधे दृग कोरन मरोरें भौंह भोरन ते,
डोरन ते डोरौं तौ हौं बेटी वृषभान की ॥६२॥

टीका—दृग कोर की मरोर ते मारो, भौंह के भावन ते दासी करो व्यंग यह कि मेरे भौंह नेत्र ऐसे ताते रूप गर्विता ॥६२॥

कवि—मोतीलाल

एकै आनि नीरज के दल अँखियान तार,
देखत निहारै पै परै न पावै पलकैं।
एकै आनि दाड़िम दसन दुति मान एकै,
श्रीफल उरोजन मिलावै कोच कलकैं ॥
'मोतीलाल' मूँदे भे सकुच भुजमूल तऊ,
दारिए अनोखी छिगुनी की छबि छलकैं।
कहाँ तें हो आई इहि ओर भूल मोहि माई,
बृज की लुगाई लोग देखि देखि ललकैं ॥६३॥

टीका—नीरज के दल दाडिम इत्यादि समता करत हैं लैकै यह गर्व ॥६३॥

मान = प्रमाण। छिगुनी = कानी उँगली। लुगाई लोग = नारीनर। ललकैं = चाहते हैं, ललचते हैं ॥६३॥

कवि—दया देव

(मानिनी)

कौल कैसी बेली ए सहेली कुँभिलाय गई,
फूली सी फिरत तैं चलावै चाम दामके ।
कहै 'दयादेव' अन अनमाने बे अक्काल,
अंग कोरे लगि रहे चित्र से हैं धामके ॥
इतै तो अनोखी अनखाइल सों अनखात,
जोन्ह हूँ जनावत है कहै घट घामके ।
हा हा हँसि बोलो बल छाँड़ि दे अनोखी मान,
मान अरु बान बिना छूटे कौन कामके ॥६४॥

टीका—मान औ बान बिना छूटे शोभा नहीं ॥६४॥

बिपहू ते मेरी बात लागत बुरी है अब,
तब समुझैगी जब चित चष चढ़ैगो ।
लाल उठि जैहैं फिरि कबहुँ न ऐहैं लखि,
सखी मुसकैहैं देखि दुखप्रन बाढ़ैगो ॥
कहै 'दयादेव' कही काहू की न मानति हौं,
मानोंगी तौ लोग झूठी साँची सीकैं पाढ़ैगो ।
मान कीन्हो कान है जो मानै ते हरत मान,
मान कहाँ पान है जो याके रस बाढ़ैगो ॥६५॥

टीका—मान का पान है जाते रस कढ़ि है अर्थ यह रस नहीं है ॥६५॥

(गनिका)

धन लै जो रति पति से करई ॥६६॥

१—जो केवल धनके लिये नायक से प्रेम करती है वह सामान्य या गणिका कहलाती है ।

अनखाइल = रुष्ट हुई ॥६४॥

सीकैं पाढ़ैगो = सिखा-पढ़ा देंगे ॥६५॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

दंडक—अतर लगाइ तन जब उर बसी जाइ,
हेरि कै अतर धन उर बसी देत हैं।
मुकुता करत भाव भूषन बनाव करि,
मुकुता अभूषन लहत हित हेत हैं॥
'गोकुल' अनूप सुबरन अंग को सँवारि,
सुबरन रूप लेइ जाइ जा निकेत हैं।
बारनारि बराबरी कहा करै कुल नारि,
मन हीरा दै कै मन हीरा वह लेत हैं ॥६७॥

टीका—अतर धन कहै गोपधन उर बसी हृदै मों बसी और उर बसी हार मुकुता कहै बहुत मुकुता मोती सुबरन अच्छ सुबरण सोना हीरा मन कहै हियमन हीरा कहै जवाहिर ॥६७॥

(सर्वरति)

कवि—अकबर साह

सवैया—'साह अकब्बर' बाल की चाह अचिंत गही चल भीतर भौने।
सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे को भ्रम पावत गौने॥
चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सँकोच रही मुख मौने।
यौं छबि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह परे मृगछौने॥६८॥

टीका—मृग छौना ताते नवोढ़ा ॥६८॥

'साहि अकब्बर' एक समै चले कान्ह बिनोद बिलोकन बालहि।
आहट ते अबला निरख्यौ चकि चौंकि चली कर आतुर चालहि॥
त्यौं बलबेनी सुधारि धरी सुभई छबि यौं ललना अरु लालहि।
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यौं हाथ लिये अहि बालहि ॥६९॥

टीका—कमान हाथ लिए अहिबाल पद० ॥६९॥

केलि करै बिपरीति रमै सु 'अकब्बर' क्यौं न दती सुख पावै।
कामिनि की कटि किंकिनि कान किधौं गन प्रीतम के गुन गावै॥
बिंदु छुटी मन में सुलिलाट ते यों लट में लटको लगि आवै।
साहि मनोज मनो चित में छबि चन्द लए चकडोरि खिलावै॥७०॥

अतर = अत्यन्त। उर = छाती। बारनारि = वेश्या ॥६७॥
दती = लिपटी हुई। बिंदु = बेंदी। लट = वेणी। चकडोरी = चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत। कोककला = रतिविद्या। बिगलित = बिखरे हुए। मराल अबला = हंसिनी ॥७०॥

टीका—चन्द्रमा को लये चक डोरी होइ ॥७०॥

कवि—हरिकेश

रची बिपरीति रति प्रीतम के प्रीति प्यारी,
जामैं अति छाजै कोक सकल कलान की।
'कवि हरिकेस' बिगलित केस बेस दुति,
गलित करत अहि ललित ललान की॥
लचकत कटि मचकत किंकिनी की कल,
हाँसी सी करत है मराल अबलान की।
कर तामरस तमसंक जब गहै प्यारी,
प्यारे को मिटत टेंव सकल छलान की॥७१॥

टीका—समस्त रति कोविदा की सुरति है ॥७१॥

(मध्या सुरत)

कवि—नेवाज

मुख चुम्बन मैं मुख लै जो भजै पियके मुख मैं मुख नायो चहै।
गल बाँही गोपाल के मेलत ही मुख नाहीं कहै मनते न कहै॥
नहिं देत 'नेवाज' छुऐ छतिया छतिया से लगाए ते लागी रहै।
कर खैंचत सेज की पाटी गहै रति मैं रति की परिपाटी गहै॥७२॥

टीका—सेज की पाटी रति की परिपाटी ॥७२॥

कवि—दास

काम कहै करि केलि ढिठाई औ लाज कहै यह क्यौं हू न होने।
लाज की बोरसे लोचन ऐंचत काम के घोरसे प्रेम सलोने॥
'दास' बस्यो मन बामको काम मैं लाजत क्यौं निज धर्मन कोने।
प्यौ मन काम करो करै प्यारी पै लाज औ काम लरो करै कूने॥७३॥

टीका—लाज काम पद ते मध्या की सुरति ॥७३॥

तामरस = कमल। तमसंक = अंधकार के भय से। टेंव = स्वभाव। छलान = छल-कपट ॥७१॥

मेलत = डालते ही। पाटी = लकड़ी। परिपाटी = प्रथा, रीति ॥७२॥

ऐंचत = खींचती है। सलोनो = सुन्दर। बाम = नायिका ॥७३॥

कवि—उदयनाथ

(प्रौढ़ा रति)

रंग पगी सेजपर जग मगी सोभा चारु,
मनिमय मंदिर मयूखन अथाह की ।
'उदैनाथ' तामें प्रान प्यारी अरु प्यारे लाल,
कोक की कलान केलि करत अथाह की ॥
किंकिन की धुनि तैसे नूपुरको नाद सुनि,
सौतिन के बादल बिषाद बाढ़ गाह की ।
त्रिभुवन जीति की उछाह को बजत मानौ,
नौबति रसील मनमथ बादसाह की ॥७४॥

टीका—केलि समै किंकिनि के शब्द मनमथ बादशाह की नौबति बाजति है ।

कवि—ब्रह्म

काम कलाधिक राधिका आधिक रात लौं काम की बात बनाई ।
काम सो कान्हर दै कुच पै कर सोय रहे रति काम की नाईं ॥
'ब्रह्म' जराय की मुद्रिका दै सु सखी लखि कोटिन भा तन भाई ।
देखन को पिय को तिय की हिय की अँखिया मनो बाहिर आई ॥७५॥

टीका—सुगम ॥७५॥

कवि—कालीदास

कुंदन की छरी आबनूस की छरी-सी लागै,
सोन जुही माल कैधौं कुवलय हारसों ।
कैधौं बंधु कालिका कलंक सो कलित भई,
कैधौं रति ललित बलित भई मारसों ॥
'कालिदास' कादम्बिनि दामिनि मिली है कैधौं,
अनल की माल मिलि रही धूम धारसों ।
केलि समै कामिनी कन्हैया सों लपटि रही,
मानो लपटानी है जुन्हैया अंधकारसों ॥७६॥

रंगपगी = रंग में मग्न । कोक = काम । विषाद = दुःख । नौबति = मंगल सूचक वाद्य ॥७४॥

अधिक रात = अर्धरात्रि । जराय = नग जड़ी हुई । भा तन भाई = शोभा शरीर पर झलकी ॥७५॥

कुंदन = सुवर्ण । आबनूस = एक काली लकड़ी । सोनजुही = पुष्पविशेष । कुवलय = नील कमल । बंधुकलिका = दुपहरिया की कली । बलित भई = लिपट गई । कादम्बिनि = मेघमाला । धूमधार = धुएँ का प्रवाह ॥७६॥

टीका—जुन्हैआ अंधकार में मिली याते सुगम ॥७६॥

कवि—रूपनरायन

(सुरतांत]

सवैया–रमि कै रति मंदिर में तरुनी रंग रावटी में रस माले कियो ।
पगि प्रेम में पूरि प्रबीन के प्यार सों सौतिन ही में दुसाले कियो ॥
'कवि रूपनरायन' आरसी लै कर आनन पै बस वाले कियो ।
अरबिंदन बैर कियो बरु लौ मनो भानु के इन्दु हवाले कियो ॥७७॥

टीका—अरविंद ते सुगम ॥७७॥

कवि—बेनी

रति रंग जगी चख मींजत ज्यौं तब त्यौं मनमोहन चोपत सों ।
'कवि बेनी' हहा करि हाँसी कियो सो जगावत जागै न कोपत सों ॥
कर मंडित मोतिन के गजरा द्रिग मीड़त आनन ओपत सों ।
अरबिंदन को पकरे मनो तारे कलानिधि भूपति सौंपत सों ॥७८॥

टीका—कलानिधि कहै चन्द्रमा ॥७८॥

कवि—मंडन

सजल जलद पर दामिनी लसत कैधों,
कामिनी को रूप रतिपति सो हरत है ।
बदन सुरत पिय मुख सों जुरत कैधों,
कमल के फूल सौं कलानिधि मिलत है ॥
'मंडन सुकवि' श्रम स्वेद ते सलिल होत,
देह ते निकसि निज नेह पिगलत है ।
टूटि टूटि मोती सीस फूल ते गिरत कैधों,
मेरे जान तरनि तरैया उगिलत है ॥७६॥

टीका—तरनि कहै सूर्य तरैया कहै नक्षत्र ॥७६॥

रंगरावटी = रंगमहल का दालान । रसमाले कियो = प्रेम से लिपट गई । दुसाले = बैर । हीमें = हृदय में । हवाले कियो = सौंप दिया ॥७७॥

तेव = क्रोध । चोपत = प्रसन्न होते हैं । ओपत = आभापूर्ण होते हैं । रतिपति = कामदेव । सुरत = मुड़ता है । तरनि = सूर्य । तरैया = तारे ॥७६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

[गनिका सुरत]

सुषमा ससी करै सो मुख माय सी करै,
प्रभा-नछत्र सी करै कपोल स्वेद-सीकरै।
नैन बान सी करै कटाक्ष काट सी करै,
भौंह भाव 'गोकुल' बढ़ाव चाप सी करै॥
आँगी कोक सी करै देखाय कै हँसी करै,
सनेह की रसी मैं मति रसिक कसी करै।
अंग मैं लसी करै अनंग रति सी करै वो,
सी करै बसी करै हमेस ही बसी करै ॥८०॥

टीका—सुषमा शशी करै शोभा चन्द्रमा के करकै मुखमें बसै है, नैनबान सी सी वाक नैनबान से आँगी कोक सी करत हमेस ही बसी करै कहै बसीकरन मंत्र है ॥८०॥

अष्ट नायिका वर्णन[1]

(प्रोषित-पतिका[2])

पिय परदेस बिकल तिय होई

कवि—अज्ञात

जोगी जोग त्यागे हम जोग भोग दोऊ त्यागे,
जोगी भखैं पौन हम पौनहूँते लटि हैं।

१—नायिका के स्वकीया, परकीया और सामान्या ये मुख्य भेद तथा इनके विभिन्न उपभेद उदाहरणों सहित पहले कहे जा चुके हैं। उनमें से प्रत्येक भेद के पुनः ये ८ भेद हो सकते हैं अर्थात् उन विभेदों में वर्णित प्रत्येक नायिका आठ प्रकार की होती है।

२—प्रोषित-पतिका वह नायिका है जिसका नायक विदेश गया हो और वह उसके विरहमें व्याकुल रहती हो।

सुषमा = परम शोभा। ससी करै = चन्द्रमा की। नछत्र = तारे। स्वेदसीकरै = पसीने की बूँदें। आँगी = अँगिया, चोली। कोक = चकवा। रसी = डोरी। कसी करै = बाँध देती है। लसी करै = शोभित होती है। सीकरै = सी सी शब्द करती है। बसी करै = वश में कर लेती है। बसी करै = रहती है ॥८०॥

जोगी छेदैं प्रान हम हियोप्रान दोऊ छेदैं,
जोगी धारैं धूरि हम धूरिहू ते हटि हैं ॥
जोगी हाथ सींगी हम स्याम गुन सींगी भई,
जोगी कर दंड हम दंड हरी ठटि हैं।
आसन सी आसी ऊधौ औध सी अँध्यारी देखो,
जोगी के जुगुति ते वियोगी कहाँ घटि हैं ॥८१॥

टीका—जोगी के जतन ते, वियोगिनि के रीत कछु घटि नाहीं ॥८१॥

कवि—अहमद

जादिन ते प्रीतम विदेस को गमन कीन्हो,
तादिन ते ललना अनंद सी छरी रहै।
'अहमद' केहूँ मिसि हेरि हेरि चहूँ दिसि,
अँगुरिन छाले परे गनत घरी रहै ॥
लोचन सँकोचन सों बतिया दुरावति है,
मोचन चहत प्रान औधक परी रहै।
इंदु मुखी जंभा लागी सुरति अचंभा लागी,
कंचन के खंभा लागी रंभासी खरी रहै ॥८२॥

टीका—सुगम० ॥८२॥

कंचन में आँच लागी चुनी बिन मारि गई,
भूषन भये हैं सब दूषन उतारि लै।
बालम बिदेस ऐसी बैस में न लागै आगि,
बरि बरि उठै हियो बिरह बयारि लै ॥

भखै=भक्षण करता है। ठटि है=विरक्त, उदासीन। सींगी=शृङ्गी नाम का बाजा जो हिरन के सींग का बनता है। आसी=बैठी। औध=मिलन का निर्धारित समय। अँध्यारी=काठ के डंडे में लगा हुआ पीढ़ा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं। जुगुति=साधना के उपाय। घटि=न्यून ॥८१॥

छरी=छली हुई। मिसि=बहाने। औधक=उलटे मुँह। जंभा=जँभाई आलस्य। रंभा=कदली ॥८२॥

एरी पर घर कत माँगन को जैहै आली,
अँगन मैं चंद ते अँगार चारि भारि लै ।
साँझ भये भौन माँझ बाती को न देति लेसि,
छाती में छुआइ दिया बाती आनि बारि लै ॥८३॥

टीका—बिरहागिनि ऐसी छाती में प्रज्वलित है की बाती छुआइ कै दिया बारि लै ॥८३॥

कवि—कविराज

सुख सेज सुगन्ध सुधाकर सीत समीप सुहात नहीं सखियो ।
'कविराज' कहै इन भाँतिन कैसे बिना जगजीवन जाइ जियो ॥
कबहूँ बिरहागिनि मैं तप त्यौं कबहूँ धर नीर में बोरि दियो ।
पियके बिछुरे हियरा इहि काम लोहार के हाथ को लोह कियो ॥८४॥

कवि—अभिमन्यु

औधि टरी हरि आवन की मनभावन ही की लगी जक वाके ।
काम की पीर बढ़ी 'अभिमन्यु' धरै नहीं धीर धका धकी वाके ॥
है बिधि सो तिय दै बिधि पाँख मिलो उड़ि जाइ रहो उर काके ।
जो पर आँखिन पीव मिलै सखी पाख जु है चकई चकवा के ॥८५॥

टीका—जो पर कहै यह शब्द एक लोकबोली है, जोपर कहै पर आँखिनते पीव मिलै तो पर चकवा औ चकई के हो तौ क्यों निशिमें बिछोह होत ॥८५॥

कवि—भगवंत

पीक ही की लीक उर लीक सी लगी है यह,
लाल लीक मेरी तुम अब रस पागे हौ ।
आरसी लै देखो नेक आरसी भयो है कहा,
आरसी लगत मुकुरत मेरे आगे हौ ॥

चुनी=रत्न । बैस=वयस, अवस्था । बरि बरि उठै=बार-बार जलउठती है । अँगार=जलते कोयले ॥८३॥

जक=रट । धकाधकी=धुकधुकी ॥८५॥

कपटी महाउर महाउरते जानियत,
पाय परसत जाउ जाके पाय लागे हौ।
भोरहीते आए 'भगिवंत' मोहि भोरवन,
कौन पतिनी के पतिनी के संग जागे हौ ॥८६॥

टीका—आरसी पैना लै कै देखो आरसी कहै अलसहा कहा भयो अर्थ कहा राति जाग्यो है, कपट महाउर है तुमारे महाउर कहै जावक ते जान्यौ, भोरते आए हमको बहकावन, कौन पतिनी कहै नायिका के संग है पति नीके जागे हो ॥८६॥

(कलहांतरिता)

करि कै कलह अंत पछिताय ॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

मन भूप से कान ए दूत जबै पुर प्रीतम की कछु बात बताई।
'बृज' नीति निरूपन को तुरतै नृप नैन दिवानहिं सों ठहराई॥
बन नाम सुभावके काम किये रिसिकै कोतवाल पै बोलि पठाई।
रसनाकर दौड़ी चबाई के चोप फिराय दिये हठहाके दोहाई ॥८७॥

टीका—मन भूप ते कान दूत पुर प्रीतम कहै नायक की बात अपराध को कहै मन भूप ने नैन दिवान को मंत्र ठहरावन को अग्या दई। नैन आपन नाम कैसी रीति करो जिनमें नै कहै नीति नाहीं अर्थ रोज चितवनि रसना कहै जीभ की दौड़ी परपंच की चोप अर्थ कटु बचन कहो पछितात तारो कलहांतरिता ॥८७॥

१—कलहान्तरिता वह नायिका है जो रति की इच्छा रहते हुए भी नायक के किसी अपराध से रूठ जाती है, नायक सामान्यतः मनाता है वह रूठी ही रहती है तब नायक छोड़कर चला जाता है तो रति पूर्ति न होनेसे पश्चात्ताप करती है।

पीक=पान का थूक। लीक=लकीर। रसपागे=रसरंग में रँगे। आरसी=दर्पण। आरसी=आलसी। आरसी=काद सी। हुकरत=हुंकार करते हो। महाउर=आलता। भोर बन=भोले भाले बनकर ॥८६॥

चबाई=निन्दक। चोप=चाव, इच्छा। दोहाई=पुकार ॥८७॥

(विप्रलब्धा[1])

आपु जाय संकेत में, पिया मिलै नहिं ताहि।
सून देखि बिलखै दुखी, विप्रलब्ध कहि जाहि ॥८८॥

कवि—चैनराय

साजि कै सिंगार हार जाल गज मोतिन के,
सुन्दरि छबीली छबि जैसे कछु रति है न।
मनके मनोरथ के रथ पै गमन करि,
पहुँची निकुंज जहाँ है न नन्द नंद ऐन॥
'चैनराय' वाके उर मैन के मरूर उठे,
मीन ज्यौं बिनाही नीर लाजते न बोलै बैन।
फूलत गुलाब सी गई ती तिय पास अब,
लागो चमकाउन गुलाब चुटकी सी दैन ॥८६॥

टीका— जब संकेत सून्न देखे दुःख भयो ॥८६॥

(उत्कंठिता[2])

पियकरार करि, नहि जब आवे।
उत्कंठिता देखि दुख पावै ॥६०॥

निकुंज = झाड़ी। मैन के मरूर = काम की मरोड़ या पीड़ा ॥८६॥

१—विप्रलब्धा का अर्थ होता है वंचिता = ठगी गई। संकेत स्थल में पहुँचकर प्रतीक्षा करने पर भी जिसका नायक वहाँ नहीं पहुँच पाता वह विप्रलब्धा है।

२—संकेत स्थल में नायक की प्रतीक्षा करती हुई और "नायक अभी तक क्यों नहीं आया, आता है या नहीं" इस प्रकार की चिन्ता करती हुई नायिका उत्कंठिता कहलाती है।

[उत्कंठिता और विप्रलब्धा में यह अंतर है कि विप्रलब्धा को नायक नहीं मिलता और निराश होना पड़ता है, उत्कंठिता को नायक मिलता है किन्तु विलम्ब से।]

कवि—गोकुल प्रसाद 'ब्रज'

कठिन कठोर जग नेह को निबाहबोई,
　　　　करिबोई सहज सयान लोग यों भखे।
'गोकुल' बखानै क्रूर नरन ते रहो दूरि,
　　　　परै नहिं पूर सुख फूल फल को चखे॥
पाछे पछिताय सठ सेमर को सेवै जिन,
　　　　पाए भय भुवा सुवा सम मनमें झखे।
को लहै अकौवा ते अनंद कौलमुखी लोक,
　　　　कौल मित्र को लखे न कौल मित्र के लखे॥६१॥

टीका—कौल मित्र सूर्य देखो अरु कौल कहै करार मित्र को नहीं देखे॥६१॥

कवि—कविंद

सरसी सिंगारन ते जामें जेब जोबन की,
　　　　खरी बहु भाँतिन ते आभा अभिराम की।
भनत 'कविंद' जरी सारी की झलक जाकी,
　　　　दूरिते दमक अँधियारी भारी धाम की॥
ऐंठ सखियान तें सकोच सोच भाखै कछू,
　　　　बारी बिरहागिनि को कारी है अनाम की।
औधि एक जामकी न गाई चारि जाम की सु-
　　　　जामकी भई है सुलगाई काम जाम की॥६२॥

टीका—औधि एक'जाम कहै पहर जामकी नाम रंजक वा पलीता॥६२॥

भुवा = रुई। झखै = खिन्न होता है। कौल = करार। कौल मित्र = सूर्य॥६१॥

सरसी = सरयुक्त, तलैया। जेब = शोभा, जरी = चाँदी या सोने के तार। ऐंठ = अकड़, घमंड। बारी = जलाई हुई॥६२॥

(स्वाधीनपतिका[1])

जाके पीतम होय अधीन।
स्वाधिन पतिका कहै प्रबीन ॥६३॥

कवि—श्रीपति

अतर लजात मृगमद पछितात बारि-
जात हारि जात देखे सौरभ को तंत है।
'श्रीपति' अगार मैं अगर उदगार सी है,
बगर बगर छबि छाजत अनंत है॥
हीकर सुखन सुख सौतिन हँसी करन,
पतिहि बसीकरन जीकरन जंत है।
मदन जसीकरन रति मैं रसीकरन,
सीकरन तेरी री बसीकरन मंत्र है॥६४॥

टीका—सीकरन जो रति मैं तेरो बसीकरन मंत्र है॥६४॥

(वासकसज्जा[2])

पिय आगमन जानि सुभ साजै।
सेज सिंगार मोद मन राजै॥६५॥

बगर बगर = फैली हुई। हीकर = हृदयका। जीकरन = विजयी बनाने वाला। जसीकरन = यश बढ़ाने वाला। रसीकरन = रसोत्पादक। सीकरन = सीसी शब्द करना॥६४॥

१. जिस नायिका का नायक उसपर इतना अनुरक्त रहता है कि उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता और उसकी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण कर देता है वह 'स्वाधीन पतिका' कहलाती है। (५)

२. प्रियतम के आगमन को निश्चित समझकर जो अपने शरीरको सुसज्जित करती है वह 'वासकसजा' नायिका है। (६)

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

चहचही चाँदनी चँदोवा चंद्र चन्द्रिका सी,
तैसियै फराक फैली फरस अर्राके हैं।
तापै गोल गिरदा पै छिरके सुगंध मंद,
तापै बिछवाए सेज फूलन कलीके हैं॥
चहल पहल पौरि 'गोकुल' महल माँहि,
आवै एक जावै गुनी गावै गान नीके हैं।
ललित ललाम घनश्याम के मिलन काम,
साम ही से धूम धाम धाम राधा जी के हैं॥९६॥

टीका—साम ही ते धूम धाम याते प्रौढ़ा वासकसज्जा ॥९६॥

(अभिसारिका[1])

पियहि बुलावै या निज जावै।
अभिसारिका तीनि बिधि भावै॥९७॥

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

लागि है देह मैं दीह निदाघ दिवाकर की रुचि ताहि जरावै।
कारी निसा उजियारी करै मग चौंकि कै चोंच चकोर चलावैं॥
जोन्ह की जामिनि मैं वह कामिनि गोकुल आवन जाहिन भावै।
ऊतरु दीजै न कीजै बिलम्ब कही केहि भाँति इहाँ वह आवै ९८॥

टीका—इहाँ कौन भाँति तैं वह आवै व्यंग तुमही चलो ॥९८॥

चहचही = चमकती हुई। चँदोवा = वितान। फराक = दूर दूर तक। फरस = फर्श। गिरदा = घेरा। पौर = ड्योढ़ी ॥९६॥

निदाघ = गर्मी।

कारके = आँगन के। निज जान = मेरी समझ से। चामीकर = सुवर्ण ॥४॥

१—काम के वशीभूत होकर रतितृप्ति के लिए जो प्रियतम को अपने पास बुलाती है या स्वयं उसके पास जाती है वह 'अभिसारिका' नायिका कहलाती है।

कवि—संभु

सोवै लगें घर के बगर के केवार खुले,
बीती निज जान जुग जाम जुग जामिनी।
चुप चाप चोरा चोरी चौंकत चकत चित,
चली हित पास चित चाह भरी भामिनी ॥
पैठत सँकेत के निकेत 'संभु' सोभा देखि,
ऐसी बन बीथिनि बिराजि रही कामिनी।
चामीकर चोर जानै चपलता भोर जानै,
चाँदनी चकोर जानै चोर जानै दामिनी ॥९९॥

टीका—चोर जानै चामीकर कहै सोना होय ॥९९॥

(शुक्लाभिसारिका[1])

कवि—रघुनाथ

सौरभ सकल ढार सुमन ते गूँथे बार,
भूषन मनिनवार माँग मुकुता भई।
हीरन के हीरे हार चंदन चढ़ाये चारु,
सुर सरिता के ढार सुर सरिता रई ॥
कवि 'रघुनाथ' बस करिबे को चली बाल,
मुख की मरीची जाल दिसि मढ़ि कै लई।
चाव चढ़्यो चखन चकोरन के चकाचौंधि,
चापि गयो चंद चटकीली चाँदनी भई ॥१००॥

टीका—ऐसो प्रकाश मुख को भयो की चन्द्रमा की चाँदनी छवि गई ॥१००॥

मनिनवार = मणियोंवाले। हीरे = हृदय में। सुर सरिता = आकाशगङ्गा। मरीचि जाल = किरणों का समूह। मढ़िकै = आवेष्टित कर ॥१००॥

१—शुक्लपक्ष में और श्वेत वस्त्रों से अभिसार करनेवाली नायिका शुक्लाभिसारिका तथा कृष्ण पक्ष में और कृष्ण वस्त्रों से आवृत नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है।

(कृष्णाभिसारिका)

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

पावस अमावस की रैनि अँधियारी अति,
स्याम कै सिंगार स्यामा सिगरो अनंद है।
नीलमनि भूषन बिरचि 'बृज' अंग-अंग,
सारी कारी घूँघट मैं मुख सुख कंद है॥
पौन के झकोर ते उघरि गयो सीस पट,
आभा अभिराम फैली आनन अमंद है।
चहकै चकोर मोर चके चहुँघा के चोर,
मानो मेघ मध्य ते निकसि आयो चंद है॥१०१॥

टीका—मेघ कहै घटा के मंडल ते चन्द्रमा निकसो॥१०१॥

कवि—मकरंद

काजर सी रँगो रैनि कारी सारी अंगनि मैं,
चली मृगनैनी बुद्धि अति ही अथाहनी।
कवि 'मकरंद' जागे चुहुल चुरैल करैं,
चमकै अकेली गैल ज्यों चिराक चाहिनी।
दसहूँ दिसान घन गरजि निसान उठे,
बोलत मसान बीर लुजक निबाहिनी।
मनिवारे साँपन के पाँवड़े जड़ाऊ जड़े,
सोहत है जाके अभिसार हूँ मैं साहिनी॥१०२॥

टीका—मनिवारे कहै मनिधर साँप के पाँवड़े कहैं बिछौना बिछे हैं मग कहे पंथ में॥१०२॥

सिगरो = संपूर्ण। चके = चकित हुए। चहुँघा = चारों ओर॥१०१॥
अथाहनी = अगाध। चुहुल = हँसी, मखौल। निसान = रात्रि में, पाँवड़े = उपानह, जूते॥१०२॥

(दिवाभिसारिका)

कवि—पद्माकर

दिन के केवार खोलि कीन्हीं अभिसार पै न,
जानि परी कछू कहाँ जात चली छल सी ।
कहै 'पद्माकर' न नाकरी सिकोरै जाहि,
काँकरी पगन लागै पंकज के दल सी ॥
कामद सो कानन कपूर ऐसी धूरि लागै,
परसे पहार नदी लागति है नल सी ।
घाम चाँदनी सो लागै चंदन सो लगत रवि,
मग मखतूल सो मही हूँ मखमल सी ॥१०३॥

टीका—ऐसी काम ते उनमत्त है की घाम चाँदनी लागत याते प्रौढ़ा ॥१०३

(प्रवत्स्यत्पतिका[1])

कवि—वंशीधर

कुटिल अक्रूर क्रूर बैरी काहू जनम को,
चेटक सो लाके सिर लैकै ब्रज भूरि गो ।
व्याकुल बिहाल बाल बंसीधर' लाल बिन्दु,
मनिलौं हैं दीन खीन प्रेम रस झूरि गो ।
चरन उठाइ चितवत ऊँचे धाम चढ़ि,
चिन्ता सो चकित भई चैन ऐन चूरिगो ।
बार बार कहत बिसूरि जल नैन पूरि,
धूरि न उड़ात आली अब रथ दूरिगो ॥१०४॥

टीका—धूरि नहीं देखि परै है अब दूरिगै ॥१०४॥

मखतूल = काला कोमल रेशम ॥१०३॥

अक्रूर = एक यदुवंशी, जिसे कंस ने कृष्णको मथुरा लाने के लिये भेजा था । चेटक = इन्द्रजाल विद्या । भूरिगो = मुड़ गया । झूरिगो = सूख गया । चैन ऐन चूरिगो = आनन्द का प्रासाद ढह गया । बिसूरि = स्मरण करके ॥१०४॥

१—जिस नायिका का नायक शीघ्र ही विदेश को जानेवाला है अर्थात् शीघ्र ही होनेवाले नायक-वियोग से जो अभी से व्याकुल है वह 'प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका है ।

कवि—पजनेस

भोर कठोर हियो करि कै तिय सौंपी विदाओ बिदेस फेईछे ।
बायस गोल कहै 'पजनेस' उठे सरके तकरी लौं निरीछे ॥
काहर वाको रवाहिल बाल को खैंचे लगे तन कूकलौं पीछे ।
बालखिला को गिला करिके हरि आगे चले पै परे पग पीछे ॥१०५॥

टीका—पाय पीछे ही परत आगे नहीं चलि जात ऐसा ध्वनियते ॥१०५॥

(आगतपतिका)

"जो आवै परदेस ते पीतम"

कवि—गोकुल प्रसाद 'बृज'

ब्रज आवन को मनभावन भौन मुखागार धावन बोलि पठाई,
वह आय सबै गुर लोगन को बतलान लग्यो हरि की कुसलाई ।

ईछे = इच्छा से । तकरी = कुलटा बुरे आचरण की स्त्री । निरीछे = देखता है । बालखिला = पुराणानुसार ऋषियों का एक समूह जिसका प्रत्येक ऋषि अँगूठे के बराबर माना गया है । गिला = उलाहना ॥१०५॥

मुखागार = सामने ॥१०६॥

१—जिस विरहिणी का नायक परदेश से आ गया हो या शीघ्र आ रहा हो वह 'आगतपतिका' नायिका है ।

[यहाँ पर प्रकृत ग्रन्थकार का मत आलोच्य है, "अष्टनायिका वर्णन" शीर्षक देकर इन्होंने सभी आकर ग्रंथों में इन आठ भेदों के अन्दर स्वीकृत 'खण्डिता' नामक नायिका भेद का न तो लक्षण दिया है और न उदाहरण, किन्तु कुछ ही आचार्यों द्वारा माने गये 'प्रवत्स्यत्पतिका' एवं किसी अप्रसिद्ध आचार्य द्वारा कहे गये 'आगतपतिका' भेदों को लेकर आठ के स्थान पर ९ भेद कर दिये गये हैं, इसमें ग्रंथकार का क्या तात्पर्य है इसे सहृदय विद्वज्जन ही जानें । हम यहाँ पाठकों की सुविधा के लिये 'खण्डिता' नायिका का लक्षण और उदाहरण दे रहे हैं—

'खण्डिता' वह नायिका है जिसका पति रात्रि में उसे छोड़कर अन्य नायिका से रति क्रिया करता है और प्रातःकाल उसके संयोगचिह्नों से युक्त ही प्रकृत नायिका के पास आता है । जैसे—

बाल ! कहा लाली भई, लोयन-कोयन माहिं ।
लाल ! तिहारे दृगन की, परी दृगन में छाँहि ॥

परदेस को बेस संदेस कह्यौ सुभ साइति जाहि लला ठहराई।
सुनिबे को चली तिय बात भली कछु दूरि गई फिरि क्यों फिरि आई ॥१०६॥

टीका—कछु दूरि गई कामते जब लाज आयो तब फिरि आई ॥१०६॥

कवि—मुकुंद

कर की कर चारु चुरी करकी करकी लरकी किन सुंदरि की।
दरकी कुच कंचु तनी तरकी तरकी लगे आँख मनो सर की ॥
सरकी सिर सारी सुबेसर की सरकी न 'मुकुंद' मनोहर की।
हरकी अति ओप सुधासर की सरकी छबि सुद्ध सुधाकर की १०७॥

टीका—सुधासर कहै अमृत के ताल सर की छवि भागि गई, छवि सुधाकर कहै चन्द्रमा के ॥१०७॥

कवि—शशिनाथ

गाइहौं मंगल चारु घने सखि आवत ही तन ताप बुझाइहौं।
आइहौं पाइ गुलाबन सो कमखाब के पाँवड़े पुंज बिछाइहौं ॥
छाइहौं मंदिर बादिले सो 'ससिनाथ जू' फूलन की झरि लाइहौं।
लाइहौं सौतिन के उर साल जबै हँसि लाल को कंठ लगाइहौं॥१०८॥

टीका—लाइहौं सौतिन के उर शाल कहै वियोग करौंगी ॥१०८॥

कवि—संतन

कालिह के साँझहि ते सजनी हौं खड़ी दुचिते अँसुवान बहाऊँ।
जो अबकी अपनी इन आँखिन 'संतन' प्यारे को देखन पाऊँ ॥

करकी = कड़क गई। करकी = दाना। लर = लड़ हार। दरकी = फट गई। कंचु = कंचुकी, चोली। तरकी = तड़क गई। तरकी = एक विशेष तृण। सर = तालाब। बेसर = नासिका का आभूषण। हरकी = फीकी, हलकी। ओप = चमक। सुधासर = अमृत का तड़ाग। सरकी = खिसक गई ॥१०७॥

पाँवड़े = खड़ाँऊ या जूते। बादिले = कामदानी के तार से बना वस्त्र। साल = छिद्र ॥१०८॥

दुचिते = अनमनी। रागिनी = अनुरागवती। पागहि = पैर पकड़कर, पगड़ी ॥१०९॥

आजु तो नाइक मो घर आइकै बोलि गयो सखि होत पराऊँ ।
रागिनी रागहि जाऊँगी बागहि फागहि या गहि पाग बधाऊँ ॥१०९॥

टीका—राग गावत बाग में जाय कै पाग पकरि कै फाग को पाग बाँधौंगी ॥१०९॥

कवि—प्रवीन राय

कुरकुट कोट कोट कोठरी निवारि राखौं,
चुन दै चिरैयनि को मूँदि राखौं जलियौ ।
सारंग में सारंग मिलाऊँ हौं 'प्रवीन राय'
सारंग दै सारंग को जोति करौं थलियो ॥
तारापति तुम सो कहत कर जोरि जोरि,
भोर मत कीजियो सरोज मुख कलियो ।
मोहि मिलो इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राज ।
एहो आजु चंद नेकु मंद गति चलियो ॥११०॥

टीका—ए चन्द्र आजु मन्द चलौ क्यों कि राति अधिक होय ॥११०॥

॥ इति नायिका ॥

(अथ नायक)

पति उपपति बैसिक निज परतिय । वेश्या रत यह रीति समुझि जिय ॥

(पति[1])

'विधि सो ब्याहे है पति नायक'

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सिर मौर मनोहर पाग रँगी अँग बागो बनी कटि मैं पटुको री ।
चर मँडफ मानिक कुंभ धरे हरि भाँवरि घूमत भावतो री ॥

१—शास्त्र एवं परम्परानुसार जिस पुरुष के साथ स्त्री का विवाह होता है, वह पुरुष उस स्त्री का पति कहलाता है ।

कुरकुट = घास-फूस । चून दै = चारा देकर । जलियौं = जाली में । सारंग = हाथ । सारंग = केश । सारंग = भूमि, समुद्र । थलियौं = स्थल तारापति = चन्द्रमा । मुख = विकास ॥११०॥

'बृज' मंजुल माँग में देन के हेत लिये कर सेंदुर पंक भयो री।
अरबिन्द से नैन गुबिन्द के ह्वै अवलोकि अली वृषभानु किसोरी ॥११२॥

टीका—अरबिंद ते नेत्र भये क्यों वृषरासि भानु कहै सूर्य को देखि ११२॥

(उपपति[1])

कवि—पूषी

बेनी मृगमद की झुकन मृग मद की,
शरद कोकनदकी सु शोभा रद करी है।
फूलन के हार हार हिये किये हैं बिहार,
'पूषी' ताहू की बिहार कहो नाहि परी है॥
अंतरस भीनी झीनी कंचुकी कुचन पर,
रचना रची हूँ रची बीरी मुख भरी है।
जात बन छरी जिन मेरी मति छरी सोभा,
सोन केसी छरी लंक छरी करि छरी है ॥११३॥

टीका—बनछरी कहै बनकी देवी होय सोन कहै कंचन की छरी है, जिन मेरे मति को छली है ॥११३॥

कवि—सदानन्द

केसर कलित पचतोरिया ललित लाल,
लहँगा लहत लंक लोने पर घेरदार।
जगमगै जड़ित जड़ाऊ पग पायजेब,
पंकज प्रभानि प्रभा पाँवड़े गडेरदार॥
'सदानन्द' सुन्दर सघन घुँघरारे कच,
कंचुकी पै डारे अहि कारे मानो फेरदार।
ऐ उदार ऐननि मरोरदार तोर दार,
करत कजाकी कजरारे नैन कोरदार ॥११४॥

टीका—ऐंडदार ऐनक है मृगा कैसे ॥११४॥

मौर = मुकुट। बागे = वस्त्र। पटुको = चादर ॥११२॥

शरद कोकनद = शरद कालीन लाल कमल। रद = दाँत ॥११३॥

१—दूसरे की स्त्री से प्रेम करनेवाला 'उपपति' कहलाता है।

(वैसिक[1])

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

सोन सलाक सी सोहत सुन्दरि कञ्चन कुंभ उरोज भने हैं।
दाँत लसैं मुकुतावलि से 'बृज' ओठ बिराजत बिद्रुम से हैं॥
हीरा से हाँस लसैं मनि नील के तार से बार बिराजै घने हैं।
बाल बिलोकि बिचारत हौं इतने धन लैं कितने धन मैं हैं॥११५॥

टीका—इतने धन लै कै कितनो दै है ॥११५॥

(प्रोषित[2] पति)

कवि—मुकुन्दलाल

प्रानजीत जोगी मदनागिमे मयंक मुखी,
प्रानघाती पापी कोन फूली है जुही जुही।
भृङ्गी गन गान कैधौं मैन कैधौं मैन बान,
दच्छिन पवन कैधौं कोकिला कुही कुही॥
मधु की मयंक के 'मुकुन्दलाल' तरुनाई,
रजनी निगोडी रंग रंगन छुही छुही।
जौलौं परदेशी प्यारो मन में बिचार करै,
तौलौं तूती प्रगट पुकारी रे! तुही! तुही! ॥११६॥

टीका—तौ लौ तूती कहै पच्छी पुकारो तुही-तुही अर्थ नायक रावरौ हमही को तुही तुही कह्यो ॥११६॥

इति दिगविजय भूषणे नायिका नायकवर्णनं नाम सप्तदशः प्रकाशः॥

पचतोरिया = एक प्रकारका महीन कपड़ा। लंक लोने = सुन्दर कमर। घेरदार = घुमाववाला। पायजेब = नूपुर। पाँवड़े = जूते। कजाकी = बटमारी, लुटेरापन। कोरदार = कोने वाले ॥११४॥

मनिनील = नीलम ॥११५॥

दच्छिन पवन = मलयवायु। निगोडी = नीच, दुष्ट। तूती = पक्षी विशेष ॥११६॥

१—वेश्या से प्रेम करनेवाला नायक "वैशिक" कहलाता है।

२—जो नायिका को छोड़कर परदेश में चला जाता है और वहाँ उसके विरहमें व्याकुल रहता है वह 'प्रोषित पति' है।

अष्टादशः प्रकाशः

(कवि-प्रौढोक्ति[1])

कवि प्रौढोक्ति ते होत है, रचना बिबिधि प्रकार।
ताते बरनन करत हौं, उचित ग्रन्थ निरधार ॥१॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

छप्पै—सूबा पावन अवध, ताहि में पहिला पाए।
फिरि वह बाचक लिए होत पुनरुक्त न लाए॥
आदि एक में गनो अंत में गिनती नौ लौं।
तिन दूनौं के मध्य अंक सब लघु करि तौ लौं॥
यह समुझि आगरे की सभा लाट जबै तकमा दिए।
महाराज दिग्विजय सिंह के नव नम्बर याते किए॥२॥

टीका—अवध में पहिला नम्बर जो यहाँ वही होय तौ पुनरुक्त होय। याते पहिला नम्बर किये, आदि में एक और अन्त में नौ लै गिनती है नव अरु एक के मध्य अङ्क सब लघु है याते अवध में पहिला इहो नवाँ किए॥२॥

१—कवि अपनी विशेष प्रतिभा से कविता में कुछ विशेष चमत्कार ला देता है जो कविप्रौढोक्ति कहलाती है, यह चमत्कार शब्दगत ही होता है अर्थगत नहीं। इसीलिए इसे शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का भेद माना गया है। इसमें वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार, अलंकार से वस्तु या अलंकार से अलंकार की प्रतीति होती है अतः यह चित्रकाव्य से भिन्न है।

(नौ प्रशंसा)

छप्पै—नवै खण्ड मैं नरखि नवै ग्रह नवै व्याकरन।
नवै नाथ नव रतन, भक्ति नवधा अग सारन ॥
नवै निधि रस नवै नवै वाचक नवीन भनि।
नव पहाड़ के आदि अंत मैं होत नवै गनि ॥
'बृज' सभा आगरे आम मैं, जानि छाट सब नौ धिखे।
महाराज दिग्विजै सिंह के नव नंबर याते लिखे ॥१॥

टीका—नव खण्ड है नव व्याकरण नव नाग भक्ति नव निधि नव रस नव नव कहै नवीन वाचक है इत्यादि जानौ ॥१॥

१—

९ खण्ड—इलावृत, भद्राश्व, हरि, केतुमाल, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, किंपुरुष और भरत।

९ ग्रह—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु।

९ व्याकरण—इंद्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र।

९ नाथ—नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ चर्पट, जलंधर और मलयार्जुन।

९ रत्न—माणिक्य, मुक्ता, मूँगा, पन्ना, पोखराज, हीरा, नीलम, वैडूर्य और गोमेद।

नवधाभक्ति—श्रवण, मनन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

९ निधि—महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व।

९ रस—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शान्त। नौ के प्रत्येक पहाड़े में जो अंक आते हैं उन्हें परस्पर जोड़ा जाय तो नौ ही होता है जैसे १८ में ८+१=९, २७ में २+७=९ आदि।

(के सी एस आई षट अक्षर बरनन)

छप्पै—केहरि सो बल किये, घेरि बागी करि मारे।
सील सींव कै सिन्धु सिकारी स्वच्छ बिचारे।
एक स्वामि को सेइ समर मैं जै जस पाये।
आदिल आदर अनी इसाई लोग बचाये॥
यह बात बूझि बिकटोरिया हेत छ इव अक्षर बिखे।
महाराज दिगविजय सिंह को के सी एस आई लिखे ॥४॥

टीका—के० सी० एस० आई० यह षट बरन खिताब के केहरि आदि पद ते जानो केहरि, सील एक समर आदिल ईसाई षट् पदन में आदि के अक्षर लिए के० सी० एस० आई० भयो ॥४॥

(कचेहरीके चारि वर्णन)

छप्पै—कलम कागदन कलित, काम काजी कोविद नर।
चेत चाकरे चतुर चोपदारन आसा कर॥
हरिकारे हरकार हेत हाकिम हुकुमै वर।
रीति नीति की राखि रिआया मंत्री मति धर॥
कहि 'गोकुल' राजत यह जहाँ कहत कचेहरी ताहि को।
लहि भूप दिग्विजय सिंह सब राजकाज सुभ जाहि को ॥५॥

टीका—कचेहरी चारिपद कलम चेतक हरिकारे रीतिनीति कलम आदि चारिपदन के अक्षर मिलाए ते कचेहरी भयो ॥५॥

(दसांग काव्य वर्णन)

दण्डक-सब्द देह पानि पग छंद व्यंग्य जीव मन
मुख व्यञ्जन सो धुनि बानी निकसत है।
लक्षना द्विबिधि अच्छ हाव-भाव है कटाक्ष,
श्रवन विभाव गुन गुनै सरसत है॥
नासिका विशद वृत्ति रीति कुल कानि बानि,
भूपननि भूषन बसन बिलसत है।
कबिता दसांग बर बनिता को 'कवि पति-
बृज' पुंज पुन्य ही ते दोऊ दरसत है ॥६॥

टीका—शब्द छन्द व्यङ्ग आदि पदनते दश अंग काव्य कहे ॥६॥

"पुनः"

सवैया—[1]शुभ शब्द सुदेह है श्रीपति अर्थ सबै अँग रीति विमोहत है ॥
रस मंजुल है मन व्यंग्य सजीव विलास प्रिया गुन सोहत है ॥
'ब्रज' वृत्ति वयःक्रम भूषन भूषन एक न दूषन जोहत है ।
कविता सम स्वच्छ बनी बनिता कवि नायक लोगन मोहत है ॥

टीका—कविता सम नायिका कवि नायक को मोहत याते कुलटा ॥७॥

(गनिका श्लेष में दसांग काव्य)

दण्डक—[2]सबदै अरथ बित पति कोस ते निकारि,
पद ते परम धुनि कढ़तै रहतु है ।
मोहै मन लक्ष्य शुभ लक्षनै अनूप रीति,
नेम गहाजन ही की जामै निबहतु है ॥

१—कविता और वनिता के १० अङ्गों की समता इस प्रकार है—

शब्द = देह । अर्थ = कान्ति । रीति (गौड़ी, पाञ्चाली, वैदर्भी, लाटी) = कर-चरणादि अवयव । रस = मन । व्यंजना = आत्मा । गुण, ओज, प्रसाद माधुर्य = विलास । वृत्ति = उपनागरिका आदि । वयः क्रम = बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य । अलंकार = आभरण । दोष = अवगुण । छठे पद्य की अपेक्षा यह उपमा अधिक स्पष्ट है ।

२—इस पद्य के दोनों अर्थ इस प्रकार हैं—(१–कविता, २–वनिता)

सबदै = शब्द, सब देकर । अरथ = अर्थ, धन । वितपति = व्युत्पत्ति, धनी । कोश = अमरकोष आदि पर्यायबोधक ग्रन्थ, खजाना । पद = अक्षर-समूह, पैर । धुनि = ध्वनि, शब्द । शुभ लक्षणै = रूढ़ि आदि लक्षण, अच्छे लक्षण (चिह्न) । अनूपरीति = अनुपम कोमलादि, सुन्दर ढंग । नेम = नियम गुनगन = माधुर्य ओज आदि, दया दाक्षिण्यादि । भूषण = उपमादि अलंकार, नूपुरादि आभरण । छंद = वसन्ततिलकादि । हावभाव = चेष्टाएँ । और भाव-नाएँ । भारती = सरस्वती, सौन्दर्य । त्रिविधकविता = अभिधा–लक्षणा व्यञ्जना-त्मिका । त्रिविध वनिता = स्वीया–परकीया–वेश्या ॥८॥

गुन गन भूषन बिभूषि जल देशाकाल,
छंद बंद हाव अनुभाव उमहतु हैं ।
भारती की लाड़िली हैं कविता त्रिविध भाँति,
बनिता की जैसी तीनि जाति दरसतु हैं ॥८॥

टीका—सबदै अरथ शब्द अर्थ कोशतें निकारिपदन में धुनि होय और लछना होय रीति चारि भाँति महाजन कहै जो बड़े लोग कहे होइ इत्यादि तें काव्य होत है। गनिका पक्षे—सबदै अरथ कहै सब धन देत है कोस कहै खजाने ते निकारि जब वह नृत्य समै में पदतें धुनि नूपुर की करति है सोहै मन लक्ष कहै लाखन को मन मोहत है नेम गहत है याते नेमा गनिका धन लै अवध बदत महाजन जो धनवन्त लोग है याही भाँति और जानो ॥८॥

यहि कवित्त ते स्वकीया परकीया गनिका निकसै है ॥

(दूषन देन हारे पर)

सवैया—पतिआत न काहुहि की परतीति चके से रहैं सबही ते निते।
चलि जात भले ढिग दीठ भले अति चंचल चारिहु वोर चिते ;
'बृज' बोलत को फिरि को फिरि को हम ऐसन को जगजीव जिते।
उठि भोर सो दोष अपावन हेरत काग से हैं कवि कूर किते ॥९॥

टीका—बोलत है को अर्थ हमारे अस को ॥९॥

मति मंजुल माली हैं पुंज कवीश लता कबिता को सँवारत हैं।
बर कोबिद हैं रखवार बली ढिग मूढ़ मतंग निवारत हैं ॥
'बृज' बाग बिहारन हार सो सज्जन भूषन फूल पियारत हैं।
सम सूकर सो सठ दुर्जन हैं जिन दूषन नेक निहारत हैं ॥१०॥

टीका—जैसे सूकर बाग में जाय तौ नर्कई हेरे तैसे दुर्जन दोष हेरै है ॥१०॥

गूढ़ अगूढ़ न जानत मूढ़ बतावत हैं जग मैं कबि एकै।
दूषन के नहि आवत भूषन दोष लगावत औरै अनेकै ॥
आपन भूल न नेक बिचारत हैं पर निन्दक जाहि बिबेकैं।
ऐसे हैं चूतिया चेत नहीं चित च्यूतर चोट लगे सिर सेकै ॥११॥

टीका—ऐसे हैं की जहाँ दूषन होय तहाँ तौ जानते नाहीं ॥११॥

(झूठे पर)

दण्डक-झूठो देह धारि हरि छले बलि बावन ह्वै,
भए प्रतिहार हार त्यागे प्रभुताई है ।
झूठो जो स्वयम्बर देखायो हरि नारद को,
साप अंगीकार करि नरतन पाई है ॥
झूठई निदरि 'बृज' बेद को बिधान जब,
भए बौध रूप अजों सुख न देखाई है ।
झूठे की झुठाई आदि मीठी है अमी सो अति,
अन्त में जहर से कहर करुआई है ॥१२॥

टीका—झूठ तौ पहिले सुधा सम पाछे जहर ते अधिक ॥१२॥

कवि—दास

जुगनू गन भानु के आगे भली बिधि आपने जोतिन को गुन गैहैं ।
'दास' जबै तुक जोरि निहारि कबिन्द उदारन की सरि पैहैं ॥
माछी मसा जो खगाधिप सों उड़िबे की बड़ी बड़ी बात चलैहैं ।
तौ करतारहु और कुँभार ते एक बिना झगरो बनि ऐहैं ॥१३॥

टीका—करतार कुम्हार ते कलह होय है ॥१३॥

कवि—शिव कवि

बैठी सभा कहुँ ऊँटन की 'शिव' भाँति अनेक किए हैं उछाहैं ।
आइ गए गदहा तित हैं गुनवन्तन की गहि कै चित चाहैं ॥
रेंकि कै राग कियो तँह ही सुनि रीझि मिले करि कै चहुँधाहैं ।
वै उनके तब डील सराहे हैं वै उनके मिलि बाल सराहैं ॥१४॥

टीका—ऊँट गदहा के अन्योक्ति यूँ सठन के समागम ॥१४॥

(सूम पर)

कवि—अज्ञात

दण्डक-दानी कोऊ नाहिंने गुलाब दानी पीकदानी,
गोंददानी घनी इनहीं में शोभा लहे हैं ।

खगाधिप = गरुड़ ॥१३॥

मानत गुनी को गुनही में परगट देखो,
याते गुनीजन मन समाधान गहे हैं ॥
हयदान हेमदान गजदान भूमिदान
सुकबि सुनाए जो पुरानन में कहे हैं ।
अब तौ कलमदान जुरदान जमदान,
पानदान खानदान कहिबे को रहे हैं ॥१५॥

टीका—सुगम ॥१५॥

कवि—ठाकुर

ऐरी मेरी बीर कन्त कौन के कमान जाहि,
राजन के मीत पै न चलत उपाउरी ।
तन दुति छीन भई मनवा मलीन भई,
मनसा बिकल कल 'करत' न बाउरी ॥
'ठाकुर' कहत या जहान पै जरब फैली,
भई मति मैली कछु जतन बताउरी ।
खैबे काज सौंह राखी कीबे काज पाप राखी,
लीबे काज अपजस दीबे काज लाउरी ॥१६॥

टीका—लैवे काज सौंह अर्थ कसम खात है खाइके देवे मैं ॥१६॥

तथा—

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान किरपान कबहूँ न मन मुरके ।
नीति देनवारे हैं मही मैं महिपालन को,
होकर त्रिसुद्ध हैं कहैया बात फुर के ॥
'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदेनिया ससुर के ।
चोजन के चोज रस मौजन के पातसाह,
ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के ॥१७॥

टीका—चाकर चतुर के पै हम ठाकुर कहाते अर्थ बड़े आदमी ॥१७॥

जरब = हानि, चोट ॥ १६॥

मुरके = लौटता है । त्रिसुद्ध = मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र । फुर = स्पष्ट ।
चोज = हँसी, मखौल ॥१७॥

तथा—

जो पै इन द्रोहिन के दौलति न होती तौ,
सुपंथिन के पाँय इहाँ भूलि हूँ न परते ।
भागवान भागन के जानि कै अधीन होत,
या पै एक बीनकला कोटिन बिचरते ॥
'ठाकुर' कहत गुनगान के बिभाव कर,
आपनी सभा में बैठि कौन को निदरते ।
हाय जौ सुजानन के गरज न होती तौ,
अजान ए अभागे अभिमान का पै करते ॥१८॥

टीका—जौ सुजान लोगन को गरज न होती तौ अजान कहै मूर्ख अभिमान न करते ॥१८॥

कवि—दूलह

मानै सनमानै तेई मानै सनमानै सन-
मानै सनमानै सनमान पाइयतु है ।
कहै 'कवि दूलह' अजानै अपमानै अप—
मान सो सदन तिनही के छाइयतु है ॥
जानत हैं जेऊ तेऊ जात हैं बिराने द्वार,
जानि बूझे भूले तिन को सुनाइयतु है ।
काम बस परे काऊ गहत गरूर तौ वा,
आपनी जरूर जाजरूर जाइयतु है ॥१९॥

टीका—आपने हेत जाइबो जरूर है ॥१९॥

कवि—बेनी

गोरे गोरे भुज दंड दीरघ बिसाल नैन,
बदन रसाल जाके सुपमा बखाने हैं ।
'बेनी कवि' कहै जाके अजब जलूस सोहैं,
हाजिर हजूर पूर पहुमी खजाने हैं ।

निदरते = उपेक्षा या तिरस्कार करते ॥१८॥

ऐसे नरनाहर को देखिबे को चित्त भयो,
ताते कबि आस-पास आनि ठहराने हैं।
मैं तो मरदाने जानि जस के कबित्त कीन्हें,
द्वारे चोपदार कहैं साहेब जनाने हैं ॥२०॥

टीका—मैं मरद जानि कवित्त कियो ॥२०॥

कवि—सुखदेव

सवैया-तेरे चलाये चल्यो घर ते डरप्यो नहिं नीर समीर औ धूपै।
पाल्यों मैं तोहि हिए हित कै हठ तेरी सों माँग्यौ हहा करिभूपै॥
ऐसे सखा 'सुखदेव' सुलोभ है तोर सनेह तै सोरि सरूपै।
मेरी बिदाई के बार फटीक ह्वै जाइ मिल्यौ नृप सिंह अनूपै ॥२१॥

टीका—हे लोभ मेरे बिदाई के समै तू नृपति को लगो अर्थ यह की अब उनके लोभ लगो कुछ देत नहीं ॥२१॥

कवि—श्रीपति

दण्डक-उर्द के पचाइबे को हींग अरु सोंठि जैसे,
केरा के पचाइबे को घिव निरधार है।
गोरस पचाइबे को सरसों प्रबल दण्ड,
आम के पचाइबे को नीबू को अचार है॥
'श्रीपति' कहत परधन के पचाइबे को,
कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है।
आजु के जमाने बीच राजा राउ सबै जानै,
रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है ॥२२॥

टीका—वाह है वा डकार आजु जमाने कहै समै में ॥२२॥

कवि—भगवंत

सवैया-कट्टर ताज लों भिक्षुक लाज लों बीन अवाज लों लावरदेवा।
पूस के मास में फूस को तापनो भूत को जापनो झाँझरी खेवा॥

फटीक = निर्लज्ज ॥२१॥
निरधार है = कहा गया है ॥२२॥

है 'भगिवंत' इते नहिं काम को राम के नाम को होहि न लेवा।
साधु को लूटनो धर्म को छूटनो धूम को घूटनो सूमकी सेवा ॥२३॥

टीका—साधु को लूटओ सूम की सेवा है ॥२३॥

(झूठे पर)

कवि—प्रधान

आजु जो कहैं सो आठ मास लौं न लागै ठीक,
काल्हि जो कहैं तो मास सोरह चलावहीं।
पाँच दिन कहैं पाँच बरष बिताय देहिं,
पाँच जो कहैं तौ लै पचास पहुँचावहीं ॥
भाषत 'प्रधान' जो वै ताहू पै न त्यागैं द्वार,
अपना लजात फेरि वाहू को लजावहीं।
ऐसे सत्यभाषी सरदार हैं मैवैआ जहाँ,
काहे को पवैया तहाँ जीवत लौं पावहीं ॥२४॥

टीका—सुगम ॥२४॥

(सुकवि कुकवि पर)

कवि—देवी दास

दंडक—सुन्दर सुघर मृदु आखर मधुर तर,
मनोहर मोदकर गुनन समेत है।
काहू कबिराज की अवाज है अमृत रूप,
जामैं भरी भारती कलोल मोल लेत है।
ताहि सुनि कर कहैं हुतो सूर समझयौन,
निज दोष देवे माँहि और को सचेत है।
'देवी दास' जैसी ढीली चोली देखि सूखी नारि,
हिय को न खोजै दोस दरजी को देत है ॥२५॥

टीका—ढीली चोली देखि सूखी नारितैसे मूरख समझते नहीं कवि को दोष देत ॥२५॥

झाँझरी खेवा = वह नाव जिसके पेंदे में छेद हों। घूटनो = निगलना ॥२३॥
पवैया = पानेवाला, याचक ॥२४॥

(लोकोक्ति)

ईंट को बंदन नीम को चंदन चेरी को नंदन बाम को घूसा।
माते की आन डफाली की तान औ गूँगे को ज्ञान कपूत को रूसा॥
रंक को रीझिबो मौजी की खीझि अजान की प्रीति जुआर को चूसा।
राजा को दूसर छेरी को तीसर रँड के मूसर खासर खूसा॥२६॥

टीका—ईंट को बंदननाम सेंदुर फाली नाम डफाली ॥२६॥

कवि—श्रीपति

(अन्योक्ति)

सारस के नाद कर बाद न सुनत जामैं,
नाहक ही बकवाद दादुर महा करैं।
'श्रीपति' सुजान जहाँ वोज न सरोजन की,
फूले न फफूल जाहि चित दै चहा करैं।
बकन की बानी की बिराजत है राजधानी,
काई सो कलित पानी हेरत हहा करैं।
घोंघन के जाल जामैं नरई सेवाल ख्याल,
ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करैं॥२७॥

टीका—ऐसे पापी तालरूपी नरके इहाँ गुनी हंसको कहा सुख ॥२७॥

कवि—शंभु

तेरो कैसो पानी वह बापुरो कहाँ सों ल्यावै,
वाके कीच बीच मेढु गन के उमाह है।
तो सों बिबुधन की बिराजत समाज अरु,
मेटत मुनी के तँय कलि वारो दाह है।
एरे मानसरवर तोमें जे रहत 'शंभु',
तिनको करत एक तैं ही उतसाह है।
काह पावै अनगनो मुकुता विशाल कहूँ,
ताल करि सकत मराल कै निबाह है॥२८॥

नन्दन=पति, प्रिय। डफाली=मुसलमान भिखारियों की एक जाति विशेष। रूसा=रूठना ॥२६॥

बापुरो—बेचारा, गरीब। मेढुगन = मेंढकसमूह। उमाह=उमङ्ग, उत्साह। अनगनो=असंख्य ॥२८॥

टीका—तेरे इहाँ निगुण देवतन की सभा ॥२८॥

कवि—घासीराम

कोरियो चमार चिरी मार को जु यार करि,
प्यार करि सदन सुपच मन भाए हैं।
छिपिया कुम्हार नाऊ दाँव कैं सुदामै टरो,
गीध के अगाऊ ह्वै के जाय गुन गाए हैं॥
'घासीराम' राजी ह्वै बिदुर घर भाजी खाई,
पाजी भीलनी के बेर जूठे मुँह लाए हैं।
कहिए कहाँ लौं कलिकाल के अँदेसे ऐसे,
नीचरंगी ठाकुर ठिकाने होत आये हैं॥२६॥

टीका—आगे ते ठाकुर लोग नीचन पै रीझे हैं॥२६॥

कवि—शिव

जग मैं रसीले जे जसीले दयावान लोग,
सेवा श्रम बूझत न काहू को छलत हैं।
दाता ज्ञाता सूर वा सपूत साहसी जे कोऊ,
तिनके बचन कबहूँ न बदलत हैं॥
कहै 'सिव कवि' गुनवंतन के तिनहीं सों,
सहज में सकल मनोरथ फलत हैं।
सूम दगाबाजन सों सुबुक मिजाजन सों,
सीलहीन राजन सों काज न चलत हैं॥३०॥

यथा—

मीन जल बल फनीवालन के हल बल,
बैदन के मल बल जानै बैदगोत है।
गायन के गल बल नकली नकल बल,
कोरिन के नल बल पेटहि परोत है॥

सुपच = श्वपच, चाण्डाल। अँदेसे = आशंका ॥२६॥

सुबुक मिजाज = ओछे स्वभाव वाले ॥३०॥

'शिव कवि' सुरन के सुधा को अचल बल,
मुनिन सुथल बल करत उदोत है।
महा महिपालन के दल बल होत अरु,
खल महिपालन के छल बल होत है ॥३१॥

टीका—छलबल सुगम ॥३१॥

यथा—

लच्छिमी तिहारी एक कृपा के कटाच्छ बिन,
क्रूर धूरतन के बदन ध्याइबे परे।
झूठे महिपालन के झूठे गुन गाइ गाइ,
बानी जगरानी तासों बैरु ठाइबे परे॥
कहै 'शिव कवि' सूम दाता कै बखानियत,
रन ते बिमुख सूर ठहराइबे परे।
काहू के न धंधन के निज पेट धंधन के,
दौलति मदंधन के ढिग जाइबे परे ॥३२॥

टीका—दौलति ते मद अन्ध है तिनके आधीन होनो ॥३२॥

कवि—अज्ञात

(कवि प्रौढ़ोक्ति)

जघन उघारि बसनन दूरि डारि करि,
रसना उतारि जल भीतर ह्वै जाइए।
सीसी करै कहि अरु अधरनि राग धरै,
दूरि करै कज्जल गरे सो लपटाइए॥

कृषीवाल = किसान, खेतिहर। बैदगोत = वैद्य समुदाय (मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम्—प्राणी की शक्ति उसके मल के अधीन रहती है और जीवन वीर्य के अधीन—भाव प्रकाश) गल = जुगाली करना। कोरिन = बुनकरों। नल = सूत को भरने की नली। परोत = जुलाहों (कोरियों) का एक औजार जिसपर वे सूत लपेटते हैं। सुथल = पुण्य क्षेत्र। उदोत = प्रकाश ॥३१॥

पति के समीप उप पति के बिपति लागे,
बहुरि न ऐसी जल केलि अवगाहिए।
वैयाकर्ण मतवारे जानै कहा मतवारे,
वारि जो नपुंसक तौ वारिज न चाहिए ॥३३॥

टीका—व्याकरण के पढ़ैया मतवारे काह जानै मन की बात नीर जो नपुंसक नीरज न चाही ॥३३॥

कवि—गंग

दंडक—आवत हौं चलो सिव सैल ते गिरीस जाँचे,
मिलो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को।
कबिन के रसना की पालकी पै चढ़े जात,
संग सोहै रावरो प्रताप तेजबर को॥
'कवि गंग' पूछो तुम को हो कित जैहौ उन,
कह्यौ मोसों हँसि कै सनेसो ऐसो घर को।
जस मेरो नाम मेरो दसौं दिसा धाम मेरो,
कहियो प्रनाम हौं गुलाम बीरबर को ॥३४॥

टीका—कवि के रसना कहै जीभ ताकी पालकी पै चढ़ो ॥३४॥

कवि—जैन महम्मद (जैनुद्दीन अहमद)

सवैया—खेल खगौ सरदार हजार में जूझ में आपनी फौजते फूटिकै।
चौरिकै 'जैन महम्मद' बीर दई सिर मैं तरवारि जो ऊँटिकै॥
आधो रह्यो धर घोरै घरीक लौं आधौ गिरो धरनी पर टूटिकै।
मानहु मान गिरीस ते कै रही गौरि गिरी अरधंगते छूटिकै ३५॥

टीका—मानो गौरि महादेव के अंग ते छूटि परी ॥३५॥

शिवशैल = कैलास। गिरीशयाचे = शिवजी से माँगकर ॥३४॥

कवि—रामदास

पूरित बिबिध गुन सार सरिता अनेक,
गुनवान उमँगि उमँगि सब धाय कै।
भावगम्य गमक महीपति नदीपति पै,
आवत स्वभाव द्रुत साहस बढ़ाय कै ॥
यद्यपि अनिच्छित अतृप्त गुन आपगा सु,
नृप जलरासि गुन रसपै लोभाय कै ॥
बीचि ब्याज लेत उठि आगे बढ़ि 'रामदास',
आप रूप लेत करि आप में मिलाय कै ॥३६॥

टीका—गुनी नदी राजा समुद्र बीच लहरी ॥३६॥

कवि—गोकुलप्रसाद 'बृज'

(सूम पर)

दंडक—बारन के आरथी को बारन मनोरथ कै,
बाजी के मँगैया बाजी आवत निकेत हैं।
गाहक कनक पत्र पावैं न कनक पत्र,
रूप के लेवैआ ते छपाइ रूप लेत हैं ॥
पयसो चहत ताहि पय सो लगावैं बहु,
लोभी कवड़ीन लाभ कोड़ि लाहु लेत हैं ॥
'गोकुल' बिलोकि सूम मंगन बिहीन पट,
माँगै जो बखानि तऊ द्वार पट देत हैं ॥३७॥

टीका—वारन हाथी वारन बरज व बाजि घोड़ा फिरि आवै। कनकपत्र कंचन के बरतन कनकपत्र धतूर के पाता रूप चाँदी रूप स्वरूप पयसो पैसा दोष कौड़ी बराटिका कौडिला पट दरवाजा पट कपड़ा ॥३७॥

नदीपति = समुद्र। बीचि ब्याज = तरंग के बहाने ॥३६॥

कनकपत्र = सुवर्ण का पत्र, धतूरे का पत्ता। रूप = चाँदी, आकृति। पयसो = पैसा, जल। कवड़ीन = कौड़ी भी नहीं ॥३७॥

(कपड़ा पत्ते)

पगरी सुभग सोहै कटि पटुको बिमोहै,
मंजु उर माल मोहै लखि के सयान है।
अधर अमल गुल बदन प्रकास पुञ्ज,
देखे नैन सुख लहै आभा अधिकान है॥
'गोकुल' बिलोकि छबि छाजै मारकीन अस,
राजै तनजेब काह कीजिए बखान है।
मिले बनमाली नाहीं कह्यो यह आली बात,
बृज की बजार मैं बजाज की दुकान है॥३८॥

टीका—पगरी पटुका उरमाल अधर गुलबदन नैन सुख मारकीन तनजेब यह बजाज की दुकान पर है दूजो अर्थ—री सखी पगरी सिर में सोहत कमर में पटुको गरे माला अधर ओठ गुल कहै फूल कैसो बदन देखि नैन ते सुख होत है छबि मार कहै काम की नहीं है ऐसी ॥३८॥

आस पास आलिन की अवली बिलोकियत,
सुभग सुगंध मंद बगरै बिमल है।
के सकै बखानि छबि प्रफुलित मित्र लखि,
बिसद लसी है रंग अमित अमल है॥
'गोकुल' बिलोकि बेस यौवन बिलास जाके,
सर में बसत जाहि गति अविचल है।
आली कहै कान्है मिली कहाँ बृषभान लली,
नाहीं आली मैं तो कही कोमल कमल है॥३९॥

टीका—आली की अवली कहै श्रेणी आली सखी केसु कहै केश बार इत्यादि जानिये ॥३९॥

छप्पै :— दूत दूरदरसीय सैन पतवारि प्रबल गति।
सुंदर खेवनहार नीति मंत्री न बिमल मति॥

केसकै=बालों की। केसकै=कौन समर्थ है। मित्र=सखा, सूर्य, यौवन बिलास=जवानी की शोभा। यो बनविलास=जो जल का बिहार ॥३८॥

बरद् वान गंभीर महाजन लोग बड़े नर।
च्हुँ खार कटार डाँड परभट लड़ाक कर॥
भरि लंगर अविचल कौल है राज समाज जहान गहि।
'बृज' वारपार सुख भोग वै देश सिंधु की लहरि लहि॥४०॥

टीका—वूत दूर-दरसीय सैन पतवारी॥४०॥

दंडक— चारौं दिसि राजन गजन दिगविजय हेत,
चारों दिसि दिग्गज मतंग चारि साध्यौ है।
पूरब दछिन देश पच्छिम को जीति आयो,
पूरब बघेल खंड बन को उपाध्यौ है॥
सम्बत बरन[४] विवि[२] खंड[९] इन्दु[१] पूस पूर,
भयो भट भैरो जोर जुद्ध करि काँध्यौ है।
भूप दिगविजयसिंह सिंह के समान गाँसि,
गज पै गजब फाँसि डारि गर बाँध्यौ है॥४१॥

टीका—यह गज जो बझाए गए हैं सो चारिऊ निशान के दिग्गज चारिऊ दिशि के राजन गजन के जीतिबे को चारि बीर पठै दिए हैं तासो भूप ने सम्वत् १९२४ पूस सुदि १५ को बझायो॥४१॥

सवैया— बेद पुरान पुरातम लोग सदै जिनके गुन गावत हैं।
आदि न अंत अनंत महातम अंत अनंत न पावत हैं॥
'गोकुल' सो अवधेस के धाम चरित्र विचित्र दिखावत हैं।
जाहि के नार ते भे करतार सोई निज नार छिनावत हैं॥४२॥

टीका—जाके नाल ते ब्रह्मा भये सो हरि नार छिनावत॥४२॥

दूरदरसीय=दूरदर्शी, दूर (भविष्य) की बात सोचने वाला। पतवारि= डाँड़े, विश्वासयुक्त। बरदवान=लक्ष्य भेदी बाण। महाजन लोग=श्रेष्ठ व्यक्ति, धनिक समूह॥४०॥

उपाध्यौ=उद्विग्न कर दिया। "अङ्कानां वामतो गतिः" इस नियम के अनुसार इन्दु १, खंड ९, विवि २, वर्ण ४=१९२४ सं०। काँध्यो=भार वहन किया, सम्पूर्ण दायित्व ले लिया। गाँसि=घेर कर॥४१॥

सारद नारद सेस गनेस सदै जिनको जस जोवत हैं।
चारिउ आकर जीव जिते हियमेंहि हितै जिन सोवत हैं॥
'गोकुल' भौंह बिलास ते जासु प्रकासत विश्व औ खोवत हैं।
अवधेश तनै सोइ आइ भए अब दूध पियै कहँ रोवत हैं॥४३॥

टीका—दूध के हेत रोवत ॥४३॥

सनकादिक नारद सारद आदिक ध्यान सदा सबही उरधारैं।
जग जाकर नाम दिवाकर तेज भयानक मोह निसा नसिडारैं॥
कहि 'गोकुल' सो अवतार लिये बस प्रेम के पावन नेम निहारैं।
मन मोद सों मातु लै गोद तिन्हैं तिन ऊपर राई औ लोन उतारैं ४४

टीका—राई लोन उथारै ॥४४॥

लटकैं घुँघुवारि लटूरी लटैं अनखा छबि भाल में भावत हैं।
दृग खंजन कंज से आनन में दसनावलि छै दरसावत हैं॥
कहि 'गोकुल' बाघनहा कटि किंकिनि नूपुर सोर मचावत हैं।
तन झीन झँगा घनस्याम लसै दुति दामिनि की दमकावत हैं ४५॥

टीका—झगा नाम झुलिया ॥४५॥

सुर सारद सेस खगेस सदै गुन गावत अंत न पावत हैं।
मुनि मानस जोग समाधि करैं कबहूँ प्रभु रूप न आवत हैं॥
कहि 'गोकुल' सोई अव्यक्त अनादि धरे नर देह लखावत हैं।
अवधेस के आँगन में अंगना तिन को चलि बोई सिखावत हैं ४६॥

टीका—चलन सिखावत ॥४६॥

नार = नाल। (नाभि से उत्पन्न कमल की डंडी)। नार = स्त्री, मज्जा तंतु से निर्मित नली ॥४२॥

जोवत हैं = गाते हैं। आकर = समुद्र ॥४३॥

राई औ लोन उतारैं = भूत बाधा आदि त्रास निवारण के लिये राई लोन उतारती हैं ॥४४॥

अंगना = स्त्री (कौशल्यादि) ॥४६॥

सवैया-अरबिंद ते आँखिन पै लटकी अलकावलि मानो अलीगन गाछे ।
कलरौ किलकारिन को उपमान विचारत गोकुल एक न आछे ॥
तन भँगुली झीन प्रभा झलकै कटि कांति मनोहर काछनी काछे ।
अवधेस के आँगन कौसिलानन्द अनन्द सों धावत कागन पाछे ॥४७॥
टीका—कागन पाछे धावत ॥४७॥

दंडक-रघुबर रघुबीर रघुराउ रघुराज,
भजै रघुराई रघुनायक ललाम को ।
रघुकुल मनि रघुबंस के बिभूषन जो,
रघुपति रघुनाथ राघौ अभिराम को ॥
रघुबंस तिलक अनन्द रघुनन्द रूप,
राजिव नयन रावनारि गुणधाम को ॥
रामचंद्र भरत लखन सत्रुहन संग,
चारि मुक्ति देत 'बृज' जपै चारि नाम को ॥४८॥
टीका—रकार रघुवीरादिनाम प्रसंसा ॥४८॥

दस अवतार

स०-मीन ह्वै वेद पयोधि सों काढ़ि बराह हिरन्य बिलोचन मारे ।
कच्छप भूमि धरे प्रहलाद नृसिंह छले बलि बावन द्वारे ॥
छत्रिन को प्रसराम दसानन राम ह्वै कंस को कृष्ण सँघारे ।
जै हरि बौध कलंकी कला 'बृज' विष्णु बिसंभर दीन उबारे ॥
टीका—दस अवतार वर्णन ॥४९॥

दं०-नरकी चढ़त बारि नीचे ते निकरि ऊँचे,
देति है बड़ाई बड़ी विद्या जो हुनर की ।
नर कीते स्यार सम जाते मिलै हाड़ माँस,
सिंह नर ढिग जस मोती गज नर की ॥

गाथे = गुँथे हैं । कलरौ = कलरव, मधुरध्वनि । काछनी = करधनी ॥४७॥
चारिमुक्ति = सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य ॥४८॥
हिरण्यविलोचन = हिरण्याक्ष नामका दैत्य, विश्वंभर, जगत के रक्षक ॥४९॥
नर = नल (पानी का) । हुनर = कला । नरकी = नारकीय, नीच ।
नर = मनुष्य । परबीन = चतुर । नरकी = नरक में जानेवाले ॥५०॥
कला = ज्योति । पोत = काँच की गुरिया ॥५१॥

नर कीजै जग मैं बिचारि 'भूज' बात दोय,
फूरन ते दूरि प्रीति परबीन नर की।
नरकी न होहु नरहरि की भगति करो,
नीरधि नरक नाँघै नाव तन नर की ॥५०॥

टीका—नरकी कहै नळकी थारि ऊँचे को चढ़त ॥५०॥

कविन ते विनय

सिंह के समान सान कैसे करि सकै स्वान,
कलानिधि आगे कैसे जुगुनू कला धरै।
'गोकुल' बिलोकि त्योंही मेरी है ढिठाई यह
कीन्ही कबिताई बुध आदरै तो आदरै॥
कवि लोग जौहरी हैं जाहिर जगत जाके,
रतन पदारथ कवित्त मुकता लरै।
तहाँ गुन पोत को न होत सनमान दान,
जैसे कोऊ दीपक देखावत दिवाकरै ॥५१॥

टीका—कविन सो बिनय करत है की मेरी कविताई पोत के सम आपलोग मुकता वरण वरने हैं ॥५१॥

दोहा—रज कनिका लघु लोग पै, करिबो निजै प्रकास।
बड़ी नहीं कछु बात है, भानु गुनी के पास ॥५२॥

टीका—रज कनिका कहै बालू में जो चमक भानुको प्रकाश करिबो कछु बड़ी बात नहीं है, जैसे लघु गुनी परगुनी नृपति को आदरब कछु बात नहीं ॥५२॥

कवि कोविद गुनवंत सों, बिनै करौं कर जोरि।
बिगरो बरन सुधारिये, अपनी ओर निहोरि ॥५३॥

टीका—कवि कोविद गुनवंत सों बिनती जो अच्छर अनभनो होय ताहि सुधारि लीजै ॥५३॥

॥ इति श्री दिगविजयभूषण नामक ग्रंथ कविप्रौढ़ोक्ति वर्णन
गोकुल कायस्थ विरचिते टीकायां अष्टादशः प्रकाशः
शुभं लिखितं नाथूरामेण, सं० १६२५॥

निहोरि = अनुग्रह करके ॥५३॥

क—नामानुक्रमणी

ख—अलंकारानुक्रमणी

ग—छन्दानुक्रमणी

घ—नायिकाऽनुक्रमणी

गोकुल कवि की वंश परम्परा

